

दैवत-संहिता ।

(५)

अश्विनौ-देवता ।

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

साहित्यवाचस्पति, गीतालंकार

अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल.

[स्व. नारायणजी पुरुषोत्तम विश्वस्तनिधिके बंबई निवासी विश्वस्तोंने संपूर्ण 'दैवत-संहिता' के मुद्रणके लिये १५०००) रु० दिये, इस धनके भागसे यह विभाग मुद्रित हुआ है ।]

स्वाध्याय मण्डल, पारडी

संवत् २०१४, शक १८८०, सन् १९५८

प्रकाशक :
वसन्त श्रीपाद सातवळेकर, बी. ए.,
स्वाध्याय-मण्डल, भारत मुद्रणालय,
पोस्ट- 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)'
पारडी (जि. सुरत)

द्वितीय वार

मूल्य २) रु.

मुद्रक :
वसन्त श्रीपाद सातवळेकर, बी. ए.,
स्वाध्याय-मण्डल, भारत मुद्रणालय,
पोस्ट- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)'
पारडी (जि. सुरत)

" अश्विनौ " देवता का स्वरूप।

वेदों में " अश्विनौ " देवता है। इस देवताका मन्त्र-संग्रह इस भूमिका के साथ पाठकों के सामने रखा जाता है। इस संग्रह में ६८९ मन्त्र हैं। इनमें ऋग्वेद के ६३३, वा० यजुर्वेद के ७, सामका १, अथर्व के ११ मंत्र हैं। सब मिलकर ६५२ मंत्र हुए। शेष ३७ मंत्र अश्विसहचारी देवतागण के हैं। ये सब मिलकर ६८९ होते हैं। अन्य पुनरुक्त मंत्रोंकी गणना यहां की नहीं है। इन देवतामंत्रों के ऋषि ये हैं—

१	कक्षीवान् दैर्घतमसः	८३
२	वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	५६
३	अगस्त्यो मैत्रावरुणिः	३९
४	ब्रह्मातिथिः काण्वः	३७
५	घोषा काक्षीवती	२८
६	प्रस्कण्वः काण्वः	२५
७	कुत्स आंगिरसः	२५
८	श्यावाश्व आत्रेयः	२४
९	अथर्वा	२४
१०	सध्वंसः काण्वः	२३
११	शशकर्णः काण्वः	२१
१२	प्रजापतिः [यजुः]	२१
१३	पौर आत्रेयः	२०
१४	विमना वैयश्वः	१९
१५	सोभरिः काण्वः	१८
१६	गोपवन आत्रेयः	१८
१७	पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ	१४
१८	हिरण्यस्तूप आंगिरसः	१२
१९	दीर्घतमा औचथ्यः	१२
२०	गृत्समदः शौनकः	१२
२१	भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	११
२२	भूतांशः काश्यपः	११
२३	भौमोऽत्रिः	११
२४	विश्वामित्रो गाथिनः	९
२५	वामदेवो गौतमः	९
२६	अवस्युरात्रेयः	९
२७	सप्तवध्रिरात्रेयः	९
२८	कृष्ण आंगिरसः	९
२९	प्रगाथः काण्वः	६
३०	कृष्णो द्युम्नीको वासिष्ठः	६
३१	अत्रिः सांख्यः	६
३२	मेधातिथिः काण्वः	५
३३	कृष्णो विश्वको वा कार्ष्णिः	५
३४	जमदग्निर्भार्गवः	५
३५	मेध्यः काण्वः	४
३६	मधुच्छंदा वैश्वामित्रः	३
३७	शुनःशेप आजीगर्तिः	३
३८	गोतमो राहूगणः	३
३९	परुच्छेपो दैवोदासिः	३
४०	नाभाकः काण्वः	३
४१	विमद ऐन्द्रः	३
४२	विश्वामित्रः	३
४३	सुहस्त्यो घौषेयः	२
४४	सुकीर्तिः काक्षीवतः	३
४५	इरिम्बिठिः काण्वः	१
४६	त्वष्टा प्राजापत्यः	१
४७	अश्विनौ वैवस्वतौ	१
४८	ब्रह्मा	१

इस तरह मन्त्रसंख्या ऋषियोंके द्वारा देखी मिलती है। अब अश्विनी देवता के विषय में ब्राह्मणग्रंथों में जो निर्वचन मिलता है, वह यहां देते हैं—

अश्विनौ देवता के विषय में ब्राह्मणवचन

अश्विनौ देवता के विषयमें ब्राह्मण-ग्रंथोंमें निम्नलिखित निर्वचन मिलते हैं, जो इस देवता-स्वरूप के बताने में सहायक हो सकते हैं—

इमे ह वै द्यावापृथिवी प्रत्यक्षं अश्विनौ, इमे हीदं सर्वं आश्नुवतां, पुष्करस्रजाविति अग्निरेवास्यै [पृथिव्यै]

पुष्करं आदित्योऽमुष्यै [दिवे]। [श० ब्रा० ४।१।५।१६]
श्रोत्रे अश्विनौ। [श० ब्रा० १२।९।१।१३]
नासिके अश्विनौ। [श० ब्रा० १२।९।१।१४]
तत्रो ह वा इमौ पुरुषाविवाक्ष्योः। एतावेवाश्विनौ।
[श० ब्रा० १२।९।१।१२]
अश्विनावध्वर्यू। [ऐ० ब्रा० १।१८; श० ब्रा० १।१।२।१७; ३।९।४।३; तै० ब्रा० ३।२।२।१; गो० ब्रा० उ० २।६]
अश्विनौ वै देवानां भिषजौ।
[ऐ. ब्रा. १।१८; कौ. ब्रा. १८।१]
मुख्यौ वा अश्विनौ [यज्ञस्य]। [श. ब्रा. ४।१।५।१९]
श्वेताविव हि अश्विनौ। [श. ब्रा. ५।५।४।१]
स योनी वा अश्विनौ। [श. ब्रा. ५।३।१।८]
अश्विनाविव रूपेण [भूयासं]। [मं. ब्रा. २।४।१४]
आश्विनं द्विकपालं पुरोडाशं निर्वपति।
[श. ब्रा. ५।३।१।८]
आश्विनो द्विकपालः [पुरोडाशः]। तां. ब्रा. २१।१०।२३]
वसन्तग्रीष्मावेवाश्यां अश्विनाऽऽस्यां [अवरुन्धे]।
[श. ब्रा. १२।८।२।३४]
अश्विभ्यां प्राणाः। [तै. ब्रा. १।५।११।३]
अथ यदेनं [अग्निं] द्वाभ्यां बाहुभ्यां द्वाभ्यामरणीभ्यां मन्थन्ति, द्वौ वा अश्विनौ, तदस्याश्विनं रूपम्।
[ऐ. ब्रा. ३।४]
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे। अश्विनोर्बाहुभ्याम्।
[तै. ब्रा. २।६।५।२]
गर्दभरथेनाश्विना उदजयताम्। [ऐ. ब्रा. ४।९]
तदश्विना उदजयतां रासभेन। [कौ. ब्रा. १८।१]
इममेव लोकमाश्विनेन [अवरुन्धे]।
[श. ब्रा. १२।८।२।३२]
अश्विनमन्वाह तदमुं लोकं [दिवं] आप्नोति।
[कौ. ब्रा. ११।२।१८।२]

(१) सब का भक्षण करते हैं, इसलिये द्यावापृथिवी ये दोनों लोक अश्विनौ हैं, (२) दोनों कान, (३) दोनों नाक, (४) दोनों आंख अश्विनौ हैं, (५) दोनों अध्वर्यु अश्विनौ हैं, (६) ये दोनों देवों के वैद्य हैं, (७) एक ही स्थानसे ये दोनों उत्पन्न होते हैं, (८) गर्दभ के रथ से अश्विनौ देव आते हैं।

उक्त वचनोंसे जो निर्वचन मिलते हैं, वे ये हैं। 'बहुत खानेवाले, बहुत व्यापनेवाले' ये 'अश्' धातुके अर्थ हैं। ये ही यहां इन निर्वचनोंमें दीख रहे हैं। कान, नाक और आंख अपनी शक्तिसे विश्व को व्यापते हैं, आंख तो अपनी शक्ति से सब विश्व व्यापता है। इसलिये ये इंद्रिय अश्विनौ हैं। मनुष्यशरीरमें अश्विनौ के ये रूप हैं। वैद्य अपनी चिकित्सा से बीमारी को घेरता और उसका नाश करता है। अध्वर्यू यज्ञप्रक्रिया को व्यापते हैं। इस तरह इन निर्वचनों का तात्पर्य है। इन निर्वचनों को देखने के बाद अब निरुक्त के वचन देखिये—

अथातो द्युस्थाना देवताः। तासामश्विनौ प्रथमागामिनौ भवतः। अश्विनौ यद् व्यश्नुवाते सर्वं, रसेनान्यो, ज्योतिषान्यः। अश्वैरश्विनावित्यौर्णवाभः। तत् कावश्विनौ? द्यावापृथिव्यावित्येके। अहोरात्रावित्येके। सूर्याचन्द्रमसावित्येके। राजानौ पुण्यकृतावित्यैतिहासिकाः। तयोः काल ऊर्ध्वमर्धरात्रात् प्रकाशीभावस्यानुविष्टम्भमनु, तमोभागो हि मध्यमः ज्योतिर्भाग आदित्यः॥ १॥

तयोः समानकालयोः समानकर्मणोः संस्तुतप्राययोरसंस्तवेनैषोऽर्धर्चो भवति-वासात्यो अन्य उच्यते, उषः पुत्रस्तवान्य इति॥ २॥

इह चेह च जातौ संस्तूयते पापेनालिप्यमानतया तन्वा नामभिश्च स्वैः। जिष्णुर्वामन्यः सुमहतो बलस्येरयिता मध्यमः, दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊह्यत आदित्यः॥३॥

प्रातर्युजा विबोधयाश्विनावेह गच्छताम्। [ऋ. १।२२।१]
प्रातर्योगिनौ विबोधयाश्विनाविहागच्छताम्।
[निरुक्त अ. १२।१]

सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका।
उदन्यजेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मरायु॥
[ऋ. १०।१०६।६]

सृण्येवेति द्विविधा सृणिर्भवति भर्ता च हन्ता च, तथा अश्विनौ चापि भर्तारौ, जर्भरी भर्तारावित्यर्थः, तुर्फरीतू हन्तारौ। नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका- नितोशस्यापत्यं नैतोशं, नैतोशेव तुर्फरी क्षिप्रहन्तारौ। उदन्यजेव जेमना मदेरू- उदन्यजेवेत्युदकजे इव रत्ने सामुद्रे चान्द्रमसे वा। जेमने जयमाने, जेमना मदेरू। ता मे जराय्वजरं

मरायु, एतज्जरायुजं शरीरं शरदं अजीर्णम् ॥ ५ ॥
[निरुक्त. १३।५]

अब द्युलोक की देवताओंकी व्याख्या करते हैं। इन में अश्विदेव प्रथम आनेवाले होते हैं। हे सब व्यापते हैं, इनमें एक रस से व्यापता है और दूसरा प्रकाश से व्यापता है। और्णवाभ ऋषि का मत है कि, अश्विदेवोंके पास बहुत घोडे थे, घोडे पास रखने के कारण उनका नाम अश्विनौ हुआ। कौन भला ये अश्विनौ हैं? 'द्यु और पृथिवी' ऐसा कई मानते हैं, 'दिन और रात्री' ऐसा कई समझते हैं, 'सूर्य और चन्द्र' ऐसा कइयों का मत है, ऐतिहासिक लोग मानते हैं कि, ये पुण्यकर्म करनेवाले दो राजा हुए थे। इनका समय आधीरात व्यतीत होनेके पश्चात् का है, जब प्रकाश फटने लगता है, तब इनका उदय होता है। इस काल में जो अन्धकार का भाग है, वह मध्यम देवता है और जो ज्योति का भाग है, वह आदित्य का भाग है। इस तरह अन्धकार और प्रकाश इस समय इकट्ठे रहते हैं, ये ही अश्विनौ हैं।

ये दोनों देव एक ही काल में आते हैं, एक ही कर्म करते हैं। इनका वर्णन 'वसातिषु स्म०' आदि मन्त्र में किया है। इनमें से एक रात्री का और दूसरा उषा का पुत्र कहलाता है। अथवा इनमें से एक बडे बल का प्रेरक है और दूसरा द्युलोक का पुत्र आदित्य है। ये प्रातःकाल में आनेवाले हैं, ऐसा [प्रातर्युजा०] मन्त्र में कहा है।

[सृण्येव०] जिस प्रकार दात्री पोषण करनेवाली और नाश करनेवाली अर्थात् दोनों प्रकार की होती है, वैसे ही अश्विनौ में से एक देव पोषक है और दूसरा नाशक है।

इस तरह निरुक्त का अश्विनौ देवताओंके विषय में स्पष्टीकरण है। ब्राह्मणग्रन्थों के कथनों के अनुसार ही निरुक्तकारने अपना मत दिया है [१] द्यावा-पृथिवी, [२] सूर्य-चन्द्र, [३] अहो-रात्र, [४] पुण्यकर्म करनेवाले दो राजा, [५] अंधेरा-प्रकाश, तथा [६] पोषक-संहारक इतने स्वरूप बताने के कारण अश्विनौ के विषय में किसी तरह का निश्चय नहीं होता। इसलिये वेदके मंत्रों में अश्विनौ देवता के स्वरूप के विषय में अधिक खोज करना चाहिये। देखिये मंत्रों में क्या वर्णन आया है—

अश्विनौ देवता और 'तीन' संख्या

अश्विनौ देवता के वर्णन में 'तीन' [३] इस संख्या का महत्त्व विशेष दीखता है देखिये—

त्रिश्चिन्नौ अद्या भवतं नवेदसा। [१२; ऋ. १।३४।१]

आज तीन वार तुम हमारे बनो।

त्रयः पवयो मधुवाहने रथे०। त्रयः स्कंभासः०।
त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा ॥ [१३; ऋ. १।३४।२]

हे अश्विदेवो! तुम्हारे रथ के तीन चक्र हैं, तीन खंभे लगाये हैं। तुम दिन में तथा रात्रीमें तीन तीन वार जाते हो।

समाने अहन् त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम्। त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यं उषसश्च पिन्वतम्। [१४; ऋ. १।३४।३]

आज एक ही दिन में तीन वार आओ और आज भी तीन वार आकर मधुसिंचन करो। आप दिनमें तथा रात्रीमें तीन तीन वार आकर पुष्टिकारक अन्न प्रदान करो।

त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम्। त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम् ॥ [१५; ऋ. १।३४।४]

तुम हमारे पास तीन वार आओ, अपने भक्त के पास तीन वार जाओ, सुरक्षाके लिये तीन वार जाओ, तीन वार शिक्षा दो। हमारे पास तीन वार आनन्द लाओ तथा तीन वार अन्न प्रदान करो।

त्रिर्नो रयिं वहतं अश्विना युवं त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं धियः। त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस्त्रिष्ठं वां सूरे दुहिता रुहद्रथम्। [१६; ऋ. १।३४।५]

'हमारे पास तीन वार संपति ले आओ, इस देवकर्म में तीन वार हमारी रक्षा करो, तीन वार हमें सौभाग्य देओ, तीन वार अन्न दो, तुम्हारे तीन स्थानवाले रथ पर सूर्यकी पुत्री आरूढ हुई है।

त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती। [१७; ऋ. १।३४।६]

हमें तीन वार दिव्य, पार्थिव और जलोद्भव औषधियां देते रहो; तथा तीनगुणा सुख हमें देते रहो।

त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवीम शायतम्। त्रिरो नासत्या रथ्या परावत०।
[१८; ऋ. १।३४।७]

तीन वार प्रति दिन यज्ञ करते हैं। पृथ्वीके चारों ओर तुम तीन वार घूमते हो। रथसे तीन वार तुम दूर जाते हो।

क त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क त्रयो बन्धुरो ये सनीळाः।
[ऋ. १।३४।९]

तुम्हारा त्रिकोणवाला रथ तीन चक्रोंवाला और तीन बैठनेके स्थानों से युक्त है।

आ नो नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमाश्विना। प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा। [२२; ऋ. १।३४।११]

हे अश्विदेवो! ३३ देवों को साथ लेकर मधुर रस का पान करने के लिये यहां आओ। हमारी आयु बढाओ, रोग दूर करो, शत्रु का नाश करो और हमारे सहायक बनो।

त्रिबन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेनायातमश्विना।
[४०; ऋ. १।४७।२]

तीन बैठकोंवाले त्रिकोणी सुंदर रथसे हे अश्विदेवो! आओ।

अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो० त्रिबन्धुरो०।
[१६५; ऋ. १।१५७।३]

तं युञ्जाथो० त्रिबन्धुरो० यस्त्रिचक्रः।
[२०२; ऋ. १।१८३।१]

अश्विदेवों का रथ त्रिकोणी है, तीन चक्रों से युक्त है, बैठने के तीन स्थान इस में हैं।

इस तरह अश्विदेवों के वर्णन में 'तीन' संख्याका बडा महत्त्व है।

अश्विदेव वैद्य हैं

युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिः। [१६८; ऋ. १।१५७।६]

'आप के पास औषधियां हैं, इसलिये आप वैद्य हैं।' इससे स्पष्ट हो जाता है कि, अश्विदेव बडे वैद्य हैं, उनके पास बहुत औषध हैं और वे रोगियों की चिकित्सा करते हैं। इनके वैद्य होनेके विषय में हम कुछ और मन्त्र यहां रखते हैं, पाठक इनका विशेष विचार करें।

अश्विनौ देवताओं का चिकित्सक होना सर्वत्र प्रसिद्ध है। इस विषय में निम्नलिखित मन्त्र देखनेयोग्य है—

वृद्ध को तरुण बनाया

अश्विदेवों ने अति जीर्ण च्यवनऋषि को तरुण बनाया था, यह कायाकल्प का प्रयोग अश्विदेवों ने किया था, यह बात जैसी पुराणों में वैसी वेदमंत्रों में भी दीखती है—

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात्। प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित् पतिमकृणुतं कनीनाम्।
[८६; ऋ. १।११६।१०]

हे अश्विदेवो! तुमने च्यवननामक एक वृद्ध के शरीर से कवच जैसी खाल उतार कर [बुढापा दूर किया और] उस की आयु बढायी और तरुण कन्याओंका पति बनाया।

यहां कायाकल्प के प्रयोग का कुछ वर्णन है। [च्यवनात् जुजुरुषः वव्रिं द्रापिं इव प्रामुञ्चतं] वृद्ध च्यवन ऋषि के शरीर से कवच के समान संपूर्ण बुढापा दूर किया। शरीर से जैसा कोट या कुडता निकाल देते हैं, उस प्रकार शरीर से खाल निकाल कर उसको तरुण बनाया। यहां [द्रापिं प्रामुञ्चतं] चोगा उतारने का स्पष्ट उल्लेख है। सांप-नाग- भी अपने शरीर से चोगा उतारता है और फिर तरुण बनता है। सब शरीर से चर्म ऊपर की पतली त्वचा सांप के समान निकालने से शरीर पुनः तरुण हो जाता है ऐसा यहां प्रतीत होता है। आर्यवैद्यक ग्रंथोंमें जो कायाकल्प वर्णन किये हैं, उनमें भी कुटिरप्रवेशविधिसे कायाकल्पों का सेवन करनेसे शरीर की चमडी उतर जाती है और नवीन चमडी आती है, इस आशय के विधान हैं। इस विषय में सत्य क्या है, इसका विचार उत्तम वैद्यों को करना उचित है।

'च्यवनप्राश' अवलेह का वर्णन वैद्यक ग्रन्थोंमें है, जो च्यवन के पुनः तरुण बनने का स्मरण कराता है।

इस मन्त्र में वृद्ध को 'दीर्घायु' करने का भी उल्लेख है, तथा अनेक तरुणियों के साथ [कनीनां पतिं] विवाह च्यवनने किया, ऐसा भी कहा है। वृद्ध को तरुण बनाया, दीर्घायु बनाया और अनेक तरुणियों का पति भी बनाया गया था। यह अश्विदेवोंने अपने चिकित्सा के बलसे किया था। इस विषय में और मन्त्र देखिये—

युवं च्यवानं अश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः॥ [११४; ऋ. १।११७।१३]

पुनश्च्यवानं चक्रथुः युवानम् ॥ [ऋ. १।११८।६]
विभिश्च्यवानं अश्विना नियाथः ॥ [ऋ. ५।७५।५]
प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिं अत्कं न मुञ्चथः।
युवा यदी कृथः पुनरा कामं ऋण्वे वध्वः॥
[२७२; ऋ. ५।७४।५]
उत त्यद्वां जुरते अश्विना भूच्च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे।
अधि यद्वर्प इत ऊती धत्थः। [ऋ. ७।६८ ६]
युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं। [ऋ. ७।७१।५]
युवं च्यवानं सनयं यथा रथं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः।
[५८६; ऋ. १०।३९।४]

इन मन्त्रों का तात्पर्य यही है कि, अश्विदेव [च्यवानं नियाथः] च्यवन ऋषि के पास गये, उस वृद्ध ऋषि की चिकित्सा उन्होंने की, [वव्रिं अत्कं न मुञ्चथः] चोगे के समान सब खाल उतार दी, जिस से उस ऋषि का बुढापा दूर हुआ, [पुनः युवानं चक्रथुः] फिर से उसको जवान बनाया, वार्धक्य से उस की मुक्तता की, जैसा पुराना रथ [यथा रथं] कारीगर दुरुस्त करके नया बनाते हैं, वैसा ही च्यवन ऋषि को फिर से तरुण बनाया, यह च्यवन ऋषि अश्विदेवों को हवि अर्पण करता था। यह सब कार्य [शचीभिः] अपनी अद्भुत चिकित्सा की शक्तियों से अथवा औषधिविशेषों के प्रयोग से उन्हों ने किया था। जो च्यवन चलने-फिरने में भी असमर्थ था, वही [चरथाय] अच्छी तरह घूमने लगा और [वध्वः कामं] स्त्रीसम्बन्धका कामविकार उस में जाग्रत किया। अर्थात् यह ठीक तरह तरुण हुआ। इसी तरह वन्दनके विषयमें भी कहा है—

युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः। [ऋ. १।११९।७]
उद् वन्दनं ऐरयतं स्वर्दृशे। [ऋ. १।११२।५]
प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा। [ऋ. १।११९।६]

हे अश्विदेवो ! तुमने वन्दन को निकृष्ट वृद्धावस्था को पहुंचे वन्दन को, उत्तम दृष्टि देकर, रथ दुरुस्त करने के समान तरुण अथवा हृष्टपुष्ट बनाया और [दीर्घेण आयुषा प्र तारि] दीर्घायु बनाया।

रथ दुरुस्त करने के समान इसका शरीर तुमने नाना औषधों के प्रयोग से ठीक बनाया। प्रसूतिकर्म में अश्विदेवों की प्रवीणता थी, इस विषय में निम्नलिखित मन्त्र में उल्लेख है—

क्षेत्रादा विप्रं जनथः। [ऋ. १।११९।७]

क्षेत्र से [अर्थात् माता के गर्भाशय से] ब्राह्मणपुत्रको जन्म दिया। अर्थात् प्रसूतिकर्म की प्रवीणता से पुत्र को जन्म देकर माता की मुक्तता प्रसूति-वेदनाओं से की। इस मन्त्र में अश्विदेवों की प्रसूतिकर्म में प्रवीणता बतायी है।

घायल को दुरुस्त किया

त्रिधा ह श्यावं अश्विना विकस्तं उज्जीवसे ऐरयतं सुदानू ॥ [ऋ० १।११७।२४]

तीन स्थान पर कटे या जखमी हुए श्याव को पुनः जीवन देकर चलने-फिरने योग्य बना दिया।

तीन स्थान पर जिस के करीब-करीब टुकडे हो चुके थे, ऐसे जखमी के टूटे भागों को पुनः जोड दिया और उस को अच्छी तरह चलने-फिरने योग्य बना दिया।

च्यवनऋषि की कथा शतपथब्राह्मण में निम्नलिखित प्रकार आ गयी है और उसमें अश्विदेवों का यही सम्बन्ध वर्णन किया गया है, वह कथा देखिये—

च्यवनो वा भार्गवः, च्यवनो वाङ्गिरसः, तदेव जीर्णिः कृत्यारूपो जहे ॥ १ ॥ शर्यातो ह वा इदं मानवो ग्रामेण चचार। स तदेव प्रतिवेशो निविविशे तस्य कुमाराः क्रीडन्त इमं जीर्णिं कृत्यारूपमनर्थ्यं मन्यमाना लोष्ठैर्विपिपिषुः ॥ २ ॥ स शर्यातेभ्यश्चुक्रोध। तेभ्योऽसंज्ञां चचार, पितैव पुत्रेण युयुधे, भ्राता भ्रात्रा ॥ ३ ॥ शर्यातो ह वा ईक्षां चक्रे। यत्किमकरं तस्मादिदमापदीति स गोपालांश्चाविपालांश्च संह्वयित्वा उवाच ॥ ४ ॥ स होवाच। को वो अद्येह किंचिदद्राक्षीदिति, ते होचुः, पुरुष एवायं जीर्णिः कृत्यारूपः शेते, तमनर्थ्यं मन्यमानाः कुमारा लोष्ठैर्व्यपिक्षिपन्निति, स विदांचकार स वै च्यवन इति ॥ ५ ॥ स रथं युक्त्वा। सुकन्यां शार्यातीमुपाधाय प्रसिष्यन्द, स आजगाम, यत्रर्षिरास तत् ॥ ६ ॥ स होवाच। ऋषे नमस्ते यन्नावेदिषं तेनाहिंसिषमियं सुकन्या तया तेऽपह्नुवे संजानीतां मे ग्राम इति, तस्य ह तत एव ग्रामः संजज्ञे स ह तत एव शर्यातो मानव उद्युयुजे नेदपरं हिनसानीति ॥ ७ ॥ अश्विनौ ह वा इदं भिषज्यन्तौ चेरतुः। तौ सुकन्यामुपेयतुः, तस्यां मिथुनमीषाते, तन्न जज्ञौ ॥ ८ ॥ तौ होचतुः। सुकन्ये कमिमं जीर्णि

कृत्यारूपमुपशेष आवामनुप्रेहीति, सा होवाच, यस्मै मां पिताऽदात्रैवाहं तं जीवन्तं हास्यामीति, तद्धायमृषिराजज्ञौ ॥ ९ ॥ स होवाच । सुकन्ये किं त्वेतदवोचतामिति, तस्मा एतद्व्याचचक्षे, स ह व्याख्यात उवाच, यदि त्वैतत्पुनर्ब्रुवतः सा त्वं ब्रूतान्न वै सुसर्वाविव स्थो, न सुसमृद्धाविवाथ मे पतिं निन्दथ इति, तौ यदि त्वाब्रवतः, केनावामसर्वौ स्वः, केनासमृद्धाविति, सा त्वं ब्रूतात्पतिं नु मे पुनर्युवाणं कुरुतमथ वां वक्ष्यामीति, तां पुनरुपेयतुस्तां हैतदवोचतुः ॥ १० ॥ तौ होचतुः । एतं ह्रदमभ्यवहर, स येन वयसा कमिष्यते तेनोदैष्यतीति, तं ह्रदमभ्यवजहार, स येन वयसा चकमे तेनोदेयायेति ॥ १२ ॥　　[श. ब्रा. ४।१।५।१-१२]

च्यवननामक एक ऋषि था, जो भृगुकुलका समझा जाता है, अथवा आंगीरसकुलका भी माना जाता है। वह अति जीर्ण होकर, मरियलसा होकर एक स्थान पर पडा था। उस स्थान पर मनुवंश का शर्यात राजा आया। उस राजा के लडके वहां खेलने लगे। उन लडकों ने उस अति जीर्ण ऋषिके मुर्दे जैसे शरीर पर पत्थर मारे। इससे ऋषि को क्रोध आया, जिससे राजा के राज्य में सब प्रजाजनों की बुद्धि नष्ट हुई, वे आपस में लडने लगे। पिता पुत्रसे और भाई भाईसे लडने लगा। राजा शर्यात सोचने लगा कि, मैंने ऐसा क्या बुरा कर्म किया कि, जिसके कारण यह ऐसी आपत्ति आ गयी। उसने गवालियों को बुलाकर पूछा कि तुमने यहां कुछ देखा है? वे बोले कि, यह जो अति जीर्ण मुर्दासा पडा है, वह मरा है, ऐसा मान कर तुम्हारे कुमारोंने उस पर पत्थर मारे, वह च्यवन ऋषि है, ऐसा उस राजाने जान लिया। पश्चात् अपनी कन्या को रथ पर बिठलाकर वह उस ऋषिके पास पहुंचा और उससे बोला कि 'हे ऋषि! नमस्ते। मुझे तुम्हारा ज्ञान नहीं था, इसलिये तुमको बहुत कष्ट पहुंचे। क्षमा करो। यह मेरी पुत्री है, यह तुम्हारे लिये अर्पण करता हूं। इसको प्राप्त करके सन्तुष्ट होओ। मेरे राज्य में जो बलवा उठा है, वह शान्त होवे।' तब ऋषि सन्तुष्ट हुआ और राज का बलवा शान्त हुआ। यह देखकर शर्यात राजाने प्रतिज्ञा की कि, मैं अब इसके बाद किसी को कष्ट नहीं दूंगा। उस ऋषि के आश्रम के पास अश्विदेव किसी की चिकित्सा करने के लिये आये थे, उन्होंने सुकन्याको देखा और उस तरुणी की इच्छा की। पर उस कन्याने उसके प्रस्ताव का स्वीकार नहीं किया। तब वे उससे पूछने लगे कि, 'हे सुकन्ये' तुम इस मुर्दा बने जीर्ण के पास क्यों रहती है? तू हमारा स्वीकार कर।' तब वह कन्या बोली कि- 'मेरे पिताने जिसको मेरा दान किया है, जब तक वह जीवित है, तब तक मैं उसे नहीं छोडूंगी।' सुकन्या का यह भाषण ऋषिने जान लिया, तब वह उस स्त्रीसे बोले कि, जिस समय ये अश्विनी कुमार फिर से तुम्हें ऐसा भाषण करने लगेंगे, तब तुम उनसे कहना कि- 'तुम मेरे पति की निंदा करते हो, परन्तु तुम तो अपूर्ण और सौभाग्यहीन से हो। यदि तुम मेरे पतिको पुनः तरुण बनाओगे, तब सुपूर्ण तथा भाग्यसंपन्न बनाने का उपाय बताऊंगी।' सुकन्याने ऐसा अश्विनीकुमारों से कहा, तब वे बोले कि यदि तुम्हारा पति इस तालाब में गोता लगावे, तब जिस आयुका स्मरण करके वह गोता लगावेगा, उसी आयु को ऊपर आनेके पूर्व प्राप्त करेगा।' वैसा किया गया और च्यवन ऋषि उस तालाबमें गोता लगाते ही तरुण बन गये। तब अश्विदेवोंने सौभाग्यसंपन्न बननेका मार्ग पूछा, तब उस ऋषिने यज्ञमें हविर्भाग प्राप्त करनेका उपाय बताया। अश्विनीकुमार मानवों में जाते हैं, हर किसी की चिकित्सा करते हैं, इसलिये हमारी पंक्ति में बैठ कर हविर्भाग सेवन नहीं कर सकेंगे, ऐसा इन्द्रने निषेध किया, पर ऋषि के सामर्थ्य से इस समय से अश्विनी देवों को यज्ञमें हविर्भाग मिलने लगा।'

संक्षेप से यह कथा शतपथ ब्राह्मण में है। यही कथा पुराणों में अधिक विस्तृत रूपवाली हो गयी है। इस कथा का संबंध वेद के पूर्वोक्त मंत्रों के साथ स्पष्ट है।

अन्धे को आंख दिये

अश्विनी देवोंने अन्धे को आंख और पंगु को चलने योग्य पांव दिये, यह चमत्कार निम्नलिखित मंत्र में है—

याभिः शचीभिः वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः ।　　[५९; ऋ. १।११२।८]

अनेक अपनी शक्तियों के द्वारा परावृजका अन्धत्व दूर करके उत्तम दृष्टिसे युक्त तथा उसका लंगडेपन हटा के उस

को उत्तम चलने फिरनेवाला बना दिया। ऐसा ही वर्णन इन्द्र के लिये भी आया है—

नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्त्सास्युक्थ्यः। [ऋ. २।१३।१२]

अन्धे और लूले परावृज को नीच अवस्था से उच्च बना कर (उत्तम दृष्टि से संपन्न और चलने फिरनेवाले बनाकर) कीर्तिमान और यशस्वी बना दिया।

जैसी परावृजको दृष्टि दी, वैसी ही ऋज्राश्वको भी अश्वि-देवोंने दृष्टि दी, देखिये—

शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानं ऋज्राश्वं तं पितान्धं चकार। तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्त दस्रा भिषजावनर्वन्। [९१; ऋ. १।११६।१६]

शतं मेषान् वृक्ये मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा। आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे॥ १७॥

शुनमन्धाय भरमह्वयत्सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति।

जारः कनीन इव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान्॥ [११८–११९; ऋ० १।११७।१७–१८]

श्रुतं गायत्रं तकवानस्य ... आक्षी शुभस्पती दन्। [ऋ० १।१२०।६]

ऋज्राश्वने एकसौ एक मेष मेडिये को खाने दिये, यह देख कर उसके पिताने उस ऋज्राश्व को अन्धा बना दिया। परन्तु अश्विदेवोंने इस ऋज्राश्वके आंख पुनः देखने योग्य बना दिये।

कवि को आंख दिये

उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे। [ऋ. १।११६।१४]

'दृष्टि की इच्छा से प्रार्थना करनेवाले कवि को उत्तम आंख दिये।' संभवतः यह दृष्टि कविकी क्रान्तदृष्टि होगी। बहुत करके इस स्थान पर की दृष्टि काव्य की दृष्टि है। तथापि पाठकों को ऐसे मंत्रों का विशेष विचार करना चाहिए।

मद्य के १०० घडे

शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः। [ऋ. १।११६।७]

शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम्। [ऋ. १।११७।६]

"सुरा के अथवा मधू के १०० घट तुमने भर दिये।" यहां सुरा, आसव, मद्य, मधु, अरिष्ट आदि पद किस पदार्थ का बोध कराते हैं, इसका निर्णय वैद्यों को करना चाहिये। अश्विदेव वैद्य हैं, यह वेदमें सुप्रसिद्ध है। वैद्यों के पास आसव के १०० घट भर कर रहे, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। 'मधु' एक मीठा पेय है, यह मद्य नहीं है। 'सुरा' भाप से पुनः पानी बनाया जाता है, उसका नाम है (Distilled Water) शुंडायंत्रसे जो अर्क निकालते हैं, वह सुरा है। इसमें इस तरह जो मद्य बनता है, वह भी शामिल है, पर इसका केवल यही अर्थ है, यह बात नहीं है। वृष्टिउदक, भांपसे बना जल आदि भी इसके अर्थ हैं। अतः वैद्योंको इस सुरा तथा मधुके विषय में अधिक खोज करके निर्णय करना उचित है।

विश्पला को लोहेकी टांग लगाई

विश्पलानामक राजपुत्री की एक टांग युद्धमें कट गयी थी। वह काटकर उस स्थानपर अश्विदेवोंने लोहेकी टांग लगा दी और उस स्त्रीको चलने फिरने योग्य बना दिया, यह बात निम्नलिखित मन्त्रोंमें है—

चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम्। सद्यो जंघामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम्॥ [ऋ. १।११६।१५]

सं विश्पलां नासत्यारिणीतम्। [ऋ. १।११७।११]

याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम्। [ऋ. १।११२।१०]

प्रति जंघां विश्पलाया अधत्तम्। [ऋ. १।११८।८]

धियंजिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू। [११८२।१]

युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः। [१०।३९।८]

अथर्ववेदी कुल में उत्पन्न (खेलस्य) खेल राजा की पुत्री विश्पला (धने हिते) युद्ध में गयी थी। उसकी एक टांग टूट गयी। अश्विदेवोंने इस को लोहे की टांग (आयसीं जंघां) लगा दी। जिससे वह (सर्तवे) चलने फिरने योग्य बनी। इसकी यह जखम भी अश्वि-देवोंने ठीक बना दी, इसलिये अश्विदेवों को (विश्पला वसू) विश्पला को निवासयोग्य बनानेवाले इस अर्थ का नाम प्राप्त हुआ।

दधीची ऋषि को घोडे का सिर

दधीची ऋषि को घोडे का सिर लगाने के उल्लेख वेद-मंत्रों में अनेक वार आ गये हैं देखिये—

दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वां अश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदी-मुवाच। [ऋ. १।११६।१२]

आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम्। [ऋ. १।११७।२२]

अथर्वकुल में उत्पन्न दधीची ऋषि के लिये तुमने घोडे का सिर लगाया। इस अश्व के मुख से उस ऋषिने तुम दोनों को मधुविद्या सिखायी।

यहां अश्वका सिर ऋषि के मस्तक के स्थान पर लगा देने का उल्लेख है। मनुष्य के कण्ठ पर घोडे का सिर लग नहीं सकता, इसलिये यह उल्लेख विशेष अलंकार का सूचक है। अध्यात्मविद्या के सम्बन्ध में यह खोज करनेयोग्य वर्णन है। मधुविद्या दधीची ऋषि के पास थी, इन्द्रने यह विद्या दधीची को सिखायी थी। दधीची से यह विद्या अश्वि-देवोंको प्राप्त हुई। इस सम्बन्ध की कथा-पुराणों में लंबी-चौडी है। यह सब वैदिक और पौराणिक सारस्वत एक-त्रित करके सब की मिलकर खोज करने का विचार है। स्वतंत्र लेखरूप से यह लेख प्रकाशित किया जायगा।

रेभका वर्णन

रेभ के विषयमें अश्विदेवोंकी सहायता का वर्णन निम्न-लिखित मंत्रों में है—

याभी रेभं निवृतं सितं अद्भ्यः। [ऋ. १।११२।५]

विप्रुतं रेभं उदनि प्रवृक्तं उन्निन्यथुः। [ऋ. १।११६।२४]

अश्वं न गूळ्हं अश्विना दुरेवैः ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु। सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिः न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि॥ [ऋ. १।११७।४]

रेभ ऋषिको दुष्टोंने जखमी करके जल में डुबाया था। उसको आपने ऊपर निकाला और उसके अवयव फिर से ठीक कर दिये। यह अश्विदेवों का कर्म बडा प्रशंसनीय है और यह वैद्यकक्रिया के साथ संबंध रखता है। टूटे-फूटे अवयवों को पुनः ठीक करना यह कर्म वैद्यों का ही है।

वंध्या गौको दुधारू बनाया

अश्विदेवोंने वंध्या गौको दुधारू बनाया है, इसका वर्णन अब देखिये—

याभिर्धेनुं अस्वं पिन्वथो नरा। [ऋ. १।११२।३]

अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्तां अपिन्वतं शयवे अश्विना गाम्। [ऋ. १।११७।२०]

युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि। [ऋ. १।११९।६]

हे अश्विदेवो! तुमने शयुके लिये वंध्या, कृश गौ को उपजाऊ और बहुत दूध देनेवाली बना दिया। यहां गौको पुष्ट करना, दुधारू बनाना और गर्भधारण के योग्य बनाने-का उल्लेख है। औषधिप्रयोग से वंध्या को गर्भधारण योग्य बनाना यह बडी भारी सफलताका चिन्ह है। तथा—

अश्विदेवोंने गाय में दूध उत्पन्न किया, इस विषय में निम्नलिखित मन्त्र देखने योग्य है—

युवं पय उस्रियायां अधत्तं पक्वं आमायां अव पूर्व्यं गोः। [ऋ. १।१८०।३]

'आपने गौ में दूध धारण किया और अपक्व गौ में परि-पक्व दूध उत्पन्न किया।' अश्विदेवों के यत्न से गौ में उत्तम दूध बना है।

स्त्री का दान किया

अश्विदेवोंने कइयोंको स्त्री देकर शादी कराई है देखिये—

याभिः पत्नीः विमदाय न्यूहथुः। [ऋ. १।११२।१९]

यावभेगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन। [ऋ. १।११६।१]

युवं शचीभिः विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम्॥ [ऋ. १।११७।२०]

युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं। [ऋ. १।११७।८]

विमद की शादी करने के लिये अश्विदेवोंने एक स्त्री उसको अर्पण की तथा श्याव के लिये एक गौर वर्ण की सुन्दर स्त्री दी।

इस तरह अश्विदेव शादी करानेवाले दीखते हैं।

स्त्री को पति दिया

घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम्॥ [ऋ. १।११७।७

घोषा नामक एक स्त्री अपने पिताके घरमें रहकर बढती जाती थी। इसके लिये एक उत्तम पति अश्विदेवोंने दिया और घोषा के लिये सुख दिया।

इस तरह पति को स्त्री और स्त्रीके लिये पति अश्विदेवोंने दिया है।

अश्विदेवों का रथ

अश्विदेवों का रथ पक्षियों के समान आकाशमें उडता था, यह बात निम्नलिखित मन्त्रमें लिखी है—

वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि।
यद् वां रथो विभिष्पतात् ॥ [२६; ऋ. १।४६।३]

जब आप का रथ पक्षियों के समान आकाश में उडता है, तब आपके घोडे अन्तरिक्ष में गमन करते हैं। इनके आकाशगामी रथ को पक्षी जोते जाते थे। इस विषय में निम्नलिखित मन्त्र देखने योग्य है—

आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतंगाः। ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति ॥ [१३०; ऋ. १।११८।४]

आपके रथ को (आकाशयान को, विमान को) शीघ्रगामी पक्षी (आशवः पतंगाः युक्तासः) जोते गये हैं, वे श्येन पक्षी आप को इधर ले आवे। वे त्वराशील शीघ्रगामी हैं।

इस से अश्वियोंका रथ विमान जैसा आकाशगामी है यह बात सिद्ध होती है। इन का भूमिपर चलनेवाला भी रथ है। पर इन मंत्रों में उन के विमान का वर्णन है।

अश्विदेवों का रथ घोडे जोतने का नहीं था, इसलिये उसको ' अनश्व रथ ' कहा है, देखिये—

अनश्वं यामी रथमावतं जिषे। [९३; ऋ. १।११२।१२]
अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः ॥
[१।१५७; ऋ. १०।१०]

जिस को घोडे जोते नहीं जाते, ऐसा अश्विदेवोंका (अनश्वः रथः) अश्वरहित रथ है। इस से इस को पक्षी जोते जाते थे और वह आकाश में उडता था, यह बात स्पष्ट हो सकती है।

रथ को जोडे श्येन पक्षी

अश्विदेवों के रथों अर्थात् आकाशयानों को पक्षी जोते रहते थे, इस विषय में ये मन्त्र देखिये—

आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतंगाः। ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति। [१३०; ऋ. १।११८।४]

वेगवान् और उडनेवाले श्येन पक्षी तुम अश्विदेवों को वेग से यहां ले आवें। दिव्य गीधों के समान आकाश में उडनेवाले आप को हविष्यान्न के पास शीघ्र ले आवें।

यहां ' श्येनासः, पतंगाः, गृध्राः, ' ये पद निःसंदेह पक्षीवाचक हैं। तथा ' आशवः, अप्तुरः ' ये पद विशेष गति के वाचक हैं। ' दिव्यासः ' पद आकाशगमन का सूचक है। ' रथे युक्ताः ' पदोंसे ये पक्षी आकाशयान में जोडे जाते थे, यह स्पष्ट हो जाता है। अर्थात् अश्विदेवोंके विमानों, हवाई जहाजों को गृध्र, श्येन आदि वेगवान् पक्षी जोते जाते थे, यह बात इससे सिद्ध होती है।

इनके रथों को घोडे, गधे जोते जाते थे, इसका भी वर्णन अन्यत्र है।

उडनेवाली नौका = हवाई जहाज

युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवं आत्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम्। येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः ॥ [१९८; ऋ. १।१८२।५]

आपने तुग्रपुत्रके लिये अपने सामर्थ्य से पंखयुक्त नौका महासागर में बनायी, वह पक्षीके समान थी। इस नौका से उत्तम प्रकार उडनेवाले तुम दोनों सहज हीसे समुद्र से उडकर ऊपर चले गये।

यहां उडनेवाली नौका अश्विदेवोंने बनायी थी, यह स्पष्ट वर्णन है। यह जलमें तो चलती ही थी, पर आकाश में पक्षी के समान भी उडती थी। यही आकाशयान अथवा हवाई जहाज है। इन का रथ आकाश में घूमता है, इस विषय में देखिये—

उरु वां रथः परि नक्षति द्यां। [२४८; ऋ. ४।४३।५]

आप का रथ आकाश में संचार करता है। अर्थात् यह हवाई जहाज है, इस में सन्देह नहीं है।

भुज्यु की सहायता

तुग्र एक सम्राट् था, उस का पुत्र भुज्यु बडा व लिये
वह एक बार मरु देश के किसी शत्रु से लड रा गया
अपनी सेना के साथ समुद्र मार्ग से नौकाओं ज्यु ने आश्वि-
था। वहां उस का पराभव हुआ। वहां

देवोंको संदेश भेजा। अश्विदेव अपने विमानों से आकाश मार्ग से आये, भुज्युको तथा उस की सेना को अपने विमानों में उठाकर भुज्यु को घर पहुंचाया। इस तरह युद्धोंमें- दर्याई युद्धों में भी अश्विदेवोंने सहायता की है, इनके वर्णन देखिये-

वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना। तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥ [७८, ऋ १।११६।२]

(वीळु-पत्मभि) बडे वेग से उडनेवाले (आशु-हेमभिः) त्वरासे दौडनेवाले, (देवानां जूतिभिः) दैवी शक्तियों से प्रेरित होनेवाले यानों से युक्त (नासत्या) अश्विदेव बडे पराक्रम करनेवाले हैं। उनके वाहन से ही (आजा) इस युद्धमें (सहस्र) हजारों शत्रु सैनिक (यमस्य प्रधने) यमराज के युद्ध में, सर्वस्वनाशक युद्ध में मारे जाकर (जिगाय) विजय मिला है।

इस मंत्र में अश्विदेवों के वाहन बडे प्रबल वेग से आकाश में उडते थे, ऐसा लिखा है।

तुग्रो ह भुज्युं अश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः। तमूहथुः नौभिरात्मन्वतीभिः अन्तरिक्ष-प्रुद्भिरपोदकाभिः। [७९, ऋ १।११६।३]

तुग्र नामक सम्राट्ने अपने भुज्युनामक पुत्रको (उदमेघे) समुद्र में- अर्थात् समुद्र के परतीरनिवासी शत्रु पर हमला करने के लिये भेजा था। जैसा कोई (ममृवां) मरनेवाला (रयिं न) अपने धनकी आशा छोडता है, वैसे ही तुग्रने अपने पुत्र की आशा छोड कर उसे शत्रु पर भेजा था। पश्चात् भुज्यु का पराभव हुआ और वह समुद्र में डूब मरने लगा। उस राजकुमारको (आत्मन्वतीभि नौभि) सामर्थ्य वाली नौकाओंद्वारा (अन्तरिक्षप्रुद्भि) जो नौकाए आकाश में भी उडती थीं और (अप-उदकाभिः) जलमें से भी जाती थीं, अश्विदेवोंने उसके घर पहुँचाया।

जो जहाज आकाश में उडते हैं, जल में जाते हैं और समय पर भूमि परसे भी जा सकते हैं, ऐसे जहाज अश्विदेवों के थे।

तिस्रः क्षपः त्रिरहातिव्रजद्भि नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः। समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः। [८०; ऋ १।११६।४]

(तिस्रः क्षपः) तीन रात्री और (त्रिः अहा) तीन दिन तक (अतिव्रजद्भिः पतङ्गैः) अतिवेगसे दौडनेवाले पक्षि सदृश यानोंसे भुज्यु को- अर्थात् उसके साथियों के साथ (ऊहथुः) आकाशमार्गसे वहन किया। (आर्द्रस्य समुद्रस्य धन्वन् पारे) जलमय समुद्र के परे रतीले प्रदेश में रहनेवाले राजा पर आक्रमण करने के लिये भुज्यु गया था। वहां से उसको (त्रिभिः रथैः) तीन रथों से उसको घर पहुंचाया। जिन रथों को सैकडों चक्र लगे थे और छः घोडे अर्थात् वहन-साधन लगे थे।

तीन अहोरात्र चलनेवाले ये हवाई जहाज थे, ऐसा यहां कहा है। सैनिकों को लेकर ये वायुयान तीन दिन रात उडते हुए तुग्र के राज्य में पहुंचे।

अनारम्भणे तदवीरयेथां अनास्थाने अग्रभणे समुद्रे। यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥ [८१, ऋ १।११६।५]

जिस समुद्र के (अनारम्भणे) आदि अन्त का पता नहीं लगता, (अनास्थाने) जिस समुद्र के मध्यमें ठहरने के लिये कोई स्थान नहीं है और (अग्रभणे) जिस का ग्रहण भी नहीं हो सकता ऐसे अथांग महासागरमें भुज्यु डूब रहा था। वहां अश्विदेव पहुंचे और उन्होंने अपने (शतारित्रां नावं) सौ बल्लियोंवाली नौकापर उस को (आतस्थिवांस) बिठलाकर उस को (अस्तं ऊहथुः) अपने घर पहुंचा दिया।

यहां कहा है कि अथांग समुद्र में अश्विदेवों के जहाज जाते थे। वे आकाश में भी उडते थे और अनेक सैनिकों को बिठला सकते थे।

युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना। युवं भुज्युं अर्णसो निः समुद्रात् विभिरूहथुः ऋज्रेभिरश्वैः ॥ [११५, ऋ १।११७।१४]

हे अश्विदेवों! आप (तुग्राय) राजा तुग्र के लिये (पूर्व्येभिः एवैः) पूर्व समय में की सहायताओं से प्रिय हो चुके थे ही, पर आप (पुनः) फिर भी (मन्यौ अभवत) मान्य हो गये हैं, क्योंकि (भुज्युं) तुग्र के युवराज राजपुत्र भुज्युको (अर्णसः समुद्रात्) बडे महासागर में से (ऋज्रेभिः अश्वैः) बडे वेगवाले अपने (विभिः) पक्षि सदृश वाहनोंसे (ऊहथु) ऊपर उठाया और घरको पहुंचाया।

यहां बताया है कि, अश्विदेवों की पहले से ही मित्रता तुग्र के साथ थी। पर अब पुत्रको बचाने के कारण वह मित्रता सुदृढ हो गई है। पहले की अपेक्षा अब वह मित्रता अधिक बढ चुकी है।

युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता
पितृभ्य आ। यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यम्॥
[१४१; ऋ० १।११९।४]

आपने (भुरमाणं भुज्युं) जलों में डूब मरनेवाले भुज्यु नामक राजपुत्रको (विभिः गतं) उडनेवाले पक्षियों जैसे यानोंसे उठाकर (स्वयुक्तिभिः) अपनी खास युक्तियों से (पितृभ्यः आ निर्वहन्ता) पिताके पास लाया। आप (वृषणा) बलवान् हैं और (विजेन्यं यासिष्ट) अति दूर देशतक आप पहुंच थे और भुज्युको आपने वहांसे लाया था।

ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात्तुग्रस्य सूनुं ऊहथू रजोभिः।
अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिः अर्णसो निरुप-
स्थात्॥ [१४२; ऋ० ६।६२।६]

(तुग्रस्य सूनुं भुज्युं) राजा तुग्र के पुत्र भुज्यु को (निरुपस्थात् अर्णसः समुद्रात् अद्भ्यः) अर्थात महासागर के बडे जलोंसे (अरेणुभिः रजोभिः) जहां धूली नहीं है, ऐसे अन्तरिक्षसे- आकाशमार्गसे- (ऊहथुः) उठाकर (योजनेभिः) विविध प्रकारकी योजनाओंसे युक्त (विभिः) पक्षियों जैसे (पतत्रिभिः) पक्षिरूप यानों से तुमने उसके घर पहुंचाया।

युवं भुज्युं अवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्त्रिधानैः।
पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिर्दंसनाभिः अश्विना पारयन्ता॥
[१४३, ऋ० ७।६९।७]

आपने [समुद्रे अवविद्धं भुज्युं] समुद्र में जख्मी होकर पडे हुए भुज्यु को (अस्त्रिधानैः) जिन में कुछ भी न्यूनता नहीं है, सब सुखसाधनों से जो परिपूर्ण हैं, (अश्रमैः) जिनमें बैठनेवालोंको बिलकुल श्रम नहीं होते, (अव्यथिभिः) जिनमें किसी को व्यथा नहीं होती, ऐसे (पतत्रिभिः) पक्षि जैसे यानों से (अर्णसः उत् ऊहथुः) समुद्र से ऊपर उठा कर अनेकानेक युक्तियोंसे (पारयन्ता) समुद्र के पार करके घर पहुंचा दिया।

युवं भुज्युं समुद्र आ रजसः पार ईंखितम्।
यातमच्छा पतत्रिभिः नासत्या सातये कृतम्।
[१३१ ऋ० १०।१४३।५]

उत स्य भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे।
निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः। [१४४, ऋ० ७।६८।७]

आपने डूबनेवाले भुज्युको समुद्र से उठा कर (रजसः) अन्तरिक्ष के मार्ग से पार पहुंचा दिया। आप (पतत्रिभिः) पक्षी जैसे आकाश-यानों से वेगसे वहां पहुंचे थे।

आपने समुद्र के बीच में कठिन अवस्था में पडा था, उस भुज्यु को मित्रभावसे उठा कर सुरक्षित घर पहुंचाया।

इन मन्त्रों से पता लगता है कि अश्विदेवों के पास पक्षियों के सदृश आकाश में उडनेवाले आकाश-यान थे। ये तीन अहोरात्र अतिवेग से चलाये जाते थे और उन में सैनिकों को बिठलाना और इष्ट स्थान पर पहुंचाने का कार्य किया जाता था।

अश्विदेवों की यह विद्या मननपूर्वक आलोचना करने योग्य है।

इस तरह अश्विदेवों के कर्तृत्व का वर्णन वेद-मन्त्रों में है। अश्विदेवता के सब मन्त्रों का मननपूर्वक अध्ययन करने पर तथा इनका जो वर्णन पुराणों में है वह देखने के बाद, तथा दोनों की संगति लगाने के बाद अश्विदेवोंके संबंध में ठीक-ठीक पता लग सकता है।

ये देवता उषाके पूर्व आकाश में तारकारूप से उगते हैं, ऐसा भी वर्णन है। ये दो साथ-साथ रहते हैं। अस्तु। दैवत-संहितान्तर्गत अश्विनौ देवताका अध्ययन होनेके लिये यह मन्त्रसंग्रह सहायक होगा, ऐसी हमें आशा है।

वैदिक राज्यशासनमें आरोग्यमंत्रीके कार्य और व्यवहार

वेदमें देवताओंके राज्यका वर्णन है। सर्वोपरि ब्रह्म और प्रकृति है। ब्रह्म निष्क्रिय है और सब कुछ प्रकृति करती है। यह लोकशाही राज्यव्यवस्थाका आदर्श है। इसीको वैदिक भाषामें 'जानराज्य' कहते हैं। सब जनोंद्वारा जिसका राज्यशासन होता रहता है, वही जानराज्य है। इसमें 'ब्रह्म' सबके ऊपर है पर वह कुछ भी करता नहीं, 'प्रकृति' सब करती है। प्रकृतिका अर्थ 'प्रजाजन'

है। ब्रह्म सबसे श्रेष्ठ, सबका आधार, सबका आश्रयस्थान है, पर वह कुछ करता नहीं। आजके लोकराज्यके राष्ट्रपति जैसे रहते हैं, व सबके ऊपर हैं, पर उनको कुछ भी करनेका अधिकार नहीं, वैसा ही यहां 'ब्रह्म' है। प्रकृति अर्थात् प्रजा सब करती है, उसी तरह लोकराज्यमें प्रजानियुक्त मंत्री ही सब करते हैं। यह ब्रह्म और प्रकृतिके वर्णनसे बताया है। यह पूर्ण लोकराज्यका ही उत्तम स्वरूप है।

देवताएं विश्वराज्यके मंत्री

बृहस्पति ब्रह्मणस्पति, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि आदि देव, जो प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं वे इस जगत्‌का सब व्यवहार करते हैं। येही विश्वराज्यके विविध मंत्री हैं—

वेदमन्त्रोंमें प्रायः विश्वरूपी विश्वराज्यका तथा विश्व राज्यके संचालक शक्तियोंका वर्णन है। विश्वराज्यकी संचालक शक्तियां ही इन्द्र, वायु, सूर्य, अग्नि आदि हैं। ये शक्तियां जैसी विश्वमें हैं वैसी ही मनुष्यमें भी हैं। इस लिये कहा है कि—

ये पुरुषे ब्रह्म विदुः।
ते विदुः परमेष्ठिनम्॥ [अथर्व १०।७।१७]

'जो मनुष्य शरीरमें ब्रह्म जानते हैं वे परमेष्ठीको जानते हैं।' वेदका गूढ आशय जाननेकी यह चाबी है। विश्व इतना बडा है, उसका आकलन करना कठिन है। इसलिये पिण्ड शरीरमें वही व्यवस्था है, उसको जाननेसे विश्वव्यवस्थाका ज्ञान हो सकता है।

पिण्ड—ब्रह्माण्डकी व्यवस्था

ब्रह्माण्ड	पिण्ड	पिण्ड समूह (राष्ट्र)
विश्व	शरीर	समूह शरीर, समाज
ब्रह्म (परमात्मा)	आत्मा	संघात्मा
शिव	जीव	जीवसंघ
देवगण	इन्द्रियगण	शासकवर्ग

यहां विदित हो सकता है कि जो विश्वमें है वही जीवके शरीरमें है और जो जीवके शरीरमें है वही समष्टि शरीर अर्थात् व्यावहारिक अर्थमें राष्ट्रमें है। यह ठीक तरह सम झमें आगया, तो वेदका रहस्य समझमें आगया ऐसा समझना योग्य है।

ब्रह्म, परब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, ईश, ईश्वर आदि नाम एक विशाल विश्व व्यापक शक्तिके हैं। वैसा ही जीव आत्मा शरीरमें है। परमात्मा 'दावानल' है तो जीवात्मा 'चिनगारी' है। परमात्मा विश्वमें है तो जीवात्मा शरीरमें है। परमात्माको जानना कठिन है, पर जीवात्माको जानना उससे सुगम है, इसलिये कहा है कि—

दावानल और चिनगारी

'जो पुरुषमें- मनुष्य शरीरमें ब्रह्म देखते हैं, अर्थात् जीवात्माको जानते हैं वे परमात्मा, परब्रह्मको जानते हैं। जो चिनगारीको जानते हैं वे दावानलको जानते हैं।' विश्वको जाननेके लिये शरीरको जानना चाहिये। विश्वकी सब शक्तियां शरीरमें हैं। विश्वमें पूर्णरूपसे जो शक्तियां हैं वे ही शक्तियां अंशरूपसे शरीरमें हैं। इसलिये कहा है कि 'पिण्डका यथार्थ ज्ञान होनेसे ब्रह्माण्डका ज्ञान होता है।'

विश्वमें और व्यक्तिमें पञ्चभूत

यह तत्त्व समझनेके लिये संपूर्ण विश्व पञ्चभूतोंका बना है और यह मानव शरीर भी पञ्चभूतोंका ही बना है। इसलिये कहा है कि मानव शरीरमें पञ्चभूतोंको जाननेसे विश्वके पञ्चभूत जाने जा सकते हैं।

यही दूसरे शब्दोंमें ऐसा कहा जा सकता है कि यह विश्व ३३ देवताओंका बना है, वैसा ही यह शरीर भी ३३ देवताओंका बना है। जो विश्वमें है वही शरीर में भी है। विश्वमें जैसी ३३ देवताएं हैं वैसी शरीरमें भी ३३ देवताएं अंशरूपसे हैं। अतः शरीरमें ३३ देवताओंका ज्ञान हुआ तो विश्वके ३३ देवताओंका ज्ञान हो सकता है।

पुरुषमें ब्रह्म

ये पुरुषे ब्रह्म विदुः।
ते विदुः परमेष्ठिनम्॥ [अथर्व १०।७।१७]

'जो पुरुष में ब्रह्म जानते हैं वे परमेष्ठीको जानते हैं' इसका भाव यह है। इस तरह व्यक्ति और विश्वमें समानता है यही हमने देखा। एक व्यक्तिमें जो तत्त्व हैं वे ही व्यक्ति समूहमें होते हैं, इस कथनका विरोध कोई कर नहीं सकता। देखिये व्यक्तिके मस्तकमें ज्ञान, बाहुओंमें बल और शौर्य, मध्यमें वीर्य और पांवोंमें गति है। ये ही

गुण समाजमें भी होते हैं। समाजमें ज्ञानी, शूर, धनी और कर्मचारी रहते हैं। ये ही समाज शरीरके चार अवयव हैं जिनको ज्ञानी, शूर, व्यापारी और कर्मचारी कहते हैं। व्यक्तिमें जो गुण हैं वे ही समाजमें गुणी करके प्रसिद्ध होते हैं। इस रीतिसे व्यक्ति, समाज या राष्ट्र और विश्वका संबंध है यही जानना चाहिये। वेदका रहस्य अर्थ जाननेके लिये यह संबंध ठीक तरह जानना अत्यंत आवश्यक है, अन्यथा वेदका रहस्य अर्थ समझमें नहीं आ सकता। इसकी सारिणी यह है—

विश्व-राष्ट्र-व्यक्तिका सम्बन्ध

विश्वमें देवता	राष्ट्रमें शासक	व्यक्तिमें इन्द्रिय
विश्व	राष्ट्र	शरीर
ब्रह्म	राष्ट्रपति	जीव-आत्मा
प्रकृति	प्रजा	शरीर
इन्द्र	सेनापति	मन
मरुत्	सैनिक	इन्द्रियगण
वायु	रक्षक	प्राण
सूर्य	दर्शनकार	नेत्र
चन्द्र	मननशील	मन
अग्नि	वक्ता	वाणी

इस रीतिसे विश्वकी देवताएं व्यक्तिमें किस रूपमें हैं और राष्ट्रमें किस रूपमें रहती हैं यह जाना जा सकता है। इस तरह विश्वशक्ति, राष्ट्रशक्ति और व्यक्तिशक्ति परस्पर सम्बन्धमें किस रीतिसे रहती है, यह जाननेसे सब वेदमंत्रोंका रहस्य स्पष्ट हो जाता है। पर इसका निश्चय तबतक नहीं होता, जबतक वेदमन्त्र समझमें आना अशक्य है। इसलिये यह परस्पर सम्बन्ध जानना अत्यंत आवश्यक है।

शरीरमें इन्द्र शक्ति

शरीरमें इन्द्रशक्ति उत्पन्न होती है इस विषयमें उपनिषद्का यह प्रमाण है—

अन्तरेण तालुके। य एष स्तन इव अवलंबते।
सा इन्द्र योनिः। [तै उ १।६।२]

' तालुपर जो स्तन जैसा लटकता है, यह इन्द्र शक्ति उत्पन्न करनेका स्थान है।'

शरीरमें इन्द्र शक्ति तालूके ऊपर रही इन्द्र ग्रंथीसे उत्पन्न होती है। इसी तरह शरीरमें ३३ देवताओंके स्थान हैं वहांसे ३३ शक्तियां मनुष्यको प्राप्त होती हैं और उनसे यह शरीर कार्यक्षम रहता है। इन केन्द्रोंपर मनका संयम करनेसे वे शक्तियां प्राप्त होती हैं। शरीरमें जो प्रकृति है उसमें ये शक्तियां हैं। इनसे शरीर व्यापार ठीक चलता है।

राष्ट्रमें जो प्रजारूप प्रकृति है उसमेंसे इसी तरह शासक वर्ग उत्पन्न होता है। ये शक्तिकेन्द्र प्रजाकी शक्ति लेकर ऊपर आते हैं और राष्ट्रका शासन करते हैं।

इस तरह विश्वमें, राष्ट्रमें और व्यक्तिमें समान रूपमें कार्य हो रहा है। प्रायः वेदमंत्रोंमें विश्वशक्तियोंका वर्णन है, इसको देखकर व्यक्तिके शरीरके नियम तथा राष्ट्रसंचालनके बोध प्राप्त करने चाहिये। वैदिक ऋषि इस दृष्टिसे विश्वकी ओर राष्ट्रकी ओर और व्यक्तिकी ओर देखते थे। उसी दृष्टिसे हमने वेदमन्त्रोंको देखना चाहिये।

अश्विनौ देवताका विचार

इन्द्र, मरुत्, सूर्य, वायु, चन्द्र, अग्नि आदि ३३ मुख्य देव हैं। उनमें ' अश्विनौ ' भी एक देवता है। यह दो हैं और दोनों मिलकर साथ-साथ रहते हैं और दोनों मिलकर कार्य करते हैं। रोग दूर करना, आरोग्य बढाना, दीर्घायु देना आदि कार्य इनके हैं।

(१) देवानां भिषजौ। [वा य २१।५३]
(२) दैव्यौ भिषजौ। [ऋ ८।१८।८]
(३) भिषजौ। [ऋ १।११६।१६]

ये इनके नाम हैं, ये नाम इनके वैद्य होनेकी सूचना देते हैं। यदि ये वैद्य हैं तो इनको विश्वराज्यमें वैद्यकीय कार्य मिलना चाहिये। इसीलिये हमने इनको ' आरोग्यमन्त्री ' कहा है। इनका मन्त्रीमंडल इस प्रकार है—

परब्रह्म	राष्ट्रपति
प्रकृति	प्रजासमिति, राष्ट्रसभा
इन्द्र, मरुत्	युद्ध मन्त्री और उनके सैनिक
ब्रह्मणस्पति	शिक्षा मन्त्री
बृहस्पति	,, , (सहायक)
अश्विनौ	आरोग्यमन्त्री (शस्त्रकर्म और चिकित्सा करनेवाले)

अग्नि	प्रचार मन्त्री
वायु	वाहन मन्त्री,
यम	धर्म मन्त्री
पूषा	पोषण मन्त्री अन्न मन्त्री
अर्यमा	न्याय मन्त्री

इस तरह यह मन्त्रीमण्डल ३३ देवोंका है। इनमें ३ मुख्य हैं और ३० गौण हैं। इनमें भी १०।१० के तीन गण हैं।

वेदमन्त्रोंमें देवोंके वर्णन हैं। देवोंने क्या किया था, या देव क्या करते थे यह वर्णन है। यह किस लिये है यह प्रश्न महत्त्वका है। शतपथ ब्राह्मणमें कहा है कि "यत् देवा अकुर्वन्, तत् करवाणि' जो देव करते रहे वह मैं करूंगा। देव जगत्का हित करते रहते हैं। 'देवो, दानाद्वा द्योतनाद्वा' देव दान देता है और प्रकाश देता है। जो दान देता है, जो प्रकाश देता है वे ही देव हैं। जो दान देकर आवश्यकता दूर करता है, जो प्रकाश देकर मार्ग दर्शन करता है वह देव है। दूसरोंको ऐसी सहायता देव करते हैं। मनुष्य भी ऐसी सहायता देनेका, प्रकाश बताने का कार्य करें।

यहां अश्विनौ देव नीरोगिता उत्पन्न करते हैं, रोगियोंके रोग दूर करते हैं, आरोग्यका रक्षण करते हैं, आरोग्यके संरक्षणका मार्ग बताते हैं। हम वैसा करते रहें यह मनुष्यों के लिये मार्गदर्शन यहां मिलता है।

\+ \+ \+

इस दैवत-संहिता के द्वितीय विभाग में आये सब देवताओं की उपमासूची, विशेषणसूची आदि अनेक उपयुक्त सूचियां श्री प. अन. त. दिनकर रास्ते, वाई (जि. सातारा) निवासीने बडी मेहेनत से तथा विशेष प्रयत्नपूर्वक बनायी हैं, इसलिये स्वाध्याय-मण्डल उन के विषय में अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता है।

\+ \+ \+

इस दैवत-संहिता के मुद्रण और प्रकाशन के व्यय के लिये मुंबई विश्वविद्यालय (University of Bombay) में जो सहायता दी और जो उक्त विश्व विद्यालय से सम्पादक को मिली है, उस के लिये सम्पादक उक्त विश्वविद्यालयका बडा ऋणी है।

निवेदनकर्ता

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल



दैवत-संहिता ।

(ऋग्यजुः सामाथर्वणां संहितानां सर्वान् मन्त्रान् दैवतानुसारेण संगृह्य निर्मिता ।)

५ अश्विनौ-देवता ।

॥ १ ॥ (ऋ १।३।१-३)

(१-३) मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । गायत्री ।

अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती । पुरुभुजा चनस्यतम् १

अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया । धिष्ण्या वनतं गिरः २

दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः । आ यातं रुद्रवर्तनी ३

॥ २ ॥ (ऋ १।१५।११)

(४-८) मेधातिथिः काण्वः । (ऋतुसहितौ) । गायत्री ।

अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता । ऋतुना यज्ञवाहसा ११

॥ ३ ॥ (१।२२।१-४)

प्रातर्युजा वि बोधया ऽश्विनावेह गच्छताम् । अस्य सोमस्य पीतये १ ५

या सुरथा रथीतमो भा देवा दिविस्पृशा । अश्विना ता हवामहे २

या वां कशा मधुमत्य श्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् ३

नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः । अश्विना सोमिनो गृहम् ४ ८

॥ ४ ॥ (ऋ १।३०।१७-१९)

(९-११) शुनःशेप आजीगर्तिः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः ।

आश्विनावश्वावत्ये षा यातं शवीरया । गोमद् दस्रा हिरण्यवत् १७

समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः । समुद्रे अश्विनेयते १८

न्य१घ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः । परि द्यामन्यदीयते १९ ११

॥ ५ ॥ (ऋ १।३४।१-१२)

(११-२३) हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । जगती ९, ११ त्रिष्टुप् ।

त्रिश्चिन् नो अद्या भवत नवेदसा विभुर्वां याम उत रातिरश्विना ।
युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससो ऽभ्यायंसेन्या भवत मनीषिभिः १
त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद् विदुः ।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा २
समाने अहन् त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम् ।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युव दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम् ३
त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम् ।
त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युव त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम् ४ १५
त्रिर्नो रयिं वहतमश्विना युव त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं धियः ।
त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि न स्त्रिष्ठं वां सूरे दुहिता रुहद् रथम् ५
त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः ।
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहत शुभस्पती ६
त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम् ।
तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम् ७
त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभि स्त्रय आहावास्त्रेधा हविष्कृतम् ।
तिस्रः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम् ८
क्व१ त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क्व१ त्रयो वन्धुरो ये सनीळाः ।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः ९ २०
आ नासत्या गच्छत हूयते हवि र्मध्वः पिबत मधुपेभिरासभिः ।
युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथ मृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति १०
आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ११
आ नो अश्विना त्रिवृता रथेना ऽर्वाञ्चं रयिं वहत सुवीरम् ।
शृण्वन्ता वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवत वाजसातौ १२ २३

॥ ६ ॥ (ऋ १।४६।१-१५)

(२४-३८) प्रस्कण्वः काण्व । गायत्री ।

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् १
या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा २ २५
वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि । यद् वां रथो विभिष्पतात् ३
हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा । पिता कुटस्य चर्षणिः ४
आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा । पातं सोमस्य धृष्णुया ५
या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः । तामस्मे रासाथामिषम् ६
आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे । युञ्जाथामश्विना रथम् ७ ३०
अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः । धिया युयुज्र इन्दवः ८
दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे । स्वं वव्रिं कुह धित्सथः ९
अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः । व्यख्यज्जिह्वयासितः १०
अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया । अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ११
तत्तदिदश्विनोरवो जरिता प्रति भूषति । मदे सोमस्य पिप्रतोः १२ ३५
वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा । मनुष्वच्छंभू आ गतम् १३
युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत् । ऋता वनथो अक्तुभिः १४
उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् । अविद्रियाभिरूतिभिः १५

॥ ७ ॥ (ऋ १।४७।१-१०)

प्रगाथः = (विषमा) बृहती, (समा) सतो बृहती ।

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधा ।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे १
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना ।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम् २ ४०
अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम् ३
त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम् । ४१
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना

याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।
ताभिः ष्व१स्माँ अवत शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ५
सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ६
यन्नासत्या परावति यद् वा स्थो अधि तुर्वशे ।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ७ ४५
अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ।
इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा ८
तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा ।
येन शश्वदूहथुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतये ९
उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू अर्कैश्च नि ह्वयामहे ।
शश्वत् कण्वानां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरश्विना १० ४८

॥ ८ ॥ (ऋ १।९२।१६-१८)

(४९-५१) गोतमो राहूगणः । उष्णिक् ।

अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद् दस्रा हिरण्यवत् । अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् १६
यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः । आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् १७
एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी । उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये १८ ५१

॥ ९ ॥ (ऋ १।११२।१-२५)

(५२-७६) कुत्स आङ्गिरस । १ (आद्यपादस्य) द्यावापृथिव्यौ, १ (द्वितीयपादस्य) अग्निः, १ (उत्तरार्धस्य) अश्विनौ; २-२५ अश्विनौ । जगती, २४-२५ त्रिष्टुप ।

ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये ।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १
युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे ।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् २
युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना ।
याभिर्धेनुमस्वं१ पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ३
याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति ।
याभिस्त्रिमन्तुरभवद् विचक्षणस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ४

याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद् वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे ।
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ५
याभिरन्तकं जसमानमारणे भुज्युं याभिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः ।
याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथ-स्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ६
याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदं तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये ।
याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ७
याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः ।
याभिर्वर्तिकां ग्रसिताममुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ८
याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम् ।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ९ ६०
याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम् ।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १०
याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् ।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ११
याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथु-रनश्वं याभी रथमावतं जिषे ।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १२
याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम् ।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १३
याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम् ।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १४ ६५
याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः ।
याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १५
याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये याभिः पुरा मनवे गातुमीषथुः ।
याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १६
याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मना-ग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना ।
याभिः शर्यातमवथो महाधने ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १७
याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथो-ऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः ।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १८ ६९

याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथु–रा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम् ।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १९ ७०
याभिः शन्ताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम् ।
ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् २०
याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम् ।
मधु प्रियं भरथो यत् सरड्भ्य–स्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् २१
याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः ।
याभी रथाँ अवथो याभिरर्वत–स्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् २२
याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम् ।
याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् २३
अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् ।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ २४
द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मा–नरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता–मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः २५ ७६

॥ १० ॥ (ऋ० १।११६।१-२५)

(७७-१५९) कक्षीवान् दैर्घतमस औशिज । त्रिष्टुप् ।

नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः ।
यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन १
वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।
तद् रासभो नासत्या सहस्र–माजा यमस्य प्रधने जिगाय २
तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः ।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभि–रन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ३
तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भि–र्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः ।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः ४ ८०
अनारम्भणे तदवीरयेथा–मनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ५
यमश्विना ददथुः श्वेतमश्व–मघाश्वाय शश्वदित् स्वस्ति ।
तद् वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत् पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः ६ ८२

युव नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदत पुरंधिम् ।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शत कुम्भाँ असिञ्चत सुरायाः ॥ ७
हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तम् ।
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीत—मुन्निन्यथुः सर्वगण स्वस्ति ॥ ८
परावत नासत्यानुदेथा—मुच्चाबुध्न चक्रथुर्जिह्मबारम् ।
क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥ ९ ८१
जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चत द्रापिमिव च्यवानात् ।
प्रातिरत जहितस्यायुर्दस्रा—दित् पतिमकृणुत कनीनाम् ॥ १०
तद् वां नरा शस्य राध्य चा—भिष्टिमन्नासत्या वरूथम् ।
यद् विद्वांसा निधिमिवापगूळ्ह—मुद् दर्शतादूपथुर्वन्दनाय ॥ ११
तद् वाँ नरा सनये दस उग्र—माविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम् ।
दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वा—मश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ॥ १२
अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन् पुरुभुजा पुरंधिः ।
श्रुत तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥ १३
आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युव नरा नासत्यामुमुक्तम् ।
उतो कविं पुरुभुजा युव ह कृपमाणमकृणुत विचक्षे ॥ १४ १०
चरित्र हि वेरिवाच्छेदि पर्ण—माजा खेलस्य परितक्म्यायाम् ।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥ १५
शत मेषान् वृक्ये चक्षदान—मृज्राश्व त पितान्ध चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्त दस्रा भिषजावनर्वन् ॥ १६
आ वा रथ दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती ।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ॥ १७
यदयात दिवोदासाय वर्ति—र्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ॥ १८
रयि सुक्षत्र स्वपत्यमायुः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता ।
आ जह्नावीं समनसोप वाजै—स्त्रिरह्नो भाग दधतीमयातम् ॥ १९
परिविष्ट जाहुष विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः ।
विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वताँ अजरयू अयातम् ॥ २० ११

एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा ।
निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः २१
शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः ।
शयवे चिन्नासत्या शचीभि—र्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् २२
अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः ।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय २३
दश रात्रीरशिवेना नव द्यू—नवनद्धं श्नथितमप्स्वन्तः ।
विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्त—मुन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण २४ १००
प्र वां दंसांस्यश्विनाववोच—मस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः ।
उत पश्यन्नश्नुवन् दीर्घमायु—रस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् २५

॥ ११ ॥ (ऋ १।११७।१-२५)

मध्वः सोमस्याश्विना मदाय प्रत्नो होता विवासते वाम् ।
बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गी—रिषा यातं नासत्योप वाजैः १
यो वामश्विना मनसो जवीयान् रथः स्वश्वो विश आजिगाति ।
येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम् २
ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्य—मृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन ।
मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता ३
अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवै—रृषिं नरा वृषणा रेभमप्सु ।
सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभि—र्न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि ४ १०५
सुषुप्वांसं न निरृतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम् ।
शुभे रुक्मं न दर्शतं निखात—मुदूपथुरश्विना वन्दनाय ५
तद् वां नरा शंस्यं पज्रियेण कक्षीवता नासत्या परिज्मन् ।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम् ६
युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।
घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ७
युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।
प्रवाच्यं तद् वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ८ १०६

पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
सहस्रसां वाजिनमप्रतीत—महिहनं श्रवस्यं तरुत्रम् ९ ११०
एतानि वां श्रवस्या सुदानू ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः ।
यद् वां पज्रासो अश्विना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च वाजम् १०
सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विश्पलां नासत्यारिणीतम् ११
कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा ।
हिरण्यस्येव कलशं निखात—मुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् १२
युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः ।
युवो रथं दुहिता सूर्यस्य सह श्रिया नासत्यावृणीत १३
युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना ।
युवं भुज्युमर्णसो निः समुद्राद् विभिरूहथुर्ऋज्रेभिरश्वैः १४ ११५
अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां प्रोळ्हः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान् ।
निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन मनोजवसा वृषणा स्वस्ति १५
अजोहवीदश्विना वर्तिका वा—मास्नो यत् सीममुञ्चतं वृकस्य ।
वि जयुषा ययथुः सान्वद्रे—र्जातं विष्वाचो अहतं विषेण १६
शतं मेषान् वृक्ये मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा ।
आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे १७
शुनमन्धाय भरमह्वयत् सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति ।
जारः कनीन इव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान् १८
मही वामूतिरश्विना मयोभू—रुत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः ।
अथा युवामिदह्वयत् पुरंधि—रागच्छतं सीं वृषणाववोभिः १९ १२०
अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्ता—मपिन्वतं शयवे अश्विना गाम् ।
युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम् २०
यवं वृकेणाश्विना वपन्ते—षं दुहन्ता मनुषाय दस्रा ।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तो—रु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय २१
आथर्वणायाश्विना दधीचे ऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।
स वां मधु प्र वोचदृतायन् त्वाष्ट्रं यद् दस्रावपिकक्ष्यं वाम् २२ १२३

सदा कवी सुमतिमा चके वां विश्वा धियो अश्विना प्रावतं मे ।
अस्मे रयिं नासत्या बृहन्तमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम् २३
हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा वध्रिमत्या अदत्तम् ।
त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तमुज्जीवस ऐरयतं सुदानू २४ १०५
एतानि वामश्विना वीर्याणि प्र पूर्व्याण्यायवोऽवोचन् ।
ब्रह्म कृण्वन्तो वृषणा युवभ्यां सुवीरासो विदथमा वदेम २६

॥ ११ ॥ (ऋ १।११८।१-११)

आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहाः १
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे २
प्रवद्यामना सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ३
आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतङ्गाः ।
ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति ४ १३०
आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य ।
परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा वयो वहन्त्वरुषा अभीके ५
उद् वन्दनमैरतं दंसनाभिरुद्रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः ।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात् पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ६
युवमत्रयेऽवनीताय तप्तमूर्जमोमानमश्विनावधत्तम् ।
युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ७
युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्व्याय ।
अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम् ८
युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम् ।
जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् ९
ता वां नरा स्ववसे सुजाता हवामहे अश्विना नाधमानाः ।
आ न उप वसुमता रथेन गिरो जुषाणा सुविताय यातम् १० १३६

आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे यातं नासत्या सजोषाः ।
हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ ११

॥ १३ ॥ (ऋ १।११९।१-१०) जगती ।

आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे ।
सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः १
ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः ।
स्वदामि घर्मं प्रति यन्त्यूतय आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत् २
सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत शुभे मखा अमिता जायवो रणे ।
युवोरह प्रवणे चेकिते रथो यदश्विना वहथः सूरिमा वरम् ३ १४०
युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ ।
यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यं दिवोदासाय महि चेति वामवः ४
युवोरश्विना वपुषे युवायुजं रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम् ।
आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी योषावृणीत जेन्या युवां पती ५
युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन घर्मं परितप्तमत्रये ।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ६
युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः ।
क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्र विधते दंसना भुवत् ७
अगच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम् ।
स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह चित्रा अभीके अभवन्नभिष्टयः ८ १४५
उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिजो हुवन्यति ।
युवं दधीचो मन आ विवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं वदत् ९
युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः ।
शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् १०

॥ १४ ॥ (ऋ १।१२०।१-१२)

(१२ दुःस्वप्ननाशनम्) । १ गायत्री, २ ककुप् ३ का-विराट्,
४ नष्टरूपी, ५ तनुशिरा, ६ उष्णिक्, ७ विष्टार-बृहती,
८ कृतिः, ९ विराट्, १०-१२ गायत्री ।

का राधद्धोत्राश्विना वां को वां जोष उभयोः । कथा विधात्यप्रचेताः १
विद्वांसाविद्दुरः पृच्छेदविद्वानित्थापरो अचेताः । नू चिन्नु मर्ते अक्रौ २ १४९

ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतमद्य । प्रार्चद् दयमानो युवाकुः ३ १५०
वि पृच्छामि पाक्या३ न देवान् वषट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा । पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः ४
प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो वाम् । प्रैषयुर्न विद्वान् ५
श्रुतं गायत्रं तकवानस्या--हं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम् । आक्षी शुभस्पती दन् ६
युवं ह्यास्तं महो रन् युवं वा यन्निरततंसतम् । ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं नो वृकादघायोः ७
मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः । स्तनाभुजो अशिश्वीः ८ १५१
दुहीयन् मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै । इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ९
अश्विनोरसनं रथ--मनश्वं वाजिनीवतोः । तेनाहं भूरि चाकन १०
अयं समह मा तनू--ह्याते जनाँ अनु । सोमपेयं सुखो रथः ११
अध स्वप्नस्य निर्विदे ऽभुञ्जतश्च रेवतः । उभा ता बस्रि नश्यतः १२ १५२

॥ १५ ॥ (ऋ १।१३९।३-५)

(१६०-१६१) परुच्छेपो दैवोदासिः । अत्यष्टिः, ५ बृहती ।

युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विना ऽऽश्रावयन्त इव श्लोकमायवो युवां हव्याभ्या३यवः ।
युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा ।
प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये ३ १६०
अचेति दस्रा व्यु१ नाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टि--ष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु ।
अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये ।
पथेव यन्तावनुशासता रजो ऽञ्जसा शासता रजः ४
शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।
मा वां रातिरुप दसत् कदा चना--स्मद् रातिः कदा चन ५ १६१

॥ १६ ॥ (ऋ १।१५७।१-६)

(१६२-१७३) दीर्घतमा औचथ्यः । जगती, ५-६ त्रिष्टुप् ।

अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यु१षाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद् देवः सविता जगत् पृथक् १
यद् युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि २
अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे ३ १६५

आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम् ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ४
युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतीँरश्विनावैरयेथाम् ५
युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिरथो ह स्थो रथ्या राथ्येभिः ।
अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा यो वां हविष्मान् मनसा ददाश ६

॥ १७ ॥ (ऋ १।१५८।१-६) त्रिष्टुप्, ६ अनुष्टुप् ।

वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ ।
दस्रा ह यद् रेक्णं औचथ्यो वां प्र यत् सस्राथे अकवाभिरूती १
को वां दाशत् सुमतये चिदस्यै वसू यद् धेथे नमसा पदे गोः ।
जिगृतमस्मे रेवतीः पुरंधीः कामप्रेणेव मनसा चरन्ता २ १७०
युक्तो ह यद् वां तौग्र्याय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः ।
उप वामवः शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ३
उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम् ।
मा मामेधो दशतयश्चितो धाक् प्र यद् वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम् ४
न मा गरन् नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः ।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत् स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ५
दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे ।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ६ १७४

॥ १८ ॥ (ऋ १।१८०।१-१०)
(१७५-२१३) अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद् वां पर्यर्णांसि दीयत् ।
हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन् मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे १ १७५
युवमत्यस्याव नक्षथो यद् विपत्मनो नर्यस्य प्रयज्योः ।
स्वसा यद् वां विश्वगूर्ती भराति वाजायेट्टे मधुपाविषे च २
युवं पय उस्रियायामधत्तं पक्वमामायामव पूर्व्यं गोः ।
अन्तर्यद् वनिनो वामृतप्सू ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ३ १७७

युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रये ऽपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे ।
तद् वां नरावश्विना पश्वइष्टी रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ४
आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः ।
अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ५
नि यद् युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरंधिम् ।
प्रेषद् वेषद् वातो न सूरिरा महे ददे सुव्रतो न वाजम् ३ १८०
वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिर्हितावान् ।
अधा चिद्धि ष्माश्विनावनिन्द्या पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् ७
युवं चिद्धि ष्माश्विनावनु द्यून् विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ ।
अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत् सहस्रैः ८
प्र यद् वहेथे महिना रथस्य प्र स्पन्द्रा याथो मनुषो न होता ।
धत्तं सूरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ९
तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् ।
अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् १०

॥ १९ ॥ (ऋ १।१८१।१-९)

कदु प्रेष्ठाविषां रयीणामध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम् ।
अयं वां यज्ञो अकृत प्रशस्तिं वसुधिती अवितारा जनानाम् १ १८५
आ वामश्वासः शुचयः पयस्पा वातरंहसो दिव्यासो अत्याः ।
मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अश्विना वहन्तु २
आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान्त्सृप्रवन्धुरः सुविताय गम्याः ।
वृष्णः स्थातारा मनसो जवीयानहंपूर्वो यजतो धिष्ण्या यः ३
इहेह जाता समवावशीतामरेपसा तन्वा नामभिः स्वैः ।
जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ४
प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः ।
हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्ना रजांस्यश्विना वि घोषैः ५
प्र वां शरद्वान् वृषभो न निष्षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन् ।
एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः ६ १९०

अर्सर्जि वां स्थविरा वेधसा गी—र्बाळ्हे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती ।
उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे   ७
उत स्या वां रुशतो वप्ससो गी—स्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन् ।
वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन्   ८
युवां पूषेवाश्विना पुरंधि—रग्निमुषां न जरते हविष्मान् ।
हुवे यद् वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेष वृजनं जीरदानुम्   ९

॥ २० ॥ (ऋ १।१८२।१-८) जगती , ८ त्रिष्टुप् ।

अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान् मदता मनीषिणः ।
धियंजिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता   १
इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।
पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना   २   १९५
किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।
अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे   ३
जम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना ।
वाचंवाचं जरितू रत्निनीं कृत—मुभा शंसं नासत्यावतं मम   ४
युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लव—मात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम् ।
येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः   ५
अवविद्धं तौग्र्यमप्स्व१न्त—रनारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।
चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति   ६
कः स्विद् वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत् ।
पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम्   ७   २००
तद् वां नरा नासत्यावनु ष्याद् यद् वां मानास उचथमवोचन् ।
अस्मादद्य सदसः सोम्यादा विद्यामेष वृजनं जीरदानुम्   ८

॥ २१ ॥ (ऋ १।१८३।१-६)

तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः   १
सुवृद् रथो वर्तते यन्नभि क्षां यत् तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे ।
वपुर्वपुष्या सचतामियं गी—र्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे   २   २०१

आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वा-मनु व्रतानि वर्तते हविष्मान् ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ३
मा वां वृको मा वृकीरा दधर्षी-न्मा परि वर्क्तमुत माति धक्तम् ।
अयं वां भागो निहित इयं गी-र्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ४ २०९
युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रि-र्दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान् ।
दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम् ५
अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानै-र्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ६

॥ २२ ॥ (ऋ. १।१८४।१-६)

ता वामद्य तावपरं हुवेमो-च्छन्त्यामुषसि वह्निरुक्थैः ।
नासत्या कुह चित् सन्तावर्यो दिवो नपाता सुदास्तराय १
अस्मे ऊ षु वृषणा मादयेथा-मुत् पणींर्हतमूर्म्या मदन्ता ।
श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीना-मेष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः २
श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः ।
वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः ३ २१०
अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः ।
अनु यद् वां श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ४
एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति ।
यातं वर्तिस्तनयाय त्मने चा-गस्त्ये नासत्या मदन्ता ५
अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानै-र्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ६ २१३

॥ २३ ॥ (ऋ. २।३७।५)

(२१४-२२५) गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । (ऋतुसहितौ) । जगती ।

अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम् ।
पृङ्क्तं हवींषि मधुना हि कं गत-मथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू ५

॥ २४ ॥ (ऋ. २।३९।१-८) त्रिष्टुप् ।

ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ ।
ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा १ २१५

प्रातर्यावाणा रथ्येव वीरा ऽजेव यमा वरमा सचेथे ।
मेने इव तन्वा३ शुम्भमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु २
भृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक् छफाविव जर्भुराणा तरोभिः ।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रा ऽर्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ३
नावेव नः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव ।
श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां खृगलेव विस्रसः पातमस्मान् ४
वातेवाजुर्या नद्येव रीति-रक्षी इव चक्षुषा यातमर्वाक् ।
हस्ताविव तन्वे३ शंभविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ५
ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः ।
नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ६ २२०
हस्तेव शक्तिमभि संददी नः क्षामेव नः समजतं रजांसि ।
इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं सं शिशीतम् ७
एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो अक्रन् ।
तानि नरा जुजुषाणोप यातं बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ८

॥ २५ ॥ (ऋ. २।४१।७-९) गायत्री ।

गोमदू षु नासत्या ऽश्वावद् यातमश्विना । वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ७
न यत् परो नान्तर आदधर्षद् वृषण्वसू । दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ८ २२५
ता न आ वोळ्हमश्विना रयिं पिशङ्गसंदृशम् । धिष्ण्या वरिवोविदम् ९

॥ २६ ॥ (ऋ ३।५८।१-९)
(२२६-२३४) गाथिनो विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् ।

धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहाना ऽन्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः ।
आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामो-षसः स्तोमो अश्विनावजीगः १
सुयुग् वहन्ति प्रति वामृतेनो-र्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः ।
जरेथामस्मद् वि पणेर्मनीषां युवोरवश्चकृमा यातमर्वाक् २
सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठा ऽऽहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ३
आ मन्येथामा गतं कच्चिदेवै-र्विश्वे जनासो अश्विना हवन्ते ।
इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्र मित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे ४ २२९

तिरः पुरू चिदश्विना रजां—स्याङ्गूषो वां मघवाना जनेषु ।
एह यातं पथिभिर्देवयानै—र्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ५ १३०
पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम् ।
पुनः कृण्वानाः सख्या शिवानि मध्वा मदेम सह नू समानाः ६
अश्विना वायुना युवं सुदक्षा नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना ।
नासत्या तिरोअह्न्यं जुषाणा सोमं पिबतमस्रिधा सुदानू ७
अश्विना परि वामिषः पुरूची—रीयुर्गीर्भिर्यतमाना अमृध्राः ।
रथो ह वामृतजा अद्रिजूतः परि द्यावापृथिवी याति सद्यः ८
अश्विना मधुषुत्तमो युवाकुः सोमस्तं पातमा गतं दुरोणे ।
रथो ह वां भूरि वर्पः करिक्रत् सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः ९ १३४

॥ २७ ॥ (ऋ. ४।१५।९-१०)

(१३५-१४३) वामदेवो गौतमः । गायत्री ।

एष वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः । दीर्घायुरस्तु सोमकः ९ १३५
तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम् । दीर्घायुषं कृणोतन १०

॥ २८ ॥ (ऋ. ४।४५।१-७) जगती, त्रिष्टुप् ।

एष स्य भानुरुदियर्ति युज्यते रथः परिज्मा दिवो अस्य सानवि ।
पृक्षासो अस्मिन् मिथुना अधि त्रयो दृतिस्तुरीयो मधुनो वि रप्शते १
उद् वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु ।
अपोर्णुवन्तस्तम आ परीवृतं स्व१र्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः २
मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभि—रुत प्रियं मधुने युञ्जाथां रथम् ।
आ वर्तनिं मधुना जिन्वथस्पथो दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना ३
हंसासो ये वां मधुमन्तो अस्रिधो हिरण्यपर्णा उहुव उषर्बुधः ।
उदप्रुतो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो मध्वो न मक्षः सवनानि गच्छथः ४ २४०
स्वध्वरासो मधुमन्तो अग्नय उस्रा जरन्ते प्रति वस्तोरश्विना ।
यन्निक्तहस्तस्तरणिर्विचक्षणः सोमं सुषाव मधुमन्तमद्रिभिः ५
आकेनिपासो अहभिर्दविध्वतः स्व१र्ण शुक्रं तन्वत आ रजः ।
सूरश्चिदश्वान् युयुजान ईयते विश्वाँ अनु स्वधया चेतथस्पथः ६ २४२

प्र वामवोचमश्विना धियंधा रथः स्वश्वो अजरो यो अस्ति ।
येन सद्यः परि रजांसि याथो हविष्मन्तं तरणिं भोजमच्छ ७ २४३

॥ २९ ॥ (ऋ. ४।४३।१-७)

(२४४-२५७) पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ । त्रिष्टुप् ।

क उ श्रवत् कतमो यज्ञियानां वन्दारु देवः कतमो जुषाते ।
कस्येमां देवीममृतेषु प्रेष्ठां हृदि श्रेषाम सुष्टुतिं सुहव्याम् १
को मृळाति कतम आगमिष्ठो देवानामु कतमः शंभविष्ठः ।
रथं कमाहुर्द्रवदश्वमाशुं यं सूर्यस्य दुहितावृणीत २ २४५
मक्षू हि ष्मा गच्छथ ईवतो द्यू-निन्द्रो न शक्तिं परितक्म्यायाम् ।
दिव आजाता दिव्या सुपर्णा कया शचीनां भवथः शचिष्ठा ३
का वां भूदुपमातिः कया न आश्विना गमथो हूयमाना ।
को वां महश्चित् त्यजसो अभीक उरुष्यतं माध्वी दस्रा न ऊती ४
उरु वां रथः परि नक्षति द्या-मा यत् समुद्रादभि वर्तते वाम् ।
मध्वा माध्वी मधु वां प्रुषायन् यत् सीं वां पृक्षो भुरजन्त पक्वाः ५
सिन्धुर्ह वां रसया सिञ्चदश्वान् घृणा वयोऽरुषासः परि ग्मन् ।
तदू षु वामजिरं चेति यानं येन पती भवथः सूर्यायाः ६
इहेह यद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ७ २५०

॥ ३० ॥ (ऋ. ४।४४।१-७)

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायु-र्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् १
युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम् २
को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ३
हिरण्ययेन पुरुभू रथेने-मं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ४ २५४

आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः सं यद् ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ५ २५५
नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद् वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीळ्हासो अग्मन् ६
इहेह यद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ७ २५७

॥ ३१ ॥ (ऋ. ५।७३।१-१०)

(२५८-२७७) पौर आत्रेयः । अनुष्टुप् ।

यदद्य स्थः परावति यदर्वावत्यश्विना । यद् वा पुरू पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् १
इह त्या पुरुभूतमा पुरू दंसांसि बिभ्रता । वरस्या याम्यध्रिगू हुवे तुविष्टमा भुजे २
ईर्मान्यद् वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः । पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः ३ २६०
तदू षु वामेना कृतं विश्वा यद् वामनु ष्टवे । नाना जातावरेपसा समस्मे बन्धुमेयथुः ४
आ यद् वां सूर्या रथं तिष्ठद् रघुष्यदं सदा । परि वामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः ५
युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा । घर्मं यद् वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ६
उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु संतनिः । यद् वां दंसोभिरश्विनाऽत्रिर्नराववर्तति ७
मध्व ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी । यत् समुद्राति पर्षथः पक्वाः पृक्षो भरन्त वाम् ८ २६५
सत्यमिद् वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा । ता यामन् यामहूतमा यामन्ना मृळयत्तमा ९
इमा ब्रह्माणि वर्धनाऽश्विभ्यां सन्तु शंतमा । या तक्षाम रथाँ इवावोचाम बृहन्नमः १०

॥ ३२ ॥ (ऋ. ५।७४।१-१०) अनुष्टुप्, ८ निचृत् ।

कूष्ठो देवावश्विनाऽद्या दिवो मनावसू । तच्छ्रवथो वृषण्वसू अत्रिर्वामा विवासति १
कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या । कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा २
कं याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम् । कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ३ २७०
पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः । यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ४
प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः । युवा यदी कृथः पुनरा काममृण्वे वध्वः ५
अस्ति हि वामिह स्तोता स्मसि वां संदृशि श्रिये । नू श्रुतं म आ गतमवोभिर्वाजिनीवसू ६
को वामद्य पुरूणामा वव्ने मर्त्यानाम् । को विप्रो विप्रवाहसा को यज्ञैर्वाजिनीवसू ७
आ वां रथो रथानां येष्ठो यात्वश्विना । पुरू चिदस्मयुस्तिर आङ्गूषो मर्त्येष्वा ८ २७५

शम् षु वां मधूयुवा ऽस्माकमस्तु चर्कृतिः । अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ९
अश्विना यद्ध कर्हि चि च्छुश्रूयातमिमं हवम् । वस्वीरू षु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः १० २७७

॥ ३३ ॥ (ऋ. ५।७५।१-९)

(२७८-२८६) अवस्युरात्रेयः । पङ्क्तिः ।

प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रति भूषति माध्वी मम श्रुतं हवम् १
अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् २
आ नो रत्नानि बिभ्रता वश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ३ २८०
सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता ।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम् ४
बोधिन्मनसा रथ्ये षिरा हवनश्रुता ।
विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ५
आ वां नरा मनोयुजो ऽश्वासः प्रुषितप्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ६
अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ७
अस्मिन् यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती ।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम् ८
अभूदुषा रुशत् पशु राग्निरधाय्यृत्वियः ।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम् ९ २८६

॥ ३४ ॥ (ऋ. ५।७६।१-५)

(२८७-२९६) भौमोऽत्रिः । त्रिष्टुप् ।

आ भात्यग्निरुषसामनीक मुद् विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ १
न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठा ऽन्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शंभविष्ठा २ २८८

उता यातं संगवे प्रातरह्नो मध्यंदिन उदिता सूर्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शंतमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ३
इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम् ।
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा ऽद्भ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ४ २९०
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीरा—ना विश्वान्यमृता सौभगानि ५

॥ ३५ ॥ (ऋ. ५।७७।१-५)

प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं पुरा गृध्रादररुषः पिबातः ।
प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्र शंसन्ति कवयः पूर्वभाजः १
प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम् ।
उतान्यो अस्मद् यजते वि चावः पूर्वःपूर्वो यजमानो वनीयान् २
हिरण्यत्वङ्मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम् ।
मनोजवा अश्विना वातरंहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा ३
यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे ।
स तोकमस्य पीपरच्छमीभि—रनूर्ध्वभासः सदमित् तुतुर्यात् ४
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीरा—ना विश्वान्यमृता सौभगानि ५ २९६

॥ ३६ ॥ (ऋ. ५।७८।१-९)

(२९७-३०५) सप्तवध्रिरात्रेयः । (५-९ गर्भस्राविण्युपनिषद्) । अनुष्टुप्,
१-३ उष्णिक्, ४ त्रिष्टुप् ।

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् । हंसाविव पततमा सुताँ उप १
अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम् । हंसाविव पततमा सुताँ उप २
अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये । हंसाविव पततमा सुताँ उप ३
अत्रिर्यद् वामवरोहन्नृबीस—मजोहवीन्नाधमानेव योषा ।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेना ऽऽगच्छतमश्विना शंतमेन ४ ३००
वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव । श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ५
भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये । मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ६ ३०१

यथा वातः पुष्कुरिणीं समिङ्गयंति सर्वतः । एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ७
यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजंति । एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ८
दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि । निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ९ ३०५

॥ ३७ ॥ (ऋ. ६।६२।१-११)
(३०६-३२७) बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

स्तुषे नरा दिवो अस्य प्रसन्ता ऽश्विना हुवे जरमाणो अर्कैः ।
या सद्य उस्रा व्युषि ज्मो अन्तान् युयूषतः पर्युरू वरांसि १
ता यज्ञमा शुचिभिश्चक्रमाणा रथस्य भानुं रुरुचू रजोभिः ।
पुरू वरांस्यमिता मिमाना ऽपो धन्वान्यति याथो अज्रान् २
ता ह त्यद् वर्तिर्यदरध्रमुग्रे — त्था धियं ऊहथुः शश्वदश्वैः ।
मनोजवेभिरिषिरैः शयध्यै परि व्यथिर्दाशुषो मर्त्यस्य ३
ता नव्यसो जरमाणस्य मन्मो — प भूषतो युयुजानसप्ती ।
शुभं पृक्षमिषमूर्जं वहन्ता होता यक्षत् प्रत्नो अध्रुग् युवाना ४
ता वल्गू दस्रा पुरुशाकतमा प्रत्ना नव्यसा वचसा विवासे ।
या शंसते स्तुवते शम्भविष्ठा बभूवतुर्गृणते चित्रराती ५ ३१०
ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात् तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः ।
अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात् ६
वि जयुषा रथ्या यातमद्रिं श्रुतं हवं वृषणा वध्रिमत्याः ।
दशस्यन्ता शयवे पिप्यथुर्गा — मिति च्यवाना सुमतिं भुरण्यू ७
यद् रोदसी प्रदिवो अस्ति भूमा हेळो देवानामुत मर्त्यत्रा ।
तदादित्या वसवो रुद्रियासो रक्षोयुजे तपुरघं दधात ८
य ईं राजानावृतुथा विदधद् रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत् ।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद् वचस आनवाय ९
अन्तरैश्चक्रैस्तनयाय वर्ति — र्द्युमता यातं नृवता रथेन ।
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम् १०
आ परमाभिरुत मध्यमाभि — र्नियुद्भिर्यातमवमाभिरर्वाक् ।
दृळ्हस्य चिद् गोमतो वि व्रजस्य दुरो वर्तं गृणते चित्रराती ११ ३१६

॥ ३८ ॥ (ऋ. ६।६३।१-११) त्रिष्टुप्, १ विराट्, ११ एकपदा त्रिष्टुप् ।

क्व त्या वल्गू पुरुहूताद्य दूतो न स्तोमोऽविदन्नमस्वान् ।
आ यो अर्वाङ् नासत्या ववर्त प्रेष्ठा ह्यसथो अस्य मन्मन् १
अरं मे गन्तं हवनायास्मै गृणाना यथा पिबाथो अन्धः ।
परि ह त्यद् वर्तिर्याथो रिषो न यत् परो नान्तरस्तुतुर्यात् २
अकारि वामन्धसो वरीम—न्नस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम् ।
उत्तानहस्तो युवयुर्ववन्दा ऽऽ वां नक्षन्तो अद्रय आञ्जन् ३
ऊर्ध्वो वामग्निरध्वरेष्वस्थात् प्र रातिरेति जूर्णिनी घृताची ।
प्र होता गूर्तमना उराणो ऽयुक्त यो नासत्या हवीमन् ४ ३२०
अधि श्रिये दुहिता सूर्यस्य रथं तस्थौ पुरुभुजा शतोतिम् ।
प्र मायाभिर्मायिना भूतमत्र नरा नृतू जनिमन् यज्ञियानाम् ५
युवं श्रीभिर्दर्शताभिराभिः शुभे पुष्टिमूहथुः सूर्यायाः ।
प्र वां वयो वपुषेऽनु पप्तन् नक्षद् वाणी सुष्टुता धिष्ण्या वाम् ६
आ वां वयोऽश्वासो वहिष्ठा अभि प्रयो नासत्या वहन्तु ।
प्र वां रथो मनोजवा असर्जी—षः पृक्ष इषिधो अनु पूर्वीः ७
पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णं धेनुं न इषं पिन्वतमसक्राम् ।
स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन् ८
उत म ऋज्रे पुरयस्य रघ्वी सुमीळ्हे शतं पेरुके च पक्वा ।
शाण्डो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन् दश वशासो अभिषाच ऋष्वान् ९ ३२५
सं वां शता नासत्या सहस्रा ऽश्वानां पुरुपन्था गिरे दात् ।
भरद्वाजाय वीर नू गिरे दा—द्धता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः १०
आ वां सुम्ने वरिमन्त्सूरिभिः ष्याम् ११ ३२७

॥ ३९ ॥ (ऋ. ७।६७।१-१०) त्रिष्टुप् ।
(३२८-३८३) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

प्रति वां रथं नृपती जरध्यै हविष्मता मनसा यज्ञियेन ।
यो वां दूतो न धिष्ण्यावजीग—रच्छा सूनुर्न पितरा विवक्मि १
अशोच्यग्निः समिधानो अस्मे उपो अदृश्रन् तमसश्चिदन्ताः ।
अचेति केतुरुषसः पुरस्ता—च्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः २ ३२९

अभि वां नूनमश्विना सुहोता स्तोमैः सिषक्ति नासत्या विवक्वान् ।
पूर्वीभिर्यातं पथ्याभिरर्वाक् स्वर्विदा वसुमता रथेन ३ ३३०
अवोर्वां नूनमश्विना युवाकु र्हुवे यद् वां सुते माध्वी वसूयुः ।
आ वां वहन्तु स्थविरासो अश्वाः पिबाथो अस्मे सुषुता मधूनि ४
प्राचीमु देवाश्विना धियं मे ऽमृध्रां सातये कृतं वसूयुम् ।
विश्वा अविष्टं वाज आ पुरंधी स्ता नः शक्तं शचीपती शचीभिः ५
अविष्टं धीष्वश्विना न आसु प्रजावद् रेतो अह्रयं नो अस्तु ।
आ वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम ६
एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे ।
अहेळता मनसा यातमर्वा गश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विक्षु ७
एकस्मिन् योगे भुरणा समाने परि वां सप्त स्रवतो रथो गात् ।
न वायन्ति सुभ्वो देवयुक्ता ये वां धूर्षु तरणयो वहन्ति ८ ३३५
असश्चता मघवद्भ्यो हि भूतं ये राया मघदेयं जुनन्ति ।
प्र ये बन्धुं सूनृताभिस्तिरन्ते गव्या पृञ्चन्तो अश्व्या मघानि ९
नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १०

॥ ४० ॥ (ऋ. ७।६८।१-९) विराट्; ८-९ त्रिष्टुप् ।

आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरो दस्रा जुजुषाणा युवाकोः ।
हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः
प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थु ररं गन्तं हविषो वीतये मे ।
तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः २
प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः ।
अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः ३ ३४०
अयं ह यद् वां देवया उ अद्रि रूर्ध्वो विवक्ति सोमसुद् युवभ्याम् ।
आ वल्गू विप्रो ववृतीत हव्यैः ४
चित्रं ह यद् वां भोजनं न्वस्ति न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम् ।
यो वामोमानं दधते प्रियः सन् ५ ३४२

उत त्यद् वां जुरते अश्विना भू—च्च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे ।
अधि यद् वर्प इतऊति धत्थः ६
उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे ।
निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः ७
वृकाय चिज्जसमानाय शक्त—मुत श्रुतं शयवे हूयमाना ।
यावघ्न्यामपिन्वतमपो न स्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः ८ ३४५
एष स्य कारुर्जरते सूक्तै—रग्रे बुधान उषसां सुमन्मा ।
इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभि—र्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ९

॥ ४१ ॥ (ऋ. ७।६९।१-८) त्रिष्टुप् ।

आ वां रथो रोदसी बद्बधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः ।
घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान् १
स पप्रथानो अभि पञ्च भूमा त्रिवन्धुरो मनसा यातु युक्तः ।
विशो येन गच्छथो देवयन्तीः कुत्रा चिद् याममश्विना दधाना २
स्वश्वा यशसा यातमर्वाग् दस्रा निधिं मधुमन्तं पिबाथः ।
वि वां रथो वध्वाऽयादमानो ऽन्तान् दिवो बाधते वर्तनिभ्याम् ३
युवोः श्रियं परि योषावृणीत सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् ।
यद् देवयन्तमवथः शचीभिः परि घ्रंसमोमना वां वयो गात् ४ ३५०
यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ५
नरा गौरेव विद्युतं तृषाणा ऽस्माकमद्य सवनोप यातम् ।
पुरुत्रा हि वां मतिभिर्हवन्ते मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः ६
युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्रिधानैः ।
पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभि—र्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ७
नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ८

॥ ४२ ॥ (ऋ. ७।७०।१-७)

आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत् स्थानमवाचि वां पृथिव्याम् ।
अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्था—दा यत् सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम् १ ३५५

सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठा ऽतापि घर्मो मनुषो दुरोणे ।
यो वां समुद्रान्त्सरितः पिपर्त्ये—तग्वा चिन्न सुयुजा युजानः २
यानि स्थानान्यश्विना दधाथे दिवो यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्ते—षं जनाय दाशुषे वहन्ता ३
चनिष्टं देवा ओषधीष्वप्सु यद् योग्या अश्नवैथे ऋषीणाम् ।
पुरूणि रत्ना दधतौ न्य१स्मे अनु पूर्वाणि चख्यथुर्युगानि ४
शुश्रुवांसा चिदश्विना पुरूण्य—भि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम् ।
प्रति प्र यातं वरमा जनाया—ऽस्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ५
यो वां यज्ञो नासत्या हविष्मान् कृतब्रह्मा समर्यो३ भवाति ।
उप प्र यातं वरमा वसिष्ठ—मिमा ब्रह्माण्यृच्यन्ते युवभ्याम् ६ ३६०
इयं मनीषा इयमश्विना गी—रिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७

॥ ४३ ॥ (ऋ. ७।७१।१-६)

अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते रिणक्ति कृष्णीररुषाय पन्थाम् ।
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम दिवा नक्तं शरुमस्मद् युयोतम् १
उपायातं दाशुषे मर्त्याय रथेन वाममश्विना वहन्ता ।
युयुतमस्मदनिराममीवां दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः २
आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु ।
स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वै—राश्विना वसुमन्तं वहेथाम् ३
यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा त्रिवन्धुरो वसुमाँ उस्रयामा ।
आ न एना नासत्योप यात—मभि यद् वां विश्वप्स्न्यो जिगाति ४ ३६५
युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिं नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः ५
इयं मनीषा इयमश्विना गी—रिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६

॥ ४४ ॥ (ऋ. ७।७२।१-५)

आ गोमता नासत्या रथेना—ऽश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम् ।
अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना १ ३६८

आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक् सजोषसा नासत्या रथेन ।
युवोर्हि नः सख्या पित्र्याणि समानो बन्धुरुत तस्य वित्तम् २
उदु स्तोमासो अश्विनोरबुध्रञ्जामि ब्रह्माण्युषसश्च देवीः ।
आविवासन् रोदसी धिष्ण्येमे अच्छा विप्रो नासत्या विवक्ति ३ ३७०
वि चेदुच्छन्त्यश्विना उषासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते ।
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद् बृहदग्नयः समिधा जरन्ते ४
आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५

॥ ४५ ॥ (ऋ. ७।७३।१-५)

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः ।
पुरुदंसा पुरुतमा पुराजा ऽमर्त्या हवते अश्विना गीः १
न्यु प्रियो मनुषः सादि होता नासत्या यो यजते वन्दते च ।
अश्नीतं मध्वो अश्विना उपाक आ वां वोचे विदथेषु प्रयस्वान् २
अहेम यज्ञं पथामुराणा इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः ३ ३७५
उप त्या वह्नी गमतो विशं नो रक्षोहणा संभृता वीळुपाणी ।
समन्धांस्यग्मत मत्सराणि मा नो मर्धिष्टमा गतं शिवेन ४
आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५

॥ ४६ ॥ (ऋ. ७।७४।१-६) प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)

इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः १
युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।
अर्वाग् रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु २
आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना ।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ३
अश्वासो ये वामुप दाशुषो गृहं युवां दीयन्ति बिभ्रतः ।
मक्षुयुभिर्नरा हयेभिरश्विना ऽऽदेवा यातमस्मयू ४ ३८१

अधा ह यन्तो अश्विना पृक्षः सचन्त सूरयः ।
ता यंसतो मघवद्भ्यो ध्रुवं यशश्छर्दिरस्मभ्यं नासत्या ५
प्र ये ययुरवृकासो रथा इव नृपातारो जनानाम् ।
उत स्वेन शवसा शूशुवुर्नर उत क्षियन्ति सुक्षितिम् ६ ३८३

॥ ४७ ॥ (ऋ. ८।५।१-३७)

(३८४-४१०) ब्रह्मातिथिः काण्वः । (३७ पूर्वार्धः) । गायत्री; ३७ बृहती ।

दूरादिहेव यत् सत्यरुणप्सुरशिश्वितत् । वि भानुं विश्वधातनत् १
नृवद् दस्रा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा । सचेथे अश्विनोषसम् २ ३८५
युवाभ्यां वाजिनीवसू प्रति स्तोमा अदृक्षत । वाचं दूतो यथोहिषे ३
पुरुप्रिया ण ऊतये पुरुमन्द्रा पुरूवसू । स्तुषे कण्वासो अश्विना ४
मंहिष्ठा वाजसातमेषयन्ता शुभस्पती । गन्तारा दाशुषो गृहम् ५
ता सुदेवाय दाशुषे सुमेधामवितारिणीम् । घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ६
आ नः स्तोममुप द्रवत् तूयं श्येनेभिराशुभिः । यातमश्वेभिरश्विना ७ ३९०
येभिस्तिस्रः परावतो दिवो विश्वानि रोचना । त्रीँरक्तून् परिदीयथः ८
उत नो गोमतीरिष उत सातीरहर्विदा । वि पथः सातये सितम् ९
आ नो गोमन्तमश्विना सुवीरं सुरथं रयिम् । वोळ्हमश्वावतीरिषः १०
वावृधाना शुभस्पती दस्रा हिरण्यवर्तनी । पिबतं सोम्यं मधु ११
अस्मभ्यं वाजिनीवसू मघवद्भ्यश्च सप्रथः । छर्दिर्यन्तमदाभ्यम् १२ ३९५
नि षु ब्रह्म जनानां याविष्टं तूयमा गतम् । मो ष्व१न्याँ उपारतम् १३
अस्य पिबतमश्विना युवं मदस्य चारुणः । मध्वो रातस्य धिष्ण्या १४
अस्मे आ वहतं रयिं शतवन्तं सहस्रिणम् । पुरुक्षुं विश्वधायसम् १५
पुरुत्रा चिद्धि वां नरा विह्वयन्ते मनीषिणः । वाघद्भिरश्विना गतम् १६
जनासो वृक्तबर्हिषो हविष्मन्तो अरंकृतः । युवां हवन्ते अश्विना १७ ४००
अस्माकमद्य वामयं स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः । युवाभ्यां भूत्वश्विना १८
यो ह वां मधुनो दृतिराहितो रथचर्षणे । ततः पिबतमश्विना १९
तेन नो वाजिनीवसू पश्वे तोकाय शं गवे । वहतं पीवरीरिषः २०
उत नो दिव्या इष उत सिन्धूँरहर्विदा । अप द्वारेव वर्षथः २१ ४०४

कदा वां तौग्र्यो विधत् समुद्रे जहितो नरा । यद् वां रथो विभिष्पतात् २२ ४०५
युवं कण्वाय नासत्या ऽपिरिप्ताय हर्म्ये । शश्वदूतीर्दशस्यथः २३
ताभिरा यातमूतिभि-र्नव्यसीभिः सुशस्तिभिः । यद् वां वृषण्वसू हुवे २४
यथा चित् कण्वमावतं प्रियमेधमुपस्तुतम् । अत्रिं शिञ्जारमश्विना २५
यथोत कृत्व्ये धने-ऽशुं गोष्वगस्त्यम् । यथा वाजेषु सोभरिम् २६
एतावद् वां वृषण्वसू अतो वा भूयो अश्विना । गृणन्तः सुम्नमीमहे २७ ४१०
रथं हिरण्यवन्धुरं हिरण्याभीशुमश्विना । आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् २८
हिरण्ययी वां रभि-रीषा अक्षो हिरण्ययः । उभा चक्रा हिरण्यया २९
तेन नो वाजिनीवसू परावतश्चिदा गतम् । उपेमां सुष्टुतिं मम ३०
आ वहेथे पराकात् पूर्वीरश्नन्तावश्विना । इषो दासीरमर्त्या ३१
आ नो द्युम्नैरा श्रवोभि-रा राया यातमश्विना । पुरुश्चन्द्रा नासत्या ३२ ४१५
एह वां प्रुषितप्सवो वयो वहन्तु पर्णिनः । अच्छा स्वध्वरं जनम् ३३
रथं वामनुगायसं य इषा वर्तते सह । न चक्रमभि बाधते ३४
हिरण्ययेन रथेन द्रवत्पाणिभिरश्वैः । धीजवना नासत्या ३५
युवं मृगं जागृवांसं स्वदथो वा वृषण्वसू । ता नः पृङ्क्तमिषा रयिम् ३६
ता मे अश्विना सनीनां विद्यातं नवानाम् । (पूर्वार्धः) ३७ ४२०

यच्चिद्धि वां पुर ऋषयो जुहूरेऽवसे नरा ।
आ यातमश्विना गत—मुपेमां सुष्टुतिं मम ६
दिवश्चिद् रोचनाद—ध्या नो गन्तं स्वर्विदा ।
धीभिर्वत्सप्रचेतसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ७
किमन्ये पर्यासते ऽस्मत् स्तोमेभिरश्विना ।
पुत्रः कण्वस्य वामृषि—र्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ८
आ वां विप्र इहावसे ऽह्वत् स्तोमेभिरश्विना ।
अरिप्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं मयोभुवा ९
आ यद् वां योषणा रथ—मतिष्ठद् वाजिनीवसू ।
विश्वान्यश्विना युवं प्र धीतान्यगच्छतम् १० ४३०
अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ।
वत्सो वां मधुमद् वचो ऽशंसीत् काव्यः कविः ११
पुरुमन्द्रा पुरूवसू मनोतरा रयीणाम् ।
स्तोमं मे अश्विनाविम—मभि वह्नी अनूषाताम् १२
आ नो विश्वान्यश्विना धत्तं राधांस्यह्रया ।
कृतं न ऋत्वियावतो मा नो रीरधतं निदे १३
यन्नासत्या परावति यद् वा स्थो अध्यम्बरे ।
अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना १४
यो वां नासत्यावृषि—र्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ।
तस्मै सहस्रनिर्णिज—मिषं धत्तं घृतश्चुतम् १५ ४३५
प्रास्मा ऊर्जं घृतश्चुत—मश्विना यच्छतं युवम् ।
यो वां सुम्नाय तुष्टवद् वसूयाद् दानुनस्पती १६
आ नो गन्तं रिशादसे—मं स्तोमं पुरुभुजा ।
कृतं नः सुश्रियो नरे—मा दातमभिष्टये १७
आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।
राजन्तावध्वराणा—मश्विना यामहूतिषु १८
आ नो गन्तं मयोभुवा ऽश्विना शंभुवा युवम् ।
यो वां विपन्यू धीतिभि—र्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् १९ ४३९

याभिः कण्वं मेधातिथिं याभिर्वशं दशव्रजम् ।
याभिर्गोशर्यमावतं ताभिर्नोऽवतं नरा २० ४४०
याभिर्नरा त्रसदस्यु—मावतं कृत्व्ये धने ।
ताभिः ष्व१स्माँ अश्विना प्रावतं वाजसातये २१
प्र वां स्तोमाः सुवृक्तयो गिरो वर्धन्त्वश्विना ।
पुरुत्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं पुरुस्पृहा २२
त्रीणि पदान्यश्विनो—राविः सान्ति गुहा परः ।
कवी ऋतस्य पत्मभि—रर्वाग् जीवेभ्यस्परि २३ ४४३

॥ ४९ ॥ (ऋ. ८।९।१-२१)

(४४४-४६४) शशकर्णः काण्वः । अनुष्टुप्; १,४,६ १४-१५, बृहती; २-३,१०-२१ गायत्री; ५ ककुप्; १० त्रिष्टुप्; ११ विराट्, १२ जगती ।

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दि—र्युयुतं या अरातयः १
यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पञ्च मानुषाँ अनु । नृम्णं तद् धत्तमश्विना २ ४४५
ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः । एवेत् काण्वस्य बोधतम् ३
अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते ।
अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ४
यदप्सु यद् वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् ।
तेन माविष्टमश्विना ५
यन्नासत्या भुरण्यथो यद् वा देव भिषज्यथः ।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ६
आ नूनमश्विनोर्ऋषिः स्तोमं चिकेत वामया ।
आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ७ ४५०
आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना ।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ८
यदद्य वां नासत्यो—क्थैराचुच्युवीमहि ।
यद् वा वाणीभिरश्विने—वेत् काण्वस्य बोधतम् ९ ४५२

यद् वां कक्षीवाँ उत यद् व्यश्व ऋषिर्यद् वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद् वां वैन्यः सादनेष्वे—वेदतो अश्विना चेतयेथाम् १०
यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा ।
वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ११
यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद् वा वायुना भवथः समोकसा ।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद् वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः १२ ४५५
यदद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये ।
यत् पृत्सु तुर्वणे सह—स्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः १३
आ नूनं यातमश्विने—मा हव्यानि वां हिता ।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदा—विमे कण्वेषु वामथ १४
यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् १५
अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।
व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः १६
प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।
प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् १७ ४६०
यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे ।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् १८
यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः ।
यद् वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना १९
प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे । प्र दक्षाय प्रचेतसा २०
यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः । यद् वा सुम्नेभिरुक्थ्या २१ ४६४

॥ ५० ॥ (ऋ. ८।१०।१-६)

(४६५-४७०) प्रगाथो (घौरः) काण्वः । १ बृहती, २ मध्येज्योतिः, ३ अनुष्टुप्, (पिंगलमतेन-शंकुमती)
४ आस्तारपङ्क्तिः, ५-६ प्रगाथः = (५ बृहती+ ६ सतोबृहती)

यत् स्थो दीर्घप्रसद्मनि यद् वादो रोचने दिवः ।
यद् वा समुद्रे अध्याकृते गृहे ऽत आ यातमश्विना १ ४६५

यद् वां यज्ञं मनवे संमिमिक्षथु—रेवेत् काण्वस्य बोधनम् ।
बृहस्पतिं विश्वान् देवाँ अहं हुव इन्द्राविष्णू अश्विनावाशुहेषसा २
त्या न्व१श्विना हुवे सुदंससा गृभे कृता ।
ययोरस्ति प्र णः सख्यं देवेष्वध्याप्यम् ३
ययोरधि प्र यज्ञा असूरे सन्ति सूरयः ।
ता यज्ञस्याध्वरस्य प्रचेतसा स्वधाभिर्या पिबतः सोम्यं मधु ४
यदद्याश्विनावपाग् यत् प्राक् स्थो वाजिनीवसू ।
यद् द्रुह्यव्यनवि तुर्वशे यदौ हुवे वामथ मा गतम् ५
यदन्तरिक्षे पतथः पुरुभुजा यद् वेमे रोदसी अनु ।
यद् वा स्वधाभिरधितिष्ठथो रथ—मत आ यातमश्विना ६ ४७०

॥ ५१ ॥ (ऋ. ८।१८।८)

(४७१) इरिम्बिठिः काण्वः । उष्णिक् ।

उत त्या दैव्या भिषजा शं नः करतो अश्विना । युयुयातामितो रपो अप स्रिधः ८ ४७१

॥ ५२ ॥ (ऋ. ८।२२।१-१८)

(४७२-४८९) सोभरिः काण्वः । १-६ प्रगाथः = (विषमा बृहती+समा सतोबृहती),
७ बृहती, ८ अनुष्टुप्, ११ ककुप्, ११ मध्येज्योतिः, प्रगाथः =
(९,१३,१५,१७, ककुप्; १०,१४,१६,१८ सतोबृहती)

ओ त्यमह्व आ रथ—मद्या दंसिष्ठमूतये ।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी आ सूर्यायै तस्थथुः १
पूर्वापुषं सुहवं पुरुस्पृहं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ।
सचनावन्तं सुमतिभिः सोभरे विद्वेषसमनेहसम् २
इह त्या पुरुभूतमा देवा नमोभिरश्विना ।
अर्वाचीना स्ववसे करामहे गन्तारा दाशुषो गृहम् ३
युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मान्यद् वामिषण्यति ।
अस्माँ अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती आ धेनुरिव धावतु ४
रथो यो वां त्रिवन्धुरो हिरण्याभीशुरश्विना ।
परि द्यावापृथिवी भूषति श्रुत—स्तेन नासत्या गतम् ५ ४७६

दशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः ।
ता वामद्य सुमतिभिः शुभस्पती अश्विना प्र स्तुवीमहि ६
उप नो वाजिनीवसू यातमृतस्य पथिभिः ।
येभिस्तृक्षिं वृषणा त्रासदस्यवं महे क्षत्राय जिन्वथः ७
अयं वामद्रिभिः सुतः सोमो नरा वृषण्वसू ।
आ यातं सोमपीतये पिबतं दाशुषो गृहे ८
आ हि रुहतमश्विना रथे कोशे हिरण्यये वृषण्वसू । युञ्जाथां पीवरीरिषः ९ ४८०
याभिः पक्थमवथो याभिरध्रिगुं याभिर्बभ्रुं विजोषसम् ।
ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गतं भिषज्यतं यदातुरम् १०
यदध्रिगावो अध्रिगू इदा चिदह्नो अश्विना हवामहे । वयं गीर्भिर्विपन्यवः ११
ताभिरा यातं वृषणोप मे हवं विश्वप्सुं विश्ववार्यम् ।
इषा मंहिष्ठा पुरुभूतमा नरा याभिः क्रिविं वावृधुस्ताभिरा गतम् १२
ताविदा चिदहानां तावश्विना वन्दमान उप ब्रुवे । ता ऊ नमोभिरीमहे १३
ताविद् दोषा ता उषसि शुभस्पती ता यामन् रुद्रवर्तनी ।
मा नो मर्ताय रिपवे वाजिनीवसू परो रुद्रावति ख्यतम् १४ ४८५
आ सुग्म्याय सुग्म्यं प्राता रथेनाश्विना वा सक्षणी । हुवे पितेव सोभरी १५
मनोजवसा वृषणा मदच्युता मक्षुंगमाभिरूतिभिः ।
आरात्ताच्चिद् भूतमस्मे अवसे पूर्वीभिः पुरुभोजसा १६
आ नो अश्वावदश्विना वर्तिर्यासिष्टं मधुपातमा नरा । गोमद् दस्रा हिरण्यवत् १७
सुप्रावर्गं सुवीर्यं सुष्ठु वार्यमनाधृष्टं रक्षस्विना ।
अस्मिन्ना वामायाने वाजिनीवसू विश्वा वामानि धीमहि १८ ४८९

॥ ५३ ॥ (ऋ. ८।२६।१-१९)

(४९०-५०८) विश्वमना वैयश्वः, व्यश्वो वाङ्गिरसः । उष्णिक्; १६-१९ गायत्री ।

युवोरु षू रथं हुवे सधस्तुत्याय सूरिषु । अतूर्तदक्षा वृषणा वृषण्वसू १ ४९०
युवं वरो सुषाम्णे महे तने नासत्या । अवोभिर्याथो वृषणा वृषण्वसू २
ता वामद्य हवामहे हव्येभिर्वाजिनीवसू । पूर्वीरिष इषयन्तावति क्षपः ३
आ वां वाहिष्ठो अश्विना रथो यातु श्रुतो नरा । उप स्तोमान् तुरस्य दर्शथः श्रिये ४ ४९३

जुहुराणा चिदश्विना ऽऽमन्येथां वृषण्वसू । युवं हि रुद्रा पर्षथो अति द्विषः ५
दुस्रा हि विश्वमानुषङ् मक्षूभिः परिदीयथः । धियंजिन्वा मधुवर्णा शुभस्पती ६ ४९५
उप नो यातमश्विना राया विश्वपुषा सह । मघवाना सुवीरावनपच्युता ७
आ मे अस्य प्रतीव्य१मिन्द्रनासत्या गतम् । देवा देवेभिरद्य सचनस्तमा ८
वयं हि वां हवामह उक्षण्यन्तो व्यश्ववत् । सुमतिभिरुप विप्राविहा गतम् ९
अश्विना स्वृषे स्तुहि कुवित् ते श्रवतो हवम् । नेदीयसः कूळयातः पणीँरुत १०
वैयश्वस्य श्रुतं नरो॒तो मे अस्य वेदथः । सजोषसा वरुणो मित्रो अर्यमा ११ ५००
युवादत्तस्य धिष्ण्या युवानीतस्य सूरिभिः । अहरहर्वृषा मह्यं शिक्षतम् १२
यो वां यज्ञेभिरावृतो ऽधिवस्त्रा वधूरिव । सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना १३
यो वामुरुव्यचस्तमं चिकेतति नृपाय्यम् । वर्तिरश्विना परि यातमस्मयू १४
अस्मभ्यं सु वृषण्वसू यातं वर्तिर्नृपाय्यम् । विषुद्रुहेव यज्ञमूहथुर्गिरा १५
वाहिष्ठो वां हवानां स्तोमो दूतो हुवन्नरा । युवाभ्यां भूत्वश्विना १६ ५०५
यदुदो दिवो अर्णव इषो वा मदथो गृहे । श्रुतमिन्मे अमर्त्या १७
उत स्या श्वेतयावरी वाहिष्ठा वां नदीनाम् । सिन्धुर्हिरण्यवर्तनिः १८
स्मदेतया सुकीर्त्या ऽश्विना श्वेतया धिया । वहेथे शुभ्रयावाना १९ ५०८

॥ ५४ ॥ (ऋ. ८।३५।१-२४)

(५०९-५३२) श्यावाश्व आत्रेयः । उपरिष्टाज्ज्योतिः (त्रिष्टुप्), २२,२४ पङ्क्तिः, २३ महाबृहती ।

अग्निनेन्द्रेण वरुणेन विष्णुना ऽऽदित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना १
विश्वाभिर्धीभिर्भुवनेन वाजिना दिवा पृथिव्याद्रिभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना २ ५१०
विश्वैर्देवैस्त्रिभिरेकादशैरिहा॒ऽद्भिर्मरुद्भिर्भृगुभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ३
जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चे॒षं नो वोळ्हमश्विना ४
स्तोमं जुषेथां युवशेव कन्यनां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चे॒षं नो वोळ्हमश्विना ५ ५१३

गिरो जुषेथामध्वरं जुषेथां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चे—षं नो वोळ्हमश्विना ६
हारिद्रवेव पतथो वनेदुप सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ७ ५१५
हंसाविव पतथो अध्वगाविव सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ८
श्येनाविव पतथो हव्यदातये सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ९
पिबतं च तृप्णुतं चा च गच्छतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चो—र्जं नो धत्तमश्विना १०
जयतं च प्र स्तुतं च प्र चावतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चो—र्जं नो धत्तमश्विना ११
हतं च शत्रून् यततं च मित्रिणः प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चो—र्जं नो धत्तमश्विना १२ ५२०
मित्रावरुणवन्ता उत धर्मवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चा—ऽऽदित्यैर्यातमश्विना १३
अङ्गिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चा—ऽऽदित्यैर्यातमश्विना १४
ऋभुमन्ता वृषणा वाजवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चा—ऽऽदित्यैर्यातमश्विना १५
ब्रह्म जिन्वतमुत जिन्वतं धियो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना १६
क्षत्रं जिन्वतमुत जिन्वतं नॄन् हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना १७ ५२५
धेनूर्जिन्वतमुत जिन्वतं विशो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना १८
अत्रेरिव शृणुतं पूर्व्यस्तुतिं श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चा—ऽश्विना तिरोअह्न्यम् १९ ५२७

सर्गाँ इव सृजतं सुष्टुतीरुप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाऽश्विना तिरोअह्न्यम् २०
रश्मीँरिव यच्छतमध्वराँ उप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाऽश्विना तिरोअह्न्यम् २१
अर्वाग् रथं नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ।
आ यातमश्विना गत मवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे २२ ५३०
नमोवाके प्रस्थिते अध्वरे नरा विवक्षणस्य पीतये ।
आ यातमश्विना गत मवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे २३
स्वाहाकृतस्य तृम्पतं सुतस्य देवावन्धसः ।
आ यातमश्विना गत मवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे २४ ५३२

॥ ५५ ॥ (ऋ. ८।४२।४-६)

(५३३-५३५) नाभाकः काण्वः, अर्चनाना आत्रेयो वा । अनुष्टुप् ।

आ वां ग्रावाणो अश्विना धीभिर्विप्रा अचुच्यवुः ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ४
यथा वामत्रिरश्विना गीर्भिर्विप्रो अजोहवीत् ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ५
एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ६ ५३५

॥ ५६ ॥ (ऋ. ८।५७। [९ वाल०] १-४)

(५३६-५३९) मेध्यः काण्वः । त्रिष्टुप् ।

युवं देवा क्रतुना पूर्व्येण युक्ता रथेन तविषं यजत्रा ।
आगच्छतं नासत्या शचीभि रिदं तृतीयं सवनं पिबाथः १
युवां देवास्त्रय एकादशासः सत्याः सत्यस्य ददृशे पुरस्तात् ।
अस्माकं यज्ञं सवनं जुषाणा पातं सोममश्विना दीद्यग्नी २
पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत् ताँ उप याता पिबध्यै ३
अयं वां भागो निहितो यजत्रे मा गिरो नासत्योप यातम् ।
पिबतं सोमं मधुमन्तमस्मे प्र दाश्वांसमवतं शचीभिः ४ ५३९

॥ ५७ ॥ (ऋ. ८।७३।१-१८)

(५४०-५५७) गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा । गायत्री ।

उदीराथामृतायते युञ्जाथामश्विना रथम् । अन्ति षद्भूतु वामवः १ ५४०

निमिषश्चिज्जवीयसा रथेना यातमश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः २

उप स्तृणीतमत्रये हिमेन घर्ममश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ३

कुह स्थः कुह जग्मथुः कुह श्येनेव पेतथुः । अन्ति षद्भूतु वामवः ४

यदद्य कर्हि कर्हि चि-च्छुश्रूयातमिमं हवम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ५

अश्विना यामहूतमा नेदिष्ठं याम्याप्यम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ६ ५४५

अवन्तमत्रये गृहं कृणुतं युवमश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ७

वरेथे अग्निमातपो वदते वल्ग्वत्रये । अन्ति षद्भूतु वामवः ८

प्र सप्तवध्रिराशसा धारामग्नेरशायत । अन्ति षद्भूतु वामवः ९

इहा गतं वृषण्वसू श्रृणुतं म इमं हवम् । अन्ति षद्भूतु वामवः १०

किमिदं वां पुराणव-ज्जरतोरिव शस्यते । अन्ति षद्भूतु वामवः ११ ५५०

समानं वां सजात्यं समानो बन्धुरश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः १२

यो वां रजांस्यश्विना रथो वियाति रोदसी । अन्ति षद्भूतु वामवः १३

आ नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रैरुप गच्छतम् । अन्ति षद्भूतु वामवः १४

मा नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रेभिरति ख्यतम् । अन्ति षद्भूतु वामवः १५

अरुणप्सुरुषा अभू-दकर्ज्योतिर्ऋतावरी । अन्ति षद्भूतु वामवः १६ ५५५

अश्विना सु विचाकशद् वृक्षं परशुमाँ इव । अन्ति षद्भूतु वामवः १७

पुरं न धृष्णवा रुज कृष्णया बाधितो विशा । अन्ति षद्भूतु वामवः १८ ५५७

॥ ५८ ॥ (ऋ. ८।८५।१-९)

(५५८-५६६) कृष्ण आङ्गिरसः । गायत्री ।

आ मे हवं नासत्या ऽश्विना गच्छतं युवम् । मध्वः सोमस्य पीतये १

इमं मे स्तोममश्विने-मं मे श्रृणुतं हवम् । मध्वः सोमस्य पीतये २

अयं वां कृष्णो अश्विना हवते वाजिनीवसू । मध्वः सोमस्य पीतये ३ ५६०

शृणुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा । मध्वः सोमस्य पीतये ४

छर्दिर्यन्तमदाभ्यं विप्राय स्तुवते नरा । मध्वः सोमस्य पीतये ५

गच्छतं दाशुषो गृह-मित्था स्तुवतो अश्विना । मध्वः सोमस्य पीतये ६ ५६३

युञ्जाथां रासभं रथे वीड्वङ्गे वृषण्वसू । मध्वः सोमस्य पीतये ७
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेना यातमश्विना । मध्वः सोमस्य पीतये ८
नू मे गिरो नासत्या ऽश्विना प्रावतं युवम् । मध्वः सोमस्य पीतये ९ ५६६

॥ ५९ ॥ (ऋ. ८।८६।१-५)

(५६७-५७१) कृष्ण आङ्गिरसः, विश्वको वा कार्ष्णिः । जगती ।

उभा हि दस्रा भिषजा मयोभुवो—भा दक्षस्य वचसो बभूवथुः ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् १
कथा नूनं वां विमना उप स्तव—द्युवं धियं ददथुर्वस्यइष्टये ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् २
युवं हि ष्मा पुरुभुजेममेधतुं विष्णाप्वे ददथुर्वस्यइष्टये ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ३
उत त्यं वीरं धनसामृजीषिणं दूरे चित् सन्तमवसे हवामहे ।
यस्य स्वादिष्ठा सुमतिः पितुर्यथा मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ४
ऋतेन देवः सविता शमायत ऋतस्य शृङ्गमुर्विया वि पप्रथे ।
ऋतं सासाह महि चित् पृतन्यतो मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ५ ५७१

॥ ६० ॥ (ऋ. ८।८७।१-६)

(५७२-५७७) कृष्ण आङ्गिरसो वासिष्ठो वा द्युम्नीकः, प्रियमेध आङ्गिरसो वा ।
प्रगाथः = (विषमा बृहती+समा सतोबृहती)

द्युम्नी वां स्तोमो अश्विना क्रिविर्न सेक आ गतम् ।
मध्वः सुतस्य स दिवि प्रियो नरा पातं गौराविवेरिणे १
पिबतं घर्मं मधुमन्तमश्विना ऽऽ बर्हिः सीदतं नरा ।
ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ नि पातं वेदसा वयः २
आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।
ता वर्तिर्यातमुप वृक्तबर्हिषो जुष्टं यज्ञं दिविष्टिषु ३
पिबतं सोमं मधुमन्तमश्विना ऽऽ बर्हिः सीदतं सुमत् ।
ता वावृधाना उप सुष्टुतिं दिवो गन्तं गौराविवेरिणम् ४
आ नूनं यातमश्विना ऽश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ५ ५७३

वयं हि वां हवामहे विपन्यवो विप्रासो वाजसातये ।
ता वल्गू दस्रा पुरुदंससा धिया ऽश्विना श्रुष्ट्या गतम् ६ ५७७

॥ ६१ ॥ (ऋ ८।१०१।७-८)
(५७८-५७९) जमदग्निर्भार्गवः । प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

आ मे वचांस्युद्यता द्युमत्तमानि कर्त्वा ।
उभा यातं नासत्या सजोषसा प्रति हव्यानि वीतये ७
रातिं यद् वामरक्षसं हवामहे युवाभ्यां वाजिनीवसू ।
प्राचीं होत्रां प्रतिरन्ताविंतं नरा गृणाना जमदग्निना ८ ५७९

॥ ६२ ॥ (ऋ. १०।२४।४-६)
(५८०-५८२) ऐन्द्रो विमदः, प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । अनुष्टुप् ।

युवं शक्रा मायाविना समीची निरमन्थतम् ।
विमदेन यदीळिता नासत्या निरमन्थतम् ४
विश्वे देवा अकृपन्त समीच्योर्निष्पतन्त्योः ।
नासत्यावब्रुवन् देवाः पुनरा वहतादिति ५
मधुमन्मे परायणं मधुमत् पुनरायनम् ।
ता नो देवा देवतया युवं मधुमतस्कृतम् ६ ५८२

॥ ६३ ॥ (ऋ. १०।३९।१-१४)
(५८३-६१०) काक्षीवती घोषा । जगती, १४ त्रिष्टुप् ।

यो वां परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोषामुषासो हव्यो हविष्मता ।
शश्वत्तमासस्तमु वामिदं वयं पितुर्न नाम सुहवं हवामहे १
चोदयतं सूनृताः पिन्वतं धिय उत् पुरंधीरीरयतं तदुश्मसि ।
यशसं भागं कृणुतं नो अश्विना सोमं न चारुं मघवत्सु नस्कृतम् २
अमाजुरश्चिद् भवथो युवं भगो ऽनाशोश्चिदवितारापमस्य चित् ।
अन्धस्य चिन्नासत्या कृशस्य चिद् युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चित् ३ ५८५
युवं च्यवानं सनयं यथा रथं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः ।
निष्टौग्र्यमूहथुरद्भ्यस्परि विश्वेत् ता वां सवनेषु प्रवाच्या ४
पुराणा वां वीर्याई प्र ब्रवा जने ऽथो हासथुर्भिषजा मयोभुवा ।
ता वां नु नव्याववसे करामहे ऽयं नासत्या श्रदरिर्यथा दधत् ५ ५८७

इयं वामह्वे शृणुतं मे अश्विना पुत्रायेव पितरा मह्यं शिक्षतम् ।
अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरा तस्या अभिशस्तेरव स्पृतम् ६
युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवं न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम् ।
युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छतं युवं सुषुतिं चक्रथुः पुरंधये ७
युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः पुनः कलेरकृणुतं युवद् वयः ।
युवं वन्दनमृश्यदादुदूपथु-र्युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः ८ ५९०
युवं ह रेभं वृषणा गुहा हित-मुदैरयतं ममृवांसमश्विना ।
युवमृबीसमुत तप्तमत्रय ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवध्रये ९
युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वं नवभिर्वाजैर्नवती च वाजिनम् ।
चर्कृत्यं ददथुर्द्रावयत्सखं भगं न नृभ्यो हव्यं मयोभुवम् १०
न तं राजानावदिते कुतश्चन नांहो अश्नोति दुरितं नकिर्भयम् ।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी पुरोरथं कृणुथः पत्न्या सह ११
आ तेन यातं मनसो जवीयसा रथं यं वामृभवश्चक्रुरश्विना ।
यस्य योगे दुहिता जायते दिव उभे अहनी सुदिने विवस्वतः १२
ता वर्तिर्यातं जयुषा वि पर्वत-मपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना ।
वृकस्य चिद् वर्तिकामन्तरास्याद् युवं शचीभिर्ग्रसितामभुञ्चतम् १३ ५९५
एतं वां स्तोममश्विनावकर्मा-तक्षाम भृगवो न रथम् ।
न्यमृक्षाम योषणां न मर्ये नित्यं न सूनुं तनयं दधानाः १४

॥ ६४ ॥ (ऋ. १०।४०।१-१४)

रथं यान्तं कुह को ह वां नरा प्रति द्युमन्तं सुविताय भूषति ।
प्रातर्यावाणं विभ्वं विशेविशे वस्तोर्वस्तोर्वहमानं धिया शमि १
कुह स्विद् दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः ।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ २
प्रातर्जरेथे जरणेव कापया वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो गृहम् ।
कस्य ध्वस्रा भवथः कस्य वा नरा राजपुत्रेव सवनाव गच्छथः ३
युवां मृगेव वारणा मृगण्यवो दोषा वस्तोर्हविषा नि ह्वयामहे ।
युवं होत्रामृतुथा जुह्वते नरे-षं जनाय वहथः शुभस्पती ४ ६००

युवां ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वां नरा ।
भूतं मे अह्न उत भूतमक्तवे ऽश्वावते रथिने शक्तमर्वते ५
युवं कवी ष्ठः पर्यश्विना रथं विशो न कुत्सो जरितुर्नशायथः ।
युवोर्ह मक्षा पर्यश्विना मध्वा ऽऽसा भरत निष्कृतं न योषणा ६
युवं ह भुज्युं युवमश्विना वशं युवं शिञ्जारमुशनामुपारथुः ।
युवो ररावा परि सख्यमासते युवोरहमवसा सुम्नमा चके ७
युवं ह कृशं युवमश्विना शयुं युवं विधन्तं विधवामुरुष्यथः ।
युवं सनिभ्यः स्तनयन्तमश्विना ऽपं व्रजमूर्णुथः सप्तास्यम् ८
जनिष्ट योषा पतयत् कनीनको वि चारुहन् वीरुधो दंसना अनु ।
आस्मै रीयन्ते निवनेव सिन्धवो ऽस्मा अह्ने भवति तत् पतित्वनम् ९ ६०५
जीवं रुदन्ति वि मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे १०
न तस्य विद्म तदु षु प्र वोचत युवा ह यद् युवत्याः क्षेति योनिषु ।
प्रियोस्रियस्य वृषभस्य रेतिनो गृहं गमेमाश्विना तदुश्मसि ११
आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अयंसत ।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्याँ अशीमहि १२
ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ धत्तं रयिं सहवीरं वचस्यवे ।
कृतं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथेष्ठामप दुर्मतिं हतम् १३
क्व स्विदद्य कतमास्वश्विना विक्षु दस्रा मादयेते शुभस्पती ।
क ईं नि येमे कतमस्य जग्मतु ऽर्विप्रस्य वा यजमानस्य वा गृहम् १४ ६१०

॥ ६५ ॥ (ऋ. १०।४१।१-३)

(ऋ. ६११-६१३) सुहस्त्यो घौषेयः । जगती ।

समानमु त्यं पुरुहूतमुक्थ्यं रथं त्रिचक्रं सवना गनिग्मतम् ।
परिज्मानं विदथ्यं सुवृक्तिभि ऽर्वयं व्युष्टा उषसो हवामहे १
प्रातर्युजं नासत्याधि तिष्ठथः प्रातर्यावाणं मधुवाहनं रथम् ।
विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा कीरेश्चिद् यज्ञं होतृमन्तमश्विना २
अध्वर्युं वा मधुपाणिं सुहस्त्य ऽमग्निधं वा धृतदक्षं दमूनसम् ।
विप्रस्य वा यत् सवनानि गच्छथो ऽत आ यातं मधुपेयमश्विना ३ ६१३

॥ ६६ ॥ (ऋ. १०।१०६।१-११

(६१४-६२४) भूतांशः काश्यपः । त्रिष्टुप् ।

उभा उ नूनं तदिदर्थयेथे वि तन्वाथे धियो वस्त्रापसेव ।
सध्रीचीना यातवे प्रेमजीगः सुदिनेव पृक्ष आ तंसयेथे १
उष्टारेव फर्वरेषु श्रयेथे प्रायोगेव श्वात्र्या शासुरेथः ।
दूतेव हि ष्ठो यशसा जनेषु माप स्थातं महिषेवावपानात् २ ६१५
साकंयुजा शकुनस्येव पक्षा पश्वेव चित्रा यजुरा गमिष्टम् ।
अग्निरिव देवयोर्दीदिवांसा परिज्मानेव यजथः पुरुत्रा ३
आपी वो अस्मे पितरेव पुत्रो ग्रेव रुचा नृपतीव तुर्यै ।
इर्येव पुष्ट्यै किरणेव भुज्यै श्रुष्टीवानेव हवमा गमिष्टम् ४
वंसगेव पूषर्या शिम्बाता मित्रेव ऋता शतरा शातपन्ता ।
वाजेवोच्चा वयसा घर्म्येष्ठा मेषेवेषा सपर्या३ पुरीषा ५
सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका ।
उदन्यजेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मरायु ६
पज्रेव चर्चरं जारं मरायु क्षद्मेवार्थेषु तर्तरीथ उग्रा ।
ऋभू नापत् खरमज्रा खरज्रु र्वायुर्न पर्फरत् क्षयद् रयीणाम् ७ ६२०
घर्मेव मधु जठरे सनेरू भगेविता तुर्फरी फारिवारम् ।
पतरेव चचरा चन्द्रनिर्णिङ् मनऋङ्गा मनन्या३ न जग्मी ८
बृहन्तेव गम्भरेषु प्रतिष्ठां पादेव गाधं तरते विदाथः ।
कर्णेव शासुरनु हि स्मराथो ऽंशेव नो भजतं चित्रमप्नः ९
आरङ्गरेव मध्वेरयेथे सारघेव गवि नीचीनबारे ।
कीनारेव स्वेदमासिष्विदाना क्षामेवोर्जा सूयवसात् सचेथे १०
ऋध्याम स्तोमं सनुयाम वाज मा नो मन्त्रं सरथेहोप यातम् ।
यशो न पक्वं मधु गोष्वन्त रा भूतांशो अश्विनोः काममप्राः ११ ६२४

॥ ६७ ॥ (ऋ. १०।१३१।४-५)

(६२५-६२६) सुकीर्तिः काक्षीवतः । ४ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ४ ६२५

पुत्रमिव पितरावश्विनोभे--न्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः ।
यत् सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ५ ६२६

॥ ६८ ॥ (ऋ. १०।१४३।१-६)

(६२७-६३२) अत्रिः सांख्यः । अनुष्टुप् ।

त्यं चिदत्रिमृतजुर--मर्थमश्वं न यातवे ।
कक्षीवन्तं यदी पुना रथं न कृणुथो नवम् १
त्यं चिदश्वं न वाजिन--मरेणवो यमत्नत ।
दृळ्हं ग्रन्थिं न वि ष्यत--मत्रिं यविष्ठमा रजः २
नरा दंसिष्ठावत्रये शुभ्रा सिषासतं धियः ।
अथा हि वां दिवो नरा पुनः स्तोमो न विशसे ३
चिते तद् वां सुराधसा रातिः सुमतिरश्विना ।
आ यन्नः सदने पृथौ समने पर्षथो नरा ४ ६३०
युवं भुज्युं समुद्र आ रजसः पार ईङ्खितम् ।
यातमच्छा पतत्रिभि--र्नासत्या सातये कृतम् ५
आ वां सुम्नैः शंयू इव मंहिष्ठा विश्ववेदसा ।
समस्मे भूषतं नरो--त्सं न पिप्युषीरिषः ६ ६३२

॥ ६९ ॥ (ऋ. १०।१८४।३)

(६३३) त्वष्टा गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्यः । अनुष्टुप् ।

हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना ।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ३ ६३३

॥ ७० ॥ (६३४-६३८) (वा. य. १४।१-५)

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद साधुया ।
उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा १
कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः ।
अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाध्वर्यू
सादयतामिह त्वा २ ६३५

स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानां सुम्ने बृहते रणाय ।
पितेवैधि सूनवऽआ सुशेवा स्वावेशा तन्वा संविशस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ३
पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वेऽअभिगृणन्तु देवाः ।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणायजस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ४
अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धर्त्रीं विष्टम्भनीं दिशामधिपत्नीं भुवनानाम् ।
ऊर्मिर्द्रप्सोऽअपामसि विश्वकर्मा तऽऋषिरश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ५ ६३८

॥ ७१ ॥ (६३९-६४०) (वा. य. ३८।१०,१३)

विश्वाऽआशा दक्षिणसद् विश्वान् देवानयाडिह ।
स्वाहाकृतस्य घर्मस्य मधोः पिबतमश्विना १०
अपातामश्विना घर्ममनु द्यावापृथिवीऽअमंसाताम् ।
इहैव रातयः सन्तु १३ ६४०

॥ ७२ ॥ (साम० ३०५)

(६४१) अश्विनौ वैवस्वतौ । बृहती ।

कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः ।
घ्नता वामश्मया क्षयमाणोऽशुनेत्थमु आद्वन्यथा ३ ६४१

॥ ७३ ॥ (अथर्व ७।२९।६)

(६४२-६४५) अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

शिवाभिष्टे हृदयं तर्पयाम्यनमीवो मोदिषीष्ठाः सुवर्चाः ।
सवासिनौ पिबतां मन्थमेतमश्विनो रूपं परिधाय मायाम् ६ ६४२

॥ ७४ ॥ (अथर्व० ६।५०।१-३)

अथर्वा (अभयकामः) । १ विराड् जगती, २-३ पथ्यापङ्क्तिः ।

हतं तर्दं समङ्कमाखुमश्विना छिन्तं शिरो अपि पृष्टीः शृणीतम् ।
यवान्नेददानपि नह्यतं मुखमथाभयं कृणुतं धान्याय १
तर्द है पतङ्ग है जभ्य हा उपक्वस ।
ब्रह्मेवासंस्थितं हविरनदन्त इमान्यवानहिंसन्तो अपोदित २ ६४४

तदौपते वघापते तृष्टजम्भा आ शृणोत मे ।
य आरण्या व्यद्वरा ये के च स्थ व्यद्वरास्तान्त्सर्वाञ् जम्भयामसि ३ ६४५

॥ ७५ ॥ (अथर्व० ९।३०।१)

(६४६) प्रजापतिः । अनुष्टुप् ।

सं चेन्नयाथो अश्विना कामिना सं च वक्षथः ।
सं वां भगासो अग्मत सं चित्तानि समु व्रता २ ६४६

॥ ७६ ॥ (अथर्व० ६।१०२।१-३

(६४७-६४९ जदग्निः । अनुष्टुप्)

यथायं वाहो अश्विना समैति सं च वर्तते । एवा मामभि ते मनः समैतु सं च वर्तताम् १
आहं खिदामि ते मनो राजाश्वः पृष्ट्यामिव। रेष्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः २
आञ्जनस्य मदुघस्य कुष्ठस्य नलदस्य च । तुरो भगस्य हस्ताभ्या-मनुरोधनमुद्भरे ३ ६४९

॥ ७७ ॥ (अथर्व० ६।१४१।१-३)

(६५०-६५२) विश्वामित्रः । अनुष्टुप् ।

वायुरेनाः समाकरत् त्वष्टा पोषाय ध्रियताम् । इन्द्र आभ्यो अधि ब्रवद् रुद्रो भूम्ने चिकित्सतु १
लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि । अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु २
यथा चक्रुर्देवासुरा यथा मनुष्या उत । एवा सहस्रपोषाय कृणुतं लक्ष्माश्विना ३ ६५२

अश्विसहचारी-देवगणः ।

(१) अश्विसरस्वतीन्द्राः ।

+ ॥ ७८ ॥ (६५३-६६९) (वा य. १९।३३-३५)

यस्ते रसः सम्भृतऽओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य ।
तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ३३
यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय ।
इमं तꣳ शुक्रं मधुमन्तमिन्दुꣳ सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ३४
यदत्र रिप्तꣳ रसिनः सुतस्य यदिन्द्रोऽअपिबच्छचीभिः ।
अहं तदस्य मनसा शिवेन सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ३५ ६५५

+ वा० य० २०।५५-६६; २१।२९-४० । दै० [अग्निः] २०२५-२०३६; २०४८-२०५९
वा० य० १९।३२,८०-८९; २०।७३-७७,८०,९० । दै० [इन्द्रः] २९३७-२९५३; २९५७-२९६३ ।

॥ ७९ ॥ (वा. य. २०।६७-६९)

अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती ।
आ शुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे ६७
यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्धयन् ।
स बिभेद वलं मघं नमुचावासुरे सचा ६८
तमिन्द्रं पशवः सचाश्विनोभा सरस्वती ।
दधानाऽअभ्यनूषत हविषा यज्ञऽइन्द्रियैः ६९

॥ ८० ॥ (वा. य. २१।४८-५८)

देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रेऽअश्विना ।
तेजो न चक्षुरक्ष्योर्बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ४८
देवीर्द्वारोऽअश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती ।
प्राणं न वीर्यं नसि द्वारो दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ४९ ६६०
देवीऽउषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती ।
बलं न वाचमास्य ऽउषाभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ५०
देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन् ।
श्रोत्रं न कर्णयोर्यशो जोष्ट्रीभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ५१
देवीऽऊर्जाहुती दुघे सुदुघेन्द्रे सरस्वत्यश्विना भिषजावतः ।
शुक्रं न ज्योति स्तनयोराहुती धत्तऽइन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ५२
देवा देवानां भिषजा होताराविन्द्रमश्विना ।
वषट्कारैः सरस्वती त्विषिं न हृदये मतिꣳ होतृभ्यां दधुरिन्द्रियं
वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ५३
देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीरश्विनेडा सरस्वती ।
शूषं न मध्ये नाभ्यामिन्द्राय दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ५४ ६६५
देवऽइन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथः सरस्वत्याश्विभ्यामीयते रथः ।
रेतो न रूपममृतं जनित्रमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ५५
देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो ऽअश्विभ्याꣳ सरस्वत्या सुपिप्पलऽइन्द्राय पच्यते मधु ।
ओजो न जूतिर्ऋषभो न भामं वनस्पतिर्नो दधदिन्द्रियाणि
वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ५६ ६६७

देवं बर्हिर्वारितीनामध्वरे स्तीर्णमश्विभ्यामूर्णम्रदाः सरस्वत्या स्योनमिन्द्र ते सदः ।
ईशायै मन्युं राजानं बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ५७
देवोऽअग्निः स्विष्टकृद् देवान् यक्षद् यथायथं होताराविन्द्रमश्विना वाचा वाचं सरस्वती-
मग्निं सोमं स्विष्टकृत् स्विष्टऽइन्द्रः सुत्रामा सविता वरुणो भिषगिष्टो देवो वनस्पतिः स्विष्टा
देवाऽआज्यपाः स्विष्टोऽअग्निरग्निना होता होत्रे स्विष्टकृद् यशो न दधदिन्द्रियमूर्जमपचितिं
स्वधां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ५८ ६६९

(२) अश्विसूर्यादयः ।

॥ ८१ ॥ (वा० य० ३८।१२)

अश्विना घर्मं पातं हार्द्वानमहर्दिवाभिरूतिभिः ।
तन्त्रायिणे नमो द्यावापृथिवीभ्याम् १२ ६७०

(३) अश्विनौ, बृहस्पतिः ।

॥ ८२ ॥ (अथर्व० ५।२६।१२)

(६७१) ब्रह्मा । परातिशक्वरी चतुष्पदा गायत्री ।

अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ ।
बृहस्पते ब्रह्मणा याह्यर्वाङ् यज्ञो अयं स्वरिदं यजमानाय स्वाहा १२ ६७१

(४) श्येनः, अश्विनौ ।

॥ ८३ ॥ (अथर्व० ३।३।४)

(६७२-६८८) अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

श्येनो हव्यं नयत्वा परस्मादन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम् ।
अश्विना पन्थां कृणुतां सुगं त इमं सजाता अभिसंविशध्वम् ४

(५) अश्विनौ, द्यौष्पिता ।

॥ ८४ ॥ (अथर्व० ६।४।३) त्रिपदा विराड् गायत्री ।

धिये समश्विना प्रावतं न उरुष्या ण उरुज्मन्नप्रयुच्छन् ।
द्यौ३ष्पितर्यावय दुच्छुना या ५ ६७३

(६) बृहस्पतिः, अश्विनौ।

॥ ८५ ॥ (अथर्व० ६।६९।१-३) अनुष्टुप्।

गिरावरगराटेषु हिरण्ये गोषु यद्यशः। सुरायां सिच्यमानायां कीलाले मधु तन्मयि १
अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती। यथा भर्गस्वतीं वाच—मावदानि जनाँ अनु २ ६७५
मयि वर्चो अथो यशो—ऽथो यज्ञस्य यत् पयः। तन्मयि प्रजापति—र्दिवि द्यामिव दृंहतु ३

(७) सांमनस्यं, अश्विनौ।

॥ ८६ ॥ (अथर्व० ७।५२।१-२) १ ककुम्मत्यनुष्टुप्, २ जगती।

संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः।
संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम् १
सं जानामहै मनसा सं चिकित्वा मा युष्महि मनसा दैव्येन।
मा घोषा उत्स्थुर्बहुले विनिर्हते मेषुः पप्तदिन्द्रस्याहन्यागते २

(८) घर्मः, अश्विनौ।

॥ ८७ ॥ (अथर्व० ७।७३।१-५,८) १,४ जगती, २ पथ्याबृहती, ३,५,८ त्रिष्टुप्।

समिद्धो अग्निर्वृषणा रथी दिवस्तप्तो घर्मो दुह्यते वामिषे मधु।
वयं हि वां पुरुदमासो अश्विना हवामहे सधमादेषु कारवः १
समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो वां घर्म आ गतम्।
दुह्यन्ते नूनं वृषणेह धेनवो दस्रा मदन्ति वेधसः २ ६८०
स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो यो अश्विनोश्चमसो देवपानः।
तमु विश्वे अमृतासो जुषाणा गन्धर्वस्य प्रत्यास्ना रिहन्ति ३
यदुस्रियास्वाहुतं घृतं पयोऽयं स वामश्विना भाग आ गतम्।
माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती तप्तं घर्मं पिबतं रोचने दिवः ४
तप्तो वां घर्मो नक्षतु स्वहोता प्र वामध्वर्युश्चरतु पयस्वान्।
मधोर्दुग्धस्याश्विना तनाया वीतं पातं पयस उस्रियायाः ५
हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसा न्यागन्।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ८ ६८४

(९) मधु, अश्विनौ ।

॥ ८८ ॥ (अथर्व० ९।१।११,१६-१७,१९) अनुष्टुप्, १७ उपरिष्टाद्विराड् बृहती ।

यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोर्भवति प्रियः ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ११ ६८५
यथा मधु मधुकृतः संभरन्ति मधावधि ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् १६
यथा मक्षा इदं मधु न्यञ्जन्ति मधावधि ।
एवा मे अश्विना वर्च—स्तेजो बलमोजश्च ध्रियताम् १७
अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती ।
यथा वर्चस्वतीं वाच—मावदानि जनाँ अनु १९ ६८८

(१०) सिनीवालीसरस्वत्यश्विनः ।

॥ ८९ ॥ (ऋ. १०।१८४।२)

(६८९) त्वष्टा गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्यः । अनुष्टुप् ।

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवा—वा धत्तां पुष्करस्रजा २ ६८९



अश्विनौ-देवता-पुनरुक्त-मन्त्रभागाः।

ऋग्वेदस्य प्रथमं मण्डलम्।

[५] १।२२।१ (मेधातिथिः काण्वः। अश्विनौ)
अश्विनावेह गच्छताम्।
अस्य सोमस्य पीतये।
(२८४) ५।७५।७ (अवस्युरात्रेयः। अश्विनौ)
अश्विनावेह गच्छतं।
(२९७) ५।७८।१ (सप्तवध्रिरात्रेयः। अश्विनौ)
(इन्द्रः ३२१३) १।२३।२ (मेधातिथिः काण्वः। इन्द्रवायू)
—हवामहे।
अस्य सोमस्य पीतये।
(इन्द्रः ३३२१) ४।४९।१ (वामदेवो गौतमः। इन्द्राबृहस्पती)
५।७१।३ (बाहुवृक्त आत्रेयः। मित्रावरुणौ)
अस्य...।
(इन्द्रः ३०५५) ६।५९।१० (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। इन्द्राग्नी)
अस्य...।
(इन्द्रः ६३३) ८।७६।६ (कुरुसुतिः काण्वः। इन्द्रः)
अस्य...।
(मरुतः ४०४-६) ८।९४।१०-१२ (बिन्दुः पूतदक्षो वा आङ्गिरसः। मरुतः)

[६] १।२२।२ (मेधातिथिः काण्वः। अश्विनौ)
उभा देवा दिविस्पृशा। ...हवामहे।
(इन्द्रः ३२१३) १।२३।२ (मेधातिथिः काण्वः इन्द्रवायू)
उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे।

[७] १।२२।३ तया **यज्ञं मिमिक्षतम्।**
(४२) १।४७।३ मध्वा **यज्ञं मिमिक्षतम्।**

[१०] १।३०।१८ (शुनःशेप आजीगर्तिः। अश्विनौ)
समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः।
(२८६) ५।७५।९ (अवस्युरात्रेयः। अश्विनौ)
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यः।

[११] १।३०।१९ (शुनःशेप आजीगर्तिः। अश्विनौ)
चक्रं रथस्य येमथुः। परि द्यामन्यदीयते।
(२६०) ५।७३।३ (पौर आत्रेयः। अश्विनौ)
ईर्मान्यद् वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः।

[२१] १।३४।१० (हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः। अश्विनौ)
मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः।
...रथम्।
(२३९) ४।४५।३ (वामदेवो गौतमः। अश्विनौ)
......आ रजः। **—रथम्।**

[२२] १।३४।११ आ नासत्या **त्रिभिरेकादशैः।**
(५११) ८।३५।३ (श्यावाश्व आत्रेयः। अश्विनौ)
विश्वेर्देवैस्त्रिभिरेकादशैः।

[२२] १।३४।११ (हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः। अश्विनौ)
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा।
(१६६) १।१५७।४ (दीर्घतमा औचथ्यः। अश्विनौ

[२३] १।३४।१२ (हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः। अश्विनौ)
वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवतं वाजसातौ।
[७५] १।११२।२४ (कुत्स आङ्गिरसः। अश्विनौ)
अवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ।

[२५] १।३६।२ (प्रस्कण्वः काण्वः। अश्विनौ)
मनोतरा रयीणाम्।
(४३२) ८।८।१२ (सध्वंसः काण्वः। अश्विनौ)

[२६] १।४६।३ (प्रस्कण्वः काण्वः। अश्विनौ)
यद् वां रथो विभिष्पतात्।
(४०५) ८।५।२२ (ब्रह्मातिथिः काण्वः। अश्विनौ)

[३०] १।४६।७ (प्रस्कण्वः काण्वः। अश्विनौ)
युञ्जाथामश्विना रथम्।
(५४०) ८।७३।१ (गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा। अश्विनौ)

[३९] १।४७।१ (प्रस्कण्वः काण्वः। अश्विनौ)
अयं वां मधुमत्तमः **सुतः सोम ऋतावृधा।**
२।४१।४ (गृत्समदः शौनकः। मित्रावरुणौ)
अयं वां मित्रावरुणा **सुतः सोम ऋतावृधा।**

[४०] १।४७।२ (प्रस्कण्वः काण्वः। अश्विनौ)
रथेना यातमश्विना।
(४३१) ८।८।११ (सध्वंसः काण्वः। अश्विनौ)

(४३४) ८।८।१४ (सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)
अतः— ।
[४१] १।४७।३ (प्रस्कण्वः काण्वः । अश्विनौ)
पातं सोममृतावृधा ।
—दाश्वांसमुप गच्छतम् ।
(४३) १।४७।५ (प्रस्कण्वः काण्वः । अश्विनौ)
पातं— ।
३।६२।१८ (विश्वामित्रो गाथिनः, जमदग्निर्वा । मित्रावरुणौ)
पातं— ।
७।६६।१९ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मित्रावरुणौ)
पातं— ।
(५७६)८।८७।५ (कृष्ण आङ्गिरसो द्युम्नीको वा वासिष्ठः, प्रियमेध आङ्गिरसो वा । अश्विनौ)
पातं— ।
(इन्द्रः ३१२४)४।४६।५ (वामदेवो गौतमः । इन्द्रवायू)
दाश्वांसमुप गच्छतम् ।
[४१; ४४] १।४७।३,६ (प्रस्कण्वः काण्वः । अश्विनौ)
अथाद्य (६ सुदासे) **दस्रा वसु बिभ्रता ।**
[४२] १।४७।४ मध्वा **यज्ञं मिमिक्षतम् ।**
(७) १।२२।३ तया **यज्ञं—** ।
[४२] १।४७।४ (प्रस्कण्वः काण्वः । अश्विनौ)
युवां हवन्ते अश्विना ।
(४००) ८।५।१७ ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ)
[४३] १।४७।५ **ताभिः** ष्व१स्माँ **अवतं शुभस्पती ।**
(इन्द्रः ३२०४) ८।५९ (वाल० ११) ।३
(सुपर्णः काण्वः । इन्द्रावरुणौ)
ताभिर्दाश्वांसमवतं शुभस्पती ।
[४५] १।४७।७ (प्रस्कण्वः काण्वः । अश्विनौ)
यन्नासत्या परावति यद् वा स्थो अधि तुर्वशे ।
अतो रथेन सुवृता न **आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥**
(४३४) ८।८।१४ (सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)
यन्नासत्या परावति यद् वा स्थो अध्यम्बरे ।
अतः सहस्रनिर्णिजा **रथेना** यातमश्विना ।
१।१३७।२ (परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ)
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।
५।७९।८ (सत्यश्रवा आत्रेयः । उषाः)
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।
८।१०१।२ (जमदग्निर्भार्गवः । मित्रावरुणौ)
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।
[४६] १।४७।८ (प्रस्कण्वः काण्वः । अश्विनौ)
अर्वाञ्चा वां **सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ।**
इषं पृञ्चन्ता **सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा ॥**
(इन्द्रः २४२) ८।४।१४ (देवातिथिः काण्वः । इन्द्रः)
अर्वाञ्चं त्वा **सप्तयोऽध्वरश्रियो—** ।
१।९२।३ (गोतमो राहूगणः । उषाः]
इषं वहन्तीः **सुकृते सुदानवे ।**
(५७३) ८।८७।२ (कृष्ण आङ्गिरसो द्युम्नीको वा वासिष्ठः, प्रियमेध आङ्गिरसो वा । अश्विनौ)
आ बर्हिः सीदतं नरा ।
(५७५) ८।८७।४ (कृष्ण आङ्गिरसो० ... । अश्विनौ)
आ बर्हिः सीदतं सुमत् ।
[४७] १।४७।९ (प्रस्कण्वः काण्वः । अश्विनौ)
तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा ।
(४७६) ८।२२।५ (सोभरिः काण्वः । अश्विनौ)
...तेन नासत्या गतम् ।
(४२१) ८।८।२ (सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)
रथेन सूर्यत्वचा ।
[४७] १।४७।९ **मध्वः सोमस्य पीतये ।**
(५५८-५६६) ८।८५।१-९ (कृष्ण आङ्गिरसः । अश्विनौ)
[४९] १।९२।१६ (गोतमो राहूगणः । अश्विनौ)
अर्वाग् रथं समनसा **नि यच्छतम् ।**
(३७९) ७।७४।२ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ)
(५३०) ८।३५।२२ (श्यावाश्व आत्रेयः । अश्विनौ)
अर्वाग् रथं नि यच्छतं ।
[५०] १।९२।१७ (गोतमो राहूगणः । अश्विनौ)
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ।
(१३६) १।१५७।४ (दीर्घतमा औचथ्यः । अश्विनौ)
[५१] १।९२।१८ (गोतमो राहूगणः । अश्विनौ)
दस्रा हिरण्यवर्तनी ।
(२७९) ५।७५।२ (अवस्युरात्रेयः । अश्विनौ)
(३९४) ८।५।११ (ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ)
(४२१) ८।८।१ (सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)
(५७६) ८।८७।५ (कृष्ण आङ्गिरसो द्युम्नीको वा वासिष्ठः, प्रियमेध आङ्गिरसो वा । अश्विनौ)
[५१] १।९२।१८ उषर्बुधो **वहन्तु सोमपीतये ।**
(इन्द्रः ११०) ८।१।२४ (मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ । इन्द्रः)

[५२-७४] १।११२।१-२३ (कुत्स आङ्गिरसः। अश्विनौ)

ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्।

[५६] १।११२।५ (कुत्स आङ्गिरसः। अश्विनौ)

याभी **रेभं** निवृतं सितमद्भ्य **उद्वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे**।

(१३२) १।११८।६ (कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः। अश्विनौ)

उद्वन्दनमैरयतं दंसनाभिरुद् **रेभं**।

[५९] १।११२।८ याभिर्**वर्तिकां ग्रसिताममुञ्चतं**।

(५९५) १०।३९।१३ (काक्षीवती घोषा। अश्विनौ)

वर्तिकाम्...युवं शचीभिर्**ग्रसिताममुञ्चतम्**।

[७१] १।११२।२० (कुत्स आङ्गिरसः। अश्विनौ)

भुज्युं **याभिरवथो याभिरध्रिगुम्**।

(४८१) ८।२२।१० (सोभरिः काण्वः। अश्विनौ)

याभिः पक्थ**मवथो याभिरध्रिगुम्**।

[७५] १।११२।२४=(१३) १।३४।१२ (हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः। अश्विनौ)

वृधे च नो भवतं वाजसातौ।

[७६] १।११२।२५ **तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः।**

=(अग्निः २७१) १।९४।१६; (१८७८) १।९५।११; (१८७८) १।९६।९; (१७२६) १।९८।३

=(इन्द्रः ९७५) १।१००।१९; (८२७) १।१०१।११; (८३८) १।१०२।११; (८४६) १।१०३।८; (३०२०) १।१०८।१३; (३०२८) १।१०९।८

=१।१०५।१९ (त्रित आप्त्यः कुत्स आङ्गिरसो वा। विश्वे देवाः)

=१।१०६।७=१।१०७।३ (कुत्स आङ्गिरसः। विश्वे देवाः)

=१।११०।९=१।१११।५ (कुत्स आङ्गिरसः। ऋभवः)

=१।११३।२० (कुत्स आङ्गिरसः। उषाः)

=१।११४।११ (कुत्स आङ्गिरसः। रुद्रः)

=१।११५।६ (कुत्स आङ्गिरसः। सूर्यः)

(सोमः ९१४) ९।९७।५८ (कुत्स आङ्गिरसः। सोमः)

[८३] १।११६।७ (कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः। अश्विनौ)

युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते।

कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः **शतं कुम्भाँ असिश्चतं** सुरायाः।

(१०८) १।११६।७ (कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः। अश्विनौ)

युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय।

(१०७) १।११७।६ (कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः। अश्विनौ)

तद् वां **नरा** शंस्यं **पज्रियेण कक्षीवता...**।

शफादश्वस्य वाजिनो जनाय **शतं कुम्भाँ असिश्चतं** मधूनाम्।

[९१] १।११६।१६ (कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः। अश्विनौ)

शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं **पितान्धं चकार**।

तस्मा **अक्षी** नासत्या **विचक्ष आधत्तं**।

(११८) १।११७।१७ (कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः। अश्विनौ)

शतं मेषान् वृक्ये मामहानं तमः...**पित्रा**।

आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनाव**धत्तं...विचक्षे**।

(११९) १।११७।१८ **चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान्**

[१०३] १।११७।२ (कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः। अश्विनौ)

यो वामश्विना **मनसो जवीयान्**।

येन गच्छथः **सुकृतो दुरोणं**।

(२०२) १।१८३।१ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। अश्विनौ)

मनसो यो जवीयान्।

येनोपयाथः **सुकृतो दुरोणं**।

[१०७] १।११७।६=(८३) १।११६।७ (कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः। अश्विनौ)

शतं कुम्भाँ असिश्चतं मधूनाम् (७सुरायाः)।

[१०८] १।११७।७=(८३) १।११६।७ **युवं नरा स्तुवते** कृष्णियाय (७ पज्रियाय)

[११०] १।११७।९ (कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः। अश्विनौ)

पेदव ऊहथुराशुमश्वम्।

(३६६) ७।७१।५ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। अश्विनौ)

[११८] १।११७।१७=(९१) १।११६।१६ **शतं मेषान् वृक्ये** मामहानं (१६ चक्षदानम्)।

[१२१] १।११७।२० (कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः। अश्विनौ)

युवं शचीभिर्**विमदाय** जायां **न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम्**।

(५८९) १०।३९।७ (काक्षीवती घोषा। अश्विनौ)

युवं रथेन **विमदाय** शुन्ध्युवं **न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम्**।

[१२२] १।११७।२१ (कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः। अश्विनौ)

अभि **दस्युं** बकुरेणा धमन्**तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय**।

(अग्निः १७९९) ७।५।६ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। वैश्वानरोऽग्निः)

त्वं **दस्यूँ**रोकसो अग्न आज **उरु ज्योति**र्जनय**न्नार्याय**।

[१२४] १।११७।२३ (कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः। अश्विनौ)
अपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम्।
(इन्द्रः ३२७५) ६।७२।५ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। इन्द्रासोमौ)
—श्रुत्यं रराथे।
[१२६] १।११७।२५ (कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः। अश्विनौ)
एतानि वामश्विना वीर्याणि...।
ब्रह्म कृण्वन्तो...सुवीरासो विदथमा वदेम।
(१११) २।३९।८ (गृत्समदः शौनकः। अश्विनौ)
एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्म...अक्रन्।
......वदेम विदथे सुवीराः।
(इन्द्रः ११३६) २।१२।१५ (गृत्समदः शौनकः। इन्द्रः)
सुवीरासो विदथमा वदेम।
(सोमः ११४८) ८।४८।१४ (प्रगाथो घौरः काण्वः। सोमः)
सुवीरासो विदथमा वदेम।
[११७] १।११८।१=१।३५।१० (हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः। सविता)
सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ्।
[१२७] १।११८।१ (कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः। अश्विनौ)
यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहाः।
(२०१) १।१८३।१ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। अश्विनौ)
मनसो यो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः।

[१२९] १।११८।३ (कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः। अश्विनौ)
प्रवद्यामना सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः॥
(२२८) ३।५८।३ (विश्वामित्रो गाथिनः। अश्विनौ)
सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन...।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं...अश्विना हवन्ते॥
[१३०] १।११८।४ (कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः। अश्विनौ)
आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु...।
...अभि प्रयो नासत्या वहन्ति॥
(३२३) ६।६३।७ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। अश्विनौ)
आ वां वयोऽश्वासो वहिष्ठा अभि प्रयो नासत्या वहन्तु।
[१३१] १।११८।६=(५६) १।११२।५ उद् वन्दनमैरतं दंसनाभिः (५ स्वर्दृशे)।
[१३५] १।११८।९ (कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः। अश्विनौ)
युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतमहिहनमश्विना-
दत्तमश्वम्।
जोहूत्रमर्यो...।
(५९१) १०।३९।१० (काक्षीवती घोषा। अश्विनौ)
युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वं।
चर्कृत्यं ददथुः।
[१६०] १।१३९।३ युवोर्विश्वा अधि श्रियः।
(इन्द्रः २८१६) ८।९२।१० (श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः। इन्द्रः)
यस्मिन् विश्वा अधि श्रियः।
[१६३] १।१५७।१ (दीर्घतमा औचथ्यः। अश्विनौ)
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं।
१०।३५।६ (लुशो धानाकः। विश्वे देवाः)
आयुक्षातामश्विना तूतुजिं रथं।
[१६६] १।१५७।४=(५०) १।९२।१७
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम्।
[१६६] १।१५७।५ = (२२) १।३४।११
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा।
[१८४] १।१८०।१० (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। अश्विनौ)
तं वां रथं वयमद्या हुवेम।
(२५१) ४।४४।१ (पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ। अश्विनौ)
[१९९] १।१८२।६ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। अश्विनौ)
अनारम्भणे तमसि प्रविद्धम्।
(इन्द्रः ३२८०) ७।१०४।३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः [रक्षोघ्नं]। इन्द्रासोमौ)
—प्र विध्यतम्।
[२०१] १।१८३।१=(१२७) १।११८।१
त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः (१ वातरंहाः)।
[२०४] १।१८३।३ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। अश्विनौ)
यो रथो...।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च।
(२११) १।१८४।५ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। अश्विनौ)
यातं वर्तिस्तनयाय त्मने च।
६।४९।५ (ऋजिश्वा भारद्वाजः। विश्वे देवाः)
...यो रथो...
येन नरा—।
[२०५] १।१८३।४ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। अश्विनौ)
अयं वां भागो निहित इयं गीर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम्।

(५३९) ८।५७ (वाल० ९)।४ (मेध्यः काण्वः । अश्विनौ)
अयं वां भागो निहितो यजत्रा ।
(२३०) ३।५८।५ (विश्वामित्रो गाथिनः । अश्विनौ)
दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ।
[२०६] १।१८३।५ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ)
मे हवं नासत्योप यातम् ।
(५५८) ८।८५।१ (कृष्ण आङ्गिरसः । अश्विनौ)
आ मे हवं नासत्या ।
[२०७] १।१८३।६ = (२१३) १।१८४।६=(३७३)।७।७३।१
अतारिष्म तमसस्पारमस्य ।
१।९२।६ (गोतमो राहूगणः । उषाः)
अतारिष्म तमसस्पारमस्य ।
[२०७] १।१८३।६=(२१३)१।१८४।६ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। अश्विनौ)
अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥
(२३०) ३।५८।५ (विश्वामित्रो गाथिनः । अश्विनौ)
एह यातं पथिभिर्देवयानैः ।
[२०९] १।१८४।२ अस्मे ऊ षु **वृषणा मादयेथाम् ।**
(अग्निः ७४८) ४।१४।४ **अस्मिन् यज्ञे वृषणा ।**
[२१२] १।१८४।५ = (२०४) १।१८३।३
यातं **वर्तिस्तनयाय त्मने च ।**
६।४९।५ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः)
येन नरा...वर्तिर्यथस्तनयाय... ।
[२१३] १।१८४।६ = (२०७) १।१८३।६

ऋग्वेदस्य द्वितीयं मण्डलम् ।

[२२२] २।३९।८=(१९६) १।११७।२५
एतानि वामश्विना वर्धनानि (२५ वीर्याणि)।
[२२४] २।४१।८ (गृत्समदः शौनकः । अश्विनौ)
न यत् परो नान्तर... ।
दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ।
(३१८) ६।६३।१ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अश्विनौ)
न यत् परो नान्तरस्तुतुर्यात् ।
८।१८।१४ (इरिम्बिठिः काण्वः । आदित्याः)
दुःशंसं मर्त्यं रिपुम् ।

ऋग्वेदस्य तृतीयं मण्डलम् ।

[२२८] ३।५८।३=(२१९) १।११८।३
[२३०] ३।५८।५=(२०७) १।१८३।६=(२१३)१।१८४।६
(अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ)
[२३०] ३।५८।५=(२०५) १।१८३।४
[२३३] ३।५८।८ (गाथिनो विश्वामित्रः । अश्विनौ)
परि द्यावापृथिवी याति **सद्यः ।**
१।११५।३ (कुत्स आङ्गिरसः । सूर्यः)
परि द्यावापृथिवी यान्ति **सद्यः ।**

ऋग्वेदस्य चतुर्थं मण्डलम् ।

[२५०] ४।४३।७=(२५७) ४।४४।७
(पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ । अश्विनौ)
इहेह यद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥
[२५१] ४।४४।१=(१८४) १।१८०।१०
तं वां रथं वयमद्या हुवेम ।
[२५४] ४।४४।४ (पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ । अश्विनौ)
दधथो रत्नं विधते जनाय ।
७।७५।६ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । उषाः)
दधाति रत्नं विधते जनाय ।
[२५५] ४।४४।५ **हिरण्येन** सुवृता **रथेन ।**
१।३५।२ (हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । सविता)
[२५५] ४।४४।५ (पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ । अश्विनौ)
—यातं— ।
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः ।
(३५१) ७।६९।६ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ)
...यातम् ।
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः ।

[२५६] ४।४४।६ नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं
(अग्निः ९९१) ६।६।७ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । वैश्वानरोऽग्निः)
चन्द्रं रयिं— ।
[२५७] ४।४४।७ = (२५०) ४।४३।७
[२३८] ४।४५।२ (वामदेवो गौतमः । अश्विनौ)
उद् वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते ।
७।६०।४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मित्रावरुणौ)
—मधुमन्तो अस्थुः ।
[२३८] ४।४५।२ (वामदेवो गौतमः अश्विनौ)
रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु ।
(अग्निः ७४८) ४।१४।४ (वामदेवो गौतमः । अग्निः)
—उषसो व्युष्टौ ।
[२३८] ४।४५।२ = (२४२) ४।४५।६
स्व१र्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ।
[२३९] ४।४५।३ = (११) १।३४।१०
मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः ।
[२४१] ४।४५।५ सोमं सुषाव मधुमन्तमद्रिभिः ।
(सोमः १०००) ९।१०७।१ सुषाव सोममद्रिभिः

ऋग्वेदस्य पञ्चमं मण्डलम् ।

[२५८] ५।७३।१ (पौर आत्रेयः । अश्विनौ)
यदन्तरिक्ष आ गतम् ।
(इन्द्रः ९८०) ८।९७।५ (रेभः काश्यपः । इन्द्रः)
— आ गहि
[२५९] ५।७३।२ (पौर आत्रेयः । अश्विनौ)
इह त्या पुरुभूतमा ।
(४७४) ८।२२।३ सोभरिः काण्वः । अश्विनौ)
[२६०] ५।७३।३ = (११) १।३०।१९ चक्रं रथस्य येमथुः ।
[२६२] ५।७३।५ (पौर आत्रेयः । अश्विनौ)
आ यद् वां सूर्या रथं तिष्ठत् ।
(४३०) ८।८।१० (सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)
आ यद् वां योषणा रथमतिष्ठत् ।
[२६७] ५।७३।१० इमा ब्रह्माणि वर्धना ।
(इन्द्रः ५६९) ८।६२।४ (प्रगाथो घौरः काण्वः । इन्द्रः)
इन्द्र ब्रह्माणि वर्धना ।
[२७७] ५।७४।१० (पौर आत्रेयः । अश्विनौ)
अश्विना यद्ध कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् ।
(५४४) ८।७३।५ (गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा । अश्विनौ)
यदद्य कर्हि कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् ।
[२७८-८६] ५।७५।१-९ (अवस्युरात्रेयः । अश्विनौ)
माध्वी मम श्रुतं हवम् ।
[२७९] ५।७५।२=(५१) १।९२।१८= (४११) ८।८।१
दस्रा हिरण्यवर्तनी ।
[२८०] ५।७५।३ (अवस्युरात्रेयः । अश्विनौ)
आ नो... अश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी ।
(४११) ८।८।१ (सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)
आ नो...अश्विना गच्छतं युवम् ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी ।
(५५८) ८।८५।१ (कृष्ण आङ्गिरसः । अश्विनौ)
आ मे...अश्विना गच्छतं युवम् ।
[२८४] ५।७५।७ =(५) १।२२।१ = (२९७) ५।७८।१
अश्विनावेह गच्छतं १।२२।१ गच्छताम्) ।
[२८४] ५।७५।७ (अवस्युरात्रेयः । अश्विनौ)
नासत्या मा वि वेनतम् ।
(२९७) ५।७८।१ (सप्तवध्रिरात्रेयः । अश्विनौ)
[२८६] ५।७५।९ = (१०) १।३०।१८ रथो दस्रावमर्त्यः ।
[२८९] ५।७६।३ मध्यंदिनं उदिता सूर्यस्य ।
५।६९।३ (उरुचक्रिरात्रेयः । मित्रावरुणौ)
[२९०] ५।७६।४ आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा ।
५।४३।११ (भौमोऽत्रिः । विश्वे देवाः)
[२९१] ५।७६।५ = ५।४२।१८ = ५।४३।१७
(भौमोऽत्रिः । विश्वे देवाः)
[२९६] ५।७७।५ = ५।४२।१८ = (२९१) ५।७६।५
[२९७] ५।७८।१ = (५) १।२२।१= (२८४) ५।७५।७
[,,-२९९] ५।७८।१-३ हंसाविव पततमा सुताँ उप ।
[२९९] ५।७८।३ जुषेथां यज्ञमिष्टये ।
५।७२।३ (बाहुवृक्त आत्रेयः । मित्रावरुणौ)
[३०४] ५।७८।८ यथा वातो यथा वनम् ।
१०।२३।४ धूनोति वातो यथा वनम् ।

ऋग्वेदस्य षष्ठं मण्डलम् ।

[३०८] ६।६२।३ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । अश्विनौ)

ता ह त्यद् वर्तिर्यदरध्र...... ।

......परि... ।

(३१८) ६।६३।२ परि ह त्यद् वर्तिर्याथो...यत्... ।

[३१०] ६।६२।५ बभूवतुर्गृणते चित्रराती ।

(३१६) ६।६२।११ दुरो वर्तं गृणते चित्रराती ।

[३१८] ६।६३।२ = (२२४) २।४१।८ न यत् परो नान्तरः।

[३२०] ६।६३।४ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । अश्विनौ)

प्र रातिरेति जूर्णिनी घृताची ।

(अग्निः ६८४) ४।६।३ (वामदेवो गौतमः । अग्निः)

यता सुजूर्णि रातिनी घृताची ।

[३२३] ६।६३।७ = (१३०) १।११८।४

अभि प्रयो नासत्या वहन्तु (४ वहन्ति) ।

[३२३] ६।६३।७ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । अश्विनौ)

—प्र वां रथो मनोजवा जसर्जि ।

(३४०) ७।६८।३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ)

...मनोजवा इयर्ति ।

ऋग्वेदस्य सप्तमं मण्डलम् ।

[३३३] ७।६७।६ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ)

आ वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो
देववीतिं गमेम ।

(इन्द्रः ३१९६) ७।८४।५=(इन्द्रः ३२०१) ७।८५।५

(वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रावरुणौ)

प्रावत् तोके तनये तूतुजाना ।

सुरत्नासो देववीतिं गमेम ।

[३३७] ७।६७।१०=(३५४)७।६९।८ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। अश्विनौ)

नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विना-
विरावत् ।

धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

[३४०] ७।६८।३ = (३२३) ६।६३।७

[३४८] ७।६९।२ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ)

विशो येन गच्छथो देवयन्तीः ।

(६११) १०।४१।२ (सुहस्त्यो घौषेयः । अश्विनौ)

गच्छथो यज्वरीर्नरा ।

[३५१] ७।६९।६ = (२५५) ४।४४।५

मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः ।

[३५४]७।६९।८=(३३७) ७।६७।१० = (३४६) ७।६८।९ = (३६१) ७।७०।७=(३६७) ७।७१।६ = (३७१,३७७) ७।७२-७३।५ यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।

(अग्निः ११११) ७।१।२०,२५; (११३३) ७।३-४।१०; (११४८) ७।७-८।७; (११६०) ७।९।६; (११७०) ७।११।५; (११७३) ७।१२-१३।३;(११७६) ७।१४।३; (१६८२) १०।१२२।८ ।

(इन्द्रः ११५०) ७।१९।११; (११६०) २०।१०; (११७०) २१।१०; (११७९) २२।९; (११८५) २३।६; (११९१) २४।६ (११९७) २५।६ (१२०१) २६।५; (१२०७) २७।५; (१२११) २८।५; (१२१७) २९।५; (१२२२) ३०।५; (३०७८) ९३।८; (३१९६) ८४।५, (३२०१) ८५।५; (३२३५) ९०।७; (३२४०) ९१।७; (३३२५) ९७-९८।१०,७। (सोमः ८०५) ९।९०।६; (८५९,८६२) ९७।३,६। (मरुतः ३६९) ७।५६।२५; (३७६) ५७।७; (३८१) ५८।६। (विश्वे देवाः) ७,३४,२५; ३५,१५; ३६,९, ३७, ८; ३९--४१, ७; ४२, ६; ४३, ५। ४८, ४; १०,६५-६६, १५ । (सविता ७।४५।४ (रुद्रः) ७।४६।४। (आपः) ७।४७।४। (आदित्याः) ७।५१।३। (द्यावापृथिवी) ७।५३।३ (वास्तोष्पतिः) ७।५४।३; (मित्रावरुणौ) ७।६०।१२; ६१,७; ६२-६३, ६; ६४-६५,५। (उषाः) ७।७५।८; ७६,७, ७७,६; ७८-७९।५, ८०,३ (वरुणः) ७।८६।८; ८७--८८, ७। (वायुः) ७।९२।५। (सरस्वती) ७।९५।६।

(विष्णुः) ७।९९--१००।७। (पर्जन्यः) ७।१०१।६

[३५९] ७।७०।५ प्रति प्र यातं वरमा जनाय ।

७।६५।४ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ)

प्रति वामत्र वरमा जनाय ।

[३५९] ७।७०।५ अस्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ।

(मरुतः ३७३) ७।५७।४ (वसिष्ठो मैत्रा० । मरुतः)

[३६१] ७।७०।७ = (३६७) ७।७१।६

(वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ)

इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

(३७५) ७।७३।३ इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
[३६६] ७।७१।५ = (११०) १।११७।९
नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
[३६७] ७।७१।६ = (३६१) ७।७०।७
[३७१] ७।७२।४ ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद् ।
(अग्निः ६८३) ४।६।२ ऊर्ध्वं भानुं सवितेवाश्रेद् ।
(अग्निः ७४१) ४।१३।२ (वामदेवो गौतमः । अग्निः)
(अग्निः ७४६)४।१४।२ ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेद् ।
[३७२] ७।७२।५ = (३७) ७।७।७३।५
(वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ)
आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः
सदा नः ।

[३७३] ७।७३।१ = १।९२।६ = (२०७) १।१८३।६
= (२१३) १।१८४।६
[३७५] ७।७३।३ = (३६१) ७।७०।७
[३७६] ७।७३।४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ)
मा नो मर्धिष्टमा गतं शिवेन ।
(३८०) ७।७४।३ मा नो मर्धिष्टमा गतम् ।
[३७७] ७।७३।५ = (३७२) ७।७२।५
[३७९] ७।७४।२ = (४९) १।९२।१६
अर्वाग् रथं समनसा नि यच्छतम् ।
[३७९] ७।७४।२ = (४११) ८।८।१ पिबतं सोम्यं मधु ।
(इन्द्रः ३०७०) ६।६०।१५
(बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । इन्द्राग्नी)
[३८०] ७।७४।३ = (३७६) ७।७३।४

ऋग्वेदस्याष्टमं मण्डलम् ।

[३८५] ८।५।२ = (इन्द्रः ३२२४) ४।४६।५
(वामदेवो गौतमः । इन्द्रवायू)
[३८७] ८।५।४ ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ)
पुरुमन्द्रा पुरूवसू ।
(४३१) ८।८।१२ (सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)
[३८८] ८।५।५ (ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ)
गन्तारा दाशुषो गृहम् ।
(इन्द्रः ३३०) ८।१३।१० (नारदः काण्वः इन्द्रः)
—गृहं नमस्विनः ।
(४७४) ८।२२।३ (सोभरिः काण्वः । अश्विनौ)
[३८९] ८।५।६ घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
३।६२।१६ (गाथिनो विश्वामित्रः, जमदग्निर्वा । मित्रावरुणौ)
[३९०] ८।५।७ (ब्रह्मातिथिः काण्वः । आश्विनौ)
आ नः स्तोममुप द्रवत् ।
(३९०) ८।४९ (वाल० १)।५ (प्रस्कण्वः काण्वः । इन्द्रः)
[३९१] ८।५।९ उत नो गोमतीरिषः ।
(सोमः ४४१) ९।६२।२४ (जमदग्निर्भार्गवः ।
पवमानः सोमः)
५।७९।८ (सत्यश्रवा आत्रेयः । उषाः)
[३९४] ८।५।११ = (५१) १।९२।१८ दस्रा हिरण्यवर्तनी ।
[३९४] ८।५।११ पिबतं सोम्यं मधु ।
(इन्द्रः ३०७०) ६।६०।१५
(बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । इन्द्राग्नी)

[३९५] ८।५।१२ (ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ)
छर्दिर्यन्तमदाभ्यम् ।
(५६१) ८।८५।५ (कृष्ण आङ्गिरसः । अश्विनौ)
[३९८] ८।५।१५ (ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ)
अस्मे आ वहतं रयिं
पुरुक्षुं विश्वधायसम् ।
(मरुतः ५८) ८।७।१३ (पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः)
आ नो रयिं मदच्युतं पुरुक्षुं विश्वधायसम् ।
[४००] ८।५।१७ = ३।५९।९ (गाथिनो विश्वामित्रः मित्रः)
[४००] ८।५।१७ हविष्मन्तो अरंकृतः ।
१।१४।५ (मेधातिथिः काण्वः । विश्वे देवाः)
[४००] ८।५।१७ = (४२) १।४७।४ युवां हवन्ते अश्विना ।
[४०१] ८।५।१८ = (इन्द्रः २०८९) ६।४५।३०
स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः ।
[४०१] ८।५।१८ (ब्रह्मातिथिः काण्वः अश्विनौ)
स्तोमो वाहिष्ठो...।
युवाभ्यां भूत्वश्विना ।
(५०५) ८।२६।१६ (विश्वमना वैयश्वः
व्यश्वो वाङ्गिरसः । अश्विनौ)
वाहिष्ठो......स्तोमो ।
युवाभ्यां भूत्वश्विना ।
[४०३] ८।५।२० = (४१३) ८।५।३० तेन नो वाजिनीवसू ।
[४०५] ८।५।२२ = (२६) १।४६।१३
यद् वां रथो विभिष्पतात् ।

[४११] ८।५।२८ = (इन्द्रः ३२२३) ४।४६।४
(वामदेवो गौतमः । इन्द्रवायू)
[४११] ८।५।२८ (ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ)
रथं हिरण्यवन्धुरं हिरण्याभीशुमश्विना ।
आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ।
(४७६) ८।२२।५ (सोभरिः काण्वः । अश्विनौ)
रथो...त्रिवन्धुरो हिरण्याभीशुरश्विना ।
...द्यावापृथिवी... ।
(इन्द्रः ३२२३) ४।४६।४ रथं हिरण्यवन्धुरम्...।
आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ।
[४१३] ८।५।३० (ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ)
उपेमां सुष्टुतिं मम ।
(४२६) ८।८।६ (सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)
[४१८] ८।५।३५ हिरण्ययेन रथेन ।
१।३५।२ (हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । सविता)
हिरण्ययेन...रथेना ।
[४२१] ८।८।१ आ नो विश्वाभिरूतिभिः ।
(इन्द्रः २१८९) ७।२४।४ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः)
(४३८) ८।८।१८ = (५७४) ८।८७।३
आ वां विश्वाभिरूतिभिः ।
[४२१] ८।८।१=(२८०) ५।७५।३ (अवस्युरात्रेयः। अश्विनौ)
[४२१] ८।८।१ = (५१) १।९२।१८
(गौतमो राहूगणः । अश्विनौ)
[४२१] ८।८।१ = (इन्द्रः ३०७०) ६।६०।१५
(बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । इन्द्राग्नी)
[४२२] ८।८।२ (सध्वंसः काण्वः अश्विनौ)
आ नूनं यातमश्विना ।
(४५७) ८।९।१४ (शशकर्णः काण्वः । अश्विनौ)
(५७६) ८।८७।५ कृष्ण (आङ्गिरसो द्युम्नीको वा वासिष्ठः प्रियमेध आङ्गिरसो वा । अश्विनौ)
[४२२] ८।८।२ = (४७) १।४७।९
[४२४] ८।८।४ = (४२८) ८।८।८
पुत्रः कण्वस्य वामिह (८ वामृषिः) ।
[४२५] ८।८।५ (सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)
आ नो यातमुपश्रुति ।
(इन्द्रः ४३५) ८।३४।११ (नीपातिथिः काण्वः। इन्द्रः)
आ नो याह्युपश्रुति ।
[„] ८।८।५ अश्विना सोमपीतये ।
(५३५) ८।४२।६ नासत्या सोमपीतये ।
(इन्द्रः ३०९७-३०९९) ८।३८।७-९
(श्यावाश्व आत्रेयः । इन्द्राग्नी)
इन्द्राग्नी सोमपीतये ।
[४२६] ८।८।६ जुहूरेऽवसे नरा ।
१।४८।१४ (प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः)
जुहूरेऽवसे महि ।
[४२६] ८।८।६ = (५३०-५३२) ८।३५।२२-२४
आ यातमश्विना गतम् ।
[४२६] ८।८।६=(४१३) ८।५।३० उपेमां सुष्टुतिं मम ।
[४२७] ८।८।७ दिवश्चिद् रोचनादधि ।
१।४९।१ (प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः)
[४२७] ८।८।७ स्तोमेभिर्हवनश्रुता ।
(इन्द्रः ३०५५) ६।५९।१०
(बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । इन्द्राग्नी)
[४२८] ८।८।८=(४३५) ८।८।१५=(४३९) ८।८।१९
गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ।
[४३०] ८।८।१० = (२६२) ५।७३।५
आ यद् वां योषणा (५ सूर्या) रथमतिष्ठत् ।
[४३१] ८।८।११ = (४०) १।४७।२ रथेना यातमश्विना ।
[४३२] ८।८।१२ = (३८७) ८।५।४ पुरुमन्द्रा पुरूवसू ।
[४३२] ८।८।१२ = (२५) १।४६।२ मनोतरा रयीणाम् ।
[४३३] ८।८।१३ = ७।९४।३ मा नो रीरधतं निदे ।
(इन्द्रः३०८१)७।९४।३ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। इन्द्राग्नी)
[४३४] ८।८।१४ = (४५) १।४७।७
(प्रस्कण्वः काण्वः । अश्विनौ)
[४३४] ८।८।१४ = (४०) १।४७।२
[४३६] ८।८।१६ (सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)
वसूयाद् दानुनस्पती ।
१।१३६।३ (परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ)
आदित्या दानुनस्पती ।
२।४१।६ (गृत्समदः शौनकः । मित्रावरुणौ)
आदित्या...... ।
[४३७] ८।८।१७ आ नो गन्तं रिशादसा ।
५।७१।१ (बाहुवृक्त आत्रेयः । मित्रावरुणौ)
[४३८] ८।८।१८ = (५७३) ८।८७।३ =
(४११) ८।८।१ = (इन्द्रः २१८९) ७।२४।४
वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। इन्द्रः)
आ वां (८।८।१,७।२४।४ नो) विश्वाभिरूतिभिः ।
[४३८] ८।८।१८ = (५७४) ८।८७।३ =
(अग्निः १०३) १।४५।४ (प्रस्कण्वः काण्वः । अग्निः)
प्रियमेधा अहूषत ।

[४३८] ८।८।१८ राजन्तावध्वराणाम् ।
(अग्निः ८;१०३) १।१।८; १।४५।४ राजन्तमध्वराणाम् ।
(अग्निः ३८) १।२७।१ सम्राजन्तमध्वराणाम् ।
[४४४] ८।९।१ प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिः ।
१।४८।१५ (प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः)
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः ।
[४४६] ८।९।३=(४५२)८।९।९ शशकर्णः काण्वः । अश्विनौ)
एवेत् काण्वस्य बोधतम् ।
(४६६) ८।१०।२ (प्रगाथो घोरः काण्वः । अश्विनौ)
[४५६] ८।९।१३ हुवेथ वाजसातये ।
(इन्द्रः २७९) ८।६।३७; (इन्द्रः ४२८) ८।३४।४;
(इन्द्रः १७४१) ५।३५।६ हवन्ते वाजसातये ।
(इन्द्रः ३३३०) ६।५७।१ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । इन्द्रापूषणौ)
हुवेम वाजसातये ।
(५७७) ८।८७।६ विप्रासो वाजसातये ।
[४५७] ८।९।१४=(४२२) ८।८।१=(५७६) ८।८७।५
आ नूनं यातमश्विना ।
[४६१] ८।९।१८ (शशकर्णः काण्वः । अश्विनौ)
सं सूर्येण रोचसे ।
(सोमः १६।९।२।६(मेधातिथिः काण्वः। पवमानः सोमः)
.........रोचते ।
[४६६] ८।१०।१ = (४४६) ८।९।३ = (४५२) ८।९।९
[४६७] ८।१०।३ देवेष्वध्याप्यम् ।
१।१०५।१३ (त्रित आप्त्यः कुत्स आङ्गिरसो वा । विश्वे देवाः)
देवेष्वस्त्याप्यम् ।
[४७१] ८।२२।१ (सोभरिः काण्वः । अश्विनौ)
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी ।
(५९३) १०।३९।११ (काक्षीवती घोषा । अश्विनौ)
[४७३] ८।२२।२ (सोभरिः काण्वः । अश्विनौ)
भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ।
(इन्द्रः १८३६) ८।४६।२० (वशोऽश्व्यः । इन्द्रः)
[४७४] ८।२२।३ = (२५९) ५।७३।२ इह त्या पुरुभूतमा।
[४७४] ८।२२।३ अर्वाचीना स्ववसे करामहे ।
(इन्द्रः २५४४) १०।३८।४ (मुष्कवानिन्द्रः । इन्द्रः)
अर्वाञ्चमिन्द्रमवसे करामहे ।
[४७४]८।२२।३=(३८८)८।५।५=(इन्द्रः ३३०)८।१३।१०
गन्तारा दाशुषो गृहम् ।
[४७६] ८।२२।५ = (४११) ८।५।२८
(सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)

[४७६] ८।२२।५ = (४७) १।४७।९ तेन नासत्या गतम् ।
[४७९] ८।२२।८ आ यातं सोमपीतये ।
(इन्द्रः ३१२८)४।४७।३ (वामदेवो गौतमः । इन्द्रवायू)
[४७९] ८।२२।८ पिबतं दाशुषो गृहे ।
(इन्द्रः ३२२५)४।४६।६ (वामदेवो गौतमः । इन्द्रवायू)
[४८०] ८।२२।९ रथे कोशे हिरण्यये......... ।
(मरुतः ८९) ८।२०।८ (सोभरिः काण्वः । मरुतः)
[४८१] ८।२२।१० = (७१) १।११२।२०
(कुत्सः आङ्गिरसः । अश्विनौ)
[४८५] ८।२२।१४ (सोभरिः काण्वः । अश्विनौ)
मा नो मर्ताय रिपवे वाजिनीवसू ।
(अग्निः १३९१) ८।६०।८(भर्गः प्रागाथः । अग्निः)
...रिपवे रक्षस्विने ।
[४८९] ८।२२।१८ विश्वा वामानि धीमहि ।
५।८२।६ (श्यावाश्व आत्रेयः । सविता)
(अग्निः १२६१) ८।१०३।५ (सोभरिः काण्वः । अग्निः)
[४९८] ८।२६।९ (विश्वमना वैयश्वः व्यश्वो वाङ्गिरसः । अश्विनौ)
वयं हि वां हवामहे ।
(५७७) ८।८७।६ (कृष्ण आङ्गिरसो द्युम्नीको वा वासिष्ठः, प्रियमेध आङ्गिरसो वा । अश्विनौ)
[५००] ८।२६।११ सजोषसा वरुणो मित्रो अर्यमा ।
१।४०।५ (कण्वो घौरः । ब्रह्मणस्पतिः)
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
७।६६।१२ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । आदित्याः)
यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा ।
(इन्द्रः ३१८१; ३१९१) ७।८२।१०; ८३।१०
(वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रावरुणौ)
अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
(अग्निः १२३९) येन चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमा ।
१०।३६।१ (लुशो धानाकः । विश्वे देवाः)
द्यावाक्षामा वरुणो मित्रो अर्यमा ।
१०।६५।१,९ (वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वे देवाः)
अग्निरिन्द्रो (९ इन्द्रवायू) वरुणो मित्रो अर्यमा ।
१०।९२।६ (शार्यातो मानवः । विश्वे देवाः)
तेभिश्चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमा ।
[५०५] ८।२६।१६ = (४०१) ८।५।१८
युवाभ्यां भूत्वश्विना ।
[५०९] ८।३५।१ आदित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
२।३१।१ (गृत्समदः शौनकः । विश्वे देवाः)
[५०९-१९] ८।३५।१-११ सजोषसा उषसा सूर्येण च ।

[५०९-११] ८।३५।१-३ सोमं पिबतमश्विना ।
[५११] ८।३५।३ = (२२) १।३४।११
(हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । अश्विनौ)
[५१२-१४] ८।३५।४-६ विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
[५१२-१४] ८।३५।४-६ इषं नो वोळ्हमश्विना ।
[५१५-१७] ८।३५।७-९ सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
[५१५-१७] ८।३५।७-९ त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ।
[५१८-२०] ८।३५।१०-१२ प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
[५१८-२०] ८।३५।१०-१२ ऊर्जं नो धत्तमश्विना ।
[५२१-२३] ८।३५।१३-१५ मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।
[५२१-२३] ८।३५।१३-१५ आदित्यैर्यातमश्विना ।
[५२४-२६] ८।३५।१६-१८ हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
[५२४-२६] ८।३५।१६-१८ सोमं सुन्वतो अश्विना ।
[५२७-२९] ८।३५।१९-२१ श्यावाश्वस्य सुन्वन्तो मदच्युता ।
[५२७-२९] ८।३५।१९-२१ अश्विना तिरोअह्नयम् ।
[५३०] ८।३५।२२=(४९) १।९२।१६=(३७९) ७।७४।२
अर्वाग् रथं (१।९२।१६; ७।७४।२ समनसा) नि यच्छतम् ।
[५३०] ८।३५।२२ = (३७९) ७।७४।२ =(३९४) ८।५।११
= (४११) ८।८।१ पिबतं सोम्यं मधु ।
(इन्द्रः ३०७०) ६।६०।१५ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । इन्द्राग्नी)
(इन्द्रः १८०२) ८।२४।१३ (विश्वमना वैयश्वः । इन्द्रः)
पिबाति सोम्यं मधु ।
[५३०-३२] ८।३५।२२-२४ = (४१६) ८।८।६
= (३९) १।४७।१ आ यातमश्विना
गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ।
[५३३] ८।३५।२३ विवक्षणस्य पीतये ।
(इन्द्रः ११) ८।१।२५ (मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ । इन्द्रः)
[५३३-३५] ८।४२।४-६ = (४२५) ८।८।५
नासत्या (८।८।५ अश्विना) सोमपीतये ।
(इन्द्रः ३०९७-९९) ८।३८।७-९ इन्द्राग्नी सोमपीतये ।
[५३५] ८।४२।६ (नाभाकः काण्वः, अर्चनाना आत्रेयो वा । अश्विनौ)
एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः ।
नासत्या सोमपीतये ॥
(इन्द्रः ३०९९) (श्यावाश्व आत्रेयः । इन्द्राग्नी)
एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः ।
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥
[५३७] ८।५७ (वाल० ९) । १ युवं देवास्त्रय एकादशासः ।
(सोमः ८१५) ९।९२।४ (कश्यपो मारीचः । सोमः)
विश्वे देवास्त्रय एकादशासः ।

[५३९] ८।५७ (वाल० ९) ।४ अयं वां भागो निहितो यजत्रा ।
(२०५) १।१८३।४ अयं वां भागो निहित इयं गीः ।
[५४०] ८।७३।१ = (३०) १।४६।७ युञ्जाथामश्विना रथम् ।
[५४०-५७] ८।७३।१-१८ अन्ति षद्भूतु वामवः ।
[५४४] ८।७३।५ = (२७७) ५।७४।१० (पौरः आत्रेयः । अश्विनौ)
[५४९] ८।७३।१० श्रुणुतं म इमं हवम् ।
२।४१।१३ (गृत्समदः शौनकः । विश्वे देवाः)
= ६।५२।७ (ऋजिश्वाः भारद्वाजः । विश्वे देवाः)
श्रृणुता म इमं हवम् ।
(५५९) ८।८५।२ इमं मे शृणुतं हवम् ।
(इन्द्रः ३०७०) ६।६०।१५ इन्द्राग्नी श्रुणुतं हवम् ।
[५५३] ८।७३।१४ = (इन्द्रः ३०६९) ६।६०।१४
आ नो गव्येभिरश्व्यैः ।
[५५७] ८।७३।१८ पुरं न धृष्णवा रुज ।
(सोमः १०३१) ९।१०८।६ वर्मीव धृष्णवा रुज ।
[५५८] ८।८५।१ = (२०६) १।१८३।५
आ मे हवं नासत्योप यातम् ।
[५५८] ८।८५।१ = (२८०) ५।७५।३ = (४११) ८।८।१
अश्विना गच्छतं युवम् ।
[५५८-६६] ८।८५।१-९ = (४७) १।४७।९
मध्वः सोमस्य पीतये ।
[५५९] ८।८५।२ = (५४९) ८।७३।१० =
(विश्वे देवाः) २।४१।१३ = (विश्वे देवाः) ६।५२।७
[५६१] ८।८५।४ श्रुणुतं जरितुर्हवम् ।
(इन्द्रः ३२७) ८।१३।७ श्रुणुधी — ।
(इन्द्रः ३०८०) ७।९४।२ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्राग्नी)
[५६२] ८।८५।५ = (३९५) ८।५।१२ छर्दिर्यन्तमदाभ्यम् ।
[५६३] ८।८५।६ = (३८८) ८।५।५ = (४७४) ८।२२।३
[५६७-६९] ८।८६।१-३ ता वां विश्वको हवते तनूकृथे ।
[५६७-७१] ८।८६।१-५ मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ।
[५७२] ८।८७।१ (कृष्ण आङ्गिरसो द्युम्नीको वा वासिष्ठः प्रियमेध आङ्गिरसो वा । अश्विनौ)
पिबतं घर्मं मधुमन्तमश्विना बर्हिः सीदतं नरा ।
ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ ।
(५७५) ८।८७।४ पिबतं सोमं... सीदतं सुमत् ।
(६०९) १०।४०।१३ (काक्षीवति घोषा । अश्विनौ)
ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ ।
[५७३] ८।८७।२ = (४६) १।४७।८ आ बर्हिः सीदतं नरा ।
[५७४] ८।८७।३ = (इन्द्रः २१८९) ७।२४।४
= (४११) ८।८।१ = (४३८) ८।८।१८ .

[५७४] ८।८७।३ = (अग्निः १०३) १।४५।४ =
(४३८) ८।८।१८ प्रियमेधा अहूषत ।
[५७५] ८।८७।४ = (४६) १।४७।८ = (५७३) ८।८७।२
= (अग्निः १९२४) १।१४२।७
[५७६] ८।८७।५ = (४१२) ८।८।२ = (४५७) ८।९।१४
आ नूनं यातमश्विना ।
[५७६] ८।८७।५ = (इन्द्रः ३३१) ८।१३।११
अश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः ।
[५७६] ८।८७।५ = (५१) १।९२।१८ = (२७९) ५।७५।२
= (३९४) ८।५।११ = (४११) ८।८।१
[५७६] ८।८७।५ = (४१) १।४७।३ =
(मित्रावरुणौ) ३।६२।१८ = (मित्रावरुणौ) ७।६।१६९
[५७७] ८।८७।६ = (५९८) ८।२६।९ वयं हि वां हवामहे ।
[५७८] ८।१०१।७ प्रति हव्यानि वीतये ।
८।१०१।१० (जमदग्निर्भार्गवः । वायुः)
[५७९] ८।१०१।८ गृणाना जमदग्निना ।
३।६२।१८ (विश्वामित्रो गाथिनः, जमदग्निर्वा । मित्रावरुणौ)
७।९६।३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । सरस्वती)
गृणाना जमदग्निवत् ।
(सोमः ४४१) ९।६२।२४) गृणानो जमदग्निना ।
(सोमः ५३२) ९।६५।२५ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो
वा । पवमानः सोमः)

ऋग्वेदस्य दशमं मण्डलम् ।

[५८६] १०।३९।४ = (इन्द्रः ७५७) १।५२।१३
= (इन्द्रः ९९६) ८।१००।६
विश्वेत् ता वां (ते) सवनेषु प्रवाच्या ।
[५८९] १०।३९।७ = (१११) १।११७।२०
न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम् (२० योषाम्) ।
[५९२] १०।३९।१० = (१३५) १।११८।९
(कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः । अश्विनौ)
[५९३] १०।३९।११ = (४७२) ८।२२।१
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी ।
[५९५] १०।३९।१३ = (५९) १।११२।८
(कुत्स आङ्गिरसः । अश्विनौ)
[५९६] १०।३९।१४ अतक्षाम भृगवो न रथम् ।
(इन्द्रः १४८६) ४।१६।२० (वामदेवो गौतमः । इन्द्रः)
ब्रह्मकर्म भृगवो न रथम् ।
[६०९] १०।४०।१३ = (५७३) ८।८७।२
ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ ।
[६१२] १०।४१।२ विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा ।
(३४८) ७।६९।३ विशो येन गच्छतो देवयन्तीः ।

“ अश्विनौ–देवता– ”

मन्त्रान्तर्गतानां उपमानां सूची ।

अंशा इव १०,१०६,९; ६२२ नः भजतं चित्रमप्नः ।
अक्षरा इव १,३४,४; १५ त्रिः पृक्षो अस्मे पिन्वतम् ।
अक्षी इव २,३९,५; २१९ चक्षुषा यातमर्वाक् ।
अग्निर्न चित इद्धः १,११२,१७; ६८ जठरस्य मज्मना पठर्वा ।
अग्निरिव देवयोः १०,१०६,३; ६१६ दीदिवांसा ।
अग्निम् उषाम् न १,१८१,९; १९३ जरते हविष्मान् ।
अजा इव.२,३९,२; २१६ यमा परमा सचेथे ।
अत्कम् न ५,७४,५; २७१ वव्रिं प्र मुञ्चथः ।
(यथा) अत्रिः ८,४२,५; ५३४ विप्रः अजोहवीत ।
अत्रेः इव ८,३५,१९; ५२७ पूर्व्यस्तुतिं श्रृणुतम् ।
अध्वगौ इव ८,३५,८; ५१६ सुतं सोमं पतथः ।
अपः न १,१८०,४; १७८ क्षोदोऽवृणीतमेषे ।
अपः न स्तर्यम् ७,६८,८; ३४५ अघ्न्याम् अपिन्वतम् ।
अपसा इव वस्त्रा १०,१०६,१; ६१४ धियः वि तन्वाथे ।
अभ्रिया इव वातः १,११६,१; ७७ सोमान् इयर्मि ।
अवनिः न १,१८१,३; १८७ प्रवत्वान् सुविताय गम्याः ।
अश्वम् न १,११७,४; १०५ गूळ्हम् रेभं सं रिणीथः ।
अश्वम् न १०,१४३,१; ६२७ अत्रिं अथं यातवे कृणुथः ।
अश्वम् न वाजिनम् १०,१४३,२; ६२८ अरेणवो यमस्नत ।
अस्तम् इव १,११६,२५; १०१ जरिमाणं जगम्याम् ।
आत्मा इव वातः १,३४,७; १८ तिस्रः [वेदीः] गच्छतम् ।
आरङ्गरा इव १०,१०६,१०; ६२३ मधु एरयेथे ।
इर्या इव १०,१०६,४; ६१७ पुष्टयै ।
इन्द्रो न शक्तिम् ४,४३,३; २४६ इवतो धून् ।
इन्द्रमिव चर्षणीसहम्१,११९,१०; १४७शर्यैरभिद्युं चर्कृत्यम् ।
उग्रा इव रुचा १०,१०६,४; ६१७ हवम् आ गमिष्टम् ।
उत्सं न १०,१४३,६; ६३१ समस्मे भूषतम् ।
उदन्यजा इव १०,१०६,६; ६१९ जेमना मदेरू ।
उपधी इव २,३९,४ २१८ नः पारयतम् ।
उष्टारा इव १०,१०६,२; ६१५ फर्वरेषु श्रयेथे ।
ऋभू न १०,१०६,७; ६२० खरमज्रा ।

एतग्वा चित् न ७,७०,२; ३५६ समुद्रान् सरितः पिपर्ति ।
ओष्ठौ इव २,३९,६; २२० आस्ने मधु वदन्ता ।
कनीन इव जारः १,११७,१८; ११९ चक्षदानः शतमेकं च ।
कर्णा इव १०,१०६,९; ६२१ शासुः अनु हि स्मराथः ।
कर्णौ इव २,३९,६; २२० सुश्रुता भूतमस्मे ।
काराधुनी इव १,१८०,८; १८२ प्रशस्तः चितयत्सहस्रैः ।
काष्मं इव १,११६,१७; ९३ अतिष्ठदर्वता जयन्ती ।
किरणा इव १०,१०६,४; ६१७ भुज्यै (भवथः ।)
कीनारा इव १०,१०६,१०; ६२३ स्वेदं आसिष्विदाना ।
कुत्सः न १०,४०,६; ६०२ जरितुर्नशायथः ।
क्रिविः न सेके ८,८७,१; ५७२ स्तोमः आ गतम् ।
क्षुम इव १०,१०६,७; ६२० मरायु अर्थेषु तर्तरीथः ।
क्षामा इव २,३९,७; २११ नः रजांसि समजतम् ।
क्षामा इव सूयवसात् १०,१०६,१०; ६२३ ऊर्जां सचेथे ।
क्ष्णोत्रेण इव २,३९,७; २२१ गिरः स्वधितिं सं शिशीतम् ।
खृगला इव २,३९,४; २१८ विस्रसः अस्मान् पातम् ।
गावः न ऊधभिः ८,९,१९; ४६२ अंशवः (ऊधभिः) दुहे ।
गृध्रा इव वृक्षम् २,३९,१; २१५ निधिमन्तम् अच्छ ।
गोः न सेके १,१८१,८; १९२ पीपाय मनुषो दशस्यन् ।
गौरा इव विद्युतम् ७,६९,६; ३५२ तृषाणा सवनोप यातम् ।
(यवसम् अनु) गौरौ इव ५,७८,२; २९८ आगच्छतम् ।
गौरौ इव ईरिणे ८,८७,१; ५७१ मध्वः सुतस्य पातम् ।
गौरौ इव ईरिणम् ८,८७;४; ५७५ सुष्टुतिम् उप गन्तम् ।
(हळ्हं) ग्रन्थिम् न १०,१४३,२; ६२८ अत्रिम् वि ष्यतम् ।
ग्रावाणा इव २,३९,१; २१५ तत् अर्थं जरेथे ।
घर्मा इव १०,१०६,८; ६२१ जठरे मधु सनेरू ।
चक्रवाका इव २,३९,३; २१७ वस्तोः प्रति अर्वाञ्चा यातम् ।
(कापया) जरणा इव १०,४०,३; ५९९ वस्तोः वस्तोः प्रातः ।
जरतोः इव पुराणवत् ८,७३,११; ५५० अन्ति षद्भूतु ।
(युगा) जूर्णा इव १,१८४,३; २१० वच्यन्ते वां ककुहा ।
तन्यतुः न वृष्टिम् १,११६,१२; ८८ सनये दंस उग्रम् ।

(रेष्मच्छिन्नं यथा) तृणम् अथ० ६,१०२,२; ६४८ मनः मयि ।
दम्पती इव २,३९,२; २१६ क्रतुविदा जनेषु ।
दिव्यासः न गृध्राः १,११८,४; १३० अप्तुरः अभि प्रयः ।
दिशं न दिष्टाम् ऋजूयेव १,१८३,५; २०६ मे हवं उपयातम्।
दूतः न ६,६३,१; ३१७ स्तोमोऽविदन्नमस्वान् ।
दूतः न ७,६७,१; ३२८ रथः अजीगः ।
(यथा) दूतः ८;५,३; ३८६ तथा वाचम् ऊहिषे ।
दूता इव २,३९,१; २१५ हव्या जन्या पुरुत्रा ।
दूता इव १०,१०६,२; ६१५ जनेषु यशसा स्थः ।
(यथा चक्रुः) देवासुराः अथ०६,१४१,३; ६५२ सहस्रपोषाय।
(दिवि) द्याम् इव अथ०६,६९,३; ६७६ तत् (वर्चः) मयि ।
द्रापिम् इव १,११६,१०; ८६ वव्रिं प्रामुञ्चतं च्यवानात् ।
द्वारा इव ८,५,२१; ४०४ अप वर्षथः ।
धेनुः इव ८,२२,४; ४७५ सुमतिः अस्मान् अच्छ।
ध्रुवसे न योनिम् ७,७०,१; ३५१ यत् (अश्वं) आ सेदथुः ।
नद्या इव २,३९,५; २१९ युवां रीतिः ।
नभः न ८,९,८; ४५१ स्तोमाः वां आ चुच्यवीरत ।
नभ्या इव २,३९,४; २१८ नः पारयतम् ।
नावा इव २,३९,४, २१८ नः पारयतम् ।
नासा इव २,३९,६, २२० नः तन्वो रक्षितारा भूतम् ।
नित्यं न सूनुम् १०,३९,१४; ५९६ वां स्तोमं न्यमृक्षाम ।
निधिम् इव अपगूळ्हम् १,११६,११; ८७ उद् दर्शतः दूपथुः
निवना इव सिन्धवः १०,४०,९; ६०५ आस्मै रीयन्ते ।
निष्कृतम् न योषणा १०,४०,६; ६०२ मधु आसा भरत ।
नृपती इव १०,१०६,४; ६१७ तुर्थै ।
नैतोशा इव १०,१०६,६; ६१९ तुर्फरी पर्फरीका ।
पज्रा इव १०,१०६,७; ६२० चर्चरम् ।
पतरा इव १०,१०६,८; ६२१ चचरा ।
(वृक्षं) परशुमान् इव ८,७३,१७; ५५६ अश्विना— ।
परिज्माना इव १०,१०६,३; ६१६ पुरुत्रा यजथः ।
पर्णा मृगस्य पतरोः इव १,१८२,७; २०० आमताय कम्।
पशुं न नष्टमिव १,११६,२३; ९९ दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुः ।
पश्वा इव १०;१०६,३; ६१६ चित्रा यजुः आ गमिष्टम् ।
पादा इव २,३९,५; २१९ तन्वे शम्भविष्ठा ।
पादा इव १०,१०६,९; ६२२ गाधं तरते ।
पिता इव ८,२२,१५; ४८६ हुवे ।
पितरा इव ३,५८,२; २२७ मेधाः ऊर्ध्वा भवन्ति ।
पितरा इव पुत्रा १०,१०६,४; ६१७ आपी वो अस्मे ।
(यथा) पितुः ८,८६,४; ५७० सुमतिः स्वादिष्ठा ।
पितुः न नाम १०,३९,१; ५८३ सुहवं हवामहे ।

पुत्रम् इव पितरौ १०,१३१,५; ६२६ अवथुः काव्यैः ।
पुत्राय पितरा इव १०,३९,६; ५८८ मह्यं शिक्षतम् ।
पुरम् न ८,७३,१८; ५५७ आ रुज ।
पूर्वगत्वा इव सख्ये ७,६७,७; ३३४ निधिर्हितः माध्वी ।
पूषा इव १,१८१,९; १९३ पुरन्धिः हविष्मान् जरते ।
प्रधी इव २,३९,४; २१८ नः पारयतम् ।
प्रवृक्तम् १,११६ २४; १०० विप्रुतं रेभं उदनि उन्निन्यथुः ।
प्रायोगा इव १०,१०६,२; ६१५ श्वात्र्या शासुः आ इथः ।
बर्हिः इव १,११६,१; ७७ प्र वृञ्जे स्तोमान् ।
बृहन्ता इव १०,१०६,९; ६२२ गम्भरेषु प्रतिष्ठाम् ।
ब्रह्मा इव अथ० ६,५०,२; ६४४ स्थितं हविः ।
ब्रह्माणा इव २,३९,१; २१५ (युवां) विदथे उक्थशासा ।
भृगवः न १०,३९,१४; ५९६ रथम् अतक्षाम ।
भक्षः मध्वः न ४,४५,४; २४० सवनानि गच्छथः ।
(यथा) मक्षा इदं अथ० ९,१,१७; ६८७ वर्चः तेजः ।
(यथा) मधु मधुकृतः अथ० ९,१,१६; ६८६ वर्चः ।
मनन्या न १०,१०६,८; ६२१ मनऋङ्गा जग्मी ।
मनुषः न होता १,१८०,९; १८३ प्र स्पन्द्रा याथः ।
मनुष्वत् १,४६,१३; ३६ शम्भू आ गतम् ।
(यथा चक्रुः) मनुष्याः अथ० ६,१४१,३; ६५२ सहस्रपोषाय ।
मर्यं न योषा १०,४०,२; ५९८ कृणुते सधस्थ आ ।
महिषा इव ८,३५,७-९; ५१५–२१७ सुतं सोमं अव गच्छथः ।
महिषा इव अवपानात् १०,१०६,२; ६१५ पानात् मा ।
मित्रा इव ऋता १०,१०६,५; ६१८ शतरा शातपन्था ।
मित्रासः न ३,५८,४; २२९ प्र ददुः उस्रो अग्रे ।
मृगा इव वारणा १०,४०,४; ६०० दोषा वस्तोर्हविषा ।
(यथा) मेधिराः आहुवन्त ८,४२,६; ५३५ एवा वामह्वे ।
मेने इव २,३९,२; २१६ तन्वा शुम्भमाने ।
मेषा इव १०,१०६,५; ६१८ इषा सपर्या पुरीषा ।
युगा इव २,३९,४; २१८ नः पारयतम् ।
युवशा इव कन्यनाम् ८,३५,५; ५१३ इह स्तोमं जुषेथाम्।
योनिः सूष्यन्त्याः इव ५,७८,५; ३०१ वि जिहीष्व वनस्पते।
(नाधमाना इव) योषा ५,७८,४; ३०० अत्रिर्यद् वाम० ।
योषणां न मर्यै १०,३९,१४; ५९६ न्यमृक्षाम स्तोमं वाम्।
रथाः इव ७,७४,६; ३८३ प्र ये ययुः अवृकासः ।
रथम् न १,११९,७; १४४ वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया ।
रथम् न १०,१४३,१; ६२७ अत्रिं नवं कृणुथः ।
रथान् इव ५,७३,१०; २६७ ब्रह्माणि तक्षाम ।
रथ्या इव २,३९,२; २१६ वीरा वरं आ सचेथे ।
रथ्या इव २,३९,३; २१७ शक्रा अर्वाञ्चा यातम् ।

रथ्या इव चक्रा १,१८०,४; १७८ प्रति यन्ति मध्वः ।
रथिं न कश्चित् १,११६,३;७९ तुग्रो भुज्युं ममृवान् ।
रश्मीन् इव ८,३५,२१; ५१९ अध्वरान् उप सृजतम् ।
राजपुत्राः इव १०,४०,३; ५९९ सवना अव गच्छथः ।
राजाश्वः पृष्ठ्यामिव अथ० ६,१०२,२; ६४८ खिदामि ते।
(शुभे) रुक्मं न १,११७,५; १०६ दर्शतं निखातम् उदूपथुः।
वंसगा इव पूर्व्या १०,१०६,५; ६१८ पूर्व्या शिम्बाता ।
वचसं न मन्तवे १,११२,२; ५३ सुभरा रथमा तस्थुः ।
(अधिवस्त्रा) वधूः इव ८,२६,१३; ५०२ यः यज्ञेभिः आवृतः।
(यथा वर्चस्वतीं) वाचं अथ० ९,१,१९; ६८८ सारघेण मा।
(यया भर्गस्वतीं) वाचं अथ० ६,६९,२; ६७५ सारघेण मा ।
वाजा इव १०,१०६,५; ६१८ उच्चा वयसा घर्म्येष्ठा।
वातः न १,१८०,६; १८० सूरिः प्रेषत् वेषत् ।
(यथा) वातः पुष्करिणीं ५,७८,७; ३०३ एवा ते दशमास्यः।
(यथा) वातः वनम् ५,७८,८; ३०४ एवा त्वं दशमास्य ।
वाता इव २,३९,५; २१९ युवम् अजुर्या ।
वायुः न १०,१०६,७; ६२० पर्फरत् ।
(यथायं) वाहः समैति अथ०६,१०२,१; ६४७ एवा मामभि।
विः न पर्णैः १,१८३,१; २०१ सुकृतः त्रिधातुना उपयाथः।
विधवा इव देवरम् १०,४०,२; ५९८ को वां शयुत्रा ।
विद्युद्गहा इव ८,२६,१५; ५०४ गिरा यज्ञम् उहथुः ।
वृषभः न १,१८१,६; १९० निष्षाट् पूर्वीः इषः प्र चरति ।
वेः इव अच्छेदि पर्णम् १,११६,१५; ९१ आजा खेलस्य ।
शंयू इव १०,१४३,६; ६३२ मंहिष्ठा ।
शकुनस्य इव पक्षा १०,१०६,३; ६१६ साकंयुजा ।
शफौ इव २,३९,३; २१७ जर्भुराणा तरोभिः ।
शासुः इव १,११६,१३; ८९ वध्रिमत्याः तत् श्रुतम् ।
शूरो न अज्म पतयद्भिः १,१५८,३;१७१उप वाम्...गमेयम्।
शृङ्गा इव २,३९,३; २१७ नः प्रथमा गन्तमर्वाक् ।
श्येना इव ८,७३,४; ५४३ कुह पेतथुः ।
श्येना इव ५,७४,९; २७६ विचेतसा विभिः दीयतम् ।
श्येनौ इव ८,३५,९; ५१७ सुतं सोमं पतथः ।
श्रुष्टीवा इव प्रेषितः ७,७३,३; ३७५ प्रेषितः वां अबोधि।
श्रुष्टीवाना इव १०,१०६,४; ६१७ हवम् आ गमिष्टम् ।
श्वाना इव २,३९,४; २१८ नः अरिषण्या तनूनाम् ।
(यथा) समुद्रः एजति ५,७८,८; ३०४ एवा त्वं...अवेहि ।
सर्गान् इव ८,३५,२०; ५२८ सुष्टुतीः उप सृजतम् ।
सारघा इव १०,१०६,१०; ६२३ नीचीनबारे गवि मधु ।
सिंहम् इव द्रुहस्पदे ५,७४,४; २७१ यदीं ...जिन्वथः ।
सुदिना इव पृक्षः १०,१०६,१; ६१४ पृक्ष आ तंसयेथे !
सुव्रत: न १,१८०,६; १८० सूरिः वाजं मह आ ददे ।
सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे१,११७,५;१०६तमसि क्षियन्तम्।
सूनुः न पितरा ७,६७,१; ३२८ वां अच्छा विवक्मि ।
(पिता) सूनवे इव । वा०य० १४,३; ६३६ त्वं सुशेवा एधि ।
सूर्यम् न १,११७,५; १०६ तमसि क्षियन्तं वन्दनाय ।
सृण्या इव जर्भरी १०,१०६,६; ६१९ जर्भरी तुर्फरीतू ।
सोमं इव स्रुवेण १,११६ २४; १०० उदनि... उन्निन्यथुः ।
सोमम् न १०,३९,२; ५८४ मघवत्सु---कृतम् ।
(यथा)सोमः प्रातःसवने अथ०९,१,११; ६८५ एवा मे वर्चः ।
स्तनौ इव २,३९,६; २२० नः जीवसे पिप्यतम् ।
स्वर् न ४,४५,२; २३८ शुक्र तन्वन्त आ रजः ।
स्वर् न ४,४५,६; २४२ शुक्र तन्वन्त आ रजः
हंसौ इव ५,७८,१-३; २९७-२९९ सुतान्...आ पततम् ।
हंसौ इव ८,३५,८; ५१६ सोमम् पतथः ।
हरिणौ इव अनु यवसम्५,७८,२;२९८ सुतान्...आ पततम्।
हस्ता इव २,३९,७; २२१ शक्तिं अभि संदधी नः ।
हस्तौ इव २,३९,५; २१९ तन्वे शम्भविष्ठा ।
हारिद्रवा इव वना इत् ८,३५,७;५१५सुतं सोमं उप पततः ।
हिम्या इव वाससः १,३४,१; १२ युवोः हि यन्त्रम् ।
हिरण्यं प्रति १,४६,१०; ३३ सूर्यः व्यख्यत् ।
हिरण्यस्य इव कलशम्१,११७,१२; ११३ कूपे...उदूपथुः ।
ह्वारः न १,१८०,३; १७७ शुचिर्यजते हविष्मान् ।

अश्विनौ–देवताया गुणबोधक-पदसूची।

['अश्विना-नौ' इति द्विवचनान्तं पदम्, अतस्तद्बोधकपदान्यपि द्विवचनान्तानि वर्तन्ते।]

अङ्गिरस्वन्ता ८,३५,१४; ५२२
अजरौ १,११२,९;६०
अतूर्तदक्षा ८,२६,१, ४९०
अदाभ्या ५,७५,७-८; २८४-२८५
अधप्रिया ८,८,४; ४२४
अध्रिगू ५,७३,२; २५९ । ८,२२,११; ४८२
अध्वर्यन्ता १,१८१,१; १८५
अनपच्युता ८,२६,७; ४९६
अनिन्द्या १,१८०,७; १८१
अनुशासिता १,११९,४, १६१
अभ्यायंसेन्या १,३४,१; १२
अमर्त्या ८,२६,१७; ५०६
अरिप्रा ८,८,९; ४२९
अरेपसा १,१८१,४; १८८ । ५,७३,४; २६१
अर्वाचीना ५,७४,९; २७६ । ८,२२,३; ४७४
अवद्यगोहना १,३४,३; १४
अवितारा जनानाम् १,१८१,१; १८५
अश्रन्तौ ८,५,३१; ४१४
अश्वामघा ७,७१,१; ३६२
अस्मयू ७,७४,४; ३८१ । ८,२६,१४; ५०३
अस्रिधा ३,५८,७; २३२
अहर्विदा ८,५,९,२१; ३९९,४०४
आजाता दिवः ४,४३,३; २४६
आशुहेषसा ८,१०,२; ४६६
इन्द्रतमा १,१८२,२; १९१
इषयन्ता ८,५,५;२६,३; ३८८,४९१
ईळिता विमदेन १०,२४,४; ५८०
उग्रा १,१५७,६; १६८ । ६,६२,३; ३०८ ।
१०,१०६,७; ६२०
उपस्तुता १,१८१,७: १९१
उभा १,४६,१५, ११०,१२; ३८,१५९ । ८,८६,१;
१०१,७; १३१,५, ५६७,५७८,६२६
उस्रा २,३९,३; २१७
ऋतप्सू १,१८०,३; १७७
ऋतावृधा १,४७,१,३,५; ३९,४१,४३ । ८,८७,५; ५७६
ऋभुमन्ता ८,३५,१५; ५२३

कवी १,११७,२३; १२४ । ८,८,२,५,२३; ४२२,४२५,
४४३ । १०,४०,६; ६०२
क्रतुमन्ता १,१८३,२; २०३
क्रतुविदा २,३९,२; २१६
गन्तारा दाशुषो गृहम् ८,५,६;२२,३; ३८८,४७४
गम्भीरचेतसा ८,८,२; ४२२
गृणाना जमदग्निना ८,१०१,८; ५७९
गोपा १०,४०,१२; ६०८
गोमघा ७,७१,१; ३६२
चक्रमाणा यज्ञम् आ ६,६२,७; ३०७
चरन्ता कामप्रेणेव मनसा १,१५८,२; १७०
चित्रराती ६,६२,५,११; ३१०,३१६
च्यवाना ६,६२,७; ३१२
छर्दिष्पौ ८,९,११; ४५४
जगत्पौ ८,९,११; ४५४
जर्भुराणा २,३९,३; २१७
जाता अप्सु १,१८४,३; २१०
जाता इहेह १,१८१,४; १८८
जुजुषाणा गिरः ७,६८,१; ३३८
जुजुषाणा ब्रह्म स्तोमम् २,३९,८; २२१
जुषाणा ५,७५,३; २८०
जुषाणा उखयस्य केतुं प्रथमम् वा० य० १४,१; ६३४
जुषाणा गिरः १,११८,१०; १३६
जुषाणा तिरोअह्न्यम् ३,५८,७; २३२
जुषाणा सुष्टुतिम् १,११८,७; १३३
जुहुराणा आ ८,२६,५; ४९४
जेन्यावसू ७,७४,३; ३८०
तनूपा ८,९,११; ४४९
तिरोअह्न्यं जुषाणा ३,५८,७; २३२
तृषाणा विद्युतम् ७,६९,६; ३५२
दंसिष्ठा १,१८२,२; १९५ । १०,१४३,३; ६२९
दक्षपिता वा० य० १४,३; ६३६
दधाना यामम् ७,६९,२; ३४८
दशस्यन्ता ६,६२,७; ३१२ । ८,२२,६; ४७७
दस्रा १,३,३; ३ । ३०,१७-१८; ९-१०।४६,२; २५।४७,
३,६;४१,४४। ९२,१८; ५१। ११६,१०,१६; ८६,९२।

शुभ्रयावाना ८,२६,१९; ५०८
शुम्भमाने तन्वा २,३९,२; २१६
शुश्रुवांसा पुरूणि ब्रह्माणि ७,७०,४; ३५८
शूरसाता १,१५७,२; १६४
शृण्वन्ता स्तुतिम् १,३४,१२; २३
सक्षणी ८,२२,१५; ४८६
सचनस्तमा ८,२६,८; ४९७
सचाभुवा १,३४,११; २२ । १५७,४; १६६
सजोषसा ३,५८,७; २३२ । ७,७२,२; ३६९ । ८,९,१२; ४५५ । १०७,७; ५७८
सत्पती विदथस्य अथर्व० ७,७३,४; ६८२
सत्या १,१८०,७; १८१
सध्रीचीना यातवे १०,१०६,१; ६१४
सन्तौ १,१८४,१; २०८
सपर्यन्ता ८,२६,१३; ५०२
समनसा १,९२,१६; ४९ । ७,७४,२; ३७९
सम्भृता ७,७३,४; ३७६
सवासिनौ अथर्व० २,२९,६; ६४२
सिन्धुमातरा १,४६,२; २५
सुगोपा १,१२०,७; १५४
सुजाता १,११८,१०; १३६

सुदंससा ८,१०,३, ४२७
सुदक्षा ३,५८,७; २३२
सुदानू १,११२,११; ६२ । ११७,२०,२४; १२१,१२५ । १८०,६; १८० । १८४,४; २११ । ३,५८,७, २३२
सुपर्णा ४,४३,३; २४६
सुयुजा ७,७०,२; ३५६
सुरथा १,२२,२; ६
सुवीरा ८,२६,७; ४९६
सुश्रुता २,३९,६; २२०
सुष्टुता ६,६३,६; ३२२
सुहवा ८,२२,९; ४७२ । १०,३९,११; ५९३
सूर्यावसू ७,६८,३; ३४०
स्थविरा १,१८१,७; १९१
स्थातारा १,१८१,३; १८७
स्वर्विदा ८,८,७; ४२७
स्वश्वा ७,६८,१; ३३८ । ६०,३; ३४९
हवनश्रुता ५,७५,५; २८२ । ८,८,७; ४२७
हिरण्यपेशसा ८,८,२; ४२२
हिरण्यवर्तनी १,९२,१८; ५१ । ५,७५,२-३; २७९-२८० । ८,५,११; ३९४ । ८,१; ४२१ । ८७,५; ५७६
होतारा देवानाम् वा० य० २१,५३;६६४

(१) सुरथा अश्विनौ । [अश्विनोः रथः ।]

अक्षः हिरण्ययः यस्य ८,५,२९; ४१२
अजरः ४,४५,७; २४३
अत्यः १,१८०,२; १७६
अद्रिजूत ३,३९,८; २३३
अनश्वः १,१२०,१०; १५७
अनुगायस् ८,५,३४; ४१७
अनेहस् ८,२२,२; ४७३
अमर्त्यः ५,७५,९; २८६
अरिष्टनेमिः १,१८०,१०; १८४
अश्वः ७,७०,१; ३५५
अश्वासः ४,४५,२; २३८
अश्वावत् ७,७२,१; ३६८
असनः १,१२०,१०; १५७
अहंपूर्वः १,१८१,३; १८७
आचितः १,१८२,२; १९५
आशुः ४,४३,२; २४५

इयानः अस्मभ्यम् ७,६८,३; ३४०
इयानः याम् १,१८०,१०; १८४
इषा वर्तते सह ८,५,३४; ४१७
इषां वोळ्हा ७,६९,१; ३४७
ईषा हिरण्ययी रश्मिः ८,५,२९; ४१२
उकथ्यः १०,१४१,१; ६११
उग्रः ५,७३,७; २६४
उस्रयामः ७,७१,४; ३६५
उस्राः वस्ते ७,६९,५; ३५१
ऋतः २,५८,२; २२७
ऋतजाः ३,३९.८; २३३
ककुहः १,१८१,५; १८९ । ५,७३,७; २६४
करिक्रत् भूरि वर्पः ३,५८,९; २३४
क्षाम् अभियन् १,१८३,२; २०३
गिर्वाहस् ४,४४,१; २५१
गोमान् ७,७२,१; ३६८

(२) स्वश्वौ अश्विनौ। [अश्विनोः अश्वाः।]

(३) अश्विनोः सञ्चारः ।

(१) पृथिव्याम् ।

४,४५,७; २४३ येन (रथेन) सद्यः परि रजांसि याथः ।

५,७३,३; २६० ईर्मान्यद् वपुषे वपुः चक्रं रथस्य येमथुः । पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः ॥

७,६९,१; ३४८ स [रथः] पप्रथानः अधि पञ्च भूम ।

(२) दिवि ।

१,११९,३; १४० युवोरह प्रवणे चेकिते रथः ।

१,१३९,४; १६१ अचेति दस्रा व्युनाकमृण्वथः युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टिषु पथेव यन्ता'''रजः ।

१,१८०,१०; १८४ तं वा रथं वयमद्या हुवेम'''द्यामियानम् ।

८,९,११; ४६४ यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः ॥

८,२२,४; ४७५ युवो रथस्य परि चक्रमीयते ईर्मान्यद्वां इषण्यति ।

८,८३,७; ४२७ दिवश्चिद्रोचनादधि आ नो गन्तं स्वर्विदा ।

१,१८३,६; २०७
१,१८४,६; २१३ } एह यातं पथिभिर्देवयानैः ।
३,५८,५; २३०

७,७०,३; ३५७ यानि स्थानानि अश्विना दधाते दिवो यह्वीष्वोषधीषु विक्षु । नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्त ॥

(३) द्यावापृथिव्योः ।

१,३४,८; १९ तिस्रः पृथिवीरुपरि प्र वा दिवो नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम् ।

३,५८,८; २३३ रथो ह वां ऋतजा अद्रिजूतः परि द्यावापृथिवी याति सद्यः ।

४,४४,५; २५५ आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।

८,१०,६; ६७० यदन्तरिक्षे पतथः पुरुभुजो यद्वेमे रोदसी अनु । यद्वा स्वधाभिरधितिष्ठथो रथे ''' अत आयातमश्विना ॥

८,२२,५; ४७६ [वां रथः] परि द्यावापृथिवी भूषति श्रुतः ।

८,७३,१३; ५५२ यो वां रजांस्यश्विना रथो वि याति रोदसी ।

८,८३,३; ४२३ आ यातं नहुषस्परि आन्तरिक्षात् सुवृक्तिभिः ।

८,८३,४; ४२४ आ नो यातं दिवस्परि अन्तरिक्षादध प्रिया ।

(४) परावति ।

१,३४,७; १८ परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम् । तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम् ॥

१,४७,७; ४५ यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अधि तुर्वशे । अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥

५,७३,१; २५८ यदद्य स्थः परावति यदर्वावति अश्विना । यद्वा पुरू पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् ॥

८,५,८; ३९१ येभिस्तिस्रः परावतो दिवो विश्वानि रोचना । त्रीँरक्तून् परि दीयथः ॥

८,८,१४; ४३४ यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अध्यम्बरे ।

(५) जले ।

१,३०,१८, १० समानयोजनो हि वां रथः'''समुद्रे अश्विनेयते ।

५,७३,८; २६५ यत् समुद्राति पर्षथः ।

६,६२,२; ३०७ पुरू वरांसि अमिता मिमाना अपो धन्वान्यति याथो अज्रान् ।

७,६७,८; ३३५ परि वां सप्त स्रवतो रथो गात् ।

४,४३,६; २४९ सिन्धुर्ह वां रसया सिञ्चदश्वान् घृणा वयोऽरुषासः परि ग्मन् ।

(६) दिवि जले च ।

१,४६,८; ३१ अरित्रं वा दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः ।

१,१८०,१; १७५ युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद्वां परि अर्णांसि दीयत् ।

४,४३,५; २४८ उरु वां रथः परि नक्षति द्यामा यत् समुद्रादभि वर्तते वाम् ।

५,७६,४; २९० आ नो दिवो बृहतः पर्वतात् आ अद्भ्यः यातम् ।

८,२६,१७; ५०६ यदद्दो दिवो अर्णव इषो वा मदथो गृहे ।

८,१०,१; ४६५ यत स्थो दीर्घप्रसद्मनि यद्वादो रोचने दिवः । यद्वा समुद्रे अध्याकृते गृहेऽत आ यातमश्विना ॥

(७) सर्वदिक्षु ।

७,७२,५; ३७२ } आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तात् अश्विना
७,७३,५; ३७७ } यातमधरादुदक्तात् ।

८,१०,५; ४६९ यदद्याश्विनावपाग् यत् प्राक् स्थो वाजिनीवसू । यद् द्रुह्यवि अनवि तुर्वशे यदौ हुवे वामथ मा गतम् ॥

(८) अन्यदेवैः सह ।

८,९,१२; ४५५ यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना
यद्वा वायुना भवथः समोकसा ।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा
यद्वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥

(९) आगातः ।

१,२२,४; २८ न हि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः ।

५,७५,७; २८४ तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या ।

५,७४,१; २६८ कूष्ठो देवावश्विनाऽद्या दिवो मनावसू ?

५,७४,२; २६९ कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या ?

८,७३,४; ५४३ कुह स्थः ? कुह जग्मथुः ? कुह श्येनेव पेतथुः ?

८,७३,५; ५४४ यदद्य कर्हि कर्हिचित् शुश्रूयातमिमं हवम् ।

१०,४०,२; ५९८ कुह स्विद् दोषा ? कुह वस्तोरश्विना ?
कुहाभिपित्वं करतः ? कुहोषतुः ? ।

(४) अश्विनोः आवाहनकालः ।

१,११८,११; १३७ हुवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ ।

७,६८,९; ३४६ अग्ने बुधानः उषसां सुमन्मा ।

७,६९,५; ३५१ तेन नः शंयोरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञेऽस्मिन् ।

७,७१,३; ३६४ आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ ··वर्तयन्तु ।

७,७१,४; ३६५ यो वां रथः··· उस्रयामा ।

७,७२,४; ३७१ विचेदुच्छन्ति उषासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते ।

१०,४१,१; ६११ वयं व्युष्टौ उषसो हवामहे ।

५,७६,१; २८७ आ भात्यग्निरुषसामनीकं अर्वाञ्चा ··· नूनं रथ्येह यातम् ।

५,७६,२; २८८ दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा ।

१,११२,२४; ७१ अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वाम् ।

२,३९,२; २१६ प्रातर्यावाणा ।

५,७७,१; २९२ प्रातर्यावाणा ।

५,७७,१; २९२ प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते ।

५,७७,२; २९३ प्रातर्यजध्वमश्विना ।

८,२२,१४; ४८६ आ सुम्नाय ··प्राता रथेनाश्विना हुवे ।

१०,४०,१; ५९७ प्रातर्यावाणं रथम् ।

१०,४०,३; ५९९ प्रातर्जरेथे जरणेव कापया ।

१०,४१,२; ६१२ प्रातर्युजं नासत्याधि तिष्ठथः प्रातर्यावाणं··· रथम् ।

८,२२,११; ४८२ इदा चिदह्नो हवामहे ।

८,२२,१३; ४८४ ताविदा चिदहानाम्·· वन्दमान उप ब्रुवे ।

८,२२,१४; ४८५ तावित् दोषा ता उषसि शुभस्पती ता यामन् [हवामहे] ।

१०,३९,१; ५८१ यो वां रथो दोषामुषासो हव्यः . तमु वामिदं वयं हुवं हवामहे ।

१०,४०,४; ६०० दोषा वस्तोर्हविषा नि ह्वयामहे ।

७,७१,२; ३६३ उपायातं दाशुषे ·· ।
दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः ॥

१,११२,२५; ७६ द्युभिः अक्तुभिः परि पातमस्मान् ।

१,३४,१; १२ त्रिश्चिन्नो अद्या अवतम् ।

१,३४,३; १४ समाने अहन् त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम् ।

१,३४,४; १५ त्रिर्वर्तिर्यातम् ।

८,३५,७-९; ५१५-५१७ विवर्तिर्यातम् ।

८,२२,३; ४९२ ता वामद्य हवामहे ··· अति क्षपः ।

८,७३,६; ५४५ अश्विना यामहूतमा नेदिष्ठं याम्याप्यम् ।

१,४६,१४; ३७ ऋता वनथो अक्तुभिः ।

५,७६,३; २८९ उता यातं संगवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य । दिवा नक्तमवसा शंतमेन ॥

(५) अश्विनोः भिषक्कर्म ।

(१) भिषजा ।

भिषजा १,११६,१६; ९२ । १५७,६; १६८ । ८,८६,१; ५६७ । १०,३९,५; ५८७ । वा० य० २०,५२; ६६३

भिषजा रुतस्य चित् १०,३९,३; ५८५ अन्धस्य चित... कृशस्य चित् ···।

भिषजा देवानाम् वा० य० २१,५३; ६६४

भिषजा दैव्या ८,१८,८; ४७१

(२) भिषक्कर्म ।

१,३४,६; १७ त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरुदत्तमद्भ्यः ।

१,१५७,६; १६८ युवं ह स्थः भिषजा भेषजेभिः ।

८,९,६; ४४९ यन्नासत्या भुरण्यथः यद् वा देव भिषज्यथः ।

८,९,१५; ४५८ यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् । तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ।

८,२२,१०; ४८१ ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गतं भिषज्यतं यदातुरम् ॥

८,३५,१६-१८; ५२४-५२६ सेधतममीवाः ।

७,७०,३; ३५७ यानि स्थानानि अश्विना दधाथे दिवो यह्वीषु ओषधीषु विक्षु ।

७,७०,४; ३५८ चनिष्ठं देवा ओषधीष्वप्सु

१,१५७,५; १६७ युवं हि गर्भं जगतीषु धत्थः युवं विश्वेषु भुवनेषु अन्तः । युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतींरश्विना वैरयेथाम् ॥

७,७१,२; ३६१ युयुतमस्मदनिराममीवाम् ।

(६) अश्विनोः सूर्याग्न्युषसां च सम्बन्धः ।

१,४६,१; २४ एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥

१,४६,१०; ३३ अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः । व्यख्यज्जिह्वयासित ॥ (तत्तदिदश्विनोरवः)

१,४६,१४; ३७ युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत् ।

१,१५७,१; १६३ अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यः व्युषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा । आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद् देवः सविता जगत् पृथक् ॥

१,१८०,१; १७१ मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे ।

१,१८३,२; २०३ दिवो दुहित्रा उषसा सचेथे ॥

३,५८,१; २२६ धेनु प्रत्नस्य काम्यं दुहानाऽन्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः । आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामा उषसः स्तोमो अश्विनावजीग ॥

३,५८,४; २२९ इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्र मित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे ।

४,४५,१-२; २३७-२३८ एष स्य भानुरुदियर्ति युज्यते रथः परिज्मा दिवो अस्य सानवि । पृक्षासो अस्मिन् मिथुना अधि त्रयो दृतिस्तुरीयो मधुनो वि रप्शते ॥ उद्वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु । अपोर्णुवन्तस्तम आ परीवृतं स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ॥

१,९२,१८; ५१
४,४५,४; २४० (अश्विनोः अश्वासः) उषर्बुधः ।

५,७५,९; २८६ अभूदुषा रुशत् पशुराग्निरधाय्यृत्वियः । अयोजि वां वृषण्वसू रथः ।

५,७६,१; २८७ आ भात्यग्निरुषसामनीकम् उद् विप्राणां देवया वाचो अस्थुः । अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातम् ।

६,६२,१; ३०६ या सद्य उस्रा व्युषि ज्मो अन्तान् युयूषतः पर्युरू वरांसि ॥

६,६३,६; ३१२ युवं श्रीभिर्दर्शताभिराभिः शुभे पुष्टिमूहथुः सूर्यायाः ।

७,६७,२-३; ३२९-३३० अशोच्यग्निः समिधानो अस्मे उपो अदृश्रन् तमसश्चिदन्ताः । अचेति केतुरुषसः पुरस्तात् श्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ॥ अभि वां नूनमश्विना सुहोता स्तोमैः सिषक्ति नासत्या विवक्वान् ।

७,७२,३; ३७० जामि ब्रह्माणि उषसश्च देवीः ।

७,७२,४; ३७१ वि चेदुच्छन्त्यश्विना उषासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते । ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेत् बृहदग्नयः समिधा जरन्ते ॥

८,५,२; ३८५ रथेन पृथुपाजसा । सचेथे अश्विनोषसम् ।

८,८,२; ४२२ आ नूनं यातमश्विना रथेन सूर्यत्वचा ॥

८,९,१६-१८
४५९-४६१ अबुध्रस्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः । व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥
प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।
प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥
यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे ।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥

८,३५,१-३; ५०९-५११ सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥
४-६; ५१२-५१५ सजोषसा इषं नो वोळ्हमश्विना ॥
७-९; ५१५-५१७ सजोषसा त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥
१०-१२; ५१८-५२० सजोषसा ऊर्जं नो धत्तमश्विना ॥
१३-१५; ५२१-५२३ सजोषसा आदित्यैर्यातमश्विना ॥
१६-१८; ५२४-५२६ सजोषसा सोमं सुन्वतो अश्विना ॥

८,३५,१९-२१; ५२७-५२९ सजोषसा अश्विना तिरोअह्न्यम्॥
८,७३,१६-१७; ५५५-५५६ अरुणप्सुरुषा अभूदकर्ज्योतिर्ऋतावरी । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥
अश्विना सुविचाकशत् वृक्षं परशुमाँ इव । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥
१०,३९,१२; ५९४ यस्य [रथस्य] योगे दुहिता जायते दिवः उभे अहनी सुदिने विवस्वतः ॥

(७) अश्विनोः मन्त्रेषु व्यक्तिनामानि।

अंशुः स्तोता । ८,५,२६; ४०९
अगस्त्यः स्तोता । १,१८०,८; १८२ । १८४,५; २१२ । ८,५,२६; ४०९
अघाश्वः अवितः । (पेदुनामा राजर्षिः) १,११६,६; ८२
अङ्गिराः स्तोता । १,११२,१८; ६९
अत्रिः द्रष्टा । ५,५३,६-७; २६३-२६४ । ७४,१; २६८। १०,१४३,१-३; ६२७-६२९ । (अवितः) १,११२,७,१६; ५८,६७ । ११६,८; ८४ । ११७,३; १०४ । ११८,७; १३३ । ११९,६; १४३ । १८०,४; १७८ । १८३,५; २०६ । ७,६८,५; ३४२ । ७१,५; ३६६ । ८,५, २५; ४०८ । ३५,१९; ५२७ । (स्तोता) ८,४२,५; ५३४ । ७३,३,७-८; ५४२,५४६-५४७ । १०,३९,९; ५९१ । ५,७८,४; ३००
अध्रिगुः राजा । १,११२,२०; ७१ । ८,२२,१०; ४८१
अनुः स्तोता । ८,१०,५; ४६९
अन्तकः राजर्षिः अवितः । १,११२,६; ५७
अवस्युः द्रष्टा । ५,७५,८; २८५
आजमीळ्हासः द्रष्टारः । ४,४४,६; २४६
आर्चत्कः शरः अवितः । १,११६,२२; ९८
आर्जुनेयः कुत्सः अवितः । १,११२,२३; ७४
उपस्तुतः अवितः । १,११२,१५; ६६ । ८,५,२५; ४०८
ऋज्राश्वः १,११६,१६; ९२ । ११७,१७-१८; ११८-११९ । १२०,६; १५३
ऋतस्तुभ् १,११२,२०; ७१
औचथ्यः मन्त्र-द्रष्टा । १,१५८,१,४; १६९,१७२
औशिजः द्रष्टा । १,१०९,९; १४६
औशिजः कक्षीवान् (दीर्घतमसः पत्नी उशिक् तस्याः पुत्रः दीर्घश्रवाः) अवितः । १,११२,११; ६२
कक्षीवान् १,११२,११; ६२ । ११६,७; ८३ । ११७,६; १०७ । १२०,५; १५२ । (स्तोता) ८,९,१०; ४५३
कण्वः, कण्वस्य पुत्रः, कण्वासः वा द्रष्टारः । १,४६,९; ३२ । ४७,२,४ ५,१०; ४०,४२-४३,४८ । ८,५, ४-५, २३, २५; ३८७-३८८,४०६,४०८ । ८,३; ६२३ । ९,२४; ४५७ । १०,२; ४६६
कण्वः अवितः । १,११२,५; ५६ । ११७,८; १०९ । ११८, ७; १३३ । ८,८,२०; ४४०
कर्कन्धुः अवितः । १,११२,६; ५७
कलिः अवितः । १,११२,१५; ६६ । ११,३९,८; ५९०
कविः अवितः । १,११६,१४; ९१ । ११९,७; १४४
काण्वः द्रष्टा । ८,९,३,९; ४४६,४५२
काव्यः स्तोता । १,११७,१२; ११३
कुत्सः अवितः । १,११२,९; ६० । ११२,२३; ७३ । १०,४०,६; ६०२
कृशः अवितः । १०,४०,८; ६०४
कृशानुः अवितः । १,११२,२१; ७२
कृष्णः द्रष्टा । ८,८५,३४; ५६०-५६१
कृष्णियः विश्वकः अवितः । १,११६,२३; ९९
गृत्समदासः द्रष्टारः । २,३९,८; २२२
गोतमः अवितः । १,११६,९; ८५ । (स्तोता) १,१८३,५; २०६
घोषः स्तोता । १,१२०,५; १५२
घोषा अविता । १,११७,७; १०८
घोषा द्रष्ट्री । १०,४०,५; ६०१
च्यवानः अवितः । १,११६,१०; ८६ । ११७,१३; ११४ । ११८,६; १३२ । ५,७४,५; २७२ । ७५,५; २८२ । ७, ६८,६; ३४३ । ७१,५; ३६६ । १०,३९,४; ५८६
जमदग्निः द्रष्टा । ८,१०१,८; ५७९
जह्नावी अविताः । १,११६,१९; ९५ । ३,५८,६; २३१
जाहुषः अवितः । १,११६,२०; ९६ । ७,७१,५; ३६६
तुग्रः अवितः । १,११७,१४; ११५
तुग्रस्य सूनुः तौग्र्यः भुज्युः अवितः । १,११२,६; ५७ । ११२,२०; ७१ । ११६,३-५, ७९-८१ । ११६,१४-१५; ११५-११६ । ११८,६; १३२ । ११९,४,८; १४१,१४५ ।

अश्विनौ-देवता--मन्त्रेषु अन्याः--देवताः ।

मरुतः ६,६२,८; ३१३ । ८,३५,३,१३-१५; ५११, ५११-५२३

मित्रः १,११२,१५; ७६ । ६,६२,९; ३१४ । ८,२६,११; ५००

मित्रावरुणौ ८,३५,१३; ५१८

रथः अश्विनोः-द्रष्टव्यः 'अश्विरथः'

रुद्राः ८,३५,१; ५०९

रुद्रियाः ६,६२,८; ३१३

रोदसी ६,६२,८; ३१३

वरुणः १,११२,१५; ७६ । ६,६२,९; ३१४ । ८,२६,११; ५०० । ३५,१; ५०९

वसवः ६,६२,८; ३१३ । ८,३५,१; ५०९

विश्वा धियः ८,३५,१; ५१०

विश्वे देवाः ८,१०,२; ४६६ । ३५,३; ५११

विष्णुः ८,३५,१,१३; ५०९,५२१

सप्तवध्रिः ८,७३,१८; ५५७

सरस्वती वा० य० २०,६७-६९; ६५६-६५८। २१,४८-५८; ६५९-६६९

सिन्धुः १,११२,१५; ७६

सविता १,१५७,१; १६३ । ७,७१,५; ३०१

सूर्यः ७,६७,२; ३२९

सूर्यसहितौ उषसा च ८,३५,१-२१; ५०९-५२९

सोमः वा० य० १९,३४; ६५४

सोमरसः वा० य० १९,३५; ६५५

(१) निर्विशेषितत्वेन* वर्णितं अश्विनोः अवनकर्म ।

अत्रिः ८,५,२५; ४०८ । [द्रष्टव्यम् '(५) परकृतविविधापद्भ्यः अवनम् ।']

अध्रिगुः १,११२,२०; ७१ । ८,२२,१०; ४८१

उपस्तुतः १,११२,१५; ६६ । ८,५,२५; ४०८

कक्षीवान् (स्तोता) १।११२,११; ६२

कण्वः (प्रसिषासन्) ८,५,२५; ४०८ । ८,१०; ४४० । [द्रष्टव्यम् '(५) परकृतविविधापद्भ्यः अवनम्']

कर्कन्धुः १,११२,६; ५७

कलिः (वित्तजानिः) १,११२,१५; ६६ । [द्रष्टव्यम् '(६) भिषक्कर्मणा अवनम् ।']

कुत्सः १,११२,९; ६०

कुत्सः आर्जुनेयः १,११२,२३; ७४

कृशः १०,४०,८; ६०४

गोशर्यः ८,८,२०; ४४०

तुर्वीतिः १,११२,२३; ७४ ×

दभीतिः १,११२,२३; ७४

ध्वसन्तिः १,११२,२३; ७४

नर्यः १,११२,९; ६० ×

पक्थः ८,२२,१०; ४८१

पुरुकुत्सः १,११२,७; ५८

पुरुषन्तिः १,११२,२३; ७४

पृथिः १,११२,१५; ६६

पृश्निगुः १,११२,७; ५८

प्रियमेधः ८,५,२५; ४०८

बभ्रुः (विजोषस्) ८,२२,१०; ४८१

भरद्वाजः (विप्रः) १,११२,१३; ६४

भुज्युः १०,४०,७; ६०३ । [द्रष्टव्यम् '(५) परकृतविविधापद्भ्यः अवनम् ।']

मेधातिथिः ८,८,२०; ४४०

वम्रः (विपिपानः) १,११२,१५; ६६

वय्यः १,११२,६; ५७ ×

वशः अश्व्यः (प्रेणिः) १,११२,१०; ६१

वशः दशव्रजः ८,८,२०; ४४०

वशः १०,४०,७; ६०३

वसिष्ठः १,११२,९; ६०

विधवा १०,४०,८; ६०४

व्यश्वः १,११२,१५; ६६

शयुः १०,४०,८; ६०४। [द्रष्टव्यम् '(७) अन्येषां प्राणिनां अवनम् ।']

शिञ्जारः ८,५,२५; ४०८+ । १०,४०,७; ६०३

श्रुतर्यः १,११२,९; ६०

---

* 'यथा चित्कण्वमावतम्' 'याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतम्' इति एतादृशमन्त्रैः वर्णितम्।

× द्रष्टव्यम् 'त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो।' (इन्द्रः०) १,५४,६;७९१ 'अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम्।' (इन्द्रः०) २,१३,१२, ११४८ 'त्वं महीमवनिं विश्वधेनां तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम्। अरमयो नमसैजदर्णः सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून्।' (इन्द्रः०) ऋ० ४,१९,६; १५२७।

+ अत्र सायनाचार्याः 'शिञ्जारः' इति शब्दस्य शब्दयन्, स्तुवन् इत्यर्थं दत्वा अयं शब्दः अत्रेर्विशेषणं इति मन्यन्ते।

(२) इष्टवस्तुप्रदानेन अवनम् ।

धनम् ।

अंशुः ८,५,२६; ४०९ यथोत कृत्व्ये धने अंशुम् (आवतम्) ।

त्रसदस्युः ८,८,२१; ४४१ याभिर्नरा त्रसदस्युं आवतं कृत्व्ये धने ।

त्रासदस्यवः तृक्षिः ८,२२,७; ४७८ येभिः (ऋतस्य पाथिभिः) तृक्षिं वृषणा त्रासदस्यवं महे क्षत्राय जिन्वथः ।

दिवोदासः १,११६,१८; ९४ यदयातं दिवोदासाय वर्तिः भरद्वाजायाश्विना हयन्ता । रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता॥

विमनाः ८,८६,१; ५६८ कथा नूनं वां विमना उप स्तवद् युवं धियं ददथुः वस्य इष्टये ।

विष्णापूः ८,८६,३; ५६९ युवं हि ष्मा पुरुभुजा इमं एधतुं विष्णाप्वे ददथुः वस्य इष्टये ।

सुदाः १,११२,१९; ७० याभिः सुदासे ऊहथुः सुदेव्यम् ।

सुषामा ८,२६,२; ४९१ युवं वरो सुषाम्णे महे तने नासत्या ।

वशः १,११२,१०; ६१ याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिं आवतम् ।

१,११६,२१; ९७ एकस्या वस्तोः आवतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा ।

८,८,२०; ४४० याभिः वशं दशव्रजं ... आवतं कृत्व्ये धने ।

१० ४०,७; ६०३ युवमश्विना वशं...उपारथुः।

जह्नावी ३,५८,६; २३१ युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम्।

१,११६,१९; ९५ रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यं आयुः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता । आ जह्नावीं समनसोप वाजैः त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम्।

अन्नम् ।

मनुः १,११२,१६; ६७ मनवे पुरा गातुमीषथुः ।

१,११२,१८; ६९ मनुं शूरं इषा समावतम् ।

१,११७,२१; १२२ इषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा । यवं वृकेणाश्विना वपन्ता ।

८,२२,६; ४७७ दशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः ।

८,१०,२; ४६६ यद् वा यज्ञं मनवे संमिमिक्षथुः ।

विप्रः १,११७,११; १११ सूनोर्मानेन अश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।

सोभरिः ८,५,२६; ४०९ यथा वाजेषु सोभरिम् (आवतम्) ।

सदः ।

शुचन्तिः १,११२,७; ५८ याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदम् ।

क्षेत्रपतित्वादि ।

मन्धाता १,११२,१३; ६४ मन्धातारं क्षैत्रपत्येषु आवतम् ।

जाहुषः ७,७१,५; ३३६ नि जाहुषं शिथिरं धातमन्तः।

१,११६,२०; ९६ परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः ।

स्त्री ।

कलिः १,११२,१५; ६६ याभिः कलिं वित्तजानिं दुवस्यथः ।

१०,३९,८; ५९० युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः पुनः कलेरकृणुतं युवद् वयः।

श्यावः १,११७,८; १०९ युवं श्यावाय रुशतीं अदत्तम्।

१,११७,२४; १२५ त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तमुज्जीवस ऐरयतं सुदानू।

विमदः १,११२,१९; ७० याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुः।

१,११६,१; ७७ यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहथू रथेन ।

१,११७,२०; १२१ युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम्।

१०,३९,७; ५८९ युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवं न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम्।

८,९,१५; ४५८ यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् । तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥

विमदः (मन्त्रद्रष्टा) १०,२४,४; ५८० युवं शक्रा मायाविना समीची निरमन्थतम् । विमदेन यदीळिता नासत्या निरमन्थतम् ॥

पतिः ।

घोषा १,११७,७; १०८ घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम्।

१०,४०,९; ६०५ जनिष्ट योषा पतयत् कनीनको वि चारुहन् वीरुधो दंसना अनु । आस्मै रीयन्ते निवनेव सिन्धवोऽस्मा अह्ने भवति तत् पतित्वनम् ॥

पुत्रः ।

कृष्णियः १,११६,२३; ९९ अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः । पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथु विश्वकाय ॥

१,११७,७; १०८ युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुः विश्वकाय ।

वध्रिमती १,११६,१३; ८९ अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन् पुरुभुजा पुरन्धिः। श्रुतं तत् शासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥

१,११७,२४; १२५ हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा वध्रिमत्या अदत्तम्।

६,६२,७; ३१२ श्रुतं हवं वृषणा वध्रिमत्याः ।

१०,३९,७; ५८९ युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छतं युवं सुषुतिं चक्रथुः पुरन्धये ।

गावः ।

अगस्त्यः ८,५,२६; ४०९ यथा गोषु अगस्त्यम् (आवतम् ।)

त्रिशोकः १,११२,१२; ६३ याभिः त्रिशोकः उस्रिया उदाजत ।

अश्वः ।

पेदुः १,११६,६; ८२ यदश्विना ददथुः श्वेतमश्वं अघाश्वाय शश्वदित् स्वस्ति । तद् वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत् पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः॥

१,११७,९; ११० पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् । सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहनं श्रवस्यं तरुत्रम् ॥

१,११८,९; १३५ युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम् । जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् ॥

१,११९,१०; १४७ युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः । शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ॥

७,७१,५; ३६६ नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।

१०,३९,१०; ५९१ युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वं नवभिर्वाजैर्नवती च वाजिनम् । चर्कृत्यं ददथुर्द्रावयत्सखं भगं न नृभ्यो हव्यं मयोभुवम् ॥

(३) क्षुद्र-पीडानिवारणम् ।

अन्तकः १,११२,६; ५७ याभिः अन्तकं जसमानं आऽरणे... जिजिन्वथुः ।

वम्रः १,११२,१५; ६६ याभिः वम्रं विपिपानं... दुवस्यथः ।

शरः १,११६,२२; ९८ शरस्य चिद् आर्चत्कस्याव-तादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः ।

अंशः १,११२,२; ५१ याभिः भरे कारं अंशाय जिन्वथः ।

ऋतस्तुभ् १,११२,२०; ७१ ओम्यावतीं सुतरा ऋतस्तुभम् ।

ददाशुः १,११२,२०; ७१ याभिः शन्ताती भवथः ददाशुषे ।

धीः-प्रवृत्तिः १,११२,२; ५३ याभिः धियः अवथः कर्मन्निष्टये ।

त्रिमन्तुः १,११२,४; ५५ याभिः त्रिमन्तुः अभवत् विचक्षणः ।

(४) संग्रामे शत्रुहननेन रक्षणम् ।

आर्यः १,११७,२१; १२२ अभि दस्युं बकुरेणा धमन्ता उरु ज्योतिश्चक्रुः आर्याय ।

कृशानुः १,११२,२१; ७२ याभिः कृशानुं असने दुवस्यथः ।

त्रसदस्युः १,११२,१४; ६५ याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युं आवतम् । [धनप्रदानं- द्रष्टव्यं । ८,८,२१; ४४१]

दिवोदासः १,११२,१४; ६५ याभिः दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम् ।

नरः १,११२,२२; ७३ याभिः नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः ।

याभी रथान् अवथः याभिः अर्वतः ।

पठर्वा १,११२,१७; ६८ याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना ।

पृथुश्रवाः १,११६,२१; ९७ निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ।

शर्यातः १,११२,१७; ६८ याभिः शर्यातं अवथः महाधने ।

स्यूमरश्मिः १,११२,१६; ६७ याभिः शारीः आजतं स्यूमरश्मये ।

१,११६,२; ७८ वीळुपत्मभिः आशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना। तद् रासभो नासत्या सहस्रं आजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥

१,११७,१६; ११८ जातं विष्वाचो अहतं विषेण ।

१,११२,१२; ६३ अनश्वं याभी रथामावतं जिषे ।

(५) परकृतविविधापद्भ्यः अवनम् ।

अत्रिः १,११२,७; ५८ याभिः ...तप्तं घर्ममोम्याव- न्तमत्रये...आवतम् ।

१,११२,१६; ६७ याभिर्नरा ... अत्रये...... गातुमीषथुः ।

१,११६,८; ८४ हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तम् । ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीत मुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ॥

१,११७,३; १०४ ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्य- मृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन । मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता ॥

१,११८,७; १३३ युवमत्रयेऽवनीताय तप्तमूर्ज- मोमानमश्विनावधत्तम् ।

१,११९,६; १४३ युवं ... उरुष्यथः हिमेन घर्मं परितप्तमत्रये ।

१,१८०,४; १७८ युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रये- ऽपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे ।

१,१८३,५; २०६ युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान् ।

५,७३,६; २६३ युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा । घर्मं यद् वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ।

५,७३,७; २६४ उग्रो ह वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु सन्तनिः । यद् वां दंसोभिरश्विनाऽत्रिर्न- रावर्तति ॥

५,७४,१; २६८ अत्रिर्वामा विवासति ।

७,६८,५; ३४२ चित्रं ह यद्वां भोजनं न्वस्ति न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम् । यो वामोमानं दधते प्रियः सन् ॥

७,७१,५; ३६६ निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिम् ।

८,५,२५; ४०८ यथा चित्कण्वमावतं प्रियमेध- मुपस्तुतम् । अत्रिं शिञ्जार- मश्विना ॥

श्यावाश्व (आत्रेयः) ८,३५,१९; ५१७ अत्रेरिव शृणुतं पूर्व्यस्तुतिं श्यावाश्वस्य सुन्वतो मद- च्युता ।

अर्चनाना (आत्रेयः) ८,४२,५; ५३४ यथा वामत्रिरश्विना गीर्भि- र्विप्रो अजोहवीत् ।

गोपवन (आत्रेयः)	८,७३,३;	५४२	उप स्तृणीतमत्रये हिमेन घर्ममश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥
	८,७३,७;	५४६	अवन्तमत्रये गृहं कृणुतं युवमश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥
	८,७३,८;	५४७	वरेथे अग्निमातपो वदते वल्ग्वत्रये । अन्ति० ... ॥
	५,७८,४;	३००	अत्रिर्यद् वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा । श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनाऽऽगच्छतमश्विना शन्तमेन ॥
	१०,३९,९;	५९१	युवमृबीसमुत तप्तमत्रय ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवध्रये ।
अत्रिः सांख्यः	१०,१४३,१;	६२७	त्यं चिदत्रिमृतजुरमर्थमश्वं न यातवे ।
	१०,१४३,२;	६२८	त्यं चिदश्वं न वाजिनमरेणवो यमत्नत । दृळ्हं ग्रन्थिं न वि ष्यतमत्रिं यविष्ठमा रजः ॥
	१०,१४३,३;	६२९	नरा दंसिष्ठावत्रये शुभ्रा सिषासतं धियः ।
कण्वः	१,४७,५;	४३	याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।
	१,११२,५;	५३	याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतम् ।
	१,११७,८;	१०९	युवं ... अदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।
	१,११८,७;	१३३	युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ।
	८,५,२३;	४०६	युवं कण्वाय नासत्याऽपिरिप्ताय हर्म्ये । शश्वदूतीर्दशस्यथः ॥
	८,५,२५;	४०८	यथा चित् कण्वमावतम् ।
	८,८,२०;	४४०	याभिः कण्वं मेधातिथिं ... आवतम् ।
जाहुषः	१,११६,२०;	९६	परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथुः रजोभिः ।
	७,७१,५;	३६६	नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः ।
दीर्घतमा (औचथ्यः)	१,१५८,४;	१७२	उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येत् मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम् । मा मामेधो दशतयश्चितो धाक् प्र यद् वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम् ॥
	१,१५८,५;	१७३	न मा गरन् नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः । शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत् स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥
रेभः	१,११२,५;	५३	याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्यः ... । ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।
	१,११६,२४;	१००	दश रात्रीरशिवेना नव द्यूनवनद्धं श्नथितमप्स्वन्तः । विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण ॥
	१,११७,४;	१०५	अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवैऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु । सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिर्न... ॥
	१,११७,१२;	११३	हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ॥
	१,११८,६;	१३२	उद् रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः ।
	१,११९,६;	१४३	युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथः ।
	१०,३९,९;	५९१	युवं ह रेभं वृषणा गुहाहितमुदैरयतं ममृवांसमश्विना ॥
वन्दनः	१,११२,५;	५३	याभिः [ऊतिभिः] उद् वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे ।
	१,११६,११;	८७	तद् वां नरा शंस्यं राध्यं चाभिष्टिमन्नासत्या वरूथम् । यद् विद्वांसा निधिमिवापगूळ्हमुद् दर्शतादूपथुर्वन्दनाय ॥
	१,११७,५;	१०६	सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम् । शुभे रुक्मं न दर्शतं निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥
	१,११८,६;	१३२	उद् वन्दनमैरतं दंसनाभिः ।

१,११९,६; १४३ प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥
१,११९,७; १४४ युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः॥
१०,३९,८; ५९० युवं वन्दनमृश्यदादुदूपथुः ।
भुज्युः तौग्र्यः १,११२,६; ५७ भुज्युं याभिः [ऊतिभिः] अव्यथिभिर्जिजिन्वथुः ।
१,११२,२०; ७१ भुज्युं याभिः (ऊतिभिः) अवथः ।
१,११६,३-५; ७९-८१ तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः । तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभि रन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥ तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भि- र्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः । समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळ- श्वैः ॥ अनारम्भणे तदवी- रयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे । यदश्विना ऊहथुर्भुज्यु- मस्तं शतारित्रां नावमात- स्थिवांसम् ॥
१,११७,१४; ११५ युवं भुज्युमर्णसो निः समुद्राद् विभिरूहथुर्ऋज्रेभिरश्वैः ॥
१,११७,१५; ११६ अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां प्रोळ्हः समुद्रमव्यथिर्जग- न्वान् ।
निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन मनोजवसा वृषणा स्वस्ति ॥
१,११८,६; १३१ निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात् ।
१,११९,४; १४१ युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ । यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यम्... ।
१,११९,८; १४५ अगच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निबा- धितम् ।
१,१५८,३; १७१ युक्तो ह यद् वां तौग्र्याय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः।
१,१८०,५; १७९ आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः।

१,१८२,५-७; १९८-२०० युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौ- ग्र्याय कम् । येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः ॥ अव- विद्धं तौग्र्यमप्स्वन्तरनार- म्भणे तमसि प्रविद्धम् । चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारय- न्ति ॥ कः स्विद् वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्व- जत् । पर्णा मृगस्य पतरो- रिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥
६,६२,६; ३११ ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समु- द्रात् तुग्रस्य सूनुमूहथू रजो- भिः । अरेणुभिर्योजनेभिर्भु- जन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरु- पस्थात् ॥
७,६८,७; ३४४ उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे । निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः॥
७,६९,७; ३५३ युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्रिधानैः । पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिर्दंस- नाभिरश्विना पारयन्ता ॥
८,५,२२; ४०१ कदा वां तौग्र्यो विधत् समुद्रे जहितो नरा । यद् वां रथो विभिष्पतात् ॥
१०,३९,४; ५८६ निष्टौग्र्यमूहथुरद्भ्यस्परि ।
१०,४०,७; ६०३ युवं ह भुज्युं...उपारथुः ।
१०,१४३,५,६३१ युवं भुज्युं समुद्र आ रजसः पार ईङ्खितम् । यातम- च्छा पतत्रिभिर्नासत्या सातये- कृतम् ॥
सप्तवध्रिः ५,७८,५; ३०१ वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव । श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥

५,७८,६; ३०१ भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये । मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥

८,७३,९; ५४८ प्र सप्तवध्रिराशसा धारामग्नेरशायत ।

१०,३९,९; ५९१ ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवध्रये ।

८,२२,११; ४८३ 'याभिः क्रिविं वावृधुः' ।

[वन्दनपीडानिवारणार्थं एतत् कर्म इति केचित्]

(६) भिषक्कर्मणा अवनम् ।

श्यावः
१,११७,२४; १२० मही वामूतिरश्विना मयोभूः उत श्यावं धिष्ण्या सं रिणीथः ।

नार्षदः
१,११७,८; १०९ प्रवाच्यं तद् वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ।

परावृज्
१,११२,८; ५९ याभिः शचीभिः वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः । +

कविः
१,११६,१४; ९० उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणं अकृणुतं विचक्षे ।

ऋज्राश्वः
१,११६,१६; ९२ शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार । तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ।

१,११७,१७; ११८ शतं मेषान् वृक्ये मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा । आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्त ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे ॥

१,११७,१८; ११९ शुनमन्धाय भरमह्वयत् सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति । जारः कनीन इव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान् ॥

१,१२०,६; १५३ श्रुतं गायत्रं तकवानस्याहं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम् । आक्षी शुभस्पती दन् ॥

विश्पला
१,११२,१०; ६१ याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम् ।

१,११६,१५; ९१ चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम् । सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ।

१,११७,११; ११२ सं विश्पलां नासत्यारिणीतम् ।

१,११८,८; १३४ प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम् ।

१,१८२,१; १९४ विश्पलावसू दिवो नपाता ।

१०,३९,८; ५९० युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः ।

दधीचिः
१,११६,१२; ८८ तद् वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम् । दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ॥

१,११७,२२; १२३ आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् । स वां मधु प्र वोचदृतायन् त्वाष्ट्रं यद् दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ।

१,११९,९; १४६ युवं दधीचो मन आ विवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं वदत् ।

च्यवनः
१,११६,१०; ८६ जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात् । प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित् पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥

१,११७,१३; ११४ युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः ।

१,११८,६; १३२ पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ॥

५,७४,५; २७२ प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः । युवा यदी कृथः पुनरा काममृण्वे वध्वः ॥

५,७५,५; २८२ विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥

+ द्रष्टव्यम्- 'नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्त्सास्युक्थ्यः (इन्द्रः)। २,१३,१२; ११४८। स विद्वाँ अपगोहं कनीनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत् परावृक् । प्रति श्रोणः स्थाद् व्यनगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार।' (इन्द्रः) २,१५,७; ११६८।

७,६८,६; ३४३ उत त्यद् वां जुरते अश्विना भूच्च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे। अधि यद् वर्प इत ऊति धत्थः॥
७,७१,५; ३६६ युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तम्।
१०,३९,४; ५८९ युवं च्यवानं सनयं यथा रथं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः।
कलिः १०,३९,८; ५९० युवं विप्रस्य जरणां उपेयुषः पुनः कलेरकृणुतं युवद् वयः।
१,११२,१५; ६६ याभिः कलिं वित्तजानिं दुवस्यथः।
श्यावाश्वः १,११७,२४; १२५ त्रिधा ह श्यावं अश्विना विकस्तं उज्जीवस ऐरयतं सुदानू।
१,११७,८; १०९ युवं श्यावाय रुशतीं अदत्तम्।
विप्रः १,११९,७; १४४ क्षेत्राद् आ विप्रं जनयो विपन्यया।

(७) अन्येषां प्राणिनामवनम्।

अर्वा १,११२,२१; ७२ जवे याभिः यूनः अर्वन्तं आवतम्।
गावः १,११२,१९; ७० आ घ वा याभिः अरुणीः अशिक्षतम्।
१,११२,१८; ६९ अग्रं गच्छथः विवरे गोअर्णसः।
१,११२,३; ५४ याभिः [ऊतिभिः] धेनुं अस्वं पिन्वथो नरा।
शयुः १,११२,१६; ६७ याभिः [ऊतिभिः] नरा शयवे...गातुमीषथुः।
१,११६,२२; ९८ शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम्।
१,११७,२०; १२१ अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्तामपिन्वतं शयवे अश्विना गाम्।
१,११७,१२; ११३ दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा।
१,११८,८; १३४ युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्व्याय।
१,११९,६; १४२ युवं शयोरवसं पिप्युथुर्गवि।
६,६२,७; ३१२ दशस्यन्ता शयवे पिप्यथुर्गाम्
७,६८,८; ३४५ उत श्रुतं शयवे हूयमाना। यावघ्न्यामपिन्वतमपो न स्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः।
१०,३९,१३; ५९५ अपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना।
१०,४०,८; ६०४ युवमश्विनः शयुं युवं ... उरुष्यथः।
मक्षिका १,११२,२१; ७२ मधु प्रियं भरथः यत् सरड्भ्यः।
१,११९,९; १४६ उत स्या वां मधुमन्माक्षिकारपत्।
वर्तिका १,११२,८; ५९ याभिर्वर्तिकां प्रसिताममुञ्चतम्।
१,११६,१४; ९० आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम्।
१,११७,१६; ११७ अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नो यत् सीममुञ्चतं वृकस्य।
१,११८,८; १३४ अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः।
१०,३९,१३; ५९५ वृकस्य चिद् वर्तिकामन्तरास्याद् युवं शचीभिर्ग्रसिताममुञ्चतम्।

(८) अतिमानुषाणि कर्माणि।

१,११६,२०; ९६ विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वताँ अजरयू अयातम्।
१,११७,१६; ११७ वि जयुषा ययथुः सान्वद्रेः।
१,११६,९; ८५ परावतं नासत्यानुदेथाम्। उच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम्। क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य।
१,११६,७; ८३ कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः।

१,११७,६; १०७ शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भान् असिञ्चतं मधूनाम् ॥

१,११२,१२; ६३ याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुः ।

१,११२,९; ६० याभिः सिन्धुं मधुमत्तमसश्चतम् ।

१,११२,११; ६२ याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् ।

१,११२,४; ५५ याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति ।

१,११२,१३; ६४ याभिः सूर्यं परियाथः परावति ।

सूर्यस्य दुहिता १,३४,५; १६ त्रिष्ठं वां सूरे दुहिता रुहद् रथम् ।

१,११६,१७; ९३ आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती । विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ॥

१,११७,१३; ११४ युवो रथं दुहिता सूर्यस्य सह श्रिया नासत्यावृणीत ॥

१,११८,५; १३१ आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य ।

१,११९,२; १३२ आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत् ॥

१,११९,५; १४२ युवोरश्विना वपुषे युवायुजं रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम् । आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी योषावृणीत जेन्या युवां पती ॥

१,१८४,३; २१० श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः । वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः ॥

५,७३,५, २६२ आ यद् वां सूर्या रथं तिष्ठद् रघुष्यदं सदा । परि वामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः ॥

६,६३,५; ३२१ अधि श्रिये दुहिता सूर्यस्य रथं तस्थौ पुरुभुजा शतोतिम् ।

७,६९,३; ३४३ वि वां रथो वध्वा यादमानोऽन्तान् दिवो बाधते वर्तनिभ्याम् ।

७,६९,४; ३५० युवोः श्रियं परि योषावृणीत सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् ।

८,८,१०; ४३० आ यद् वां योषणा रथमतिष्ठद् वाजिनीवसू । विश्वान्यश्विना युवं प्र धीतान्यगच्छतम् ॥

अश्विनो-देवताया गुणबोधक-सामासिक-पदानां उत्तरपद-सूची ।

स – जोषसा ३,५८,७; २३२
सचनस् – तमा ८,२६,८; ४९७
मनस्(नो) – तरा १,४६,२; २५
अ – तूर्तदक्षा ८,२६,१,४९०
पुरु – त्रा २,३९,१; ११५
मर्त्य – त्रा ६,६२,८; ३१३
शयु – त्रा १,११७,१२; ११३
पुरु – दंसा ७,७३,१; ३७३
पुरु – दंससा १,३,२; २
सु – दंसषा ८,१०,३; ४६७
अतूर्त – दक्षा ८,२६,१; ४९०
सु – दक्षा ३,५८,७; २३२
सु – दानू १,११२,११; ६१
अ – दाभ्या ५,७५,७; २८४
वसु – धिती १,१८१,१; १८५
दिवो (वः) – नपाता १,११७,१२; ११३
दिवो (वः) – नरा १०,१४३,३; ६१९
अ – निन्द्या १,१८०,७; १८१
दानुनः (स्) – पती ८,८,१६; ४३६
नृ – पती ७,६७,१; ३२८
शची – पती ७,६५,५; ३३२
शुभ् (स्) – पती १,३,१; १
सत् – पती अथर्व० ७,७३,४; ३७६
पुरु – पन्था ६,६३,१०; ३२६
सु – पर्णा ४,४३,३; २४६
तनू – पा ८,९,११; ४४९
पर (स्) – पा ८,९,११; ४४९
सु-गो – पा १,१२०,७; १५४
छर्दिस् – पौ ८,९,११; ४४९
जगत् – पौ ८,९,११; ४४९
मधु – पौ १,१८०,२; १७६
द्रवत् – पाणी १,३,१; १
वीळु – पाणी ७,७३,४; ३७६
मधु – पातमा ८,२२,१७; ४८८
दक्ष – पिता वा० य० १४,३; ६३६
हिरण्य – पेशसा ८,८,२; ४२२
वत्स – प्रचेतसा ८,८,७; ४२७
अरि – प्रा ८,८,९; ४२९
अध – प्रिया ८,८,४; ४२४
पुरु – प्रिया ८,५,४; ३८७

ऋत – प्सू १,१८०,३; १७७
पुरु – भुजा १,३,१; १
पुरु – भू ४,४४,४; २५४
मयस् (यो) – भुवा १,९२,१८; ५२
शम् – भू १,४६,१३; ३६
शम् – भुवा ८,८,१९; ४३९
शम् – भविष्ठा २,३९,५; ११९
सचा – भुवा १,३४,११; २२
पुरु – भोजसा ८,२२,१६; ४८७
अश्व (श्वा) – मघा ७,७१,१; ३६२
गो – मघा ७,७१,१; ३६२
पुरु – मन्तू १,१५८,१; १६९
पुरु – मन्द्रा ८,५,४; ३८७
पुनर् – मन्यौ १,११७,१४; ११५
अ – मर्त्या ८,२६,१७; ५०६
सिन्धु – मातरा १,४६,२; २५
प्रिय – मेधा ८,८,१८; ४३८
प्रातर् – यावाणा २,३९,२; ११६
शुभ्र – यावाना ८,२६,१९; ५०८
प्रातर् – युजा १,२२,१; ५
सु – युजा ७,७०,२; ३५६
मधु (धू) – युवा ५,७३,८; २६५
सु – रथा १,२२,२; ६
चित्र – राती ६,६२,५; ३१०
अ – रेपसा १,१८१,४; १८८
मधु – वर्णा ८,२६,६; ४९२
रुद्र – वर्तनी १,३,३; ३
हिरण्य – वर्तनी १,९२,१, ५१
जेन्या – वसू ७,७४,३, ३८०
पुरु – वसू १,४७,१०; ४८
मना – वसू ५,७४,१; २६८
वाजिनी – वसू २,३७,५; ११४
विश्पला – वसू १,१८२,१; १९४
वृषन् (ण्) – वसू १,४१,८; २२४
शची – वसू १,६७,५; ३३२
सूर्या – वसू ७,६८,३; ३४०
विश्व – वारा ७,७०,१; ३५५
यज्ञ – वाहसा १,१५,११; ४
विप्र – वाहसा ५,७४,७; २७४
अहर् – विदा ८,५,९; ३९२
क्रतु – विदा २,३९,१; ११६

अश्विनौ-देवतामन्त्राणां वर्णानुक्रमसूची ।



दैवत-संहिता ।

(६)

आयुर्वेद--प्रकरण

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
साहित्यवाचस्पति, गीतालंकार
अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल.

[स्व. नारायणजी पुरुषोत्तम विश्वस्तनिधिके बंबई निवासी विश्वस्तोंने संपूर्ण 'दैवत-संहिता' के मुद्रणके लिये १५०००) रु० दिये, इस धनके भागसे यह विभाग मुद्रित हुआ है ।]

स्वाध्याय मण्डल, पारडी

संवत् २०१४, शक १८८०, सन् १९५८

प्रकाशक :
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर, बी. ए.,
स्वाध्याय-मण्डल, भारत मुद्रणालय,
पोस्ट- ' स्वाध्याय मण्डल (पारडी) '
पारडी (जि. सुरत)

द्वितीय वार

मूल्य ५) रु.

मुद्रक :
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर, बी. ए.,
स्वाध्याय-मण्डल, भारत मुद्रणालय,
पोस्ट- ' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) '
पारडी (जि. सुरत)

आयुर्वेद-प्रकरण

चारों वेदोंमें आयुर्वेद-विषयक मन्त्र इधर उधर बिखरे हैं। इन सब को इस प्रकरण में इकट्ठा किया है। इन में करीब ७५ ऋषियों के देखे मन्त्र हैं और ये मन्त्र करीब ८२ शीर्षकों में विभक्त हुए हैं। इनका ब्यौरा देखिये—

आयुर्वेद-प्रकरण के ऋषि क्रमानुसार मन्त्र

ऋषि	सूक्तसंख्या	मन्त्रसंख्या
१ अथर्वा	५८	५९८
२ ब्रह्मा	४२	२७२
३ यमः	१३	१६७
४ भृगुः	१०	१४७
५ भृग्वंगिराः	१९	११८
६ शुक्रः	७	७५
(यजुः)	३१	६२
७ गरुत्मान्	७	५९
८ शन्तातिः	१२	५९
९ चातनः	७	४४
१० मृगारः	६	४२
११ विश्वामित्रः (गाथिनः)	६	४१
१२ वसिष्ठः (मैत्रावरुणिः)	१०	४१
१३ बृहस्पतिः	१	३५
१४ मातृणामा	२	३५
१५ प्रस्कण्वः (काण्वः)	८	३३
१६ प्रत्यङ्गिराः	१	३२
१७ अथर्वाङ्गिराः	६	२७
१८ अगस्त्यो (मैत्रावरुणिः)	२	२७
१९ भिषग् (आथर्वणः)	१	२३
२० देवश्रवाः (यामायनः) (मथितश्च)	३	२२
२१ त्रिशिराः (त्वाष्ट्रः) सिन्धुद्वीप (आंबरीषः)	५	२०
२२ उन्मोचनः	२	२०
२३ कवष (ऐलूषः)	१	१५
२४ ऋभुः	२	१४
२५ भरद्वाजो (बार्हस्पत्यः)	१	१४
२६ सविता	१	१४
२७ अंगिराः (प्रचेताः)	४	१४
२८ शंखो (यामायनः)	१	१३
२९ सर्पः (काद्रवेय आर्बुदिः)	१	१४
३० यमो यमी च	१	१४
३१ विवृहा (काश्यपः)	२	१३
३२ बादरायणिः	२	१३
३३ शौनकः	४	११
३४ शुनःशेपः	३	११
३५ अत्रिः (भौमः)	१	१०
३६ सप्तवध्रिः (आत्रेयः)	१	९
३७ भिक्षुः (आंगिरसः)	१	९
३८ मेधातिथिः (काण्वः)	१	८
३९ संकुसुको (यामायनः)	१	८
४० सर्प (ऐरावतो जारत्कर्णः)	१	८
४१ भगः	२	८
४२ वामदेवः	२	८
४३ कुमारो (यामायनः)	१	७
४४ प्रजापतिः	१	७
४५ रक्षोहा	१	६
४६ अंगिराः	१	६
४७ वीतहव्यः	२	६
४८ हविर्धान (आंगिः)	१	५
४९ यक्ष्मनाशनः	१	५
५० शंभुः	१	५
५१ ऋषभो (वैराजः)	१	५
५२ सूर्या (सावित्री)	२	४
५३ द्रविणोदाः	१	४
५४ मनुः (वैवस्वतः)	१	४
५५ ऊर्ध्वग्रावा (आर्बुद्रिः)	१	४
५६ गृत्समद (आंगिरसः)	२	४

ऋषि	सूक्तसंख्या	मन्त्रसंख्या
५७ कबंधः	१	४
५८ भागलिः	१	३
५९ जाटिकायनः	१	३
६० बभ्रुपिंगलः	१	३
६१ वरुणः	१	३
६२ कौशिकः	१	३
६३ गोतमो (राहूगणः)	३	३
६४ मधुच्छंदा (वैश्वामित्रः)	१	३
६५ उपरिबभ्रवः	१	३
६६ शिरिंबिठिः	१	२
६७ इन्द्राणी	१	२
६८ प्रजावान् (प्राजापत्यः)	१	२
६९ कौरुपथिः	१	२
७० कक्षीवान् (दैर्घतमसः)	२	२
७१ कण्वो (घौरः)	१	२
७२ कूर्मो (गार्त्समदः)	१	१
७३ वसुक्रः (ऐंद्रः)	१	१
७४ दीर्घतमा (औचथ्यः)	१	१
७५ गार्ग्यः	१	१

आयुर्वेद--प्रकरण के मंत्रों की विषयानुसार गणना

आयुर्वेद-प्रकरण में नाना विषयों के शीर्षकों के नीचे जो मंत्र इकट्ठे किये गये हैं उनकी विषयानुसार गणना इस प्रकार है—

	मंत्र-संख्या
१ दीर्घ-आयुष्य की प्राप्ति	१६०
अरिष्टानि अंगानि	२
सुमंगलौ दन्तौ	३
२ यक्ष्मनाशन	१५०
३ ओषधिवनस्पतयः	७७
अन्न	३
सोम	४
वनस्पतिसूर्यगावः	३
वनस्पतयः	२
अपामार्ग	२७
अरुंधती	३
कुष्ठ औषधि	३
कुष्ठनाशनी	२०
पिप्पली	३
पृश्निपर्णी	८
रोहिणी	८
लक्षा	९
केशवर्धनी	९
अक्षिरोगनाशनी	४
मधुवनस्पति	५
रामायणी	१
अजशृंगी	१२
४ पापनाशनं	१२८
आस्रावभेषजं	६
रक्तस्रावनिवृत्तये धमनीबंधनं	४
निर्ऋतिनाशनं	४
हृद्रोग-कामिला-नाशनं	४
कासनाशनं (बलासनाशनं)	६
क्लीबत्वनाशनं	५
सौभाग्यवर्धनं	५
सपत्नीबाधनं	७
ज्वरनाशनं (तक्मनाशनं)	१८
गण्डमाला-चिकित्सा	१०
श्वेतकुष्ठनाशनं	८
रोगात् उन्मोचनं	३
रोगनिवारणं	२५
स्वापनं	७
मूत्रमोचनं	९
सूर्यः	३
५ इषुनिष्कासनं	३
६ अञ्जनं	३३
ईर्ष्याविनाशनं	४
उन्मत्ततामोचनं	४
७ विषनाशनं	८६

	मन्त्रसंख्या
८ क्रिमिनाशनं	८३
(यातुधा, रक्ष, पिशाच, असुर आदीनां नाशनं)	
९ कृत्यादूषणं	५७
दस्युनाशनं	६
बंधमोचनं	२
मन्याविनाशनं	३
शापमोचनं	६
अरातिनाशनं	१०
अरिष्टनाशनं	१२
दुःखमोचनं	३४
अलक्ष्मीनाशनं	६
१० दुष्वप्ननाशनं	९८
सुखप्राप्तिः	१
मन्युशमनं	३
वृषरोगशमनं	११
११ जलचिकित्सा	२४८
१२ मणिधारणं	१५५
१३ अन्नं	२२४
१४ वाजीकरणं	१४
गर्भाधानं	१६
गर्भदृंहणं	४
गर्भरोगनिवारणं	२६
गर्भसंस्रावः	२५
सुखप्रसूतिः	११
मेधाजननं	१२
१५ धर्मः यज्ञः	५
दर्भः	५
नवशालायां घृतहोमः	१०
पितृमेधः	२९४
यज्ञः यजमानः वेदी	१७
यूपः	१७
हविर्धाने	५
उलूखलमुसले	४
ग्रावाणः	२६
अन्नदानं	९

	मन्त्रसंख्या
गोष्ठः	
अग्निः	

आयुर्वेद-प्रकरण के २३३५ मन्त्रोंका यह ब्यौरा है। यहां यज्ञ-प्रकरण के अत्यावश्यक मन्त्र ही लिये हैं। यज्ञके विषय में कहा है—

ऋतुसंधिषु वै व्याधिर्जायते।
ऋतुसंधिषु यज्ञाः क्रियन्ते॥
(गो. ब्रा. उ. १।१९; कौ. ब्रा. ५।१)

अर्थात् ऋतु के संधिकाल में व्याधियां उत्पन्न होती हैं, अतः उनके शमन के लिये यज्ञ किये जाते हैं। यह प्रक्रिया वैदिक ग्रन्थों में दीखती है। इस प्रक्रिया के अनुसार यज्ञ-विषयक जितने मन्त्र लेनेकी आवश्यकता थी, उतने ही मन्त्र यहां लिये हैं। यज्ञ-प्रकरण के अन्य मन्त्र और अन्य यज्ञविधिका मन्त्र-संग्रह अन्यत्र किया जायगा।

दीर्घ आयु की प्राप्तिके मन्त्र यहां सबसे प्रथम दिये हैं। क्योंकि आयुर्वेद की उत्पत्ति इसी इच्छा से ही हुई है। दीर्घ आयुका उपभोग करने की प्रबल इच्छा प्रत्येक मानव में रहती है और यही इच्छा आयुर्वेद की उत्पत्ति और उन्नति करती रहती है।

दीर्घ आयु की इच्छा का घात करनेवाला यक्ष्म है। यक्ष्म का अर्थ नाना प्रकार के क्षयरोग हैं। मुख्य यक्ष्म का नाम क्षयरोग है, परन्तु सभी रोग क्षय उत्पन्न करते हैं, इसलिये गौण दृष्टि से सभी रोग यक्ष्म ही कहलाते हैं। दीर्घ आयु चाहिये, तो यक्ष्म का दूर करना अत्यावश्यक ही है।

इसी कार्य के लिये नाना प्रकार की औषधियों की खोज हो गयी। वेद में जो औषधियां मिलती हैं, वे सोम, अपामार्ग, अरुंधती, कुष्ट, पिप्पली, पृश्निपर्णी, रोहिणी, लाक्षा, केशवर्धनी, मधुला, रामायणी, अजशृंगी इत्यादि हैं। इनके अतिरिक्त यज्ञप्रकरण में ऋषभ, तारके, वचः आदि भी औषधियां मिलती हैं। इन औषधियों के वर्णन पाठक इन सूक्तों में देख सकते हैं। ये वर्णन पढने से निश्चयपूर्वक हम कह सकते हैं कि इन औषधियों का अनुभव इस समय हो चुका था।

औषधिवनस्पतियोंके विषयमें ब्राह्मण ग्रन्थों में निम्न लिखित प्रकार वर्णन मिलते हैं—

ब्राह्मणग्रंथोंमें औषधिवनस्पतियाँ

१ ओषं धयेति तत ओषधयः समभवंस्तस्मादोषधयो नाम। (श. ब्रा. २।२।४।५)

२ प्रजापतेर्विस्रस्तस्य यानि लोमानि अशीयन्त, ता इमा ओषधयोऽभवन्। (श. ७।४।२।११)

३ द्रुभ्यो वा ओषधयः पुष्पेभ्यो अन्याः फलं गृह्णन्ति। मूलेभ्योऽन्या॥ (तै. ब्रा. ३।८।१७।४)

४ उभय्यो (ओषधयो) ऽस्मै स्वदिताः पच्यन्तेऽकृष्टपच्याश्च कृष्टपच्याश्च। (तां. ब्रा. ६।९।९)

५ ततोऽसुरा उभयीरोषधीर्याश्च मनुष्या उपजीवन्ति, याश्च पशवः...ते (देवा) होचुर्हन्तेदमासां (ओषधीनां) अपजिघांसामेति केनेति यज्ञेनैवेति। (श. ब्रा. २।४।३।२-३)

६ एतद्धैतासां (ओषधीनां) समृद्धं रूपं यत्पुष्पवत्यः सुपिप्पलाः। (श. ब्रा. ६।४।४।१७)

७ पशूनां ओषधयः, ओषधीनां आपः। (जै. उ. १।५९।१४)

८ आपो ह वा ओषधीनां रसः। (श. ३।६।१।७)

९ अपां ओषधः, ओषधीनां पुष्पाणि, पुष्पाणां फलानि (रसः)। (श. १४।९।४।१)

१० तस्मादोषधयः केवल्यः खादिता न धिन्वन्ति, ओषधय उ ह्यपां रसः। (श. ३।६।१।७)

११ एष ह वै सर्वासामोषधीनां रसो यत्पयः। (कौ. ब्रा. २।१)

१२ तस्माद्दक्षिणतो अग्र ओषधयः पच्यमाना आयन्ति, आग्नेय्यो ह्यौषधयः। (ऐ. ब्रा. १।७)

१३ अग्नेर्वा एषा तनूः, यदोषधयः। (तै. ब्रा. ३।२।५।७)

१४ यदुग्रो देव ओषधयो वनस्पतयः। (कौ. ब्रा. ६।५)

१५ ओषधयो वै पशुपतिः, तस्माद्यदा पशव ओषधीर्लभन्तेऽथ पतीयन्ति। (श. ६।१।३।१२)

१६ ओषधयो वै मुदः। ओषधीभिर्हीदं सर्वं मोदते। (श. ९।४।१।७)

१७ ओषधयः खलु वाजः। (तै. ब्रा. १।३।७।१)

१८ ओषधयो मधुमतीः। (तै. ३।२।८।२)

१९ रसो वा एष ओषधिवनस्पतिषु यन्मधु। (श. ११।५।४।१८)

२० सौम्या ओषधयः। (१२।१।१।२)

२१ सोम ओषधीनामधिराजः। (गो. ब्रा. उ. १।१७)

२२ सोमो वै राजौषधीनाम्। (कौ. ४।१२; तै. ३।९।१७।१)

२३ या ओषधीः सोमराज्ञीः। (मं. ब्रा. २।८।३,४)

२४ औषधो हि सोमो राजा। (ऐ. ब्रा. ३।४०)

२५ विष्णोरध्योषधीरसृज्यत। (तै. २।३।२।४)

२६ ओषधिलोको वै पितरः। (श. १३।८।१।२०)

२७ जगत्य ओषधयः। (श. १।२।२।३)

२८ सप्त ग्राम्या ओषधयः सप्तारण्याः। (तै. १।३।८।१)

२९ वर्षवृद्धा वा ओषधयः। (तै. ३।२।२।५; ३।२।५।१०)

३० ओषधयो वै देवानां पत्न्यः। (श. ६।५।४।४)

३१ तस्मात् शरदं ओषधयोऽभिषिच्यन्ते। (तां. ब्रा. २१।१५।३)

३२ शरदि हि खलु वै भूयिष्ठा ओषधयः पच्यन्ते। (जै. उ. १।३५।५)

३३ सेनान्यं वा एतदोषधीनां यद्यवाः। (ऐ. ८।२६)

३४ साम्राज्यं वा एतदोषधीनां यन्महाव्रीहयः। (ऐ. ८।१६)

३५ ओषधीवनस्पतयो मे लोमसु श्रिताः। (तै. ३।१०।८।७)

३६ वनस्पतयो वै द्रु। (तै. ब्रा. १।३।९।१)

३७ भौर्ज्यं वा एतद्वनस्पतीनां (यदुदुम्बरः।) (ऐ. ब्रा. ७।३२; ८।१६)

३८ अथो सर्वे एते वनस्पतयो यदुदुम्बरः। (श. ७।५।१।१५)

३९ तेजो ह वा एतद्वनस्पतीनां यद्बाह्या शकलः, तस्माद्यदा बाह्याशकलमपतक्ष्णुवन्त्यथ शुष्यन्ति। (श. ३।७।१।८)

४० वनस्पतयो हि यज्ञिया, न हि मनुष्या यजेरन् यद्वनस्पतयो न स्युः। (श. ३।२।२।९)

४१ अग्निर्वै वनस्पतिः। (कौ. ब्रा. १०।६)

४२ प्राणो वनस्पतिः। (कौ. १२।७)

४३ स (वनस्पतिः) उ वै पयोभाजनः। (कौ. १०।६)

४४ यद् भेषजं तदमृतम्। (गो. पू. ३।४)

४५ शान्तिर्वै भेषजमापः। (कौ. ३।६,७,८,९। गो. उ. १।२५)

ये ओषधिवनस्पतियोंके संबंध में ब्राह्मणग्रंथोंके वचन हैं, अब इस आयुर्वेद-प्रकरण में आयुके सम्बन्ध के ब्राह्मण-वचन देखने योग्य हैं, वे ये हैं—

१ वरुण एव आयुः। (श. ४।१।४।१०)

२ अग्निर्वा आयुः। (श. ६।७।३।७; ७।२।१।१५)

३ अग्निर्वा आयुष्मानायुष ईष्टे। (श. १३।८।४।८)

४ संवत्सर आयुः। (श. ४।१।४।१०; ४।२।४।४)

५ यज्ञो वा आयुः। (तां. ६।४।४)

६ असौ लोकः (=द्युलोकः) आयुः। (ऐ. ४।१५)

७ असावुत्तमः (लोकः) आयुः। (तां. ४।१।७)

८ अन्नमु वा आयुः। (श. ९।२।३।१६)

९ आयुर्वा उद्गाता। आयुः क्षत्तसंगृहीतारः। (तै. ३।८।५।४)

१० प्राणो वा आयुः। (ऐ. २।३८)

११ यो वै प्राणः स आयुः। (श. ५।२।४।१०)

१२ आयुर्वा उष्णिक्। (ऐ. १।५)

१३ स यो हैवं विद्वान् सायंप्रातराशी भवति, सर्वं हैवायुरेति। (श. २।४।२।६)

१४ य एवं विद्वान्, स्यात् न मृण्मये भुञ्जीत। तथा ह्यस्य आयुर्न रिष्येत तेजश्च। (आर्षेय ब्रा. १।१)

१५ आयुर्वै दीर्घम्। (तां. १३।११।१२)

आयु के सम्बन्ध में ये वचन ब्राह्मण ग्रंथोंमें हैं। अब औषधियोंके नामनिर्देश से जो वचन ब्राह्मण ग्रन्थों में आते हैं, उन्हें देखिये—

अपामार्ग औषधि।

१ अपामार्गैरपमृज्यते। (श. १३।८।४।४)

२ अपामार्गहोमं जुहोति। अपामार्गैर्वै देवा दिक्षु नाष्ट्रा रक्षांसि अपामृजत, ते व्यजयन्त। (श. ५।२।४।१४)

३ यदपामार्ग होमो भवति, रक्षसामपहत्यै। (तै. १।७।१।८)

४ प्राचीनफलो वा अपामार्गः। (श. ५।२।४।२)

रोहिणी

१ तत ऊर्ध्वाऽरोहत्। सा रोहिण्यभवत्। तद्रोहिण्यै रोहिणित्वम्। (तै. १।१।१०।६)

२ ततो वै ते सर्वान्रोहानरोहन् तद्रोहिण्यै रोहिणित्वम्। (तै. १।१।२।२)

इस आयुर्वेद-प्रकरण के कुछ विषयों के विषय में ब्राह्मण वचन ये हैं। ये आयुर्वेद-प्रकरण की बातें विशेषसी खोलते नहीं हैं। इनका आशय प्रायः स्पष्ट है, अतः इन सब का अर्थ यहां देनेकी आवश्यकता नहीं है। अब आयुर्वेद-प्रकरण में आए अनेक विषयों के सम्बन्ध में थोडासा वर्णन करके परिचय कराना आवश्यक प्रतीत होता है—

दीर्घ आयुष्य

सब से प्रथम 'दीर्घायुष्य' का प्रकरण है, इसमें करीब १६० मन्त्र हैं। इनमें दीर्घायुष्य की कामना मुख्य विषय है। पहिले ही सूक्त में 'मन्यु' अर्थात् क्रोध आदि मनोविकार आयु की क्षीणता करते हैं, उन से बचने की सूचना मुख्य है। द्वितीय सूक्त में बोध प्रतिबोध (ज्ञान-विज्ञान), निद्रा और जाग्रति, ये सब मनुष्य को सुरक्षित रखें ऐसा कहा है, वह बडे महत्त्व का विषय है। क्योंकि मनुष्य का ज्ञान ही उस को ऐसे फंदे में फंसाता है कि जो उसकी आयु क्षीण करता है। अतः मानव का ज्ञान तथा व्यवसाय उस की आयु क्षीण न करें। यह सूचना बडी महत्त्वपूर्ण है।

पञ्चम सूक्त में 'दाक्षायण सुवर्ण' आयुष्य बढानेवाला है, ऐसा कहा है। इस सुवर्ण की सिद्धता किस तरह करना चाहिये, यह एक बडा महत्त्वपूर्ण खोज का विषय है। आर्य वैद्यक में सुवर्ण विषघ्न है और हृदय का बल बढाता

है ऐसा कहा है। इस से सुवर्ण दीर्घायु देनेवाला है, ऐसा हम अनुमान कर सकते हैं। निःसंदेह दीर्घायु देनेवाले धातुओं में सुवर्ण की प्रमुखता से गणना हो सकती है।

सप्तम सूक्त में जंगिडमणि के धारण से दीर्घायु की प्राप्ति होने का वर्णन है। यह अरण्य से लाया और कृषिके रसों से बना मणि है (मं. ५)। इस का विचार करके इस का प्रयोग सिद्ध करना चाहिये।

अष्टम सूक्त में हवन से दीर्घ जीवन का विषय पाठक देख सकते हैं। हवन से राजयक्ष्मा, ज्वर तथा अन्यान्य रोग दूर हो जाते हैं। घृतके हवन से वायुकी शुद्धता होती और वहां के रोगबीज दूर होते हैं। नाना प्रकार की ओषधियों के हवन करने से उन के सूक्ष्म अणु, नासिका, मुख आदि स्थान से शरीर में जाते, और वहां बडा प्रभाव करते तथा मानव की नीरोगता सिद्ध करते हैं। हवन से जैसे रोग दूर होते हैं वैसे बुरे पदार्थों के हवन से रोग उत्पन्न भी होते हैं। चरक ग्रन्थ में अतिसार-चिकित्सा में कहा है कि गौका मेध करने की प्रथा पृषध्र राजाने अपनी इच्छा से शुरू की, पहिले नहीं थी। उस यज्ञ से 'अतिसार' की उत्पत्ति हुई। वह अतिसार रोग अब तक जनता को सता रहा है। पृषध्रराजा के पूर्व गोमेध नहीं था, अतः अतिसार भी नहीं था। यह उस कथा का तात्पर्य है। बुरे यज्ञों का यह कुप्रभाव है। शत्रु के राज्यों में ऐसे कुयज्ञ करके नाना प्रकार के रोगों का फैलाव शत्रु देशोंमें करने के भी विधान कई ग्रन्थों में हैं। ये बुरे यज्ञ हैं, इसी तरह अच्छे यज्ञ करने से जनता को आरोग्य प्राप्त होकर उनकी दीर्घायुता भी सिद्ध हो सकती है। यह बडा शास्त्र है और खोज करने योग्य यह विषय है।

नवम सूक्त में 'दशवृक्ष' का वर्णन है। ये दशवृक्ष नाम के दस वनस्पतियां हैं; जो दीर्घकालीन रोग को दूर करती हैं और मानव को दीर्घजीवी बना देती हैं।

तेरहवें सूक्त में अंगस्थ ज्वरों का वर्णन है। इस सूक्त में विशेषतः रोगी मनुष्य के मनको विश्वास दिलाकर आरोग्य-प्राप्ति में सहायता करने का विधान है। 'हे रोगी मानव! ज्ञान, विज्ञान तथा निद्रा और जाग्रति ये सब तेरे प्राणों की रक्षा कर रहे हैं। यह अग्नि (यहां हवन कुण्ड में) जल रहा है, यह सूर्य उदय को प्राप्त हो रहा है। ये तेरी रक्षा करें, इनकी सहायता से तू गंभीर मृत्यु से अब ऊपर उठा है, (अब तेरी मृत्यु नहीं होगी;) (मन्त्र १०-११)' इस तरह रोगी को विश्वास दिलाया जाता है। इस मन्त्रपर दृढ विश्वास रखनेवाला रोगी इस से लाभ उठा सकता है।

पंद्रहवें सूक्त में 'सौ वर्षों से भी अधिक जीवन' की इच्छा धारण करने की सूचना है। इस पृथ्वीपर मनुष्य सौ वर्षोंसे भी अधिक जीवित रहे, यह वैदिक विचारधारा थी। आगे पच्चीसवें सूक्त तक सूक्तोंमें दीर्घायुष्यप्राप्ति के प्रार्थना समेत अनेक उपयोगी निर्देश हैं। विशेषकर चोवीसवें सूक्त में उत्तम अवयवों की धारणा और पच्चीसवें सूक्तमें उत्तम स्वच्छ दांतों का होना दीर्घायु के लिये अत्यंत आवश्यक है ऐसा जो कहा है, वह विशेष रीतिसे द्रष्टव्य है। दांत बिगडनेसे शरीर का स्वास्थ्य बिगडता है और उसके बिगडनेसे आयुष्य का नाश होता है। इस तरह इन सूक्तों में जो उपयुक्त निर्देश हैं, उन का विचार पाठकों को करना चाहिये।

यक्ष्म-नाशन

यक्ष्म-नाशन इस आयुर्वेद-प्रकरण का दूसरा विभाग है। इस में करीब करीब डेढ सौ मन्त्र हैं। छब्बीसवें सूक्तसे इस प्रकरण का प्रारंभ होता है। छब्बीसवें सूक्तमें शरीर के नाना अवयवों का उल्लेख करके प्रत्येक अवयव से यक्ष्मरोग दूर करने का विषय है। मानस-चिकित्सा का यह सूक्त दीखता है। चिकित्सक रोगी को विश्वास दिलाता है कि, इस प्रयोग से तेरा यक्ष्मरोग निःसन्देह दूर होगा और तू निर्दोष होगा। इस सूक्त से यह बात सिद्धसी दीखती है कि यक्ष्मरोग शरीरके प्रत्येक अवयवमें हो सकता है और उसको वहां से हटाना चाहिये। इस सूक्त का 'अङ्गादङ्गाल्लोम्नो लोम्नो०' यह मन्त्र अन्तिम है, वह मन्त्र प्राचीन काल से मृत्तिकास्नान के समय बोलने की परिपाटी महाराष्ट्र में तथा दक्षिण भारत में श्रावणी पर्व के समय है। अच्छी स्वच्छ मिट्टी जिस में खाद आदि कुछ भी मिला नहीं, ऐसी शुद्ध मृत्तिका जल में मिलाकर शरीरपर लगायी जाती है और शरीरपर लेप देकर कुछ देरके बाद स्वच्छ जल से स्नान किया जाता है। इस मिट्टी में खाद, मूत अथवा कंकर आदि कुछ भी नहीं रहना चाहिये। यह मिट्टी स्वच्छ शुद्ध मलरहित मक्खन जैसी मृदु रहनी चाहिये। खादवाली मिट्टी हानिकारक होती है। खेत की मिट्टी लेनी

हो तो, एक हाथ के] नीचे की लेनी उचित है। अन्यथा जहां खेती नहीं होती, वहां से शुद्ध मिट्टी ली जाय तो वह इस प्रयोग के लिये अच्छी है। मिट्टी के प्रयोग से नाना रोगबीज शरीरसे दूर हो जाते हैं। अन्तिम मन्त्रका उपयोग मिट्टी शरीरपर मलने के लिये करते हैं। इस से हम अनुमान कर रहे हैं कि यह सब सूक्त मृत्तिका से यक्ष्म-दोष हटाने के लिये होना संभव है। पाठक इस का अधिक विचार करें।

आगे का सत्ताईसवां सूक्त भी इसी दृष्टि से विचार करने योग्य है। इस सूक्तका अन्तिम ग्यारहवाँ मन्त्र पर्जन्य की वृष्टि से प्राप्त जल का उपयोग करके अ-मृत अर्थात् नीरोग बनने के कार्य के लिये स्पष्ट है। सब पाप, सब यक्ष्म और सब प्रकार के मरणकारक रोग-बीज वृष्टिजल के प्रयोग से दूर होते हैं। पर्जन्य के पहिले नक्षत्रों की वृष्टि होनेके पश्चात् उस वृष्टि से वायु पवित्र होनेके पश्चात् की वृष्टि का जल लेना उचित है। प्रायः हस्त, चित्रा, स्वाती नक्षत्रों की वृष्टि का जल लेकर घडे भरकर घरमें अच्छी तरह बंद करके रख देनेसे, यह वृष्टि-जल सालभर इस प्रयोग के लिये मिलता रहता है। ख्याल इस बात का रखना चाहिये कि प्रथम वृष्टि होकर शुद्ध वायु में जो वृष्टि होगी, उसी का जल लेना चाहिये। नहीं तो वायु के दोष जल में आवेंगे और वैसे जल का परिणाम ठीक नहीं निकलेगा। यह जल पीनेसे भी अंदर की शुद्धता होती है। उपवास या लंघन में यह वृष्टि-जल पीनेसे बहुत ही लाभ होते हैं। वृष्टि का जल घडों में भर कर रख देना और सालभर पीनेके लिये बर्तना, इससे लाभ होगा, परन्तु अच्छी युक्ति से जल लेना चाहिये।

अठाईसवें सूक्त में तक्मा नामक ज्वर का उल्लेख है। जिस ज्वर में बडी रूक्षता होती है, वह तक्मा ज्वर है। इस ज्वर से कामिला (हरिमा) होती है, पण्डुरोग का यह एक प्रकार है। इस रोग के निवारण के लिये कई औषधियाँ हो सकती हैं। रक्त की क्षीणता करनेवाला यह ज्वर है। यह ज्वर (अ-व्रत) नियमरहित व्यवहार करनेवाले को अधिक कष्ट देता है। पाठक इस सूचना का विचार अवश्य करें।

उनत्तीसवें सूक्त में 'वृत्र' नाम आता है। पसीना न छोडनेवाला यह ज्वर है। जिसमें ज्वर आता है, पर पसीना नहीं आता, इस तरह के ज्वर को दूर करने के लिये अग्नि का ही प्रयोग कहा है। (वृत्रः आपः तस्तंभ) वृत्र जल-प्रवाह को रोकता है, वैसा यह ज्वर पसीने को रोकता है, इस कारण रोगी ज्वरमुक्त नहीं होता। इस यक्ष्म को दूर करने के लिये (वैश्वानरेण अग्निना वारये) वैश्वानर अग्नि का प्रयोग कहा है। इस प्रयोग का पता हमें अभी तक लगा नहीं, परन्तु भांप से शरीर को सेक देकर पसीना निकालने का यह प्रयोग होगा। द्वितीय मन्त्र में (वाचा यक्ष्मं वारयामहे) मन्त्र-प्रयोग से रोग दूर करने का भी विधान है।

आगे के तीसवें सूक्तमें रक्तयुक्त कफमिश्रित खांसी अर्थात् कफक्षय-नामक रोगों का उल्लेख है। इसमें (पिशितं) रक्त-दोष, (हृदयामय) हृदय का रोग इसी तरह अन्यान्य रोगों का उल्लेख है। (वेदाहं तस्य भेषजं) उन रोगों की दवा मैं जानता हूं, ऐसा भी यहां कहा है। मन्त्रों का विचार करके विशेष खोजपूर्वक इस सूक्त के प्रत्येक पद का विचार करना उचित है। तब रोगनिवृत्ति के उपाय का पता लगना संभव है।

इकत्तीसवें सूक्त में हवन-चिकित्सा दीखती है। बत्तीसवें सूक्त में हरिण के सिर में उगनेवाले सींगसे रोगविशेष की चिकित्सा लिखी है। आजकल सिर की गर्मी हटानेके लिये सिर पर हरिण के सींग को पत्थर पर घिसकर उससे उत्पन्न विलेपन का लेप करते हैं। इससे सिर की गर्मी हटती है, मस्तक शान्त होता है। चतुर्थ मन्त्र में 'तारके' नामकी दो औषधियाँ कहीं हैं।

'तारके' नामक दो औषधियां इकट्ठो सेवन की जाती है। इस के नंतर जल को सब रोग निवारण करनेवाला बताया है। क्षेत्रिय रोग अर्थात् वंशपरंपरासे प्राप्त रोग और इसी शरीर में उत्पन्न ऐसे दोनों प्रकार के रोगों को हटाने के लिये जल उपयोगी है। इस तरह जल-चिकित्सा का वर्णन यहां है। अगले (३३ वें) सूक्त में भी जल का वर्णन बडे प्रभावी शब्दों से किया है।

तैंतीसवें सूक्त में अष्टायोग और षड्योग से उत्पन्न यव का उपयोग लिखा है। अष्टायोग और षड्योग का आज समझा जानेवाला अर्थ आठ बैल जोतने योग्य और छः बैल जोतने योग्य हल से उत्पन्न जव। परन्तु यदि वैद्यकीय

पुत्र न होना इन सब दोषोंपर इस औषधि का प्रयोग किया जाता है। कृत्या नामक मारक प्रयोग के हटाने के लिये, गौके रोग दूर करने के लिये, इस औषधिका उपयोग होता है।

आगे के सूक्तों में अरुन्धती, पिप्पली, पृश्नीपर्णी, रोहणी, लक्षा, कुष्ट, कुष्टनाशनी, यक्ष्मनाशिनी, केशवर्धनी, नितत्नी, अक्षिरोगनाशनी, शमी, सोम, मधु इन वनस्पतियों का क्रमशः वर्णन है। यहां यह औषधि-प्रकरण समाप्त होता है। दश वृक्ष, तारके आदि अनेक औषधियोंके प्रयोग छोड दिये जायं, तो शेष सब प्रयोग एक एक औषधिके ही हैं। इसके पश्चात् रोग-चिकित्सा-विभाग शुरू होता है—

रोगोंकी चिकित्सा

नाना प्रकार के रोगों का नाम लेकर उनकी चिकित्सा कई सूक्तों में कही है। वे सूक्त इस विभाग में संग्रहित हुए हैं, करीब करीब २१० मन्त्र इस विभागमें संग्रहित हुए हैं।

सत्तरवां सूक्त इस प्रकरण का प्रथम सूक्त है। कफ, बलगम, कास, श्वास का यहां प्रथम स्थान है। उनासीवें सूक्त में हृद्रोग, हृदय का रोग और कामिलाका विचार हुआ है। आनुवंशिक क्षेत्रिय रोग को दूर करने का विचार अस्सीवें सूक्त में हुआ है। आगे एकासीवें सूक्तसे क्रमपूर्वक क्षेत्रिय रोग, क्लीबत्व, गण्डमाला, श्वेतकुष्ट, ज्वर, रुधिरस्राव, स्राव, मूत्र-प्रतिबन्ध आदि रोगों की चिकित्सा ९६ सूक्त तक है। बीच में ८४ वे सूक्त में रोहिणी, रामायणी आदि औषधियों का भी वर्णन है।

इसके नंतर १०२ सूक्त तक 'अंजन' का विषय है। नेत्र का सुधार, दृष्टिके दोष को दूर करना आदि अञ्जन का विषय सुप्रसिद्ध है। साथ साथ अञ्जन के अन्यान्य गुण भी इन सूक्तों में देखने योग्य हैं।

सूक्त १०३ में निद्रानाश को दूर करके उत्तम निद्राप्राप्ति होने के लिये मन्त्रयोग हैं। १०४ सूक्त में शरीर से बाण को निकालने का विषय है, आगे ७ सूक्तोंमें दुष्ट स्वप्न न होनेके लिये मन्त्रयोग लिखा है। ११३ वें सूक्त में क्रोध का शमन करने का विषय है। क्रोध का शमन भी आरोग्यदायी है।

११४ वें सूक्त में बल के रोग का शमन है। आगे के सूक्त में मधुला वनस्पति का वर्णन है। ११९ वें सूक्त में सौभाग्यवर्धन का विषय है। १२० वें सूक्त में ईर्ष्याविनाशन और १२२ वें सूक्त में उन्मत्तता-निवारण है। इस तरह यह विभाग इस सूक्त के साथ समाप्त होता है।

रोगक्रिमी का नाश

इस विभाग में रोग उत्पन्न करनेवाले क्रिमियों का नाश करने के विषय का विवेचन है। इस विवेचनके लिये करीब ८० मन्त्र हैं। रक्षः, राक्षस, यातुधान, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरस्, आदि अनेक नाम रोगक्रिमियोंके यहां दिये हैं। प्रत्येक नाम का अर्थ रोगक्रिमि का विशेष लक्षण बताता है। अतः यह विषय बडा महत्वपूर्ण है।

ये रोग के कृमी (अ-दृष्ट) न दीखनेवाले होते हैं और कई दीखनेवाले (दृष्ट) भी होते हैं, इन सब को दूर करना चाहिये। ये रोग आंतों में, सिरमें, फेंफडों में, पीठ की रीढमें, हड्डीमें होते हैं। ये कीडे पर्वतों, वनों, ओषधियों, पशुओं, तथा हमारे शरीरों में भी होते हैं। इन सब को दूर करना चाहिये और आरोग्य की सिद्धता करनी चाहिये (सूक्त १२३)।

ये कृमी आंखों, नाकों, दांतों में रहकर कष्ट देते हैं, अतः इनका नाश करना आवश्यक है। ये कृमी नाना प्रकार के रंगरूप और आकारोंके होते हैं। सूर्य के प्रकाश से इन का नाश होता है (सूक्त १२४)।

ये कृमि सूर्य-किरण से नष्ट होते हैं। अन्धकारमें इनकी वृद्धि होती है, इसलिये सूर्य उदय से कृमियों का नाश होता है (सू० १२५)।

अजशृंगी औषधि इन राक्षसों अर्थात् रोगकृमियों का नाश करती है। राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरस् इन सब कृमियों का नाश इस वनस्पति से होता है। अश्वत्थ, न्यग्रोध (वट) ये वृक्ष भी इन रोगकृमियों का नाश करते हैं। जिन से क्षीणता होती है, वे रक्षस् हैं, जो खून खाते उन को पिशाच कहा है, जो जल के आश्रय से रहते हैं उनको अप्सरस् कहते हैं, तथा जो मिट्टी में बढते हैं, वे गन्धर्व हैं। ये सब मनुष्य के आरोग्य को दूर करते हैं, इस लिये इन का नाश करना चाहिये (सू० १२६)।

अग्नि भी इन कृमियों का नाश करता है, अग्निमें विशिष्ट द्रव्यों का हवन करने से और अधिक लाभ होता है। घृत के हवन से सब रोगबीज नष्ट हो जाते हैं। अग्नि में नाना

औषधियां, घृत आदि के हवन से सूर्य प्रकाश से, केवल अग्नि से भी ये रोग-कृमि नष्ट होते हैं।

विष को दूर करना

आगे करीब करीब ८० मन्त्र विषनाशन के हैं। १३६ वां सूक्त सर्पविष दूर करने के लिये है। मन्त्र के जाप से विष दूर होता है, ऐसा इस का वर्णन है, परन्तु इस के लिये जाप करके सिद्धि प्राप्त करना चाहिये। इक्कीस मोरनियां सर्पका विष दूर करती हैं, ऐसा यहां (मं० १४ में) कहा है। इस विषय में महाराष्ट्र में अनुभव यह है कि नाग सर्प का जहां दंश होता है, उस स्थान पर जीवित मुर्गी को पकडकर उस का गुदद्वार लगाया जाता है। मुर्गी विष खींचती है और मर जाती है। इस तरह लगातार एक के पीछे दूसरी ऐसी लगाते जाना चाहिये। विष के प्रमाण के अनुसार मुर्गियां मरती हैं। जब मुर्गी की गुदा वहां लगानेपर मुर्गी न मरेगी, तो समझना चाहिये कि वहां विष रहा नहीं है और रोगी ठीक नीरोग हुआ है। इस मन्त्र में २१ मोरनियां विष दूर करती हैं, ऐसा कहा है। सम्भव है मुर्गियां न्यून वा अधिक लगतीं हों। यह प्रयोग करके देखना चाहिये। महाराष्ट्र में सर्वत्र यह कहते हैं कि मुर्गी के योग से विष हटता है। बिच्छू के विष के विषयमें इसी सूक्त में कुछ कहा है (सू० १३६)। सर्प के विषय में निम्नलिखित मन्त्र बडा देखने योग्य है—

यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः।

(अथर्व. ६।१३९।५)

' नेवला सांपको काटता है और फिर से उसको जोडता है। ' यह अथर्ववेदका मन्त्र है। क्या यह सत्य हो सकता है? महाराष्ट्र के पिण्ड पिण्ड में यह विश्वास है, परन्तु इसपर हमारा विश्वास नहीं बैठता। निःसन्देह यह खोजका विषय है। नेवला सांप को पकडता और काटता है, परन्तु फिर जोड देता है, यह मानना कठिन है।

जलचिकित्सा

इसके पश्चात् करीब अढाई सौ मन्त्र जलका वर्णन करनेवाले हैं। इन में कुछ जल-चिकित्सा के भी हैं। जल में अनेक औषधिगुण हैं। जलप्रयोग से बहुत से रोग दूर हो जाते हैं। जलप्रयोगसे रोग-बीज शरीरसे बह जाते हैं। जल वृष्टि से मिलता है, कूवा खोदकर जल ... है, स्वयं निर्झर से जल मिलता है, नदीका भी ... हैं, जल सुख देनेवाला और दोष दूर कर... आवर्तन, निवर्तन, न्ययन, परायण, अभिषिं... चन, उपसिंचन आदि जल के प्रयोग हैं, जि... चिकित्सा होती है।

हिमालयपर्वत से जो जल आता है, वह ब... होनेसे वह बडा ही शुद्ध रहता है। गंगानदी ... कारण अतिपवित्र है। इसी तरह हिमालय से ... सब नदियों का जल उत्तम है।

सूर्य के किरणों से जल की भाप बनकर वह ... है। उसके मेघ बनते हैं। मेघों से वृष्टि होती ... जल दिव्य जल कहा जाता है। सचमुच यह दि... देनेवाला जल है। इस कारण पर्जन्य को पिता ... क्योंकि वही सब प्राणी और वृक्षवनस्पतियों ... करता है।

सब नदियां वृष्टि से ही भरती और चलती हैं ... हुई तो नदी चलेगी नहीं। केवल हिमालय से ... नदियां गर्मी से बर्फ पिघल कर चलती हैं। इस... नदियों को महापूर गर्मी के दिनों में आता है।

अन्न

इसके आगे करीब सवा दो सौ मन्त्र अन्न के ... लिये हैं। अन्न सब विश्वरूप में हमारे सम्मुख ... अन्न है और सभी अन्न खानेवाले हैं। ओदन सूक्त ... २१४ तक) पाठक देख सकते हैं। अन्न का महत्व ... इन सूक्तोंमें बताया है, उतना सबका सब मननके ...

वाजीकरण तथा गर्भाधान

आगे ये विषय हैं-गर्भधारणा होने के पश्चात् ' ... निवारण ' सूक्त २२३ में है। ' गर्भस्राव ' का ... २२३ में पाठक देख सकते हैं। ' सुख-प्रसूति ' ... सू० २२६ में है। आगे के ४ सूक्तों में ' मेधाज... महत्त्वपूर्ण विषय है, जो बालक के हित होने के लि... आवश्यक है।

मणिधारण

आगे दस सूक्तों में ' मणिधारण ' का विषय है।

वरण, काल, दर्भ, औदुम्बर, जंगिड, शतवार, अस्तृत ये मणि यहां वर्णन किये हैं। जैसे तावीज बांधते हैं, वैसे ही ये मणि हैं। इनके वर्णन में अन्यान्य विषय भी बडे मनोरंजक हैं। किस को किसने यह मणि बांधा था, यह भी यहां इन सूक्तों में बताया है। किसी किसी मणि में सैकडों सामर्थ्य हैं, ऐसा भी वर्णन है। ये मणि कैसे बनाये और धारण किये जाते हैं, यह बडी खोज का विषय है। इस कार्य के लिये अथर्ववेदके वेदाङ्ग ग्रन्थों का तथा तदंगभूत विविध ग्रन्थों की खोज करनी चाहिये। भाष्य में जो इस समय लिखा मिलता है, उस से हमारे हाथ में कुछ भी विशेष बात नहीं पडती।

इसके पश्चात् अरिष्टनिवारण, पापनाशन, कृत्यादूरीकरण, यज्ञादि विषय के मन्त्र हैं। इससे इस प्रकरण की समाप्ति होती है। इस आयुर्वेद-प्रकरण के कुल मन्त्र २३४५ हैं। करीब करीब सवा दो हजार हैं। आयुर्वेद का यह वैदिक मूल है। इस मूलका विस्तार आयुर्वेद है, जो चरक सुश्रुत के रूप में आज हमें उपलब्ध है।

इस सवा दो हजार के मन्त्रसंग्रह में आयुर्वेद के अनेक विषय है। इस का विचार करते समय पद पद का सूक्ष्म और खोजपूर्ण विचार करना चाहिये और आयुर्वेदके ग्रन्थों के साथ इन वेदमन्त्रों का मिलान करना चाहिये। तब जाकर इस विषय का समझने योग्य विवरण हो सकता है।

इस भूमिका में इस आयुर्वेद-प्रकरण के साथ पाठकों का केवल परिचय ही कराना था। वह इतने लेख से किया है। आशा है कि पाठक आयुर्वेद के इस मूल का कहां कैसा विस्तार हो गया है, इसका विचार करेंगे और लाभ उठावेंगे।

निवेदनकर्ता

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

अध्यक्ष- स्वाध्याय-मंडल

आयुर्वेद-प्रकरण की विषयसूची



दैवत-संहिता ।

(ऋग्यजुःसामाथर्वणां संहितानां सर्वान् मन्त्रान् विषयानुसारेण संगृह्य निर्मितम् ।)

६ आयुर्वेद-प्रकरणम् ।

दीर्घायुष्यम् । (१-१५१)

॥ १ ॥ (अथर्व० २।२८।१—५)

शम्भुः । १, ३ जरिमा, आयुः; २ मित्रावरुणौ; ३—५ द्यावापृथिव्यादयो देवाः । त्रिष्टुप्, १ जगती, ५ भुरिक् ।

तुभ्यमेव जरिमन् वर्धतामयं मेममन्ये मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये ।
मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे मित्र एनं मित्रियात् पात्वंहसः १
मित्र एनं वरुणो वा रिशादा जरामृत्युं कृणुतां संविदानौ ।
तदग्निर्होता वयुनानि विद्वान् विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति २
त्वमीशिषे पशूनां पार्थिवानां ये जाता उत वा ये जनित्राः ।
मेमं प्राणो हासीन्मो अपानो मेमं मित्रा वधिषुर्मो अमित्राः ३
द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृणुतां संविदाने ।
यथा जीवा अदितेरुपस्थे प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः ४
इममग्न आयुषे वर्चसे नय प्रियं रेतो वरुण मित्रराजन् ।
मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासत् ५ ५

॥ २ ॥ (अथर्व० ८।१।१-२१)

ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप्; १ पुरोबृहती त्रिष्टुप्; २-३, १७-२१ अनुष्टुप्; ४,९,१५-१६ प्रस्तारपङ्क्तिः; ७ त्रिपदा विराड्गायत्री; ८ विराट्पथ्याबृहती; १२ त्र्यवसाना पञ्चपदा जगती; १३ त्रिपाद्भुरिङ्महाबृहती; १४ एकावसाना द्विपदा साम्नी भुरिग्बृहती ।

अन्तकाय मृत्यवे नमः प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम् ।
इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके १
उदेनं भगो अग्रभीदुदेनं सोमो अंशुमान् ।
उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये २
इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः ।
उत् त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि ३ ८



दैवत-संहिता ।

(ऋग्यजुःसामाथर्वणां संहितानां सर्वान् मन्त्रान् विषयानुसारेण संगृह्य निर्मितम् ।)

६ आयुर्वेद-प्रकरणम् ।

दीर्घायुष्यम् । (१-१५१)

॥ १ ॥ (अथर्व० २।२८।१—५)

शम्भुः । १, ३ जरिमा, आयुः; २ मित्रावरुणौ; ३—५ द्यावापृथिव्यादयो देवाः । त्रिष्टुप्, १ जगती, ५ भुरिक् ।

तुभ्यमेव जरिमन् वर्धतामयं मेममन्ये मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये ।
मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे मित्र एनं मित्रियात् पात्वंहसः १
मित्र एनं वरुणो वा रिशादा जरामृत्युं कृणुतां संविदानौ ।
तदग्निर्होता वयुनानि विद्वान् विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति २
त्वमीशिषे पशूनां पार्थिवानां ये जाता उत वा ये जनित्राः ।
मेमं प्राणो हासीन्मो अपानो मेमं मित्रा वधिषुर्मो अमित्राः ३
द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृणुतां संविदाने ।
यथा जीवा अदितेरुपस्थे प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः ४
इममग्न आयुषे वर्चसे नय प्रियं रेतो वरुण मित्रराजन् ।
मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासत् ५ ५

॥ २ ॥ (अथर्व० ८।१।१-२१)

ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप्; १ पुरोबृहती त्रिष्टुप्; २-३, १७-२१ अनुष्टुप्; ४,९,१५-१६ प्रस्तारपङ्क्तिः; ७ त्रिपदा विराड्गायत्री; ८ विराट्पथ्याबृहती; ११ त्र्यवसाना पञ्चपदा जगती; १३ त्रिपाद्भुरिङ्महाबृहती; १४ एकावसाना द्विपदा साम्नी भुरिग्बृहती ।

अन्तकाय मृत्यवे नमः प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम् ।
इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके १
उदेनं भगो अग्रभीदुदेनं सोमो अंशुमान् ।
उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये २
इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः ।
उत् त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि ३ ८

उत् क्रामातः पुरुष मार्व पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः ।
मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः ४
तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः ।
सूर्यस्ते तन्वे३ शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः ५ १०
उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।
आ हि रोहेममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ६
मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भून्मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितॄन् ।
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ७
मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम् ।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे ८
श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ ।
अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः । ९
मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि ।
तम एतत् पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक् १० १५
रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्व१न्ता रक्षतु त्वा मनुष्या३ यमिन्धते ।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्र धाग् विद्युता सह ११
मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात् संकसुकाच्चर ।
रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च ।
अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः १२
बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम् ।
गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम् १३
ते त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा १४
जीवेभ्यस्त्वा समुदे वायुरिन्द्रो धाता दधातु सविता त्रायमाणः ।
मा त्वा प्राणो बलं हासीदसुं तेऽनु ह्वयामसि १५ २०
मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदन्मा जिह्वा बर्हिः प्रमयुः कथा स्याः ।
उत् त्वादित्या वसवो भरन्तूदिन्द्राग्नी स्वस्तये १६
उत् त्वा द्यौरुत् पृथिव्युत् प्रजापतिरग्रभीत् । उत् त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् १७
अयं देवा इहैवास्त्वयं मामुत्र गादितः । इमं सहस्रवीर्येण मृत्योरुत् पारयामसि १८ २३

उत् त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः । मा त्वा व्यस्तकेश्यो३ मा त्वाघरुदो रुदन् १९
आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः । सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् २० २५
व्युवात् ते ज्योतिरभूदप त्वत् तमो अक्रमीत् ।
अप त्वन्मृत्युं निर्ऋतिमप यक्ष्मं नि दध्मसि २१

॥ ३ ॥ (अथर्व० ८।२।१-२८)

ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप् ; १-२, ७ भुरिक्; ३, २६ आस्तारपङ्क्तिः, ४ प्रस्तारपङ्क्तिः, ६,१५ पथ्यापङ्क्तिः; ८ पुरस्ताज्ज्योतिष्मती जगती; ९ पञ्चपदा जगती; ११ विष्टारपङ्क्तिः, १२, २२, २८ पुरस्ताद्बृहती; १४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती; १९ उपरिष्टाद्बृहती; २१ सतः पङ्क्तिः; ५,१०,१६-१८,२०, २३ २५, २७ अनुष्टुप् (१७ त्रिपाद्) ।

आ रभस्वेमाममृतस्य श्नुष्टिमच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते ।
असुं त आयुः पुनरा भरामि रजस्तमो मोप गा मा प्र मेष्ठाः १
जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङा त्वा हरामि शतशारदाय ।
अवमुञ्चन् मृत्युपाशानशस्तिं द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि २
वातात् ते प्राणमविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव ।
यत् ते मनस्त्वयि तद् धारयामि सं वित्स्वाङ्गैर्वद जिह्वयालपन् ३
प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदामग्निमिव जातमभि सं धमामि ।
नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय तेऽकरम् ४ ४०
अयं जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि ।
कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्यो मा पुरुषं वधीः ५
जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये । ६
अधि ब्रूहि मा रभथाः सृजेमं तवैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु ।
भवाशर्वौ मृडतं शर्म यच्छतमपसिध्य दुरितं धत्तमायुः ७
अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीमं दयस्वोदितो३ऽयमेतु ।
अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुज्जरसा शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम् ८
देवानां हेतिः परि त्वा वृणक्तु पारयामि त्वा रजस उत् त्वा मृत्योरपीपरम् ।
आरादग्निं क्रव्यादं निरूहं जीवातवे ते परिधिं दधामि ९
यत् ते नियानं रजसं मृत्यो अनवधर्ष्यम् ।
पथ इमं तस्माद् रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि १० ३६

उत् क्रामातः पुरुष मावं पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः ।
मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः ४
तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः ।
सूर्यस्ते तन्वे३ शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः ५ १०
उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।
आ हि रोहेममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ६
मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भून्मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितॄन् ।
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ७
मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम् ।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे ८
श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ ।
अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः । ९
मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि ।
तम एतत् पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक् १० १५
रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्व१न्ता रक्षतु त्वा मनुष्या३ यमिन्धते ।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्र धाग् विद्युता सह ११
मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात् संकसुकाच्चर ।
रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च ।
अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः १२
बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम् ।
गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम् १३
ते त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा १४
जीवेभ्यस्त्वा समुदे वायुरिन्द्रो धाता दधातु सविता त्रायमाणः ।
मा त्वा प्राणो बलं हासीदसुं तेऽनु ह्वयामसि १५ १०
मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदन्मा जिह्वा बर्हिः प्रमयुः कथा स्याः ।
उत् त्वादित्या वसवो भरन्तूदिन्द्राग्नी स्वस्तये १६
उत् त्वा द्यौरुत् पृथिव्युत् प्रजापतिरग्रभीत् । उत् त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् १७
अयं देवा इहैवास्त्वयं मामुत्र गादितः । इमं सहस्रवीर्येण मृत्योरुत् पारयामसि १८ १३

उत् त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः । मा त्वा व्यस्तकेश्यो३ मा त्वाघरुदो रुदन् १९
आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः । सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् २०
व्युवात् ते ज्योतिरभूदप त्वत् तमो अक्रमीत् ।
अप त्वन्मृत्युं निर्ऋतिमप यक्ष्मं नि दध्मसि २१

॥ ३ ॥ (अथर्व० ८।२।१-२८)

ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप् ; १-२, ७ भुरिक्; ३, २६ आस्तारपङ्क्तिः, ४ प्रस्तारपङ्क्तिः, ६,१५ पथ्यापङ्क्तिः; ८ पुरस्ताज्ज्योतिष्मती जगती; ९ पञ्चपदा जगती; ११ विष्टारपङ्क्तिः, १२,२२, २८ पुरस्ताद्बृहती; १४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती; १९ उपरिष्टाद्बृहती; २१ सतः पङ्क्तिः; ५,१०,१६-१८,२०, २३ २५, २७ अनुष्टुप् (१७ त्रिपाद्) ।

आ रभस्वेमाममृतस्य श्नुष्टिमच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते ।
असुं त आयुः पुनरा भरामि रजस्तमो मोप गा मा प्र मेष्ठाः १
जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङा त्वा हरामि शतशारदाय ।
अवमुञ्चन् मृत्युपाशानशस्तिं द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि २
वातात् ते प्राणमविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव ।
यत् ते मनस्त्वयि तद् धारयामि सं वित्स्वाङ्गैर्वद जिह्वयालपन् ३
प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदामग्निमिव जातमभि सं धमामि ।
नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय तेऽकरम् ४
अयं जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि ।
कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्यो मा पुरुषं वधीः ५
जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये । ६
अधि ब्रूहि मा रभथाः सृजेमं तवैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु ।
भवाशर्वौ मृडतं शर्म यच्छतमपसिध्य दुरितं धत्तमायुः ७
अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीमं दयस्वोदितो३ऽयमेतु ।
अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुज्जरसा शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम् ८
देवानां हेतिः परि त्वा वृणक्तु पारयामि त्वा रजस उत् त्वा मृत्योरपीपरम् ।
आरादग्निं क्रव्यादं निरूहं जीवातवे ते परिधिं दधामि ९
यत् ते नियानं रजसं मृत्यो अनवधर्ष्यम् ।
पथ इमं तस्माद् रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि १०

उत् क्रामातः पुरुष मावं पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः ।
मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः ४
तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः ।
सूर्यस्ते तन्वे३ शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः ५ १०
उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।
आ हि रोहेममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ६
मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भून्मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितॄन् ।
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ७
मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम् ।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे ८
श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ ।
अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः । ९
मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि ।
तम एतत् पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक् १० १५
रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्व१न्ता रक्षतु त्वा मनुष्या३ यमिन्धते ।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्र धाग् विद्युता सह ११
मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात् संकसुकाच्चर ।
रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च ।
अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः १२
बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम् ।
गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम् १३
ते त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा १४
जीवेभ्यस्त्वा समुदे वायुरिन्द्रो धाता दधातु सविता त्रायमाणः ।
मा त्वा प्राणो बलं हासीदसुं तेऽनु ह्वयामसि १५ २०
मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदन्मा जिह्वा बर्हिः प्रमयुः कथा स्याः ।
उत् त्वादित्या वसवो भरन्तूदिन्द्राग्नी स्वस्तये १६
उत् त्वा द्यौरुत् पृथिव्युत् प्रजापतिरग्रभीत् । उत् त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् १७
देवा इहैवास्त्वयं मामुत्र गादितः । इमं सहस्रवीर्येण मृत्योरुत् पारयामसि १८ २३

उत् त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः । मा त्वा व्यस्तकेश्यो३ मा त्वाघरुदो रुदन् १९
आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः । सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् २०
व्युवात् ते ज्योतिरभूदप त्वत् तमो अक्रमीत् ।
अप त्वन्मृत्युं निर्ऋतिमप यक्ष्मं नि दध्मसि २१

॥ ३ ॥ (अथर्व० ८।२।१-२८)

ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप् ; १-२, ७ भुरिक्; ३, २६ आस्तारपङ्क्तिः, ४ प्रस्तारपङ्क्तिः, ६,१५ पथ्यापङ्क्तिः; ८ पुरस्ताज्ज्योतिष्मती जगती; ९ पञ्चपदा जगती; ११ विष्टारपङ्क्तिः, १२, २२, २८ पुरस्ताद्बृहती; १४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती; १९ उपरिष्टाद्बृहती; २१ सतः पङ्क्तिः; ५,१०,१६-१८,२०, २३ २५, २७ अनुष्टुप् (१७ त्रिपाद्) ।

आ रभस्वेमाममृतस्य श्नुष्टिमच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते ।
असुं त आयुः पुनरा भरामि रजस्तमो मोप गा मा प्र मेष्ठाः १
जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङा त्वा हरामि शतशारदाय ।
अवमुञ्चन् मृत्युपाशानशस्तिं द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि २
वातात् ते प्राणमविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव ।
यत् ते मनस्त्वयि तद् धारयामि सं वित्स्वाङ्गैर्वद जिह्वयालपन् ३
प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदामग्निमिव जातमभि सं धमामि ।
नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय तेऽकरम् ४
अयं जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि ।
कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्यो मा पुरुषं वधीः ५
जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये । ६
अधि ब्रूहि मा रभथाः सृजेमं तवैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु ।
भवाशर्वौ मृडतं शर्म यच्छतमपसिध्य दुरितं धत्तमायुः ७
अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीमं दयस्वोदितोऽयमेतु ।
अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुज्जरसा शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम् ८
देवानां हेतिः परि त्वा वृणक्तु पारयामि त्वा रजस उत् त्वा मृत्योरपीपरम् ।
आरादग्निं क्रव्यादं निरूहं जीवातवे ते परिधिं दधामि ९
यत् ते नियानं रजसं मृत्यो अनवधर्ष्यम् ।
पथ इमं तस्माद् रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि १०

कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति ।
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोऽप सेधामि सर्वान् ११
आराद्रातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ।
रक्षो यत् सर्वं दुर्भूतं तत् तम इवाप हन्मसि १२
अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः ।
यथा न रिष्या अमृतः सजूरसस्तत् ते कृणोमि तदु ते समृध्यताम् १३
शिवे ते स्तां द्यावापृथिवी असंतापे अभिश्रियौ ।
शं ते सूर्य आ तपतु शं वातो वातु ते हृदे ।
शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः १४ ४०
शिवास्ते सन्त्वोषधय उत त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि ।
तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभा १५
यत् ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम् ।
शिवं ते तन्वे३ तत् कृण्मः संस्पर्शेऽद्रूक्ष्णमस्तु ते १६
यत् क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु ।
शुभं मुखं मा न आयुः प्र मोषीः १७
शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ ।
एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः १८
यदश्नासि यत् पिबसि धान्यं कृष्याः पयः ।
यदाद्यं१ यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि १९ ४५
अह्ने च त्वा रात्रये चोभाभ्यां परि दद्मसि ।
अरायेभ्यो जिघत्सुभ्य इमं मे परि रक्षत २०
शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः २१
शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परि दद्मसि ।
वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि येषु वर्धन्त ओषधीः
मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम् । तस्मात् त्वां मृत्योर्गोपतेरुद्भरामि स मा बिभेः २३
सोऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभेः । न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधमं तमः २४
सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः । यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् २५ ५१

परि त्वा पातु समानेभ्योऽभिचारात् सबन्धुभ्यः ।
अमम्रिर्भवामृतोऽतिजीवो मा ते हासिषुरसवः शरीरम् २६
ये मृत्यव एकशतं या नाष्ट्रा अतितार्याः ।
मुञ्चन्तु तस्मात् त्वां देवा अग्नेर्वैश्वानरादधि २७
अग्नेः शरीरमसि पारयिष्णु रक्षोहासि सपत्नहा ।
अथो अमीवचातनः पूतुद्रुर्नाम भेषजम् २८

॥४॥ (अथर्व० १।३०।१-४)
अथर्वा (आयुष्कामः) । विश्वे देवाः (१ वसवः, आदित्याः, १-४ देवाः)।
त्रिष्टुप्, ३ शाक्वरगर्भा विराड्जगती ।

विश्वे देवा वसवो रक्षतेममुतादित्या जागृत यूयमस्मिन् ।
मेमं सनाभिरुत वान्यनाभिर्मेमं प्रापत् पौरुषेयो वधो यः १ ५५
ये वो देवाः पितरो ये च पुत्राः सचेतसो मे शृणुतेदमुक्तम् ।
सर्वेभ्यो वः परि ददाम्येतं स्वस्त्येनं जरसे वहाथ २
ये देवा दिवि ष्ठ ये पृथिव्यां ये अन्तरिक्ष ओषधीषु पशुष्वप्स्व१न्तः ।
ते कृणुत जरसमायुरस्मै शतमन्यान् परि वृणक्तु मृत्यून् ३
येषां प्रयाजा उत वानुयाजा हुतभागा अहुतादश्च देवाः ।
येषां वः पञ्च प्रदिशो विभक्तास्तान् वो अस्मै सत्रसदः कृणोमि ४

॥५॥ (अथर्व० १।३५।१-४)
अथर्वा (आयुष्कामः) हिरण्यम् , इन्द्राग्नी, विश्वे देवाः । जगती, ४ अनुष्टुब्गर्भा चतुष्पदा त्रिष्टुप् ।

यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय १
नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्ये३तत् ।
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः २ ६०
अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याणि ।
इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन् तद् दक्षमाणो बिभरद्धिरण्यम् ३
समानां मासामृतुभिष्ट्वा वयं संवत्सरस्य पयसा पिपर्मि ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ४ ६२

॥६॥ (अथर्व० ६।४१।१-३)

ब्रह्मा। चन्द्रमाः, २ सरस्वती, ३ दैव्या ऋषयः। अनुष्टुप्, १ भुरिक्, ३ त्रिष्टुप्।

मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये। मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् १

अपानाय व्यानाय प्राणाय भूरिधायसे। सरस्वत्या उरुव्यचे विधेम हविषा वयम् २

मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वस्तनूजाः।

अमर्त्या मर्त्यां अभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ३ ६५

॥७॥ (अथर्व० २।४।१-६)

अथर्वा। (चन्द्रमाः,) जङ्गिडः। अनुष्टुप्, १ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः।

दीर्घायुत्वाय बृहते रणायारिष्यन्तो दक्षमाणाः सदैव।

मणिं विष्कन्धदूषणं जङ्गिडं बिभृमो वयम् १

जङ्गिडो जम्भाद् विशराद् विष्कन्धादभिशोचनात्।

मणिः सहस्रवीर्यः परि णः पातु विश्वतः २

अयं विष्कन्धं सहतेऽयं बाधते अत्रिणः।

अयं नो विश्वभेषजो जङ्गिडः पात्वंहसः ३

देवैर्दत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयोभुवा।

विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ४

शणश्च मा जङ्गिडश्च विष्कन्धादभि रक्षताम्।

अरण्यादन्य आभृतः कृष्या अन्यो रसेभ्यः ५ ७०

कृत्यादूषिरयं मणिरथो अरातिदूषिः।

अथो सहस्वान् जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ६

॥८॥ (अथर्व० ३।११।१—८)

ब्रह्मा, भृग्वङ्गिराश्च। इन्द्राग्नी, आयुष्यं, यक्ष्मनाशनम्। त्रिष्टुप्, ४ शक्करीगर्भा जगती, ५-६ अनुष्टुप्, ७ उष्णिग्बृहतीगर्भा पथ्यापङ्क्तिः, ८ त्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भा जगती।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।

ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् १

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।

तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय २

सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम्।

इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ३ ७४

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान् छतमु वसन्तान् ।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ४ ७९
प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
व्य१न्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान् छतम् ५
इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम् ।
शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः ६
जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि धुवामि त्वा ।
जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्य१न्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान् छतम् ७
अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा ।
यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया ।
तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद् बृहस्पतिः ८

॥९॥ (अथर्व० २।९।१-५)

भृग्वङ्गिराः । वनस्पतिः, यक्ष्मनाशनम् । अनुष्टुप् १ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः ।

दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्या अधि यैनं जग्राह पर्वसु ।
अथो एनं वनस्पते जीवानां लोकमुन्नय १ ८०
आगादुदगादयं जीवानां व्रातमप्यगात् ।
अभूदु पुत्राणां पिता नृणां च भगवत्तमः २
अधीतीरध्यगादयमधि जीवपुरा अगन् ।
शतं ह्यस्य भिषजः सहस्रमुत वीरुधः ३
देवास्ते चीतिमविदन् ब्रह्माण उत वीरुधः ।
चीतिं ते विश्वे देवा अविदन् भूम्यामधि ४
यश्चकार स निष्करत् स एव सुभिषक्तमः ।
स एव तुभ्यं भेषजानि कृणवद् भिषजा शुचिः ५

॥१०॥ (अथर्व० ६।११०।१-३)

अथर्वा । अग्निः । त्रिष्टुप्, १ पङ्क्तिः ।

प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि ।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रायस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व १ ८५

॥६॥ (अथर्व० ६।४१।१-३)

ब्रह्मा । चन्द्रमाः, १ सरस्वती, ३ दैव्या ऋषयः । अनुष्टुप् , १ भुरिक, ३ त्रिष्टुप् ।

मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये । मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् १
अपानाय व्यानाय प्राणाय भूरिधायसे । सरस्वत्या उरुव्यचे विधेम हविषा वयम् २
मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वस्तनूजाः ।
अमर्त्या मर्त्यां अभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ३ ६५

॥७॥ (अथर्व० २।४।१-६)

अथर्वा । (चन्द्रमाः,) जङ्गिडः । अनुष्टुप् , १ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः ।

दीर्घायुत्वाय बृहते रणायारिष्यन्तो दक्षमाणाः सदैव ।
मणिं विष्कन्धदूषणं जङ्गिडं बिभृमो वयम् १
जङ्गिडो जम्भाद् विशराद् विष्कन्धादभिशोचनात् ।
मणिः सहस्रवीर्यः परि णः पातु विश्वतः २
अयं विष्कन्धं सहतेऽयं बाधते अत्त्रिणः ।
अयं नो विश्वभेषजो जङ्गिडः पात्वंहसः ३
देवैर्दत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयोभुवा ।
विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ४
शणश्च मा जङ्गिडश्च विष्कन्धादभि रक्षताम् ।
अरण्यादन्य आभृतः कृष्या अन्यो रसेभ्यः ५ ७०
कृत्यादूषिरयं मणिरथो अरातिदूषिः ।
अथो सहस्वान् जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ६

॥८॥ (अथर्व० ३।११।१—८)

ब्रह्मा, भृग्वङ्गिराश्च । इन्द्राग्नी, आयुष्यं, यक्ष्मनाशनम् । त्रिष्टुप्, ४ शक्करीगर्भा जगती, ५-६ अनुष्टुप्, ७ उष्णिग्बृहतीगर्भा पथ्यापङ्क्तिः, ८ त्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भा जगती ।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् १
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय २
सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ३ ७४

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान् छतमु वसन्तान् ।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ४ ७५
प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
व्यन्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान् छतम् ५
इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम् ।
शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः ६
जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि धुवामि त्वा ।
जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्यन्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान् छतम् ७
अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा ।
यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया ।
तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद् बृहस्पतिः ८

॥९॥ (अथर्व० १९।१।१–५)
भृग्वङ्गिराः । वनस्पतिः, यक्ष्मनाशनम् । अनुष्टुप् १ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः ।

दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्या अधि यैनं जग्राह पर्वसु ।
अथो एनं वनस्पते जीवानां लोकमुन्नय १ ८०
आगादुदगादयं जीवानां व्रातमप्यगात् ।
अभूदु पुत्राणां पिता नृणां च भगवत्तमः २
अधीतीरध्यगादयमधि जीवपुरा अगन् ।
शतं ह्यस्य भिषजः सहस्रमुत वीरुधः ३
देवास्ते चीतिमविदन् ब्रह्माण उत वीरुधः ।
चीतिं ते विश्वे देवा अविदन् भूम्यामधि ४
यश्चकार स निष्करत् स एव सुभिषक्तमः ।
स एव तुभ्यं भेषजानि कृणवद् भिषजा शुचिः ५

॥१०॥ (अथर्व० ६।११०।१-३)
अथर्वा । अग्निः । त्रिष्टुप्, १ पङ्क्तिः ।

प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि ।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रायस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व १ ८५

ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात् परि पाह्येनम्।
अत्येनं नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय २
व्याघ्रेऽह्न्यजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः।
स मा वधीत् पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीज्जनित्रीम् ३

॥ ११ ॥ (अथर्व० ६।४७।१-३)

अङ्गिराः प्रचेताः। १ अग्निः, २ विश्वे देवाः, ३ सुधन्वा। त्रिष्टुप्।

अग्निः प्रातःसवने पात्वस्मान् वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशंभूः।
स नः पावको द्रविणे दधात्वायुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम १
विश्वे देवा मरुत इन्द्रो अस्मानस्मिन् द्वितीये सवने न जह्युः।
आयुष्मन्तः प्रियमेषां वदन्तो वयं देवानां सुमतौ स्याम २
इदं तृतीयं सवनं कवीनामृतेन ये चमसमैरयन्त।
ते सौधन्वनाः स्वरानशानाः स्विष्टिं नो अभि वस्यो नयन्तु ३ १०

॥ १२ ॥ (अथर्व० २।२९।१-७)

अथर्वा। १ अग्निः, सूर्यः, बृहस्पतिः, २ जातवेदाः सविता; ३ इन्द्रः; ४-५ द्यावापृथिवी, विश्वे देवाः, मरुतः, आपः, ६ अश्विनौ, ७ इन्द्रः। त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप्, ४ पराबृहती निचृत्प्रस्तारपङ्क्तिः।

पार्थिवस्य रसे देवा भगस्य तन्वो३ बले।
आयुष्यमस्मा अग्निः सूर्यो वर्च आ धाद् बृहस्पतिः १
आयुरस्मै धेहि जातवेदः प्रजां त्वष्टरधिनिधेह्यस्मै।
रायस्पोषं सवितरा सुवास्मै शतं जीवाति शरदस्तवायम् २
आशीर्ण ऊर्जमुत सौप्रजास्त्वं दक्षं धत्तं द्रविणं सचेतसौ।
जयं क्षेत्राणि सहसायमिन्द्र कृण्वानो अन्यानधरान्त्सपत्नान् ३
इन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टो मरुद्भिरुग्रः प्रहितो न आगन्।
एष वां द्यावापृथिवी उपस्थे मा क्षुधन्मा तृषत् ४
ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वती धत्तं पयो अस्मै पयस्वती धत्तम्।
ऊर्जमस्मै द्यावापृथिवी अधातां विश्वे देवा मरुत ऊर्जमापः ५
शिवाभिष्टे हृदयं तर्पयाम्यनमीवो मोदिषीष्ठाः सुवर्चाः।
सवासिनौ पिबतां मन्थमेतमश्विनो रूपं परिधाय मायाम् ६ १६

इन्द्र एतां ससृजे विद्धो अग्र ऊर्जां स्वधामजरां सा त एषा ।
तया त्वं जीव शरदः सुवर्चा मा त आ सुस्रोद् भिषजस्ते अक्रन् ७

॥१३॥ (अथर्व० ५।३०।१-१७)

उन्मोचनः (आयुष्कामः)। आयुष्यम्। अनुष्टुप्; १ पथ्यापङ्क्तिः, ९ भुरिक्, १२ चतुष्पदा विराड्जगती, १४ विराट्प्रस्तारपङ्क्तिः, १७ त्र्यवसाना षट्पदा जगती।

आवतस्त आवतः परावतस्त आवतः ।
इहैव भव मा नु गा मा पूर्वाननु गाः पितॄनसुं बध्नामि ते दृढम् १
यत् त्वाभिचेरुः पुरुषः स्वो यदरणो जनः । उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते २
यद् दुद्रोहिथ शेपिषे स्त्रियै पुंसे अचित्त्या । उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ३ १००
यदेनसो मातृकृताच्छेषे पितृकृताच्च यत् । उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ४
यत् ते माता यत् ते पिता जामिर्भ्राता च सर्जतः । प्रत्यक् सेवस्व भेषजं जरदष्टिं कृणोमि त्वा ५
इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह । दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपुरा इहि ६
अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः । आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोऽयनम् ७
मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा । निरवोचमहं यक्ष्ममङ्गेभ्यो अङ्गज्वरं तव ८ १०५
अङ्गभेदो अङ्गज्वरो यश्च ते हृदयामयः । यक्ष्मः श्येन इव प्रापप्तद् वाचा साढः परस्तराम् ९
ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः । तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं [illegible] जागृताम् १०
अयमग्निरुपसद्य इह सूर्य उदेतु ते । उदेहि मृत्योर्गम्भीरात् [illegible]चित् तमसस्परि ११
नमो यमाय नमो अस्तु मृत्यवे नमः पितृभ्य उत [illegible] नयन्ति ।
उत् पारणस्य यो वेद तमग्निं पुरो दधेऽस्मा अरिष्टतातये १२
एतु प्राण एतु मन एतु चक्षुरथो बलम् । शरीरमस्य सं विदां तत् पद्भ्यां प्रति तिष्ठतु १३ ११०
प्राणेनाग्ने चक्षुषा सं सृजेमं समीरय तन्वा३ सं बलेन ।
वेत्थामृतस्य मा नु गान्मा नु भूमिगृहो भुवत् १४
मा ते प्राण उप दसन्मो अपानोऽपि धायि ते । सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः १५
इयमन्तर्वदति जिह्वा बद्धा पनिष्पदा । त्वया यक्ष्मं निरवोचं शतं रोपीश्च तक्मनः १६
अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः । यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे
स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः १७ ११४

॥ १४ ॥ (अथर्व० १९।६४।१-४)

ब्रह्मा । अग्निः (दीर्घायुत्वम्) । अनुष्टुप् ।

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे । स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु १ ११५
इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि । तथा त्वमस्मान् वर्धय प्रजया च धनेन च २
यदग्ने यानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि । सर्वं तदस्तु मे शिवं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ३
एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद्भव । आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय ४

॥ १५ ॥ (अथर्व० १९।६७।१-८)

ब्रह्मा । सूर्यः (दीर्घायुत्वम्) । प्रजापत्या गायत्री ।

पश्येम शरदः शतम् १ जीवेम शरदः शतम् २
बुध्येम शरदः शतम् ३ रोहेम शरदः शतम् ४
पूषेम शरदः शतम् ५ भवेम शरदः शतम् ६
भूयेम शरदः शतम् ७ भूयसीः शरदः शतात् ८ ११६

॥ १६ ॥ (अथर्व० ५।२८।१-१४)

अथर्वा । त्रिवृत्, अग्न्यादयः (दीर्घायुः) । त्रिष्टुप्, ६ पञ्चपदातिशक्वरी; ७,९,१०,१२ ककुम्मत्यनुष्टुप्, १३ पुरउष्णिक् ।

नव प्राणान् नवभिः सं मिमीते दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
हरिते त्रीणि रजते त्रीण्ययसि त्रीणि तपसाविष्ठितानि १
अग्निः सूर्यश्चन्द्रमा भूमिरापो द्यौरन्तरिक्षं प्रदिशो दिशश्च ।
आर्तवा ऋतुभिः संविदाना अनेन मा त्रिवृता पारयन्तु २
त्रयः पोषास्त्रिवृति श्रयन्तामनक्तु पूषा पयसा घृतेन ।
अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम् ३
इममादित्या वसुना समुक्षतेममग्ने वर्धय वावृधानः ।
इममिन्द्र सं सृज वीर्येणास्मिन् त्रिवृच्छ्रयतां पोषयिष्णु ४ १२०
भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृदग्निः पिपर्त्वयसा सजोषाः ।
वीरुद्भिष्टे अर्जुनं संविदानं दक्षं दधातु सुमनस्यमानम् ५
त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यमग्नेरेकं प्रियतमं बभूव सोमस्यैकं हिंसितस्य परापतत् ।
अपामेकं वेधसां रेत आहुस्तत् ते हिरण्यं त्रिवृदस्त्वायुषे ६ १२१

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
त्रेधामृतस्य चक्षणं त्रीण्यायूंषि तेऽकरम् ७
त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदायन्नेकाक्षरमभिसंभूय शक्राः ।
प्रत्यौहन् मृत्युममृतेन साकमन्तर्दधाना दुरितानि विश्वा ८
दिवस्त्वा पातु हरितं मध्यात् त्वा पात्वर्जुनम् ।
भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद् देवपुरा अयम् ९ १३५
इमास्तिस्रो देवपुरास्तास्त्वा रक्षन्तु सर्वतः ।
तास्त्वं बिभ्रद् वर्चस्व्युत्तरो द्विषतां भव १०
पुरं देवानाममृतं हिरण्यं य आबेधे प्रथमो देवो अग्रे ।
तस्मै नमो दश प्राचीः कृणोम्यनु मन्यतां त्रिवृदाबधे मे ११
आ त्वा चृतत्वर्यमा पूषा बृहस्पतिः ।
अहर्जातस्य यन्नाम तेन त्वाति चृतामसि १२
ऋतुभिष्ट्वार्तवैरायुषे वर्चसे त्वा ।
संवत्सरस्य तेजसा तेन संहनु कृण्मसि १३
घृतादुल्लुप्तं मधुना समक्तं भूमिदृंहमच्युतं पारयिष्णु ।
भिन्दत् सपत्नानधरांश्च कृण्वदा मा रोह महते सौभगाय १४ १४०

॥ १७ ॥ (अथर्व० ७।३२।१)

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् ।
अगन्म बिभ्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे १

॥ १८ ॥ (अथर्व० ७।३३।१)

ब्रह्मा । मरुतः, पूषा, बृहस्पतिः, अग्निः, (दीर्घायु) । पथ्यापङ्क्तिः ।

सं मा सिञ्चन्तु मरुतः सं पूषा सं बृहस्पतिः ।
सं मायमग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन च दीर्घमायुः कृणोतु मे १

॥ १९ ॥ (अथर्व० ७।५३।१-७)

ब्रह्मा । आयुः, बृहस्पतिः अश्विनौ च । त्रिष्टुप्, ३ भुरिक्, ४ उष्णिग्गर्भार्षी पङ्क्तिः, ५-७ अनुष्टुप् ।

अमुत्रभूयादधि यद् यमस्य बृहस्पतेरभिशस्तेरमुञ्चः ।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद् देवानामग्ने भिषजा शचीभिः १ १४३

सं क्रामतं मा जहीतं शरीरं प्राणापानौ ते सयुजाविह स्ताम् ।
शतं जीव शरदो वर्धमानोऽग्निष्टे गोपा अधिपा वसिष्ठः २
आयुर्यत् ते अतिहितं पराचैरपानः प्राणः पुनरा ताविताम् ।
अग्निष्टदाहार्निर्ऋतेरुपस्थात् तदात्मनि पुनरा वेशयामि ते ३ १४५
मेमं प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ।
सप्तर्षिभ्य एनं परि ददामि त एनं स्वस्ति जरसे वहन्तु ४
प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् । अयं जरिम्णः शेवधिररिष्ट इह वर्धताम् ५
आ ते प्राणं सुवामसि परा यक्ष्मं सुवामि ते । आयुर्नो विश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्यः ६
उद्वयं तमसस्परि रोहन्तो नाकमुत्तमम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ७

॥ १० ॥ (अथर्व० ६।७६।१-४)

कबन्धः । सान्तपनाग्निः (आयुष्यम्) । अनुष्टुप्, ३ ककुम्मती ।

य एनं परिषीदन्ति समादधति चक्षसे । संप्रेद्धो अग्निर्जिह्वाभिरुदेतु हृदयादधि १ १५०
अग्नेः सान्तपनस्याहमायुषे पदमा रभे । अद्धातिर्यस्य पश्यति धूममुद्यन्तमास्यत २
यो अस्य समिधं वेद क्षत्रियेण समाहिताम् । नाभिह्वारे पदं नि दधाति स मृत्यवे ३
नैनं घ्नन्ति पर्यायिणो न सन्नाँ अव गच्छति । अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वान् नाम गृह्णात्यायुषे ४

॥ ११ ॥ (अथर्व० १९।६३।१)

ब्रह्मा । ब्रह्मणस्पतिः (आयुर्वर्धनम्) । विराडुपरिष्टाद्बृहती ।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय । आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय १

॥ १२ ॥ (अथर्व० १९।६१।१)

ब्रह्मा । ब्रह्मणस्पतिः (सर्वमायुः) । विराट् पथ्याबृहती ।

तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय । स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे १

॥१३॥ (अथर्व० १९।७०।१)

ब्रह्मा । इन्द्रसूर्यादयः (सर्वमायुः) । गायत्री ।

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् । सर्वमायुर्जीव्यासम् १ १५६

अरिष्टानि अङ्गानि । (१५७-१६१)

॥ १४ ॥ (अथर्व० १९।६०।१-२)

ब्रह्मा । वाक्, अङ्गानि च । १ पथ्याबृहती; २ ककुम्मती पुरउष्णिक् ।

वाङ् म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः ।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् १ १५७

ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः । प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः २

सुमङ्गलौ दन्तौ ।

॥ २५ ॥ (अथर्व० ६।१४०।१-३)

अथर्वा । ब्रह्मणस्पतिः, दन्ताः । (अनुष्टुप् १) १ उरोबृहती, २ उपरिष्टाज्ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्, ३ आस्तारपङ्क्तिः ।

यौ व्याघ्रावव॑रूढौ जिघ॑त्सतः पि॒तरं॑ मा॒तरं॑ च ।
यौ दन्तौ॑ ब्रह्मणस्पते शि॒वौ कृ॑णु जातवेदः १
व्रीहिम॑त्तं यव॑मत्तमथो॒ माष॑मथो॒ तिल॑म् ।
एष वां॑ भा॒गो निहि॑तो रत्नधेया॑य दन्तौ॑ मा हिंसिष्टं पि॒तरं॑ मा॒तरं॑ च २
उप॑हूतौ स॒युजौ॑ स्यो॒नौ दन्तौ॑ सुम॒ङ्गलौ॑ ।
अ॒न्यत्र॑ वां घो॒रं त॒न्वः॑ परै॑तु दन्तौ॑ मा हिंसिष्टं पि॒तरं॑ मा॒तरं॑ च ३ १६१

यक्ष्म--नाशनम्

(१६२-३००) ॥ २६ ॥ (ऋ० १०।१६३।१-६)

विवृहा काश्यपः । यक्ष्मनाशनम् । अनुष्टुप् ।

(अथर्व० २०।९६)

अ॒क्षीभ्यां॑ ते॒ नासि॑काभ्यां॒ कर्णा॑भ्यां॒ छुबु॑का॒दधि॑ ।
यक्ष्मं॑ शीर्ष॒ण्यं॑ म॒स्तिष्का॒ज्जि॒ह्वाया॒ वि वृ॑हामि ते १
ग्री॒वाभ्य॑स्त उ॒ष्णिहा॑भ्यः॒ कीक॑साभ्यो अनू॒क्या॑त् ।
यक्ष्मं॑ दोष॒ण्य१॒॑मंसा॑भ्यां बा॒हुभ्यां॒ वि वृ॑हामि ते २
आ॒न्त्रेभ्य॑स्ते॒ गुदा॑भ्यो वनि॒ष्ठोर्हृद॑या॒दधि॑ ।
यक्ष्मं॑ मत॑स्नाभ्यां य॒क्नः प्ला॒शिभ्यो॒ वि वृ॑हामि ते ३
ऊ॒रुभ्यां॑ ते अष्ठी॒वद्भ्यां॒ पार्ष्णि॑भ्यां॒ प्रप॑दाभ्याम् ।
यक्ष्मं॑ श्रोणि॑भ्यां॒ भास॑दा॒द्भंस॑सो॒ वि वृ॑हामि ते ४ १६५
मेह॑नाद्वन॒ंकर॑णा॒ल्लोम॑भ्यस्ते न॒खेभ्यः॑ ।
यक्ष्मं॑ सर्व॑स्मादा॒त्मन॒स्तमि॒दं वि वृ॑हामि ते ५
अङ्गा॑दङ्गा॒ल्लोम्नो॑लोम्नो॒ जा॒तं पर्व॑णिपर्वणि ।
यक्ष्मं॑ सर्व॑स्मादा॒त्मन॒स्तमि॒दं वि वृ॑हामि ते ६ १६७

॥ २७ ॥ (अथर्व० ३।३१।१-११)

ब्रह्मा। पाप्महा; १ अग्निः, २ शक्रः, ३ पशवः, ४ द्यावापृथिवी, ५ त्वष्टा, अग्निः, इन्द्रः, ७ देवाः, सूर्यः; ८-१० आयुः, ११ पर्जन्यः (यक्ष्मनाशनम्)। अनुष्टुप्, ४ भुरिक्, ५ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः।

वि देवा जरसावृतन् वि त्वमग्ने अरात्या ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा १
व्यार्त्या पवमानो वि शक्रः पापकृत्यया ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा २
वि ग्राम्याः पशव आरण्यैर्व्यापस्तृष्णयासरन् ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ३ १७०
वी३मे द्यावापृथिवी इतो वि पन्थानो दिशंदिशम् ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ४
त्वष्टा दुहित्रे वहतुं युनक्तीतीदं विश्वं भुवनं वि याति ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ५
अग्निः प्राणान्त्सं दधाति चन्द्रः प्राणेन संहितः ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ६
प्राणेन विश्वतोवीर्यं देवाः सूर्यं समैरयन् ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ७
आयुष्मतामायुष्कृतां प्राणेन जीव मा मृथाः ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ८ १७१
प्राणेन प्राणतां प्राणेहैव भव मा मृथाः ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ९
उदायुषा समायुषोदोषधीनां रसेन ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा १०
आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामामृता वयम्
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ११

॥ २८ ॥ (अथर्व० ६।२०।१-३)

भृग्वङ्गिराः। यक्ष्मनाशनम्। १ जगती, २ ककुम्मतीप्रस्तारपङ्क्ति, ३ सतःपङ्क्तिः।

अग्नेरिवास्य दहत एति शुष्मिण उतेव मत्तो विलपन्नपायति ।
अन्यमस्मदिच्छतु कं चिदव्रतस्तपुर्वधाय नमो अस्तु तक्मने १ १७२

नमो रुद्राय नमो अस्तु तक्मने नमो राज्ञे वरुणाय त्विषीमते ।
नमो दिवे नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः २ १८०
अयं यो अभिशोचयिष्णुर्विश्वा रूपाणि हरिता कृणोषि ।
तस्मै तेऽरुणाय बभ्रवे नमः कृणोमि वन्याय तक्मने ३

॥ २९ ॥ (अथर्व० ६।८५।१-३)

अथर्वा । वनस्पतिः (यक्ष्मनाशनम्) । अनुष्टुप् ।

वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः । यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् १
इन्द्रस्य वचसा वयं मित्रस्य वरुणस्य च । देवानां सर्वेषां वाचा यक्ष्मं ते वारयामहे २
यथा वृत्र इमा आपस्तस्तम्भ विश्वधा यतीः ।
एवा ते अग्निना यक्ष्मं वैश्वानरेण वारये ३

॥ ३० ॥ (अथर्व० ६।१२७।१-३)

भृग्वङ्गिराः । यक्ष्मनाशनम्, वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ३ त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।

विद्रधस्य बलासस्य लोहितस्य वनस्पते । विसल्पकस्योषधे मोच्छिषः पिशितं चन १ १८५
यौ ते बलास तिष्ठतः कक्षे मुष्कावपश्रितौ । वेदाहं तस्य भेषजं चीपुद्रुरभिचक्षणम् २
यो अङ्ग्यो यः कर्ण्यो यो अक्ष्योर्विसल्पकः । वि वृहामो विसल्पकं विद्रधं हृदयामयम् ।
परा तमज्ञातं यक्ष्ममधराञ्चं सुवामसि ३

॥ ३१ ॥ (अथर्व० १।१२।१-४)

भृग्वङ्गिराः । यक्ष्मनाशनम् । जगती (त्रिष्टुप् ?), ४ अनुष्टुप् ।

जरायुजः प्रथम उस्रियो वृषा वातभ्रजा स्तनयन्नेति वृष्ट्या ।
स नो मृडाति तन्व ऋजुगो रुजन् य एकमोजस्त्रेधा विचक्रमे १
अङ्गेअङ्गे शोचिषा शिश्रियाणं नमस्यन्तस्त्वा हविषा विधेम ।
अङ्कान्त्समङ्कान् हविषा विधेम यो अग्रभीत् पर्वास्या ग्रभीता २
मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनं परुष्परुराविवेशा यो अस्य ।
यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्त्सचतां पर्वतांश्च ३
शं मे परस्मै गात्राय शमस्त्ववराय मे ।
शं मे चतुर्भ्यो अङ्गेभ्यः शमस्तु तन्वे मम ४ १९१

॥ ३२ ॥ (अथर्व० ३।७।१-७)

भृग्वङ्गिराः। १-३ हरिणः, ४ तारके, ५ आपः, ६-७ यक्ष्मनाशनम्। अनुष्टुप्, ६ भुरिक्।

हरिणस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम्।
स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत् १
अनु त्वा हरिणो वृषा पद्भिश्चतुर्भिरक्रमीत्।
विषाणे वि ष्य गुष्पितं यदस्य क्षेत्रियं हृदि २
अदो यदवरोचते चतुष्पक्षमिव च्छदिः।
तेना ते सर्वं क्षेत्रियमङ्गेभ्यो नाशयामसि ३
अमू ये दिवि सुभगे विचृतौ नाम तारके।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ४ १९५
आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ५
यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे।
वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत् ६
अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत।
अपास्मत् सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ७

॥ ३३ ॥ (अथर्व० ६।९१।१-३)

भृग्वङ्गिराः। यक्ष्मनाशनम्, ३ आपः। अनुष्टुप्।

इमं यवमष्टायोगैः षड्योगेभिरचर्कृषुः। तेना ते तन्वो३ रपोऽपाचीनमप व्यये १
न्य१ग् वातो वाति न्यक् तपति सूर्यः। नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग् भवतु ते रपः २ २००
आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ३

॥ ३४ ॥ (अथर्व० १९।३८।१-३)

अथर्वा। गुल्गुलुः (यक्ष्मनाशनम्)। अनुष्टुप्, २ चतुष्पदा उष्णिक्, ३ एकावसाना प्राजापत्यानुष्टुप्।

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते १
विष्वञ्चस्तस्माद् यक्ष्मा मृगा अश्वा इवेरते।
यद् गुल्गुलु सैन्धवं यद् वाप्यासि समुद्रियम् २
उभयोरग्रभं नामास्मा अरिष्टतातये ३ २०५

॥ ३५ ॥ (अथर्व० २०।९६।६-१०)

यक्ष्मनाशनः । यक्ष्मनाशनम् । त्रिष्टुप् ।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ६ २०५
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ७
सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ८
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान् छतमु वसन्तान् ।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ९
आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः । सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् १०

॥ ३६ ॥ (अथर्व० २०।९६।१७-२३)

विवृहाः । यक्ष्मनाशनम् । अनुष्टुप् ।

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते १७ २१०
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते १८
हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि १९
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते २०
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भसद्यं श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते २१
अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते २२ २१५
अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि २३ २१६

॥ ३७ ॥ (अथर्व० १२।२।१-५५)

भृगुः । अग्निः; मन्त्रोक्ताः; २१-३३ मृत्युः (यक्ष्मरोगनाशनम्) । त्रिष्टुप्; १,५,१२-२०,३४-३६; ३८-४१, ४३,५१,५४ अनुष्टुप् (१६ ककुम्मती पराबृहती, १८ निचृत्, ४० पुरस्तात्ककुम्मती); ३ आस्तारपङ्क्तिः; ६ भुरिगार्षी पङ्क्तिः; ७,४५ जगती; ८,४८-४९ भुरिग्; ९ अनुष्टुब्गर्भा विपरीतपादलक्ष्मा पङ्क्तिः; ३७ पुरस्ताद्बृहती; ४२ त्रिप० एकाव० भुरिगार्ची गायत्री, ४४ एकाव० द्विप० आर्ची बृहती, ४६ एका० द्विप० साम्नी त्रिष्टुप्; ४७ पञ्चपदा बार्हतवैराजगर्भा जगती; ५० उपरिष्टाद्विराड् बृहती; ५२ पुरस्ताद्विराड् बृहती; ५५ बृहतीगर्भा ।

नडमा रोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि ।
यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्वं साकमधराङ् परेहि १
अघशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च । यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निरजामसि २
निरितो मृत्युं निर्ऋतिं निररातिमजामसि ।
यो नो द्वेष्टि तमद्ध्यग्ने अक्रव्याद्यमु द्विष्मस्तमु ते प्र सुवामसि ३
यद्यग्निः क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः ।
तं माषाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदोऽप्यग्नीन् ४ २१०
यत् त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते । सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोद्दीपयामसि ५
पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।
पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ६
यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्ममिन्धां परमे सधस्थे ७
क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ८
क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम् ।
नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितॄणां लोकेऽपि भागो अस्तु ९ २१५
क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं प्र हिणोमि पथिभिः पितृयाणैः ।
मा देवयानैः पुनरा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् १०
समिन्धते संकसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति ११
देवो अग्निः संकसुको दिवस्पृष्ठान्यारुहत् । मुच्यमानो निरेणसोऽमोगस्माँ अशस्त्याः १२ २१८

अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् १३
संकसुको विकसुको निर्ऋथो यश्च निस्वरः । ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद् दूरमनीनशन् १४ २३०
यो नो अश्वेषु वीरेषु यो नो गोष्वजाविषु ।
क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः १५
अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा ।
निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः १६
यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत ।
तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह १७
समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः ।
अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक् च सूर्यं दृशे १८
सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वमग्नौ संकसुके च यत् ।
अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणे १९ २३५
सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपबर्हणे । अव्यामसिक्न्यां मृष्ट्वा शुद्धा भवत यज्ञियाः २०
परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्त एष इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमीहेमे वीरा बहवो भवन्तु २१
इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथमा वदेम २२
इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन २३
आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति स्थ ।
तान्वस्त्वष्टा सुजनिमा सजोषाः सर्वमायुर्नयतु जीवनाय २४ २४०
यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम् ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् २५
अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहीत ये असन्दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् २६
उत्तिष्ठता प्र तरता सखायोऽश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम् ।
अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि वाजान् । २७ २४३

वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम २८
उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तोऽवरान् परेभिः ।
त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन २९ १४५
मृत्योः पदं योपयन्त एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आसीना मृत्युं नुदता सधस्थेऽथ जीवासो विदथमा वदेम ३०
इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ३१
व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्य१हं कल्पयामि ।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ३२
यो नो अग्निः पितरो हृत्स्व१न्तराविवेशामृतो मर्त्येषु ।
मय्यहं तं परि गृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम् ३३
अपावृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा ।
प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् ३४ १५०
द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या । अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः ३५
यत् कृषते यद् वनुते यच्च वस्नेन विन्दते । सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः ३६
अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे । छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद्यं क्रव्यादनुवर्तते ३७
मुहुर्गृध्यैः प्र वदत्यार्तिं मर्त्यो नीत्य । क्रव्याद्यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ३८
ग्राह्या गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः ।
ब्रह्मैव विद्वानेष्यो३ यः क्रव्यादं निरादधत् ३९ १५५
यद् रिप्रं शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम् ।
आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः संकसुकाच्च यत् ४०
ता अधरादुदीचीराववृत्रन् प्रजानतीः पथिभिर्देवयानैः ।
पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश्चरन्ति सरितः पुराणीः ४१
अग्ने अक्रव्यान्निः क्रव्यादं नुदा देवयजनं वह ४२
इमं क्रव्यादा विवेशायं क्रव्यादमन्वगात् । व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् ४३
अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणामग्निर्गार्हपत्य उभयानन्तरा श्रितः ४४ १६०

जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितॄणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।
सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ४५
सर्वानग्ने सहमानः सपत्नानैषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि ४६
इममिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
तेनाप हत शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ४७
अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
आ रोहत सवितुर्नावमेतां षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम ४८
अहोरात्रे अन्वेषि बिभ्रत् क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः ।
अनातुरान्त्सुमनसस्तल्प बिभ्रज्ज्योगेव नः पुरुषगन्धिरेधि ४९ २६५
ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा ।
क्रव्याद्यानग्निरन्तिकादश्व इवानुवपते नडम् ५०
येऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते । ते वा अन्येषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा ५१
प्रेव पिपतिषति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः । क्रव्याद्यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ५२
अविः कृष्णा भागधेयं पशूनां सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं त आहुः ।
माषाः पिष्टा भागधेयं ते हव्यमरण्यान्या गह्वरं सचस्व ५३
इषीकां जरतीमिष्ट्वा तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम् । तमिन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ ५४ २७०
प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पन्थां वि ह्याविवेश ।
परामीषामसून् दिदेश दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ५५

॥ ३८ ॥ (अथर्व० ९।८।१-२२)

भृग्वङ्गिराः । सर्वशीर्षामयाद्यपाकरणम् (यक्ष्मनिवारणम्) । अनुष्टुप्; १२ अनुष्टुब्गर्भा ककुम्मती चतुष्पदोष्णिक्; १५ विराडनुष्टुप्; २१ विराट् पथ्याबृहती; २२ पथ्यापङ्क्तिः ।

शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम् । सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे १
कर्णाभ्यां ते कङ्कूषेभ्यः कर्णशूलं विसल्पकम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे २
यस्य हेतोः प्रच्यवते यक्ष्मः कर्णत आस्यतः ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ३
यः कृणोति प्रमोतमन्धं कृणोति पूरुषम् । सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ४ २७१

अङ्गभेदमङ्गज्वरं विश्वाङ्ग्यं विसल्पकम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ५
यस्य भीमः प्रतीकाश उद्वेपयति पूरुषम् । तक्मानं विश्वशारदं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ६
य ऊरू अनुसर्पत्यथो एति गवीनिके । यक्ष्मं ते अन्तरङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ७
यदि कामादपकामाद्धृदयाज्जायते परि । हृदो बलासमङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ८
हरिमाणं ते अङ्गेभ्योऽप्वामन्तरोदरात् । यक्ष्मोधामन्तरात्मनो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ९ १८०
आसो बलासो भवतु मूत्रं भवत्वामयत् । यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् १०
बहिर्बिलं निर्द्रवतु काहाबाहं तवोदरात् । यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ११
उदरात् ते क्लोम्नो नाभ्या हृदयादधि । यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् १२
याः सीमानं विरुजन्ति मूर्धानं प्रत्यर्षणीः। अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् १३
या हृदयमुपर्षन्त्यनुतन्वन्ति कीकसाः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् १४ १८५
याः पार्श्वे उपर्षन्त्यनुनिक्षन्ति पृष्टीः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् १५
यास्तिरश्चीरुपर्षन्त्यर्षणीर्वक्षणासु ते ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् १६
या गुदा अनुसर्पन्त्यान्त्राणि मोहयन्ति च ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् १७
या मज्ज्ञो निर्धयन्ति परूंषि विरुजन्ति च ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् १८
ये अङ्गानि मदयन्ति यक्ष्मासो रोपणास्तव ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् १९ १९०
विसल्पस्य विद्रधस्य वातीकारस्य वालजेः ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् २०
पादाभ्यां ते जानुभ्यां श्रोणिभ्यां परि भंससः ।
अनूकादर्षणीरुष्णिहाभ्यः शीर्ष्णो रोगमनीनशम् २१
सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः ।
उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीशमः २२ १९३

॥ ३९ ॥ (अथर्व० २।३३।१-७)

ब्रह्मा । यक्ष्मविबर्हणं, चन्द्रमाः, आयुष्यम् । अनुष्टुप्, ३ ककुम्मती, ४ चतुष्पदा भुरिगुष्णिक्, ५ उपरिष्टाद्विराड्बृहती, ६ उष्णिग्गर्भा निचृदनुष्टुप्, ७ पथ्यापङ्क्तिः ।

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते　१
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्य१मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते　२　२९५
हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि　३
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते　४
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भसद्यं१ श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते　५
अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते　६
अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि　७　३००

ओषधिवनस्पतयः । (३०१-४८०)

॥ ४० ॥ (ऋ० १०।९७।१-२३)

आथर्वणो भिषग् । ओषधयः । अनुष्टुप् ।

या ओषधीः पूर्वा जाता　देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
मनै नु बभ्रूणामहं　शतं धामानि सप्त च　१
शतं वो अम्ब धामानि　सहस्रमुत वो रुहः ।
अधा शतक्रत्वो यूय- मिमं मे अगदं कृत　२
ओषधीः प्रति मोदध्वं　पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।
अश्वा इव सजित्वरी- र्वीरुधः पारयिष्ण्वः　३
ओषधीरिति मातर- स्तद् वो देवीरुप ब्रुवे ।
सनेयमश्वं गां वास　आत्मानं तव पूरुष　४　३०४

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज इत् किलासथ यत् सनवथ पूरुषम् ५ ३०५
यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ।
विप्रः स उच्यते भिषग् रक्षोहामीवचातनः ६
अश्वावतीं सोमावती—मूर्जयन्तीमुदोजसम् । आवित्सि सर्वा ओषधी—रस्मा अरिष्टतातये ७
उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते । धनं सनिष्यन्तीना—मात्मानं तव पूरुष ८
इष्कृतिर्नाम वो माता ऽथो यूयं स्थ निष्कृतीः ।
सीराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृथ ९
अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेन इव व्रजमक्रमुः । ओषधीः प्राचुच्यवु—र्यत् किं च तन्वो३ रपः १० ३१०
यदिमा वाजयन्नह—मोषधीर्हस्त आदधे । आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ११
यस्यौषधीः प्रसर्पथा—ङ्गमङ्गं परुष्परुः । ततो यक्ष्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव १२
साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना ।
साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया १३
अन्या वो अन्यामव—त्वन्यान्यस्या उपावत ।
ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः १४
याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूता—स्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः १५ ३१५
मुञ्चन्तु मा शपथ्या३—दथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्बीशात् सर्वस्माद् देवकिल्बिषात् १६
अवपतन्तीरवदन् दिव ओषधयस्परि । यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः १७
या ओषधीः सोमराज्ञी—र्बह्वीः शतविचक्षणाः । तासां त्वमस्युत्तमा—रं कामाय शं हृदे १८
या ओषधीः सोमराज्ञी—र्विष्ठिताः पृथिवीमनु । बृहस्पतिप्रसूता अस्यै सं दत्त वीर्यम् १९
मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः । द्विपच्चतुष्पदस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् २० ३२०
याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः । सर्वाः संगत्य वीरुधो ऽस्यै सं दत्त वीर्यम् २१
ओषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राज्ञा । यस्मै कृणोति ब्राह्मण—स्तं राजन् पारयामसि २२
त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः ।
उपस्तिरस्तु सो३ऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति २३ ३२३

॥४१॥ (अथर्व० ८।७।१-२८)

अथर्वा । भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः । अनुष्टुप्; २ उपरिष्टाद्भुरिग्बृहती; ३ पुर उष्णिक्; ४ पञ्चपदा परानुष्टुबतिजगती; ५-६, १०, २५ पथ्यापङ्क्तिः (६ विराड्गर्भा भुरिक्); ९ द्विपदार्ची भुरिगनुष्टुप्; १२ पञ्चपदा विराडतिशक्वरी; १४ उपरिष्टान्निचृद्बृहती; २६ निचृत्; २८ भुरिक् ।

या बभ्रवो याश्च शुक्रा रोहिणीरुत पृश्नयः ।
असिक्नीः कृष्णा ओषधीः सर्वा अच्छावदामसि　　१
त्रायन्तामिमं पुरुषं यक्ष्माद् देवेषितादधि ।
यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव　　२　　३२५
आपो अग्रं दिव्या ओषधयः । तास्ते यक्ष्ममेनस्य१मङ्गादङ्गादनीनशन्　　३
प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशुङ्गाः प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि ।
अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखा ह्वयामि ते वीरुधो वैश्वदेवीरुग्राः पुरुषजीवनीः　　४
यद् वः सहः सहमाना वीर्यं१ यच्च वो बलम् ।
तेनेममस्माद् यक्ष्मात् पुरुषं मुञ्चतौषधीरथो कृणोमि भेषजम्　　५
जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
अरुन्धतीमुन्नयन्तीं पुष्पां मधुमतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये　　६
इहा यन्तु प्रचेतसो मेदिनीर्वचसो मम । यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि　　७　　३३०
अग्नेर्घासो अपां गर्भो या रोहन्ति पुनर्णवाः ।
ध्रुवाः सहस्रनाम्नीर्भेषजीः सन्त्वाभृताः　　८
अवकोल्बा उदकात्मान ओषधयः । व्यृषन्तु दुरितं तीक्ष्णशृङ्ग्यः　　९
उन्मुञ्चन्तीर्विवरुणा उग्रा या विषदूषणीः ।
अथो बलासनाशनीः कृत्यादूषणीश्च यास्ता इहा यन्त्वोषधीः　　१०
अपक्रीताः सहीयसीर्वीरुधो या अभिष्टुताः । त्रायन्तामस्मिन् ग्रामे गामश्वं पुरुषं पशुम्　　११
मधुमन्मूलं मधुमदग्रमासां मधुमन्मध्यं वीरुधां बभूव ।
मधुमत् पर्णं मधुमत् पुष्पमासां मधोः संभक्ता अमृतस्य भक्षो घृतमन्नं दुह्रतां गोपुरोगवम्　　१२　　३३५
यावतीः कियतीश्चेमाः पृथिव्यामध्योषधीः । ता मा सहस्रपर्ण्यो१ मृत्योर्मुञ्चन्त्वंहसः　　१३
वैयाघ्रो मणिर्वीरुधां त्रायमाणोऽभिशस्तिपाः । अमीवाः सर्वा रक्षांस्यप हन्त्वधि दूरमस्मत्　　१४
सिंहस्येव स्तनथोः सं विजन्तेऽग्नेरिव विजन्त आभृताभ्यः ।
गवां यक्ष्मः पुरुषाणां वीरुद्भिरतिनुत्तो नाव्या१ एतु स्रोत्याः　　१५　　३३८

मुमुचाना ओषधयोऽग्नेर्वैश्वानरादधि । भूमिं संतन्वतीरित यासां राजा वनस्पतिः　१६
या रोहन्त्याङ्गिरसीः पर्वतेषु समेषु च । ता नः पयस्वतीः शिवा ओषधीः सन्तु शं हृदे १७　३४०
याश्चाहं वेद वीरुधो याश्च पश्यामि चक्षुषा । अज्ञाता जानीमश्च या यासु विद्म च संभृतम् १८
सर्वाः समग्रा ओषधीर्बोधन्तु वचसो मम । यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि　१९
अश्वत्थो दर्भो वीरुधां सोमो राजामृतं हविः । व्रीहिर्यवश्च भेषजौ दिवस्पुत्रावमर्त्यौ　२०
उज्जिहीध्वे स्तनयत्यभिक्रन्दत्योषधीः । यदा वः पृश्निमातरः पर्जन्यो रेतसावति　२१
तस्यामृतस्येमं बलं पुरुषं पाययामसि । अथो कृणोमि भेषजं यथासच्छतहायनः　२२　३४५
वराहो वेद वीरुधं नकुलो वेद भेषजीम् । सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे २३
याः सुपर्णा आङ्गिरसीर्दिव्या या रघटो विदुः । वयांसि हंसा या विदुर्याश्च सर्वे पतत्रिणः ।
मृगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुवे　२४
यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्न्या यावतीनामजावयः ।
तावतीस्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छन्त्वाभृताः　२५
यावतीषु मनुष्या भेषजं भिषजो विदुः । तावतीर्विश्वभेषजीरा भरामि त्वामभि　२६
पुष्पवतीः प्रसूमतीः फलिनीरफला उत । संमातर इव दुह्रामस्मा अरिष्टतातये　२७　३५०
उत त्वाहार्षं पञ्चशलादथो दशशलादुत । अथो यमस्य पड्बीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् २८

॥ ४२ ॥ (अथर्व० ६।९६।१-३)

भृग्वङ्गिराः । वनस्पतिः (चिकित्सा), ३ सोमः । अनुष्टुप् , ३ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री ।

या ओषधयः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः । बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः १
मुञ्चन्तु मा शपथ्याद्दथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्बीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात्　२
यच्चक्षुषा मनसा यच्च वाचोपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः ।
सोमस्तानि स्वधया नः पुनातु　३

॥ ४३ ॥ (वा० य० ४।१; ५।४२; ६।१५)
(ओषधयः ।)

ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः　१　३५५

॥ ४४ ॥ (वा० य० ११।४७-४८)
(ओषधयः ।)

ओषधयः प्रतिमोदध्वमग्निमेतꣳ शिवमायन्तमभ्यत्र युष्माः　४७　३५६

ओषधयः प्रतिगृभ्णीत पुष्पवतीः सुपिप्पलाः ।
अयं वो गर्भ ऽ ऋत्वियः प्रत्न१ सधस्थमासदत् ४८

॥ ४५ ॥ (वा० य० १२।७९; ३५।४)
(ओषधिः ।)

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज ऽ इत्किलासथ यत् सनवथ पूरुषम् ७९

॥ ४६ ॥ (वा० य० १८।३२-३४)
(अन्नम् ।)

वाजो नः सप्त प्रदिशश्चतस्रो वा परावतः ।
वाजो नो विश्वैर्देवैर्धनसाताविहावतु ३२
वाजो नो ऽ अद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँ२ऽ ऋतुभिः कल्पयाति ।
वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा ऽ आशा वाजपतिर्जयेयम् ३३ ३६०
वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान् हविषा वर्धयाति ।
वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वा ऽ आशा वाजपतिर्भवेयम् ३४

॥ ४७ ॥ (ऋ० १।९०।६)
गोतमो राहूगणः। विश्वे देवाः (वातसिन्ध्वोषधयः)। गायत्री।

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ६

॥ ४८ ॥ (ऋ० ३।५७।३)
गाथिनो विश्वामित्रः। विश्वे देवाः (ओषधयः सूर्यमरीचयो वा)। त्रिष्टुप्।

या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्तिं नमस्यन्तीर्जानते गर्भमस्मिन् ।
अच्छा पुत्रं धेनवो वावशाना महश्चरन्ति बिभ्रतं वपूंषि ३

॥ ४९ ॥ (अथर्व० ३।१८।१-६)
अथर्वा। वनस्पतिः। अनुष्टुप्, ४ अनुष्टुब्गर्भा चतुष्पदा उष्णिक्, ६ उष्णिग्गर्भा पथ्यापङ्क्तिः।

इमां खनाम्योषधिं वीरुधां बलवत्तमाम् । यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् १
उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति । सपत्नीं मे परा णुद पतिं मे केवलं कृधि २ ३६५
नहि ते नाम जग्राह नो अस्मिन् रमसे पतौ । परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ३
उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः । अधः सपत्नी या ममाधरा साधराभ्यः ४
अहमस्मि सहमानाथो त्वमसि सासहिः । उभे सहस्वती भूत्वा सपत्नीं मे सहावहै ५ ३६८

अभि तेऽधां सहमानामुप तेऽधां सहीयसीम्।
मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ६

॥ ५० ॥ (वा० य० ५।४२-४३)
(वनस्पतिः।)

अत्यन्याँ२ऽ अगां नान्याँ२ऽ उपागामर्वाक् त्वा परेभ्योऽविदं परोऽवरेभ्यः।
तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा।
ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः ४२ १७०
द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिꣳसीः पृथिव्या सम्भव।
अयꣳ हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय।
अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा वि वयꣳ रुहेम ४३

॥ ५१ ॥ (वा० य० २०।४५)
(वनस्पतिः।)

वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्मन्या समञ्जञ्छमिता न देवः।
इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन ४५

॥ ५२ ॥ (वा० य० २१।२१)
(वनस्पतिः।)

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम्।
ककुप् छन्द ऽ इहेन्द्रियं वशा वेहद् वयो दधुः २१

॥ ५३ ॥ (वा० य० २७।२१)
(वनस्पतिः।)

वनस्पतेऽव सृजा रराणस्त्मना देवेषु। अग्निर्हव्यꣳ शमिता सूदयाति २१

॥ ५४ ॥ (वा० य० २८।१०, ३३,४३)
(वनस्पतिः।)

होता यक्षद् वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम्।
मध्वा समञ्जन् पथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज १० १७१
होता यक्षद् वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुꣳ हिरण्यपर्णमुक्थिनꣳ रशनां बिभ्रतं
वशिं भगमिन्द्रं वयोधसम्।
ककुभं छन्द ऽ इहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज ३३ १७२

देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत् ।
द्विपदा छन्दसेन्द्रियं भगमिन्द्रे वयो दधद् वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ४३

॥ ५५ ॥ (वा० २९।१०,३५)
(वनस्पतिः ।)

अश्वो घृतेन त्मन्या समक्त ऽ उप देवाँ२ ऽऋतुशः पाथ ऽ एतु ।
वनस्पतिर्देवलोकं प्रजानन्नग्निना हव्या स्वदितानि वक्षत् १०
उपावसृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऽ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो ऽ अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ३५

॥ ५६ ॥ (अथर्व० ४।१७।१-८)
शुक्रः । अपामार्गो वनस्पतिः । अनुष्टुप् ।

ईशानां त्वा भेषजानामुज्जेष आ रभामहे । चक्रे सहस्रवीर्यं सर्वस्मा ओषधे त्वा १ ३८०
सत्यजितं शपथयावनीं सहमानां पुनःसराम् ।
सर्वाः समह्वयोषधीरितो नः पारयादिति २
या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे । या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ३
यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि ४
दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः ।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ५
क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम् । अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ६ ३८५
तृष्णामारं क्षुधामारमथो अक्षपराजयम् । अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ७
अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद् वशी । तेन ते मृज्म आस्थितमथ त्वमगदश्चर ८

॥ ५७ ॥ (अथर्व० ४।१८।१-८)
शुक्रः । अपामार्गो वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ६ बृहतीगर्भा ।

समं ज्योतिः सूर्येणाह्ना रात्री समावती ।
कृणोमि सत्यमूतयेऽरसाः सन्तु कृत्वरीः १
यो देवाः कृत्यां कृत्वा हरादविदुषो गृहम् ।
वत्सो धारुरिव मातरं तं प्रत्यगुप पद्यताम् २ ३८९

अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तेनान्यं जिघांसति ।
अश्मानस्तस्यां दग्धायां बहुलाः फट् करिक्रति ३ ३९०
सहस्रधामन् विशिखान् विग्रीवां छायया त्वम् ।
प्रति स्म चक्रुषे कृत्यां प्रियां प्रियावते हर ४
अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् ।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ५
यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् । चकार भद्रमस्मभ्यमात्मने तपनं तु सः ६
अपामार्गोऽप मार्ष्टु क्षेत्रियं शपथश्च यः । अपाह यातुधानीरप सर्वा अराय्यः ७
अपमृज्य यातुधानानप सर्वा अराय्यः । अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ८ ३९१

॥ ५८ ॥ (अथर्व० ४।१९।१-८)

शुक्रः । अपामार्गो वनस्पतिः । अनुष्टुप्, १ पथ्यापङ्क्तिः ।

उतो अस्यबन्धुकृदुतो असि नु जामिकृत् ।
उतो कृत्याकृतः प्रजां नडमिवा छिन्धि वार्षिकम् १
ब्राह्मणेन पर्युक्तासि कण्वेन नार्षदेन ।
सेनेवैषि त्विषीमती न तत्र भयमस्ति यत्र प्राप्नोष्योषधे २
अग्रमेष्योषधीनां ज्योतिषेवाभिदीपयन् । उत त्रातासि पाकस्याथो हन्तासि रक्षसः ३
यददो देवा असुरांस्त्वयाग्रे निरकुर्वत । ततस्त्वमध्योषधेऽपामार्गो अजायथाः ४
विभिन्दती शतशाखा विभिन्दन् नाम ते पिता ।
प्रत्यग् वि भिन्धि त्वं तं यो अस्माँ अभिदासति ५ ४००
असद् भूम्याः समभवत् तद् यामेति महद् व्यचः ।
तद् वै ततो विधूपायत् प्रत्यक् कर्तारमृच्छतु ६
प्रत्यङ् हि संबभूविथ प्रतीचीनफलस्त्वम् । सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया वधम् ७
शतेन मा परि पाहि सहस्रेणाभि रक्ष मा । इन्द्रस्ते वीरुधां पत उग्र ओज्मानमा दधत् ८

॥ ५९ ॥ (अथर्व० ७।६५।१-३)

शुक्रः । अपामार्गवीरुत् (दुरितनाशनम्) । अनुष्टुप् ।

प्रतीचीनफलो हि त्वमपामार्ग रुरोहिथ । सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया इतः १
यद् दुष्कृतं यच्छमलं यद् वा चेरिम पापया । त्वया तद् विश्वतोमुखापामार्गाप मृज्महे २ ४०५
श्यावदता कुनखिना बण्डेन यत् सहासिम । अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ३ ४०६

॥ ६० ॥ (अथर्व० ६।५९।१-३)
अथर्वा । रुद्रः, अरुन्धती औषधिः । अनुष्टुप् ।

अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वमरुन्धति । अधेनवे वयसे शर्म यच्छ चतुष्पदे १
शर्म यच्छत्वोषधिः सह देवीररुन्धती । करत् पयस्वन्तं गोष्ठमयक्ष्माँ उत पूरुषान् २
विश्वरूपां सुभगामच्छावदामि जीवलाम् । सा नो रुद्रस्यास्तां हेतिं दूरं नयतु गोभ्यः ३

॥ ६१ ॥ (अथर्व० ६।९५।१-३)
भृग्वङ्गिराः । वनस्पतिः (कुष्ठौषधिः) । अनुष्टुप् ।

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि । तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत १ ४१०
हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि । तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत २
गर्भो अस्योषधीनां गर्भो हिमवतामुत । गर्भो विश्वस्य भूतस्येमं मे अगदं कृधि ३

॥ ६२ ॥ (अथर्व० ६।१०९।१-३)
अथर्वा । पिप्पली-भैषज्यं, आयुः । अनुष्टुप् ।

पिप्पली क्षिप्तभेषज्यू३तातिविद्धभेषजी । तां देवाः समकल्पयन्नियं जीवितवा अलम् १
पिप्पल्य१ः समवदन्तायतीर्जननादधि । यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः २
असुरास्त्वा न्यखनन् देवास्त्वोदवपन् पुनः । वातीकृतस्य भेषजीमथो क्षिप्तस्य भेषजीम् ३ ४१५

॥ ६३ ॥ (अथर्व० २।२५।१-५)
चातनः । पृश्निपर्णी वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ४ भुरिक् ।

शं नो देवी पृश्निपर्ण्यशं निर्ऋत्या अकः ।
उग्रा हि कण्वजम्भनी तामभक्षि सहस्वतीम् १
सहमानेयं प्रथमा पृश्निपर्ण्यजायत । तयाहं दुर्णाम्नां शिरो वृश्चामि शकुनेरिव २
अरायमसृक्पावानं यश्च स्फातिं जिहीर्षति ।
गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च ३
गिरिमेनाँ आ वेशय कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तांस्त्वं देवि पृश्निपर्ण्यग्निरिवानुदहन्निहि ४
पराच एनान् प्र णुद कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तमांसि यत्र गच्छन्ति तत् क्रव्यादो अजीगमम् ५ ४२०

॥ ६४ ॥ (अथर्व० ४।१२।१-७)
ऋभुः । रोहणी वनस्पतिः । अनुष्टुप्, १ त्रिपदा गायत्री, त्रिपदा यवमध्या भुरिग्गायत्री, ७ बृहती ।

रोहण्यसि रोहण्यस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी । रोहयेदमरुन्धति १ ४२१

यत् ते रिष्टं यत् ते द्युत्तमस्ति पेष्ट्रं त आत्मनि ।
धाता तद् भद्रया पुनः सं दधत् परुषा परुः २
सं ते मज्जा मज्ज्ञा भवतु समु ते परुषा परुः ।
सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्थ्यपि रोहतु ३
मज्जा मज्ज्ञा सं धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु ।
असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ४
लोम लोम्ना सं कल्पया त्वचा सं कल्पया त्वचम् ।
असृक् ते अस्थि रोहतु च्छिन्नं सं धेह्योषधे ५ ४१५
स उत् तिष्ठ प्रेहि प्र द्रव रथः सुचक्रः सुपविः सुनाभिः । प्रति तिष्ठोर्ध्वः ६
यदि कर्तं पतित्वा संशश्रे यदि वाश्मा प्रहृतो जघान ।
ऋभू रथस्येवाङ्गानि सं दधत् परुषा परुः ७

॥ ६५ ॥ (अथर्व० ५।५।१-९)
अथर्वा । लाक्षा । अनुष्टुप् ।

रात्री माता नभः पितार्यमा ते पितामहः ।
सिलाची नाम वा असि सा देवानामसि स्वसा १
यस्त्वा पिबति जीवति त्रायसे पुरुषं त्वम् ।
भर्त्री हि शश्वतामसि जनानां च न्यञ्चनी २
वृक्षंवृक्षमा रोहसि वृषण्यन्तीव कन्यला । जयन्ती प्रत्यातिष्ठन्ती स्परणी नाम वा असि ३ ४२०
यद् दण्डेन यदिष्वा यद् वारुर्हरसा कृतम् ।
तस्य त्वमसि निष्कृतिः सेमं निष्कृधि पूरुषम् ४
भद्रात् प्लक्षान्निस्तिष्ठस्यश्वत्थात् खदिराद्धवात् ।
भद्रान्न्यग्रोधात् पर्णात् सा न एह्यरुन्धति ५
हिरण्यवर्णे सुभगे सूर्यवर्णे वपुष्टमे । रुतं गच्छासि निष्कृते निष्कृतिर्नाम वा असि ६
हिरण्यवर्णे सुभगे शुष्मे लोमशवक्षणे । अपामसि स्वसा लाक्षे वातो हात्मा बभूव ते ७
सिलाची नाम कानीनोऽजबभ्रु पिता तव ।
अश्वो यमस्य यः श्यावस्तस्य हास्नास्युक्षिता ८ ४२५
अश्वस्यास्नः संपतिता सा वृक्षाँ अभि सिष्यदे ।
सरा पतत्रिणी भूत्वा सा न एह्यरुन्धति ९ ४२६

॥ ६६ ॥ (अथर्व० ५।४।१-१०)

भृग्वङ्गिराः । कुष्ठो, यक्ष्मनाशनम् (कुष्ठतक्मनाशनम्) ।अनुष्टुप्, ५ भुरिक्, ६ गायत्री, १० उष्णिग्गर्भा निचृत् ।

यो गिरिष्वजायथा वीरुधां बलवत्तमः । कुष्ठेहि तक्मनाशन तक्मानं नाशयन्नितः १
सुपर्णसुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि । धनैरभि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तक्मनाशनम् २
अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि । तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ३
हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि । तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ४ ४४०
हिरण्ययाः पन्थान आसन्नरित्राणि हिरण्यया ।
नावो हिरण्ययीरासन् याभिः कुष्ठं निरावहन् ५
इमं मे कुष्ठ पूरुषं तमा वह तं निष्कुरु । तमु मे अगदं कृधि ६
देवेभ्यो अधि जातोऽसि सोमस्यासि सखा हितः ।
स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मै मृड ७
उदङ् जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयसे जनम् ।
तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि वि भेजिरे ८
उत्तमो नाम कुष्ठास्युत्तमो नाम ते पिता ।
यक्ष्मं च सर्वं नाशय तक्मानं चारसं कृधि ९ ४४५
शीर्षामयमुपहत्यामक्ष्योस्तन्वो३ रपः । कुष्ठस्तत् सर्वं निष्करद् दैवं समह वृष्ण्यम् १०

॥ ६७ ॥ (अथर्व० १९।३९।१-१०)

भृग्वङ्गिराः । कुष्ठः (कुष्ठनाशनम्) । अनुष्टुप्; १,३ त्र्यवसाना पथ्यापङ्क्तिः; ४ षट्पदा जगती; ५ सप्तपदा शक्वरी, ६-८ अष्टिः (५-८ चतुरवसाना) ।

ऐतु देवस्त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि । तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः १
त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यारिषः । नद्यायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा २
जीवला नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता । नद्यायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ३
उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव । नद्यायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ४ ४५०

त्रिः शाम्बुभ्यो अङ्गिरेभ्यस्त्रिरादित्येभ्यस्परि । त्रिर्जातो विश्वदेवेभ्य ः।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ५
अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि । तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ६
हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि । तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ७
यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः । तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ८
यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं वा त्वा कुष्ठ काम्यः
यं वा वसो यमात्स्यस्तेनासि विश्वभेषजः ९ ४५९
शीर्षलोकं तृतीयकं सदन्दिर्यश्च हायनः । तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुव १०

॥ ६८ ॥ (अथर्व० ६।२१।१-३)

शन्तातिः । चन्द्रमाः (केशवर्धनी औषधिः) । अनुष्टुप् ।

इमा यास्तिस्रः पृथिवीस्तासां ह भूमिरुत्तमा ।
तासामधि त्वचो अहं भेषजं समु जग्रभम् १
श्रेष्ठमसि भेषजानां वसिष्ठं वीरुधानाम् । सोमो भग इव यामेषु देवेषु वरुणो यथा २
रेवतीरनाधृषः सिषासवः सिषासथ । उत स्थ केशदृंहणीरथो ह केशवर्धनीः ३

॥ ६९ ॥ (अथर्व० ६।१३६।१-३)

वीतहव्यः । नितत्नी वनस्पतिः (केशदृंहणम्) । अनुष्टुप्, २ एकावसाना त्रिपदा साम्नी बृहती ।

देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योषधे ।
तां त्वा नितत्नि केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि १ ४६०
दृंह प्रत्नान् जनयाजातान् जातानु वर्षीयसस्कृधि २
यस्ते केशोऽवपद्यते समूलो यश्च वृश्चते । इदं तं विश्वभेषज्याभि षिञ्चामि वीरुधा ३ ४६१

॥ ७० ॥ (अथर्व० ६।१३७।१-३)

वीतहव्यः । वनस्पतिः (केशवर्धनम्) । अनुष्टुप् ।

यां जमदग्निरखनद् दुहित्रे केशवर्धनीम् । तां वीतहव्य आभरदसितस्य गृहेभ्यः १
अभीशुना मेया आसन् व्यामेनानुमेयाः । केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि २
दृंह मूलमाग्रं यच्छ वि मध्यं यामयौषधे । केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि ३ ४६५

॥ ७१ ॥ (अथर्व० ६।१६।१-४)

शौनकः । चन्द्रमाः, मन्त्रोक्तदेवताः (अक्षिरोगभैषजम्) । अनुष्टुप्, १ निचृत्त्रिपदा गायत्री; ३ बृहतीगर्भा ककुम्मत्यनुष्टुप्, ४ त्रिपदा प्रतिष्ठा ।

आबयो अनाबयो रसस्त उग्र आबयो । आ ते करम्भमद्मसि १
विहल्हो नाम ते पिता मदावती नाम ते माता । स हिन त्वमसि यस्त्वमात्मानमावयः २
तौविलिकेऽवेलयावायमैलब ऐलयीत् । बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्चापेहि निराल ३
अलसालासि पूर्वा सिलाञ्जालास्युत्तरा । नीलागलसाला ४

॥ ७२ ॥ (अथर्व० ६।३०।१-३)

उपरिबभ्रवः । शमी (पापशमनम्) । जगती, २ त्रिष्टुप्, ३ चतुष्पाच्छंकुमत्यनुष्टुप् ।

देवा इमं मधुना संयुतं यवं सरस्वत्यामधि मणावचर्कृषुः ।
इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः १ ४७०
यस्ते मदोऽवकेशो विकेशो येनाभिहस्यं पुरुषं कृणोषि ।
आरात् त्वदन्या वनानि वृक्षि त्वं शमि शतवल्शा वि रोह २
बृहत्पलाशे सुभगे वर्षवृद्ध ऋतावरि । मातेव पुत्रेभ्यो मृड केशेभ्यः शमि ३

॥ ७३ ॥ (ऋ० १।९०।८)

गोतमो राहूगणः विश्वे देवाः (वनस्पतिसूर्यगावः) । गायत्री ।

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ८

॥ ७४ ॥ (ऋ० १०।८५।२-४)

सावित्री सूर्या ऋषिका । सोमः । अनुष्टुप् ।

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः २
सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिंषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ३

*

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ४

॥ ७५ ॥ (ऋ० १।९१।६)
गोतमो राहूगणः । सोमवनस्पतिः । गायत्री ।

त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे । प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ६

॥ ७६ ॥ (अथर्व० १।३४।१-५)
अथर्वा । मधुवनस्पतिः (मधुविद्या) । अनुष्टुप् ।

इयं वीरुन्मधुजाता मधुना त्वा खनामसि ।
मधोरधि प्रजातासि सा नो मधुमतस्कृधि १
जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् ।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि २
मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः ३ ४८०
मधोरस्मि मधुतरो मदुघान्मधुमत्तरः ।
मामित् किल त्वं वनाः शाखां मधुमतीमिव ४
परि त्वा परितत्नुनेक्षुणागामविद्विषे । यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ५ ४८१

रोगचिकित्सा । (४८२-६८०)

॥ ७७ ॥ (अथर्व० ६।१४।१-३)
बभ्रुपिङ्गलः । बलासः (बलासनाशनम्) । अनुष्टुप् ।

अस्थिस्रंसं परुस्रंसमास्थितं हृदयामयम् । बलासं सर्वं नाशयाङ्गेष्ठा यश्च पर्वसु १
निर्बलासं बलासिनः क्षिणोमि मुष्करं यथा । छिनद्म्यस्य बन्धनं मूलमुर्वार्वा इव २
निर्बलासेतः प्र पताशुङ्गः शिशुको यथा । अथो इट इव हायनोऽप द्राह्यवीरहा ३ ४८५

॥ ७८ ॥ (अथर्व० ६।१०५।१-३)
उन्मोचनः । कासा (कासशमनम्) । अनुष्टुप् ।

यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत् । एवा त्वं कासे प्र पत मनसोऽनु प्रवाय्यम् १
यथा बाणः सुसंशितः परापतत्याशुमत् । एवा त्वं कासे प्र पत पृथिव्या अनु संवतम् २
यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत् । एवा त्वं कासे प्र पत समुद्रस्यानु विक्षरम् ३ ४८८

॥ ७९ ॥ (अथर्व० १।२२।१-४)

ब्रह्मा । सूर्यो, हरिमा हृद्रोगश्च (हृद्रोग-कामिला-नाशनम्) । अनुष्टुप् ।

अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते ।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि १
परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि । यथायमरपा असदथो अहरितो भुवत् २ ४९०
या रोहिणीर्देवत्याङ्गावो या उत रोहिणीः ।
रूपंरूपं वयोवयस्ताभिष्ट्वा परि दध्मसि ३
शुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि । अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि ४

॥ ८० ॥ (अथर्व० २।८।१-५)

भृग्वङ्गिराः । वनस्पतिः, यक्ष्मनाशनम् (क्षेत्रियरोगनाशनम्) । अनुष्टुप्, ३ पथ्यापङ्क्तिः, ४ विराट्, ५ निचृत्पथ्यापङ्क्तिः ।

उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके । वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् १
अपेयं रात्र्युच्छत्वपोच्छन्त्वभिकृत्वरीः । वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु २
बभ्रोरर्जुनकाण्डस्य यवस्य ते पलाल्या तिलस्य तिलपिञ्ज्या ।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ३ ४९५
नमस्ते लाङ्गलेभ्यो नम ईषायुगेभ्यः । वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ४
नमः सनिस्रसाक्षेभ्यो नमः संदेश्येभ्यः ।
नमः क्षेत्रस्य पतये वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ५

॥ ८१ ॥ (अथर्व० ६।१३८।१-५)

अथर्वा । वनस्पतिः (क्लीबत्वम्) । अनुष्टुप् , ३ पथ्यापङ्क्तिः ।

त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमाभिश्रुतास्योषधे । इमं मे अद्य पूरुषं क्लीबमोपशिनं कृधि १
क्लीबं कृध्योपशिनमथो कुरीरिणं कृधि । अथास्येन्द्रो ग्रावभ्यामुभे भिनत्त्वाण्ड्यौ २
क्लीब क्लीबं त्वाकरं वध्रे वध्रिं त्वाकरमरसारसं त्वाकरम् ।
कुरीरमस्य शीर्षणि कुम्बं चाधिनिदध्मसि ३ ५००
ये ते नाड्यौ देवकृते ययोस्तिष्ठति वृष्ण्यम् । ते ते भिनद्मि शम्ययामुष्या अधि मुष्कयोः ४
यथा नडं कशिपुने स्त्रियो भिन्दन्त्यश्मना । एवा भिनद्मि ते शेपोऽमुष्या अधि मुष्कयोः ५

॥ ८२ ॥ (अथर्व० ७।७४।१-४)

अथर्वाङ्गिराः । मन्त्रोक्ताः, ४ जातवेदाः (गण्डमालाचिकित्सा) । अनुष्टुप् ।

अपचितां लोहिनीनां कृष्णा मातेति शुश्रुम । मुनेर्देवस्य मूलेन सर्वा विध्यामि ता अहम् १ ५०३

विध्या॑म्यासां प्र॒थ॒मां विध्या॑म्यु॒त म॑ध्य॒माम् । इ॒दं ज॑घ॒न्या॑मासा॒मा च्छि॑नाद्मि॒ स्तुका॑मिव २
त्वा॒ष्ट्रेणा॒हं वच॑सा॒ वि त॑ ई॒र्ष्याम॑मीमदम् । अथो॒ यो म॒न्युष्टे॑ प॒ते तमु॑ ते शमयामसि ३ ५०५
व्र॒तेन॒ त्वं व्र॑तपते॒ सम॑क्तो वि॒श्वाहा॑ सु॒मना॑ दीदिही॒ह ।
तं त्वा॑ व॒यं जा॑तवेदः॒ समि॑द्धं प्र॒जाव॑न्त॒ उप॑ सदेम॒ सर्वे॑ ४

॥ ८३ ॥ (अथर्व० ७।७६।१-६)

अथर्वा । १,२ अपचिद्भैषज्यं, ३-६ जायान्यः, इन्द्रः, (गण्डमालाचिकित्सा) । अनुष्टुप् , १ विराट्, २ परोष्णिक्, ४ त्रिष्टुप्, ५ भुरिगनुष्टुप् ।

आ सु॒स्रसः॑ सु॒स्रसो॒ अस॑तीभ्यो॒ अस॑त्तराः । सेहो॑ररसत॑रा लव॒णाद् वि॒क्लेदी॑यसीः १
या ग्रैव्या॑ अप॒चितो॒ऽथो॒ या उ॑पप॒क्ष्याः॑ । वि॒जाम्नि॒ या अ॑प॒चितः॑ स्वयं॒स्रसः॑ २
यः कीक॑साः प्रशृ॒णाति॑ तली॒द्य॑मव॒तिष्ठ॑ति । नि॒र्हास्तं॒ सर्वं॑ जा॒यान्यं॒ यः कश्च॑ क॒कुदि॒ श्रि॒तः ३
प॒क्षी जा॒यान्यः॑ पतति॒ स आ वि॑शति॒ पूरु॑षम् । तदक्षि॑तस्य भेष॒जमु॒भयोः॒ सुक्ष॑तस्य च ४ ५१०
वि॒द्म वै ते॑ जायान्य॒ जानं॒ यतो॑ जायान्य॒ जाय॑से । क॒थं ह॒ तत्र॒ त्वं ह॑नो॒ यस्य॑ कृ॒ण्मो ह॒विर्गृ॒हे ५
धृ॒षत् पि॑ब क॒लशे॒ सोम॑मिन्द्र वृत्र॒हा शू॑र सम॒रे वसू॑नाम् ।
माध्य॑न्दिने॒ सव॑न॒ आ वृ॑षस्व रयि॒ष्ठानो॑ र॒यिम॒स्मासु॑ धेहि ६

॥ ८४ ॥ (अथर्व० ६।८३।१-४)

भगः । १ सूर्यः चन्द्रमाः, २ रोहिणी, ३ रामायणी (भैषज्यम्) । अनुष्टुप्, ४ एकावसाना द्विपदा निचृदार्च्यनुष्टुप् ।

अप॑चितः॒ प्र प॑तत सुप॒र्णो व॑स॒तेरि॑व । सूर्यः॑ कृ॒णोतु॑ भेष॒जं च॒न्द्रमा॒ वोऽपो॑च्छतु १
एन्ये॑का॒ श्येन्ये॑का॒ कृष्णै॑का॒ रोहि॑णी॒ द्वे । सर्वा॑सामग्र॒भं नामावी॑रघ्नी॒रपे॑तन २
अ॒सू॒तिका॑ रामाय॒ण्य॑प॒चित् प्र प॑तिष्यति ।
ग्लौरि॒तः प्र प॑तिष्यति॒ स ग॑लु॒न्तो न॑शिष्यति ३ ५१५
वी॒हि स्वामाहु॑तिं जु॒षा॒णो मन॑सा॒ स्वाहा॒ मन॑सा॒ यदि॒दं जु॒होमि॑ ४

॥ ८५ ॥ (अथर्व० १।२३।१-४)

अथर्वा । वनस्पतिः [असिक्निः] (श्वेतकुष्ठनाशनम्) । अनुष्टुप् ।

न॒क्तं॒जा॒तास्यो॑षधे॒ रामे॒ कृष्णे॒ असि॑क्नि च ।
इ॒दं र॑जनि रजय कि॒लासं॑ पलि॒तं च॒ यत् १
कि॒लासं॑ च पलि॒तं च॒ निरि॒तो ना॑शया॒ पृष॑त् ।
आ त्वा॒ स्वो वि॑शतां॒ वर्णः॒ परा॑ शु॒क्लानि॑ पातय २
असि॑तं ते प्र॒लय॑नमा॒स्थान॒मसि॑तं॒ तव॑ । असि॑क्न्यस्योषधे॒ निरि॒तो ना॑शया॒ पृष॑त् ३ ५१९

अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत् त्वचि ।
दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम् ४ ५२०

॥ ८६ ॥ (अथर्व० १।२४।१-४)

ब्रह्मा । आसुरी वनस्पतिः (श्वेतकुष्ठनाशनम्) । अनुष्टुप्, २ निचृत्पथ्यापङ्क्तिः ।

सुपर्णो जातः प्रथमस्तस्य त्वं पित्तमासिथ ।
तदासुरी युधा जिता रूपं चक्रे वनस्पतीन् १
आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासभेषजमिदं किलासनाशनम् ।
अनीनशत् किलासं सरूपामकरत् त्वचम् २
सरूपा नाम ते माता सरूपो नाम ते पिता ।
सरूपकृत् त्वमोषधे सा सरूपमिदं कृधि ३
श्यामा सरूपंकरणी पृथिव्या अध्युद्भृता । इदमू षु प्र साधय पुना रूपाणि कल्पय ४

॥ ८७ ॥ (अथर्व० १।२५।१-४)

भृग्वङ्गिराः । यक्ष्मनाशनोऽग्निः (तक्म-नाशनम्) । त्रिष्टुप् , २-३ विराड्गर्भा, ४ पुरोऽनुष्टुप् ।

यदग्निरापो अदहत् प्रविश्य यत्राकृण्वन् धर्मधृतो नमांसि ।
तत्र त आहुः परमं जनित्रं स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् १ ५२१
यद्यर्चिर्यदि वासि शोचिः शकल्येषि यदि वा ते जनित्रम् ।
ह्रूडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् २
यदि शोको यदि वाभिशोको यदि वा राज्ञो वरुणस्यासि पुत्रः ।
ह्रूडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् ३
नमः शीताय तक्मने नमो रूराय शोचिषे कृणोमि ।
यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येति तृतीयकाय नमो अस्तु तक्मने ४

॥ ८८ ॥ (अथर्व० ७।११६।१-२)

अथर्वाङ्गिराः । चन्द्रमाः (ज्वर-नाशनम्) । १ पुरोष्णिक्, २ एकावसाना द्विपदा आर्च्यनुष्टुप् ।

नमो रूराय च्यवनाय नोदनाय धृष्णवे । नमः शीताय पूर्वकामकृत्वने १
यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येतीमं मण्डूकमभ्येत्वव्रतः २ ५३०

॥ ८९ ॥ (अथर्व० ५।२२।१-१४)

भृग्वङ्गिराः । तक्मनाशनः । अनुष्टुप्, १ भुरिक् त्रिष्टुप्, २ त्रिष्टुप्, ५ विराट् पथ्याबृहती ।

अग्निस्तक्मानमप बाधतामितः सोमो ग्रावा वरुणः पूतदक्षाः ।
वेदिर्बर्हिः समिधः शोशुचाना अप द्वेषांस्यमुया भवन्तु १ ५३१

अयं यो विश्वान् हरितान् कृणोष्युच्छोचयन्नग्निरिवाभिदुन्वन्।
अधा हि तक्मन्नरसो हि भूया अधा न्यङ्ङधराङ् वा परेहि २
यः परुषः पारुषेयोऽवध्वंस इवारुणः। तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुव ३
अधराञ्चं प्र हिणोमि नमः कृत्वा तक्मने। शकम्भरस्य मुष्टिहा पुनरेतु महावृषान् ४
ओको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषाः।
यावज्जातस्तक्मंस्तावानसि बल्हिकेषु न्योचरः ५ ५३५
तक्मन् व्याल वि गद व्यङ्ग भूरि यावय।
दासीं निष्टक्वरीमिच्छ तां वज्रेण समर्पय ६
तक्मन् मूजवतो गच्छ बल्हिकान् वा परस्तराम्।
शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं तां तक्मन् वीव धूनुहि ७
महावृषान् मूजवतो बन्ध्वद्धि परेत्य। प्रैतानि तक्मने ब्रूमो अन्यक्षेत्राणि वा इमा ८
अन्यक्षेत्रे न रमसे वशी सन्मृडयासि नः।
अभूदु प्रार्थस्तक्मा स गमिष्यति बल्हिकान् ९
यत् त्वं शीतोऽथो रूरः सह कासावेपयः।
भीमास्ते तक्मन् हेतयस्ताभिः स्म परि वृङ्ग्धि नः १० ५४०
मा स्मैतान्त्सखीन् कुरुथा बलासं कासमुद्युगम्।
मा स्मातोऽर्वाङैः पुनस्तत् त्वा तक्मन्नुप ब्रुवे ११
तक्मन् भ्रात्रा बलासेन स्वस्रा कासिकया सह।
पाप्मा भ्रातृव्येण सह गच्छामुमरणं जनम् १२
तृतीयकं वितृतीयं सदन्दिमुत शारदम्।
तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम् १३
गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः।
प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परि दद्मसि १४

॥ ९० ॥ (ऋ० १।५०।११-१३)

प्रस्कण्वः काण्वः। सूर्यः (रोगघ्न्य उपनिषदः, १३ अन्त्योऽर्धर्चः द्विषद्घ्नश्च)। अनुष्टुप्।

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्। हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ११ ५४५
शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि। अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि १२
उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह। द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं द्विषते रधम् १३ ५४७

॥ ९१ ॥ (अथर्व० ४।१३,१-७)

शन्तातिः । चन्द्रमाः, विश्वे देवाः, १ देवाः,२-३ वातः; ४ मरुतः, ६-७ हस्तः, (रोगनिवारणम्)। अनुष्टुप् ।

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः । उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः १
द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्य आवातु व्य१न्यो वातु यद् रपः २
आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः ।
त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे ३ ५५०
त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः । त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ४
आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टतातिभिः ।
दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते ५
अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः । अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ६
हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि ७ ५५४

॥ ९२ ॥ (अथर्व० १।१७।१-४)

ब्रह्मा । योषितः धमन्यश्च (रुधिरस्रावनिवृत्तये धमनीबन्धनम्)। अनुष्टुप्, १ भुरिगनुष्टुप्, ४ त्रिपदार्षी गायत्री ।

अमूर्या यन्ति योषितो हिरा लोहितवाससः ।
अभ्रातर इव जामयस्तिष्ठन्तु हतवर्चसः १ ५५५
तिष्ठावरे तिष्ठ पर उत त्वं तिष्ठ मध्यमे ।
कनिष्ठिका च तिष्ठति तिष्ठादिद्धमनिर्मही २
शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम् । अस्थुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत ३
परि वः सिकतावती धनूर्बृहत्यक्रमीत् । तिष्ठतेलयता सु कम् ४ ५५८

॥ ९३ ॥ (अथर्व० ६।४४।१-३)

विश्वामित्रः । वनस्पतिः (रोगनाशनम्)। अनुष्टुप्, ३ त्रिपदा महाबृहती ।

अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिव्यस्थाद् विश्वमिदं जगत् ।
अस्थुर्वृक्षा ऊर्ध्वस्वप्नास्तिष्ठाद् रोगो अयं तव १
शतं या भेषजानि ते सहस्रं संगतानि च । श्रेष्ठमास्रावभेषजं वसिष्ठं रोगनाशनम् २ ५६०
रुद्रस्य मूत्रमस्यमृतस्य नाभिः ।
विषाणका नाम वा असि पितॄणां मूलादुत्थिता वातीकृतनाशनी ३ ५६१

॥ ९४ ॥ (अथर्व० ६।५२।१-३)
भागलिः । १ सूर्यः, २ गावः, ३ भेषजम् । अनुष्टुप् ।

उत् सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन् । आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा १
नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत । न्यू१र्मयो नदीनां न्य१दृष्टा अलिप्सत २
आयुर्ददं विपश्चितं श्रुतां कण्वस्य वीरुधम् । आभारिषं विश्वभेषजीमस्यादृष्टान् नि शमयत् ३ ५६४

॥ ९५ ॥ (अथर्व० २।३।१-६)
अङ्गिराः । भैषज्यं, आयुः, धन्वन्तरिः, (आस्रावस्य भेषजम्) । अनुष्टुप्, ६ त्रिपदा स्वराडुपरिष्टान्महाबृहती ।

अदो यदवधावत्यवत्कमधि पर्वतात् ।
तत् ते कृणोमि भेषजं सुभेषजं यथाससि १ ५६५
आदङ्गा कुविदङ्गा शतं या भेषजानि ते ।
तेषामसि त्वमुत्तममनास्रावमरोगणम् २
नीचैः खनन्त्यसुरा अरुस्राणमिदं महत् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ३
उपजीका उद् भरन्ति समुद्रादधि भेषजम् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमशीशमत् ४
अरुस्राणमिदं महत् पृथिव्या अध्युद्भृतम् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ५
शं नो भवन्त्वप ओषधयः शिवाः ।
इन्द्रस्य वज्रो अप हन्तु रक्षस आराद् विसृष्टा इषवः पतन्तु रक्षसाम् ६ ५७०

॥ ९६ ॥ (अथर्व० १।३।१-९
अथर्वा । १ पर्जन्यः, २ मित्रः, ३ वरुणः, ४ चन्द्रः, ५ सूर्यः, (मूत्रमोचनम्) । अनुष्टुप्, १-५ पथ्यापङ्क्तिः ।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति १
विद्मा शरस्य पितरं मित्रं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति २
विद्मा शरस्य पितरं वरुणं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ३ ५७३

विद्मा शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ४
विद्मा शरस्य पितरं सूर्यं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ५ ५७५
यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद्वस्तावधि संश्रुतम् । एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ६
प्र ते भिनद्मि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्या इव ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ७
विषितं ते वस्तिबिलं समुद्रस्योदधेरिव ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ८
यथेषुका परापतदवसृष्टाधि धन्वनः ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ९ ५७९

॥ ९७ ॥ (अथर्व० ४।९।१-१०)

भृगुः । त्रैककुदाञ्जनम् । अनुष्टुप्, १ ककुम्मती, ३ पथ्यापङ्क्तिः ।

एहि जीवं त्रायमाणं पर्वतस्यास्यक्ष्यम् । विश्वेभिर्देवैर्दत्तं परिधिर्जीवनाय कम् १ ५८०
परिपाणं पुरुषाणां परिपाणं गवामसि । अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे २
उतासि परिपाणं यातुजम्भनमाञ्जन ।
उतामृतस्य त्वं वेत्थाथो असि जीवभोजनमथो हरितभेषजम् ३
यस्याञ्जन प्रसर्पस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः । ततो यक्ष्मं वि बाधस उग्रो मध्यमशीरिव ४
नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम्
नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन ५
असन्मन्त्राद् दुष्वप्न्याद् दुष्कृताच्छमलादुत ।
दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात् तस्मान्नः पाह्याञ्जन ६ ५८५
इदं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् । सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरुष ७
त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः ।
वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन्नाम ते पिता ८
यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि । यातूंश्च सर्वाञ्जम्भयत् सर्वाश्च यातुधान्यः ९
यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे ।
उभे ते भद्रे नाम्नी ताभ्यां नः पाह्याञ्जन १० ५८९

※

॥ ९८ ॥ (अथर्व० ७।३०।१)

भृग्वङ्गिराः । द्यावापृथिवी, मित्रः, ब्रह्मणस्पतिः, सविता च (अञ्जनम्) । बृहती ।

स्वाक्तं मे द्यावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम् ।
स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करत् १ ५९०

॥ ९९ ॥ (अथर्व० ७।३६।१)

अथर्वा । अक्षि, मनः (अञ्जनम्) । अनुष्टुप् ।

अक्ष्यौ३ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम् ।
अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति १ ५९१

॥ १०० ॥ (अथर्व० १९।४५।१-१०)

भृगुः । आञ्जनम्, मन्त्रोक्तदेवताः । १-२ अनुष्टुप्; ३, ५ त्रिष्टुप्; ६-१० एकावसाना महाबृहती (६ विराट्, ७-१० निचृत्) ।

ऋणादृणमिव संनयन् कृत्यां कृत्याकृतो गृहम् ।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन १
यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ।
अनामगस्तं च दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुञ्चताम् २
अपामूर्ज ओजसो वावृधानमग्नेर्जातमधि जातवेदसः ।
चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनं दिशः प्रदिशः करदिच्छिवास्ते ३
चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु ।
ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्य इमा विशो अभि हरन्तु ते बलिम् ४ ५९५
आक्ष्वैकं मणिमेकं कृणुष्व स्नाह्येकेना पिबैकमेषाम् ।
चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो ग्राह्या बन्धेभ्यः परि पात्वस्मान् ५
अग्निर्माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ६
इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ७
सोमो मा सौम्येनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ८
भगो मा भगेनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ९ ६००
मरुतो मा गणैरवन्तु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा १० ६०१

॥ १०१ ॥ (अथर्व० १९।४४।१-१०)

भृगुः । आञ्जनम्, ८-९ वरुणः (भैषज्यम्) । अनुष्टुप्; ४ चतुष्पदा शंकुमती उष्णिक्; ५ निचृद्विषमा त्रिपदा गायत्री ।

आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे । तदाञ्जन त्वं शंताते शमापो अभयं कृतम् १ ६०२

यो हरिमा जायान्योऽङ्गभेदो विसल्पकः । सर्वं ते यक्ष्ममङ्गेभ्यो बहिर्निर्हन्त्वाञ्जनम् २
आञ्जनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुरुषजीवनम् । कृणोत्वप्रमायुकं रथजूतिमनागसम् ३
प्राणं प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड । निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ४ ६०५
सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम् । वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ५
देवाञ्जन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः । न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ६
वीइदं मध्यमवासृपद् रक्षोहामीवचातनः । अमीवाः सर्वाश्चातयन् नाशयदभिभा इतः ७
बह्वीइदं राजन् वरुणानृतमाह पूरुषः । तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ८
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम । तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ९ ६१०
मित्रश्च त्वा वरुणश्चानुप्रेयतुराञ्जन । तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोहतुः १० ६११

॥ १०२ ॥ (वा० य० ४।३)

(अञ्जनम् ।)

वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा ऽ असि चक्षुर्मे देहि ३

॥ १०३ ॥ (अथर्व० ४।५।१-७)

ब्रह्मा । स्वापनं, वृषभः । अनुष्टुप्, २ भुरिक्, ७ पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप् ।

सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि १
न भूमिं वातो अति वाति नाति पश्यति कश्चन ।
स्त्रियश्च सर्वाः स्वापय शुनश्चेन्द्रसखा चरन् २
प्रोष्ठेशयास्तल्पेशया नारीर्या वह्यशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धयस्ताः सर्वाः स्वापयामसि ३ ६१५
एजदेजदजग्रभं चक्षुः प्राणमजग्रभम् । अङ्गान्यजग्रभं सर्वा रात्रीणामतिशर्वरे ४
य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन् विपश्यति ।
तेषां सं दध्मो अक्षीणि यथेदं हर्म्यं तथा ५
स्वप्नु माता स्वप्नु पिता स्वप्नु श्वा स्वप्नु विश्पतिः ।
स्वपन्त्वस्यै ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः ६
स्वप्न स्वप्नाभिकरणेन सर्वं नि ष्वापया जनम् ।
ओत्सूर्यमन्यान्त्स्वापयाव्युषं जागृतादहमिन्द्र इवारिष्टो अक्षितः ७ ६१९

॥ १०४ ॥ (अथर्व० ६।९०।१-३)

अथर्वा । रुद्रः (इषुनिष्कासनम्) । अनुष्टुप्, ३ आर्षी भुरिगुष्णिक् ।

या ते रुद्र इषुमास्यदङ्गेभ्यो हृदयाय च । इदं तामद्य त्वद् वयं विषूचीं वि वृहामसि १ ६२०

यास्ते शतं धमनयोऽङ्गान्यनु विष्ठिताः । तासां ते सर्वासां वयं निर्विषाणि ह्वयामसि २

नमस्ते रुद्रास्यते नमः प्रतिहितायै । नमो विसृज्यमानायै नमो निपतितायै ३ ६२१

॥ १०५ ॥ (ऋ० १।१२०।१२)

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । अश्विनौ (दुःष्वप्ननाशनम्) । गायत्री ।

अध स्वप्नस्य निर्विदे ऽभुञ्जतश्च रेवतः । उभा ता बस्रि नश्यतः १२

॥ १०६ ॥ (ऋ० २।२८।१०)

कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा । वरुणः (दुःष्वप्ननाशिनी) । त्रिष्टुप् ।

यो मे राजन् युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह ।

स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद् वरुण पाह्यस्मान् १०

॥ १०७ ॥ (ऋ० १०।१६४।१-५)

प्रचेता आङ्गिरसः । दुःष्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्, ५ पङ्क्तिः ।

अपेहि मनसस्पते ऽप क्राम परश्चर ।

परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ×१ ६२५

भद्रं वै वरं वृणते भद्रं युञ्जन्ति दक्षिणम् ।

भद्रं वैवस्वते चक्षु र्बहुत्रा जीवतो मनः २

यदाशसा निःशसाभिशसो पारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः ।

अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृता न्यजुष्टान्यारे अस्मद् दधातु ३

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पते ऽभिद्रोहं चरामसि ।

प्रचेता न आङ्गिरसो द्विषतां पात्वंहसः ४

अजैष्माद्यासनाम चा ऽभूमानागसो वयम् ।

जाग्रत्स्वप्नः संकल्पः पापो यं द्विष्मस्तं स ऋच्छतु यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु ५ ६२९

॥ १०८ ॥ (अथर्व० ६।४५।१-३)

अङ्गिराः प्रचेता यमश्च । दुःष्वप्ननाशनम् । १ पथ्यापङ्क्तिः, २ भुरिक् त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप् ।

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि ।

परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः १ ६३०

× अथर्व० १०,९६,२४ ।

अवशसा निःशसा यत् पराशसोपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः ।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद् दधातु २
यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽपि मृषा चरामसि । प्रचेता न आङ्गिरसो दुरितात् पात्वंहसः ३ ६२२

॥ १०६ ॥ (अथर्व० ६।४६।१-३)

आङ्गिराः प्रचेता यमश्च । दुःष्वप्ननाशनम् । १ विष्टारपङ्क्तिः, २ त्र्यवसाना शक्वरीगर्भा पञ्चपदा जगती, ३ अनुष्टुप् ।

यो न जीवोऽसि न मृतो देवानाममृतगर्भोऽसि स्वप्न ।
वरुणानी ते माता यमः पितारुरुर्नामासि १
विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि २
यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति । एवा दुष्वप्न्यं सर्वं द्विषते सं नयामसि ३ ६३५

॥ ११० ॥ (अथर्व० ७।१००।१)

यमः । दुःष्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप् ।

पर्यावर्ते दुष्वप्न्यात् पापात् स्वप्न्यादभूत्याः ।
ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः १

॥ १११ ॥ (अथर्व० ७।१०१।१)

यमः । दुःष्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप् ।

तत् स्वप्ने अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते ।
सर्वं तदस्तु मे शिवं नहि तद् दृश्यते दिवा १

॥ ११२ ॥ (अथर्व० ७।६९।१)

शन्तातिः । सुखम् । पथ्यापङ्क्तिः ।

शं नो वातो वातु शं नस्तपतु सूर्यः ।
अहानि शं भवन्तु नः शं रात्री प्रति धीयतां शमुषा नो व्युच्छतु १

॥ ११३ ॥ (अथर्व० ६।४३।१-३)

भृग्वङ्गिराः (परस्परचित्तैकीकरणकामः) । मन्युशमनम् । अनुष्टुप् ।

अयं दर्भो विमन्युकः स्वाय चारणाय च । मन्योर्विमन्युकस्यायं मन्युशमन उच्यते १
अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति । दर्भः पृथिव्या उत्थितो मन्युशमन उच्यते २ ६४०
वि ते हनव्यां शरणिं वि ते मुख्यां नयामसि ।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ३ ६४१

॥ ११४ ॥ (अथर्व० ५।१६।१-११)

विश्वामित्रः। एकवृषः (वृषरोगशमनम्)। एकावसानं द्वैपदम्; १,४,५,७-१० साम्नी उष्णिक्; २,३,६ आसुरी अनुष्टुप्; ११ आसुरी गायत्री।

यद्येकवृषोऽसि सृजारसोऽसि १ यदि द्विवृषोऽसि सृजारसोऽसि २
यदि त्रिवृषोऽसि सृजारसोऽसि ३ यदि चतुर्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ४
यदि पञ्चवृषोऽसि सृजारसोऽसि ५ यदि षड्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ६
यदि सप्तवृषोऽसि सृजारसोऽसि ७ यद्यष्टवृषोऽसि सृजारसोऽसि ८
यदि नववृषोऽसि सृजारसोऽसि ९ यदि दशवृषोऽसि सृजारसोऽसि १०
यद्येकादशोऽसि सोऽपोदकोऽसि ११ ६५१

॥ ११५ ॥ (अथर्व० ५।१५।१-११)

विश्वामित्रः। मधुला वनस्पतिः (रोगोपशमनम्)। अनुष्टुप्, ४ पुरस्ताद्बृहती; ५,७-९ भुरिक्।

एका च मे दश च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः १
द्वे च मे विंशतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः २
तिस्रश्च मे त्रिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ३ ६५५
चतस्रश्च मे चत्वारिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ४
पञ्च च मे पञ्चाशच्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ५
षट् च मे षष्टिश्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ६
सप्त च मे सप्ततिश्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ७
अष्ट च मेऽशीतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ८ ६६०
नव च मे नवतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ९
दश च मे शतं च मेऽपवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः १०
शतं च मे सहस्रं चापवक्तार ओषधे। ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ११ ६६२

॥ ११६ ॥ (अथर्व० १।२।१-४)

अथर्वा। पर्जन्यः, (१, ४ पृथिवी, ३ इन्द्रः, [चन्द्रमाश्च]) (रोगोपशमनम्)। अनुष्टुप्, ३ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम्। विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम् १
ज्याके परि णो नमाश्मानं तन्वं कृधि। वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि २
वृक्षं यद् गावः परिषस्वजाना अनुस्फुरं शरमर्चन्त्यृभुम्। शरुमस्मद्यावय दिद्युमिन्द्र ३ ६६६

यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम् ।
एवा रोगं चास्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत् ४ ६६७

॥ ११७ ॥ (अथर्व० २।७।१-५)

अथर्वा । भैषज्यं, आयुः, वनस्पतिः (शापमोचनम्) । अनुष्टुप् , १ भुरिक्, ४ विराडुपरिष्टाद् बृहती ।

अघद्विष्टा देवजाता वीरुच्छपथयोपनी ।
आपो मलमिव प्राणैक्षीत् सर्वान् मच्छपथाँ अधि १
यश्च सापत्नः शपथो जाम्याः शपथश्च यः ।
ब्रह्मा यन्मन्युतः शपात् सर्वं तन्नो अधस्पदम् २
दिवो मूलमवततं पृथिव्या अध्युत्ततम् । तेन सहस्रकाण्डेन परि णः पाहि विश्वतः ३ ६७०
परि मां परि मे प्रजां परि णः पाहि यद्धनम् ।
अरातिर्नो मा तारीन्मा नस्तारिषुरभिमातयः ४
शप्तारमेतु शपथो यः सुहार्त् तेन नः सह । चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणीमसि ५ ६७२

॥ ११८ ॥ (अथर्व० १।१८।१-४)

द्रविणोदाः । १ विनायकः; (२ सविता, वरुणः, मित्रः, अर्यमा, देवाः, ३ सविता) (अलक्ष्मीनाशनम्)
१ विराडुपरिष्टाद् बृहती, २ निचृज्जगती, ३ विराडास्तारपङ्क्तिस्त्रिष्टुप् , ४ अनुष्टुप् ।

निर्लक्ष्म्यं ललाम्यं निररातिं सुवामसि ।
अथ या भद्रा तानि नः प्रजाया अरातिं नयामसि १
निररणिं सविता साविषक् पदोर्निर्हस्तयोर्वरुणो मित्रो अर्यमा ।
निरस्मभ्यमनुमती रराणा प्रेमां देवा असाविषुः सौभगाय २
यत् त आत्मनि तन्वां घोरमस्ति यद् वा केशेषु प्रतिचक्षणे वा ।
सर्वं तद्वाचाप हन्मो वयं देवस्त्वा सविता सूदयतु ३ ६७५
रिश्यपदीं वृषदतीं गोषेधां विधमामुत । विलीढ्यं ललाम्यं ता अस्मन्नाशयामसि ४ ६७६

॥ ११९ ॥ (अथर्व० ६।१३९।१-५)

अथर्वा । वनस्पतिः (सौभाग्यवर्धनम्) । अनुष्टुप् , १ त्र्यवसाना षट्पदा विराड् जगती ।

न्यस्तिका रुरोहिथ सुभगंकरणी मम । शतं तव प्रतानास्त्रयस्त्रिंशन्नितानाः ।
तया सहस्रपर्ण्या हृदयं शोषयामि ते १
शुष्यतु मयि ते हृदयमथो शुष्यत्वास्यम् । अथो नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर २
संवननी समुष्पला बभ्रु कल्याणि सं नुद । अमूं च मां च सं नुद समानं हृदयं कृधि ३ ६७९

यथोदकमपपुषोऽपशुष्यत्यास्यम् । एवा नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ४ ६८०
यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः । एवा कामस्य विच्छिन्नं सं धेहि वीर्यावति ५ ६८१

॥ ११० ॥ (अथर्व० ६।१८।१-३)
अथर्वा । ईर्ष्याविनाशनम् । अनुष्टुप् ।

ईर्ष्याया ध्राजिं प्रथमां प्रथमस्या उतापराम् । अग्निं हृदय्यं शोकं तं ते निर्वापयामसि १
यथा भूमिर्मृतमना मृतान्मृतमनस्तरा । यथोत मम्रुषो मन एवेर्ष्योर्मृतं मनः २
अदो यत् ते हृदि श्रितं मनस्कं पतयिष्णुकम् ।
ततस्त ईर्ष्यां मुञ्चामि निरूष्माणं दृतेरिव ३ ६८४

॥ १११ ॥ (अथर्व० ७।४५।१-२)
प्रस्कण्वः, २ अथर्वा । ईर्ष्यापनयनं, भेषजम् । अनुष्टुप् ।

जनाद् विश्वजनीनात् सिन्धुतस्पर्याभृतम् । दूरात् त्वा मन्य उद्भृतमीर्ष्याया नाम भेषजम् १ ६८५
अग्नेरिवास्य दहतो दावस्य दहतः पृथक् । एतामेतस्येर्ष्यामुद्नाग्निमिव शमय २ ६८६

॥ ११२ ॥ (अथर्व० ६।१११।१-४)
अथर्वा । अग्निः (उन्मत्ततामोचनम्) । अनुष्टुप्, १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप् ।

इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्ध्ययं यो बद्धः सुयतो लालपीति ।
अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयं यदानुन्मदितोऽसति १
अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम् । कृणोमि विद्वान भेषजं यथानुन्मदितोऽससि २
देवैनसादुन्मदितमुन्मत्तं रक्षसस्परि । कृणोमि विद्वान् भेषजं यदानुन्मदितोऽसति ३
पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः । पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यथानुन्मदितोऽससि ४ ६९०

क्रिमिनाशनम् । (६९१-७७३)

॥ ११३ ॥ (अथर्व० २।३१।१-५)

काण्वः । मही, चन्द्रमाः (क्रिमिजम्भनम्) । अनुष्टुप्; २,४ उपरिष्टाद्विराड् बृहती, ३,५ आर्षी त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य या मही दृषत् क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी ।
तया पिनष्मि सं क्रिमीन् दृषदा खल्वाँ इव १
दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहम् ।
अल्गण्डून्त्सर्वान् छलुनान् क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि २
अल्गण्डून् हन्मि महता वधेन दूना अदूना अरसा अभूवन् ।
शिष्टानशिष्टान् नि तिरामि वाचा यथा क्रिमीणां नकिरुच्छिषातै ३ ६९३

अन्वान्त्र्यं शीर्षण्य१मथो पार्ष्टेयं क्रिमीन् ।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ४
ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्व१न्तः ।
ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रिमीणाम् ५ ६९५

॥ १२४ ॥ (अथर्व० ५।२३।१-१३)

कण्वः । इन्द्रः (क्रिमिघ्नम् । अनुष्टुप्, १३ विराट् ।

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति १
अस्येन्द्र कुमारस्य क्रिमीन् धनपते जहि । हता विश्वा अरातय उग्रेण वचसा मम २
यो अक्ष्यौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति ।
दतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि ३
सरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ ।
बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः ४
ये क्रिमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिबाहवः ।
ये के च विश्वरूपास्तान् क्रिमीन् जम्भयामसि ५ ७००
उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन् ६
येवाषासः कष्कषास एजत्काः शिपवित्नुकाः ।
दृष्टश्च हन्यतां क्रिमिरुतादृष्टश्च हन्यताम् ७
हतो येवाषः क्रिमीणां हतो नदनिमोत । सर्वान् नि मष्मषाकरं दृषदा खल्वाँ इव ८
त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् । शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ९
अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत् ।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् १० ७०५
हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः । हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ११
हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः ।
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः १२
सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम् ।
भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम् १३ ७०८

॥ १२५ ॥ (अथर्व० २।३२।१-६)

काण्वः । आदित्यः (क्रिमिनाशनम्) । अनुष्टुप्, १ त्रिपदा भुरिग्गायत्री, ६ चतुष्पदा निचृदुष्णिक् ।

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः ।
ये अन्तः क्रिमयो गवि १
विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् । शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः २ ७१०
अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत् ।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ३
हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः । हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ४
हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः ।
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः ५
प्र ते शृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदायसि । भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः ६ ७१४

॥ १२६ ॥ (अथर्व० ४।३७।१-१२)

बादरायणिः । अजशृङ्गी; १ अप्सरसः, १-२,६,१० ओषधी अजशृङ्गी; ३-५ अप्सरसः; ७-१२ गन्धर्वाप्सरसः (क्रमिनाशनम्) । अनुष्टुप्, ३ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुप्, ५ प्रस्तारपङ्क्तिः, ७ परोष्णिक्, ११ षट्पदा जगती, १२ निचृत् ।

त्वया पूर्वमथर्वाणो जघ्नू रक्षांस्योषधे ।
त्वया जघान कश्यपस्त्वया कण्वो अगस्त्यः १ ७१५
त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वांश्चातयामहे । अजशृङ्ग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय २
नदीं यन्त्वप्सरसोऽपां तारमवश्वसम् ।
गुल्गुलूः पीला नलद्यौक्षगन्धिः प्रमन्दनी ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ३
यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ४
यत्र वः प्रेङ्खा हरिता अर्जुना उत यत्राघाटाः कर्कर्यः संवदन्ति ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ५
एयमगन्नोषधीनां वीरुधां वीर्यावती । अजशृङ्ग्यराटकी तीक्ष्णशृङ्गी व्यृषतु ६ ७२०
आनृत्यतः शिखण्डिनो गन्धर्वस्याप्सरापतेः । भिनद्मि मुष्कावपि यामि शेपः ७
भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीरयस्मयीः । ताभिर्हविरदान् गन्धर्वानवकादान् व्यृषतु ८ ७२२

भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीर्हिरण्ययीः ।
ताभिर्हविरदान् गन्धर्वानवकादान् व्यृषतु ९
अवकादानभिशोचानप्सु ज्योतय मामकान् ।
पिशाचान्त्सर्वानोषधे प्र मृणीहि सहस्व च १०
श्वेवैकः कपिरिवैकः कुमारः सर्वकेशकः ।
प्रियो दृश इव भूत्वा गन्धर्वः सचते स्त्रियस्तमितो नाशयामसि ब्रह्मणा वीर्यावता ११ ७२५
जाया इद् वो अप्सरसो गन्धर्वाः पतयो यूयम् ।
अप धावतामर्त्या मर्त्यान् मा सचध्वम् १२ ७२६

॥ १२७ ॥ (अथर्व० १।८।१-४)

चातनः । १-२ बृहस्पतिः, अग्नीषोमौ च, ३-४ अग्निः [जातवेदाः] (यातुधाननाशनम्)। १-३ अनुष्टुप्, ४ बार्हतगर्भा त्रिष्टुप् ।

इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवा वहत् ।
य इदं स्त्री पुमानकरिह स स्तुवतां जनः १
अयं स्तुवान् आगमदिमं स्म प्रति हर्यत । बृहस्पते वशे लब्ध्वाग्नीषोमा वि विध्यतम् २
यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च । नि स्तुवानस्य पातय परमक्ष्युतावरम् ३
यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्थ गुहा सतामत्त्रिणां जातवेदः ।
तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जह्येषां शततर्हमग्ने ४ ७३०

॥ १२८ ॥ (अथर्व० ६।३२।१-३)

चातनः; ३ अथर्वा । १ अग्निः, २ रुद्रः, ३ मित्रावरुणौ (यातुधानक्षयणम्) । त्रिष्टुप्, २ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

अन्तर्दावे जुहुता स्वेतद् यातुधानक्षयणं घृतेन ।
आराद् रक्षांसि प्रति दह त्वमग्ने न नो गृहाणामुप तीतपासि १
रुद्रो वो ग्रीवा अशरैत् पिशाचाः पृष्टीर्वोऽपि शृणातु यातुधानाः ।
वीरुद् वो विश्वतोवीर्या यमेन समजीगमत् २
अभयं मित्रावरुणाविहास्तु नोऽर्चिषात्त्रिणो नुदतं प्रतीचः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ३ ७३३

॥ १२९ ॥ (अथर्व० १।२८।१-४)

चातनः । १-२ अग्निः, ३-४ यातुधानीः (रक्षोघ्नम्) । अनुष्टुप्, ३ विराट्पथ्याबृहती, ४ पथ्यापङ्क्तिः ।

उप प्रागाद् देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः ।
दहन्नप द्वयाविनो यातुधानान् किमीदिनः १ ७३४

प्रति दह यातुधानान् प्रति देव किमीदिनः ।
प्रतीचीः कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्यः २ ७३५
या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे । या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ३
पुत्रमत्तु यातुधानीः स्वसारमुत नप्त्यम् ।
अधा मिथो विकेश्यो३ वि घ्नतां यातुधान्यो३ वि तृह्यन्तामराय्यः ४ ७३७

॥ १३० ॥ (अथर्व० ५।२९।१-१५)

चातनः । जातवेदाः, मन्त्रोक्ताः (रक्षोघ्नम्) । त्रिष्टुप्; ३ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री, ५ पुरोऽतिजगती विराड्जगती; १२-१५ अनुष्टुप् (१२ भुरिक्; १४ चतुष्पदा पराबृहती ककुम्मती) ।

पुरस्ताद् युक्तो वह जातवेदोऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम् ।
त्वं भिषग् भेषजस्यासि कर्ता त्वया गामश्वं पुरुषं सनेम १
तथा तदग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ।
यो नो दिदेव यतमो जघास यथा सो अस्य परिधिष्पताति २
यथा सो अस्य परिधिष्पताति यथा तदग्ने कृणु जातवेदः ।
विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ३ ७४०
अक्ष्यौ३ नि विध्य हृदयं नि विध्य जिह्वां नि तृन्द्धि प्र दतो मृणीहि ।
पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि ४
यदस्य हृतं विहृतं यत् पराभृतमात्मनो जग्धं यतमत् पिशाचैः ।
तदग्ने विद्वान् पुनरा भर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः ५
आमे सुपक्वे शबले विपक्वे यो मा पिशाचो अशने ददम्भ ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु ६
क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भाकृष्टपच्ये अशने धान्ये३ यः ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु ७
अपां मा पाने यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु ८ ७४५
दिवा मा नक्तं यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु ९
क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः ।
तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु छिनत्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णुः १० ७४७

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूरानतु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ११
समाहर जातवेदो यद्धृतं यत् पराभृतम् ।
गात्राण्यस्य वर्धन्तामंशुरिवा प्यायतामयम् १२
सोमस्येव जातवेदो अंशुरा प्यायतामयम् ।
अग्ने विरप्शिनं मेध्यमयक्ष्मं कृणु जीवतु १३ ७५०
एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः ।
तास्त्वं जुषस्व प्रति चैना गृहाण जातवेदः १४
ताष्टाधीरग्ने समिधः प्रति गृह्णाह्यर्चिषा ।
जहातु क्रव्याद् रूपं यो अस्य मांसं जिहीर्षति १५ ७५२

॥ १३१ ॥ (वा० य० ५।२२)

(रक्षोघ्नम् ।)

इदमहꣳ रक्षसां ग्रीवा ऽ अपिकृन्तामि २२ ७५३

॥ १३२ ॥ (अथर्व० ४।२०।१-९)

मातृनामा । मातृनामा (पिशाचक्षयणम्) । अनुष्टुप्; १ स्वराट्, ९ भुरिक् ।

आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति ।
दिवमन्तरिक्षमाद् भूमिं सर्वं तद् देवि पश्यति १
तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीः षट् चेमाः प्रदिशः पृथक् ।
त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योषधे २ ७५५
दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कनीनिका ।
सा भूमिमा रुरोहिथ वह्यं श्रान्ता वधूरिव ३
तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत् ।
तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः ४
आविष्कृणुष्व रूपाणि मात्मानमप गूहथाः ।
अथो सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्याः किमीदिनः ५
दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्यः ।
पिशाचान्त्सर्वान् दर्शयेति त्वा रभ ओषधे ६
कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्ष्याः ।
वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः ७ ७६०

उदंग्रभं परिपाणाद् यातुधानं किमीदिनम् ।
तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्यम्　८
यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यश्चातिसर्पति ।
भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाचं प्र दर्शय　९　७६२

॥ १३३ ॥ (अथर्व० ६।७।१-३)

अथर्वा । सोमः, अदितिः, ३ देवाः (असुरक्षयणम्) । गायत्री, १ निचृत् ।

येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्रुहः　। तेना नोऽवसा गहि　१
येन सोम साहन्त्यासुरान् रन्धयासि नः　। तेना नो अधि वोचत　२
येन देवा असुराणामोजांस्यवृणीध्वम्　। तेना नः शर्म यच्छत　३　७६५

॥ १३४ ॥ (अथर्व० १९।६६।१)

ब्रह्मा । जातवेदाः सूर्यो वज्रश्च (असुरक्षयणम्) । अतिजगती ।

अयोजाला असुरा मायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति ।
तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिः सपत्नान् प्रमृणन् पाहि वज्रः　१　७६६

॥ १३५ ॥ (अथर्व० १।७।१-७)

चातनः । अग्निः (जातवेदा), ३ अग्नीन्द्रौ (यातुधाननाशनम्) । अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।

स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम् ।
त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ　१
आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस्तनूवशिन् ।
अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय　२
वि लपन्तु यातुधाना अत्त्रिणो ये किमीदिनः ।
अथेदमग्ने नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम्　३
अग्निः पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान् ।
ब्रवीतु सर्वो यातुमानयमस्मीत्येत्य　४　७७०
पश्याम ते वीर्यं जातवेदः प्र णो ब्रूहि यातुधानान् नृचक्षः ।
त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्तात् त आ यन्तु प्रब्रुवाणा उपेदम्　५
आ रभस्व जातवेदोऽस्माकार्थाय जज्ञिषे ।
दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय　६
त्वमग्ने यातुधानानुपबद्धाँ इहा वह ।
अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु　७　७७२

विषनाशनम् । (७७४-८५९)

॥ १३६ ॥ (ऋ० १।१९१।१-१६)

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अप्तृणसूर्याः (विषघ्नोपनिषद्) । अनुष्टुप्; १०-१२ महापङ्क्तिः; १३ महाबृहती ।

कङ्कतो न कङ्कतो ऽथो सतीनकङ्कतः ।
द्वाविति प्लुषी इति न्य१दृष्टा अलिप्सत १
अदृष्टान् हन्त्यायत्यथो हन्ति परायती ।
अथो अवघ्नती हन्त्यथो पिनष्टि पिंषती २ ७७५
शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत ।
मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ३
नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत ।
नि केतवो जनानां न्य१दृष्टा अलिप्सत ४
एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन् प्रदोषं तस्करा इव ।
अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ५
द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा ।
अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ६
ये अंस्या ये अङ्ग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः ।
अदृष्टाः किं चनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ७ ७८०
उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः ८
उदपप्तदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्वन् ।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ९
सूर्ये विषमा सजामि दृतिं सुरावतो गृहे ।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामाऽऽरे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार १०
इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम् ।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामाऽऽरे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ११
त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्यमक्षन् ।
ताश्चिन्नु न मरन्ति नो वयं मरामाऽऽरे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार १२ ७८५

नवानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम् ।
सर्वासामग्रभं नामा ऽऽरे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार १३
त्रिः सप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः ।
तास्ते विषं वि जभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव १४
इयत्तकः कुषुम्भक स्तकं भिनद्म्यश्मना ।
ततो विषं प्र वावृते पराचीरनु संवतः १५
कुषुम्भकस्तदब्रवीद् गिरेः प्रवर्तमानकः ।
वृश्चिकस्यारसं विष मरसं वृश्चिक ते विषम् १६ ७८९

॥ १३७ ॥ (अथर्व० ४।६।१-८)

गरुत्मान् । तक्षकः, १ ब्राह्मणः; २ द्यावापृथिवी, सप्तसिन्धवः, ३ सुपर्णः; ४-८ विषम् (विषघ्नम्) । अनुष्टुप् ।

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः ।
स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम् १ ७९०
यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावत् सप्त सिन्धवो वितष्ठिरे ।
वाचं विषस्य दूषणीं तामितो निरवादिषम् २
सुपर्णस्त्वा गरुत्मान् विष प्रथममावयत् ।
नामीमदो नारूरुप उतास्मा अभवः पितुः ३
यस्त आस्यत् पञ्चाङ्गुरिर्वक्राच्चिदधि धन्वनः ।
अपस्कम्भस्य शल्यान्निरवोचमहं विषम् ४
शल्याद् विषं निरवोचं प्राञ्जनादुत पर्णधेः ।
अपाष्ठाच्छृङ्गात् कुल्मलान्निरवोचमहं विषम् ५
अरसस्त इषो शल्योऽथो ते अरसं विषम् । उतारसस्य वृक्षस्य धनुष्टे अरसारसम् ६ ७९१
ये अपीषन् ये अदिहन् य आस्यन् ये अवासृजन् ।
सर्वे ते वध्रयः कृता वध्रिर्विषगिरिः कृतः ७
वध्रयस्ते खनितारो वध्रिस्त्वमस्योषधे ।
वध्रिः स पर्वतो गिरिर्यतो जातमिदं विषम् ८ ७९२

॥ १३८ ॥ (अथर्व० ४।७।१-७)

गरुत्मान् । वनस्पतिः (विषनाशनम्) । अनुष्टुप्, ४ स्वराट् ।

वारिदं वारयातै वरणावत्यामधि । तत्रामृतस्यासिक्तं तेना ते वारये विषम् १ ७९३

अरसं प्राच्यं विषमरसं यदुदीच्यम् । अथेदमधराच्यं करम्भेण वि कल्पते २
करम्भं कृत्वा तिर्यं पीबस्पाकमुदारथिम् ।
क्षुधा किल त्वा दुष्टनो जक्षिवान्त्स न रूरुपः ३ ८००
वि ते मदं मदावति शरमिव पातयामसि ।
प्र त्वा चरुमिव येषन्तं वचसा स्थापयामसि ४
परि ग्राममिवाचितं वचसा स्थापयामसि ।
तिष्ठा वृक्ष इव स्थाम्न्यभ्रिखाते न रूरुपः ५
पवस्तैस्त्वा पर्यक्रीणन् दूर्शेभिरजिनैरुत । प्रक्रीरसि त्वमोषधेऽभ्रिखाते न रूरुपः ६
अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे ।
वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् व एतत् पुरो दधे ७ ८०४

॥ १३९ ॥ (अथर्व० ६।१००।१-३)

गरुत्मान् । वनस्पतिः (विषदूषणम्) । अनुष्टुप् ।

देवा अदुः सूर्यो अदाद् द्यौरदात् पृथिव्यदात् ।
तिस्रः सरस्वतीरदुः सचित्ता विषदूषणम् १ ८०५
यद् वो देवा उपजीका आसिञ्चन् धन्वन्युदकम् ।
तेन देवप्रसूतेनेदं दूषयता विषम् २
असुराणां दुहितासि सा देवानामसि स्वसा ।
दिवस्पृथिव्याः संभूता सा चकर्थारसं विषम् ३ ८०७

॥ १४० ॥ (अथर्व० १०।४।१-२६)

गरुत्मान् । तक्षकः (सर्पविषदूरीकरणम्) । अनुष्टुप्; १ पथ्यापाङ्क्तिः; २ त्रिपदा यवमध्या गायत्री; ३-४ पथ्याबृहती; ८ उष्णिग्गर्भा परा त्रिष्टुप्; १२ भुरिग्गायत्री; १६ त्रिपदा प्रतिष्ठा गायत्री; २१ ककुम्मती; २३ त्रिष्टुप्; २६ त्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भा ककुम्मती भुरिक् त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो वरुणस्य तृतीय इत् ।
अहीनामपमा रथ स्थाणुमारदथार्षत् १
दर्भः शोचिस्तरूणकमश्वस्य वारः परुषस्य वारः । रथस्य बन्धुरम् २
अव श्वेत पदा जहि पूर्वेण चापरेण च । उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ३ ८१०
अरंघुषो निमज्योन्मज्य पुनरब्रवीत् । उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ४
पैद्वो हन्ति कसर्णीलं पैद्वः श्वित्रमुतासितम् । पैद्वो रथर्व्याः शिरः सं बिभेद पृदाकाः ५ ८१२

❀

पैद्व प्रेहि प्रथमोऽनु त्वा वयमेमसि । अहीन् व्यस्यतात् पथो येन स्मा वयमेमसि ६
इदं पैद्वो अजायतेदमस्य परायणम् । इमान्यर्वतः पदाहिघ्न्यो वाजिनीवतः ७
संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमत् । अस्मिन् क्षेत्रे द्वावही स्त्री च पुमांश्च तावुभावरसा ८ ८१५
अरसास इहाहयो ये अन्ति ये च दूरके । घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम् ९
अघाश्वस्येदं भेषजमुभयोः स्वजस्य च । इन्द्रो मेऽहिमघायन्तमहिं पैद्वो अरन्धयत् १०
पैद्वस्य मन्महे वयं स्थिरस्य स्थिरधाम्नः । इमे पश्चा पृदाकवः प्रदीध्यत आसते ११
नष्टासवो नष्टविषा हता इन्द्रेण वज्रिणा । जघानेन्द्रो जघ्निमा वयम् १२
हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः । दर्विं करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्वसितं जहि १३ ८२०
कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम् । हिरण्ययीभिरभ्रिभिर्गिरीणामुप सानुषु १४
आयमगन् युवा भिषक् पृश्निहापराजितः । स वै स्वजस्य जम्भन उभयोर्वृश्चिकस्य च १५
इन्द्रो मेऽहिमरन्धयन्मित्रश्च वरुणश्च । वातापर्जन्योभा १६
इन्द्रो मेऽहिमरन्धयत् पृदाकुं च पृदाक्वम् । स्वजं तिरश्चिराजिं कसर्णीलं दशोनसिम् १७
इन्द्रो जघान प्रथमं जनितारमहे तव । तेषामु तृह्यमाणानां कः स्वित् तेषामसद् रसः १८ ८२५
सं हि शीर्षाण्यग्रभं पौञ्जिष्ठ इव कर्वरम् । सिन्धोर्मध्यं परेत्य व्यनिजमहेर्विषम् १९
अहीनां सर्वेषां विषं परा वहन्तु सिन्धवः । हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः २०
ओषधीनामहं वृण उर्वरीरिव साधुया । नयाम्यर्वतीरिवाहे निरैतु ते विषम् २१
यदग्नौ सूर्ये विषं पृथिव्यामोषधीषु यत् । कान्दाविषं कनक्नकं निरैत्वैतु ते विषम् २२
ये अग्निजा ओषधिजा अहीनां ये अप्सुजा विद्युत आबभूवुः ।
येषां जातानि बहुधा महान्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमसा विधेम २३ ८३०
तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा असि । अधस्पदेन ते पदमा ददे विषदूषणम् २४
अङ्गादङ्गात् प्र च्यावय हृदयं परि वर्जय । अधा विषस्य यत् तेजोऽवाचीनं तदेतु ते २५
आरे अभूद् विषमरौद् विषे विषमप्रागपि । अग्निर्विषमहेर्निरधात् सोमो निरणयीत् ।
दंष्टारमन्वगाद् विषमहिरमृत २६ ८३३

॥ १४१ ॥ (अथर्व० ५।१३।१-११)

गरुत्मान् । तक्षकः (सर्पविषनाशनम्) । जगती, २ आस्तारपङ्क्तिः, ४,७-८ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप्, ६ पथ्यापङ्क्तिः, ९ भुरिक्, १०-११ निचृद्गायत्री ।

ददिर्हि मह्यं वरुणो दिवः कविर्वचोभिरुग्रैर्नि रिणामि ते विषम् ।
खातमखातमुत सक्तमग्रभमिरेव धन्वन् नि जजास ते विषम् १ ८३४

यत् ते अपोदकं विषं तत् त एतास्वग्रभम् ।
गृह्णामि ते मध्यममुत्तमं रसमुतावमं भियसा नेशदादु ते २ ८३५
वृषा मे रवो नभसा न तन्यतुरुग्रेण ते वचसा बाध आदु ते ।
अहं तमस्य नृभिरग्रभं रसं तमस इव ज्योतिरुदेतु सूर्यः ३
चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम् ।
अहे म्रियस्व मा जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वा विषम् ४
कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्र आ मे शृणुतासिता अलीकाः ।
मा मे सख्युः स्तामानमपि ष्ठाताश्रावयन्तो नि विषे रमध्वम् ५
असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च ।
सात्रासाहस्याहं मन्योरव ज्यामिव धन्वनो वि मुञ्चामि रथाँ इव ६
आलिगी च विलिगी च पिता च माता च ।
विद्म वः सर्वतो बन्ध्वरसाः किं करिष्यथ ७ ८४०
उरुगूलाया दुहिता जाता दास्यसिक्न्या ।
प्रतङ्कं दद्रुषीणां सर्वासामरसं विषम् ८
कर्णा श्वावित् तदब्रवीद् गिरेरवचरन्तिका ।
याः काश्चेमाः खनित्रिमास्तासामरसतमं विषम् ९
ताबुवं न ताबुवं न घेत् त्वमसि ताबुवम् । ताबुवेनारसं विषम् १०
तस्तुवं न तस्तुवं न घेत् त्वमसि तस्तुवम् । तस्तुवेनारसं विषम् ११ ८४४

॥ १४२ ॥ (अथर्व० ७।८८।१)

गरुत्मान् । तक्षकः (सर्पविषनाशनम्) । त्र्यवसाना बृहती ।

अपेह्यरिरस्यरिर्वा असि । विषे विषमपृक्था विषमिद् वा अपृक्थाः ।
अहिमेवाभ्यपेहि तं जहि १ ८४५

॥ १४३ ॥ (अथर्व० ६।१२।१-३)

गरुत्मान् । तक्षकः (सर्पविषनिवारणम्) । अनुष्टुप् ।

परि द्यामिव सूर्योऽहीनां जनिमागमम् ।
रात्री जगदिवान्यद्धंसात् तेना ते वारये विषम् १
यद् ब्रह्मभिर्यदृषिभिर्यद् देवैर्विदितं पुरा । यद् भूतं भव्यमासन्वत् तेना ते वारये विषम् २
मध्वा पृञ्चे नद्यः पर्वता गिरयो मधु । मधु परुष्णी शीपाला शमास्ने अस्तु शं हृदे ३ ८४८

॥ १४४ ॥ (अथर्व० ६।५६।१-३)

शन्तातिः । १ विश्वे देवाः, २-३ रुद्रः (सर्पेभ्यो रक्षणम्) । १ उष्णिग्गर्भा पथ्यापङ्क्तिः, २ अनुष्टुप्, ३ निचृत्

मा नो॑ देवा अहि॑र्वधीत् सतो॑कान्त्स॒हपू॑रुषान् ।
संय॑तं॒ न वि ष्प॑रद् व्यात्तं॒ न सं य॑मन्नमो॑ देवज॒नेभ्यः॑ । १
नमो॑ऽस्त्वसि॒ताय॒ नम॒स्तिर॑श्चिराजये । स्व॒जाय॑ ब॒भ्रवे॒ नमो॒ नमो॑ देवज॒नेभ्यः॑ २ ८५०
सं ते॑ हन्मि द॒ता द॒तः सम् ते॒ हन्वा॒ हनू॑ ।
सं ते॑ जि॒ह्वया॑ जि॒ह्वां सम्वा॒स्नाह॑ आ॒स्य॑म् ३ ८५१

॥ १४५ ॥ (अथर्व० ७।५६।१-८)

अथर्वा । वृश्चिकादयः, २ वनस्पतिः, ४ ब्रह्मणस्पतिः (विषभैषज्यम्) । अनुष्टुप्, ४ विराट्प्रस्तारपङ्क्तिः

तिर॑श्चिराजेरसि॒तात् पृदा॑कोः परि॒ संभृ॑तम् । तत् क॒ङ्कप॑र्वणो वि॒षमि॒यं वी॒रुद॑नीनशत् १
इ॒यं वी॒रुन्मधु॑जाता मधु॒श्चुन्म॑धु॒ला म॒धूः । सा विह्रु॑तस्य भेष॒ज्यथो॑ मश॒कज॒म्भ॑नी २
यतो॑ द॒ष्टं यतो॑ धी॒तं तत॑स्ते॒ निर्ह्व॑यामसि । अ॒र्भस्य॑ तृप्रदं॒शिनो॑ म॒शक॑स्यार॒सं वि॒षम् ३
अ॒यं यो व॒क्रो विप॑रु॒र्व्य॑ङ्गो मु॒खानि॒ व॒क्रा वृ॑जि॒ना कृ॒णोषि॑ ।
तानि॒ त्वं ब्र॑ह्मणस्पत इ॒षीका॑मिव॒ सं न॑मः ४ ८५५
अ॒र॒सस्य॑ श॒र्कोट॑स्य नी॒चीन॑स्योप॒सर्प॑तः । वि॒षं ह्य॑स्यादि॒ष्यथो॑ एनमजीजभम् ५
न ते॑ बा॒ह्वोर्बल॑मस्ति॒ न शी॒र्षे नोत म॑ध्य॒तः । अथ॒ किं पा॒पया॑मु॒या पुच्छे॑ बिभर्ष्यर्भ॒कम् ६
अ॒दन्ति॑ त्वा पि॒पीलि॑का॒ वि वृ॑श्चन्ति मयू॒र्यः॑ । सर्वे॑ भल ब्रवाथ॒ शार्कोट॑मर॒सं वि॒षम् ७
य उ॒भाभ्यां॑ प्र॒हर॑सि॒ पुच्छे॑न चा॒स्ये॑न च । आ॒स्ये॒ न ते॑ वि॒षं किमु॑ ते पुच्छ॒धाव॑सत् ८ ८५९

जलचिकित्सा । (८६०-१११९)

॥ १४६ ॥ (अथर्व० ६।५७।१-३

शन्तातिः । रुद्रः । १-२ अनुष्टुप्, ३ पथ्याबृहती ।

इ॒दमिद् वा उ॑ भेष॒जमि॒दं रु॒द्रस्य॑ भेष॒जम् ।
येनेषु॒मेक॑तेजनां श॒तश॑ल्याम॒पब्रव॑त् १
जा॒ला॒षेणा॒भि षि॑ञ्चत जाला॒षेणोप॑ सिञ्चत ।
जा॒ला॒षमु॒ग्रं भे॑ष॒जं तेन॑ नो मृड जी॒वसे॑ २
शं च॑ नो॒ मय॑श्च नो॒ मा च॑ नः॒ किं च॒नाम॑मत् ।
क्ष॒मा रपो॒ विश्वं॑ नो अस्तु भेष॒जं सर्वं॑ नो अस्तु भेष॒जम् ३ ८६२

॥ १४७ ॥ (ऋ० १।२३।१६-२३)

मेधातिथिः काण्वः । आपः, २३ आपः अग्निश्च । १६-१८ गायत्री, १९ पुर उष्णिक्, २१ प्रतिष्ठा । २०,२२-२३ अनुष्टुप् ।

अम्बयो यन्त्यध्वभि र्जामयो अध्वरीयताम् । पृञ्चतीर्मधुना पयः १६
अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् १७
अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः । सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः १८ ८६५
अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषज मपामुत प्रशस्तये । देवा भवत वाजिनः १९
अप्सु मे सोमो अब्रवी दन्तर्विश्वानि भेषजा । अग्निं च विश्वशंभुव मापश्च विश्वभेषजीः २०
आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे २१
इदमापः प्र वहत यत् किं च दुरितं मयि । यद् वाहमभिदुद्रोह यद् वा शेप उतानृतम् २२
आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि । पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा २३ ८७०

॥ १४८ ॥ (ऋ० ७।४७।१-४)

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । आपः । त्रिष्टुप् ।

आपो यं वः प्रथमं देवयन्त इन्द्रपानमूर्मिमकृण्वतेळः ।
तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम १
तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वो ऽपां नपादवत्वाशुहेमा ।
यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवयन्तो वो अद्य २
शतपवित्राः स्वधया मदन्ती र्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः ।
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत ३
याः सूर्यो रश्मिभिराततान याभ्य इन्द्रो अरदद् गातुमूर्मिम् ।
ते सिन्धवो वरिवो धातना नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४ ८७४

॥ १४९ ॥ (ऋ० ७।४९।१-४)

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । आपः । त्रिष्टुप् ।

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात् पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु १ ८७५
या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः ।
समुद्रार्था याः शुचयः पावका स्ता आपो देवीरिह मामवन्तु २
यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् ।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावका स्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ३ ८७७

यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति ।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्ट—स्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ४ ८७८

+ ॥ १५० ॥ (ऋ० १०।९।१-९)

त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः, सिन्धुद्वीप आम्बरीषो वा । आपः । गायत्री, ५ वर्धमाना गायत्री, ७ प्रतिष्ठा गायत्री, ८-९ अनुष्टुप् ।

आपो हि ष्ठा मयोभुव—स्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे १
यो वः शिवतमो रस—स्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः २ ८८०
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ३
शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ४
ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । अपो याचामि भेषजम् ५
अप्सु मे सोमो अब्रवी—दन्तर्विश्वानि भेषजा । अग्निं च विश्वशंभुवम् ६
आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे ७ ८८१
इदमापः प्र वहत यत् किं च दुरितं मयि ।
यद् वाहमभिदुद्रोह यद् वा शेप उतानृतम् ८
आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ९ ८८२

॥ १५१ ॥ (ऋ० १०।१७।१०-१४)

देवश्रवा-यामायनः । १०-१४ आपः; ११-१३ सोमो वा । त्रिष्टुप्, १३-१४ अनुष्टुप्, (१३ पुरस्ताद्बृहती वा ।)

आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवी—रुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि १०
द्रप्सश्चस्कन्द प्रथमाँ अनु द्यू—निमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ११
यस्ते द्रप्सः स्कन्दति यस्ते अंशु—र्बाहुच्युतो धिषणाया उपस्थात् ।
अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात् तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतम् १२
यस्ते द्रप्सः स्कन्नो यस्ते अंशु—रवश्च यः परः स्रुचा ।
अयं देवो बृहस्पतिः सं तं सिञ्चतु राधसे १३ ८९१

+ ऋ. १०,९,१-४; वा० य० ११,५०-५२; ३६,१२,१४-१६ ।

पर्यस्वतीरोषधयः पर्यस्वन्मामकं वचः ।
अपां पर्यस्वदित् पय स्तेन मा सह शुन्धत १४ ८९९

॥ १५२ ॥ (ऋ० १०।१९।१-८)

मथितो यामायनः, भृगुर्वारुणिर्वा, च्यवनो भार्गवो वा । आपः, गावो वा, १ उत्तरार्धर्चस्य अग्नीषोमौ । अनुष्टुप्, ६ गायत्री ।

नि वर्तध्वं मानु गाता ऽस्मान्त्सिषक्त रेवतीः ।
अग्नीषोमा पुनर्वसू अस्मे धारयतं रयिम् १
पुनरेना नि वर्तय पुनरेना न्या कुरु ।
इन्द्र एणा नि यच्छ त्वग्निरेना उपाजतु २
पुनरेता नि वर्तन्ता मस्मिन् पुष्यन्तु गोपतौ ।
इहैवाग्ने नि धारये ह तिष्ठतु या रयिः ३ ८९५
यन्नियानं न्ययनं संज्ञानं यत् परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ४
य उदानड् व्ययनं य उदानट् परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तन मपि गोपा नि वर्तताम् ५
आ निवर्त नि वर्तय पुनर्न इन्द्र गा देहि । जीवाभिर्भुनजामहै ६
परि वो विश्वतो दध ऊर्जा घृतेन पयसा ।
ये देवाः के च यज्ञिया स्ते रय्या सं सृजन्तु नः ७
आ निवर्तन वर्तय नि निवर्तन वर्तय ।
भूम्याश्चतस्रः प्रदिश स्ताभ्य एना नि वर्तय ८ ९००

॥ १५३ ॥ (ऋ० १०।३०।१-१५)

कवष ऐलूषः । आपः, अपां नपात् वा । त्रिष्टुप् ।

प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरे त्वपो अच्छा मनसो न प्रयुक्ति ।
महीं मित्रस्य वरुणस्य धासिं पृथुज्रयसे रीरधा सुवृक्तिम् १
अध्वर्यवो हविष्मन्तो हि भूता ऽच्छाप इतोशतीरुशन्तः ।
अव याश्चष्टे अरुणः सुपर्ण स्तमास्यध्वमूर्मिमद्या सुहस्ताः २
अध्वर्यवोऽप इता समुद्र मपां नपातं हविषा यजध्वम् ।
स वो दददूर्मिमद्या सुपूतं तस्मै सोमं मधुमन्तं सुनोत ३ ९०३

यो अनिध्मो दीदयदप्स्व१न्त-र्यं विप्रास ईळते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय ४
याभिः सोमो मोदते हर्षते च कल्याणीभिर्युवतिभिर्न मर्यः ।
ता अध्वर्यो अपो अच्छा परेहि यदासिञ्चा ओषधीभिः पुनीतात् ५ १०५
एवेद्यूने युवतयो नमन्त यदीमुशन्नुशतीरेत्यच्छ ।
सं जानते मनसा सं चिकित्रे ऽध्वर्यवो धिषणापश्च देवीः ६
यो वो वृताभ्यो अकृणोदु लोकं यो वो मह्या अभिशस्तेरमुञ्चत् ।
तस्मा इन्द्राय मधुमन्तमूर्मिं देवमादनं प्र हिणोतनापः ७
प्रास्मै हिनोत मधुमन्तमूर्मिं गर्भो यो वः सिन्धवो मध्व उत्सः ।
घृतपृष्ठमीड्यमध्वरेष्वा-ऽऽपो रेवतीः शृणुता हवं मे ८
तं सिन्धवो मत्सरमिन्द्रपान-मूर्मिं प्र हेत य उभे इयर्ति ।
मदच्युतमौशानं नभोजां परि त्रितन्तुं विचरन्तमुत्सम् ९
आवर्वृततीरध नु द्विधारा गोषुयुधो न नियवं चरन्तीः ।
ऋषे जनित्रीर्भुवनस्य पत्नी-रपो वन्दस्व सवृधः सयोनीः १० ११०
हिनोता नो अध्वरं देवयज्या हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम् ।
ऋतस्य योगे वि ष्यध्वमूधः श्रुष्टीवरीर्भूतनास्मभ्यमापः ११
आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च ।
रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नीः सरस्वती तद् गृणते वयो धात् १२
प्रति यदापो अदृश्रमायती-र्घृतं पयांसि बिभ्रतीर्मधूनि ।
अध्वर्युभिर्मनसा संविदाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तीः १३
एमा अग्मन् रेवतीर्जीवधन्या अध्वर्यवः सादयता सखायः ।
नि बर्हिषि धत्तन सोम्यासो ऽपां नप्त्रा संविदानास एनाः १४
आग्मन्नाप उशतीर्बर्हिरेदं न्यध्वरे असदन् देवयन्तीः ।
अध्वर्यवः सुनुतेन्द्राय सोम-मभूदु वः सुशका देवयज्या १५ ११५

॥ १५४ ॥ (अथर्व० १।३३।१-४)

शन्तातिः । (चन्द्रमाः) आपः (च) । त्रिष्टुप् ।

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु १ ११६

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम् ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु　२
यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु　३
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ।
घृतश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु　४　११९

॥ १५५ ॥ (अथर्व० ३।१३।१-७)

भृगुः । वरुणः, सिन्धुः, आपः; २-३ इन्द्रः । अनुष्टुप्, १ निचृत्, ५ विराड्जगती, ६ निचृदनुष्टुप् ।

यदुदः संप्रयतीरहावनदता हते ।
तस्मादा नद्यो३ नाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः　१　१२०
यत् प्रेषिता वरुणेनाच्छीभं समवल्गत ।
तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीस्तस्मादापो अनु ष्ठन　२
अपकामं स्यन्दमाना अवीवरत वो हि कम् ।
इन्द्रो वः शक्तिभिर्देवीस्तस्माद् वार्नाम वो हितम्　३
एको वो देवोऽप्यतिष्ठत् स्यन्दमाना यथावशम् ।
उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते　४
आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत् ताः ।
तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत्　५
आदित् पश्याम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ् मासाम् ।
मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः　६　१२५
इदं व आपो हृदयमयं वत्स ऋतावरीः । इहेत्थमेत शक्वरीर्यत्रेदं वेशयामि वः　७　१२६

॥ १५६ ॥ (अथर्व० ७।३९।१)

प्रस्कण्वः । आपः, सुपर्णः, वृषभः । त्रिष्टुप् ।

दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तमपां गर्भं वृषभमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्ट्या तर्पयन्तमा नो गोष्ठे रयिष्ठां स्थापयाति　१　१२७

॥ १५७ ॥ (अथर्व० १९।२।१-५)

सिन्धुद्वीपः । आपः । अनुष्टुप् ।

शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः । शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः　१
शं त आपो धन्वन्या३ः शं ते सन्त्वनूप्याः । शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः　२　१२९

अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः ।
भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि ३ १३०
अपामहं दिव्यानामपां स्रोतस्यानाम् ।
अपामहं प्रणेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः ४
ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मंकरणीरपः । यथैव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः ५ १३१

॥ १५८ ॥ (अथर्व० १९।६९।१-४)

ब्रह्मा । आपः । १ आसुर्यनुष्टुप्; २ साम्न्यनुष्टुप्; ३ आसुरी गायत्री; ४ साम्न्युष्णिक् ।

जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् १
उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् २
संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ३ १३५
जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ४ १३६

॥ १५९ ॥ (वा० य० १।१२-१३, २१, ३१)

(आपः ।)

सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।
देवीरापो अग्रेगुवो अग्रेपुवोऽग्र इममद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपतिं सुधातुं
यज्ञपतिं देवयुवम् १२
युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षिता स्थ १३
समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन ।
सं रेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्तां सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् २१
सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ३१ १४०

॥ १६० ॥ (वा० य० २।२, ३४)

(आपः ।)

अदित्यै व्युन्दनमसि २
ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् । स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन् ३४ १४१

॥ १६१ ॥ (वा० य० ४।१, १२)

(आपः ।)

इमा आपः शमु मे सन्तु देवीः १
श्वात्राः पीता भवत यूयमापो ऽस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः
ता अस्मभ्यमयक्ष्मा अनमीवा अनागसः स्वदन्तु देवीरमृता ऋतावृधः १२ १४४

॥ १६२ ॥ (वा० य० ५।११)

(आपः ।)

इदमहं तप्तं वार्बहिर्धा यज्ञान्निः सृजामि ११ ९४५

॥ १६३ ॥ (वा० य० ६।१०,१३,३०-३१)

(आपः ।)

आपो देवीः स्वदन्तु स्वात्तं चित्सद् देवहविः १०
देवीरापः शुद्धा वोढ्वꣳ सुपरिविष्टा देवेषु सुपरिविष्टा वयं परिवेष्टारो भूयास्म १३
निग्राभ्या स्थ देवश्रुतस्तर्पयत मा ३०
मनो मे तर्पयत वाचं मे तर्पयत प्राणं मे तर्पयत चक्षुर्मे तर्पयत श्रोत्रं मे तर्पयतात्मानं मे
तर्पयत प्रजां मे तर्पयत पशून् मे तर्पयत गणान् मे तर्पयत गणा मे मा वितृषन् ३१ ९४९

॥ १६४ ॥ (वा० य० ६।१७,२१,२४,२७-२८)

(आपः ।)

इदमापः प्रवहतावद्यं च मलं च यत् ।
यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम् ।
आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु १७ ९५०
मापो मौषधीर्हिꣳसीः. ।
सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः २२
अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ
विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ ।
अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् २४
देवीरापो अपां नपाद्यो व ऊर्मिर्हविष्य इन्द्रियावान् मदिन्तमः ।
तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषां भाग स्थ स्वाहा २७
समुद्रस्य त्वा क्षित्या उन्नयामि । समापो अद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः २८ ९५४

॥ १६५ ॥ (वा० य० ८।२६)

(आपः ।)

देवीराप एष वो गर्भस्तꣳ सुप्रीतꣳ सुभृतं बिभृत ।
देव सोमैष ते लोकस्तस्मिञ्छं च वक्ष्व परि च वक्ष्व २६ ९५५

॥ १६६ ॥ (अथर्व० ६।१२४।१-३)

अथर्वा । दिव्या आपः (निर्ऋत्यपस्तरणम्) । त्रिष्टुप् ।

दिवो नु मां बृहतो अन्तरिक्षादपां स्तोको अभ्यपप्तद् रसेन ।
समिन्द्रियेण पयसाहमग्ने छन्दोभिर्यज्ञैः सुकृतां कृतेन १
यदि वृक्षादभ्यपप्तत् फलं तद् यद्यन्तरिक्षात् स उ वायुरेव ।
यत्रास्पृक्षत् तन्वो३ यच्च वासस आपो नुदन्तु निर्ऋतिं पराचैः २
अभ्यञ्जनं सुरभि सा समृद्धिर्हिरण्यं वर्चस्तदु पूत्रिममेव ।
सर्वा पवित्रा वितताध्यस्मत् तन्मा तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ३ ९५८

॥ १६७ ॥ (अथर्व० ७।८९।१-४)

सिन्धुद्वीपः । अग्निः (दिव्या आपः) । अनुष्टुप् । ४ त्रिपदा निचृत् परोष्णिक् ।

अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि ।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा १
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः २ ९६०
इदमापः प्र वहतावद्यं च मलं च यत् । यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम् ३
एधोऽस्येधिषीय समिदसि समेधिषीय । तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ४ ९६१

॥ १६८ ॥ (अथर्व० १।४।४)

सिन्धुद्वीपः । आपः (अपां भेषजम्) । पुरस्ताद्बृहती ।

अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषजम् ।
अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः ४ ९६३

॥ १६९ ॥ (अथर्व० १।६।४)

सिन्धुद्वीपः (अथर्वा कृतिर्वा) । आपः (अपां भेषजम्) । पथ्यापङ्क्तिः ।

शं न आपो धन्वन्या३ः शमु सन्त्वनूप्याः ।
शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ४ ९६४

॥ १७० ॥ (अथर्व० ६।२२।१-३)

शन्तातिः । १ आदित्यरश्मिः, २-३ मरुतः (भैषज्यम्) । त्रिष्टुप्, २ चतुष्पदा भुरिग्जगती ।

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीं व्यू१दुः १ ९६५

पयस्वतीः कृणुथाप ओषधीः शिवा यदेजथा मरुतो रुक्मवक्षसः ।
ऊर्जं च तत्र सुमतिं च पिन्वत यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मधु　　२
उदप्रुतो मरुतस्ताँ इयर्त वृष्टिर्या विश्वा निवतस्पृणाति ।
एजाति ग्लहा कन्येव तुन्नैरुं तुन्दाना पत्येव जाया　　३　　१६७

॥ १७१ ॥ (अथर्व० ६।२३।१-३)

शन्तातिः । आपः (अपां भैषज्यम्) । १ अनुष्टुप्, २ त्रिपदा गायत्री, ३ परोष्णिक् ।

सस्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्रुषीः　। वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरुप ह्वये　　१
ओता आपः कर्मण्या मुञ्चन्त्वितः प्रणीतये । सद्यः कृण्वन्त्वेतवे　　२
देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः । शं नो भवन्त्वप ओषधीः शिवाः　　३　　१७०

॥ १७२ ॥ (अथर्व० ६।२४।१-३)

शन्तातिः । आपः (अपां भैषज्यम्) । अनुष्टुप् ।

हिमवतः प्र स्रवन्ति सिन्धौ समह संगमः ।
आपो ह मह्यं तद् देवीर्ददन् हृद्द्योतभेषजम्　　१
यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पार्ष्ण्योः प्रपदोश्च यत् ।
आपस्तत् सर्वं निष्करन् भिषजां सुभिषक्तमाः　　२
सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्य१ स्थन ।
दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजामहै　　३　　१७३

॥ १७३ ॥ (ऋ० ५।८३।१-१०)

भौमोऽत्रिः । पर्जन्यः । त्रिष्टुप्, २-४ जगती, ९ अनुष्टुप् ।

अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः　स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।
कनिक्रदद् वृषभो जीरदानू　रेतो दधात्योषधीषु गर्भम्　　१
वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो　विश्वं बिभाय भुवनं महावधात् ।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो　यत् पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः　　२　　१७५
रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर्दूतान् कृणुते वर्ष्याँ३ अह ।
दूरात् सिंहस्य स्तनथा उदीरते　यत् पर्जन्यः कृणुते वर्ष्य१ नभः　　३
प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत　उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते　यत् पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति　　४　　१७७

यस्य व्रते पृथिवी नंनमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति ।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ५
दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।
अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ६
अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन ।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः ७ ९८०
महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात् ।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः ८
यत् पर्जन्य कनिक्रदत् स्तनयन् हंसि दुष्कृतः ।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत् किं च पृथिव्यामधि ९
अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाऽकर्धन्वान्यत्येतवा उ ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम् १० ९८३

॥ १७४ ॥ (ऋ० १०।२७।१६)

ऐन्द्रो वसुक्रः । इन्द्रः (पर्जन्यः) । त्रिष्टुप् ।

दशानामेकं कपिलं समानं तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय ।
गर्भं माता सुधितं वक्षणास्ववेनन्तं तुषयन्ती बिभर्ति १६ ९८४

॥ १७५ ॥ (ऋ० ७।१०१।१-६)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः (वृष्टिकामः), कुमार आग्नेयो वा । पर्जन्यः । त्रिष्टुप् ।

तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्रा या एतद् दुह्रे मधुदोघमूधः ।
स वत्सं कृण्वन् गर्भमोषधीनां सद्यो जातो वृषभो रोरवीति १ ९८५
यो वर्धन ओषधीनां यो अपां यो विश्वस्य जगतो देव ईशे ।
स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत् त्रिवर्तु ज्योतिः स्वभिष्ट्य१स्मे २
स्तरीरु त्वद् भवति सूत उ त्वद् यथावशं तन्वं चक्र एषः ।
पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः ३
यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुस्तिस्रो द्यावस्त्रेधा सस्रुरापः ।
त्रयः कोशास उपसेचनासो मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ४ ९८८

इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे हृदो अस्त्वन्तरं तज्जुजोषत् ।
मयोभुवो वृष्टयः सन्त्वस्मे सुपिप्पला ओषधीर्देवगोपाः ५
स रेतोधा वृषभः शश्वतीनां तस्मिन्नात्मा जगतस्तस्थुषश्च ।
तन्म ऋतं पातु शतशारदाय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६ ९९०

॥ १७६ ॥ (ऋ० ७।१०२।१-३)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः (वृष्टिकामः), कुमार आग्नेयो वा । पर्जन्यः । गायत्री, २ पादनिचृत् ।

पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मीळ्हुषे । स नो यवसमिच्छतु १
यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम् । पर्जन्यः पुरुषीणाम् २
तस्मा इदास्ये हवि र्जुहोता मधुमत्तमम् । इळां नः संयतं करत् ३ ९९३

॥ १७७ ॥ (ऋ० ७।१०३।१-१०)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मण्डूकाः (पर्जन्यः) । त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप् ।

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः १
दिव्या आपो अभि यदेनमायन् दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम् ।
गवामह न मायुर्वत्सिनीनां मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति २ ९९५
यदीमेनाँ उशतो अभ्यवर्षीत् तृष्यावतः प्रावृष्यागतायाम् ।
अख्खलीकृत्या पितरं न पुत्रो अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति ३
अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनो रपां प्रसर्गे यदमन्दिषाताम् ।
मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन् पृश्निः संपृङ्क्ते हरितेन वाचम् ४
यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः ।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व यत् सुवाचो वदथनाध्यप्सु ५
गोमायुरेको अजमायुरेकः पृश्निरेको हरित एक एषाम् ।
समानं नाम बिभ्रतो विरूपाः पुरुत्रा वाचं पिपिशुर्वदन्तः ६
ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः ।
संवत्सरस्य तदहः परि ष्ठ यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव ७ १०००
ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना आविर्भवन्ति गुह्या न के चित् ८ १००१

देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते ।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम् ९
गोमायुरदादजमायुरदात् पृश्निरदाद्धरितो नो वसूनि ।
गवां मण्डूका ददतः शतानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः १० १००३

॥१७८॥ (अथर्व० ४।१५।१-१६)

अथर्वा। १ दिशः, २-३ वीरुधः, ४ मरुत्पर्जन्यौ, ५-१० मरुतः आपः, ११ प्रजापतिः स्तनयित्नुः, १२ वरुणः, १३-१५ मण्डूकाः पितरश्च, १६ वातः (वृष्टिः)। त्रिष्टुप्; १-२, ५ विराड् जगती, ४ विराट् पुरस्ताद्बृहती, ७, १३ अनुष्टुप्, ९ पथ्यापङ्क्तिः, १० भुरिक्, १२ पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा भुरिक्, १५ शंकुमत्यनुष्टुप्।

समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः समभ्राणि वातजूतानि यन्तु ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु १
समीक्षयन्तु तविषाः सुदानवोऽपां रसा ओषधीभिः सचन्ताम् ।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तामोषधयो विश्वरूपाः २ १००५
समीक्षयस्व गायतो नभांस्यपां वेगासः पृथगुद् विजन्ताम् ।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तां वीरुधो विश्वरूपाः ३
गणास्त्वोप गायन्तु मारुताः पर्जन्य घोषिणः पृथक् ।
सर्गा वर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु ४
उदीरयत मरुतः समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत् पातयाथ ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ५
अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयसा समङ्ग्धि ।
त्वया सृष्टं बहुलमैतु वर्षमाशारैषी कृशगुरेत्वस्तम् ६
सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु ७ १०१०
आशामाशां वि द्योततां वाता वान्तु दिशोदिशः ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः सं यन्तु पृथिवीमनु ८
आपो विद्युदभ्रं वर्षं सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु ९
अपामग्निस्तनूभिः संविदानो य ओषधीनामधिपा बभूव ।
स नो वर्षं वनुतां जातवेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि १० १०१३

प्रजापतिः सलिलादा समुद्रादाप ईरयन्नुदधिमर्दयाति ।
प्र प्यायतां वृष्णो अश्वस्य रेतोऽर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेहि ११
अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः श्वसन्तु गर्गरा अपां वरुणाव नीचीरपः सृज ।
वदन्तु पृश्निबाहवो मण्डूका इरिणानु १२ १०१५
संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः १३
उपप्रवद मण्डूकि वर्षमा वद तादुरि । मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व विगृह्य चतुरः पदः १४
खण्वखा३इ खैमखा३इ मध्ये तदुरि । वर्षं वनुध्वं पितरो मरुतां मन इच्छत १५
महान्तं कोशमुदचाभि षिञ्च सविद्युतं भवतु वातु वातः ।
तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्टा आनन्दिनीरोषधयो भवन्तु १६ १०१९

॥ १७९ ॥ (अथर्व० ७।१८।१-२)

अथर्वा । पृथिवी, पर्जन्यः (वृष्टिः) । १ चतुष्पदा भुरिगुष्णिक्, २ त्रिष्टुप् ।

प्र नभस्व पृथिवि भिन्द्धी३दं दिव्यं नभः ।
उद्नो दिव्यस्य नो धातरीशानो वि ष्या दृतिम् १ १०२०
न घ्रंस्तताप न हिमो जघान प्र नभतां पृथिवी जीरदानुः ।
आपश्चिदस्मै घृतमित् क्षरन्ति यत्र सोमः सदमित् तत्र भद्रम् २

॥ १८० ॥ (ऋ० ३।३३।१-१३)

गाथिनो विश्वामित्रः; ४,६,८,१० नद्यः ऋषिकाः । नद्यः; ४,८,१० विश्वामित्रः;
६,७ इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १३ अनुष्टुप् ।

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने ।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते १
इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः ।
समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे २
अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म ।
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु संचरन्ती ३
एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः ।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ४ १०२५
रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषा ऽवस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ५ १०२६

इन्द्रो अस्माँ अरदद् वज्रबाहु—रपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।
देवोऽनयत् सविता सुपाणि—स्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ६
प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं१ त—दिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत् ।
वि वज्रेण परिषदो जघाना—ऽऽयन्नापोऽयनमिच्छमानाः ७
एतद् वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत् ते घोषानुत्तरा युगानि ।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ८
ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ९ १०३०
आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन ।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते १०
यदङ्ग त्वा भरताः संतरेयु—र्गव्यन् ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ११
अतारिषुर्भरता गव्यवः स—मभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् १२
उद् व ऊर्मिः शम्या ह—न्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
मादुष्कृतौ व्येनसा—ऽघ्न्यौ शूनमारताम् १३ १०३४

॥ १८१ ॥ (ऋ० ७।५०।४)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । नद्यः । अतिजगती शक्करी वा ।

याः प्रवतो निवत उद्वत उदन्वतीरनुदकाश्च याः ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः शिवा देवीरशिपदा भवन्तु
सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु ४ १०३५

॥ १८२ ॥ (ऋ० १०।७५।१-९)

सिन्धुक्षित् प्रैयमेधः । नद्यः । जगती ।

प्र सु व आपो महिमानमुत्तमं कारुर्वोचाति सदने विवस्वतः ।
प्र सप्तसप्त त्रेधा हि चक्रमुः प्र सृत्वरीणामति सिन्धुरोजसा १
प्र तेऽरदद् वरुणो यातवे पथः सिन्धो यद् वाजाँ अभ्यद्रवस्त्वम् ।
भूम्या अधि प्रवता यासि सानुना यदेषामग्रं जगतामिरज्यसि २ १०३७

दिवि स्वनो यतते भूम्योप- र्यनन्तं शुष्ममुदियर्ति भानुना ।
अभ्रादिव प्र स्तनयन्ति वृष्टयः सिन्धुर्यदेति वृषभो न रोरुवत् ३
अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ।
राजेव युध्वा नयसि त्वमित् सिचौ यदासामग्रं प्रवतामिनक्षसि ४
इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तया- ऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ५ १०४०
तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या ।
त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे ६
ऋजीत्येनी रुशती महित्वा परि ज्रयांसि भरते रजांसि ।
अदब्धा सिन्धुरपसामपस्तमा- ऽश्वा न चित्रा वपुषीव दर्शता ७
स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासा हिरण्ययी सुकृता वाजिनीवती ।
ऊर्णावती युवतिः सीलमाव- त्युताधि वस्ते सुभगा मधुवृधम् ८
सुखं रथं युयुजे सिन्धुरश्विनं तेन वाजं सनिषदस्मिन्नाजौ ।
महान् ह्यस्य महिमा पनस्यते ऽदब्धस्य स्वयशसो विरप्शिनः ९ १०४४

॥ १८३ ॥ (ऋ० ७।९५।३)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सरस्वान् । त्रिष्टुप् ।

स वावृधे नर्यो योषणासु वृषा शिशुर्वृषभो यज्ञियासु ।
स वाजिनं मघवद्भ्यो दधाति वि सातये तन्वं मामृजीत ३ १०४५

॥ १८४ ॥ (ऋ० ७।९६।४-६)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सरस्वान् । गायत्री ।

जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः । सरस्वन्तं हवामहे ४
ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः । तेभिर्नोऽविता भव ५
पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः । भक्षीमहि प्रजामिषम् ६ १०४८

॥ १८५ ॥ (अथर्व० ७।४०।१-२)

प्रस्कण्वः । सरस्वान् । १ भुरिक्, २ त्रिष्टुप् ।

यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रत उपतिष्ठन्त आपः ।
यस्य व्रते पुष्टपतिर्निविष्टस्तं सरस्वन्तमवसे हवामहे १ १०४९

आ यत्साकं यशसो वावशानाः सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता ।
रायस्पोषं श्रवस्युं वसाना इह हुवेम सदनं रयीणाम् ॥ ३ १०५०

॥ १८६ ॥ (ऋ० १।३।१०-१२)

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । सरस्वती । गायत्री ।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ १०
चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ११
महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना । धियो विश्वा वि राजति ॥ १२ १०५३

॥ १८७ ॥ (ऋ० १।१६४।४९)

दीर्घतमा औचथ्यः । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।
यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥ ४९ १०५४

× ॥ १८८ ॥ (ऋ० २।३०।८ [पूर्वार्धः])

गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद् भार्गवः) शौनकः । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून् ॥ ८ १०५५

॥ १८९ ॥ (ऋ० २।४१।१६-१८)

गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद् भार्गवः) शौनकः । सरस्वती । अनुष्टुप्, १८ बृहती ।

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥ १६
त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् ।
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ १७
इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति ।
या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥ १८ १०५८

॥ १९० ॥ (ऋ० ६।६१।१-१४)

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । सरस्वती । गायत्री, १-३, १३ जगती; १४ त्रिष्टुप् ।

इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥ १
इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ॥ २ १०६०

× दै० [इन्द्रः] ११३३।

सरस्वति देवनिदो नि बर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः ।
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ३
प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । धीनामवित्र्यवतु ४
यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते । इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ५
त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि । रदा पूषेव नः सनिम् ६
उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनिः । वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम् ७ १०६५
यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेषश्चरिष्णुरर्णवः । अमश्चरति रोरुवत् ८
सा नो विश्वा अति द्विषः स्वसॄरन्या ऋतावरी । अतन्नहेव सूर्यः ९
उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्या भूत् १०
आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम् । सरस्वती निदस्पातु ११
त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती । वाजेवाजे हव्या भूत् १२ १०७०
प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा ।
रथ इव बृहती विभ्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती १३
सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरीः पयसा मा न आ धक् ।
जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत् क्षेत्राण्यरणानि गन्म १४ १०७२

॥ १९१ ॥ (ऋ० ७।९५।१-२, ४-६)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः ।
प्रबाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः १
एकाचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय २
उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप श्रवत् सुभगा यज्ञे अस्मिन् ।
मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ४ १०७५
इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व ।
तव शर्मन् प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ५
अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः ।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६ १०७७

॥ १९२ ॥ (ऋ० ७।९६।१-३)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सरस्वती । १-२ प्रगाथः- (१ बृहती, २ सतो बृहती), ३ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम् ।
सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी १
उभे यत् ते महिना शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः ।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोनाम् २
भद्रमिद् भद्रा कृणवत् सरस्व—त्यकवारी चेतति वाजिनीवती ।
गृणाना जमदग्निवत् स्तुवाना च वसिष्ठवत् ३ १०८०

॥ १९३ ॥ (ऋ० १०।१७।१-२, ७-९)

देवश्रवा यामायनः । १-२ सरण्यूः, ७-९ सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोती—तीदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश १
अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वी सवर्णामददुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद् यत् तदासी—दजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः २
सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ७
सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयस्वा—ऽनमीवा इष आ धेह्यस्मे ८
सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
सहस्रार्घमिळो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानेषु धेहि ९ १०८१

॥ १९४ ॥ (अथर्व० ७।१०।१)

शौनकः । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

यस्ते स्तनः शशयुर्यो मयोभूर्यः सुम्नयुः सुहवो यः सुदत्रः ।
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे कः १ १०८२

॥ १९५ ॥ (अथर्व० ७।११।१)

शौनकः । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

यस्ते पृथु स्तनयित्नुर्य ऋष्वो दैवः केतुर्विश्वमाभूषतीदम् ।
मा नो वधीर्विद्युता देव सस्यं मोत वधी रश्मिभिः सूर्यस्य १ १०८३

॥ १९६ ॥ (अथर्व० ७।५७।१-२)

वामदेवः । सरस्वती । जगती ।

यदाशसा वदतो मे विचुक्षुभे यद् याचमानस्य चरतो जनाँ अनु ।
यदात्मनि तन्वो मे विरिष्टं सरस्वती तदा पृणद् घृतेन १
सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवृतन्नृतानि ।
उभे इदस्योभे अस्य राजत उभे यतेते उभे अस्य पुष्यतः २ १०८९

॥ १९७ ॥ (अथर्व० ७।६८।१-३)

शन्तातिः । सरस्वती । १ अनुष्टुप्, २ त्रिष्टुप्, ३ गायत्री ।

सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु । जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः १ १०९०
इदं ते हव्यं घृतवत् सरस्वतीदं पितॄणां हविरास्यं यत् ।
इमानि त उदिता शंतमानि तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम २
शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वति । मा ते युयोम संदृशः ३ १०९१

॥ १९८ ॥ (वा० य० १०।१-४,६,१९)

(आपः ।)

अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नूर्जस्वती राजस्वश्चितानाः ।
याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिञ्चन् याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः १
वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि वृषसेनोऽसि
राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि २
अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहार्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं
मे दत्त स्वाहौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहापः
परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहापां पतिरसि राष्ट्रदा
राष्ट्रममुष्मै देह्यपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहापां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ३ १०९५
सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त सूर्यवर्चस स्थ
राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त
स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा व्रजक्षित स्थ
राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त
शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शक्वरी स्थ राष्ट्रदा
राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा

जनभृतं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मैं दत्त विश्वभृतं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा विश्वभृतं स्थ राष्ट्रदा
राष्ट्रममुष्मैं दत्तापः स्वराजं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मैं दत्त । मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्तां महि क्षत्रं
क्षत्रियाय वन्वाना अनाधृष्टाः सीदत सहौजसो महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः ४

सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।
अनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य दात्रमसि स्वाहा राजस्वः ६
प्र पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठान्नावश्चरन्ति स्वसिचं इयानाः ।
ता आववृत्रन्नधरागुदक्ता अहिं बुध्न्यमनु रीयमाणाः १९ १०९८

॥ १९९ ॥ (वा० य० ११।३८)

(आपः ।)

अपो देवीरुपसृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः ।
तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः ३८ १०९९

॥ २०० ॥ (वा० य० १२।३५,५१)

(आपः ।)

आपो देवीः प्रतिगृभ्णीत भस्मैतत् स्योने कृणुध्वं सुरभा उ लोके ।
तस्मै नमन्तां जनयः सुपत्नीर्मातेव पुत्रं बिभृताप्स्वेनत् ३५ ११००
ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
जन्मन् देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ५५ ११०१

॥ २०१ ॥ (वा० य० १४।८)

(आपः ।)

अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि दिवो वृष्टिमेरय ८ ११०२

॥ २०२ ॥ (वा० य० २०।१८-२०,२२-२३)

(आपः ।)

यदापो अघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च ।
अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः ।
अव देवैर्देवकृतमेनोऽयक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि १८
समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः ।
सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः १९
द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः २० ११०५

अपो अद्यान्वचारिषं रसेन समसृक्ष्महि ।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा प्रजया च धनेन च　२२
एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि　२३　१०१७

अन्नादिकम् । (११०८-११२१)

॥ २०३ ॥ (ऋ० १।१८७।१-११)

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अन्नं । १ अनुष्टुब्गर्भा उष्णिक्; ३,५-७,११ अनुष्टुप्; (११ बृहती वा); २,४,८-१० गायत्री ।

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् । यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत्+　१
स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे । अस्माकमविता भव　२
उप नः पितवा चर शिवः शिवाभिरूतिभिः । मयोभुरद्विषेण्यः सखा सुशेवो अद्वयाः३　१११०
तव त्ये पितो रसा रजांस्यनु विष्ठिताः । दिवि वाता इव श्रिताः　४
तव त्ये पितो ददत स्तव स्वादिष्ठ ते पितो । प्र स्वाद्मानो रसानां तुविग्रीवा इवेरते ५
त्वे पितो महानां देवानां मनो हितम् । अकारि चारु केतुना तवाहिमवसावधीत्　६
यददो पितो अजगन् विवस्व पर्वतानाम् । अत्रा चिन्नो मधो पितो ऽरं भक्षाय गम्याः ७
यदपामोषधीनां परिंशमारिशामहे । वातापे पीव इद् भव　८　१११५
यत् ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे । वातापे पीव इद् भव　९
करम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथिः । वातापे पीव इद् भव　१०
तं त्वा वयं पितो वचोभि र्गावो न हव्या सुषूदिम ।
देवेभ्यस्त्वा सधमाद मस्मभ्यं त्वा सधमादम्　११　१११८

॥ २०४ ॥ (अथर्व० ६।७१।१-३)

ब्रह्मा । अग्निः, २ वैश्वानरः, देवाः (अन्नम्) । जगती, ३ त्रिष्टुप् ।

यदन्नमद्मि बहुधा विरूपं हिरण्यमश्वमुत गामजामविम् ।
यदेव किं च प्रतिजग्रहाहमग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु　१
यन्मा हुतमहुतमाजगाम दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः ।
यस्मान्मे मन उदिव रारजीत्यग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु　२
यदन्नमद्म्यनृतेन देवा दास्यन्नदास्यन्नुत संगृणामि ।
वैश्वानरस्य महतो महिम्ना शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम्　३　११२१

+ ऋ० १,१८७,१; वा० य० ३४,७; काण्व ३३,२ ।

*

॥ २०५ ॥ (अथर्व० ७।५८।१-२)

कौरुपथिः । इन्द्रावरुणौ (अन्नम्) । १ जगती, २ त्रिष्टुप् ।

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रतौ ।
युवो रथो अध्वरो देववीतये प्रति स्वसरमुप यातु पीतये १
इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।
इदं वामन्धः परिषिक्तमासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयेथाम् २ ११२३

॥ २०६ ॥ (अथर्व० ६।१४२।१-३)

विश्वामित्रः । वायुः (अन्नसमृद्धिः) । अनुष्टुप् ।

उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसा यव । मृणीहि विश्वा पात्राणि मा त्वा दिव्याशनिर्वधीत् १
आशृण्वन्तं यवं देवं यत्र त्वाच्छावदामसि । तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवैध्यक्षितः २ ११२५
अक्षितास्त उपसदोऽक्षिताः सन्तु राशयः । पृणन्तो अक्षिताः सन्त्वत्तारः सन्त्वक्षिताः ३ ११२६

॥ २०७ ॥ (अथर्व० ११।३।१-५६)

[प्रथमः पर्यायः । १-३१]

अथर्वा । ओदनः (बार्हस्पत्यौदनः) ।

१,१४ आसुरी गायत्री; २ त्रिपदा समविषमा गायत्री; ३, ६,१० आसुरी पङ्क्तिः; ४,८ साम्न्यनुष्टुप्; ५,१३,१५,२५ साम्न्युष्णिक्; ७,१९-२२ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ९,१७-१८ आसुर्यनुष्टुप्; ११ भुरिगार्च्यनुष्टुप्, १२ याजुषी जगती; १६,२३ आसुरी बृहती, २४ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती; २६ आर्च्युष्णिक्; २७-२९ साम्नी बृहती (२८-२९ भुरिक्); ३० याजुषी त्रिष्टुप्, ३१ अल्पशः पङ्क्तिरुत याजुषी।

तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम् १
द्यावापृथिवी श्रोत्रे सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी सप्तऋषयः प्राणापानाः २
चक्षुर्मुसलं काम उलूखलम् । ३ । दितिः शूर्पमदितिः शूर्पग्राही वातोऽपाविनक् ४ ११३०
अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः ५
कब्रु फलीकरणाः शरोऽभ्रम् ६
श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ७
त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ८
खलः पात्रं स्फ्यावंसावीषे अनूक्ये । ९ । आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्राः १०
इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम् ११
सीताः पर्शवः सिकता ऊबध्यम् । १२ । ऋतं हस्तावनेजनं कुल्योपसेचनम् १३ ११३९

ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता १४ ११४०
ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा । १५ । बृहदायवनं रथन्तरं दर्विः १६
ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धते । १७ । चरुं पञ्चबिलमुखं घर्मो३भीन्धे १८
ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकाः समाप्याः १९ ११४५
यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भूमिस्त्रयोऽवरपरं श्रिताः २०
यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः २१
तं त्वौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् २२
स य ओदनस्य महिमानं विद्यात् २३
नाल्प इति ब्रूयान्नानुपसेचन इति नेदं च किं चेति २४ ११५०
यावद् दाताभिमनस्येत तन्नाति वदेत् २५
ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदनं प्राशी३ः प्रत्यञ्चा३मिति २६
त्वमोदनं प्राशी३स्त्वामोदना३ इति २७
पराञ्चं चैनं प्राशीः प्राणास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह २८
प्रत्यञ्चं चैनं प्राशीरपानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह २९ ११५५
नैवाहमोदनं न मामोदनः । ३० । ओदन एवौदनं प्राशीत् ३१ ११५७

[द्वितीयः पर्यायः । ३२-४९]

मन्त्रोक्ताः । ३२,३८,४१ (प्रथमा), ३२-४९ (सप्तमी) साम्नी त्रिष्टुप्; ३२,३५,४२ (द्वितीया), ३२-४९ (तृतीया), ३३-३४,४४-४८ (पञ्चमी) एकपदाऽऽसुरी गायत्री; ३२,४१,४३,४७ दैवी जगती; ३८,४४,४६ (द्वि०), ३२,३५-४३,४९ (पञ्चमी। एकपदाऽऽसुर्यनुष्टुप्; ३२-४९ (षष्ठी) साम्न्यनुष्टुप्; ३३-४९ (प्र०) आर्च्यनुष्टुप्; ३७ (प्र०) साम्नी पङ्क्तिः ३३,३६,४०, ४७-४८ (द्वि०) आसुरी जगती; ३४,३७,४१,४३,४५ (द्वि०) आसुरी पङ्क्तिः; ३४ (चतुर्थी) आसुरी त्रिष्टुप्; ३५,४३,४८ (च०) याजुषी गायत्री; ३६-३७,४० (च०) दैवी पङ्क्तिः; ३८-३९ (च०) प्राजापत्या गायत्री; ३९ (द्वि०)आसुर्युष्णिक्; ४२,४५,४९ (चतुर्थी) दैवी त्रिष्टुप्; ४९ (द्वि०) एकपदा भुरिक्साम्नी बृहती ।

ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।१।
ज्येष्ठतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ।२।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।३।
बृहस्पतिना शीर्ष्णा ।४। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।५।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।६।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।७। ३२ ११५८

ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।१।
बधिरो भविष्यसीत्येनमाह ।२। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।३।
द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम् ।४। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।५।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।६।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।७। ३३

ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।१।
अन्धो भविष्यसीत्येनमाह ।२। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।३।
सूर्याचन्द्रमसाभ्यामक्षीभ्याम् ।४। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।५।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।६।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।७। ३४ ११६०

ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।१।
मुखतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ।२। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।३।
ब्रह्मणा मुखेन ।४। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।५।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।६।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।७। ३५

ततश्चैनमन्यया जिह्वया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।१।
जिह्वा ते मरिष्यतीत्येनमाह ।२। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।३।
अग्नेर्जिह्वया ।४। तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् ।५।
एष वा ओदनः सर्वाङ्ग सर्वपरुः सर्वतनूः ।६।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।७। ३६

ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।१।
दन्तास्ते शत्स्यन्तीत्येनमाह ।२। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।३।
ऋतुभिर्दन्तैः ।४। तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् ।५।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।६।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।७। ३७ ११६१

ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।१।
प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ।२। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।३।

सप्तर्षिभिः प्राणापानैः ।४। तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् ।५।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।६।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।७। ३८

ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।१।
राजयक्ष्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।२। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।३।
अन्तरिक्षेण व्यचसा ।४। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।५।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।६।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।७। ३९ ११६५

ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।१।
विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।२। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।३।
दिवा पृष्ठेन ।४। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।५।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।६।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः स भवति य एवं वेद ।७। ४०

ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।१।
कृष्या न रात्स्यसीत्येनमाह ।२। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।३।
पृथिव्योरसा ।४। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।५।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।६।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।७। ४१

ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।१।
उदरदारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।२। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।३।
सत्येनोदरेण ।४। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।५।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।६।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।७। ४२ ११६८

ततश्चैनमन्येन वस्तिना प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।१।
अप्सु मरिष्यसीत्येनमाह ।२। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।३।
समुद्रेण वस्तिना ।४। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।५।

एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।६।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।७। ४३
ततश्चैनमन्याभ्यामूरुभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।१।
ऊरू ते मरिष्यत इत्येनमाह ।२। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।३।
मित्रावरुणयोरूरुभ्याम् ।४। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।५।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।६।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।७। ४४ ११७०
ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।१।
स्रामो भविष्यसीत्येनमाह ।२। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।३।
त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम् ।४। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।५।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।६।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।७। ४५
ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।१।
बहुचारी भविष्यसीत्येनमाह ।२। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।३।
अश्विनोः पादाभ्याम् ।४। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।५।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।६।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।७। ४६
ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।१।
सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।२। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।३।
सवितुः प्रपदाभ्याम् ।४। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।५।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।६।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।७। ४७
ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।१।
ब्राह्मणं हनिष्यसीत्येनमाह ।२। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।३।
ऋतस्य हस्ताभ्याम् ।४। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।५।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।६।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।७। ४८ ११७४

तत॑श्चैनम॒न्यया॑ प्रति॒ष्ठया॑ प्राशी॒र्यया॑ चै॒तं पूर्व॒ ऋष॑यः॒ प्राश्न॑न् ।१।
अ॒प्र॒ति॒ष्ठा॒नो॑ऽनायत॒नो म॑रिष्यसी॒त्ये॑नमाह ।२।
तं वा अ॒हं नार्वाञ्चं॒ न परा॑ञ्चं॒ न प्र॒त्यञ्च॑म् ।३।
स॒त्ये प्र॑ति॒ष्ठाय॑ ।४। तयै॑न॒ं प्राशि॑षं॒ तयै॑नमजीगमम् ।५।
ए॒ष वा ओ॑द॒नः सर्वा॑ङ्गः॒ सर्व॑परुः॒ सर्व॑तनूः ।६।
सर्वा॑ङ्ग ए॒व सर्व॑परुः॒ सर्व॑तनूः॒ सं भ॑वति॒ य ए॒वं वेद॑ ।७। ४९ ११७९

[तृतीयः पर्यायः । ५०-५६]

मन्त्रोक्ताः । ५० आसुर्यनुष्टुप्; ५१ आर्च्युष्णिक्; ५१ त्रिपदा भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप्; ५३ आसुरी बृहती; ५४ द्विपदा भुरिक् साम्नी बृहती; ५५ साम्न्युष्णिक्; ५६ प्राजापत्या बृहती ।

ए॒तद् वै ब्र॒ध्नस्य॑ वि॒ष्टपं॒ यदो॑द॒नः ५०
ब्र॒ध्नलो॑को भवति ब्र॒ध्नस्य॑ वि॒ष्टपि॑ श्रयते॒ य ए॒वं वेद॑ ५१
ए॒तस्मा॒द् वा ओ॑द॒नात् त्रय॑स्त्रिंशतं लो॒कान् निर॑मिमीत प्र॒जाप॑तिः ५२
तेषां॑ प्र॒ज्ञाना॑य य॒ज्ञम॑सृजत ५३
स य ए॒वं वि॒दुष॑ उपद्र॒ष्टा भ॑वति प्रा॒णं रु॑णद्धि ५४ ११८०
न च॑ प्रा॒णं रु॒णद्धि॑ सर्वज्या॒निं जी॑यते ५५
न च॑ सर्वज्या॒निं जी॑यते॒ पुरै॑नं ज॒रसः॑ प्रा॒णो ज॑हाति ५६ ११८१

॥ २०८ ॥ (अथर्व० ९।५।१-३८)

भृगुः । पञ्चौदनोऽजः; मन्त्रोक्ताः । त्रिष्टुप्; ३ चतुष्पदा पुरोऽतिशक्करी जगती, ४,१० जगती; १४,१७,२७-३० अनुष्टुप् (३० ककुम्मती); १६ त्रिपदाऽनुष्टुप्; १८,३७ त्रिपदा विराड् गायत्री; २३ पुर उष्णिक्; २४ पञ्चपदाऽनुष्टुबुष्णिग्गर्भोपरिष्टाद्विराड् जगती; २०-२२,२६ पञ्चपदाऽनुष्टुबुष्णिग्गर्भोपरिष्टाद्बार्हता भुरिक्; ३१ सप्तपदाऽष्टिः; ३२-३५ दशपदा प्रकृतिः, ३६ दशपदाऽऽकृतिः; ३८ एकावसाना द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप् ।

आ न॑यैतमा र॑भस्व सु॒कृतां॑ लो॒कमपि॑ गच्छतु प्रजा॒नन् ।
ती॒र्त्वा तमां॑सि बहु॒धा म॒हान्त्य॒जो नाक॒मा क्र॑मतां तृ॒तीय॑म् १
इन्द्रा॑य भा॒गं परि॑ त्वा नया॒म्य॒स्मिन् य॒ज्ञे यज॑मानाय सू॒रिम् ।
ये नो॑ द्वि॒षन्त्यनु॒ तान् र॑भस्वाना॑गसो॒ यज॑मानस्य वी॒राः २ ११८४

प्र पदोऽव नेनिग्धि दुश्चरितं यच्चचार शुद्धैः शफैरा क्रमतां प्रजानन्।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा विपश्यन्नजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ३ ११८५
अनु च्छ्य श्यामेन त्वचमेतां विशस्तर्यथापर्वसिना माभि मंस्थाः।
माभि द्रुहः परुशः कल्पयैनं तृतीये नाके अधि वि श्रयैनम् ४
ऋचा कुम्भीमध्यग्नौ श्रयाम्या सिञ्चोदकमव धेह्येनम्।
पर्याधत्ताग्निना शमितारः शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ५
उत् क्रामातः परि चेदतप्तस्तप्ताच्चरोरधि नाकं तृतीयम्।
अग्नेरग्निरधि सं बभूविथ ज्योतिष्मन्तमभि लोकं जयैतम् ६
अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुरजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिंल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ७
पञ्चौदनः पञ्चधा वि क्रमतामाक्रंस्यमानस्त्रीणि ज्योतींषि।
ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ८ ११९०
अजा रोह सुकृतां यत्र लोकः शरभो न चत्तोऽति दुर्गाण्येषः।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानः स दातारं तृप्त्या तर्पयाति ९
अजस्त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे नाकस्य पृष्ठे ददिवांसं दधाति।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघास्येका १०
एतद् वो ज्योतिः पितरस्तृतीयं पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिंल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ११
ईजानानां सुकृतां लोकमीप्सन् पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति।
स व्याप्तिमभि लोकं जयैतं शिवोऽस्मभ्यं प्रतिगृहीतो अस्तु १२
अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकाद् विप्रो विप्रस्य सहसो विपश्चित्।
इष्टं पूर्तमभिपूर्तं वषट्कृतं तद् देवा ऋतुशः कल्पयन्तु १३ ११९५
अमोतं वासो दद्याद्धिरण्यमपि दक्षिणाम्।
तथा लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः १४
एतास्त्वाजोप यन्तु धाराः सोम्या देवीर्घृतपृष्ठा मधुश्चुतः।
स्तभान पृथिवीमुत द्यां नाकस्य पृष्ठेऽधि सप्तरश्मौ १५
अजोऽस्यज स्वर्गोऽसि त्वया लोकमङ्गिरसः प्राजानन्। तं लोकं पुण्यं प्र ज्ञेषम् १६
येना सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम्। तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे १७ ११९९

अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति पञ्चौदनो निर्ऋतिं बाधमानः ।
तेन लोकान्त्सूर्यवतो जयेम १८ १२००
यं ब्राह्मणे निदधे यं च विक्षु या विप्रुष ओदनानामजस्य ।
सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके जानीतान्नः संगमने पथीनाम् १९
अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत तस्योर इयमभवद् द्यौः पृष्ठम् ।
अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी २०
सत्यं चर्तं च चक्षुषी विश्वं सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट् शिरः ।
एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चौदनः २१
अपरिमितमेव यज्ञमाप्नोत्यपरिमितं लोकमव रुन्धे ।
योऽ३जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति २२
नास्यास्थीनि भिन्द्यान्न मज्ज्ञो निर्धयेत् । सर्वमेनं समादायेदमिदं प्र वेशयेत् २३ १२०५
इदमिदमेवास्य रूपं भवति तेनैनं सं गमयति ।
इषं मह ऊर्जमस्मै दुहे योऽ३जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति २४
पञ्च रुक्मा पञ्च नवानि वस्त्रा पञ्चास्मै धेनवः कामदुघा भवन्ति ।
योऽ३जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति २५
पञ्च रुक्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति वर्म वासांसि तन्वे भवन्ति ।
स्वर्गं लोकमश्नुते योऽ३जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति २६
या पूर्वं पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दतेऽपरम् । पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः २७
समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः । योऽ३जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति २८ १२१०
अनुपूर्ववत्सां धेनुमनड्वाहमुपबर्हणम् । वासो हिरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम् २९
आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् । जायां जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुप ह्वये ३०
यो वै नैदाघं नामर्तुं वेद । एष वै नैदाघो नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽ३जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ३१
यो वै कुर्वन्तं नामर्तुं वेद । कुर्वतींकुर्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै कुर्वन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽ३जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ३२ १२१४

*

यो वै संयन्तं नामर्तुं वेद । संयतींसंयतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै संयन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
यो३जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ३३ १११५
यो वै पिन्वन्तं नामर्तुं वेद । पिन्वतींपिन्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै पिन्वन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
यो३जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ३४
यो वा उद्यन्तं नामर्तुं वेद । उद्यतींमुद्यतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वा उद्यन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
यो३जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ३५
यो वा अभिभुवं नामर्तुं वेद ।
अभिभवन्तीमभिभवन्तीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वा अभिभूर्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
यो३जं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ३६
अजं च पचत पञ्च चौदनान् ।
सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीः सान्तर्देशाः प्रति गृह्णन्तु त एतम् ३७
तास्ते रक्षन्तु तव तुभ्यमेतं ताभ्य आज्यं हविरिदं जुहोमि ३८ १११०

॥१०९॥ (अथर्व० ४।३४।१-८)

अथर्वा । ब्रह्मौदनम् । त्रिष्टुप्, ४ उत्तमा भुरिक्, ५ त्र्यवसाना सप्तपदा कृतिः;
६ पञ्चपदातिशक्वरी, ७ भुरिक् शक्वरी, ८ जगती ।

ब्रह्मास्य शीर्षं बृहदस्य पृष्ठं वामदेव्यमुदरमोदनस्य
छन्दांसि पक्षौ मुखमस्य सत्यं विष्टारी जातस्तपसोऽधि यज्ञः १
अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम् ।
नैषां शिश्नं प्र दहति जातवेदाः स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम् २
विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनानवर्तिः सचते कदा चन ।
आस्ते यम उप याति देवान्त्सं गन्धर्वैर्मदते सोम्येभिः ३ १११३

विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनान् यमः परि मुष्णाति रेतः ।
रथी ह भूत्वा रथयान ईयते पक्षी ह भूत्वाति दिवः समेति ४
एष यज्ञानां विततो वहिष्ठो विष्टारिणं पक्त्वा दिवमा विवेश ।
आण्डीकं कुमुदं सं तनोति बिसं शालूकं शफको मुलाली ।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ५ १२२५
घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना ।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ६
चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि क्षीरेण पूर्णाँ उदकेन दध्ना ।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ७
इममोदनं नि दधे ब्राह्मणेषु विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम् ।
स मे मा क्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु ८ १२२८

॥ २१० ॥ (अथर्व० ११।१।१-३७)

ब्रह्मा। ओदनः (ब्रह्मौदनम्)। त्रिष्टुप्; १ अनुष्टुब्गर्भा भुरिक्पङ्क्तिः; २ बृहतीगर्भा विराट्; ३ चतुष्पदा शाक्करगर्भा जगती; ४,१५-१६,२३,३१ भुरिक्; ५ बृहतीगर्भा विराट्; ६ उष्णिक्; ८ विराड् गायत्री; ९ शाक्करातिजागतगर्भा जगती; १० विराट् पुरोऽतिजगती विराड्जगती; ११ जगती; १७,२१,२४-२६,३७ विराड् जगती; १८ अतिजागतगर्भा परातिजागता विराडतिजगती; २० अतिजागतगर्भा परा शाक्करा चतुष्पदा भुरिग्जगती; २७ अतिजागतगर्भा जगती; ३५ चतुष्पदा ककुम्मत्युष्णिक्; ३६ पुरोविराट्
(व्याघ्रादिष्ववगन्तव्या)

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह १
कृणुत धूमं वृषणः सखायोऽद्रोघाविता वाचमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवा असहन्त दस्यून् २ १२३०
अग्नेऽजनिष्ठा महते वीर्याय ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वाजीजनन्नस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ३ १२३१

समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व विद्वान् देवान् यज्ञियाँ एह वक्षः।
तेभ्यो हविः श्रपयं जातवेद उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ४
त्रेधा भागो निहितो यः पुरा वो देवानां पितॄणां मर्त्यानाम्।
अंशान् जानीध्वं वि भजामि तान् वो यो देवानां स इमां पारयाति ५
अग्ने सहस्वानभिभूरभीदसि नीचो न्युब्ज द्विषतः सपत्नान्।
इयं मात्रा मीयमाना मिता च सजातांस्ते बलिहृतः कृणोतु ६
साकं सजातैः पयसा सहैध्युदुब्जैनां महते वीर्याय।
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति ७ ११३१
इयं मही प्रति गृह्णातु चर्म पृथिवी देवी सुमनस्यमाना।
अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ८
एतौ ग्रावाणौ सयुजा युङ्ग्धि चर्मणि निर्भिन्ध्यंशून् यजमानाय साधु।
अवघ्नती नि जहि य इमां पृतन्यव ऊर्ध्वं प्रजामुद्भरन्त्युदूह ९
गृहाण ग्रावाणौ सकृतौ वीर हस्त आ ते देवा यज्ञिया यज्ञमगुः।
त्रयो वरा यतमांस्त्वं वृणीषे तास्ते समृद्धीरिह राधयामि १०
इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रं गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा।
परा पुनीहि य इमां पृतन्यवोऽस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ११
उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयं वि विच्यध्वं यज्ञियासस्तुषैः।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि १२ ११४०
परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठोऽध्यरुक्षद् भराय।
तासां गृह्णीताद् यतमा यज्ञिया असन् विभाज्य धीरीतरा जहीतात् १३
एमा अगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय १४
ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः।
अयं यज्ञो गातुविन्नाथवित् प्रजाविदुग्रः पशुविद् वीरविद् वो अस्तु १५
अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षच्छुचिस्तपिष्ठस्तपसा तपैनम्।
आर्षेया दैवा अभिसंगत्य भागमिमं तपिष्ठा ऋतुभिस्तपन्तु १६
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः।
अदुः प्रजां बहुलान् पशून् नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम् १७ ११४५

ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस्तण्डुला यज्ञिया इमे ।

अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वश्चरुरिमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम् १८

उरुः प्रथस्व महता महिम्ना सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके ।

पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि १९

सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः ।

अमूंस्त आ दधामि प्रजया रेषयैनान् बलिहाराय मृडतान्मह्यमेव २०

उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम् ।

श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि २१

अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां प्रत्यङेनां देवताभिः सहैधि ।

मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज २२ १२५०

ऋतेन तष्टा मनसा हितैषा ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरग्रे ।

अंसध्रीं शुद्धामुप धेहि नारि तत्रौदनं सादय दैवानाम् २३

अदितेर्हस्तां स्रुचमेतां द्वितीयां सप्तऋषयो भूतकृतो यामकृण्वन् ।

सा गात्राणि विदुष्योदनस्य दर्विर्वेद्यामध्येनं चिनोतु २४

शृतं त्वा हव्यमुप सीदन्तु दैवा निःसृप्याग्नेः पुनरेनान् प्र सीद ।

सोमेन पूतो जठरे सीद ब्रह्मणामार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः २५

सोम राजन्त्संज्ञानमा वपैभ्यः सुब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।

ऋषीनार्षेयांस्तपसोऽधि जातान् ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि २६

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।

यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिदं मे २७ १२५५

इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात् कामदुघा म एषा ।

इदं धनं नि दधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः २८

अग्नौ तुषाना वप जातवेदसि परः कम्बूकाँ अप मृड्ढि दूरम् ।

एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागमथो विद्म निर्ऋतेर्भागधेयम् २९

श्राम्यतः पचतो विद्धि सुन्वतः पन्थां स्वर्गमधि रोहयैनम् ।

येन रोहात् परमापद्य यद् वय उत्तमं नाकं परमं व्योम ३०

बभ्रेरध्वर्यो मुखमेतद् वि मृड्ढ्याज्याय लोकं कृणुहि प्रविद्वान् ।

घृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ३१ १२५९

बभ्रे रक्षः समदमा वपैभ्योऽब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।
पुरीषिणः प्रथमानाः पुरस्तादार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः　३२　११६०
आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वा नानार्षेयाणामप्यस्त्यत्र ।
अग्निर्मे गोप्ता मरुतश्च सर्वे विश्वे देवा अभि रक्षन्तु पक्वम्　३३
यज्ञं दुहानं सदमित् प्रपीनं पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम् ।
प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम　३४
वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयान् गच्छ ।
सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम्　३५
समाचिनुष्वानुसंप्रयाह्यग्ने पथः कल्पय देवयानान् ।
एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ　३६
येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन् ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम्　३७　११६५

॥ १११ ॥ (अथर्व० ६।११६।१-३)
जाटिकायनः । विवस्वान् (मधुमदन्नम्) । जगती, २ त्रिष्टुप् ।

यद् यामं चक्रुर्निखनन्तो अग्रे कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया ।
वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम्　१
वैवस्वतः कृणवद् भागधेयं मधुभागो मधुना सं सृजाति ।
मातुर्यदेन इषितं न आगन् यद् वा पितापराद्धो जिहीडे　२
यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन् ।
यावन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः　३　११६८

॥ ११२ ॥ (अथर्व० ७।३७।१)
अथर्वा । वासः । अनुष्टुप् ।

अभि त्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा ।
यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन　१　११६९

॥ ११३ ॥ (वा० य० ४।२,१०)
(वासः ।)

दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवा१ शग्मां परिदधे भद्रं वर्णं पुष्यन्　२　११७०
विष्णोः शर्मासि शर्म यजमानस्येन्द्रस्य योनिरसि सुसस्याः कृषीस्कृधि　१०　११७१

॥ ११४ ॥ (अथर्व० ११।३।१-६०)

यमः । स्वर्गः, ओदनः, अग्निः (स्वर्गौदनः) । त्रिष्टुप्; १,४२-४३, ४७ भुरिक्; ८,१२,२१-२२, २४ जगती; १३,१७ स्वराडार्षी पङ्क्तिः; ३४ विराड्गर्भा; ३९ अनुष्टुब्गर्भा; ४४ पराबृहती; ५५-६० त्र्यवसाना सप्तपदा शङ्कुमत्यतिजागतशाक्वराति-शाक्वरधात्यंगर्भातिधृतिः (५५,५७-६० कृतिः, ५६ विराट् कृतिः)।

पुमान् पुंसोऽधि तिष्ठ चर्मेहि तत्र ह्वयस्व यतमा प्रिया ते ।
यावन्तावग्रे प्रथमं समेयथुस्तद् वां वयो यमराज्ये समानम् १
तावद् वां चक्षुस्तति वीर्याणि तावत् तेजस्ततिधा वाजिनानि ।
अग्निः शरीरं सचते यदैधोऽधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः २
समस्मिंल्लोके समु देवयाने सं स्मा समेतं यमराज्येषु ।
पूतौ पवित्रैरुप तद्ध्वयेथां यद्यद् रेतो अधि वां संबभूव ३
आपस्पुत्रासो अभि सं विशध्वमिमं जीवं जीवधन्याः समेत्य ।
तासां भजध्वममृतं यमाहुर्यमोदनं पचति वां जनित्री ४ १२७५
यं वां पिता पचति यं च माता रिप्रान्निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः ।
स ओदनः शतधारः स्वर्ग उभे व्याप नभसी महित्वा ५
उभे नभसी उभयांश्च लोकान् ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः ।
तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्रे तस्मिन् पुत्रैर्जरसि सं श्रयेथाम् ६
प्राचींप्राचीं प्रदिशमा रभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दंपती सं श्रयेथाम् ७
दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ पर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत् ।
तस्मिन् वां यमः पितृभिः संविदानः पक्वाय शर्म बहुलं नि यच्छात् ८
प्रतीची दिशामियमिद् वरं यस्यां सोमो अधिपा मृडिता च ।
तस्यां श्रयेथां सुकृतः सचेथामधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ९ १२८०
उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद् दिशामुदीची कृणवन्नो अग्रम् ।
पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सं भवेम १०
ध्रुवेयं विराण्नमो अस्त्वस्यै शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु ।
सा नो देव्यदिते विश्ववार इर्य इव गोपा अभि रक्ष पक्वम् ११
पितेव पुत्रानभि सं स्वजस्व नः शिवा नो वाता इव वान्तु भूमौ ।
यमोदनं पचतो देवते इह तं नस्तप उत सत्यं च वेत्तु १२ १२८३

यद्यत् कृष्णः शकुन एह गत्वा त्सरन् विषक्तं बिल आससाद ।
यद् वा दास्यार्द्रहस्ता समङ्क्त उलूखलं मुसलं शुम्भतापः १३
अयं ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः पूतः पवित्रैरप हन्तु रक्षः ।
आ रोह चर्म महि शर्म यच्छ मा दंपती पौत्रमघं नि गाताम् १४ ११८५
वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचाँ अपबाधमानः ।
स उच्छ्रयातै प्र वदाति वाचं तेन लोकाँ अभि सर्वान् जयेम १५
सप्त मेधान् पशवः पर्यगृह्णन् य एषां ज्योतिष्माँ उत यश्चकर्श ।
त्रयस्त्रिंशद् देवतास्तान्त्सचन्ते स नः स्वर्गमभि नेष लोकम् १६
स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्रैः स्याम ।
गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः १७
ग्राहिं पाप्मानमति ताँ अयाम तमो व्यस्य प्र वदासि वल्गु ।
वानस्पत्य उद्यतो मा जिहिंसीर्मा तण्डुलं वि शरीर्देवयन्तम् १८
विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ।
वर्षवृद्धमुप यच्छ शूर्पं तुषं पलावानप तद् विनक्तु १९ ११९०
त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन द्यौरेवासौ पृथिव्य१न्तरिक्षम् ।
अंशून् गृभीत्वान्वारभेथामा प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्पम् २०
पृथग् रूपाणि बहुधा पशूनामेकरूपो भवसि सं समृद्ध्या ।
एतां त्वचं लोहिनीं तां नुदस्व ग्रावा शुम्भाति मलग इव वस्त्रा २१
पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि तनूः समानी विकृता त एषा ।
यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन तेन मा सुस्रोर्ब्रह्मणापि तद् वपामि २२
जनित्रीव प्रति हर्यासि सूनुं सं त्वा दधामि पृथिवीं पृथिव्या ।
उखा कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्ठा यज्ञायुधैराज्येनातिषक्ता २३
अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्तादिन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुत्वान् ।
वरुणस्त्वा दृंहाद्धरुणे प्रतीच्या उत्तरात् त्वा सोमः सं ददातै २४ ११९५
पूताः पवित्रैः पवन्ते अभ्राद् दिवं च यन्ति पृथिवीं च लोकान् ।
ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः पात्र आसिक्ताः पर्यग्निरिन्धाम् २५
आ यन्ति दिवः पृथिवीं सचन्ते भूम्याः सचन्ते अध्यन्तरिक्षम् ।
शुद्धाः सतीस्ता उ शुम्भन्त एव ता नः स्वर्गमभि लोकं नयन्तु २६ ११९७

उतेव प्रभ्वीरुत संमितास उत शुक्राः शुचयश्चामृतासः ।
ता ओदनं दंपतिभ्यां प्रशिष्टा आपः शिक्षन्तीः पचता सुनाथाः ॥ २७
संख्याता स्तोकाः पृथिवीं सचन्ते प्राणापानैः संमिता ओषधीभिः ।
असंख्याता ओप्यमानाः सुवर्णाः सर्वं व्यापुः शुचयः शुचित्वम् ॥ २८
उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तप्ताः फेनमस्यन्ति बहुलांश्च बिन्दून् ।
योषेव दृष्ट्वा पतिमृत्वियायैतैस्तण्डुलैर्भवता समापः ॥ २९ १३००
उत्थापय सीदतो बुध्न एनानाद्भिरात्मानमभि सं स्पृशन्ताम् ।
अमासि पात्रैरुदकं यदेतन्मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ॥ ३०
प्र यच्छ पर्शुं त्वरया हरौषमहिंसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन् ।
यासां सोमः परि राज्यं बभूवामन्युता नो वीरुधो भवन्तु ॥ ३१
नवं बर्हिरोदनाय स्तृणीत प्रियं हृदश्चक्षुषो वल्ग्वस्तु ।
तस्मिन् देवाः सह दैवीर्विशन्त्विमं प्राश्नन्त्वृतुभिर्निषद्य ॥ ३२
वनस्पते स्तीर्णमा सीद बर्हिरग्निष्टोमैः संमितो देवताभिः ।
त्वष्ट्रेव रूपं सुकृतं स्वधित्यैना एहाः परि पात्रे ददृश्राम् ॥ ३३
षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् स्वः पक्वेनाभ्यश्नवातै ।
उपैनं जीवान् पितरश्च पुत्रा एतं स्वर्गं गमयान्तमग्नेः ॥ ३४ १३०५
धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या अच्युतं त्वा देवताश्च्यावयन्तु ।
तं त्वा दंपती जीवन्तौ जीवपुत्रावुद् वासयातः पर्यग्निधानात् ॥ ३५
सर्वान्त्समागा अभिजित्य लोकान् यावन्तः कामाः समतीतृपस्तान् ।
वि गाहेथामायवनं च दर्विरेकस्मिन् पात्रे अध्युद्धरैनम् ॥ ३६
उप स्तृणीहि प्रथय पुरस्ताद् घृतेन पात्रमभि घारयैतत् ।
वाश्रेवोस्रा तरुणं स्तनस्युमिमं देवासो अभिहिङ्कृणोत ॥ ३७
उपास्तरीरकरो लोकमेतमुरुः प्रथतामसमः स्वर्गः ।
तस्मिञ्छ्रयातै महिषः सुपर्णो देवा एनं देवताभ्यः प्र यच्छान् ॥ ३८
यद्यज्जाया पचति त्वत् परःपरः पतिर्वा जाये त्वत् तिरः ।
सं तत् सृजेथां सह वां तदस्तु संपादयन्तौ सह लोकमेकम् ॥ ३९ १३१०
यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते अस्मत् पुत्राः परि ये संबभूवुः ।
सर्वांस्ताँ उप पात्रे ह्वयेथां नाभिं जानानाः शिशवः समायान् ॥ ४० १३११

वसोर्या धारा मधुना प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः ।
सर्वास्ता अव रुन्धे स्वर्गः षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् ४१
निधिं निधिपा अभ्येनमिच्छादनीश्वरा अभितः सन्तु येऽन्ये ।
अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्गस्त्रिभिः काण्डैस्त्रीन्त्स्वर्गानरुक्षत् ४२
अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त ।
नुदाम एनमप रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम् ४३
आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदं घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि ।
शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम् ४४ ११२५
इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य यस्माल्लोकात् परमेष्ठी समाप ।
आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ग्ध्येष भागो अङ्गिरसो नो अत्र ४५
सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्म एतम् ।
मा नो द्यूतेऽव गान्मा समित्यां मा स्मान्यस्मा उत् सृजता पुरा मत् ४६
अहं पचाम्यहं ददामि ममेदु कर्मन् करुणेऽधि जाया ।
कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रोऽन्वारभेथां वय उत्तरावत् ४७
न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममान एति ।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति ४८
प्रियं प्रियाणां कृणवाम तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति ।
धेनुरनड्वान् वयोवय आयदेव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु ४९ ११२०
समग्नयो विदुरन्यो अन्यं य ओषधीः सचते यश्च सिन्धून् ।
यावन्तो देवा दिव्याऽतपन्ति हिरण्यं ज्योतिः पचतो बभूव ५०
एषा त्वचां पुरुषे सं बभूवानग्नाः सर्वे पशवो ये अन्ये ।
क्षत्रेणात्मानं परि धापयाथोऽमोतं वासो मुखमोदनस्य ५१
यदक्षेषु वदा यत् समित्यां यद् वा वदा अनृतं वित्तकाम्या ।
समानं तन्तुमभि संवसानौ तस्मिन्त्सर्वं शमलं सादयाथः ५२
वर्षं वनुष्वापि गच्छ देवांस्त्वचो धूमं पर्युत् पातयासि ।
विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ५३
तन्वं स्वर्गो बहुधा वि चक्रे यथा विद आत्मन्नन्यवर्णाम् ।
अपाजैत् कृष्णां रुशतीं पुनानो या लोहिनी तां ते अग्नौ जुहोमि ५४ ११२५

प्राच्यै त्वा दिशेऽग्नयेऽधिपतयेऽसिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ५५
दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ५६
प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये पृदाकवे रक्षित्रेऽन्नायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ५७
उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या इषुमत्यै ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ५८
ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये कल्माषग्रीवाय रक्षित्र ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ५९ १३३०
ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ६० १३३१

वाजीकरणम् । (१३३२-१३४५)

॥ ११५ ॥ (अथर्व० ४।४।१-८)

अथर्वा । वनस्पतिः; १-२ सूर्यः, प्रजापतिः; ४ इन्द्रः; ५ आपः, सोमः; ६ अग्निः सरस्वती, ब्रह्मणस्पतिः (वाजीकरणम्) । अनुष्टुप्, ४ पुर उष्णिक्, ६-७ भुरिक् ।

यां त्वा गन्धर्वो अखनद् वरुणाय मृतभ्रजे ।
तां त्वा वयं खनामस्योषधिं शेपहर्षणीम् १
उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः । उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना २
यथा स्म ते विरोहतोऽभितप्तमिवानति । ततस्ते शुष्मवत्तरमियं कृणोत्वोषधिः ३
उच्छुष्मौषधीनां सार ऋषभाणाम् । सं पुंसामिन्द्र वृष्ण्यमस्मिन् धेहि तनूवशिन् ४ १३३५
अपां रसः प्रथमजोऽथो वनस्पतीनाम् । उत सोमस्य भ्रातास्युतार्शमसि वृष्ण्यम् ५ १३३६

वसोर्या धारा मधुना प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः ।
सर्वास्ता अव रुन्धे स्वर्गः षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् ४१
निधिं निधिपा अभ्येनमिच्छादनीश्वरा अभितः सन्तु येऽन्ये ।
अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्गस्त्रिभिः काण्डैस्त्रीन्त्स्वर्गानरुक्षत् ४२
अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त ।
नुदाम एनमप रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम् ४३
आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदं घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि ।
शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम् ४४ ११।१५
इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य यस्माल्लोकात् परमेष्ठी समाप ।
आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ग्ध्येष भागो अङ्गिरसो नो अत्र ४५
सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्म एतम् ।
मा नो द्यूतेऽव गान्मा समित्यां मा स्मान्यस्मा उत् सृजता पुरा मत् ४६
अहं पचाम्यहं ददामि ममेदु कर्मन् करुणेऽधि जाया ।
कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रोऽन्वारभेथां वय उत्तरावत् ४७
न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममान एति ।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति ४८
प्रियं प्रियाणां कृणवाम तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति ।
धेनुरनड्वान् वयोवय आयदेव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु ४९ ११।१०
समग्नयो विदुरन्यो अन्यं य ओषधीः सचते यश्च सिन्धून् ।
यावन्तो देवा दिव्याऽतपन्ति हिरण्यं ज्योतिः पचतो बभूव ५०
एषा त्वचां पुरुषे सं बभूवानग्नाः सर्वे पशवो ये अन्ये ।
क्षत्रेणात्मानं परि धापयाथोऽमोतं वासो मुखमोदनस्य ५१
यदक्षेषु वदा यत् समित्यां यद् वा वदा अनृतं वित्तकाम्या ।
समानं तन्तुमभि संवसानौ तस्मिन्त्सर्वं शमलं सादयाथः ५२
वर्षं वनुष्वापि गच्छ देवांस्त्वचो धूमं पर्युत् पातयासि ।
विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ५३
तन्वं स्वर्गो बहुधा वि चक्रे यथा विद आत्मन्नन्यवर्णाम् ।
अपाजैत् कृष्णां रुशतीं पुनानो या लोहिनी तां ते अग्नौ जुहोमि ५४ ११।१५

प्राच्यै त्वा दिशेऽग्नयेऽधिपतयेऽसिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ५५
दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ५६
प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये पृदाकवे रक्षित्रेऽन्नायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ५७
उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या इषुमत्यै ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ५८
ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये कल्माषग्रीवाय रक्षित्र ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ५९ १३३०
ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ६० १३३१

वाजीकरणम् । (१३३२-१३४५)

॥ २१५ ॥ (अथर्व० ४।४।१-८)

अथर्वा । वनस्पतिः; १-२ सूर्यः, प्रजापतिः; ४ इन्द्रः; ५ आपः, सोमः; ६ अग्निः सरस्वती, ब्रह्मणस्पतिः (वाजीकरणम्) । अनुष्टुप्, ४ पुर उष्णिक्, ६-७ भुरिक् ।

यां त्वा गन्धर्वो अखनद् वरुणाय मृतभ्रजे ।
तां त्वा वयं खनामस्योषधिं शेपहर्षणीम् १
उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः । उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना २
यथा स्म ते विरोहतोऽभितप्तमिवानति । ततस्ते शुष्मवत्तरमियं कृणोत्वोषधिः ३
उच्छुष्मौषधीनां सार ऋषभाणाम् । सं पुंसामिन्द्र वृष्ण्यमस्मिन् धेहि तनूवशिन् ४ १३३५
अपां रसः प्रथमजोऽथो वनस्पतीनाम् । उत सोमस्य भ्रातास्युतार्शमसि वृष्ण्यम् ५ १३३६

अद्याग्ने अद्य सवितरद्य देवि सरस्वति । अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ६
आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।
क्रमस्वर्श इव रोहितमनवग्लायता सदा ७
अश्वस्याश्वतरस्याजस्य पेत्वस्य च ।
अथ ऋषभस्य ये वाजास्तानस्मिन् धेहि तनूवशिन् ८ १३३

॥ २१६ ॥ (अथर्व० ६।७२।१-३)

अथर्वाङ्गिराः । शेपोऽर्कः (वाजीकरणम्) । १ जगती, २ अनुष्टुप्, ३ भुरिक् ।

यथासितः प्रथयते वशाँ अनु वपूंषि कृण्वन्नसुरस्य मायया ।
एवा ते शेपः सहसायमर्कोऽङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु १ १३४
यथा पसस्तायादरं वातेन स्थूलभं कृतम् ।
यावत् परस्वतः पसस्तावत् ते वर्धतां पसः २
यावदङ्गीनं पारस्वतं हास्तिनं गार्दभं च यत् ।
यावदश्वस्य वाजिनस्तावत् ते वर्धतां पसः ३ १३४

॥ २१७ ॥ (अथर्व० ६।१०१।१-३)

अथर्वाङ्गिराः । ब्रह्मणस्पतिः (वाजीकरणम्) । अनुष्टुप् ।

आ वृषायस्व श्वसिहि वर्धस्व प्रथयस्व च । यथाङ्गं वर्धतां शेपस्तेन योषितमिज्जहि १
येन कृशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातुरम् । तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः २
आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।
क्रमस्वर्श इव रोहितमनवग्लायता सदा ३ १३४५

गर्भाधानम् । (१३४६--१४१३)

॥ २१८ ॥ (अथर्व० ५।२५।१-१३)

ब्रह्मा । योनिगर्भः, पृथिव्यादयो देवताः । अनुष्टुप्, १३ विराट्पुरस्ताद्बृहती ।

पर्वताद् दिवो योनेरङ्गादङ्गात् समाभृतम् । शेपो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवा दधत् १
यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे । एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे २
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति । गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा ३
गर्भं ते मित्रावरुणौ गर्भं देवो बृहस्पतिः । गर्भं त इन्द्रश्चाग्निश्च गर्भं धाता दधातु ते ४
विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु । आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ५ १३५०
यद् वेद राजा वरुणो यद् वा देवी सरस्वती । यदिन्द्रो वृत्रहा वेद तद् गर्भकरणं पिब ६ १३५१

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् । गर्भो विश्वस्य भूतस्य सो अग्ने गर्भमेह धाः ७
अधि स्कन्द वीरयस्व गर्भमा धेहि योन्याम् । वृषासि वृष्ण्यावन् प्रजायै त्वा नयामसि ८
वि जिहीष्व बार्हत्सामे गर्भस्ते योनिमा शयाम् । अदुष्टे देवाः पुत्रं सोमपा उभयाविनम् ९
धातः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः । पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे १० १३५५
त्वष्टः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः । पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ११
सवितः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः । पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे १२
प्रजापते श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः । पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे १३ १३५८

॥ २१९ ॥ (अथर्व० ६।८१।१-३)

अथर्वा । आदित्यः, ३ त्वष्टा (गर्भाधानम्) । अनुष्टुप् ।

यन्तासि यच्छसे हस्तावप रक्षांसि सेधसि । प्रजां धनं च गृह्णानः परिहस्तो अभूदयम् १
परिहस्त वि धारय योनिं गर्भाय धातवे । मर्यादे पुत्रमा धेहि तं त्वमा गमयागमे २ १३६०
यं परिहस्तमबिभरदितिः पुत्रकाम्या । त्वष्टा तमस्या आ बध्नाद् यथा पुत्रं जनादिति ३ १३६१

॥ २२० ॥ (अथर्व० ६।१७।१-४)

अथर्वा । गर्भदृंहणम्, पृथिवी । अनुष्टुप् ।

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे । एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे १
यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन् । एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे २
यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन् । एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ३
यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत् । एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ४ १३६५

॥ २२१ ॥ (अथर्व० ७।१११।१)

ब्रह्मा । वृषभः (आत्मा) । पराबृहती त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य कुक्षिरसि सोमधान आत्मा देवानामुत मानुषाणाम् ।
इह प्रजा जनय यास्त आसु या अन्यत्रेह तास्ते रमन्ताम् १ १३६६

॥ २२२ ॥ (अथर्व० ८।६।१-२६)

मातृनामा । मन्त्रोक्ताः, मातृनामा, १५ ब्रह्मणस्पतिः (गर्भदोषनिवारणम्) । अनुष्टुप्; २ पुरस्ताद्बृहती; १० त्र्यवसाना षट्पदा जगती; ११-१२,१४,१६, पथ्यापङ्क्तिः; १५ त्र्यवसाना सप्तपदा शाक्वरी; १७ त्र्यवसाना सप्तपदा जगती ।

यौ ते मातोन्ममार्ज जातायाः पतिवेदनौ । दुर्णामा तत्र मा गृधदलिंश उत वत्सपः १
पलालानुपलालौ शर्कुं कोकं मलिम्लुचं पलीजकम् ।
आश्रेषं वव्रिवाससमृक्षग्रीवं प्रमीलिनम् २ १३६८

मा सं वृतो मोप सृप ऊरू माव सृपोऽन्तरा ।
कृणोम्यस्यै भेषजं बजं दुर्णामचातनम् ३
दुर्णामा च सुनामा चोभा संवृतमिच्छतः । अरायानप हन्मः सुनामा स्त्रैणमिच्छताम् ४ १३७७
यः कृष्णः केश्यसुर स्तम्बज उत तुण्डिकः ।
अरायानस्या मुष्काभ्यां भंससोप हन्मसि ५
अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं क्रव्यादमुत रेरिहम् ।
अरायाँछ्वकिष्किणो बजः पिङ्गो अनीनशत् ६
यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च ।
बजस्तान्त्सहतामितः क्लीबरूपांस्तिरीटिनः ७
यस्त्वा स्वपन्तीं त्सरति यस्त्वा दिप्सति जाग्रतीम् ।
छायामिव प्र तान्त्सूर्यः परिक्रामन्ननीनशत् ८
यः कृणोति मृतवत्सामवतोकामिमां स्त्रियम् ।
तमोषधे त्वं नाशयास्याः कमलमञ्जिवम् ९ १३७८
ये शालाः परिनृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनः ।
कुसूला ये च कुक्षिलाः ककुभाः करुमाः स्रिमाः ।
तानोषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान् वि नाशय १०
ये कुकुन्धाः कुकूरभाः कृत्तीर्दूर्शानि बिभ्रति ।
क्लीबा इव प्रनृत्यन्तो वने ये कुर्वते घोषं तानितो नाशयामसि ११
ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तममुं दिवः ।
अरायान् बस्तवासिनो दुर्गन्धींल्लोहितास्यान् मककान् नाशयामसि १२
य आत्मानमतिमात्रमंस आधाय बिभ्रति । स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय १३
ये पूर्वे वध्वो यन्ति हस्ते शृङ्गाणि बिभ्रतः ।
आपाकेस्थाः प्रहासिन स्तम्बे ये कुर्वते ज्योतिस्तानितो नाशयामसि १४ १३८०
येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरो मुखा ।
खलजाः शकधूमजा उरुण्डा ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाशवः ।
तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय १५
पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कशा अस्त्रैणाः सन्तु पण्डगाः ।
अव भेषज पादय य इमां संविवृत्सत्यपतिः स्वपति स्त्रियम् १६ १३८१

उद्धर्षिणं मुनिकेशं जम्भयन्तं मरीमृशम् । उपेषन्तमुदुम्बलं तुण्डेलमुत शालुडम्
पदा प्र विध्य पार्ष्ण्या स्थालीं गौरिव स्पन्दना १७
यस्ते गर्भं प्रतिमृशाज्जातं वा मारयाति ते ।
पिङ्गस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम् १८
ये अम्नो जातान् मारयन्ति सूतिका अनुशेरते ।
स्त्रीभागान् पिङ्गो गन्धर्वान् वातो अभ्रमिवाजतु १९ १३८५
परिसृष्टं धारयतु यद्धितं माव पादि तत् ।
गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ २०
पवीनसात् तङ्गल्वा३च्छायकादुत नग्नकात् ।
प्रजायै पत्ये त्वा पिङ्गः परि पातु किमीदिनः २१
द्व्यास्याच्चतुरक्षात् पञ्चपादादनङ्गुरेः । वृन्तादभि प्रसर्पतः परि पाहि वरीवृतात् २२
य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः ।
गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि २३
ये सूर्यात् परिसर्पन्ति स्नुषेव श्वशुरादधि ।
बजश्च तेषां पिङ्गश्च हृदयेऽधि नि विध्यताम् २४ १३९०
पिङ्ग रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन् ।
आण्डादो गर्भान् मा दभन् बाधस्वेतः किमीदिनः २५
अप्रजास्त्वं मार्तवत्समाद् रोदमघमावयम् । वृक्षादिव स्रजं कृत्वाप्रिये प्रति मुञ्च तत् २६ १३९२

॥ २१३ ॥ (अथर्व० २०।९६।११-१६)

रक्षोहा । गर्भसंस्रावः । अनुष्टुप् ।

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ११
यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये । अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् १२
यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ३ १३९५
यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये । योनिं यो अन्तरारेल्हि तमितो नाशय
यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि १६ १३९८

॥ ११४ ॥ (ऋ० ५।७८।५-९)

सप्तवध्रिरात्रेयः । अश्विनौ (गर्भस्राविण्युपनिषद्) । अनुष्टुप् ।

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव ।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ५
भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये ।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ६ १४००
यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः । एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ७
यथा वातो यथा वनं तथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ८
दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि ।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ९ १४०१

॥ ११५ ॥ (ऋ० ९।७४।५)

कक्षीवान् दैर्घतमसः । पवमानः सोमः (अदितेर्गर्भः) । जगती ।

अरावीदंशुः सचमान ऊर्मिणा देवाव्यं मनुषे पिन्वति त्वचम् ।
दधाति गर्भमदितेरुपस्थ आ येन तोकं च तनयं च धामहे ५ १४०४

॥ ११६ ॥ (अथर्व० १।११।१-६)

अथर्वा । पूषा, अर्यमा, वेधाः, दिशः, देवाः (नारी-सुखप्रसूतिः) । १ पङ्क्तिः; २ अनुष्टुप्; ३ चतुष्पदोष्णिग्गर्भा ककुम्मत्यनुष्टुप्; ४-६ पथ्यापङ्क्तिः ।

वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः ।
सिस्रतां नार्यृतप्रजाता वि पर्वाणि जिहतां सूतवा उ १ १४०५
चतस्रो दिवः प्रदिशश्चतस्रो भूम्या उत । देवा गर्भं समैरयन् तं व्यूर्णुवन्तु सूतवे २
सूषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि । श्रथया सूषणे त्वमव त्वं बिष्कले सृज ३
नेव मांसे न पीवसि नेव मज्जस्वाहतम् ।
अवैतु पृश्नि शेवलं शुने जराय्वत्तवेऽव जरायु पद्यताम् ४
वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके ।
वि मातरं च पुत्रं च वि कुमारं जरायुणाव जरायु पद्यताम् ५ १४०९

यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिणः ।
एवा त्वं दशमास्य साकं जरायुणा पताव जरायु पद्यताम् ६ १४१०

॥ २२७ ॥ (अथर्व० १९।४०।१-४)

ब्रह्मा । बृहस्पतिः, विश्वे देवाश्च (मेधा) । १ पराऽनुष्टुप् त्रिष्टुप्; २ पुरःककुम्मत्युपरिष्टाद्बृहती; ३ बृहतीगर्भा; ४ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री ।

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ।
विश्वैस्तद् देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः १
मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्र मथिष्टन ।
सुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी २
मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत् तपः ।
शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ३
या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः । तामस्मे रासतामिषम् ४ १४१४

॥ २२८ ॥ (अथर्व० १।१।१-४)

अथर्वा । वाचस्पतिः (मेधाजननम्) । अनुष्टुप्, ४ चतुष्पदा विराडुरोबृहती ।

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे १ १४१५
पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह ।
वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् २
इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नी इव ज्यया ।
वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ३
उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम् ।
सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि ४ १४१८

॥ २२९ ॥ (अथर्व० ६।१०८।१-५)

शौनकः । मेधा, ४ अग्निः (मेधावर्धनम्) । अनुष्टुप्, २ उरोबृहती, ३ पथ्याबृहती ।

त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरश्वेभिरा गहि । त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया १
मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम् । प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे २ १४२०
यां मेधामृभवो विदुर्यां मेधामसुरा विदुः
ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुस्तां मय्या वेशयामसि ३ १४२१

*

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि १६ १३९८

॥ २२४ ॥ (ऋ० ५।७८।५-९)

सप्तवध्रिरात्रेयः । अश्विनौ (गर्भस्राविण्युपनिषद्) । अनुष्टुप् ।

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव ।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ५
भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये ।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ६ १४००
यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः । एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ७
यथा वातो यथा वनं तथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ८
दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि ।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ९ १४०३

॥ २२५ ॥ (ऋ० ९।७४।५)

कक्षीवान् दैर्घतमसः । पवमानः सोमः (अदितेर्गर्भः) । जगती ।

अरावीदंशुः सचमान ऊर्मिणा देवाव्यं१ मनुषे पिन्वति त्वचम् ।
दधाति गर्भमदितेरुपस्थ आ येन तोकं च तनयं च धामहे ५ १४०४

॥ २२६ ॥ (अथर्व० १।११।१-६)

अथर्वा । पूषा, अर्यमा, वेधाः, दिशः, देवाः (नारी-सुखप्रसूतिः) । १ पङ्क्तिः; २ अनुष्टुप्; ३ चतुष्पदोष्णिग्गर्भा ककुम्मत्यनुष्टुप्; ४-६ पथ्यापङ्क्तिः ।

वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः ।
सिस्रतां नार्यृतप्रजाता वि पर्वाणि जिहतां सूतवा उ १ १४०५
चतस्रो दिवः प्रदिशश्चतस्रो भूम्या उत । देवा गर्भं समैरयन् तं व्यूर्णुवन्तु सूतवे २
सूषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि । श्रथया सूषणे त्वमव त्वं बिष्कले सृज ३
नेव मांसे न पीवसि नेव मज्जस्वाहतम् ।
अवैतु पृश्नि शेवलं शुने जराय्वत्तवेऽव जरायु पद्यताम् ४
वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके ।
वि मातरं च पुत्रं च वि कुमारं जरायुणाव जरायु पद्यताम् ५ १४०९

यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिणः ।
एवा त्वं दशमास्य साकं जरायुणा पताव जरायु पद्यताम्		६ १४१०

॥ २२७ ॥ (अथर्व० १९।४०।१-४)

ब्रह्मा । बृहस्पतिः, विश्वे देवाश्च (मेधा) । १ पराऽनुष्टुप् त्रिष्टुप्; २ पुरःककुम्मत्युपरिष्टाद्बृहती; ३ बृहतीगर्भा; ४ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री ।

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ।
विश्वैस्तद् देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः		१
मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्र मथिष्टन ।
सुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी		२
मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत् तपः ।
शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः		३
या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः । तामस्मे रासतामिषम्		४ १४१४

॥ २२८ ॥ (अथर्व० १।१।१-४)

अथर्वा । वाचस्पतिः (मेधाजननम्) । अनुष्टुप्, ४ चतुष्पदा विराडुरोबृहती ।

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे		१ १४१५
पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह ।
वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम्		२
इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नी इव ज्यया ।
वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम्		३
उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम् ।
सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि		४ १४१८

॥ २२९ ॥ (अथर्व० ६।१०८।१-५)

शौनकः । मेधा, ४ अग्निः (मेधावर्धनम्) । अनुष्टुप्, २ उरोबृहती, ३ पथ्याबृहती ।

त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरश्वेभिरा गहि । त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया १
मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम् । प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे २ १४२०
यां मेधामृभवो विदुर्यां मेधामसुरा विदुः
ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुस्तां मय्या वेशयामसि		३ १४२१

*

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि १६ १३९८

॥ २२४ ॥ (ऋ० ५।७८।५-९)

सप्तवध्रिरात्रेयः । अश्विनौ (गर्भस्राविण्युपनिषद्) । अनुष्टुप् ।

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव ।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ५
भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये ।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ६ १४००
यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः । एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ७
यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ८
दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि ।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ९ १४०३

॥ २२५ ॥ (ऋ० ९।७४।५)

कक्षीवान् दैर्घतमसः । पवमानः सोमः (अदितेर्गर्भः) । जगती ।

अरावीदंशुः सचमान ऊर्मिणा देवाव्यं१ मनुषे पिन्वति त्वचम् ।
दधाति गर्भमदितेरुपस्थ आ येन तोकं च तनयं च धामहे ५ १४०४

॥ २२६ ॥ (अथर्व० १।११।१-६)

अथर्वा । पूषा, अर्यमा, वेधाः, दिशः, देवाः (नारी-सुखप्रसूतिः) । १ पङ्क्तिः; २ अनुष्टुप्; ३ चतुष्पदोष्णिग्गर्भा ककुम्मत्यनुष्टुप्; ४-६ पथ्यापङ्क्तिः ।

वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः ।
सिस्रतां नार्यृतप्रजाता वि पर्वाणि जिहतां सूतवा उ १ १४०५
चतस्रो दिवः प्रदिशश्चतस्रो भूम्या उत । देवा गर्भं समैरयन् तं व्यूर्णुवन्तु सूतवे २
सूषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि । श्रथया सूषणे त्वमव त्वं बिष्कले सृज ३
नेव मांसे न पीवसि नेव मज्जस्वाहतम् ।
अवैतु पृश्नि शेवलं शुने जराय्वत्तवेऽव जरायु पद्यताम् ४
वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके ।
वि मातरं च पुत्रं च वि कुमारं जरायुणाव जरायु पद्यताम् ५ १४०९

यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिणः ।
एवा त्वं दशमास्य साकं जरायुणा पतावं जरायु पद्यताम् ६ १४१०

॥ २२७ ॥ (अथर्व० १९।४०।१-४)

ब्रह्मा । बृहस्पतिः, विश्वे देवाश्च (मेधा)। १ पराऽनुष्टुप् त्रिष्टुप्; २ पुरःककुम्मत्युपरिष्टाद्बृहती; ३ बृहतीगर्भा; ४ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री ।

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ।
विश्वैस्तद् देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः १
मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्र मथिष्टन ।
सुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी २
मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत् तपः ।
शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ३
या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः । तामस्मे रासतामिषम् ४ १४१४

॥ २२८ ॥ (अथर्व० १।१।१-४)

अथर्वा । वाचस्पतिः (मेधाजननम्)। अनुष्टुप्, ४ चतुष्पदा विराडुरोबृहती ।

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे १ १४१५
पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह ।
वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् २
इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नी इव ज्यया ।
वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ३
उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम् ।
सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि ४ १४१८

॥ २२९ ॥ (अथर्व० ६।१०८।१-५)

शौनकः । मेधा, ४ अग्निः (मेधावर्धनम्)। अनुष्टुप्, १ उरोबृहती, ३ पथ्याबृहती ।

त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरश्वेभिरा गहि । त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया १
मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम् । प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे २ १४२०
यां मेधामृभवो विदुर्यां मेधामसुरा विदुः
ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुस्तां मय्या वेशयामसि ३ १४२१

*

यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः । तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु ४
मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यंदिनं परि । मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे ५ १४१३

मणिधारणम् । (१४१४-१५७८)

॥ २३० ॥ (अथर्व० ४।१०।१-७)

अथर्वा । शङ्खमणिः, कृशनः । अनुष्टुप्, ६ पथ्यापङ्क्तिः, ७ पञ्चपदा पराऽनुष्टुप्शक्वरी ।

वाताज्जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिषस्परि ।
स नो हिरण्यजाः शङ्खः कृशनः पात्वंहसः १
यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे । शङ्खेन हत्वा रक्षांस्यत्त्रिणो वि षहामहे २ १४१५
शङ्खेनामीवाममतिं शङ्खेनोत सदान्वाः ।
शङ्खो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः ३
दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः ।
स नो हिरण्यजाः शङ्ख आयुष्प्रतरणो मणिः ४
समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः । सो अस्मान्त्सर्वतः पातु हेत्या देवासुरेभ्यः ५
हिरण्यानामेकोऽसि सोमात् त्वमधि जज्ञिषे ।
रथे त्वमसि दर्शत इषुधौ रोचनस्त्वं प्र ण आयूंषि तारिषत् ६
देवानामस्थि कृशनं बभूव तदात्मन्वच्चरत्यप्स्वन्तः ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय कार्शनस्त्वाभि रक्षतु ७ १४२०

॥ २३१ ॥ (अथर्व० ८।५।१-२२)

शुक्रः । कृत्यादूषणं, मन्त्रोक्ताः (प्रतिसरो मणिः) । अनुष्टुप्; १,६ उपरिष्टाद्बृहती, २ त्रिपदा विराड् गायत्री; ३ चतुष्पदा भुरिग्जगती; ५ भुरिक्संस्तारपङ्क्तिः; ७ ८ ककुम्मती; ९ पुरस्कृतिर्जगती; १० त्रिष्टुप्; ११ पथ्यापङ्क्तिः; १४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती; १५ पुरस्ताद्बृहती; १९ जगतीगर्भा त्रिष्टुप्; २० विराड्गर्भा प्रस्तारपङ्क्तिः; २१ विराट् त्रिष्टुप्; २२ त्र्यवसाना सप्तपदा विराड्गर्भा भुरिक्शक्वरी ।

अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।
वीर्यवान्त्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणः सुमङ्गलः १
अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
प्रत्यक् कृत्या दूषयन्नेति वीरः २
अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्ननेनासुरान् पराभावयन्मनीषी ।
अनेनाजयद् द्यावापृथिवी उभे इमे अनेनाजयत् प्रदिशश्चतस्रः ३ १४२३

अयं स्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः ।
ओजस्वान् विमृधो वशी सो अस्मान् पातु सर्वतः ४
तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ५ १४३५
अन्तर्दधे द्यावापृथिवी उताहरुत सूर्यम् ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ६
ये स्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते । सूर्य इव दिवमारुह्य वि कृत्या बाधते वशी ७
स्राक्त्येन मणिन ऋषिणेव मनीषिणा । अजैषं सर्वाः पृतना वि मृधो हन्मि रक्षसः ८
याः कृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीर्याः कृत्याः स्वयंकृता या उ चान्येभिराभृताः ।
उभयीस्ताः परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्या३ अति ९
अस्मै मणिं वर्म बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः ।
प्रजापतिः परमेष्ठी विराड् वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे १० १०४०
उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ।
यमैच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनमन्तितम् ११
स इद् व्याघ्रो भवत्यथो सिंहो अथो वृषा । अथो सपत्नकर्शनो यो बिभर्तीमं मणिम् १२
नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः ।
सर्वा दिशो वि राजति यो बिभर्तीमं मणिम् १३
कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत् ।
अबिभस्त्वेन्द्रो मानुषे बिभ्रत् संश्रेषिणेऽजयत् ।
मणिं सहस्रवीर्यं वर्म देवा अकृण्वत १४
यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिर्यज्ञैर्यस्त्वा जिघांसति ।
प्रत्यक् त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा १५ १४४५
अयमिद् वै प्रतीवर्त ओजस्वान् संजयो मणिः ।
प्रजां धनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः १६
असपत्नं नो अधरादसपत्नं न उत्तरात् । इन्द्रासपत्नं नः पश्चाज्ज्योतिः शूर पुरस्कृधि १७
वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः । वर्म म इन्द्रश्चाग्निश्च वर्म धाता दधातु मे १८
ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं विश्वे देवा नाति विध्यन्ति सर्वे ।
तन्मे तन्वं त्रायतां सर्वतो बृहदायुष्मां जरदष्टिर्यथासानि १९ १४४९

आ मारुक्षद् देवमणिर्मह्या अरिष्टतातये ।
इमं मेथिमभिसंविशध्वं तनूपानं त्रिवरूथमोजसे २० १४५०
अस्मिन्निन्द्रो नि दधातु नृम्णमिमं देवासो अभिसंविशध्वम् ।
दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्मान् जरदष्टिर्यथासत् २१
स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।
इन्द्रो बध्नातु ते मणिं जिगीवाँ अपराजितः सोमपा अभयंकरो वृषा ।
स त्वा रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः २२ १४५२

॥ २३१ ॥ (अथर्व० १०।३।१-२५)

अथर्वा । (सपत्नक्षयणो), वरणमणिः, वनस्पतिः, चन्द्रमाः । अनुष्टुप्, २-३,६ भुरिक् त्रिष्टुप्; ८,१३-१४ पथ्यापङ्क्तिः; ११,१६ भुरिक्; १५,१७-२५ षट्पदा जगती ।

अयं मे वरणो मणिः सपत्नक्षयणो वृषा ।
तेना रभस्व त्वं शत्रून् प्र मृणीहि दुरस्यतः १
प्रैणाञ्छृणीहि प्र मृणा रभस्व मणिस्ते अस्तु पुरएता पुरस्तात् ।
अवारयन्त वरणेन देवा अभ्याचारमसुराणां श्वःश्वः २
अयं मणिर्वरणो विश्वभेषजः सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः
स ते शत्रूनधरान् पादयाति पूर्वस्तान् दभ्नुहि ये त्वा द्विषन्ति ३ १४५५
अयं ते कृत्यां विततां पौरुषेयादयं भयात् ।
अयं त्वा सर्वस्मात् पापाद् वरणो वारयिष्यते ४
वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः । यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ५
स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृगः सृतिं यति धावादजुष्टाम् ।
परिक्षवाच्छकुनेः पापवादादयं मणिर्वरणो वारयिष्यते ६
अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात् ।
मृत्योरोजीयसो वधाद् वरणो वारयिष्यते ७
यन्मे माता यन्मे पिता भ्रातरो यच्च मे स्वा यदेनश्चकृमा वयम् ।
ततो नो वारयिष्यतेऽयं देवो वनस्पतिः ८ १४६०
वरणेन प्रव्यथिता भ्रातृव्या मे सबन्धवः । असूर्तं रजो अप्यगुस्ते यन्त्वधमं तमः ९
अरिष्टोऽहमरिष्टगुरायुष्मान्त्सर्वपूरुषः ।
तं मायं वरणो मणिः परि पातु दिशोदिशः १० १४६२

अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः ।
स मे शत्रून् वि बाधतामिन्द्रो दस्यूनिवासुरान् ११
इमं बिभर्मि वरणमायुष्मान्छतशारदः ।
स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत् १२
यथा वातो वनस्पतीन् वृक्षान् भनक्त्योजसा ।
एवा सपत्नान् मे भङ्ग्धि पूर्वान् जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु १३ १४६१
यथा वातश्चाग्निश्च वृक्षान् प्सातो वनस्पतीन् ।
एवा सपत्नान् मे प्साहि पूर्वान् जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु १४
यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः शेरे न्यर्पिताः ।
एवा सपत्नांस्त्वं मम प्र क्षिणीहि न्यर्पय पूर्वान् जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु १५
तांस्त्वं प्र च्छिन्द्धि वरण पुरा दिष्टात् पुरायुषः ।
य एनं पशुषु दिप्सन्ति ये चास्य राष्ट्रदिप्सवः १६
यथा सूर्यो अतिभाति यथास्मिन् तेज आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा १७
यथा यशश्चन्द्रमस्यादित्ये च नृचक्षसि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा १८ १४७०
यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिन् जातवेदसि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा १९
यथा यशः कन्यायां यथास्मिन्त्संभृते रथे ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा २०
यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा २१ १४७३

यथा यशोऽग्निहोत्रे वषट्कारे यथा यशः ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि गच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा २२
यथा यशो यजमाने यथास्मिन् यज्ञ आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा २३ १४७५
यथा यशः प्रजापतौ यथास्मिन् परमेष्ठिनि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा २४
यथा देवेष्वमृतं यथैषु सत्यमाहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा २५ १४७७

॥ २३३ ॥ (अथर्व० १०।६।१-३५)

बृहस्पतिः । फालमणिः, वनस्पतिः, ३ आपः (मणिबन्धनम्) । अनुष्टुप्; १,४,२१ गायत्री; ५ षट्पदा जगती; ६ सप्तपदा विराट् शकरी; ७-१० त्र्यवसाना अष्टपदाऽष्टिः (१० नवपदा धृतिः); ११,२०, २३-२७ पथ्यापङ्क्तिः; १२-१७ त्र्यवसाना षट्पदा शकरी; ३१ त्र्यवसाना षट्पदा जगती; ३५ पञ्चपदा त्र्यनुष्टुब्गर्भा जगती ।

अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः । अपि वृश्चाम्योजसा १
वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति । पूर्णो मन्थेन मागमद् रसेन सह वर्चसा २
यत् त्वा शिक्वः परावधीत् तक्षा हस्तेन वास्या ।
आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम् ३ १४८०
हिरण्यस्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महो दधत् । गृहे वसतु नोऽतिथिः ४
तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे ।
स नः पितेव पुत्रेभ्यः श्रेयःश्रेयश्चिकित्सतु भूयोभूयः श्वःश्वो देवेभ्यो मणिरेत्य ५
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह आज्यं भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ६
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चतौजसे वीर्याय कम् ।
सो अस्मै बलमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ७ १४८४

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं सोमः प्रत्यमुञ्चत महे श्रोत्राय चक्षसे ।
सो अस्मै वर्च इद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ८ १४८५
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं सूर्यः प्रत्यमुञ्चत तेनेमा अजयद् दिशः ।
सो अस्मै भूतिमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ९
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं बिभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणां पुरोऽजयद् दानवानां हिरण्ययीः ।
सो अस्मै श्रियमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि १०
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
सो अस्मै वाजिनं दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ११
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तेनेमां मणिना कृषिमश्विनावभि रक्षतः ।
स भिषग्भ्यां महो दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि १२
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तं बिभ्रत् सविता मणिं तेनेदमजयत् स्वः ।
सो अस्मै सूनृतां दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि १३ १४९०
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तमापो बिभ्रतीर्मणिं सदा धावन्त्यक्षिताः ।
स आभ्योऽमृतमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि १४
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तं राजा वरुणो मणिं प्रत्यमुञ्चत शंभुवम् ।
सो अस्मै सत्यमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि १५
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तं देवा बिभ्रतो मणिं सर्वाँल्लोकान् युधाजयन् ।
स एभ्यो जितिमिद् दुहे भयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि १६
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तमिमं देवता मणिं प्रत्यमुञ्चन्त शंभुवम् ।
स आभ्यो विश्वमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेनः त्वं द्विषतो जहि १७
ऋतवस्तमबध्नतार्तवास्तमबध्नत । संवत्सरस्तं बद्ध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति १८ १४९५
अन्तर्देशा अबध्नत प्रदिशस्तमबध्नत । प्रजापतिसृष्टो मणिर्द्विषतो मेऽधराँ अकः १९
अथर्वाणो अबध्नताथर्वणा अबध्नत ।
तैर्मेदिनो अङ्गिरसो दस्यूनां बिभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विषतो जहि २०
तं धाता प्रत्यमुञ्चत स भूतं व्यकल्पयत् । तेन त्वं द्विषतो जहि । २१ १४९८

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमद् रसेन सह वर्चसा २२
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् सह गोभिरजाविभिरन्नेन प्रजया सह २३ १५००
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् सह व्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह २४
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमन्मधोर्घृतस्य धारया कीलालेन मणिः सह २५
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमदूर्जया पयसा सह द्रविणेन श्रिया सह २६
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् तेजसा त्विष्या सह यशसा कीर्त्या सह २७
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् सर्वाभिर्भूतिभिः सह २८ १५०५
तमिमं देवता मणिं मह्यं ददतु पुष्टये। अभिभुं क्षत्रवर्धनं सपत्नदम्भनं मणिम् २९
ब्रह्मणा तेजसा सह प्रति मुञ्चामि मे शिवम् ।
असपत्नः सपत्नहा सपत्नान् मेऽधराँ अकः ३०
उत्तरं द्विषतो मामयं मणिः कृणोतु देवजाः ।
यस्य लोका इमे त्रयः पयो दुग्धमुपासते ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ३१
यं देवाः पितरो मनुष्या उपजीवन्ति सर्वदा ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ३२
यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति ।
एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं वि रोहतु ३३ १५१०
यस्मै त्वा यज्ञवर्धन मणे प्रत्यमुचं शिवम् ।
तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात् ३४
एतमिध्मं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः ।
तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशून्त्समिद्धे जातवेदसि ब्रह्मणा ३५ १५१२

॥ २३४ ॥ (अथर्व० १९।२८।१-१०)

ब्रह्मा (सपत्नक्षयकामः) । दर्भमणिः मन्त्रोक्ताश्च । अनुष्टुप् ।

इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे । दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः १

द्विषतस्तापयन् हृदः शत्रूणां तापयन् मनः ।
दुर्हार्दः सर्वांस्त्वं दर्भ घर्म इवाभिन्त्संतापयन् २

घर्म इवाभितपन् दर्भ द्विषतो नितपन् मणे ।
हृदः सपत्नानां भिन्द्धीन्द्र इव विरुजं बलम् ३ १५१५

भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे ।
उद्यन् त्वचमिव भूम्याः शिर एषां वि पातय ४

भिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे भिन्द्धि मे पृतनायतः ।
भिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो भिन्द्धि मे द्विषतो मणे ५

छिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे छिन्द्धि मे पृतनायतः ।
छिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दान् छिन्द्धि मे द्विषतो मणे ६

वृश्च दर्भ सपत्नान् मे वृश्च मे पृतनायतः ।
वृश्च मे सर्वान् दुर्हार्दो वृश्च मे द्विषतो मणे ७

कृन्त दर्भ सपत्नान् मे कृन्त मे पृतनायतः ।
कृन्त मे सर्वान् दुर्हार्दो कृन्त मे द्विषतो मणे ८ १५२०

पिंश दर्भ सपत्नान् मे पिंश मे पृतनायतः ।
पिंश मे सर्वान् दुर्हार्दः पिंश मे द्विषतो मणे ९

विध्य दर्भ सपत्नान् मे विध्य मे पृतनायतः ।
विध्य मे सर्वान् दुर्हार्दो विध्य मे द्विषतो मणे १० १५२१

॥ २३५ ॥ (अथर्व० १९।२९।१-९)

ब्रह्मा । दर्भमणिः । अनुष्टुप् ।

निक्ष दर्भ सपत्नान् मे निक्ष मे पृतनायतः ।
निक्ष मे सर्वान् दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे १

तृन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे तृन्द्धि मे पृतनायतः ।
तृन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दस्तृन्द्धि मे द्विषतो मणे २

रुन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे रुन्द्धि मे पृतनायतः ।
रुन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो रुन्द्धि मे द्विषतो मणे ३ १५२५

*

मृण दर्भ सपत्नान् मे मृण मे पृतनायतः ।
मृण मे सर्वान् दुर्हार्दो मृण मे द्विषतो मणे ४
मन्थ दर्भ सपत्नान् मे मन्थ मे पृतनायतः ।
मन्थ मे सर्वान् दुर्हार्दो मन्थ मे द्विषतो मणे ५
पिण्ड्ढि दर्भ सपत्नान् मे पिण्ड्ढि मे पृतनायतः ।
पिण्ड्ढि मे सर्वान् दुर्हार्दः पिण्ड्ढि मे द्विषतो मणे ६
ओष दर्भ सपत्नान् मे ओष मे पृतनायतः ।
ओष मे सर्वान् दुर्हार्द ओष मे द्विषतो मणे ७
दह दर्भ सपत्नान् मे दह मे पृतनायतः ।
दह मे सर्वान् दुर्हार्दो दह मे द्विषतो मणे ८ १५१०
जहि दर्भ सपत्नान् मे जहि मे पृतनायतः ।
जहि मे सर्वान् दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ९ १५११

॥ २३६ ॥ (अथर्व० १९।३०।१-५)

ब्रह्मा । दर्भमणिः । अनुष्टुप् ।

यत् ते दर्भ जरामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते। तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नाँ जहि वीर्यैः १
शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते। तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः २
त्वामाहुर्देववर्म त्वां दर्भ ब्रह्मणस्पतिम्। त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ३
सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस्तपनं हृदः। मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते ४ १५१५
यत् समुद्रो अभ्यक्रन्दत् पर्जन्यो विद्युता सह ।
ततो हिरण्ययो बिन्दुस्ततो दर्भो अजायत ५ १५१६

॥ २३७ ॥ (अथर्व० १९।३१।१-१४)

सविता (पुष्टिकामः)। औदुम्बरमणिः । अनुष्टुप्; ५,१२ त्रिष्टुप्, ६ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः; ११,१३ पञ्चपदा शक्वरी; १४ विराडास्तारपङ्क्तिः ।

औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा। पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् १
यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशूनामधिपा असत् ।
औदुम्बरो वृषा मणिः स मा सृजतु पुष्ट्या २
करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ३ १५१९

यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः ।
गृह्णेऽहं त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम् ४ १५४०
पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् ।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ५
अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु ६
उप मौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च ।
इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मागन्त्सह वर्चसा ७
देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये ।
पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु ८
यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे ।
एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती ९ १५४५
आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् ।
सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः १०
त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान ।
त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्बरः स त्वमस्मत् सहस्वारादरातिममतिं क्षुधं च ११
ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा ।
तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि १२
पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु ।
औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ
रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम् १३
अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।
स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् १४ १५५०

॥ २३८ ॥ (अथर्व० १९।३४।१-१०)
अङ्गिराः । वनस्पतिः, लिंगोक्ताः (जङ्गिडमणिः) । अनुष्टुप् ।

जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः । द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिडः १
या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये ।
सर्वान् विनक्तु तेजसोऽरसां जङ्गिडस्करत् २ १५५२

अरसं कृत्रिमं नादमरसाः सप्त विस्रसः । अपेतो जङ्गिडामतिमिषुमस्तेव शातय ३
कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः । अथो सहस्वान् जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ४
स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः ।
विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा ५ १५५५
त्रिष्ट्वा देवा अजनयन् निष्ठितं भूम्यामधि । तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः ६
न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः ।
विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ७
अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य । पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ८
उग्र इत् ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ । अमीवाः सर्वाश्चातयं जहि रक्षांस्योषधे ९
आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम् । तक्मानं विश्वशारदमरसा जङ्गिडस्करत् १० १५६०

॥ २३९ ॥ (अथर्व० १९।३५।१-५)

अङ्गिराः । वनस्पतिः (जङ्गिडः) । अनुष्टुप्, २ पथ्यापङ्क्तिः; ४ निचृत् त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिडं ददुः ।
देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम् १
स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालो धनेव । देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम् २
दुर्हार्दः संघोरं चक्षुः पापकृत्वानमागमम् ।
तांस्त्वं सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय परिपाणोऽसि जङ्गिडः ३
परि मा दिवः परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् परि मा वीरुद्भ्यः ।
परि मा भूतात् परि मोत भव्याद् दिशोदिशो जङ्गिडः पात्वस्मान् ४
य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः ।
सर्वांस्तान् विश्वभेषजोऽरसां जङ्गिडस्करत् ५ १५६५

॥ २४० ॥ (अथर्व० १९।३६।१-६)

ब्रह्मा । शतवारो मणिः । अनुष्टुप् ।

शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा ।
आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः १
शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः । मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति २
ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः ।
सर्वा दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ३ १५६८

शतं वीरानंजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत्। दुर्णाम्नः सर्वान् हत्वाव रक्षांसि धूनुते ४
हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः। दुर्णाम्नः सर्वास्तृड्ढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत् ५ १५७०
शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम्। शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये ६ १५७१

॥ २४१ ॥ (अथर्व० १९।४६।१-७)

प्रजापतिः। अस्तृतमणिः। त्रिष्टुप्; १ पञ्चपदा ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्, २ षट्पदा भुरिक्शक्वरी; ३,७ पञ्चपदा पथ्यापङ्क्तिः; ४ चतुष्पदा; ५ पञ्चपदा अतिशक्वरी; ६ पञ्चपदोष्णिग्गर्भा विराड् जगती।

प्रजापतिष्ट्वा बध्नात् प्रथममस्तृतं वीर्याय कम्।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु १
ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तृतेमं मा त्वा दभन् पणयो यातुधानाः।
इन्द्र इव दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः सर्वांछत्रून् वि षहस्वास्तृतस्त्वाभि रक्षतु २
शतं च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे।
तस्मिन्निन्द्रः पर्यदत्त चक्षुः प्राणमथो बलमस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ३
इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो यो देवानामधिराजो बभूव।
पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वेऽस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ४ १५७५
अस्मिन् मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते।
व्याघ्रः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान् यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ५
घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान्त्सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः।
शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ६
यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा।
सजातानामसद् वशी तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ७ १५७८

अरिष्टनाशनम्। (१५७९-१५९०)

॥ २४२ ॥ (अथर्व० ६।२७।१-३)

भृगुः। यमः, निर्ऋतिः (अरिष्टक्षयणम्)। जगती, २ त्रिष्टुप्।

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन् दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे १
शिवः कपोत इषितो नो अस्त्वनागा देवाः शकुनो गृहं नः।
अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु २ १५८०

हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्माना॒ष्ट्री पदं कृणुते अग्निधाने ।
शिवो गोभ्य॑ उत पुरुषेभ्यो नो अस्तु मा नो॑ देवा इह हिंसीत् कपोतः ३ १५८१

॥ २४३ ॥ (अथर्व० ६।२८।१-३)

भृगुः । यमः, निर्ऋतिः (अरिष्टक्षयणम्) । १ त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप्, ३ जगती ।

ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदमिषं मदन्तः परि गां नयामः ।
संलोभयन्तो दुरिता पदानि हित्वा न ऊर्जं प्र पदात् पथिष्ठः १
परीमेऽग्निमर्षत परीमे गामनेषत ।
देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति २
यः प्रथमः प्रवतमाससाद बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानः ।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदस्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ३ १५८४

॥ २४४ ॥ (अथर्व० ६।२९।१-३)

भृगुः । यमः, निर्ऋतिः (अरिष्टक्षयणम्) । (बृहती) १-२ विराण्नाम गायत्री, ३ त्र्यवसाना सप्तपदा विराडष्टिः ।

अमून् हेतिः पतत्रिणी न्येतु यदुलूको वदति मोघमेतत् ।
यद् वा कपोतः पदमग्नौ कृणोति १ १५८५
यौ ते दूतौ निर्ऋत इदमेतोऽप्रहितौ प्रहितौ वा गृहं नः ।
कपोतोलूकाभ्यामपदं तदस्तु २
अवैरहत्यायेदमा पपत्यात् सुवीरताया इदमा ससद्यात् ।
पराङेव परा वद पराचीमनु संवतम् ।
यथा यमस्य त्वा गृहेऽरसं प्रतिचाकशानाभूकं प्रतिचाकशान् ३ १५८७

॥ २४५ ॥ (अथर्व० ६।८०।१-३)

अथर्वा । चन्द्रमाः (अरिष्टक्षयणम्) । १ भुरिक्, २ अनुष्टुप्, ३ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा भूतावचाकशत् ।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम १
ये त्रयः कालकाञ्जा दिवि देवा इव श्रिताः ।
तान्त्सर्वानह्व ऊतयेऽस्मा अरिष्टतातये २
अप्सु ते जन्म दिवि ते सधस्थं समुद्रे अन्तर्महिमा ते पृथिव्याम् ।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ३ १५९०

कृत्यादूषणम् । (१५९१-१६५३)

॥ २४६ ॥ (अथर्व० ५।१४।१-१३)

शुक्रः । वनस्पतिः, कृत्यापरिहरणम् । अनुष्टुप्; ३,५,१२ भुरिक्; ८ त्रिपदा विराट्; १० निचृद्बृहती; ११ त्रिपदा साम्नी त्रिष्टुप्; १३ स्वराट् ।

सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा । दिप्सौषधे त्वं दिप्सन्तमव कृत्याकृतं जहि १
अव जहि यातुधानानव कृत्याकृतं जहि ।
अथो यो अस्मान् दिप्सति तमु त्वं जह्योषधे २
रिश्यस्येव परीशासं परिकृत्य परि त्वचः ।
कृत्यां कृत्याकृते देवा निष्कमिव प्रति मुञ्चत ३
पुनः कृत्यां कृत्याकृते हस्तगृह्य परा णय ।
समक्षमस्मा आ धेहि यथा कृत्याकृतं हनत् ४
कृत्याः सन्तु कृत्याकृते शपथः शपथीयते ।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ५ १५९५
यदि स्त्री यदि वा पुमान् कृत्यां चकार पाप्मने ।
तामु तस्मै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या ६
यदि वासि देवकृता यदि वा पुरुषैः कृता । तां त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम् ७
अग्ने पृतनाषाट् पृतनाः सहस्व । पुनः कृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि ८
कृतव्यधनि विध्य तं यश्चकार तमिज्जहि । न त्वामचक्रुषे वयं वधाय सं शिशीमहि ९
पुत्र इव पितरं गच्छ स्वज इवाभिष्ठितो दश ।
बन्धमिवावक्रामी गच्छ कृत्ये कृत्याकृतं पुनः १० १६००
उदेणीव वारण्यभिस्कन्दं मृगीव । कृत्या कर्तारमृच्छतु ११
इष्वा ऋजीयः पततु द्यावापृथिवी तं प्रति ।
सा तं मृगमिव गृह्णातु कृत्या कृत्याकृतं पुनः १२
अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूलमिवोदकम् । सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः १३ १६०३

॥ २४७ ॥ (अथर्व० ५।३१।१-१२)

शुक्रः । कृत्यादूषणम् (कृत्यापरिहरणम्) । अनुष्टुप्; ११ बृहतीगर्भाऽनुष्टुप्; १२ पथ्याबृहती ।

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् १ १६०४

या ते चक्रुः कृकवाकावजे वा या कुरीरिणि ।
अव्यां ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् २ १६०५
यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादति ।
गर्दभे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ३
यां ते चक्रुरमूलायां वलगं वा नराच्याम् ।
क्षेत्रे ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ४
यां ते चक्रुर्गार्हपत्ये पूर्वाग्नावुत दुश्चितः ।
शालायां कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ५
यां ते चक्रुः सभायां यां चक्रुरधिदेवने ।
अक्षेषु कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ६
यां ते चक्रुः सेनायां यां चक्रुरिष्वायुधे ।
दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ७ १६१०
यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा निचख्नुः ।
सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ८
यां ते चक्रुः पुरुषास्थे अग्नौ संकसुके च याम् ।
म्रोकं निर्दाहं क्रव्यादं पुनः प्रति हरामि ताम् ९
अपथेना जभारैणां तां पथेतः प्र हिण्मसि ।
अधीरो मर्याधीरेभ्यः सं जभाराचित्त्या १०
यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् । चकार भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः ११
कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेय्यम् ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया १२ १६१५

॥ २४८ ॥ (अथर्व० १०।१।१-३२)

प्रत्यङ्गिरसः । कृत्यादूषणम् । अनुष्टुप्; १ महाबृहती; २ विराण्नाम गायत्री; ९ पथ्यापङ्क्तिः; १२ पङ्क्तिः; १३ उरोबृहती; १५ चतुष्पदा विराड्जगती; १७,२०,२४ प्रस्तारपङ्क्तिः (२० विराट्); १६,१८ त्रिष्टुप्; १९ चतुष्पदा जगती; २१ एकावसाना द्विपदाऽऽर्ची उष्णिक्; २३ त्रिपदा भुरिग्विषमा गायत्री; २८ त्रिपदा गायत्री; २९ मध्ये ज्योतिष्मती जगती; ३२ द्व्यनुष्टुब्गर्भा पञ्चपदाऽतिजगती ।

यां कल्पयन्ति वहतौ वधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः ।
सारादेत्वप नुदाम एनाम् १ १६१६

शीर्षण्वतीं नस्वतीं कर्णिनीं कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा । सारादेत्वप नुदाम एनाम् २
शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता । जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्ध्वृच्छतु ३
अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् । यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ४
अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते । प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत् ५ १६१०
प्रतीचीन आङ्गिरसोऽध्यक्षो नः पुरोहितः ।
प्रतीचीः कृत्या आकृत्यामून् कृत्याकृतो जहि ६
यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम् ।
तं कृत्येऽभिनिवर्तस्व मास्मानिच्छो अनागसः ७
यस्ते परूंषि संदधौ रथस्येवर्भुर्धिया । तं गच्छ तत्र तेऽयनमज्ञातस्तेऽयं जनः ८
ये त्वा कृत्वालेभिरे विद्वला अभिचारिणः ।
शंभ्वीदं कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म पुनःसरं तेन त्वा स्नपयामसि ९
यद् दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम । अपैतु सर्वं मत् पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु १० १६१५
यत् ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः ।
संदेश्यात् सर्वस्मात् पापादिमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः ११
देवैनसात् पित्र्यान्नामग्राहात् संदेश्यादभिनिष्कृतात् ।
मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण ब्रह्मण ऋग्भिः पयस ऋषीणाम् १२
यथा वातश्च्यावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम् ।
एवा मत् सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति १३
अप क्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव ।
कर्तॄन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्यावता १४
अयं पन्थाः कृत्येति त्वा नयामोऽभिप्रहितां प्रति त्वा प्र हिण्मः ।
तेनाभि याहि भञ्जत्यनस्वतीव वाहिनी विश्वरूपा कुरूटिनी १५ १६२०
पराक् ते ज्योतिरपथं ते अर्वागन्यत्रास्मदयना कृणुष्व ।
परेणेहि नवतिं नाव्या अति दुर्गाः स्रोत्या मा क्षणिष्ठाः परेहि १६
वात इव वृक्षान् नि मृणीहि पादय मा गामश्वं पुरुषमुच्छिष एषाम् ।
कर्तॄन् निवृत्येतः कृत्येऽप्रजास्त्वाय बोधय १७
या ते बर्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यां वलगं वा निचख्नुः ।
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः पाकं सन्तं धीरतरा अनागसम् १८ १६३३

*

उपाहृतमनुबुद्धं निखातं वैरं त्सार्यन्वविदाम कर्त्रम् ।
तदेतु यत आभृतं तत्राश्व इव वि वर्ततां हन्तु कृत्याकृतः प्रजाम् १९
स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे विद्मा ते कृत्ये यतिधा परूंषि ।
उत्तिष्ठैव परेहीतोऽज्ञाते किमिहेच्छसि २० १६३५
ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव ।
इन्द्राग्नी अस्मान् रक्षतां यौ प्रजानां प्रजावती २१
सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु २२
भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते । दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् २३
यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
सेतोऽष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने २४
अभ्यक्ताक्ता स्वरंकृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि ।
जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम् २५ १६४०
परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय ।
मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति २६
उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापर इष्वा । उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति २७
एतद्धि शृणु मे वचोऽथेहि यत एयथ । यस्त्वा चकार तं प्रति २८
अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः ।
यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव २९
यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिता इव ।
सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि ३० १६४५
कृत्याकृतो वलगिनोऽभिनिष्कारिणः प्रजाम् ।
मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोऽमून् कृत्याकृतो जहि ३१
यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून् ।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ३२ १६४७

॥ २४९ ॥ (अथर्व० २।१४।१-६)

चातनः । शालाग्निर्देवत्यं (दस्युनाशनम्)। अनुष्टुप्, २ भुरिक्, ४ उपरिष्टाद्विराड्बृहती ।

निःसालां धृष्णुं धिषणमेकवाद्यां जिघत्स्वम् ।
सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान्वाः १ १६४८

निर्वो गोष्ठादजामसि निरक्षान्निरुपानसात् ।
निर्वो मगुन्द्या दुहितरो गृहेभ्यश्चातयामहे २
असौ यो अधराद् गृहस्तत्र सन्त्वराय्यः ।
तत्र सेदिन्र्युच्यतु सर्वाश्च यातुधान्यः ३ १६५०
भूतपतिर्निरजत्विन्द्रश्चेतः सदान्वाः ।
गृहस्य बुध्न आसीनास्ता इन्द्रो वज्रेणाधि तिष्ठतु ४
यदि स्थ क्षेत्रियाणां यदि वा पुरुषेषिताः ।
यदि स्थ दस्युभ्यो जाता नश्यतेतः सदान्वाः ५
परि धामान्यासामाशुर्गाष्ठामिवासरन् ।
अजैषं सर्वानाजीन्वो नश्यतेतः सदान्वाः ६ १६५३

पापादिनाशनम् । (१६५४-१७३०)

॥ २५० ॥ (अथर्व० १।१०।१-४)

अथर्वा । असुरो वरुणः (पाश-विमोचनम्) । त्रिष्टुप् । ३ ककुम्मत्यनुष्टुप्, ४ अनुष्टुप् ।

अयं देवानामसुरो वि राजति वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः ।
ततस्परि ब्रह्मणा शाशदान उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि १
नमस्ते राजन् वरुणास्तु मन्यवे विश्वं ह्युग्र निचिकेषि द्रुग्धम् ।
सहस्रमन्यान् प्र सुवामि साकं शतं जीवाति शरदस्तवायम् २ १६५५
यदुवक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु । राज्ञस्त्वा सत्यधर्मणो मुञ्चामि वरुणादहम् ३
मुञ्चामि त्वा वैश्वानरादर्णवान्महतस्परि ।
सजातानुग्रेहा वद ब्रह्म चाप चिकीहि नः ४ १६५७

॥ २५१ ॥ (अथर्व० १।३१।१-४)

ब्रह्मा । आशापालाः, [वास्तोष्पतिः] (पाशमोचनम्) । अनुष्टुप्, ३ विराट् त्रिष्टुप् ।
४ पराऽनुष्टुप् त्रिष्टुप् ।

आशानामाशापालेभ्यश्चतुर्भ्यो अमृतेभ्यः । इदं भूतस्याध्यक्षेभ्यो विधेम हविषा वयम् १
य आशानामाशापालाश्चत्वार स्थन देवाः ।
ते नो निर्ऋत्याः पाशेभ्यो मुञ्चतांहसोअंहसः २
अस्रामस्त्वा हविषा यजाम्यश्लोणस्त्वा घृतेन जुहोमि ।
य आशानामाशापालस्तुरीयो देवः स नः सुभूतमेह वक्षत् ३ १६६०

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ४ १६६१

॥ २५२ ॥ (अथर्व० २।१०।१-८)

भृग्वङ्गिराः । १-८ द्यावापृथिवी, ब्रह्म; २ अग्निः, आपः, ओषधयः, सोमः; ३ वातः, दिशः; ४-८ वातपत्नीः, सूर्यः, यक्ष्मं, निर्ऋतिः (पाशमोचनम्) । १ त्रिष्टुप्; २ सप्तपदाऽष्टिः; ३-५,७-८ सप्तपदा धृतिः; ६ सप्तपदाऽत्यष्टिः; ८ (१-३) द्वौ पादौ उष्णिहौ ।

क्षेत्रियात् त्वा निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् ।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् १
शं ते अग्निः सहाद्भिरस्तु शं सोमः सहौषधीभिः ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अना० । २
शं ते वातो अन्तरिक्षे वयो धाच्छं ते भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः । एवाहं० । अना० । ३
इमा या देवीः प्रदिशश्चतस्रो वातपत्नीरभि सूर्यो विचष्टे । एवाहं० । अना० । ४ १६६५
तासु त्वान्तर्जरस्या दधामि प्र यक्ष्म एतु निर्ऋतिः पराचैः । एवाहं० । अना० । ५
अमुक्था यक्ष्माद् दुरितादवद्याद् द्रुहः पाशाद् ग्राह्याश्चोदमुक्थाः । एवाहं० । अना० । ६
अहा अरातिमविदः स्योनमप्यभूर्भद्रे सुकृतस्य लोके । एवाहं० । अना० । ७
सूर्यमृतं तमसो ग्राह्या अधि देवा मुञ्चन्तो असृजन्निरेणसः ।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् ।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ८ १६६९

॥ २५३ ॥ (अथर्व० ६।११२।१-३)

अथर्वा । अग्निः (पाशमोचनम्) त्रिष्टुप् ।

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलबर्हणात् परि पाह्येनम् ।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् तुभ्यं देवा अनु जानन्तु विश्वे १ १६७०
उन्मुञ्च पाशांस्त्वमग्न एषां त्रयस्त्रिभिरुत्सिता येभिरासन् ।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् पितापुत्रौ मातरं मुञ्च सर्वान् २
येभिः पाशैः परिवित्तो विबद्धोऽङ्गेअङ्ग आर्पित उत्सितश्च ।
वि ते मुच्यन्तां विमुचो हि सन्ति भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ३ १६७१

॥ २५४ ॥ (अथर्व० ६।११९।१-३)

कौशिकः । वैश्वानरोऽग्निः [आनृण्यम्] (पाशमोचनम्) । त्रिष्टुप् ।

यददीव्यन्नृणमहं कृणोम्यदास्यन्नग्न उत संगृणामि ।
वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् १
वैश्वानराय प्रति वेदयामि यद्यृणं संगरो देवतासु ।
स एतान् पाशान् विचृतं वेद सर्वानथ पक्वेन सह सं भवेम २
वैश्वानरः पविता मा पुनातु यत् संगरमभिधावाम्याशाम् ।
अनाजानन् मनसा याचमानो यत् तत्रैनो अप तत् सुवामि ३ १६७५

॥ २५५ ॥ (अथर्व० ७।८३।१-४)

शुनःशेपः । वरुणः (पाशमोचनम्) । १ अनुष्टुप् २ पथ्यापङ्क्तिः; ३ त्रिष्टुप्, ४ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप् ।

अप्सु ते राजन् वरुण गृहो हिरण्ययो मिथः ।
ततो धृतव्रतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु १
धाम्नोधाम्नो राजन्नितो वरुण मुञ्च नः ।
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ततो वरुण मुञ्च नः २
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ३
प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् य उत्तमा अधमा वारुणा ये ।
दुष्वप्न्यं दुरितं नि ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ४ १६७९

॥ २५६ ॥ (अथर्व० ७।७८।१-२)

अथर्वा । अग्निः (बन्धमोचनम्) । १ परोष्णिक्, २ त्रिष्टुप् ।

वि ते मुञ्चामि रशनां वि योक्त्रं वि नियोजनम् । इहैव त्वमजस्र एध्यग्ने १ १६८०
अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमग्ने युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन ।
दीदिह्य१स्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्रेमं वोचो हविर्दां देवतासु २ १६८१

॥ २५७ ॥ (अथर्व० ६।२५।१-३)

शुनःशेपः । मन्याविनाशनम् । अनुष्टुप् ।

पञ्च च याः पञ्चाशच्च संयन्ति मन्या अभि ।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव १
सप्त च याः सप्ततिश्च संयन्ति ग्रैव्या अभि ।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव २ १६८२

नव॑ च॒ या नव॒तिश्च॑ सं॒यन्ति॒ स्कन्ध्या॑ अ॒भि ।
इ॒तस्ताः सर्वा॑ नश्यन्तु वा॒का अ॑प॒चिता॑मिव ३ १६८४

॥ २५८ ॥ (अथर्व० ४।२३।१-७)

मृगारः । प्रचेता अग्निः (पाप-मोचनम्) । त्रिष्टुप्, ३ पुरस्ताज्ज्योतिष्मती, ४ अनुष्टुप्, ६ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

अ॒ग्नेर्म॑न्वे प्रथ॒मस्य॒ प्रचे॑तसः पाञ्च॑जन्यस्य बहु॒धा यमि॒न्धते॑ ।
वि॒शो॑विशः प्रविशि॒वांस॑मीमहे॒ स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः १ १६८५
यथा॑ ह॒व्यं वह॑सि जातवेदो॒ यथा॑ य॒ज्ञं क॒ल्पय॑सि प्रजा॒नन् ।
ए॒वा दे॒वेभ्यः॑ सुम॒तिं न॒ आ व॑ह॒ स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः २
याम॑न्यामन्नु॒प॑युक्तं॒ वहि॑ष्ठं॒ कर्म॑न्कर्म॒न्नाभ॑गम् ।
अ॒ग्निमी॑डे रक्षो॒हणं॑ यज्ञ॒वृधं॑ घृ॒ताहु॑तं॒ स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ३
सु॒जातं॑ जा॒तवे॑दसम॒ग्निं वै॑श्वान॒रं वि॒भुम् । ह॒व्य॒वाहं॑ हवामहे॒ स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ४
येन॒ ऋष॑यो ब॒लमद्यो॑तयन् यु॒जा येनासु॑राणा॒मयु॑वन्त॒ मा॒याः ।
येना॒ग्निना॑ प॒णीनिन्द्रो॑ जि॒गाय॒ स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ५
येन॑ दे॒वा अ॒मृत॑म॒न्वविन्द॒न् येनौष॑धी॒र्मधु॑मती॒रकृ॑ण्वन् ।
येन॑ दे॒वाः स्व१॒राभ॑र॒न्त्स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ६ १६९०
यस्ये॒दं प्र॒दिशि॒ यद् वि॒रोच॑ते॒ यज्जा॒तं ज॑नित॒व्यं॑ च॒ केव॑लम् ।
स्तौम्य॒ग्निं ना॑थि॒तो जो॑हवीमि॒ स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ७ १६९१

॥ २५९ ॥ (अथर्व० ४।२४।१-७)

मृगारः । इन्द्रः (पापमोचनम्) । त्रिष्टुप्, १ शाक्वरीगर्भा पुरःशक्वरी ।

इन्द्र॑स्य मन्महे॒ शश्व॒दिद॑स्य मन्महे॒ वृ॒त्रघ्न॒ स्तोमा॒ उप॑ मे॒म आ॒गुः ।
यो दा॒शुषः॑ सु॒कृतो॒ हव॒मेति॒ स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः १
य उ॒ग्रीणा॑मु॒ग्रबा॑हुर्य॒युर्यो दा॑न॒वानां॒ बल॑मारु॒रोज॑ ।
येन॑ जि॒ताः सिन्ध॑वो॒ येन॒ गाव॒ः स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः २
यश्च॑र्षणि॒प्रो वृ॑ष॒भः स्व॒र्विद् यस्मै॒ ग्रावा॑णः प्र॒वद॑न्ति नृ॒म्णम् ।
यस्या॑ध्व॒रः स॒प्तहो॑ता॒ मदि॑ष्ठः॒ स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ३
यस्य॑ व॒शास॑ ऋष॒भास॑ उ॒क्षणो॒ यस्मै॑ मी॒यन्ते॒ स्वर॑वः स्व॒र्विदे॑ ।
यस्मै॑ शु॒क्रः पव॑ते॒ ब्रह्म॑शुम्भितः॒ स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ४ १६९५
यस्य॒ जुष्टिं॑ सो॒मिनः॑ का॒मय॑न्ते॒ यं हव॑न्त॒ इषु॑मन्तं॒ गवि॑ष्टौ ।
यस्मि॑न्न॒र्कः शि॑श्रि॒ये यस्मि॒न्नोज॒ः स नो॑ मुञ्च॒त्वंह॑सः ५ १६९६

यः प्रथमः कर्मकृत्याय जज्ञे यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम् ।
येनोद्यतो वज्रोऽभ्यायताहिं स नो मुञ्चत्वंहसः ६
यः संग्रामान्नयति सं युधे वशी यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि ।
स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ७ १६९८

॥ २६० ॥ (अथर्व० ४।२५।१-७)

मृगारः । सविता, वायुः (पापमोचनम्) । । त्रिष्टुप्, ३ अतिशक्वरी, ७ पथ्याबृहती ।

वायोः सवितुर्विदथानि मन्महे यावात्मन्वद् विशथो यौ च रक्षथः ।
यौ विश्वस्य परिभू बभूवथुस्तौ नो मुञ्चतमंहसः १
ययोः संख्याता वरिमा पार्थिवानि याभ्यां रजो युपितमन्तरिक्षे ।
ययोः प्रायं नान्वानशे कश्चन तौ नो मुञ्चतमंहसः २ १७००
तव व्रते नि विशन्ते जनासस्त्वय्युदिते प्रेरते चित्रभानो ।
युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ३
अपेतो वातो सविता च दुष्कृतमप रक्षांसि शिमिदां च सेधतम् ।
सं ह्यूर्जया सृजथः सं बलेन तौ नो मुञ्चतमंहसः ४
रयिं मे पोषं सवितोत वायुस्तनू दक्षमा सुवतां सुशेवम् ।
अयक्ष्मतातिं मह इह धत्तं तौ नो मुञ्चतमंहसः ५
प्र सुमतिं सवितर्वाय ऊतये महस्वन्तं मत्सरं मादयाथः ।
अर्वाग् वामस्य प्रवतो नि यच्छतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ६
उप श्रेष्ठा न आशिषो देवयोर्धामन्नस्थिरन् ।
स्तौमि देवं सवितारं च वायुं तौ नो मुञ्चतमंहसः ७ १७०५

॥ २६१ ॥ (अथर्व० ४।२६।१-७)

मृगारः । द्यावापृथिवी (पापमोचनम्) । त्रिष्टुप्, १ अष्टिः, २-३ जगती,
७ शाक्वरगर्भातिमध्येज्योतिः ।

मन्वे वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ सचेतसौ ये अप्रथेथाममिता योजनानि ।
प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां ते नो मुञ्चतमंहसः १
प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां प्रवृद्धे देवी सुभगे उरूची ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः २
असंतापे सुतपसौ हुवेऽहमुर्वी गम्भीरे कविभिर्नमस्ये । द्यावापृथिवी० । ३ १७०८

ये अमृतं बिभृथो ये हवींषि ये स्रोत्या बिभृथो ये मनुष्यान् ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ४
ये उस्रिया बिभृथो ये वनस्पतीन् ययोर्वां विश्वा भुवनान्यन्तः ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ५ १७१०
ये कीलालेन तर्पयथो ये घृतेन याभ्यामृते न किं चन शक्नुवन्ति ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ६
यन्मेदमभिशोचति येनयेन वा कृतं पौरुषेयान्न दैवात् ।
स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमंहसः ७ १७१२

॥ २६१ ॥ (अथर्व० ४।२७।१-७) [पापमोचनम्] ।×

॥ २६३ ॥ (अथर्व० ४।२८।१-७)

मृगारोऽथर्वा वा । भवाशर्वौ रुद्रो वा । (पापमोचनम्) । त्रिष्टुप्, १ अतिजागतगर्भा भुरिक् ।

भवाशर्वौ मन्वे वां तस्य वित्तं ययोर्वामिदं प्रदिशि यद् विरोचते ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः १
ययोरभ्यध्व उत यद् दूरे चिद् यौ विदिताविषुभृतामसिष्ठौ। यावस्येशाथे० । २
सहस्राक्षौ वृत्रहणा हुवेऽहं दूरेगव्यूती स्तुवन्नेम्युग्रौ । यावस्येशाथे० । ३ १७१५
यावारेभाथे बहु साकमग्रे प्र चेदस्राष्ट्रमभिभां जनेषु । यावस्येशाथे० । ४
ययोर्वधान्नापपद्यते कश्चनान्तर्देवेषूत मानुषेषु । यावस्येशाथे० । ५
यः कृत्याकृन्मूलकृद् यातुधानो नि तस्मिन् धत्तं वज्रमुग्रौ । यावस्येशाथे० । ६
अधि नो ब्रूतं पृतनासूग्रौ सं वज्रेण सृजतं यः किमीदी ।
स्तौमि भवाशर्वौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ७ १७१९

॥ २६४ ॥ (अथर्व० ४।२९।१-७)

मृगारः । मित्रावरुणौ (पापमोचनम्) । त्रिष्टुप्, ७ शाक्करीगर्भाऽतिजगती ।

मन्वे वां मित्रावरुणावृतावृधौ सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे ।
प्र सत्यावानमवथो भरेषु तौ नो मुञ्चतमंहसः १
सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे प्र सत्यावानमवथो भरेषु ।
यौ गच्छथो नृचक्षसौ बभ्रुणा सुतं तौ नो मुञ्चतमंहसः २ १७२१

× द्रष्टव्या मरुद्देवतामन्त्राः ४४०-४४६ ।

यावङ्गिरसमवथो यावगस्तिं मित्रावरुणा जमदग्निमत्रिम् ।
यौ कश्यपमवथो यौ वसिष्ठं तौ नो मुञ्चतमंहसः ३
यौ श्यावाश्वमवथो वध्र्यश्वं मित्रावरुणा पुरुमीढमत्रिम् ।
यौ विमदमवथः सप्तवध्रिं तौ नो मुञ्चतमंहसः ४
यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम् ।
यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं तौ नो मुञ्चतमंहसः ५
यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणावुशनां काव्यं यौ ।
यौ गोतममवथः प्रोत मुद्गलं तौ नो मुञ्चतमंहसः ६ १७२५
ययो रथः सत्यवर्त्मर्जुरश्मिर्मिथुया चरन्तमभियाति दूषयन् ।
स्तौमि मित्रावरुणौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ७ १७२६

॥ २६५ ॥ (अथर्व० ६।११५।१-३)

ब्रह्मा । विश्वे देवाः (पापमोचनम्) । अनुष्टुप् ।

यद् विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम् ।
यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः १
यदि जाग्रद् यदि स्वपन्नेन एनस्योऽकरम् ।
भूतं मा तस्माद् भव्यं च द्रुपदादिव मुञ्चताम् २
द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्यं विश्वे शुम्भन्तु मैनसः ३ १७२९

॥ २६६ ॥ (अथर्व० ७।४२।१-२) +

प्रस्कण्वः । सोमारुद्रौ (पापमोचनम्) । त्रिष्टुप् ।

सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् १ १७३०
सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मद् विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो असत् तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् २ १७३१

॥ २६७ ॥ (अथर्व० ७।६४।१-२)

यमः । आपः, अग्निः, निर्ऋतिः (पापमोचनम्) । १ भुरिगनुष्टुप्, २ न्यङ्कुसारिणी बृहती ।

इदं यत् कृष्णः शकुनिरभिनिष्पतन्नपीपतत् ।
आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः १ १७३२

+ सोमदेवता- १२२४-१२२५ (ऋ. ६।७४।२,३) ।

*

इदं यत् कृष्णः शकुनिरवामृक्षन्निर्ऋते ते मुखेन ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्र मुञ्चतु २ १७३३

॥ २६८ ॥ (अथर्व० ११।६।१-२३)

शन्तातिः । चन्द्रमाः, मन्त्रोक्ताः (पापमोचनम्) । अनुष्टुप्; १३ बृहतीगर्भा ।

अग्निं ब्रूमो वनस्पतीनोषधीरुत वीरुधः ।
इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १
ब्रूमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम् ।
अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः २ १७३५
ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम् । त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ३
गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् ।
अर्यमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ४
अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा ।
विश्वानादित्यान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ५
वातं ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः । आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ६
मुञ्चन्तु मा शपथ्यादहोरात्रे अथो उषाः ।
सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति ७ १७४०
पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगाः ।
शकुन्तान् पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ८
भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः ।
इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः ९
दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान् ।
समुद्रा नद्यो वेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १०
सप्तर्षीन् वा इदं ब्रूमोऽपो देवीः प्रजापतिम् ।
पितॄन् यमश्रेष्ठान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ११
ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये । पृथिव्यां शक्रा ये श्रितास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १२ १७४५
आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः ।
अङ्गिरसो मनीषिणस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १३
यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा । यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १४ १७४७

पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः ।
दुर्भो भङ्गो यवः सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १५
अरायान् ब्रूमो रक्षांसि सर्पान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
मृत्यूनेकशतं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १६
ऋतून् ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान् मासांस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १७ १७५०
एतं देवा दक्षिणतः पश्चात् प्राञ्च उदेत ।
पुरस्तादुत्तराच्छक्रा विश्वे देवाः समेत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १८
विश्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
विश्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १९
सर्वान् देवानिद ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
सर्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः २०
भूतं ब्रूमो भूतपतिं भूतानामुत यो वशी ।
भूतानि सर्वा संगत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः २१
या देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशर्तवः ।
संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते नः सन्तु सदा शिवाः २२ १७५५
यन्मातली रथक्रीतममृतं वेद भेषजम् ।
तदिन्द्रो अप्सु प्रावेशयत् तदापो दत्त भेषजम् २३ १७५६

॥ २६१ ॥ (अथर्व० ४।३३।१-८; ऋ० १।९७।१-८; अग्निः १८८७-९४)
ब्रह्मा । पाप्मनाशनोऽग्निः (पाप-नाशनम्) । गायत्री ।

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् । अप नः शोशुचदघम् १
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । अप नः शोशुचदघम् २
प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः । अप नः शोशुचदघम् ३
प्र यत् ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् । अप नः शोशुचदघम् ४ १७६०
प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः । अप नः शोशुचदघम् ५
त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । अप नः शोशुचदघम् ६
द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय । अप नः शोशुचदघम् ७
स नः सिन्धुमिव नावाति पर्षा स्वस्तये । अप नः शोशुचदघम् ८ १७६४

॥ २७० ॥ (अथर्व० ६।११३।१-३)

अथर्वा । पूषा (पापनाशनम्) । त्रिष्टुप्, ३ पङ्क्तिः ।

त्रिते देवा अमृजतैतदेनस्त्रित एनन्मनुष्येषु ममृजे ।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु १ १७६५
मरीचीर्धूमान् प्र विशानु पाप्मन्नुदारान् गच्छोत वा नीहारान् ।
नदीनां फेनाँ अनु तान् वि नश्य भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व २
द्वादशधा निहितं त्रितस्यापमृष्टं मनुष्यैनसानि ।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ३ १७६७

॥ २७१ ॥ (अथर्व० ७।११२।१-२)

वरुणः । आपः, वरुणश्च (पापनाशनम्) । १ भुरिक्, २ अनुष्टुप् ।

शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते ।
आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः १
मुञ्चन्तु मा शपथ्या३दथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् २ १७६९

॥ २७२ ॥ (अथर्व० ७।११५।१-४) [पापलक्षणनाशनम्] *

॥ २७३ ॥ (अथर्व० ६।२६।१-३

ब्रह्मा । पाप्मा (पाप्मनाशनम्) । अनुष्टुप् ।

अव मा पाप्मन्त्सृज वशी सन् मृडयासि नः ।
आ मा भद्रस्य लोके पाप्मन् धेह्यविहुतम् १ १७७०
यो नः पाप्मन् न जहासि तमु त्वा जहिमो वयम् ।
पथामनु व्यावर्तनेऽन्यं पाप्मानु पद्यताम् २
अन्यत्रास्मन्न्युच्यतु सहस्राक्षो अमर्त्यः ।
यं द्वेषाम तमृच्छतु यमु द्विष्मस्तमिज्जहि ३ १७७२

॥ २७४ ॥ (अथर्व० ६।३७।१-३)

अथर्वा । (स्वस्त्ययनकामः) । चन्द्रमाः (शापनाशनम्) । अनुष्टुप् ।

उप प्रागात् सहस्राक्षो युक्त्वा शपथो रथम् ।
शप्तारमन्विच्छन् मम वृक इवाविमतो गृहम् १
परि णो वृङ्ग्धि शपथ ह्रदमग्निरिवा दहन् ।
शप्तारमत्र नो जहि दिवो वृक्षमिवाशनिः २ १७७४

---

* अग्निदेवता- ११०१-११०४ ।

यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात् ।
शुने पेष्ट्रमिवावक्षामं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ३ १७७५

॥ २७५ ॥ (अथर्व० ७।५९।१)

बादरायणिः । अरिनाशनम् (शाप-मोचनम्) । अनुष्टुप् ।

यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात् ।
वृक्ष इव विद्युता हत आ मूलादनु शुष्यतु १ १७७६

॥ २७६ ॥ (अथर्व० ५।७।१-१०)

अथर्वा । बहुदैवत्यम् ; १-३,६-१० अरातयः; ४-५ सरस्वती (अरातिनाशनम्) । अनुष्टुप्; १ विराड्गर्भा प्रस्तारपङ्क्तिः; ४ पथ्याबृहती; ६ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

आ नो भर मा परि ष्ठा अराते मा नो रक्षीर्दक्षिणां नीयमानाम् ।
नमो वीर्त्साया असमृद्धये नमो अस्त्वरातये १
यमराते पुरोधत्से पुरुषं परिरापिणम् ।
नमस्ते तस्मै कृण्मो मा वनिं व्यथयीर्मम २
प्र णो वनिर्देवकृता दिवा नक्तं च कल्पताम् ।
अरातिमनुप्रेमो वयं नमो अस्त्वरातये ३
सरस्वतीमनुमतिं भगं यन्तो हवामहे ।
वाचं जुष्टां मधुमतीमवादिषं देवानां देवहूतिषु ४ १७८०
यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा ।
श्रद्धा तमद्य विन्दतु दत्ता सोमेन बभ्रुणा ५
मा वनिं मा वाचं नो वीर्त्सीरुभाविन्द्राग्नी आ भरतां नो वसूनि ।
सर्वे नो अद्य दित्सन्तोऽरातिं प्रति हर्यत ६
परोऽपेह्यसमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि ।
वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते ७
उत नग्ना बोभुवती स्वप्नया सचसे जनम् ।
अराते चित्तं वीर्त्सन्त्याकूतिं पुरुषस्य च ८
या महती महोन्माना विश्वा आशा व्यानशे ।
तस्यै हिरण्यकेश्यै निर्ऋत्या अकरं नमः ९ १७८
हिरण्यवर्णा सुभगा हिरण्यकशिपुर्मही ।
तस्यै हिरण्यद्रापयेऽरात्या अकरं नमः १० १७८

॥ २७७ ॥ (अथर्व० ६।५१।१-३)

शन्तातिः । आपः, ३ वरुणः (एनोनाशनम्) । १ गायत्री, २ त्रिष्टुप्, ३ जगती ।

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अति द्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा १
आपो अस्मान् मातरः सूदयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि २
यत् किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरन्ति ।
अचित्त्या चेत् तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ३ १७८९

॥ २७८ ॥ (अथर्व० ६।८४।१-४)

भगः । निर्ऋतिः (निर्ऋतिमोचनम्) । १ भुरिग्जगती; २ त्रिपदार्षी बृहती; ३ जगती, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् (जगती) ।

यस्यास्त आसनि घोरे जुहोम्येषां बद्धानामवसर्जनाय कम् ।
भूमिरिति त्वाभिप्रमन्वते जना निर्ऋतिरिति त्वाहं परि वेद सर्वतः १ १७९०
भूते हविष्मती भवैष ते भागो यो अस्मासु । मुञ्चेमानमूनेनसः स्वाहा २
एवो ष्व१स्मन्निर्ऋतेऽनेहा त्वमयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ३
अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ४ १७९१

॥ २७९ ॥ (अथर्व० ६।११४।१-३)

ब्रह्मा । विश्वे देवाः (उन्मोचनम्) । अनुष्टुप् ।

यद् देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम् । आदित्यास्तस्मान्नो यूयमृतस्यर्तेन मुञ्चत १
ऋतस्यर्तेनादित्या यजत्रा मुञ्चतेह नः ।
यज्ञं यद् यज्ञवाहसः शिक्षन्तो नोपशेकिम २ १७९५
मेदस्वता यजमानाः स्रुचाज्यानि जुह्वतः ।
अकामा विश्वे वो देवाः शिक्षन्तो नोप शेकिम ३ १७९६

॥ २८० ॥ (अथर्व० ७।६३।१) [दुरितनाशनम्] ×

॥ २८१ ॥ (अथर्व० ३।९।१-६)

वामदेवः । द्यावापृथिवी, देवाः (दुःस्वनाशनम्) । अनुष्टुप्, ४ चतुष्पदा निचृद्बृहती, ६ भुरिक् ।

कर्शफस्य विशफस्य द्यौः पिता पृथिवी माता ।
यथाभिचक्र देवास्तथाप कृणुता पुनः १ १७९७

× अग्निदेवता-- १३७४ ।

अश्रेष्माणो अधारयन् तथा तन्मनुना कृतम् ।
कृणोमि वध्रि विष्कन्धं मुष्काबर्हो गवामिव २
पिशङ्गे सूत्रे खृगलं तदा बध्नन्ति वेधसः ।
श्रवस्युं शुष्मं काबवं वध्रिं कृण्वन्तु बन्धुरः ३
येना श्रवस्यवश्चरथ देवा इवासुरमायया ।
शुनां कपिरिव दूषणो बन्धुरा काबवस्य च ४ १८००
दुष्ट्यै हि त्वा भत्स्यामि दूषयिष्यामि काबवम् ।
उदाशवो रथा इव शपथेभिः सरिष्यथ ५
एकशतं विष्कन्धानि विष्ठिता पृथिवीमनु ।
तेषां त्वामग्र उज्जहरुर्मणिं विष्कन्धदूषणम् ६ १८०२

॥ २८२ ॥ (अथर्व० १६।१।१-१३) [प्रथमः पर्यायः ।]

अथर्वा । प्रजापतिः (दुःखमोचनम्) । १,३ द्विपदा साम्नी बृहती; २,१० याजुषी त्रिष्टुप्; ४ आसुरी गायत्री; ५,८ साम्नी पङ्क्तिः (५ द्विपदा); ६ साम्नी अनुष्टुप्; ७ निचृद् विराड् गायत्री; ९ आसुरी पङ्क्तिः; ११ साम्न्युष्णिक्; १२-१३ आर्च्यनुष्टुप् ।

अतिसृष्टो अपां वृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः १
रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् २
म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ३ १८०५
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ४
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ५
अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि ६
योऽप्स्वग्निरति तं सृजामि म्रोकं खनिं तनूदूषिम् ७
यो व आपोऽग्निराविवेश स एष यद् वो घोरं तदेतत् ८ १८१०
इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि षिञ्चेत् ९
अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् १०
प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुष्वप्न्यं वहन्तु ११
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे १२
शिवानग्नीनप्सुषदो हवामहे मयि क्षत्रं वर्च आ धत्त देवीः १३ १८१५

॥ २८३ ॥ (अथर्व० १६।२।१-६) [द्वितीयः पर्यायः ।]

अथर्वा । वाक् १ आसुर्यनुष्टुप्; २ आसुर्युष्णिक्; ३ साम्न्युष्णिक्; ४ त्रिपदा साम्नी बृहती; ५ आर्च्यनुष्टुप्; ६ निचृद् विराड्गायत्री ।

निर्दुरर्मण्य ऊर्जा मधुमती वाक् १
मधुमती स्थ मधुमतीं वाचमुदेयम् २
उपहूतो मे गोपा उपहूतो गोपीथः ३
सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ४
सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ५ १८२०
ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय ६ १८२१

॥ २८४ ॥ (अथर्व० १६।३।१-६) [तृतीयः पर्यायः ।]

ब्रह्मा । आदित्यः । १ आसुरी गायत्री; २-३ आर्च्यनुष्टुप्; ४ प्राजापत्या त्रिष्टुप्; ५ साम्न्युष्णिक्; ६ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप् ।

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् १
रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां मूर्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम् २
उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां धर्ता च मा धरुणश्च मा हासिष्टाम् ३
विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टामार्द्रदानुश्च मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम् ४ १८२५
बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ५
असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा ६ १८२७

॥ २८५ ॥ (अथर्व० १६।४।१-७) [चतुर्थः पर्यायः ।]

ब्रह्मा । आदित्यः । १,३ साम्न्यनुष्टुप्; २ साम्न्युष्णिक्; ४ त्रिपदाऽनुष्टुप्; ५ आसुरी गायत्री; ६ आर्च्युष्णिक्; ७ त्रिपदा विराड्गर्भाऽनुष्टुप् ।

नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् १
स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा २
मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ३ १८३०
सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ४
प्राणापानौ मा मां हासिष्टं मा जने प्र मोष ५
स्वस्त्य१द्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय ६
शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ७ १८३४

॥ २८६ ॥ (अथर्व० १६।५।१-१०) [पञ्चमः पर्यायः ।]

यमः । ×दुःष्वप्ननाशनम् । १-६ (प्रथमा) विराड् गायत्री [५ (प्रथमा) भुरिक्, ६ (प्रथमा) स्वराट्]; १-६ (द्वितीया) प्राजापत्या गायत्री; १-६ (तृतीया) द्विपदा साम्नी बृहती ।

विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥१॥ १ १८३५
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥२॥ २
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥३॥ ३
विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥१। अन्त०।२ तं०।३ ४
विद्म ते स्वप्न जनित्रमभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥१। अन्त०।२ तं०।३ ५
विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्भूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥१। अन्त०।२ तं०।३ ६ १८४०
विद्म ते स्वप्न जनित्रं पराभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥१। अन्त०।२ तं०।३ ७
विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥१॥ ८
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥२॥ ९
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥३॥ १० १८४४

॥ २८७ ॥ (अथर्व० १६।६।१-११) [षष्ठः पर्यायः ।]

यमः । दुःष्वप्ननाशनं, उषा । १-४ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ५ साम्ना पङ्क्तिः; ६ निचृदार्षी बृहती; ७ द्विपदा साम्नी बृहती; ८ आसुरी जगती; ९ आसुरी बृहती; १० आर्च्युष्णिक्; ११ त्रिपदा यवमध्या गायत्री वा आर्च्यनुष्टुप् ।

अजैष्माद्यासनामाद्याभूमानागसो वयम् १ १८४५
उषो यस्माद् दुष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु २
द्विषते तत् परा वह शपते तत् परा वह ३
यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तस्मा एनद् गमयामः ४
उषा देवी वाचा संविदाना वाग् देव्युषसा संविदाना ५
उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो वाचस्पतिरुषस्पतिना संविदानः ६ १८५०
तेऽमुष्मै परा वहन्त्वरायान् दुर्णाम्नः सदान्वाः ७
कुम्भीकां दूषीकाः पीयकान् ८
जाग्रद्दुष्वप्न्यं स्वप्नेदुष्वप्न्यम् ९
अनागमिष्यतो वरानवित्तेः संकल्पानमुच्या द्रुहः पाशान् १०
तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु वध्रिर्यथासद् विथुरो न साधुः ११ १८५५

×४६-४७ पृष्ठयोः १०५-१११ सूक्तानि द्रष्टव्यानि ।

❀

॥ २८८ ॥ (अथर्व० १६।७।१-१३) [सप्तमः पर्यायः ।]

यमः । दुःष्वप्ननाशनं, उषा । १ पङ्क्तिः; २ साम्न्यनुष्टुप्; ३ आसुर्युष्णिक्; ४ प्राजापत्या गायत्री; ५ आर्च्युष्णिक्; ६,९,११ साम्नी बृहती; ७ याजुषी गायत्री; ८ प्राजापत्या बृहती; १० साम्नी गायत्री; १२ भुरिक् प्राजापत्यानुऽष्टुप्, १३ आसुरी त्रिष्टुप् ।

तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि निर्भूत्यैनं विध्यामि
परांभूत्यैनं विध्यामि ग्राह्यैनं विध्यामि तमसैनं विध्यामि १
देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैरभिप्रेष्यामि २
वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ॥ ३ ॥ एवानेवाव सा गरत् ४
योऽस्मान् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ५ १८६०
निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या निरन्तरिक्षाद् भजाम ॥ ६ ॥ सुयामंश्चाक्षुष ७
इदमहमामुष्यायणेऽमुष्याः पुत्रे दुष्वप्न्यं मृजे ८
यददोअदो अभ्यगच्छन् यद् दोषा यत् पूर्वां रात्रिम् ९
यज्जाग्रद् यत् सुप्तो यद् दिवा यन्नक्तम् १० १८६५
यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये ११
तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि १२
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु १३

॥ २८९ ॥ (अथर्व० १६।८।१-२७) [अष्टमः पर्यायः ।]

यमः । दुःष्वप्ननाशनम् । १-२७ (प्रथमा) एकपदा यजुर्ब्राह्म्यनुष्टुप्; १-२७ (द्वितीया) त्रिपदा निचृद्गायत्री; १ (तृतीया) प्राजापत्या गायत्री; १-२७ (चतुर्थी) त्रिपदा प्राजापत्या त्रिष्टुप्; २-४,९,१७, १९,२४ (तृतीया) आसुरी जगती; ५,७-८,१०-११,१३,१८ (तृतीया) आसुरी त्रिष्टुप्; ६,१२, १४-१६,२०-२३,२७ (तृतीया) आसुरी पङ्क्तिः; २५-२६ (तृतीया) आसुरी बृहती ।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥ १
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥ २ १८७०
स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि ॥३॥ ३
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ १ । ४
जितम्० । स निर्ऋत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ २ । ५
जितम्० । सोऽभूत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ ३ । ६
जितम्० । स निर्भूत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ ४ । ७ १८७५

जितम० । स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ ५। ८
जितम० । स देवजामीनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ ६। ९
जितम० । स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ ७। १०
जितम० । स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ ८। ११
जितम० । स ऋषीणां पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ ९। १२ १८८०
जितम० । स आर्षेयाणां पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ १०। १३
जितम० । सोऽङ्गिरसां पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ ११। १४
जितम० । स आङ्गिरसानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ १२। १५
जितम० । सोऽथर्वणां पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ १३। १६
जितम० । स आथर्वणानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ १४। १७ १८८५
जितम० । स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ १५। १८
जितम० । स वानस्पत्यानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ १६। १९
जितम० । स ऋतूनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ १७। २०
जितम० । स आर्तवानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ १८। २१
जितम० । स मासानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ १९। २२ १८९०
जितम० । सोऽर्धमासानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ २०। २३
जितम० । सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ २१। २४
जितम० । सोऽह्नोः संयतोः पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ २२। २५
जितम० । स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ २३। २६
जितम० । स इन्द्राग्न्योः पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ २४। २७ १८९५
जितम० । स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ २५। २८
जितम० । स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मोचि । तस्येदं० ॥१-४॥ २६। २९
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥ ३०
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥ ३१
स मृत्योः पड्वीशात् पाशान्मा मोचि ॥३॥ ३२ १९००
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ २७। ३३ १९०१

॥ २९० ॥ (अथर्व० १६।९।१-४) [नवमः पर्यायः।]

यमः। १ प्रजापतिः; २ अग्निः, सोमः, पूषा; ३-४ सूर्यः। १ प्राजापत्या आर्च्यनुष्टुप्; २ आर्च्युष्णिक्; ३ साम्नी पङ्क्तिः; ४ परोष्णिक्।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः १
तदग्निराह तदु सोम आह पूषा मा धात् सुकृतस्य लोके २
अगन्म स्वः स्वरगन्म सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ३
वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान् भूयासं वसु मयि धेहि ४ १९०५

॥ २९१ ॥ (अथर्व० ७।२३।१)

यमः। दुःष्वप्ननाशनम्। अनुष्टुप्।

दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि १ १९०६

॥ २९२ ॥ (अथर्व० १९।५६।१-६)

यमः। दुःष्वप्ननाशनम्। त्रिष्टुप्।

यमस्य लोकादध्या बभूविथ प्रमदा मर्त्यान् प्र युनक्षि धीरः।
एकाकिना सरथं यासि विद्वान्त्स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ १
बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत् पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि।
ततः स्वप्नेदमध्या बभूविथ भिषग्भ्यो रूपमपगूहमानः २
बृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन्।
तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं त्रयस्त्रिंशासः स्वरानशानाः ३
नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिश्चरत्यन्तरेदम्।
त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टाः ४ १९१०
यस्य क्रूरमभजन्त दुष्कृतोऽस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमायुः।
स्वर्मदसि परमेण बन्धुना तप्यमानस्य मनसोऽधि जज्ञिषे ५
विद्म ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद् विद्म स्वप्न यो अधिपा इहा ते।
यशस्विनो नो यशसेह पाह्याराद् द्विषेभिरप याहि दूरम् ६ १९१२

॥ २९३ ॥ (अथर्व० १९।५७।१-५)

यमः। दुःष्वप्ननाशनम्। १ अनुष्टुप्; २-३ त्रिष्टुप्, (त्र्यवसाना); ४ षट्पदा उष्णिग्बृहतीगर्भा विराट् शक्वरी; ५ त्र्यवसाना पञ्चपदा परशाक्वरातिजगती।

यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति।
एवा दुष्वप्न्यं सर्वमप्रिये सं नयामसि १ १९१३

सं राजानो अगुः समृणान्यगुः सं कुष्ठा अगुः सं कला अगुः ।
समस्मासु यद् दुष्वप्न्यं निर्द्विषते दुष्वप्न्यं सुवाम २
देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर यो भद्रः स्वप्न ।
स मम यः पापस्तद् द्विषते प्र हिण्मः । मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् ३ १९१५
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स त्वं स्वप्नाश्व इव कायमश्व इव नीनाहम् ।
अनास्माकं देवपीयुं पियारुं वप यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ४
अनास्माकस्तद् देवपीयुः पियारुर्निष्कमिव प्रति मुञ्चताम् ।
नवारत्नीनपमया अस्माकं ततः परि । दुष्वप्न्यं सर्वं द्विषते निर्दयामसि ५ १९१७

॥ २९४ ॥ (अथर्व० १९।६५।१) [अवनम्] ※

यज्ञादिकम् । (१९१८-२३२४)

॥ २९५ ॥ (अथर्व० ७।७३।६-७,११) ×
अथर्वा । घर्मः, अश्विनौ । ६ जगती; ७,११ त्रिष्टुप् ।

उप द्रव पयसा गोधुगोषमा घर्मे सिञ्च पय उस्रियायाः ।
वि नाकमख्यत् सविता वरेण्योऽनुप्रयाणमुषसो वि राजति ६
उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत् ७
सूयवसाद् भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ११ १९२०

॥ २९६ ॥ (अथर्व० ७।६१।१-२)
अथर्वा । अग्निः (तपः) । अनुष्टुप् ।

यदग्ने तपसा तप उपतप्यामहे तपः । प्रियाः श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तः सुमेधसः १
अग्ने तपस्तप्यामह उप तप्यामहे तपः ।
श्रुतानि शृण्वन्तो वयमायुष्मन्तः सुमेधसः २ १९२२

॥ २९७ ॥ (अथर्व० १९।३२।१-१०)
भृगुः (आयुष्कामः) । दर्भः । अनुष्टुप्; ८ पुरस्ताद्बृहती; ९ त्रिष्टुप्; १० जगती ।

शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः । दर्भो य उग्र ओषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे १ १९२३

※ दै० [अग्निः] २३४९ ।
× अथर्व० ७।७३।१-५,८ = दै० [अश्विनौ] ६७९-६८४ ।
अथर्व० ७।७३।९-१० = दै० [अग्निः] ७९४,९३५ ।

नास्य केशान् प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते ।
यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति　२
दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः । त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ३　१९२५
तिस्रो दिवो अत्यतृणत् तिस्र इमाः पृथिवीरुत ।
त्वयाहं दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि　४
त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान् । उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान्त्सहिषीवहि ५
सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः ।
सहस्व सर्वान् दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून् कृधि　६
दर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वदित् ।
तेनाहं शश्वतो जनाँ असनं सनवानि च　७
प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते　८　१९३०
यो जायमानः पृथिवीमदृंहद् यो अस्तभ्नादन्तरिक्षं दिवं च ।
यं बिभ्रतं ननु पाप्मा विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो दिवा कः　९
सपत्नहा शतकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः सं बभूव ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतस्तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः　१०　१९३१

॥ १९८ ॥ (अथर्व० १९।३३।१-५)

भृगुः । दर्भः । १ जगती, २,५ त्रिष्टुप्, ३ आर्षी पङ्क्तिः, ४ आस्तारपङ्क्तिः ।

सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वानपामग्निर्वीरुधां राजसूयम् ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो देवो मणिरायुषा सं सृजाति नः　१
घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान् भूमिदृंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णुः ।
नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वन् दर्भा रोह महतामिन्द्रियेण　२
त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे ।
त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत्　३　१९३५
तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः ।
ओजो देवानां बलमुग्रमेतत् तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये　४
दर्भेण त्वं कृणवद् वीर्याणि दर्भं बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठाः ।
अतिष्ठाया वर्चसाधान्यान्त्सूर्य इवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः　५　१९३७

॥ २९९ ॥ (अथर्व० ५।२६।२-४, ६-९,११)+

ब्रह्मा । वास्तोष्पतिः, २ सविता, ३, ११ इन्द्रः, ४ निविदः, ६ अदितिः, ७ विष्णुः, ८ त्वष्टा, ९ भगः, (नवशालायां घृतहोमः) । २,४,६-८,११ द्विपदा प्राजापत्या बृहती; ३ त्रिपदा विराड् गायत्री; ९ त्रिपदा पिपीलिकमध्या पुर उष्णिक्; (सर्वा एकावसानाः) ।

युनक्तु देवः सविता प्रजानन्नस्मिन् यज्ञे महिषः स्वाहा २

इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ३

प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः ४ १९४०

एयमगन् बर्हिषा प्रोक्षणीभिर्यज्ञं तन्वानादितिः स्वाहा ६

विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ७

त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ८

भगो युनक्त्वाशिषो न्व१स्मा अस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ९

इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्याण्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ११ १९४५

॥ ३०० ॥ (ऋ० १०।१८।७-१४)×

संकुसुको यामायनः । ७-१४ पितृमेधः; १४ प्रजापतिर्वा । त्रिष्टुप्, ११ प्रस्तारपङ्क्तिः, १३ जगती, १४ अनुष्टुप् ।

इमा नारीरविधवाः सुपत्नी- राञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु ।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ७

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ८

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्या- ऽस्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम ९

उप सर्प मातरं भूमिमेता- मुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात् १०

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपवञ्चना ।
माता पुत्रं यथा सिचा ऽभ्येनं भूम ऊर्णुहि ११ १९५०

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् ।
ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र १२ १९५१

+ अथर्व० ५।२६।१ = अग्निः २३४५; ५।२६।५ = मरुतः ४३२; ५।२६।१० = सोमः ११८९; ५।२६।१२ = अश्विनौ ६७१ ।
× अथर्व० १८।३।१, ५०-५१, ५७ ।

उत् ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परी—मं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् ।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादना ते मिनोतु १३
प्रतीचीने मामहनी—ष्वाः पर्णमिवा दधुः ।
प्रतीचीं जग्रभा वाच—मश्वं रशनया यथा १४ १९५३

॥ ३०१ ॥ (ऋ० १०।१०।१-१४)*

नवमीवर्ज्यानामयुजां षष्ठ्याश्च वैवस्वती यमी ऋषिका। यमः। षष्ठीवर्ज्यानां युजां नवम्याश्च वैवस्वतो यमः ऋषिः। यमी। त्रिष्टुप्, १३ विराट्स्थाना।

ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान् ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः १
न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् २ १९५५
उशन्ति घा ते अमृतास एत—देकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य ।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वमा विविश्याः ३
न यत् पुरा चकृमा कद्ध नून—मृता वदन्तो अनृतं रपेम ।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ ४
गर्भे नु नौ जनिता दंपती क—र्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ५
को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ६
यमस्य मा यम्यं काम आग—न्त्समाने योनौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ७ १९६०
न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ८
रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य बिभृयादजामि ९
आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहु—मन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् १० १९६३

* अथर्व० १८।१।१-५,७-११,१५-१६।

किं भ्रातासद् यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।
काममूता बह्वेतद् रपामि तन्वा मे तन्वं सं पिपृग्धि ११
न वा उ ते तन्वा तन्वं सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् १२ १९६५
बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम ।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् १३
अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ।
तस्या वा त्वं मन इच्छा स वा तवाऽधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम् १४ १९६७

॥ ३०२ ॥ (ऋ० १०।१४।१-५,७-९,१३-१६)+

विवस्वतो यमः । यमः, ७-९ लिङ्गोक्ताः, पितरो वा । त्रिष्टुप्; १३-१४,१६ अनुष्टुप्; १५ बृहती ।

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य १
यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयु रेना जज्ञानाः पथ्याऽनु स्वाः २
मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभि र्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवा न्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ३ १९७०
इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाऽङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वह न्त्वेना राजन् हविषा मादयस्व ४
अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभि र्यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ५
प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभि र्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ७
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेने ष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ८
अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ९ १९७५
यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छ त्यग्निदूतो अरंकृतः १३ १९७६

+ ऋ० १०।१४।२,९। अथर्व० १८।१।५०,५५।

यमाय घृतवद्धवि—र्जुहोत प्र च तिष्ठत ।
स नो देवेष्वा यमद् दीर्घमायुः प्र जीवसे १४
यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः १५
त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्वीरेकमिद् बृहत् ।
त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता १६ १९७९

॥ ३०३ ॥ (ऋ० १०।१३५।१-७)

कुमारो यामायनः । यमः । अनुष्टुप् ।

यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः ।
अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणाँ अनु वेनति १ १९८०
पुराणाँ अनुवेनन्तं चरन्तं पापयामुया ।
असूयन्नभ्यचाकशं तस्मा अस्पृहयं पुनः २
यं कुमार नवं रथ—मचक्रं मनसाकृणोः ।
एकेषं विश्वतः प्राञ्च—मपश्यन्नधि तिष्ठसि ३
यं कुमार प्रावर्तयो रथं विप्रेभ्यस्परि ।
तं सामानु प्रावर्तत समितो नाव्याहितम् ४
कः कुमारमजनयद् रथं को निरवर्तयत् ।
कः स्वित् तदद्य नो ब्रूया—दनुदेयी यथाभवत् ५
यथाभवदनुदेयी ततो अग्रमजायत ।
पुरस्ताद् बुध्न आततः पश्चान्निरयणं कृतम् ६ १९८५
इदं यमस्य सादनं देवमानं यदुच्यते ।
इयमस्य धम्यते नाळी—रयं गीर्भिः परिष्कृतः ७ १९८६

॥ ३०४ ॥ (ऋ० १०।१५।१-१४)

शङ्खो यामायनः । पितरः । त्रिष्टुप्, ११ जगती ।

उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञा—स्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु १
इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु २ १९८८

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ३
बर्हिषदः पितर ऊत्य१र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शंतमेनाऽथा नः शं योररपो दधात ४ १९९०
उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ५
आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद् व आगः पुरुषता कराम ६
आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ७
ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ८
ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः ।
अग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ९ १९९५
ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः ।
अग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः परैः पूर्वैः पितृभिर्घर्मसद्भिः १०
अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन ११
त्वमग्न ईळितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि १२
ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ उ च न प्रविद्म ।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व १३
ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभिः स्वराळसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व १४ २०००

॥ ३०५ ॥ (अथर्व० १८।३।६,१३-१४,१७,३९-४९,५१-५३,५७-६१)×

अथर्वा। यमः, मन्त्रोक्ताः, ४० रुद्रः, ४१-४३ सरस्वती, ४४-४६, ५१-५२ पितरः (पितृमेधः) ।

त्रिष्टुप्; १४,४९ भुरिक्; ५७,६१ अनुष्टुप्; ५९ पुरोबृहती ।

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ६ २००१

× अथर्व० १८।१।१८-३८,५६ । दै० [अग्निः] १५४०-१५५६,२३२७-२८,१५६८ । दै० [इन्द्रः] १७९०-९१ ।

न तें नाथं यम्यत्राहमस्मि न तें तनूं तन्वा३ सं पंपृच्याम् ।
अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्टयेतत् १३
न वा उं ते तनूं तन्वा३ सं पंपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय १४
त्रीणि च्छन्दांसि कवयो वि येंतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम् ।
आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि १७
स्तेगो न क्षामत्येषि पृथिवीं मही नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
मित्रो नो अत्र वरुणो युज्यमानो अग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ३९ १००५
स्तुहि श्रुतं गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यमस्मत् ते नि वपन्तु सेन्यम् ४०
सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ४१
सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ४२
सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ४३
उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ४४ १०१०
आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ४५
इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो ये अपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु ४६
मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ४७
स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ४८
परेयिवांसं प्रवतो महीरिति बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ४९ १०१५

बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शंतमेनाधा नः शं योररपो दधात ५१
आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येदं नो हविरभि गृणन्तु विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद् व आगः पुरुषता कराम ५२
त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति तेनेदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ५३
प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
उभा राजानौ स्वधया मदन्तौ यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ५४
द्युमन्तस्त्वेधीमहि द्युमन्तः समिधीमहि ।
द्युमान् द्युमत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ५७ २०२०
अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ५८
अङ्गिरोभिर्यज्ञियैरा गहीह यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् बर्हिष्या निषद्य ५९
इमं यम प्रस्तरमा हि रोहाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषो मादयस्व ६०
इत एत उदारुहन् दिवस्पृष्ठान्यारुहन् ।
प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामङ्गिरसो ययुः ६१ २०२४

॥ ३०६ ॥ (अथर्व० १८।२।१-६०)

अथर्वा । यमः, मन्त्रोक्ताः; ४,३४ अग्निः; ५ जातवेदाः; २९ पितरः (पितृमेधः) । त्रिष्टुप्; १-३,६, १४-१८,२०,२२-२३,२५,३०,३४,३६,४६,४८,५०-५२,५६ अनुष्टुप्; ४,७,९,१३ जगती; ५,२६,४९,५७ भुरिक्; १९ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री; २४ त्रिपदा समविषमाऽऽर्षी गायत्री; ३७ विराड् जगती; ३८-४४ आर्षी गायत्री; (४०,४२-४४ भुरिक्) ४५ ककुम्मती अनुष्टुप् ।

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः १ २०२५
यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र च तिष्ठत ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः २
यमाय घृतवत् पयो राज्ञे हविर्जुहोतन ।
स नो जीवेष्वा यमेद् दीर्घमायुः प्र जीवसे ३ २०२

मैनमग्ने वि दहो माभि शूशुचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात् पितृभ्यः ४
यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेममेनं परि दत्तात् पितृभ्यः ।
यदो गच्छात्यसुनीतिमेतामथ देवानां वशनीर्भवाति ५
त्रिकद्रुकेभिः पतते षडुर्वीरेकमिद् बृहत् ।
त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आर्पिता ६ २०३०
सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ७
अजो भागस्तपसस्तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ८
यास्ते शोचयो रंहयो जातवेदो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।
अजं यन्तमनु ताः समृण्वतामथेतराभिः शिवतमाभिः शृतं कृधि ९
अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधावान् ।
आयुर्वसान उप यातु शेषः सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः १०
अति द्रव श्वानौ सारमेयौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अथा पितॄन्त्सुविदत्राँ अपीहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ११ २०३१
यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिषदी नृचक्षसा ।
ताभ्यां राजन् परि धेह्येनं स्वस्त्यस्मा अनमीवं च धेहि १२
उरूणसावसुतृपावुदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु ।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् १३
सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।
येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् १४
ये चित् पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः ।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् १५
तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् १६ २०४०
ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् १७ २०४१

सहस्रंणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् १८
स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी । यच्छास्मै शर्म सप्रथाः १९
असंबाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व ।
स्वधा याश्चकृषे जीवन् तास्ते सन्तु मधुश्चुतः २०
ह्वयामि ते मनसा मन इहेमान् गृहाँ उप जुजुषाण एहि ।
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेन स्योनास्त्वा वाता उप वान्तु शग्माः २१ २०४५
उत् त्वा वहन्तु मरुत उदवाहा उदप्रुतः । अजेन कृण्वन्तः शीतं वर्षेणोक्षन्तु बालिति २२
उदह्वमायुरायुषे क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
स्वान् गच्छतु ते मनो अधा पितृँरुप द्रव २३
मा ते मनो मासोर्माङ्गानां मा रसस्य ते ।
मा ते हास्त तन्वः किं चनेह २४
मा त्वा वृक्षः सं बाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही ।
लोकं पितृषु वित्त्वैधस्व यमराजसु २५
यत् ते अङ्गमतिहितं पराचैरपानः प्राणो य उ वा ते परेतः ।
तत् ते संगत्य पितरः सनीडा घासाद् घासं पुनरा वेशयन्तु २६ २०५०
अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परि ग्रामादितः ।
मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयां चकार २७
ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाननस्मात् प्र धमाति यज्ञात् २८
सं विशन्त्विह पितरः स्वा नः स्योनं कृण्वन्तः प्रतिरन्त आयुः ।
तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणा ज्योग् जीवन्तः शरदः पुरूचीः २९
यां ते धेनुं निपृणामि यमु ते क्षीर ओदनम् ।
तेना जनस्यासो भर्ता योऽत्रासदजीवनः ३०
अश्वावतीं प्र तर या सुशेवार्क्षाकं वा प्रतरं नवीयः ।
यस्त्वा जघान वध्यः सो अस्तु मा सो अन्यद् विदत भागधेयम् ३१ २०५५
यमः परोऽवरो विवस्वान् ततः परं नाति पश्यामि किं चन ।
यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वाततान ३२ २०५६

अपांगूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सर्वर्णामदधुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद् यत् तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ३३
ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः ।
सर्वांस्तानग्न आ वह पितृन् हविषे अत्तवे ३४
ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
त्वं तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम् ३५
शं तप माति तपो अग्ने मा तन्वं तपः ।
वनेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु यद्धरः ३६ २०६०
ददाम्यस्मा अवसानमेतद् य एष आगन् मम चेदभूदिह ।
यमश्चिकित्वान् प्रत्येतदाह ममैष राय उप तिष्ठतामिह ३७
इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ३८
प्रेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ३९
अपेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ४०
वीऽमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ४१ २०६५
निरिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ४२
उदिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ४३
समिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ४४
अमासि मात्रां स्वरगामायुष्मान् भूयासम् ।
यथापरं न मासातै शते शरत्सु नो पुरा । ४५
प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय ।
अपरिपरेण पथा यमराज्ञः पितृन् गच्छ ४६ २०७०
ये अग्रवः शशमानाः परेयुर्हित्वा द्वेषांस्यनपत्यवन्तः ।
ते द्यामुदित्याविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठे अधि दीध्यानाः ४७
उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा ।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ४८
ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम् ।
य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम ४९ २०७३

इदमिद् वा उ नापरं दिवि पश्यसि सूर्यम् ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ५०
इदमिद् वा उ नापरं जरस्यन्यदितोऽपरम् ।
जाया पतिमिव वाससाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ५१ २०७५
अभि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्वस्त्रेण भद्रया ।
जीवेषु भद्रं तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि ५२
अग्नीषोमा पथिकृता स्योनं देवेभ्यो रत्नं दधथुर्वि लोकम् ।
उप प्रेष्यन्तं पूषणं यो वहात्यञ्जोयानैः पथिभिस्तत्र गच्छतम् ५३
पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ५४
आयुर्विश्वायुः परि पातु त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र त ईयुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ५५
इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे ।
ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चाव गच्छतात् ५६ २०८०
एतत् त्वा वासः प्रथमं न्वागन्नपैतदूह यदिहाबिभः पुरा ।
इष्टापूर्तमनुसंक्राम विद्वान् यत्र ते दत्तं बहुधा विबन्धुषु ५७
अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व मेदसा पीवसा च ।
नेत् त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग् विधक्षन् परीङ्खयाति ५८
दण्डं हस्तादाददानो गतासोः सह श्रोत्रेण वर्चसा बलेन ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वा मृधो अभिमातीर्जयेम ५९
धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।
समागृभाय वसु भूरि पुष्टमर्वाङ् त्वमेह्युप जीवलोकम् ६० २०८४

॥ ३०७ ॥ (अथर्व० १८।३।१,३-४९,५१,५४,५६,५८-६६,६८-७३) ×

अथर्वा । यमः, ४४,४६ मन्त्रोक्ताः, ५-६ अग्निः, ५४ इन्दुः, ५६ आपः (पितृमेधः) । त्रिष्टुप् ; ४,८,११,२३ सतः पङ्क्तिः; ५ त्रिपदा निचृद्गायत्री; ६,५६,६८,७०,७२ अनुष्टुप् (५६ आर्षी); १८,२५-२९, ४४,४६ जगती (१८ भुरिक्, २९ विराट्); ३० पञ्चपदाऽतिजगती; ३१ विराट् शाक्वरी; ३२-३५,४७,४९,५२ भुरिक्; ३६ एकावसानाऽऽसुर्यनुष्टुप्; ३७ एकावसानाऽऽसुरी गायत्री; ३९ परा त्रिष्टुप् पङ्क्तिः; ५४ पुरोऽनुष्टुप्; ५८ विराट्; ६० त्र्यवसाना षट्पदा जगती; ६४ भुरिक् पथ्यापङ्क्तिः; ६९,६१ उपरिष्टाद् बृहती ।

इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम् ।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि १ २०८९
अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम् ।
अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत् प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम् ३
प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोकं देवानां पन्थामनुसंचरन्ती ।
अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व स्वर्गं लोकमधि रोहयैनम् ४
उप द्यामुप वेतसमवत्तरो नदीनाम् । अग्ने पित्तमपामसि ५
यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।
क्याम्बूरत्र रोहतु शाण्डदूर्वा व्यल्कशा ६
इदं त एकं पर ऊं त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
संवेशने तन्वा३ चारुरेधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे ७ २०९०
उत् तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे ।
तत्र त्वं पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व सं स्वधाभिः ८
प्र च्यवस्व तन्वं१ सं भरस्व मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् ।
मनो निविष्टमनुसंविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ ९
वर्चसा मां पितरः सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन ।
चक्षुषे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु १०
वर्चसा मां समनक्त्वग्निर्मेधां मे विष्णुर्न्यनक्त्वासन् ।
रयिं मे विश्वे नि यच्छन्तु देवाः स्योना मापः पवनैः पुनन्तु ११ २०९४

× अथर्व० १८।३।५३;५५,६७ = दै० [अग्निः] १५६१,१५६४ । दै० [इन्द्रः] २२६० ।

मित्रावरुणा परि मामधातामादित्या मा स्वरवो वर्धयन्तु ।
वर्चो म इन्द्रो न्यनक्तु हस्तयोर्जरदष्टिं मा सविता कृणोतु १२ २०९५
यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत १३
परा यात पितर आ च यातायं वो यज्ञो मधुना समक्तः ।
दत्तो अस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नः सर्ववीरं दधात १४
कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः ।
विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रिरवन्तु नः कश्यपो वामदेवः १५
विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव ।
शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुसंशासः पितरो मृडता नः १६
कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतरं नवीयः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेनाध स्याम सुरभयो गृहेषु १७ २१००
अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते १८
यद् वो मुद्रं पितरः सोम्यं च तेनो सचध्वं स्वयशसो हि भूत ।
ते अर्वाणः कवय आ शृणोत सुविदत्रा विदथे हूयमानाः १९
ये अत्रयो अङ्गिरसो नवग्वा इष्टावन्तो रातिषाचो दधानाः ।
दक्षिणावन्तः सुकृतो य उ स्थासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् २०
अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशशानाः ।
शुचीदयन् दीध्यत उक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् २१
सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं वावृधन्त इन्द्रमुर्वीं गव्यां परिषदं नो अक्रन् २२ २१०५
आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद् देवानां जनिमान्त्युग्रः ।
मर्तासश्चिदुर्वशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः २३
अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः २४
इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ २५ २१०८

धाता मा निर्ऋत्या दक्षिणाया दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ २६
अदितिर्मादित्यैः प्रतीच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ २७ १११०
सोमो मा विश्वैर्देवैरुदीच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ २८
धर्ता ह त्वा धरुणो धारयाता ऊर्ध्वं भानुं सविता द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ २९
प्राच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ३०
दक्षिणायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ३१
प्रतीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ३२ १११५
उदीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ३३
ध्रुवायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ३४
ऊर्ध्वायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ३५
धर्तासि धरुणोऽसि वंसगोऽसि ॥ ३६ ॥ उदपूरसि मधुपूरसि वातपूरसि ३७ ११२०
इतश्च मामुतश्चावतां यमे इव यतमाने यदैतम् ।
प्र वां भरन् मानुषा देवयन्तो आ सीदतां स्वमु लोकं विदाने ३८
स्वासस्थे भवतमिन्दवे नो युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः ।
वि श्लोक एति पथ्येव सूरिः शृण्वन्तु विश्वे अमृतास एतत् ३९
त्रीणि पदानि रुपो अन्वरोहच्चतुष्पदीमन्वैतद् व्रतेन ।
अक्षरेण प्रति मिमीते अर्कमृतस्य नाभावभि सं पुनाति ४० ११२३

देवेभ्यः कर्मवृणीत मृत्युं प्रजायै किममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषिः प्रियां यमस्तन्वं१मा रिरेच ४१
त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वा ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ४२ २१२५
आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ४३
अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयिं च नः सर्ववीरं दधात ४४
उपहूता नः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ४५
ये नः पितुः पितरो ये पितामहा अनूजहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ४६
ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः ।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः सत्यैः कविभिर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ४७ २१३०
ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेण ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् परैः पूर्वैर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ४८
उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदाः पृथिवी दक्षिणावत एषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ४९
उत् ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् ।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु ५२
अथर्वा पूर्णं चमसं यमिन्द्रायाबिभर्वाजिनीवते ।
तस्मिन् कृणोति सुकृतस्य भक्षं तस्मिन्निन्दुः पवते विश्वदानीम् ५४
पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं पयः ।
अपां पयसो यत् पयस्तेन मा सह शुम्भतु ५६ २१३५
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ५८
ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्व१न्तरिक्षम् ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्वः कल्पयाति ५९ २१३७

शं ते नीहारो भवतु शं ते प्रुष्वाव शीयताम् ।
शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।
मण्डूक्य१प्सु शं भुव इमं स्व१ग्निं शमय ६०
विवस्वान् नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः ।
इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्ववन्मय्यस्तु पुष्टम् ६१
विवस्वान् नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु ।
इमान् रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो मो ष्वे३षामसवो यमं गुः ६२ ११४०
यो दध्रे अन्तरिक्षे न मह्ना पितॄणां कविः प्रमतिर्मतीनाम् ।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ६३
आ रोहत दिवमुत्तमामृषयो मा बिभीतन ।
सोमपाः सोमपायिन इदं वः क्रियते हविरगन्म ज्योतिरुत्तमम् ६४
प्र केतुना बृहता भात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ६५
नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ६६
अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ६८ ११४५
यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ६९
पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि ।
यथा यमस्य सादन आसातै विदथा वदन् ७०
आ रभस्व जातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तु ते ।
शरीरमस्य सं दहाथैनं धेहि सुकृतामु लोके ७१
ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ७२
एतदा रोह वय उन्मृजानः स्वा इह बृहदु दीदयन्ते ।
अभि प्रेहि मध्यतो माप हास्थाः पितॄणां लोकं प्रथमो यो अत्र ७३ ११५०

॥ ३०८ ॥ (अथर्व० १८।४।१-८९)

अथर्वा। यमः, मन्त्रोक्ताः, ८१ पितरः, ८८ अग्निः, ८९ चन्द्रमाः। त्रिष्टुप्; १,४,७,१४,३६,६० भुरिक्; २,५,११ २९,५०-५१,५८ जगती; ३ पञ्चपदा भुरिगतिजगती; ६,९,१३ पञ्चपदा शाक्वरी (९ भुरिक्, १३ त्र्यवसाना); ८ पञ्चपदाऽतिशक्वरी; १२ महाबृहती; १६-२४ त्रिपदा भुरिङ्महाबृहती; २६,३३,४३ उपरिष्टाद्बृहती (२६ विराट्); २७ याजुर्षी गायत्री; २५, ३१-३२,३८,४१-४२,५५-५७,५९,६१ अनुष्टुप् (५६ ककुम्मती); ३९,६२-६३ आस्तारपङ्क्तिः; (३९ पुरोविराट्, ६२ भुरिक्, ६३ स्वराट्); ४९ अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप्; ५३ पुरोविराट् सतः पङ्क्तिः; ६६ त्रिपदा स्वराड् गायत्री; ६७ द्विपदाऽऽर्च्यनुष्टुप्; ६८,७१ आसुर्यनुष्टुप्; ७२-७४,७९ आसुरी पङ्क्तिः; ७५ आसुरी गायत्री; ७६ आसुर्युष्णिक्; ७७ दैवी जगती; ७८ आसुरी त्रिष्टुप्; ८० आसुरी जगती; ८१ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ८२ साम्नी बृहती; ८३-८४ साम्नी त्रिष्टुप्; ८५ आसुरी बृहती; (६७-६८-७१-८६ एकावसाना); ८६-८७ चतुष्पदा उष्णिक्; (८६ ककुम्मती, ८७ शंकुमती); ८८ त्र्यवसाना पथ्यापङ्क्तिः; ८९ पञ्चपदा पथ्यापङ्क्तिः।

आ रो॑हत॒ जनि॑त्रीं जा॒तवे॑दसः पितृ॒याणैः॒ सं व॒ आ रो॑हयामि ।
अवा॑ड्ढ॒व्येषि॒तो ह॑व्य॒वाह॑ ई॒जानं॑ यु॒क्ताः सु॒कृतां॑ धत्त लो॒के १
दे॒वा य॒ज्ञमृ॒तवः॑ कल्पयन्ति ह॒विः पु॑रो॒डाशं॑ स्रु॒चो य॑ज्ञायु॒धानि॑ ।
तेभि॑र्याहि प॒थिभि॑र्देव॒यानै॒र्यैरी॑जा॒नाः स्व॒र्गं यन्ति॑ लो॒कम् २
ऋ॒तस्य॒ पन्था॒मनु॑ पश्य सा॒ध्वङ्गि॑रसः सु॒कृतो॒ येन॒ यन्ति॑ ।
तेभि॑र्याहि प॒थिभिः॑ स्व॒र्गं यत्रा॑दि॒त्या मधु॑ भ॒क्षय॑न्ति तृ॒तीये॒ नाके॒ अधि॒ वि श्र॑यस्व ३
त्रयः॑ सुप॒र्णा उप॑रस्य मा॒यू नाक॑स्य पृ॒ष्ठे अधि॑ वि॒ष्टपि॑ श्रि॒ताः ।
स्व॒र्गा लो॒का अ॒मृते॑न वि॒ष्ठा इष॒मूर्जं॒ यज॑मानाय दुह्राम् ४
जु॒हूर्दा॑धार॒ द्यामु॑प॒भृद॒न्तरि॑क्षं ध्रु॒वा दा॑धार पृथि॒वीं प्र॑ति॒ष्ठाम् ।
प्र॒तीमां॑ लो॒का घृ॒तपृ॑ष्ठाः स्व॒र्गाः काम॑ंकाम॒ं यज॑मानाय दुह्राम् ५ २१५५

ध्रुव॒ आ रो॑ह पृथि॒वीं वि॒श्वभो॑जसम॒न्तरि॑क्षमुपभृ॒दा क्र॑मस्व ।
जुहु॒ द्यां ग॑च्छ॒ यज॑माने॒न सा॒कं स्रु॒वेण॑ व॒त्सेन॒ दिशः॒ प्रपी॑नाः॒ सर्वा॑ धु॒क्ष्वाहृ॑णीयमानः ६
ती॒र्थैस्त॑रन्ति प्र॒वतो॑ म॒हीरिति॑ यज्ञ॒कृतः॑ सु॒कृतो॒ येन॒ यन्ति॑ ।
अत्रा॑दधु॒र्यज॑मानाय लो॒कं दिशो॑ भू॒तानि॒ यदक॑ल्पयन्त ७ २१५७

अङ्गिरसामयनं पूर्वो अग्निरादित्यानामयनं गार्हपत्यो दक्षिणानामयनं दक्षिणाग्निः ।
महिमानमग्नेर्विहितस्य ब्रह्मणा समङ्गः सर्व उप याहि शग्मः ८
पूर्वो अग्निष्ट्वा तपतु शं पुरस्ताच्छं पश्चात् तपतु गार्हपत्यः ।
दक्षिणाग्निष्टे तपतु शर्म वर्मोत्तरतो मध्यतो अन्तरिक्षाद् दिशोदिशो
अग्ने परि पाहि घोरात् ९
यूयमग्ने शंतमाभिस्तनूभिरीजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
अश्वा भूत्वा पृष्टिवाहो वहाथ यत्र देवैः सधमादं मदन्ति १० ११६०
शमग्ने पश्चात् तप शं पुरस्ताच्छमुत्तराच्छमधरात् तपैनम् ।
एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः सम्यगेनं धेहि सुकृतामु लोके ११
शमग्नयः समिद्धा आ रभन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् १२
यज्ञ एति विततः कल्पमान ईजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
तमग्नयः सर्वहुतं जुषन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् १३
ईजानश्चितमारुक्षदग्निं नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत्पतिष्यन् ।
तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिषीमान्त्स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः १४
अग्निर्होताध्वर्युष्टे बृहस्पतिरिन्द्रो ब्रह्मा दक्षिणतस्ते अस्तु ।
हुतोऽयं संस्थितो यज्ञ एति यत्र पूर्वमयनं हुतानाम् १५ ११६५
अपूपवान् क्षीरवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ १६
अपूपवान् दधिवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० १७
अपूपवान् द्रप्सवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० १८
अपूपवान् घृतवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० १९
अपूपवान् मांसवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० २० ११७०
अपूपवानन्नवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० २१
अपूपवान् मधुमांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० २२
अपूपवान् रसवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० २३
अपूपवानपवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये० २४ ११७४

अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः २५ २१७५
यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् २६
अक्षितिं भूयसीम् २७
द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः २८
शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते रयिम् ।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सर्वदा ते दुह्रते दक्षिणां सप्तमातरम् २९
कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलमिडां धेनुं मधुमतीं स्वस्तये ।
ऊर्जं मदन्तीमदितिं जनेष्वग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ३० २१८०
एतत् ते देवः सविता वासो ददाति भर्तवे ।
तत् त्वं यमस्य राज्ये वासानस्तार्प्यं चर ३१
धाना धेनुरभवद् वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत् ।
तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ३२
एतास्ते असौ धेनवः कामदुघा भवन्तु ।
एनीः श्येनीः सरूपा विरूपास्तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु त्वात्र ३३
एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते ।
तिलवत्सा ऊर्जमस्मै दुहाना विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः ३४
वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि साहस्रं शतधारमुत्सम् ।
स बिभर्ति पितरं पितामहान् प्रपितामहान् बिभर्ति पिन्वमानः ३५ २१८५
सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं व्यच्यमानं सलिलस्य पृष्ठे ।
ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितरः स्वधाभिः ३६
इदं कसाम्बु चयनेन चितं तत् संजाता अव पश्यतेत ।
मर्त्योऽयममृतत्वमेति तस्मै गृहान् कृणुत यावत्सबन्धु ३७
इहैवैधि धनसनिरिहचित्त इहक्रतुः । इहैधि वीर्यवत्तरो वयोधा अपराहतः ३८
पुत्रं पौत्रमभितर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः ।
स्वधां पितृभ्यो अमृतं दुहाना आपो देवीरुभयांस्तर्पयन्तु ३९ २१८९

आपो अग्निं प्र हिंणुत पितृँरुपेमं यज्ञं पितरो मे जुषन्ताम् ।
आसीनामूर्जमुप ये सचन्ते ते नो रयिं सर्ववीरं नि यच्छान् ४० ११९०
समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाहं घृतप्रियम्। स वेद निहितान्निधीन् पितृन् परावतो गतान्४१
यं ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामि ते । ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः४२
यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ४३
इदं पूर्वमपरं नियानं येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
पुरोगवा ये अभिशाचो अस्य ते त्वा वहन्ति सुकृतामु लोकम् ४४
सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ४५ ११९५
सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ४६
सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ४७
पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि देवो नो धाता प्र तिरात्यायुः ।
परापरैता वसुविद् वो अस्त्वधा मृताः पितृषु सं भवन्तु ४८
आ प्र च्यवेथामप तन्मृजेथां यद् वामभिभा अत्रोचुः ।
अस्मादेतमघ्न्यौ तद् वशीयो दातुः पितृष्विहभोजनौ मम ४९
एयमगन् दक्षिणा भद्रतो नो अनेन दत्ता सुदुघा वयोधाः ।
यौवने जीवानुपपृञ्चती जरा पितृभ्य उपसंपराणयादिमान् ५० १२००
इदं पितृभ्यः प्र भरामि बर्हिर्जीवं देवेभ्य उत्तरं स्तृणामि ।
तदा रोह पुरुष मेध्यो भवन् प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ५१
एदं बर्हिरसदो मेध्योऽभूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ।
यथापरु तन्वं सं भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि ५२
पर्णो राजापिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन् ।
आयुर्जीवेभ्यो विदधद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ५३
ऊर्जो भागो य इमं जजानाश्माऽन्नानामाधिपत्यं जगाम ।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ५४ १२०४

यथा यमाय हर्म्यमवपन् पञ्च मानवाः ।
एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूरयोऽसत ५५ २२०५
इदं हिरण्यं बिभृहि यत् ते पिताबिभः पुरा ।
स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निर्मृड्ढि दक्षिणम् ५६
ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु मधुधारा व्युन्दती ५७
वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूरो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणः सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन् मनीषया ५८
त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु दिवि षंच्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ५९
प्र वा एतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतिं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरः ।
मर्य इव योषाः समर्षसे सोमः कलशे शतयामना पथा ६० २२१०
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाँ अधूषत । अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ६१
आ यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः ।
आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ६२
परा यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पूर्याणैः ।
अधा मासि पुनरा यात नो गृहान् हविरत्तुं सुप्रजसः सुवीराः ६३
यद् वो अग्निरजहादेकमङ्गं पितृलोकं गमयं जातवेदाः ।
तद् व एतत् पुनरा प्याययामि साङ्गाः स्वर्गे पितरो मादयध्वम् ६४
अभूद् दूतः प्रहितो जातवेदाः सायं न्यह्न उपवन्द्यो नृभिः ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ६५ २२१५
असौ हा इह ते मनः ककुत्सलमिव जामयः । अभ्येनं भूम ऊर्णुहि ६६
शुम्भन्तां लोकाः पितृषदना पितृषदने त्वा लोक आ सादयामि ६७
येऽस्माकं पितरस्तेषां बर्हिरसि ॥ ६८ ॥ उदुत्तमं वरुण०+ ६९
प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् यैः समामे बध्यते यैर्व्यामे ।
अधा जीवेम शरदं शतानि त्वया राजन् गुपिता रक्षमाणाः ७०
अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ॥ ७१ ॥ सोमाय पितृमते स्वधा नमः ७२ २२२१

+ दै० [आयुर्वेद०] १६७८ ।

पितृभ्यः सोमवद्भ्यः स्वधा नमः ॥ ७३ ॥ यमाय पितृमते स्वधा नमः ७४
एतत् ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु ७५ २२२५
एतत् ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु ७६
एतत् ते तत स्वधा ॥ ७७ ॥ स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः ७८
स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः ॥ ७९ ॥ स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः ८० २२३०
नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरो रसाय ८१
नमो वः पितरो भामाय नमो वः पितरो मन्यवे ८२
नमो वः पितरो यद् घोरं तस्मै नमो वः पितरो यत् क्रूरं तस्मै ८३
नमो वः पितरो यच्छिवं तस्मै नमो वः पितरो यत् स्योनं तस्मै ८४
नमो वः पितरः स्वधा वः पितरः ८५ २२३५
येऽत्र पितरः पितरो येऽत्र यूयं स्थ युष्माँस्तेऽनु यूयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्थ ८६
य इह पितरो जीवा इह वयं स्मः । अस्माँस्तेऽनु वयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्म ८७
आ त्वाग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद् घ सा ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवि । इषं स्तोतृभ्य आ भर ८८
चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ८९ २२३९

॥ ३०९ ॥ (ऋ० ८।३१।१-४)

मनुर्वैवस्वतः । यज्ञः, यजमानश्च । गायत्री ।

यो यजाति यजात इत् सुनवच्च पचाति च । ब्रह्मेदिन्द्रस्य चाकनत् १ २२४०
पुरोळाशं यो अस्मै सोमं ररत आशिरम् । पादित् तं शक्रो अंहसः २
तस्य द्युमाँ असद् रथो देवजूतः स शूशुवत् । विश्वा वन्वन्नमित्रिया ३
अस्य प्रजावती गृहे ऽसश्चन्ती दिवेदिवे । इळा धेनुमती दुहे ४ २२४३

॥ ३१० ॥ (ऋ० १०।१८३।१-२)

प्रजावान् प्राजापत्यः । १ यजमानः; २ यजमानपत्नी । त्रिष्टुप् ।

अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं तपसो जातं तपसो विभूतम् ।
इह प्रजामिह रयिं रराणः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकाम १
अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनू ऋत्व्ये नाधमानाम् ।
उप मामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकामे २ २२४५

॥ ३११ ॥ (अथर्व० ७।९७।१-८) [यज्ञः।]+

॥ ३१२ ॥ (अथर्व० १९।१।१-३)

ब्रह्मा। यज्ञः; चन्द्रमाश्च। १-२ पथ्याबृहती, ३ पङ्क्तिः।

सं सं स्रवन्तु नद्य१ः सं वाताः सं पतत्रिणः।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि १
इमं होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि २
रूपंरूपं वयोवयः संरभ्यैनं परि ष्वजे।
यज्ञमिमं चतस्रः प्रदिशो वर्धयन्तु संस्राव्येण हविषा जुहोमि ३ २२४८

॥ ३१३ ॥ (अथर्व० १९।५८।१-६)

ब्रह्मा। यज्ञः, बहुदैवत्यम्। त्रिष्टुप्, २ पुरोऽनुष्टुप्; ३ चतुष्पदाऽतिशक्वरी; ५ भुरिक्।

घृतस्य जूतिः समना सदेवा संवत्सरं हविषा वर्धयन्ती।
श्रोत्रं चक्षुः प्राणोच्छिन्नो नो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः १
उपास्मान् प्राणो ह्वयतामुप वयं प्राणं हवामहे।
वर्चो जग्राह पृथिव्य१न्तरिक्षं वर्चः सोमो बृहस्पतिर्विधत्ता २ २२५०
वर्चसो द्यावापृथिवी संग्रहणी बभूवथुर्वर्चो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम।
यशसं गावो गोपतिमुप तिष्ठन्त्यायतीर्यशो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम ३
व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्मा सीव्यध्वं बहुला पृथूनि।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ४
यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ५
ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम्।
इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम्। ६ २२५४

॥ ३१४ ॥ (अथर्व० १९।५९।२)※

ब्रह्मा। अग्निः (यज्ञः)। त्रिष्टुप्।

यद् वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः।
अग्निष्टद् विश्वादा पृणातु विद्वान्त्सोमस्य यो ब्राह्मणाँ आविवेश २ २२५५

+ दै० [इन्द्रः] ३२०-३२७।

※ अथर्व० १९।५९।१-३; = दै० [अग्निः] ११२४,१४९४-१४९५।

॥ ३१५ ॥ (अथर्व० ७।९९।१)

अथर्वा । वेदी । भुरिक् । त्रिष्टुप् ।

परि स्तृणीहि परि धेहि वेदिं मा जामिं मोषीरमुया शयानाम् ।
होतृषदनं हरितं हिरण्ययं निष्का एते यजमानस्य लोके　१　२२५६

॥ ३१६ ॥ (ऋ० १।३६।१३-१४)

कण्वो घौरः । (अग्निः) यूपः । प्रगाथः [विषमा बृहती+समा सतोबृहती] (१३ उपरिष्टाद्बृहती । ए. ब्रा. २।२ चरणच्छेदः) ।

ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये　तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता　यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे　१३
ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना　विश्वं समत्रिणं दह ।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे　विदा देवेषु नो दुवः　१४　२२५८

॥ ३१७ ॥ (ऋ० ३।८।१-१०)

गाथिनो विश्वामित्रः । यूपः, ६-१० यूपाः, ८ विश्वे देवा वा । त्रिष्टुप्; ३,७ अनुष्टुप् ।

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो　वनस्पते मधुना दैव्येन ।
यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद्　यद् वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे　१
समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद्　ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम् ।
आरे अस्मदमतिं बाधमान　उच्छ्रयस्व महते सौभगाय　२　२२६०
उच्छ्रयस्व वनस्पते　वर्ष्मन् पृथिव्या अधि ।
सुमिती मीयमानो　वर्चो धा यज्ञवाहसे　३
युवा सुवासाः परिवीत आगात्　स उ श्रेयान् भवति जायमानः ।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति　स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः　४
जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां　समर्य आ विदथे वर्धमानः ।
पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा　देवया विप्र उदियर्ति वाचम्　५
यान् वो नरो देवयन्तो निमिम्युर्वनस्पते स्वधितिर्वा ततक्ष ।
ते देवासः स्वरवस्तस्थिवांसः　प्रजावदस्मे दिधिषन्तु रत्नम्　६
ये वृक्णासो अधि क्षमि　निमितासो यतस्रुचः ।
ते नो व्यन्तु वार्यं　देवत्रा क्षेत्रसाधसः　७　२२६५
आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा　द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।
सजोषसो यज्ञमवन्तु देवा　ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम्　८　२२६६

हंसा इव श्रेणिशो यतानाः शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः ।
उन्नीयमानाः कविभिः पुरस्ताद् देवा देवानामपि यन्ति पाथः ९
शृङ्गाणीवेच्छृङ्गिणां सं ददृश्रे चषालवन्तः स्वरवः पृथिव्याम् ।
वाघद्भिर्वा विहवे श्रोषमाणा अस्माँ अवन्तु पृतनाज्येषु १० २२६८

॥ ३१८ ॥ (वा० य० ६।१-३,६)

(यूपः ।)

अग्रेणीरसि स्वावेश उन्नेतॄणामेतस्य वित्तादधि त्वा स्थास्यति देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः ।
द्यामग्रेणास्पृक्ष आन्तरिक्षं मध्येनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृꣳहीः २
या ते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमवभारि भूरि ।
ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि ।
ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजां दृꣳह ३ २२७०
परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परीमं यजमानꣳ रायो मनुष्याणाम् ।
दिवः सूनुरस्येष ते पृथिव्याँल्लोक आरण्यस्ते पशुः ६ २२७१

॥ ३१९ ॥ (वा० य० २१।४६)

(यूपः ।)

होता यक्षद् वनस्पतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाधित । यत्राश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथाꣳसि यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतान् प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद् रभीयस इव कृत्वी करदेवं देवो वनस्पतिर्जुषताꣳ हविर्होतर्यज ४६ २२७२

॥ ३२० ॥ (वा० य० २८।१०)

(यूपः ।)

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत् ।
दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमदृꣳहीद् वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज २० २२७३

॥ ३२१ ॥ (अथर्व० ७।९८।१)

अथर्वा। इन्द्रः, विश्वे देवाः (हविः)। विराट् त्रिष्टुप्।

सं बर्हिरक्तं हविषा घृतेन समिन्द्रेण वसुना सं मरुद्भिः।
सं देवैर्विश्वदेवेभिरक्तमिन्द्रं गच्छतु हविः स्वाहा १ ११७४

॥ ३२२ ॥ (ऋ० १०।१३।१-५)

आङ्गिर्हविर्धानः विवस्वानादित्यो वा। हविर्धाने×। त्रिष्टुप्, ५ जगती।

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः १ ११७५
यमे इव यतमाने यदैतं प्र वां भरन् मानुषा देवयन्तः।
आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः २
पञ्च पदानि रुपो अन्वरोहं चतुष्पदीमन्वेमि व्रतेन।
अक्षरेण प्रति मिम एतामृतस्य नाभावधि सं पुनामि ३
देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै कममृतं नावृणीत।
बृहस्पतिं यज्ञमकृण्वत ऋषिं प्रियां यमस्तन्वं१ प्रारिरेचीत् ४
सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवतन्नृतम्।
उभे इदस्योभयस्य राजत उभे यतेते उभयस्य पुष्यतः ५ ११७९

॥ ३२३ ॥ (ऋ० १।२८।५-८)

आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। ५-६ उलूखलं, ७-८ उलूखलमुसले।
५-६ अनुष्टुप्, ७-८ गायत्री।

यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे।
इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ५ ११८०
उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित्।
अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ६
आयजी वाजसातमा ता ह्यु१च्चा विजर्भृतः। हरी इवान्धांसि बप्सता ७
ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः। इन्द्राय मधुमत् सुतम् ८ ११८१

॥ ३२४ ॥ (ऋ० ७।१०४।१७)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। ग्रावाणः। त्रिष्टुप्।

प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहा तन्वं१ गूहमाना।
वव्राँ अनन्ताँ अव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः १७ ११८४

× ऋ० १।४१।१९-२१ द्यावापृथिवी हविर्धाने वा।

॥ ३२५ ॥ (ऋ० १०।७६।१-८)

सर्प ऐरावतो जरत्कर्णः । ग्रावाणः । जगती ।

आ व ऋञ्जस ऊर्जां व्युष्टि—ष्विन्द्रं मरुतो रोदसी अनक्तन ।
उभे यथा नो अहनी सचाभुवा सदःसदो वरिवस्यात उद्भिदा १ २२८५
तदु श्रेष्ठं सवनं सुनोतना—ऽत्यो न हस्तयतो अद्रिः सोतरि ।
विदद्ध्य१र्यो अभिभूति पौंस्यं महो राये चित् तरुते यदर्वतः २
तदिद्ध्यस्य सवनं विवेरपो यथा पुरा मनवे गातुमश्रेत् ।
गोअर्णसि त्वाष्ट्रे अश्वनिर्णिजि प्रेमध्वरेष्वध्वराँ अशिश्रयुः ३
अप हत रक्षसो भङ्गुरावतः स्कभायत निर्ऋतिं सेधतामतिम् ।
आ नो रयिं सर्ववीरं सुनोतन देवाव्यं भरत श्लोकमद्रयः ४
दिवश्चिदा वोऽमवत्तरेभ्यो विभ्वना चिदाश्वपस्तरेभ्यः ।
वायोश्चिदा सोमरभस्तरेभ्यो ऽग्नेश्चिदर्च पितुकृत्तरेभ्यः ५
भुरन्तु नो यशसः सोत्वन्धसो ग्रावाणो वाचा दिविता दिवित्मता ।
नरो यत्र दुहते काम्यं मध्वा—घोषयन्तो अभितो मिथस्तुरः ६ २२९०
सुन्वन्ति सोमं रथिरासो अद्रयो निरस्य रसं गविषो दुहन्ति ते ।
दुहन्त्यूधरुपसेचनाय कं नरो हव्या न मर्जयन्त आसभिः ७
एते नरः स्वपसो अभूतन य इन्द्राय सुनुथ सोममद्रयः ।
वामंवामं वो दिव्याय धाम्ने वसुवसु वः पार्थिवाय सुन्वते ८ २२९२

॥ ३२६ ॥ (ऋ० १०।९४।१-१४)

अर्बुदः काद्रवेयः सर्पः । ग्रावाणः । जगती; ५,७,१४ त्रिष्टुप् ।

प्रैते वदन्तु प्र वयं वदाम ग्रावभ्यो वाचं वदता वदद्भ्यः ।
यदद्रयः पर्वताः साकमाशवः श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः १
एते वदन्ति शतवत् सहस्रव—दभि क्रन्दन्ति हरितेभिरासभिः ।
विष्ट्वी ग्रावाणः सुकृतः सुकृत्यया होतुश्चित् पूर्वे हविरद्यमाशत २
एते वदन्त्यविदन्नना मधु न्यूङ्खयन्ते अधि पक्व आमिषि ।
वृक्षस्य शाखामरुणस्य बप्सत—स्ते सूभर्वा वृषभाः प्रेमराविषुः ३ २२९५
बृहद् वदन्ति मदिरेण मन्दिने—न्द्रं क्रोशन्तोऽविदन्नना मधु ।
संरभ्या धीराः स्वसृभिरनर्तिषु—राघोषयन्तः पृथिवीमुपब्दिभिः ४ २२९६

॥ ३२१ ॥ (अथर्व० ७।९८।१)
अथर्वा। इन्द्रः, विश्वे देवाः (हविः)। विराट् त्रिष्टुप्।

सं बर्हिरक्तं हविषा घृतेन समिन्द्रेण वसुना सं मरुद्भिः।
सं देवैर्विश्वदेवेभिरक्तमिन्द्रं गच्छतु हविः स्वाहा १ ११७४

॥ ३२२ ॥ (ऋ० १०।१३।१-५)
आङ्गिर्हविर्धानः विवस्वानादित्यो वा। हविर्धाने×। त्रिष्टुप्, ५ जगती।

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः १ ११७५
यमे इव यतमाने यदैतं प्र वां भरन् मानुषा देवयन्तः।
आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः २
पञ्च पदानि रुपो अन्वरोहं चतुष्पदीमन्वेमि व्रतेन।
अक्षरेण प्रति मिम एतामृतस्य नाभावधि सं पुनामि ३
देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै कममृतं नावृणीत।
बृहस्पतिं यज्ञमकृण्वत ऋषिं प्रियां यमस्तन्वं प्रारिरेचीत् ४
सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवतन्नृतम्।
उभे इदस्योभयस्य राजत उभे यतेते उभयस्य पुष्यतः ५ ११७९

॥ ३२३ ॥ (ऋ० १।२८।५-८)
आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। ५-६ उलूखलं, ७-८ उलूखलमुसले।
५-६ अनुष्टुप्, ७-८ गायत्री।

यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे।
इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ५ ११८०
उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित्।
अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ६
आयजी वाजसातमा ता ह्यु१च्चा विजर्भृतः। हरी इवान्धांसि बप्सता ७
ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः। इन्द्राय मधुमत् सुतम् ८ ११८३

॥ ३२४ ॥ (ऋ० ७।१०४।१७)
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। ग्रावाणः। त्रिष्टुप्।

प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहा तन्वं१ गूहमाना।
वव्राँ अनन्ताँ अव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः १७ ११८४

× ऋ० १।४१।१९-२१ द्यावापृथिवी हविर्धाने वा।

॥ ३२५ ॥ (ऋ० १०।७६।१-८)

सर्प ऐरावतो जरत्कर्णः । ग्रावाणः । जगती ।

आ व ऋञ्जस ऊर्जां व्युष्टिष्विन्द्रं मरुतो रोदसी अनक्तन ।
उभे यथा नो अहनी सचाभुवा सदःसदो वरिवस्यात उद्भिदा १ २२८५
तदु श्रेष्ठं सवनं सुनोतनाऽत्यो न हस्तयतो अद्रिः सोतरि ।
विदद्ध्यर्यो अभिभूति पौंस्यं महो राये चित् तरुते यदर्वतः २
तदिद्ध्यस्य सवनं विवेरपो यथा पुरा मनवे गातुमश्रेत् ।
गोअर्णसि त्वाष्ट्रे अश्वनिर्णिजि प्रेमध्वरेष्वध्वराँ अशिश्रयुः ३
अप हत रक्षसो भङ्गुरावतः स्कभायत निर्ऋतिं सेधतामतिम् ।
आ नो रयिं सर्ववीरं सुनोतन देवाव्यं भरत श्लोकमद्रयः ४
दिवश्चिदा वोऽमवत्तरेभ्यो विभ्वना चिदाश्वपस्तरेभ्यः ।
वायोश्चिदा सोमरभस्तरेभ्योऽग्नेश्चिदर्च पितुकृत्तरेभ्यः ५
भुरन्तु नो यशसः सोत्वन्धसो ग्रावाणो वाचा दिविता दिवित्मता ।
नरो यत्र दुहते काम्यं मध्वाघोषयन्तो अभितो मिथस्तुरः ६ २२९०
सुन्वन्ति सोमं रथिरासो अद्रयो निरस्य रसं गविषो दुहन्ति ते ।
दुहन्त्यूधरुपसेचनाय कं नरो हव्या न मर्जयन्त आसभिः ७
एते नरः स्वपसो अभूतन य इन्द्राय सुनुथ सोममद्रयः ।
वामंवामं वो दिव्याय धाम्ने वसुवसु वः पार्थिवाय सुन्वते ८ २२९२

॥ ३२६ ॥ (ऋ० १०।९४।१-१४)

अर्बुदः काद्रवेयः सर्पः । ग्रावाणः । जगती; ५,७,१४ त्रिष्टुप् ।

प्रैते वदन्तु प्र वयं वदाम ग्रावभ्यो वाचं वदता वदद्भ्यः ।
यदद्रयः पर्वताः साकमाशवः श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः १
एते वदन्ति शतवत् सहस्रवदभि क्रन्दन्ति हरितेभिरासभिः ।
विष्ट्वी ग्रावाणः सुकृतः सुकृत्यया होतुश्चित् पूर्वे हविरद्यमाशत २
एते वदन्त्यविदन्नना मधु न्यूङ्खयन्ते अधि पक्व आमिषि ।
वृक्षस्य शाखामरुणस्य बप्सतस्ते सूभर्वा वृषभाः प्रेमराविषुः ३ २२९५
बृहद् वदन्ति मदिरेण मन्दिनेन्द्रं क्रोशन्तोऽविदन्नना मधु ।
संरभ्या धीराः स्वसृभिरनर्तिषुराघोषयन्तः पृथिवीमुपब्दिभिः ४ २२९६

सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्या—खरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।
न्यङ्नि यन्त्युपरस्य निष्कृतं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्वितः ५
उग्रा इव प्रवहन्तः समायमुः साकं युक्ता वृषणो बिभ्रतो धुरः ।
यच्छ्वसन्तो जग्रसाना अराविषुः शृण्व एषां प्रोथथो अर्वतामिव ६
दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यो दशयोक्त्रेभ्यो दशयोजनेभ्यः ।
दशाभीशुभ्यो अर्चताजरेभ्यो दश धुरो दश युक्ता वहद्भ्यः ७
ते अद्रयो दशयन्त्रास आशव—स्तेषामाधानं पर्येति हर्यतम् ।
त ऊ सुतस्य सोम्यस्यान्धसो—ऽशोः पीयूषं प्रथमस्य भेजिरे ८ २३००
ते सोमादो हरी इन्द्रस्य निंसते—ऽशुं दुहन्तो अध्यासते गवि ।
तेभिर्दुग्धं पपिवान्त्सोम्यं मध्वि—न्द्रो वर्धते प्रथते वृषायते ९
वृषा वो अंशुर्न किला रिषाथने—ळावन्तः सदमित् स्थनाशिताः ।
रैवत्येव महसा चारवः स्थन यस्य ग्रावाणो अजुषध्वमध्वरम् १०
तृदिला अतृदिलासो अद्रयो ऽश्रमणा अशृथिता अमृत्यवः ।
अनातुरा अजराः स्थामविष्णवः सुपीवसो अतृषिता अतृष्णजः ११
ध्रुवा एव वः पितरो युगेयुगे क्षेमकामासः सदसो न युञ्जते ।
अजुर्यासो हरिषाचो हरिद्रव आ द्यां रवेण पृथिवीमशुश्रवुः १२
तदिद्वदन्त्यद्रयो विमोचने यामन्नञ्जस्पा इव घेदुपब्दिभिः ।
वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः पृञ्चन्ति सोमं न मिनन्ति बप्सतः १३ २३०५
सुते अध्वरे अधि वाचमक्रता—ऽऽ क्रीळयो न मातरं तुदन्तः ।
वि षू मुञ्चा सुषुवुषो मनीषां वि वर्तन्तामद्रयश्चायमानाः १४ २३०६

॥ ३२७ ॥ (ऋ० १०।१७५।१-४)

ऊर्ध्वग्रावा सर्प आर्बुदिः । ग्रावाणः । गायत्री ।

प्र वो ग्रावाणः सविता देवः सुवतु धर्मणा । धूर्षु युज्यध्वं सुनुत १
ग्रावाणो अप दुच्छुना—मप सेधत दुर्मतिम् । उस्राः कर्तन भेषजम् २
ग्रावाण उपरेष्वा महीयन्ते सजोषसः । वृष्णे दधतो वृष्ण्यम् ३
ग्रावाणः सविता नु वो देवः सुवतु धर्मणा । यजमानाय सुन्वते ४ २३१०

॥ ३२८ ॥ (ऋ० १०।११७।१–९)

भिक्षुराङ्गिरसः । धनान्नदानम् । त्रिष्टुप्, १–२ जगती ।

न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददु—रुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः ।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्य—त्युतापृणन् मर्डितारं न विन्दते १
य आध्राय चकमानाय पित्वो ऽन्नवान्त्सन् रफितायोपजग्मुषे ।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरो—तो चित् स मर्डितारं न विन्दते २
स इद्भोजो यो गृहवे ददा—त्यन्नकामाय चरते कृशाय ।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम् ३
न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः ।
अपास्मात् प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत् ४
पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम् ।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा ऽन्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः ५ २३१५
मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ६
कृषन्नित् फाल आशितं कृणोति यन्नध्वानमप वृङ्क्ते चरित्रैः ।
वदन् ब्रह्मावदतो वनीयान् पृणन्नापिरपृणन्तमभि ष्यात् ७
एकपाद् भूयो द्विपदो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे संपश्यन् पङ्क्तीरुपतिष्ठमानः ८
समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः संमातरा चिन्न समं दुहाते ।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित् सन्तौ न समं पृणीतः ९ २३१९

॥ ३२९ ॥ (अथर्व० ३।१४।१–६)

ब्रह्मा । गोष्ठः, अहः, २ अर्यमा, पूषा, बृहस्पतिः, इन्द्रः; १–६ गावः, ५ गोष्ठश्च ।
अनुष्टुप्, ६ आर्षी त्रिष्टुप् ।

सं वो गोष्ठेन सुषदा सं रय्या सं सुभूत्या ।
अहर्जातस्य यन्नाम तेना वः सं सृजामसि १ २३२०
सं वः सृजत्वर्यमा सं पूषा सं बृहस्पतिः ।
समिन्द्रो यो धनंजयो मयि पुष्यत यद् वसु २
संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः ।
बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन ३ २३२१

इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत। इहैवोत प्र जायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः ४
शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत। इहैवोत प्र जायध्वं मया वः सं सृजामसि ५
मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः।
रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्तीरुप वः सदेम ६ १३२५

॥ ३३० ॥ (अथर्व० ६।४९।३)।×

गार्ग्यः। अग्निः (अग्निस्तवः)। विराड् जगती।

सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः।
नि यन्नियन्त्युपरस्य निष्कृतिं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्रितः ३ १३२६

[१३२७–१३४५ इत्येकोनविंशति (१९) मन्त्राः तत्तद्विषये संग्राह्याः।]

॥ ३३१ ॥ (वा० यः १२।१००)

(दीर्घायुष्यम्।)

दीर्घायुस्त ओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम्।
अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा विरोहतात् १०० १३२७

॥ ३३२ ॥ (वा० य० ३४।५०-५२)

(दीर्घायुष्यम्।)

आयुष्यं वर्चस्यꣳ रायस्पोषमौद्भिदम्।
इदꣳ हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम् ५०
न तद् रक्षाꣳसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजꣳ ह्येतत्।
यो बिभर्ति दाक्षायणꣳ हिरण्यꣳ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते
दीर्घमायुः ५१
यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यꣳ शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तन्म आ बध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ५२ १३३०

॥ ३३३ ॥ (अथर्व० २।१३।१-५)

अथर्वा। अग्निः, २-३ बृहस्पतिः, ४-५ विश्वे देवाः (दीर्घायुःप्राप्तिः)। त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप्, ५ विराड्जगती।

आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम् १ १३३१

× अथर्व० ६।४९।१-२ = दै० [अग्निः] १३३७-१३३८।

परिं धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ २
परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्गृष्टीनामभिशस्तिपा उं ।
शतं च जीवं शरदंः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ३
एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः ।
कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदंः शतम् ४
यस्य ते वासः प्रथमवास्यं१ हरामस्तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः ।
तं त्वा भ्रातरः सुवृधा वर्धमानमनु जायन्तां बहवः सुजातम् ५ २३३५

॥ ३३४ ॥ (ऋ० १०।८५।३१)

सावित्री सूर्या ऋषिका । दम्पत्योर्यक्ष्मनाशनम् । अनुष्टुप् ।

ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनादनुं ।
पुनस्तान् यज्ञियां देवा नयन्तु यत आगताः ३१ २३३६

॥ ३३५ ॥ (ऋ० १०।१५५।१,४)

शिरिम्बिठो भारद्वाजः । अलक्ष्मीघ्नम् । अनुष्टुप् ।

अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे ।
शिरिम्बिठस्य सत्वभि स्तेभिष्ट्वा चातयामसि १
यद्ध प्राचीरजगन्तो रो मण्डूरधाणिकीः ।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ४ २३३८

॥ ३३६ ॥ (ऋ० १०।१४५।४,६) *

इन्द्राणी । सपत्नीबाधनम् (उपनिषत्) । ४ अनुष्टुप्, ६ पङ्क्तिः ।

नह्यस्या नाम गृभ्णामि नो अस्मिन् रमते जने ।
परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ४
उप तेऽधां सहमाना मभि त्वाधां सहीयसा ।
मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ६ २३४०

॥ ३३७ ॥ (ऋ० १०।१६६।१-५)

ऋषभो वैराजः, ऋषभः शाकरो वा । सपत्नघ्नम् । अनुष्टुप्, ५ महापङ्क्तिः ।

ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहिम् ।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् १ २३४१

---

* ऋ० १०।१४५।१-६ = दै० [आयुर्वेद०] ३६४-३६९ ।

इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत । इहैवोत प्र जायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः ४

शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत । इहैवोत प्र जायध्वं मया वः सं सृजामसि ५

मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः ।

रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्तीरुप वः सदेम ६ १३२५

॥ ३३० ॥ (अथर्व० ६।४९।३) ।×

गार्ग्यः । अग्निः (अग्निस्तवः) । विराड् जगती ।

सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।

नि यन्नियन्त्युपरस्य निष्कृतिं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्रितः ३ १३२६

[१३२७-१३४१ इत्येकोनविंशति (१९) मन्त्राः तत्तद्विषये संग्राह्याः ।]

॥ ३३१ ॥ (वा० यः १२।१००)

(दीर्घायुष्यम् ।)

दीर्घायुस्त ओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम् ।

अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा विरोहतात् १०० १३२७

॥ ३३२ ॥ (वा० य० ३४।५०-५२)

(दीर्घायुष्यम् ।)

आयुष्यं वर्चस्य९ रायस्पोषमौद्भिदम् ।

इद९ हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम् ५०

न तद् रक्षा९सि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमज९ ह्येतत् ।

यो बिभर्ति दाक्षायण९ हिरण्य९ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ५१

यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्य९ शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।

तन्म आ बध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ५२ १३३०

॥ ३३३ ॥ (अथर्व० २।१३।१-५)

अथर्वा । अग्निः, २-३ बृहस्पतिः, ४-५ विश्वे देवाः (दीर्घायुःप्राप्तिः) । त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप्, ६ विराड्जगती ।

आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने ।

घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम् १ १३३१

× अथर्व० ६।४९।१-२ = दै० [अग्निः] १३३७-१३३८ ।

परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ २
परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ३
एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः ।
कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम् ४
यस्य ते वासः प्रथमवास्यं हरामस्तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः ।
तं त्वा भ्रातरः सुवृधा वर्धमानमनु जायन्तां बहवः सुजातम् ५ २३३५

॥ ३३४ ॥ (ऋ० १०।८५।३१)

सावित्री सूर्या ऋषिका । दम्पत्योर्यक्ष्मनाशनम् । अनुष्टुप् ।

ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनादनु ।
पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ३१ २३३६

॥ ३३५ ॥ (ऋ० १०।१५५।१,४)

शिरिम्बिठो भारद्वाजः । अलक्ष्मीघ्नम् । अनुष्टुप् ।

अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे ।
शिरिम्बिठस्य सत्वभिस्तेभिष्ट्वा चातयामसि १
यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः ।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ४ २३३८

॥ ३३६ ॥ (ऋ० १०।१४५।४,६) *

इन्द्राणी । सपत्नीबाधनम् (उपनिषत्) । ४ अनुष्टुप् , ६ पङ्क्तिः ।

नह्यस्या नाम गृभ्णामि नो अस्मिन् रमते जने ।
परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ४
उप तेऽधां सहमानामभि त्वाधां सहीयसा ।
मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ६ २३४०

॥ ३३७ ॥ (ऋ० १०।१६६।१-५)

ऋषभो वैराजः, ऋषभः शाकरो वा । सपत्नघ्नम् । अनुष्टुप्, ५ महापङ्क्तिः ।

ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहिम् ।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् १ २३४१

---

* ऋ० १०।१४५।१-६ = दै० [आयुर्वेद०] ३६४-३६९ ।

अहमस्मि सपत्नहेन्द्र इवारिष्टो अक्षतः ।
अधः सपत्ना मे पदोरिमे सर्वे अभिष्ठिताः २
अत्रैव वोऽपि नह्याम्युभे आर्त्नी इव ज्यया ।
वाचस्पते नि षेधेमान् यथा मदधरं वदान् ३
अभिभूरहमागमं विश्वकर्मेण धाम्ना ।
आ वश्चित्तमा वो व्रतमा वोऽहं समितिं ददे ४
योगक्षेमं व आदायाऽहं भूयासमुत्तम आ वो मूर्धानमक्रमीम् ।
अधस्पदान्म उद्वदत मण्डूका इवोदकान्मण्डूका उदकादिव ५ १२४५

इत्यायुर्वेद-प्रकरणं समाप्तम् ।

दैवतसंहितायां

आयुर्वेद-प्रकरणस्य उपमा-सूची ।

अंशुः इव अथ. ५,२९,११; ७४९ आ प्यायतां अयम् ।
अंशुगः शिशुकः यथा अथ. ६,१४,३; ४८५ निर्बलासः प्र पत ।
अग्निः इव अथ. २,२५,४; ४१९ तान् अनुदहन् इहि ।
अग्निः इव अथ. ५,१४,१३; १६०३ एतु प्रतिकूलम् ।
अग्निः इव अथः ५,२२,२; ५३२ अभिदुन्वन् । उच्छोचयन् ।
अग्निः वने न अ. १८,१,३९; १००५ व्यसृष्ट शोकम् ।
(यथा) अग्निः वृक्षान् अ. १०,३,१४; १४३६ एवा सपत्नान् ।
अग्निं इव अ. ८,२,४; ३० जातं अभि सं धमामि ।
अग्नेः इव अ. ७,४५,२; ६८३ अस्य दहतः दावस्य पृथक् ।
अग्नेः इव अ. ८,७,१५; ३३८ विजन्त आभृताभ्यः ।
अग्नेः इव अ. ६,२०,१; १७९ अस्य दहतः एति शुष्मिणः ।
(यथा यशः) अग्निहोत्रे अ. १०,३,२२; १४७४ एवा मणिः ।
(यथा) अघ्न्या नीचीनं दुहे अ.६,९१,२; २०० न्यग् भवतु ते रपः ।
अञ्जः पाः इव ऋ. १०,९४,१३; २३०५ अद्रयः यामन् तद् इद् ।
अत्रिवत् अ. ५,२३,१०; ७०५ क्रिमयः हन्मि ।
अधि ज्यामिव धन्वनि अ. ४,४,७; १३३८ अहं ते पसः
अ. ६,१०,१,२; १३४५ आ तनोमि ।
अत्यः न ऋ. १०,७६,२; २२८६ अद्रिः हस्तयतः सोतरि ।
अध्वर्यवः घर्मिणः सिष्विं० ऋ. ७,१०३,८; १००१ मण्डूकाः गुह्याः ।
अनड्वान् जगतामिव अ ८,५,११; १४४१ | उत्तमा ओष-
,, अ. १९,३९,४; ४१० | धीनाम् ।
अनड्वाहौ इव व्रजम् | अ. ३,११,५; ७६ | प्रविशत प्राणापानौ ।
| अ. ७,५३,५; १४७ |
अनस्वती इव वाहिनी अ. १०,१,१५; १६३० तेनाभि याहि भञ्जती ।
अनुकूलं इव उदकम् अ. ५,१४,१३; १६०३ वर्ततां कृत्या ।
(यथा) अभिचक्रं देवाः अ. ३,९,१; १७९७ तथाप कृणुता पुनः ।
(यथा स्म ते विरोहतः) अभि तप्तं अ. ४,४,३; १३३४ शुष्मवत्तरं ।
अभ्रात् इव वृष्टयः ऋ० १०,७५,३; १०३८ सिन्धु एति ।
अभ्रातर इव जामयः अ. १,१७,१; ५२५ हिराः हतवर्चसः तिष्ठन्तु
(यथा) अमृतं देवेषु अ. १०,३,२५; १४७७ एवा मणिः ।
अयः न अ. १८,३,२२; २१०५ देवाः जनिमा धमन्तः ।

अर्वतां इव ऋ. १०,९४,६; २२९८ एषां प्रोथथः शृण्वे ।
अर्वतीः इव अ. १०,४,२१; ८२८ नयामि ।
अवध्वसं इव अ. ५,२२,३; ५३३ अरुणः ।
अवसृष्टः न पाशैः वा. य. २०,४५; ३७२ त्मन्या समञ्जन् ।
अश्रेष्माणः अधारयन् अ. ३,९,२; १७२८ तथा तत् मनुना ।
अश्वः इव अ. १०,१,१९; १६३४ वि वर्तताम् ।
अश्व इव अ. १९,५७,४; १९१३ कायम् ।
अश्व इव अ. १९,५७,४; १९१३ नीनाहम् ।
अश्व इव नडम् अ. १२,२,५०; २३६ अग्निः अन्तिकात् अनुवपते ।
अश्वं इव अश्वाभिधान्या अ. ५,१४,६; १५९६ तां तस्मै नयामसि ।
अश्वाः इव ऋ. १०,९७,३; ३०३ वीरुधः सजित्वरीः ।
(मृगाः) अश्वाः इव अ. १९,३८,२; २०३ विष्वञ्चः यक्ष्माः ईरते ।
अश्वा न ऋ. १०,७५,७; १०४२ चित्रः सिन्धुः ।
(विषिते हासमाने) अश्वे इव ऋ. ३,३३,१; १०२२ पर्वतानां ।
(यथा) ऽसितः प्रथयते अ. ६,७२,१; १३४० एवा ते अङ्गेन ।
(इषुम्) अस्ता इव अ. १९,१४,३; ११५३ अपेतो जङ्गिडामति
(यथा) अहानि अनुपूर्वम् अ. १२,२,२५; २४१ एवा आयूंषि
(यथा) अहा रात्री समवती अ. ४,१८,१; ३८८ तथा कृणोमि
अहा इव सूर्यः ऋ. ६,६१,९; १०६७ ऋनावरी अन्याः स्वसॄः
(यथा यशः) आदित्ये अ. १०,३,१८ १४७० एवा मणिः कीर्तिं
आपः मलं इव अ. २,७,१; ६६८ सर्वान् शपथान् अधि ।
(पक्वे) आमिषे अधि ऋ. १०,९४,३; २२९५ सूभर्वाः वृषभाः
आर्त्नी इव ज्यया अ. १,१,३; १४१७ इहैव उभौ अभि वि तनु ।
आर्त्नी इव ज्यया ऋ. १०,१६६,३; २३४३ अत्रैव वा अपि ।
इटः इव अ. ६,१३,३; ४८५ हायन, उप द्राहि ।
इन्द्र इव विरुजं बलम् अ. १९,२८,३; १५१५ हृदः सपत्नानां ।
इन्द्रः इव ऋ. १,१६६,२; २३४२ अहं अक्षत आस्मि ।
इन्द्रः इव अ. ४,५,७; ६११ अहं अरिष्टः अक्षितः ।
इन्द्रः इव दस्यून् असुरान् अ. १०,३,११; १४६३ मे शत्रून् ।
इन्द्र इन्द्रियाणि इव अ. १,३५,३; ६१ दक्षमाण हिरण्यं बिभ्रत् ।

इन्द्रं न वृत्रतूर्ये धने हिते ऋ. ६,६१,५; १०६३ यः त्वा उप ब्रूते
(धन्वन्) इरा इव अ. ५,१३,१; ८३४ ते विषं नि जजास ।
इषीकां इव अ. ७,५६,४; ८५५ तानि त्वं सं नमः ।
(यथा) इषुका परापतदव सृष्टा अ. १,३,९; ५७९ एवा ते मूत्रं ।
इळावन्तः इव ऋ. १०,९४,१०; १३०२ सदमित् आशिताः ।
(मध्यमशीः) उग्रः इव अ. ४,९,४; ५८३ ततः यक्ष्मं वि बाधसे ।
उग्राः इव प्रवहन्तः ऋ. १०,९४,६; १२९७ ग्रावाणः समाययुः ।
(यथा) उदकं अपपुषः अ. ६,१३९,४; ६८० एवा नि शुष्य ।
उदप्लुतमिव दारु अ. १०,४,३-४; ८१०-११ अरसं विषं उग्रम् ।
उद्रा अग्निं इव अ. ७,४५,१; ६८६ ईर्ष्यां शमय ।
उर्वरीः इव साधुया अ. १०,४,२१; ८२८ ओषधीनां अहं वृणे ।
(यथा) ऋणं सं नयन्ति अ. १९,५७,१; १९१३ | एवा दुष्वप्न्यं अ. ६,४६,३; ६३५ | अप्रिये ।
ऋणात् ऋणं इव अ. १९,४५,१; ५९२; संनयन् कृत्यां ।
(यथा) ऋतवः ऋतुभिः अ १२,१,२५; १४१ एवा धातः ।
ऋषिणा इव मनीषिणा अ. ८,५,८; १४३८ स्राक्त्येन मणिना ।
(वारणी) एणी इव अ. ५,१४,११; १६०१ कृत्या कर्तारं उत् ।

कक्रुत्सलमिव जामयः अ. १८,४,६६; २२१६ अभि एनं भूम ।
कक्ष्या युक्तं इव ऋ. १०,१०,१३; १९६६ त्वां अन्या परि ।
कण्ववत् अ. ५,२३,१०; ७०६ क्रिमयः हन्मि ।
कन्या इव तुन्ना अ. ६,११,३; ९६७ एजाति ग्लहा ।
(मर्याय इव) कन्या ऋ. ३,३३,१०; १०३१ शश्वचै ते ।
(यथा यशः) कन्यायाम् अ. १०,३,२०; १४७२ एवा मणिः ।
कपिः इव अ. ४,३७,११; ७२५ एकः गन्धर्वः ।
(यथा) कलां संनयन्ति अ. १९,५७,१; १९१३ | एवा सर्वं अ. ६,४६,३; ६३५ | अप्रिये ।
कुमारः सर्वकेशकः इव अ. ४,३७,११; ७२५ एकः गन्धर्वः ।
(उदकं) कुम्भिनीः इव ऋ. १,१९१,१४; ७८७ मयूर्यः ते विषं ।
कृशः इव रोहितम् अ. ४,४,७; १३३८ | अनवग्लायता सदा । अ. ६,१०१,३; १३४५ |
क्रीळयः न मातरम् ऋ. १०,९४,१४; १३०६ सुतं अध्वरे आधि ।
क्लीबा इव अ. ८,६,११; १३७८ वने प्रनृत्यन्तः ।

खर्गलाः इव ऋ. ७,१०४,१७; २२८४ या नक्तं प्रजिगाति ।
(दृषदा) खल्वान् इव अ. २,३१,१; ६९१ सं पिनष्मि क्रिमीन् ।
(दृषदा) खल्वान् इव अ. ५,२३,८; ७०३ मष्मषा नि आकरम् ।
गवां अह न मायुः ऋ. ७,१०३,२; ९९५ मण्डूकानां वग्नुः ।
(मुष्कावर्हो) गवामिव अ. ३,९,२; १७९८ कृणोमि वध्रि ।
गां उक्षणमिव रज्ज्वा अ. ३,११,८; ७९ अभि त्वा ।
गावः गोष्ठात् इव ऋ. १०,९७,८; ३०८ ओषधीनां शुष्माः ।
(रिहाणा मातरा शुभ्रे) गावा ऋ. ३,३३,१; १०२१ पर्वतानां ।
गावो न हव्या ऋ. १,१८७,११; ११९८ हे पितो वचोभिः ।
गोषु युधः न ऋ. १०,३०,१०; ९१० नियवं चरन्तीः ।
गोष्ठामिव अ. २,१४,६; १६५३ आमां धामानि परि असरन्
(वत्सं) गौः इव ऋ १०,१४५,६; १३४० ते मनः मां अनु ।
(वत्सं) गौः इव अ. ३,१८,६; ३६३ मामनु ते मनः प्र धावतु ।
(स्पन्दना) गौः स्थालीं अ. ८,६,१७; १३८३ पाष्ण्यां पदा ।
(आचित्तं) ग्रामं इव अ. ४,७,५; ८०१ वचसा परि स्थाप० ।
घर्मं इव अभितपन् अ. १९,२८,३; १५१५ द्विषतो नितपन् मणे ।
चतुष्पदामिव च्छर्दिः अ. ३,७,३; १९४ अदो यदवरोचते ।
(यथा यशः) चन्द्रमसि अ. १०,३,१८; १४७० मणिः कीर्तिं भूतिं ।
(येषन्तं) चरुमिव अ. ४,७,४; ८०१ वचसा परि स्थापयामसि ।
छायां इव अ. ८,६,८; १३७४ प्र तान् सूर्यः अनीनशत् ।
(रात्री) जगत् इव अ. ६,१२,१; ८४६ हंसात् अन्यत् निर्व ।
जनं इव शेवधिम् अ. ५,२२,४; ५४४ तक्मानं परि दद्मसि ।
जमदग्निवत् अ. ५,२३,१०; ७०५ क्रिमयः हन्मि ।
जयतां इव दुन्दुभिः ऋ. १,२८,५; २२८० द्युमत्तमं वद ।
(यथा यशः) जातवेदसि अ. १०,३,१९; १४७१ एवा मणिः कीर्तिं
जाया पतिं इव अ. १८,२,५१; २०७५ वाससा अभ्येनं ।
(पत्या तुन्ना) जाया इव अ. १०,१,३; १६१८ शुद्धकृता कर्तार
जाया इव पत्ये ऋ. १०,१०,७; १९६० अहं तन्वं वि रिरिच्याम् ।
जालेन अभिहिता इव अ. १०,१,३०; १६४५ तमसा आवृताः ।
(यथा) जीवाः अदितेः उपस्थे अ. २,२८,४; ४ त्वां पिता गुपिता ।
(यथा) जीवगृभः अ. १०,९७,११; ३११ तथा यक्ष्मस्य आत्मा ।
ज्यामिव धन्वनः अ. ५,१३,६; ८३९ मन्योः विमुञ्चामि ।
(यथा) समं ज्योतिः सूर्येण अ. ४,१८,१; ३८८ तथा कृणोमि ।
ज्योतिषा इव अ. ४,१९,३; ३९८ अभि दीपयन् अप्रमेषि ।

तक्मन्वी इव अ. ५,२२,७; ५३७ तां धूनुहि ।
तम इव अ. ८,२,१२; ३८ सर्वं दुर्भूतं अपहन्मसि ।
तमस इव ज्योति अ. ५,१३,३; ८३६ उदेतु सूर्यः ।
(प्रदोषं) तस्कराः इव ऋ. १,१९१,५; ७७८ अदृष्टाः विश्वदृष्टाः ।
(यथैव) तृप्यते मयः अ. १९,२,५; ९३१ तास्त आदत्त भेषजीः ।

(यथा) तेज आहितम् अ. १०,३,१७ १४६९ एवा मणिः कीर्ति
(यथा अन्तस्तिष्ठति) तेजनम् अ. १,२,४; ६६७ एवा रोगं च।
(उद्यन्) त्वचमिव भूम्याः अ. १९,१८,४; १५१६ शिर एषां।
दिवि देवाः इव अ. ६,८०,१; १५८९ त्रयः कालकाञ्जाः श्रिताः।
दिवो वृक्षमिवाशनि अ. ६,३७,२; १७७४ शप्तारं अत्र नो जहि।
दुहिता इव पितरम् अ. १०,१,२६; १६४१ जानीहि कृत्ये ।
दृतिं न शुष्कम् ऋ. ७,१०३,२; ९९५ आपः शयानं एनम् ।
दृतिं (इव) सुरावतो ऋ. १,१९१,१०; ७८३ सूर्यं विषम् ।
(निरूष्माणं) दृतेरिव अ. ६,१८,३; ६८४ ते ईर्ष्यां मुञ्चामि।
दृशः इव अ. ४,३७,११; ७२५ प्रियः भूत्वा ।
देवः न सविता ऋ. १,३६,१३; २२५७ (यूप), ऊर्ध्वः तिष्ठ ।
देवा इव असुरमायया अ. ३,९,४; १८०० येन श्रवस्यवः चरथ।
द्यां इव उपरि अ. १८,३,१९; २१२२ ऊर्ध्वं भानुं सविता ।
द्यां इव उपरि | अ. १८,३,२५-२८, ३०-३५; २१०८-११,२११३-१८ बाहुच्युता पृथिवी
(परि) द्यां इव सूर्यः अ. ६,१२,१; ८४६ अहीनां जनिमागमम्।
(इमे) द्यावापृथिवी वि इतः अ. ३,३१,४; १७१ अहं सर्वेण ।
द्यौः इव अ. ६,१४२,१; ११२५ तत् उच्छ्रयस्व ।
द्रुपदादिव मुमुचानः वा. य. २०,२०; ११०१ आपः मा एनसः।
द्रुपदादिव मुमुचानः अ. ६,११५,३; १७१९ आपः शुन्धन्तु।

धनपालः धना इव अ. १९,३५,२; १५६२ स नो रक्षतु जङ्गिडः।
धनुः इव अ. ६,१०१,२; १३४३ आ तानय पसः ।
धनुः इव अ. ४,४,६; १३३७ आ तानय पसः ।
(यथा) नकुलः विच्छिद्य अ. ६,१३९,५; ६८१ एवा कामस्य
नडं इव अ. ४,१९,१; ३९६ प्रजां छिन्धि वार्षिकम् ।
(यथा) नडं कशिपुने स्त्रियो अ. ६,१३८,५; ५०२ एवा भिनद्मि।
नडाः इव अ. ६,१३७,२-३; ४६४-६५ केशाः वर्धन्ताम्।
नदी फेनमिवा वहत् अ. १,८,१; ७२७ इदं हविः यातुधानान्।
नावा इव अ. ४,३३,७; १७६२ द्विषो नो अति पारय ।
निष्कमिव अ. ५,१४,३; १५९३ कृत्यां देवाः प्रति मुञ्चत ।

(यथा) पतन्ति पक्षिणः अ. १,११,६; १४१० एवा त्वं जरायुणा
पत्या इव जाया अ. ६,२२,३; ९६७ एरुं तुन्दाना ।
पथ्या इव सूरिः अ. १८,३,३९; २१२२ वि श्लोक एति ।
(सूरेः) पथ्या इव ऋ. १०,१३,१; २१७५ श्लोकः एतु ।
पन्थानः दिशं दिशं वि अ. ३,३१,४; १७१ अहं सर्वेण ।
पयसा इव धेनवः ऋ. १०,७५,४; १०३९ त्वां वाश्राः अर्षन्ति।

(यथा यशः) परमेष्ठिनि अ. १०,३,२४; १४७६ एवा मणिः कीर्तिं
(इष्वाः) पर्णं इव ऋ. १०,१८,१४; १९५३ मां प्रतीचीन ।
(सरौ) पर्णं इव अ. ४,२५,१; १३४६ शेपो गर्भस्य रेतोधाः।
(पूतं) पवित्रेण इव आज्यं | वा. य. २०,२०; ११०५ आपः शुन्धन्तु । अ. ६,११५,३; १७१९
पिता इव पुत्रान् अ. २,१३,१; २३३१ अभिरक्षतात् इमम्।
पितरं न पुत्रः ऋ. ७,१०३,३; ९९६ अन्यः अन्यं (मण्डूकं)।
पियारुः निष्कमिव अ. १९,५७,५, १९१७ देवपीयुः प्रति ।
पुत्र इव पितरम् अ. ५,१४,१०; १६०० कृत्ये गच्छ ।
(यथा) पुत्रं जनादिति अ. ६,८१,३; १३११ त्वष्टा तं अस्यै ।
(यथा न) पूर्वं अपरः जहाति अ. १२,२,२५; २४१ एवा धातः।
पूषा इव ऋ. ६,६१,६; १०६४ नः सनिं रद ।
(यथेयं) पृथिवी गर्भं आ दधे अ. ५,२५,२; १३४७ एवा दधामि।
(यथेयं पृथिवी गर्भं आ दधे अ. ६,१७,१-४;१३६२-६५एवा ते।
(यथा यशः) पृथिव्याम् अ. १०,३,१९; १४७१ एवा मणिः।
पौञ्जिष्ठ इव कर्वरम् अ १०,४,१९;८२३ शीर्षाणि अग्रभम्।
(यथा यशः) प्रजापतौ अ. १०,३,२४; १४७६ एवा मणिः कीर्तिं।

बन्धमिव अ. ५,१४,१०; १६०० अवक्रामी ।
(यथा) बाणः सुसंशितः अ. ६,१०५,१; ४८७ एवा त्वं कासे।
बिसखा इव ऋ. ६,६१,२; १०६० ऊर्मिभिः गिरीणां सानु ।
(वपन्तः धान्यकृतः) बीजम् ऋ. १०,९४,१३; २२०१ ग्रावाणः।
(यथा) बीजं उर्वरायां अ. १०,६,३३; १५१० एवा मयि प्रजा।
ब्राह्मणा इव व्रतचारिणः ऋ. ७,१०३,१; ९९३ मण्डूकाः वाचं ।
ब्राह्मणासः अतिरात्रे न सोमे ऋ. ७,१०३,७; १००० मण्डूकाः ।
भग इव यामेषु अ. ६,२१,२; ४५८ भेषजानां श्रेष्ठं असि ।
(इदं) भुवनं विश्वं वि अ. ३,३१,१; १७१ अहं सर्वेण पाप्मना।
(यथा) भूमिः मृतमनाः अ. ६,१८,२; ६८३ एवा ईर्ष्योः।

मण्डूकाः उदकात् इव ऋ. १०,१६६,५; २३४१ मे पदात् अधः
मत्तः इव अ. ६,२०,१; १७९ विलपन् ।
मधुपर्के यथा यशः अ. १०,३,२१; १४७३ एवा मणिः ।
(उग्रः) मध्यमशीः इव ऋ. १०,९७,१२; ३१२ ओषधीः यक्ष्मं ।
(यथा) मनः (पतति) अ. १,११,६; १४१० एवा त्वं जरायुणा।
यथा मनः मनस्केतैः परा अ. ६,१०५,१; ४८६ एवा कासे प्रपत।
(यथा पुरा) मनवे गातुम् ऋ. १०,७६,३; २२८७ तद्वत् व्याप्नोतु।
मनसः न प्रयुक्ति ऋ. १०,३०,१; ९०१ सोमः देवत्रा अपः ।
(यथा) मनुष्यो मनः अ. ६,१८,२; ६८३ एवा ईर्ष्यो मृतं मनः।

मर्यः न कल्याणीभिः ऋ १०,३०,५; ९०५ याभिः सोमः।
मर्य इव योषाः अ. १८,४,१०; २२१० सोमः शतयामना।
माता इव अ. २,२८,५; ५ अस्मै शर्म यच्छ।
माता इव पुत्रम् अ. २,२८,१; १ मित्रः एवं पात्वंहसः।
(सं) मातरः इव अ. ८,७,२७; ३५० पुष्पवतीः दुहामस्या।
(उशतीः इव) मातरः ऋ. १०,९,२;८८० तस्य भाजयत इह नः
(स) मातरा चित् न ऋ. १०,११७,९; २३१९ ज्ञाती चित्।
माता पुत्रं यथा अ. १८,२,५०;२०७४ अभ्येनं भूम ऊर्णुहि।
(यथा) माता पुत्रं सिचा ऋ. १०,१८,११; १९५० एनं हे भूमे
माता इव पुत्रम् वा. य. १२,३१; ११०० सुपत्नीः बिभ्रत।
माता इव पुत्रेभ्यः अ. ६,३०,३; ४७२ शमि, केशेभ्यः मृड।
मुष्करं यथा अ. ६,१४,२; ४८४ बलासं निः क्षिणोमि।
मृलमुर्धाता इव अ. ६,१४,२; ४८४ छिनद्मि अस्य बन्धनम्।
मृगं इव अ. ५,१४,१२; १६०२ तं कृत्याकृतं पुनः गृह्णातु।
मृगी इव अ. ५,१४,११; १६०१ कृत्या कर्तारं उद् ऋच्छतु।

यथा यमस्य गृहे त्वा अ. ६,२९,३; १५८७ तथा आमृकम्।
यथा यमस्य सादन अ. १८,३,७०; २१६७ पुनर्देहि वनस्पते।
यथा यमाय हर्म्यं अ. १८,४,५५; २२०५ एवा वपामि।
यमे इव ऋ. १०,१३,२; २२७६ | युवां यतमाने यदा एतम्।
अ. १८,३,३८; २१२१ |
यथा यशः यजमाने अ. १०,३,२३; १४७५ एवा मणिः कीर्तिं।
यथा यशः यज्ञे अ. १०,३,२३; १४७५ एवा मणिः कीर्तिं।
युवयोः चित् न समा ऋ. १०,११७,९;२३१९ तथा ज्ञाती चित्।
यूथा इव सुमति पश्वः अ. १८,३,२३, २१०६ उग्रः देवानां।
पीप्याना योषा इव ऋ. ३,३३,१०; १०३१ वयं ते नि नंसै।

(सुखः) रथः इव अ. ५,१४,५; १५९५ | कृत्या कृत्याकृतं।
अ. ५,१४,१३; १६०३ |
रथः इव ऋ. ६,६१,१३; १०६१ बृहती विभ्वने कृता।
(यथा सुचक्र सुपविः) रथः अ. ४,१२,६; ४२६ तथा प्रति।
(आशवः) रथाः इव अ. ३,९,५; १८०१ शपथेभिः उत्।
रथान् इव अ. ५,१३,६; ८३३ सात्रामहस्य मन्योः वि मुञ्चामि।
(ऋभुः) रथस्य अंगानि इव अ. ४,१२,७; ४२७ परुषा परुः।
रथस्य इव अ. १०,१,८; १६९३ यस्ते पर्शंषि संदधौ।
(यथा यशः) रथे अ. १०,३,२०; १४७२ एवा मणिः।
रथी इव ऋ. ५,८३,३; ९७६ कशया अश्वान् अभिक्षिपन्।
रथ्या इव ऋ. ३,३३,२; १०२३ युवां समुद्रं अच्छा याथः।

(प्रवाबधाना) रथ्या इव ऋ. ७,९५,१; १०७३ अपः प्रवाबधाना।
रथ्या इव चक्रा ऋ. १०,११७,५; २३१५ रायः आ वर्तन्ते।
रथ्या इव चक्रा ऋ. १०,१०,७ १९६० [आवां] वि वृहेव चित्।
रथ्या इव चक्रा ऋ. १०,१०,८ १९६१ तेन अन्येन वि वृह।
राजा इव युध्वा ऋ. १०,७५,४; १०३९ त्वमित् सिन्धो नयसि।
राजानः समितौ इव ऋ. १०,९७,६; ३०६ ओषधीः समग्मत।
रिश्यस्य इव परीशासम् अ. ५,१४,३; १५९३ त्वचः परि।
रैवत्या इव ऋ. १०,९४,१०; २३०२ महसा चारतः स्थन।
लिबुजा वृक्षं इव ऋ. १०,१०,१३; १९६६ त्वां अन्या।
लिबुजा वृक्षं इव ऋ. १०,१०,१४; १९६७ अन्यः त्वां।

वत्सो धार्यारिव मातरम् अ. ४,१८,२; ३८९ तं प्रत्यगुप पद्यताम्।
वत्समिव मातरा संरिहाणे ऋ. ३,३३,३; १०२४ युवां अया०
वधूं इव वहतौ अ. १०,१,१; १६८६ चिकित्सवः यां।
वपुषी इव ऋ १०,७५,६; १०४२ दर्शता।
(देवेषु) वरुणो यथा अ. ६,२१,२; ४५८ मेषजानां श्रेष्ठं असि।
वर्चं वेशन्त्या इव अ. १,३,७; ५७७ प्र ते भिनद्मि मेहनम्।
वषट्कारे यथा यशः अ: १०,३,२२; १४७४ एवा मणिः।
नवश्रान्ता वधूः इव अ. ४,२०,३; ७५६ स भूमिं आ।
वाका अपचितां इव अ. ६,२५,१-३;१६८१ ८४ ताः सर्वाःनश्यन्तु
(यथा) वातः अ. १,११,६; १४१० एवा त्वं पत।
वातः अभ्रं इव अ. ८,६,१२; १३८५ विद्धि श्रीभागान्।
(यथा) वातश्च्यावयति अ. १०,१,१३; १६९८ एवा सर्वं।
(यथा) वातश्च्यावयति अन्तरिक्षादभ्रम ,, ,,
यथा वातः न्यग् वाति अ. ६,९१,२; २०० न्यग् भवतु ते रपः।
वात इव वृक्षान् अ. १०,१,१७; १६३२ नि मृणीहि।
(यथा) वातः वनस्पतीन् अ. १०,३,१३; १४६५ एवा मे।
(यथा) वातश्च अग्निश्च अ. १०,३,१४; १४६६ एवा मे।
(दिवि) वाता इव श्रिताः ऋ. १,१८७,४; १०११ त्ये रसाः।
(यथा) वातेन प्रक्षीणाः अ. १०,३,१५; १४६७ एवा सपत्नान्।
(यथा) वात् इव ऋ. १०,१४५,६; २३४० मनः मामनु।
विद्धस्य इव अ. १०,१,२६; १६४१ कृत्ये पदं नय।
(नानदती) विनद्धा गर्दभी इव अ. १०,१,१४; १६१९ कृत्ये
वृक इव अविमतः अ. ६,३७,१; १७७३ सहस्राक्षः उप प्रागात्।
वृक्षः इव अ. ४,७,५; ८०१ तिष्ठ स्थाम्नि।
वृक्ष इव विद्युता हतः अ. ७,५९,१; १७७६ आ मूलात् अनु।
वृक्षादिव स्रजम् अ. ८,६,२६; १३९१ कृत्वा प्रिये प्रति।

(यथा) वृत्रः अपः तस्तम्भ अ. ६,८५,३; १८४ एवा ते यक्ष्मं।
वृषण्यन्ती इव कन्यला अ. ५,५,३; ४३० वृक्षं वृक्षं आरोहसि।
वृषभः न ऋ. १०,७५,३; १०३८ सिन्धुः रोरुवत् एति।
व्याघ्रः श्वपदामिव अ. १९,३९,४;४५०उत्तमोऽसि ओषधीनाम्।
व्याघ्रः श्वपदामिव अ. ८,५,११; १६४१
शाका इव अ. ३,१४,४; १३२३ इहो पुष्यत।
शकुनेः इव अ. २,१५,२; ४१७ दुर्णाम्नां शिरो वृश्चामि।
शतवत् ऋ. १०,९४,२; २२९४ एते वदन्ति।
(यथा) शफं संनयन्ति अ ६,४६,३; ६३५ दुष्वप्न्यं द्विषते।
(यथा) शफं संनयन्ति अ. १९,५७,१; १९१३ दुष्वप्न्ये अप्रिये।
शमिता न त्मन्या समञ्जन् वा. य. २०,४१; ३७२ देवः यशं।
शरं इव अ. ४,७,४; ८०१ ते मदं मदावति वि पातयामसि।
शरणं न वृक्षम् ऋ. ७,९५,५; १०८६ शर्मन् दधानाः उप स्थेयाम।
शाक्तस्य इव शिक्षमाणः ऋ. ७,१०३,५; ९९८ मण्डूकानां।
शाखां मधुमतीं इव अ. १,३४,४, ४८१ मां इत किलत्वं।
शारिशाका इव अ ३,१४,५; २३२४ शिवो वो गोष्ठो भवतु।
शिशुं इत् न मातरः ऋ. १०,७५,४; १०३९ त्वां वाश्राः अर्षन्ति।
शुने पेष्ट्रं इव अवक्षामम् अ. ६,३७,३; १७७५ तं प्रत्यस्यामि।
शुनां कपिः इव दूषणः अ. ३,९,४; १८०० बन्धुरा काबवस्य च।
शृगिणां शृंगाणि इव ऋ. ३,८,१०; २२६८ स्वरवः पृथिव्यां।
श्येनः इव अ. ५,३०,९; १०६ यक्ष्मः प्रापप्तत्।
श्वा इव अ. ४,३७,११; ७२५ एकः गन्धर्वः।
सखा सख्युः न अ. १८,४,६०; २२१० प्र वा एति इन्दुः।
(यथा) सत्यं आहितम् अ. १०,३,२५; १४७७ एवा मणिः।
समुद्रः इव अ. ६,१४२,२; १२२५ अधि आक्षितः।
समुद्रं न सुभुवः अ. ४,८,७; ८०४ अप्स्वन्तः तस्थिवांसं।
समुद्रस्य उदधेः इव अ १,३,८; ५७८ ते वस्तिबिलं विषितम्।
सविता इव अ. १९,४५,४; ५९५ ध्रुवस्तिष्ठसि चार्यः।
सहस्रवत् ऋ. १०,९४,२; २२९४ एते ग्रावाणः वदन्ति।
सिंहस्य इव अ. ८,७,१५; ३३८ स्तनथोः सं विजन्ते।
सिन्धुं इव नावा अ. ४,३३,८; १७६३ अति पर्षा स्वस्तये
सुपर्णो वसतेः इव अ. ६,८३,१; ५१३ अपचितः प्र पतत।
सूरो न रुचा अ. १८,४,५९; २२०९ त्वं कृपा रोचसे।
सूर्यः इव अ. १९,३३,५; १८३७ आभाहि प्रदिशः चतस्रः।
सूर्यं इव दिवमारुह्य अ. ८,५,७; १४३७ वशी कृत्वा वि बाधते।
(यथा) सूर्यः अतिभाति अ. १०,३,१७; १४६९ मणिः कीर्तिं।
(यथा न्यक् तपति) सूर्यः अ. ६,९१,२; २०० न्यग् भवतु ते।
(यथा) सूर्यो मुच्यते तमसः अ. १०,१,३२; १३४७ एव अहं।
(वीध्रे) सूर्यमिव सर्पन्तम् अ. ४,२०,७, ७६० मा पिशाचं।
(यथा) सूर्यस्य रश्मयः अ. ६,१०५,३; ४८८ एवा त्वं कासे।
सेना इव अ. ४,१९,२; ३९७ एषि त्विषीमती।
सोम इव यामेषु अ. ६,२१,२; ४५८ वीरुधानां वसिष्ठम्।
(यथा यशः) सोमपीथे अ. १०,३,२१; १४७३ मणिः कीर्तिं।
स्तुकां इव अ. ७,७४,२; ५०४ जघन्यां आसां आ छिनद्मि।
स्तेनः इव व्रजम् ऋ. १०,९७,१०; ३१० ओषधीः विश्वाः।
स्नुषा इव श्वशुरादधि अ. ८,६,२४; १३९० सूर्यात् परि सर्पन्ति।
स्रजः इव अ. ५,१४,१०; १६०० अभिष्ठितः दश।
खिन्नः स्नात्वा मलादिव अ. ६,११५,३; १७२९ आपः शुन्धन्तु
वा. य. २०,२०; ११०५ मैनसः।
हंसाः इव ऋ. ३,८,९; २२६७ स्वरवः नः आगुः।
हरी इव अन्धांसि ऋ. १,२८,७; २२८२ आयजी उलूखल०
(यथेदं) हर्म्यम् अ. ४,५,५; ६१७ तेषां अक्षीणि सं दध्मः।
(यथा) हव्यं वहसि अ. ४,२३,२; १६८६ एवा देवेभ्यः।
(यथा) यज्ञं कल्पयसि अ. ४,२३,२; १६८६ एवा देवेभ्यः।
(समौचित्) हस्तौ न समं ऋ. १०,११७,९;२३१९ तथा ज्ञाती।
हस्ती इव रजः अ. १०,१,३२; १६४७ दुरितं जहामि।
हृदं अग्निः इवा दहन् अ. ६,३७,२;१७७४ परि णः वृङ्ग्धि शपथ।



विषय--सूची ।

गर्भाधानम् । (१३४६-१४१०)

जलाचिकित्सा । (८६०-११०७)

दीर्घायुष्यम् । (१-१६१)

पापादिनाशनम् । (१६५३-१९१७)

मणिधारणम् । (१४२४–१५७८)

मणिधारणम् । (१४२४–१५७८)

पापादिनाशनम् । (१६५५-१९१७)

मणिधारणम् । (१४२४–१५७८)

रोगाचिकित्सा। (४८३-६९०)

वाजीकरणम्। (१३३१-१३४५)

अभावकरणार्थं निर्दिष्टाः विषयाः ।

निस् + कस् ।
इषु निष्कासनम् ।

अपा + दूरी + कृ ।
सर्वशीर्षामयादि अपाकरणम् ।
सर्पविषदूरीकरणम् ।

क्षि ।
अरिष्ट— क्षयणम् ।
असुर— क्षयणम् ।
पिशाच— क्षयणम् ।
यातुधान— क्षयणम् ।
सपत्न— क्षयणम् ।

जम्भ् ।
क्रिमिजम्भनम् ।

दुष् ।
कृत्यादूषणम् ।
विषदूषणम् ।

वि + नश् ।
अरातिनाशनम् ।
अरि— नाशनम् ।
अलक्ष्मी— नाशनम् ।
एनः— नाशनम् ।
कामिला— नाशनम् ।
कृमि— नाशनम् ।
क्षेत्रियरोग— नाशनम् ।
ज्वर— नाशनम् ।
तक्म— नाशनम् ।
दस्यु— नाशनम् ।
दुरित— नाशनम् ।
दुःख-नाशनम् ।
दुष्वप्न— नाशनम् ।

पाप— नाशनम् ।
पापलक्ष्मण— नाशनम् ।
पाप्म— नाशनम् ।
बलास— नाशनम् ।
यक्ष्म— नाशनम् ।
यक्ष्मरोग— नाशनम् ।
रोग— नाशनम् ।
विष— नाशनम् ।
श्वेतकुष्ठ— नाशनम् ।
सर्पविष— नाशनम् ।
ईर्ष्याविनाशनम् ।
मन्या— नाशनम् ।

अप + नि ।
ईर्ष्या— अपनयनम् ।

वि + बर्ह् ।
यक्ष्मविबर्हणम् ।

बाध् ।
सपत्नीबाधनम् ।

उत्+वि + मुच् ।
उन्मत्तता— मोचनम् ।
दुःख— मोचनम् ।
निर्ऋति— मोचनम् ।
पाप— मोचनम् ।
पाश— मोचनम् ।
बन्ध— मोचनम् ।
मूत्र— मोचनम् ।
शाप— मोचनम् ।
उत्— मोचनम् ।
पाश— विमोचनम् ।

नि + वृ ।
गर्भदोष— निवारणम् ।
यक्ष्म— निवारणम् ।
रोग— निवारणम् ।
सर्पविष— निवारणम् ।

उप + शम् ।
कास— शमनम् ।
पाप-शमनम् ।
मन्यु— शमनम् ।
वृषरोग— शमनम् ।
शाप— शमनम् ।
रोग— उपशमनम् ।

हन् ।
अलक्ष्मी— घ्नम् ।
क्रिमि— घ्नम् ।
रक्षो— घ्नम् ।
रोग— घ्नम् ।
विष— घ्नम् ।
पाप्म— हा ।

परि + हृ ।
कृत्यापरिहरणम् ।

भावकरणार्थं निर्दिष्टाः विषयाः ।

दीर्घायुः प्राप्तिः ।
मेधा- जननम् ।
सपत्नी- जयः ।
केश- दृंहणम् ।
गर्भ- दृंहणम् ।
धमनी- बन्धनम् ।
सर्पेभ्यः- रक्षणम् ।
आयुर्- वर्धनम् ।
केश- वर्धनम् ।
मेधा- वर्धनम् ।
सौभाग्य- वर्धनम् ।

द्रष्टुः कामः ।
आयुष्कामः ।
परस्परैकचित्तीकरणकामः ।
पुष्टि- कामः ।
वृष्टि- कामः ।
सपत्नक्षय- कामः ।
स्वस्त्ययन- कामः ।

यक्ष्मनाशनम् ।

(१) गुणबोधक-पदसहिता मन्त्रोक्त-देवताः ।

(२) यक्ष्मस्य शरीरगतस्थानानि ।

धमन्यः ऋ. १०,१६३,१; १६१। अ. २०,९६,२१; २१५। २,३३,६; २९९

नखानि ऋ. १०,१६३,५; १६६। २०,९६,२१; २१५। २,३३,६; २९९

नाभिः अ. ९,८,१२; २८३। २०,९६,२०; २१३। २,३३,४; २९७

नासिका ऋ. १०,१६३,१; १६२। अ. २०,९६,१७; २१०। २,३३,१; २९४

परुस्-रुंषि अ. ९,१८,१८; २८९

पर्वन्-र्वं ऋ. १०,१६३,६; १६७। अ. २०,९६,२३; २१६। २,३३,७; ३००

पाणी ऋ. १०,१६३,६; १६७। अ. २०,९६,२१; २१५। २,३३,६; २९९

पादौ अ. ९,१८,२१; २९२

पार्श्वे अ. ९,८,१५; २८६। अ. २०,९६,१९; २१२। २,३३,३; २९६

पार्ष्णी ऋ. १०,१६३,४; १६५। अ. २०,९६,२२; २१४। २,३३,५; २९८

पृष्ठ्यः अ. ९,८,१५; २८६

प्रपदे ऋ. १०,१६३,४; १६५। अ. २०,९६,२२; २१४। २,३३,५; २९८

प्लाशयः ऋ. १०,१६३,३; १६४। अ. २०,९६,२०; २१३। २,३३,४; २१७

प्लीहा ऋ. १०,१६३,३; १६४। अ. २०,९६,१९; २१२। २,३३,३; २९६

बाहू ऋ. १०,१६३,२; १६३। अ. २०,९६,१८, २११। २,३३,२; २९५

भंसस् ऋ. १०,१६३,४; १६५। अ. २०,९६,२२; २१४। २,३३,५; २९८। अ. ९,८,२१; २९२

भासदः ऋ. १०,१६३,४; १६५। अ. २०,९६,२२; २१४। २,३३,५; २९८

मज्जा अ. ९,८,१८, २८९। अ. २०,९६,२१; २१५। २,३३,६; २९९

मतस्नौ ऋ. १०,१६३,३; १६४। अ. २०,९६,१९; २१२। २,३३,३; २९६

मस्तिष्कम् ऋ. १०,१६३,१; १६१। अ. २०,९६,१७; २१०। २,३३,१; २९४

मुष्कौ अ. ६,१२७,२; १८६

मूर्धा अ. ९,८,१३; २८७

मेहनम् ऋ. १०,१६३,५; १६६

यकृत्-यकन् ऋ. १०,१६३,३; १६४। अ. २०,९६,१९; २१२। अ. २,३३,३; २९६

लोम-मानि ऋ. १०,१६३,५-६; १६६-१६७। अ. २०,९६,२३; २१६। २,३३,७; ३००

वक्षणाः अ. ९,८,१६; २८७

वनंकरणम् ऋ. १०,१६३,५; १६६

वनिष्ठुः ऋ. १०,१६३,३; १६४। अ. २०,९६,२०; २१३। २,३३,४; २९७

शीर्षन् अ. ९,८,१-५,२२; २७१-७६,२९३

शीर्षन् (शीर्षण्यम्) ऋ. १०,१६३,१; १६१। अ. २०,९६,१७; २१०। २,३३,१; २९४

श्रोणी ऋ. १०,१६३,४; १६५। अ. २०,९६,२२; २१४। २,३३,५; २९८। अ. ९,८,२१; २९२

सीमन्-मा अ. ९,८,१३; २८४

स्नावन्-वा ऋ. १०,१६३,४; १६५। अ. २०,९६,२१; २१५। २,३३,६; २९९

हलीक्ष्णम् ऋ. १०,१६३,४; १६५। अ. २०,९६,१९; २१२। २,३३,३; २९६

हृदयम् ऋ. १०,१६३,३; १६४। अ. २०,९६,१९; २१२। २,३३,३; २९६। अ. ९,८,८,१२,१४,२१; २७९,२८३; २८५,२९३

(३) गुणबोधकपदसहिताः यक्ष्मभेदाः ।

अक्ष्यो विसल्पकः अ. ६,१२७,३; १८७

अघशंसः ११,२,२; २१८

अंगज्वरः ९,८,५; २७६

अंगभेदः ९,८,५; २७६। ९,८,२२; २९३

अंग्यः विसल्पकः ६,१२७,३; १८७

अज्ञातः यक्ष्मः ६,१२७,३; १८७

(४) दीर्घायुत्वपर्यायाः ।

आयुः ३,३१,१-११; १६८-७८ । १२,१,२५; २४१
आयुः दीर्घम् ११,२,६,३२,५५; २११,२४८,२७१
आयुः द्राघीयः १२,१,३०; २४६
आयुः सर्वम् १०,९६,१०; २०९ । १२,१,२४; २४०
आयुः शतम् १०,९६,८-९; २०७-८
आयुः जरसम् १२,१,२४; २४०

शतं वसन्ताः १०,९६,९; २०८
शतं शरदः २०,९६,९; २०८
शतं हेमन्ताः २०,९६,९; २०८
शतं हिमाः १२,१,८; २४४
शतशारदम् २०,९६,७; २०६

(५) भैषज्यम् ।

ओषधयः ।

गुल्गुलुः १९,३८,१-३; २०१-४
गुल्गुलु, सैन्धवम् १९,३८,१; २०३
गुल्गुलु समुद्रियम् १९,३८,१; २०३
गुल्गुलोः सुरभिः गन्धः १९,३८,१; २०१
चीपु. द्रुः ६,१२७,१, १८६
यवः ६,९१,१८; १९९

वरणः (वनस्पतिः देवः) ६,८५,१; १८२
वनस्पतिः ६,१२७,१; १८५

(२) अन्ये पदार्थाः ।

आपः ३,७,५; १९६ । ६,९१,३; २०१
हरिणस्य शीर्षणि भेषजम् ३,७,१; १९२
हरिण-विषाणम् ३,७,१-२; १९-१९३

ओषधिवनस्पतयः ।

ओषधिदेवता-गुणबोधक पदानि ।

पदानि ।	स्थानम् ।	विशेषनाम ।	पदानि ।	स्थानम् ।	विशेषनाम ।
अंशुमत्यः	अ० ८,७,४; ३२७	ओषधयः	अपक्रीताः	८,७,११; ३३४	ओषधयः
अग्नेः घासः	अ० ८,७,८; ३३१	ओषधयः	अपां स्वसा	५,५,७; ४३४	लाक्षा
अग्रं आपः	अ० ८,७,३; ३२६	ओषधयः	अपां गर्भः	८,७,८; ३३१	ओषधयः
अग्रं ओषधीनाम् एषि	४,१९,३, ३५८	अपामार्गः	अपामार्गः	४,१७,१-८ । १८,१-८ । १९,१-८ ।	
अग्रं मधुमत्	८,७,१२; ३३५	ओषधयः		७,६५,१-३; ३८०-४०६	विशेषनाम
अजबभ्रु पिता	५,५,८, ४३५	लाक्षा	अपुष्पाः	ऋ० १०,९७,१५, ३१५	ओषधयः
अतिविद्धभेषजी	६,१०९,१; ४१३	पिप्पली	अफलाः	ऋ० १०,९७,१५, ३१५ । ८,७,२७; ३५०	ओषधयः
अनड्वान् जगताम्	१९,३९,४; ४५०	कुष्ठः	अबन्धुकृत्	४,१९,१; ३१६	अपामार्गः
अनाधृषः	६,२१,३; ४५९	रेवतीः	अभिवीपयन्	४,१९,३; ३९८	अपामार्गः
अनावयुः	६,१६,१, ४६६	विशेषनाम	अभिष्टुताः	८,७,११; ३३४	ओषधयः
अन्नं घृतं आसाम्	८,७,१२; ३३५	ओषधयः	अमृतस्य भक्षः	८,७,१२; ३३५	ओषधयः

अयक्ष्मान् पुरुषान् करत् ६,५९,२; ४०८ — अरुन्धती
अरुन्धती ८,७,६; ३१९ । ६,५९,१-३ — ओषधिविशेषः
अरुन्धती ६,५९,१-३; ४०७-९ — ओषधिविशेषः
अरुन्धती ४,१२,१; ४११ — रोहणी
अरुन्धती ५,५,५; ४३२ — लाक्षा
अर्यमा पितामहः ५,५,१; ४२८ — लाक्षा
अलसाला (पूर्वा) ६,१६,४; ४६९ — विशेषनाम
अवकोल्बाः ८,७,९; ३३२ — ओषधयः
अवपतन्तीः दिवः ऋ. १०,९७,१५; ३१५ — ओषधयः
अश्वत्थः ५,५,५; ४३२ । ५,४,३; ४३९ । १९,३९,६ ४५२ — विशेषनाम
अश्वत्थः, दर्भः ८,७,२०; ३४३ — ओषधयः
अश्वत्थे निषदनम् ऋ. १०,९७,५; ३०५ । वा० य० १२,७९; ३५,४; ३५८ — ओषधयः
अश्वावती ऋ. १०,९७,७; ३०७ — वि. नाम
असिक्नी ८,७,१; ३२४ — ओषधयः
आंगिरसीः ८,७,१७,२४; ३४०,३४७ — ओषधयः
आत्मा वातः ५,५,७; ४३४ — लाक्षा
आपः अग्रम् ८,७,३; ३२६ — ओषधयः
आबयुः ६,१६,१; ४६६ — वि. नाम
आभृताः ८,७,८,२५; ३३१,३४८ — ओषधयः
इक्ष्वाकुः १९,३९,९; ४५५ — ओषधयः
इष्कृतिः माता ऋ. १०,९७,९; ३०९ — ओषधयः
उक्थिन्-क्थी वा० य० २८,३३; ३७६ — वनस्पतिः
उक्षिता अश्वस्य अश्वा ५,५,८; ४३५ — लाक्षा
उग्राः ८,७,४,१०; ३२७,३३३ — ओषधयः
उग्रा २,२५,१; ४१६ — पृश्निपर्णी
उत्तमः ५,४,९; ४४५ — कुष्ठः
उत्तमः नाम ते पिता ५,४,९; ४४५ — कुष्ठः
उत्तमः ओषधीनाम् १९,३९,४; ४५० — कुष्ठः
उत्तरा ३,१,४; ३६७ — वि. नाम
उत्तानपर्णा ३,१,२; ३६५ — वि. नाम
उदकात्मानः ८,७,९; ३३२ — ओषधयः
उदोजस्-जाः ऋ. १०,९७,७; ३०७ — वि. नाम
उन्नयन्ती ८,७,६; ३२९ — अरुन्धती
उन्मुञ्चन्तीः ८,७,१०; ३३३ — ओषधयः

ऊर्जयन्ती ऋ. १०,९७,७; ३०७ — वि. नाम
ऋतावरी ६,३०,३; ४७२ — शमी
एकशुङ्गाः ८,७,४; ३२७ — ओषधयः
ओषधिः ओषधयः (बहुलं दृश्यते) । — सामान्यनाम
ओषधीनां गर्भः ६,९५,३; ४११ — कुष्ठः, अश्वत्थो वा
कण्वजम्भनी २,२५,१; ४१६ — पृश्निपर्णी
काण्डिनीः ८,७,४; ३२७ — ओषधयः
कानीनः ५,५,५; ४३५ — लाक्षा
कुष्ठः ६,९५,१-३; ४१०-१२ । ५,४,१-१० । १९, ३९,१-१०; ४३७-४५६ — वि. नाम
कृत्यादूषणीः ८,७,१०, ३३३ — ओषधयः
कृष्णाः ८,७,१; ३२४ — ओषधयः
केशदृंहणीः ६,२१,३; ४५९ — रेवतीः
केशवर्धनीः ६,२१,३; ४५९ — रेवतीः
केशवर्धनी ६,१३७,१; ४६३ — वनस्पतिः
क्षिप्तभेषजी ६,१०९,१; ४१३ — पिप्पली
क्षिप्तस्य भेषजी ६,१०९,३; ४१५ — पिप्पली
खदिरः ५,५,५; ४३२ — ओषधिविशेषः
गर्भः अपाम् ८,७,८; ३३१ — ओषधयः
गर्भः ओषधीनाम् ६,९५,३; ४११ — अश्वत्थः कुष्ठो वा
गर्भः विश्वस्य भूतस्य ६,९५,३; ४११ — अश्वत्थः कुष्ठो वा
गर्भः हिमवताम् ६,९५,३; ४११ — अश्वत्थः कुष्ठो वा
गोभाजः ऋ. १०,९७,५; ३०५ । वा० य० १२,७९; ३५,४; ३५८ — ओषधयः
गोष्ठं पयस्वन्तं करत् ६,५९,२; ४०८ — अरुन्धती
ग्रावः अग्नेः ८,७,८; ३३१ — ओषधयः
जनानां न्यञ्चनी ५,५,२; ४२९ — लाक्षा
जयन्ती ५,५,३; ४३० — लाक्षा
जातः त्रिः आदित्येभ्यः परि १९,३९,५; ४५१ — कुष्ठः
जातः त्रिः विश्वेभ्यो देवेभ्यः १९,३९,५; ४५१ — कुष्ठः
जातः त्रिः शाम्बुभ्यो अंगिरोभ्यः १९,३९,५; ४५१ — कुष्ठः
जातः देवेभ्यः अधि ५,४,७; ४४३ — कुष्ठः
जातः सुपर्णसुवने गिरौ ५,४,२; ४३८ — कुष्ठः
जातः हिमवतः उदक् ५,४,८; ४४४ — कुष्ठः
जामयः ऋ. ३,५७,३; ३६३ — ओषधयः
जामिकृत ४,१९,१; ३९६ — अपामार्गः

वशी ४,१७,८; ३८७ — अपामार्गः
वसतिः पर्णे वः ऋ. १०,९७,५; ३०५ । वा० य० १२,७९; ३५,४; ३५८ — ओषधयः
वातः आत्मा ५,५,७; ४३४ — लाक्षा
वातीकृतस्य भेषजी ६,१०९,३; ४१५ — पिप्पली
वावशानाः पुत्रम् ऋ. ३,५७,३; ३६३ — ओषधयः
विभिन्दन् नाम पिता ४,१९,५; ४०० — अपामार्गः
विभिदन्तो ४,१९,५; ४०० — अपामार्गः
विवरुणाः ८,७,१०; ३३३ — ओषधयः
विशाखाः ८,७,४; ३२७ — ओषधयः
विश्वाः ऋ. १०,९७,१०; ३१० — ओषधयः
विश्वधावीर्यः १९,३९,१०; ४५६ — कुष्ठः
विश्वभेषजः १९,३९,५-९; ४५१-४५५ — कुष्ठः
विश्वभेषजी ६,१३६,३; ४६१ — नितत्नी
विश्वभेषजीः ८,७,२६; ३४९ — ओषधयः
विश्वतोमुखः ७,६५,२; ४०५ — अपामार्गः
विश्वरूपा ६,५९,३; ४०९ — अरुन्धती
विश्वस्य भूतस्य गर्भः ६,९५,३; ४१२ — कुष्ठौषधिः
विषदूषणीः ८,७,१०; ३३३ — ओषधयः
विष्णुः वा. य. ५,४२; ३७० — वनस्पतिः (यूपः)
विष्ठिताः पृथिवीं अनु ऋ. १०,९७,१९; ३१९ — (यूपः)
विहह्लो नाम ते पिता ६,१६,२; ४६७ — आबयुः
वीरुधः ऋ. १०,९७,३,२१; ३०३,३२१ । ८,७,२; ३२५ — सामान्यवाची
वीरुधां पतिः ४,१९,४; ४०३ — अपामार्गः
वीरुधां बलवत्तमा ३,१८,१; ३६४ — उत्तानपर्णा
वीरुधां बलवत्तमः ५,४,१; ४३७ — कुष्ठः
वीरुधानां वसिष्ठः ६,२१,२; ४५८ — चन्द्रमाः
वृक्षाः उपस्तयः तव ऋ. १०,९७,२३; ३२३ — सोमः
वैश्वदेवीः ८,७,४; ३२७ — ओषधयः
व्रीहिः ८,७,२०; ३४३ — वि. नाम
शतक्रतुः वा. य. २८,१०,३३; ३७५-३७६ — वनस्पति (यूपः)
शतक्रत्वः ऋ. १०,९७,२; ३०२ — ओषधयः
शतवल्शः वा. य. ५,४३; ३७१ — वनस्पतिः (यूपः)
शतवल्शा ६,३०,२; ४७१ — शमी
शतविचक्षणाः ऋ. १०,९७,१८; ३१८ । ६,९६,१; ३५२ — ओषधयः
शतशाखा ४,१९,५; ४०० — अपामार्गो वनस्पतिः
शपथयावनी ४,१७,२; ३८१ — अपामार्गो वनस्पतिः
शमिता वा. य. २१,२१; २७,२१; २८,१०,३३; ३७३-३७६ — वनस्पतिः (यूपः)
शमी ६,३०,३; ४७१ — वि. नाम
शश्वतां भर्त्री ५,५,२; ४२९ — लाक्षा
शिवाः ८,७,१७; ३४० — ओषधयः
शुक्राः ८,७,१; ३२४ — ओषधयः
शुष्मा ५,५,७; ४३४ — लाक्षा
सजित्वरीः ऋ. १०,९७,३; ३०३ — ओषधयः
सत्यजित् ४,१७,१; ३८१ — अपामार्गः
सनिष्यन्तीः धनम् ऋ. १०,९७,८; ३०८ — ओषधयः
सन्तन्वन्ती भूमिम् ८,७,१६; ३३९ — ओषधयः
समुद्रः मूलम् ८,७,२; ३२५ — ओषधयः
सम्पतिता अश्वस्य अस्नः ५,५,९; ४३६ — लाक्षा
सम्भक्ता मधोः ८,७,१२; ३३५ — ओषधयः
सरा ५,५,९; ४३६ — लाक्षा
सहमानाः ८,७,५; ३२८ — ओषधयः
सहमानाः २,२५,२; ४१७ — पृश्निपर्णी
सहमानाः ४,१७,१; ३८१ — अपामार्गः
सहस्रधामा ४,१८,४; ३९१ — अपामार्गः
सहस्रनाम्नीः ८,७,८; ३३१ — ओषधयः
सहस्रपर्ण्यः ८,७,१३; ३३६ — ओषधयः
सहस्वती ३,१८,२,५; ३६५,३६८ — उत्तरा उत्तानपर्णा वा
सहस्वती २,२५,१; ४१६ — पृश्निपर्णी
सासहिः ३,१८,५; ३६८ — उत्तरा
सिलाची ५,५,१,८; ४२८,४३५ — लाक्षा
सिलाञ्जाला ६,१६,४; ४६९ — आबयुः
सिषासवः ६,२१,३; ४५९ — रेवतीः केशवर्धनीः
सीराः ऋ. १०,९७,९; ३०९ — ओषधयः
सुपर्णाः ८,७,२४; ३४७ — ओषधयः
सुपिप्पलाः वा. य. ११,४८; ३५७ — ओषधयः
सुभगा ३,१८,२; ३६५ — उत्तानपर्णी
सुभगा ६,५९,३; ४०९ — अरुन्धती
सुभगा ५,५,६-७; ४३३-४३४ — लाक्षा
सुभगा ६,३०,३; ४७२ — शमी

रोगचिकित्सान्तर्गता ओषधयः ।

रोगचिकित्सा ।

(१) रोगाणां नामानि, तेषां गुणबोधकपदानि च ।

(२) रोगाणां परिहार-साधनानि ।

अपचितः गण्डमाला वा ।

मुनेः देवस्य मूलम् ७,७४,१; ५०३
त्वाष्ट्रं वचः ७,७४,३; ५०५

इषुनिष्कासनम् ।

ईर्ष्यापनयनम् ।

भेषजम् ७,४५,१; ६८५

उन्मत्ततामोचनम् ।

भेषजम् ६,१११,१-३; ६८८-६८९

कासा-शमनम् ।

क्षेत्रियरोगनाशनम् । २,८,१-५; ४९३-९७
क्षेत्रियनाशनी वीरुत् २-५; ४९४-९७
तिलस्य तिलपिञ्जी ३; ४९५
यवस्य पलाली अर्जुनकाण्डस्य ३; ४९५
यवस्य पलाली बभ्रोः ३, ४९५
विचृतौ नाम तारके १; ४९३
ईषायुगेभ्यः क्षेत्रस्य पतये लांगलेभ्यः सनिस्रसाक्षेभ्यः सन्देश्येभ्यः च नमस्कृतिः ४-५; ४९६-९७

ज्वरनाशनम् ।

तक्मनाशनम् ।

दुःष्वप्ननाशनम् ।

बलासनाशनम् ।

मूत्रमोचनः ।

प्र ते भिनद्मि मेहनम् १,३,७; ५७७
विषितं ते वस्तिबिलम् १,३,८; ५७८

यक्ष्मनाशनम् । २,८,१-५; ४९३-९६
इदं सूक्तं न यक्ष्मनाशनम् [स्वतन्त्रं प्रकरणं द्रष्टव्यम् १६१-३००]

रुधिरास्रावनिवृत्तिः ।

योषितः हिराः लोहितवाससः धमन्यः अभ्रातरः इव जामयः तिष्ठन्तु १,१७,१; ५५५
आस्रावभेषजम् ६,४४,२; ५६०
रुद्रस्य मूत्रम् ६,४४,३; ५६१
वातीकृतनाशनी ६,४४,३, ५६१
विषणका नाम ६,४४,३; ५६१
अन्वास्रावम् २,३,२, ५६६
अरुस्राणम् २,३,३,५; ५६७-५६९
अरोगणम् २,३,२; ५६६
आस्रावस्य भेषजम् २,३,३-५; ५६७-६९

श्वेतकुष्ठनाशनम् ।

असिक्नी (वनस्पतिः) १,२३,१-४; ५१७ २०
असितं आस्थानम् १,२३,३; ५१९
असितं प्रलयनम् १,२३,३; ५१९
आसुरी (वनस्पतिः) १,२४,१-४; ५२१-२४
किलासनाशनम् १,२४,२; ५२१
किलासभेषजम् १,२४,२; ५२२
कृष्णा १,२३,१; ५१७
पृथिव्या अधि उद्भृता १,२४,४; ५२४
रामा १,२३,१; ५१७
श्यामा १,२४,४; ५२४
सरूपंकरणी १,२४,४; ५२४
सरूपकृत् १,२४,३; ५२३
सरूपो नाम पिता १,२४,३; ५२३
सरूपा नाम माता १,२४,३; ५२३

हरिमा- (हृद्रोग-कामिला नाशनम्) ।

नाशनम् । १,२२,१-४; ४८९-९२
रोगघ्न्यः उपनिषदः ऋ १,५०,११-१३; ५४५-४७
रोपणाकासु ध्मानम् १,२२,४; ४९२ । ऋ. १,५०, १२; ५४६
रोहितैः वर्णैः ध्मानम् १,२२,२; ४९०
रोहितस्य वर्णेन ध्मानम् १,२२,१; ४८९
रोहिणीभिः ध्मानम् १,२२,३; ४९१
रोहिणीः देवत्याः गावः ताभिः ध्मानम् १,२२,३; ४९१
शुकेषु ध्मानम् १,२२,४; ४९२ । ऋ. १,५०,१२; ५४६
हारिद्रवेषु ध्मानम् १,२२,४; ४९२। ऋ. १,५०,१२;५४६

(३) भैषज्यम् ।

क्रिमिनाशनम् ।

(१) क्रिमीणां विविधप्रकाराः, तेषां गुणबोधकपदानि च ।

× इदं पदद्वयं क्रिम्यर्थे न प्रतिभाति ।

(२) ओषधिनामानि ।

तासां गुणबोधकपदानि च ।

विषनाशनम् ।

(१) विष-उत्पत्ति-हेतवः ।

(२) गुणबोधक–पदसहिता विषनाशका देवता ओषधयश्च ।

मणिधारणम् ।

अस्तृतादि-मणिदेवता-गुणबोधकपदानि ।

यज्ञादिकम् ।

(१) यम-देवताया गुणबोधकपदानि ।

राजा ऋ. १०,१४,१,४,७,११; १९६८,१९७१,१९७२, १९७८। अ. १८,१,४९; २०१५। अ. १८,१,६०; २०१३। १८,२,२१; २०३६। १८,३,१३; २०९६

विवस्वान् पिता यस्य ऋ. १०,१४,५; १९७२

विश्पतिः ऋ. १०,१३५,१; १९८०

वैवस्वतः ऋ. १०,१४,१; १९६८। अ. १८,१,४९; २०१५। १८,३,१३; २०९६

संगरणः हवींषि ऋ. १०,१५,८; १९९४। अ. १८, ३,४६; २१२९

संगमनः जनानाम् 'जनानां संगमनः' द्रष्टव्यम्।

स्वधया मदन् 'मदन् स्वधया' द्रष्टव्यम्।

(२) पितर-देवताया गुणबोधकपदानि।

अग्निदग्धाः ऋ. १०,१५,१४; २०००। अ. १८,२, ३५; २०५९

अग्निष्वात्ताः ऋ. १०,१५,११; १९९७। अ. १८,३, ४४; २१२७

अंगिरसः ऋ. १०,१४,३-५; १९७०-७२। अ. १८, १,५८-६१; २०२१-२४

अथर्वाणः १८,१,५८; २०२१

अनग्निदग्धाः ऋ. १०,१५,१४; २०००। अ. १८,२,३५; २०५९

अनाधृष्याः तपसा १८,२,१६; २०४०

अन्तरिक्षसदः १८,४,७९; २२१९

अपरासः १८,१,४६; २०१२

अर्वाणः १८,३,१९; २१०२

अवरे ऋ. १०,१५,१; १९८७। अ. १८,१,४४; २०१०

अवृकाः ऋ. १०,१५,१; १९८७। अ. १८,१,४४; २०१०

असुं ये ईयुः ऋ १०,१५,१; १९८७। अ. १८,१,४४; २०१०

आसीनासः अरुणीनां उपस्थे ऋ. १०,१५,७; १९९३। अ. १८,३,४३; २१२६

उक्थशासः १८,३,२१; २१०४

उद्धिताः १८,२,३४; २०५८

उपरासः ऋ. १०,१५,२; १९८८

उपहूताः ऋ. १०,१५,५; १९९१

ऋतं आशशानाः १८,३,२१; २१०४

ऋतजाताः १८,२,१५; २०३९

ऋतज्ञाः ऋ. १०,१५,१; १९८७। अ. १८,१,४४; २०१०

ऋतसाताः १८,२,१५; २०३९

ऋतावृधः १८,२,१५; २०३९

कवयः १८,३,१९,४७; २१०२,२१३०

कव्याः ऋ. १०,१५,९; १९९५

घर्मसदः ऋ. १०,१५,९-१०; १९९५-९६। अ. १८,३ ४७-४८; २१३०-३१

जेहमानाः ऋ. १०,१५,९; १९९५। अ. १८,३,४७; २१३०

तपस्वन्तः १८,२,१५; २०३९

तपोजाः १८,२,१५; २०३९

दग्धाः १८,२,३४; २०५८

देवत्राः ऋ. १०,१५,९; १९९५। अ. १८,३,४७; २१३०

देववन्दाः ऋ. १०,१५,१०; १९९६

द्युमन्तः १८,१,५७; २०२०

नवग्वाः १८,१,५८; २०२१

निखाताः १८,२,३४; २०५८

पराः-रासः ऋ. १०,१५,१,१०; १९८७, १९९६। अ. १८,१,४४; २०१०। १८,३,२१; २१०४

परोप्ताः १८,२,३४; २०५८

पार्थिवे रजसि आ निषत्ताः ऋ. १०,१५,२; १९८८

पूर्वे-र्वासः ऋ. १०,१५,२,८,१०: १९८८,१९९४, १९९६। अ. १८,१,४६; २०१२

पितरः पितृदेवतमंत्रेषु सर्वत्र।

प्रत्नासः १८.३,२१; २१०४

बर्हिषदः ऋ. १०,१५,३-४; १९८९-९०। अ. १८,१, ४५,५१; २०११,२०१६

भूर्जयः १८,१,६१; २०२४

भृगवः १८,१,५८; २०२१

मध्यमाः ऋ. १०,१५,१; १९८७। अ. १८,१,४४; २०१०

(३) पृथिवी 'भूमिः वा' देवताया गुणबोधकपदानि ।

दीर्घायुष्य-उपप्रकरणे देवतानामानि ।

(१) देवतानामानि ।

(२) अग्निदेवता-गुणबोधकपदानि ।

जंगिडमणिदेवता-गुणबोधकपदानि ।

(३) ' दीर्घायुष्यम् ' पर्यायशब्दाः ।

(४) दीर्घायुत्वे परिहरणीयम् ।

(५) ओषधयः, तासां विकाराः, गुणबोधकपदानि च ।

जलचिकित्सा ।

(१) आपः [उदकम्] गुणबोधकपदानि ।

*

(२) सरस्वत्यादि-नदी-नामानि, तासां गुणबोधकपदानि च ।

(३) 'पर्जन्य' देवताया गुणबोधकपदानि।

(४) 'मण्डूक' देवताया गुणबोधकपदानि ।

(५) 'आपः' देवतान्तरसम्बन्धः ।

आयुर्वेद-मन्त्राणां

वर्णानुक्रमसूची ।

*

॥ आयुर्वेद-प्रकरणं समाप्तम् ॥





दैवत-संहिता।

(७)

रुद्रदेवता।

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर,
साहित्यवाचस्पति, गीतालंकार
अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल

[स्व. नारायणजी पुरुषोत्तम विश्वस्तनिधिके बंबई निवासी विश्वस्तोंने संपूर्ण 'दैवत-संहिता' के मुद्रणके लिये १५०००) रु० दिये, इस धनके भागसे यह विभाग मुद्रित हुआ है।]

स्वाध्याय मण्डल, पारडी

संवत् २०१५, शक १८८०, सन् १९५८

(२५८

प्रकाशक :
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर, बी. ए.,
स्वाध्याय-मण्डल, भारत मुद्रणालय,
पोस्ट- 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)'
पारडी (जि. सुरत)

द्वितीय वार

मूल्य १·७५ न. पैसे

मुद्रक :
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर, बी. ए.,
स्वाध्याय-मण्डल, भारत मुद्रणालय,
पोस्ट- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)'
पारडी (जि. सुरत)



रुद्रदेवताका परिचय।

'रुद्र' के विषयमें निरुक्तका मत।

'**निघण्टु**' नामक वैदिक कोश में अ० ३।१६ में '**स्तोतृनामों**' में '**रुद्र**' शब्दका निर्देश किया गया है। इससे '**रुद्र**' शब्दका '**स्तोता**' स्तुति करनेवाला, ऐसा अर्थ निघण्टुकार के मतसे है। इसलिये निघण्टुकारके मतानुसार '**रुद्र**' शब्द मनुष्यवाचक ही प्रतीत होता है। परंतु निरुक्तकार यास्काचार्यने इस 'रुद्र' देवताका परिगणन मध्यस्थानीय देवगण (निरु० अ० १०।१) में किया है।

अथातो मध्यस्थाना देवताः ॥ १ ॥ रुद्रो रौतीति सतः रोरूयमाणो द्रवतीति वा, रोदयतेर्वा, 'यदरुदत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्' इति काठकम् 'यदरोदीत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्' इति हारिद्रविकम् ॥

(निरुक्त, दैवतकाण्ड १०।१।१-६)

"अब मध्यम स्थान अर्थात् अन्तरिक्ष स्थानके देवोंका विचार करना है। 'रु' अर्थात् शब्द करना, इस अर्थका यह शब्द है, किंवा शब्द करता हुआ पिघलता है, ऐसा इसका अर्थ है। रोनेके कारण इसको रुद्र कहा है, ऐसा काठक और हरिद्रविक शाखा संप्रदायवालोंका मत है।" अर्थात् 'रुद्र' देवता अन्तरिक्षमें है। मेघोंमें रहकर यह गर्जनारूप शब्द करता है, और गर्जना करता हुआ, मेघोंको द्रवरूप बनाकर वृष्टि कराता है। **काठक** और **हारिद्रविक** शाखा-सांप्रदाय-वालोंका मत ऐतिहासिक है; देखिए—

(१) स किल पितरं प्रजापतिमिषुणा विध्यन्तमनुशोचन्नरुदत् तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम् ॥

(२) यदरोदीत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम् ॥

(नि० भाष्य १०।१।६)

"वह रुद्र अपने प्रजापति पिताको बाणसे विद्ध करता हुआ देखकर रोया, इसलिये उसका नाम रुद्र हुआ।" यह मत ऐतिहासिकोंका है। तथा—

एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयः।
असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्।
......इति ॥ (नि० १।१३)

"एक मंत्र कहता है कि '**एक ही रुद्र है, वह अ-द्वितीय है।**' परन्तु दूसरे मंत्रमें कहा है कि '**पृथ्वीमें असंख्य और हजारों रुद्र हैं।**

इस विषय में निरुक्तकार कहते हैं—

तासां महाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति ॥ १ ॥......तत्र संस्थानैकत्वं संभोगैकत्वं चोपेक्षितव्यम् । .... ॥ तत्रैतन्नरराष्ट्रमिव ॥ ५ ॥ (नि० दै. ७।२।५)

"उन देवताओंमें एक-एक देवताका महत्त्व विशेष होनेके कारण एक-एक देवताके अनेक नाम होते हैं।......परंतु उन का स्थानसे और भोगसे एकत्व देखना चाहिए। ...... जैसा मनुष्योंका राष्ट्र।"

अर्थात् एकएक देवताके विशेष गुणोंके कारण अनेक नाम हुआ करते हैं। नाम अनेक होनेपर भी भिन्न देवता नहीं होते हैं। अनेक शब्दोंसे एक ही देवताका बोध होता है। ...... क्योंकि उनके स्थान और भोगकी एकता देखकर उनकी विविधतामें एकता देखनी चाहिए। ...... जैसा राष्ट्रमें रंग-रूप-जातिके कारण अनेक प्रकारके लोग होनेपर भी उन सबमें एक राष्ट्रीयत्व होता है, उसी प्रकार अनेक देवताओंके 'स्थानके और भोगके एकत्व' के कारण उन अनेकोंमें एकत्व मानना उचित है।

इसलिये यद्यपि किसी मंत्रमें '**एक ही रुद्र है**' ऐसा वचन आया अथवा दूसरे किसी मंत्रमें '**हजारों रुद्र हैं**' ऐसा विधान

आगया, तथापि इतनेसे ही उनमें भेद है, ऐसा नहीं सिद्ध होता। यह उक्त निरुक्तवचनोंका तात्पर्य है।

निरुक्तकार और क्या क्या कहते हैं, यह पहिले यहां देखेंगे और पश्चात् अन्य मतोंका विचार करेंगे—

अग्निरपि रुद्र उच्यते ॥ (नि. १०।७।२)

" अग्निको भी रुद्र कहते हैं। " इस प्रकार ' रुद्र ' शब्दका ' अग्नि ' ऐसा अर्थ यहां निरुक्तकारने दिया है।

' रुद्र ' शब्दका ' परमात्मा, परमेश्वर ' ऐसा अर्थ स्पष्टतापूर्वक यद्यपि निरुक्तकारने नहीं दिया, तथापि ' एक ही देवताके अनेक नाम देवताके महत्त्वके कारण हुआ करते हैं। ' ऐसा कहकर सूचित किया है कि परमात्माके अनेक नामोंमें ' रुद्र ' भी एक नाम है; अर्थात् ' रुद्र ' शब्दका परमेश्वरपर अर्थ भी हो सकता है।

स्थानके एकत्वके कारण, भिन्न वर्णन होने पर भी, एकत्वकी कल्पना करनेकी सूचना निरुक्तकार यास्काचार्य पूर्वोक्त वचनमें देते हैं। सर्वव्यापक परमात्मा जैसा पृथ्वीपर है, वैसा ही अन्तरिक्षमें और ऊपर द्युलोकमें भी व्यापक होनेसे उसका स्थान सर्वत्र है; इसलिये सब स्थानके देवताओंके सब शब्द उस एक अद्वितीय महा देवताके वाचक हो सकते हैं। इस तर्कशास्त्रसे हम निरुक्तकारका भाव जान सकते हैं। यही भाव श्वेताश्वतर उपनिषद्में बिलकुल स्पष्ट है। देखिए—

रुद्रके विषयमें उपनिषत्कारोंकी संमति।

श्वेताश्वतर उपनिषद्में ' एक रुद्र है, ' इस विषयमें निम्न मंत्र आया है—

एको ह रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः। प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥ २ ॥ (श्वे. उ. ३।२)

यही मंत्र निरुक्तभाष्यकारने निम्न प्रकार दिया है—

एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयो रणे निघ्नन् पृतनासु शत्रून् ॥ संसृज्य विश्वा भुवनानि गोप्ता प्रत्यङ् जनान्संचुकोचान्तकाले ॥

(नि. १।१४ दुर्गाचार्यटीका)

एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे ॥ (तै. सं. १।८।६।१)

" एक ही रुद्र है, दूसरा रुद्र नहीं है। वह शत्रुओंको युद्धमें पराजित करता है। सब भुवनोंको उत्पन्न करके, उस सब विश्वका संरक्षण करता है और अन्तकालमें सबका संकोच (प्रलय) करता है। "

ऊपर दिये हुए श्वेताश्वतर मंत्रका अर्थ— " एक ही रुद्र है, वह किसी दूसरेकी सहायताकी अपेक्षा नहीं करता। वह अपनी शक्तियोंसे इन सब लोकोंको स्वाधीन रखता है। और प्रत्येक मनुष्यके अन्दर रहता है। यह संरक्षक प्रभु सब विश्वको उत्पन्न करने और पालन करनेके पश्चात् अन्तकालमें सबको संकुचित करता है। " तथा—

एको रुद्रो न द्वितीयाय तस्मै य इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः ॥ (अथर्व-शिर. ५)
रुद्रमेकत्वमाहुः शाश्वतं वै पुराणम् ॥ अथर्व-शिर. ५
यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश। य इमा विश्वा भुवनानि चक्लृपे तस्मै रुद्राय नमोऽस्त्वग्नये ॥ (अथर्व-शिर. ६)

" एक ही रुद्र है। वह किसी दूसरेकी सहायता नहीं चाहता। जो इन सब लोक-लोकान्तरोंको अपनी शक्तियों द्वारा स्वाधीन रखता है। ' रुद्र ' एक ही है ऐसा कहते हैं। वह शाश्वत और प्राचीन है। " " जो रुद्र अग्नि, जल, ओषधी, वनस्पति, आदिमें व्यापक है और जो इन सब भुवनोंको बनाता है, उस एक अद्वितीय तेजस्वी रुद्रके लिये नमस्कार है। " तथा—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ॥ हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ ४ ॥ (श्वेता. उ. ३।४)
यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ॥ हिरण्यगर्भं पश्यति जायमानं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ १२ ॥ (श्वेता. उ. ४।१२)

" जो सब देवताओंको जन्म देता है, जो सर्व द्रष्टा और सब विश्वका अधिपति है, जिसने पहिले हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया था, वह एक प्रभु रुद्र हम सबको शुभ बुद्धि देवे। "

इस प्रकार ' **रुद्र** ' शब्दसे ' **एक परमात्मा** ' का बोध उपनिषदोंमें लिया है। इससे सिद्ध है कि ' रुद्र ' शब्द परमात्मवाचक है। यद्यपि इस समयका कोई कोशकार ' **रुद्र** ' शब्दका ' **परमात्मा** ' ऐसा अर्थ नहीं देता, तथापि कृष्णयजुर्वेदीय श्वेताश्वतर उपनिषद्के उक्त वचन द्वारा उस शब्दका परमात्मवाचक अर्थ निःसंदेह सिद्ध है।

आगया, तथापि इतनेसे ही उनमें भेद है, ऐसा नहीं सिद्ध होता । यह उक्त निरुक्तवचनोंका तात्पर्य है ।

निरुक्तकार और क्या क्या कहते हैं, यह पहिले यहां देखेंगे और पश्चात् अन्य मतोंका विचार करेंगे—

अग्निरपि रुद्र उच्यते ॥ (नि. १०।७।२)

" अग्निको भी रुद्र कहते हैं । " इस प्रकार ' रुद्र ' शब्दका ' अग्नि ' ऐसा अर्थ यहां निरुक्तकारने दिया है ।

' रुद्र ' शब्दका ' परमात्मा, परमेश्वर ' ऐसा अर्थ स्पष्टतापूर्वक यद्यपि निरुक्तकारने नहीं दिया, तथापि ' एक ही देवताके अनेक नाम देवताके महत्त्वके कारण हुआ करते हैं । ' ऐसा कहकर सूचित किया है कि परमात्माके अनेक नामोंमें ' रुद्र ' भी एक नाम है; अर्थात् ' रुद्र ' शब्दका परमेश्वरपर अर्थ भी हो सकता है ।

स्थानके एकत्वके कारण, भिन्न वर्णन होने पर भी, एकत्वकी कल्पना करनेकी सूचना निरुक्तकार यास्काचार्य पूर्वोक्त वचनमें देते हैं । सर्वव्यापक परमात्मा जैसा पृथ्वीपर है, वैसा ही अन्तरिक्षमें और ऊपर द्युलोकमें भी व्यापक होनेसे उसका स्थान सर्वत्र है; इसलिये सब स्थानके देवताओंके सब शब्द उस एक अद्वितीय महा देवताके वाचक हो सकते हैं । इस तर्कशास्त्रसे हम निरुक्तकारका भाव जान सकते हैं । यही भाव श्वेताश्वतर उपनिषद्में बिलकुल स्पष्ट है । देखिए—

रुद्रके विषयमें उपनिषत्कारोंकी संमति ।

श्वेताश्वतर उपनिषद्में ' एक रुद्र है, ' इस विषयमें निम्न मंत्र आया है—

एको ह रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः । प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥ २ ॥ (श्वे. उ. ३।२)

यही मंत्र निरुक्तभाष्यकारने निम्न प्रकार दिया है—

एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयो रणे निघ्नन् पृतनासु शत्रून् ॥ संसृज्य विश्वा भुवनानि गोप्ता प्रत्यङ् जनान्संचुकोचान्तकाले ॥

(नि. १।१४ दुर्गाचार्यटीका)

एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे ॥ (तै. सं. १।८।६।१)

" एक ही रुद्र है, दूसरा रुद्र नहीं है । वह शत्रुओंको युद्धमें पराजित करता है । सब भुवनोंको उत्पन्न करके, उस सब विश्वका संरक्षण करता है और अन्तकालमें सबका संकोच (प्रलय) करता है । "

ऊपर दिये हुए श्वेताश्वतर मंत्रका अर्थ—" एक ही रुद्र है, वह किसी दूसरेकी सहायताकी अपेक्षा नहीं करता । वह अपनी शक्तियोंसे इन सब लोकोंको स्वाधीन रखता है । और प्रत्येक मनुष्यके अन्दर रहता है । यह संरक्षक प्रभु सब विश्वको उत्पन्न करने और पालन करनेके पश्चात् अन्तकालमें सबको संकुचित करता है । " तथा—

एको रुद्रो न द्वितीयाय तस्मै य इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः ॥ (अथर्व-शिर. ५)

रुद्रमेकत्वमाहुः शाश्वतं वै पुराणम् ॥ अथर्व-शिर. ५

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश । य इमा विश्वा भुवनानि चक्लृपे तस्मै रुद्राय नमोऽस्त्वग्नये ॥ (अथर्व-शिर. ६)

" एक ही रुद्र है । वह किसी दूसरेकी सहायता नहीं चाहता । जो इन सब लोक-लोकान्तरोंको अपनी शक्तियों द्वारा स्वाधीन रखता है । ' रुद्र ' एक ही है ऐसा कहते हैं । वह शाश्वत और प्राचीन है । " " जो रुद्र अग्नि, जल, ओषधी, वनस्पति, आदिमें व्यापक है और जो इन सब भुवनोंको बनाता है, उस एक अद्वितीय तेजस्वी रुद्रके लिये नमस्कार है । " तथा—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ॥ हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ ४ ॥ (श्वेता. उ. ३।४)

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ॥ हिरण्यगर्भं पश्यति जायमानं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ १२ ॥ (श्वेता. उ. ४।१२)

" जो सब देवताओंको जन्म देता है, जो सर्व द्रष्टा और सब विश्वका अधिपति है, जिसने पहिले हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया था, वह एक प्रभु रुद्र हम सबको शुभ बुद्धि देवे । "

इस प्रकार ' **रुद्र** ' शब्दसे ' **एक परमात्मा** ' का बोध उपनिषदोंमें लिया है । इससे सिद्ध है कि ' रुद्र ' शब्द परमात्मवाचक है । यद्यपि इस समयका कोई कोशकार ' **रुद्र** ' शब्दका ' **परमात्मा** ' ऐसा अर्थ नहीं देता, तथापि कृष्णयजुर्वेदीय श्वेताश्वतर उपनिषद्के उक्त वचन द्वारा उस शब्दका परमात्मवाचक अर्थ निःसंदेह सिद्ध है ।

रुद्रके एकत्वके विषयमें वेदकी संमति।

' रुद्र ' के एकत्वके विषयमें निरुक्तकारने दिया हुआ मंत्र पूर्व स्थलमें दिया ही है। वह आजकल किसी संहितामें नहीं मिलता। इसलिये अनुमान है कि वह किसी अन्य शाखाग्रंथमें पठित होगा और निरुक्तकारके समय वह शाखाग्रंथ उपलब्ध होगा। रुद्रके एकत्वके विषयमें वेदमें ये वचन हैं—

स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम्। ... ॥३॥
सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः। ... ॥४॥
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥११॥
एते अस्मिन्देवा एकवृतो भवन्ति ॥१३॥ (अथर्व. १३।४।२)

" वह ही धाता, विधाता, वायु, अर्यमा, वरुण, रुद्र और महादेव है। उसीसे यह आकाश ऊपर हुआ है, यह सब महान् शक्ति उसी में है। वह एक ही है। वह एक सर्वत्र व्यापता है। वह निश्चयसे एक है। सब देव उसमें एक जैसे होते हैं। " इसमें बताया है कि एक सर्वव्यापक सर्वाधार आत्मतत्त्वका नाम भी रुद्र है।

सर्वव्यापक रुद्रदेव।

एक ही रुद्र सर्वत्र व्यापक है, इस आशयको निम्न मंत्र प्रकट कर रहा है—

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश। य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमोस्त्वग्नये ॥ (अथर्व० ७।९२।१)

" जो एक रुद्र देव अग्नि, जल, औषधि, वनस्पति आदि पदार्थोंमें व्याप्त है और जो सब भुवनोंको (चक्लृपे) बना सकता है, उस (अग्नये रुद्राय) एक तेजस्वी रुद्रदेवके लिये नमन है। "

यह मंत्र बिलकुल स्पष्ट है और इससे रुद्रदेवकी सर्वव्यापकता सिद्ध होती है। जगत् की रचना करनेवाला, सब पदार्थोंमें व्यापक और सबका उपास्य जो देव है, उसीका उल्लेख यहां 'रुद्र' नामसे किया है। रुद्र शब्दके एकवचन होनेके कारण वह एक ही है, ऐसा सिद्ध होता है। तथा सर्वव्यापक जो होता है, वह एक ही हो सकता है। इससे भी उसका एकत्व सिद्ध हो सकता है। रुद्रदेवका ही सब कुछ है, ऐसा अथर्ववेदीय रुद्रसूक्तके निम्न मंत्रमें कहा है—

तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वन्तरिक्षम्। तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत्प्राणत् पृथिवीमनु ॥ १० ॥ (अथर्व. ११।२।१०)

" हे रुद्र! इन चार दिशाओंमें तथा द्युलोक, पृथ्वी और इस बडे अन्तरिक्षमें जो कुछ है, वह सब तेरा ही है। जो कुछ (आत्मन्-वत्) आत्मायुक्त अर्थात् प्राण धारण करनेवाला है, जो इस पृथ्वीपर जीवनरूपसे रहता है, वह सब तेरा ही है। "

इस तरह ' रुद्र ' का सामर्थ्य और प्रभुत्व चारों ओर सब दिशा विदिशाओंमें है, ऐसा वर्णन इस मंत्रमें है। इससे सिद्ध होता है कि उस जगन्नियन्ता परमात्माका ही यह ' **रुद्र** ' नाम है।

केवल इतने ही प्रमाणोंसे ' परमात्मा ' वाचक ' रुद्र ' शब्द है, ऐसा सिद्ध होगा। तथापि परमात्माके अनेक गुण वेदमंत्रों द्वारा ' रुद्र ' के साथ मिलते हैं वा नहीं, यह हम अब देखते हैं—

जगत् का पिता रुद्र।

' **पिता** ' का अर्थ ' रक्षक और अपने वीर्य द्वारा जन्म देनेवाला ' ऐसा होता है। ' रुद्र ' सब भुवनोंका पिता है, ऐसा निम्न मंत्रमें कहा है—

भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ। बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः ॥ (ऋ० ६।४९।१०)

" (दिवा अक्तौ) दिनमें और रात्रीमें (आभिः गीर्भिः) इन वचनोंके साथ (भुवनस्य पितरं) सब सृष्टिके पिता (रुद्रं रुद्रं) बलवान् रुद्र देवकी (वर्धय) बधाई करो। उनके महत्वकी प्रशंसा करो। उस (बृहन्तं) महान् (ऋष्वं) श्रेष्ठ ज्ञानी तथा (अ-जरं) जीर्ण अथवा क्षीण न होनेवाले और (सु-सुम्नं) अत्यंत उत्तम विचारशील, रुद्रदेवताकी, (कविना इषितासः) बुद्धिवानोंके साथ उन्नतिकी इच्छा करनेवाले हम सब (ऋधक् हुवेम) विशेष प्रकारसे उपासना करेंगे। "

इस मंत्रमें वह ' रुद्र ' देव ' महान्, ज्ञानी, अजर, अमर और सुविचारी ' है, ऐसा कहा है। ये उनके गुण परमात्माके गुणोंके साथ मिलनेवाले ही हैं, तथा ' **भुवनस्य पितरं रुद्रं** ' ये शब्द रुद्रदेवका वास्तविक स्वरूप बताते हैं। ' **सृष्टिका पिता रुद्र है** । ' जगत्का पिता जो अजर, अमर, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है, वह परमात्माके सिवा दूसरा कौन हो सकता है? इस प्रकार इस मंत्रका ' रुद्र ' देव उस अद्वितीय परमात्माका ही नाम है, ऐसा दीखता है। इस जगदीशका वर्णन निम्न मंत्रमें देखने योग्य है—

सब सृष्टिका स्वामी रुद्र।

स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः। ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम् ॥ (ऋ० २।३३।९)

(स्थिरेभिः अंगैः) दृढ अवयवोंसे (पुरु-रूपः) अनेक पदार्थोंको आकार देनेवाला (उग्रः) महान् प्रबल और (बभ्रुः) तेजस्वी रुद्र (शुक्रेभिः हिरण्यैः) शुद्ध तेजोंके साथ (पिपिशे) शोभता है। (अस्य भुवनस्य) इस सब सृष्टिके (भूरेः ईशानात् रुद्रात्) महान् स्वामी रुद्रदेवसे (असु-र्यं) उसकी महान् जीवनशक्ति (न वा उ योषत्) कभी पृथक् नहीं होती। "

यह 'रुद्र' देव जगत्को निर्माण करके सब पदार्थोंको रंग, रूप और आकार देता है। वह अत्यंत तेजस्वी और सर्वशक्तिमान् है। अपने ही विविध तेजोंसे और पवित्रताओंके कारण वह शोभायमान हो रहा है। वह सब जगतका ईश्वर है और उससे उसकी शक्ति कभी पृथक् नहीं होती। यह मंत्र 'रुद्र' देवताके सब शंकाओंको दूर कर सकता है। '**भुवनस्य ईशानात् रुद्रात् असुर्यं न योषत्।**' जगत् के स्वामी रुद्रदेवसे उसकी दिव्य शक्ति कभी पृथक् नहीं होती। इस वाक्यसे रुद्र देवताके वास्तविक मूल स्वरूपका पता लग सकता है।

भुवनस्य पिता रुद्रः॥ (ऋ० ६।४९।१०)
भुवनस्य ईशानः रुद्रः॥ (ऋ० २।३३।९)

उक्त दो मंत्रोंके ये दो वाक्य एक ही आशयको बतानेवाले हैं, इसका यदि पाठक विचार करेंगे, तो वेदमंत्रोंके शब्दोंकी विशेष योजनाका पता लग सकता है। यह वाक्य यदृच्छासे नहीं बने हैं, विशेष हेतुपूर्वक ही यह शब्दप्रयोग हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है। इससे अगला मंत्र यहां अब देखिए—

सर्वशक्तिमान् रुद्र।

अर्हन् विभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्। अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति॥ (ऋ० २।३३।१०)

" (अर्हन्) योग्य होनेके कारण रुद्र सब शस्त्रास्त्रोंको धारण करता है। रुद्र योग्य होनेके कारण सब विश्वको रूप और तेज देता है। योग्य होनेके कारण ही इस (अभ्वं विश्वं) महान् विश्व पर (दयसे) दया करके उस सबका संरक्षण करता है। हे रुद्र! (त्वत्) तेरेसे कोई भी अधिक (ओजीयः) बलवान् (न वा अस्ति) नहीं है। "

इस मंत्रमें '**त्वत् ओजीयो न वा अस्ति।**' तेरेसे अधिक शक्तिशाली कोई भी नहीं है, अर्थात् तू ही सबसे अधिक बलवान् है। इससे सर्वशक्तिमान् रुद्रदेव परमात्मा ही है, ऐसा दिखाई दे रहा है। अब निम्न लिखित मंत्र देखिए। इसमें रुद्रदेव सब जनताका राजा है, ऐसा कहा है—

गुहा-निवासी रुद्र।

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहत्नुमुग्रम्। मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यमस्मत्ते नि वपन्तु सेन्यम्॥ (अथर्व० १८।१।४०)

" (उग्रं भीमं) उग्र और शक्तिमान्, (उप-हत्नुं) प्रलयकर्ता, (श्रुतं) ज्ञानी, (गर्त-सदं) सबके अन्दर रहनेवाला, (जनानां राजानं) सब लोकोंका राजा रुद्र है, उसकी (स्तुहि) स्तुति करो। हे रुद्र! तेरी (स्तवानः) प्रशंसा होनेपर (जरित्रे) उपासकको तू (मृड) सुख दे। (ते सेन्यं) तेरी शक्ति (अस्मत् अन्यं) हम सबको बचाकर दूसरे दुष्टका (निवपन्तु) नाश करे। "

इस मंत्रमें '**जनानां राजानं रुद्रं**' ये शब्द विशेष महत्त्व रखते हैं। सब लोगोंका एक राजा रुद्र है।

गर्त-सद् = निहितं गुहा सत्। (यजु० ३२।८)
गुहाऽऽहितः
गुहा-चरः = परमं गुहा यत्। (अथर्व० २।१।१;२)
गुहा-शयः = गुह्यं ब्रह्म।

उक्त शब्दोंके साथ '**गर्त-सद्**' शब्द देखने और विचार करनेसे इस शब्दके गूढ आशयका पता लग सकता है। '**गुहाऽऽहित**' और '**गर्त-सद्**' ये दोनों शब्द एक ही अर्थ बता रहे हैं। 'गर्त' शब्दका 'गुहा' ऐसा अर्थ ऊपर दिया ही है। अस्तु। इस मंत्रसे भी 'रुद्र' का पूर्वोक्त भाव ही दृढ हो रहा है। तात्पर्य 'रुद्र' शब्दका 'सर्वव्यापक परमात्मा' ऐसा एक अर्थ निःसंदेह है। इस मंत्रका ऋग्वेदका पाठ यहां देखिए—

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम्। मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानोऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः॥ (ऋ० २।३३।११)

इसका अर्थ स्पष्ट है।

अपने अंतःकरणमें रुद्रकी खोज।

अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया। गृभ्णन्ति जिह्वया ससम्॥ (ऋ० ८।७२।३)

" मुमुक्षुजन (तं रुद्रं) उसी रुद्रको (जने परः अन्तः) मनुष्यके अत्यंत बीचके अन्तःकरणमें (मनीषया) बुद्धि द्वारा जानना (इच्छन्ति) चाहते हैं। (जिह्वया) जिह्वासे (ससं) फलको (गृह्णन्ति) लेते हैं। "

मुमुक्षुजन जिह्वासे सात्विक पदार्थोंको लेते हैं। '**सस**' शब्दका अर्थ 'फल, धान्य, अनाज, शाकभाजी, ओषधि, वनस्पति' इतना ही है। जिह्वासे जिस अन्नका ग्रहण करना उचित है, उसका इस मंत्रने यहां उपदेश किया है। फल, धान्य, अनाज, शाकभाजी आदि पदार्थ ही खाने चाहिए। इस प्रकारका सात्त्विक आहार करनेवाले मुमुक्षु लोग उस रुद्र देवको अर्थात् परमात्माको मनुष्यके अतःकरणके अत्यन्त गहरे स्थानमें अपनी सात्त्विक विचारशक्तिके द्वारा ढूंढ ढूंढ कर देखनेकी इच्छा करते हैं।

अनेक रुद्रोंमें व्यापक 'एक रुद्र।'

पूर्वोक्त प्रमाणोंसे 'रुद्र' एक है और वह सर्वत्र व्यापक है, यह बात सिद्ध हो चुकी। अब अनेक रुद्रोंका वर्णन, जो वेदमें आता है, उसका विचार करना चाहिए।

रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे। (ऋ. १०।६४।८)

"(रुद्रेषु) अनेक रुद्रोंमें रहनेवाले (रुद्रियं रुद्रं) प्रशंसा करने योग्य एक रुद्रकी (हवामहे) हम सब पूजा करते हैं।"

एक रुद्रदेव अनेक रुद्रोंमें रहता है, अर्थात् यह एक रुद्र सबमें व्यापक है और अनेक रुद्र व्याप्य हैं। अनेक रुद्र अणु हैं और यह एक रुद्र महान् है। इस एक रुद्रके द्वारा अनेक रुद्र प्रेरित होते हैं, अर्थात् अनेक रुद्र प्रेर्य हैं और यह एक रुद्र सबका प्रेरक है। तथा—

(१) शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः। (ऋ. ७।३५।६)
(२) रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृळयाति नः। (ऋ.१०।६६।३)
(३) रुद्रं रुद्रेभिरावहा बृहन्तम्। (ऋ. ७।१०।४)

"(१) अनेक रुद्रोंके साथ एक रुद्र हम सबका कल्याण करे। (२) अनेक रुद्रोंके साथ एक रुद्रदेव हम सबको सुख देवे। (३) अनेक रुद्रोंके साथ रहनेवाले एक महान् रुद्रकी पूजा करो।" ये सब मंत्र उक्त भाव बता रहे हैं। अनेक छोटे रुद्रोंमें एक महान् रुद्र की प्रेरणा होती है, इस आशयका ध्वनि निम्न मंत्रमें देखने योग्य है—

तदिद्रुद्रस्य चेतति यह्वं प्रत्नेषु धामसु।
मनो यत्रा वि तद्दधुर्विचेतसः॥ (ऋ० ८।१३।२०)

"(रुद्रस्य तत् यह्वं) रुद्र देवकी वह एक महान् प्रेरक शक्ति (प्रत्नेषु धामसु) अनेक सनातन स्थानोंमें (इत् चेतति) निश्चयसे चेतना देती है। (यत्र) जिस शक्तिमें (वि-चेतसः) विशेष ज्ञानी लोक (तत् मनः) अपना वह मन (वि-दधुः) विशेष प्रकार धारण करते हैं।"

इस मंत्रमें 'रुद्र' की '**यह्व**' शक्तिका वर्णन है। यह शक्ति सब को सतत चेतना दे रही है।

एक रुद्रके पुत्र अनेक रुद्र हैं।

रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै। विदे हि माता महो मही षा सेत्पृश्निः सुभ्वे गर्भमाधात्॥ ३॥ (ऋ० ६।६६।३)

"(मीळ्हुषः रुद्रस्य) एक दानशूर रुद्रदेवके (ये पुत्राः) जो अनेक रुद्र संज्ञकपुत्र हैं, (यान् च उ नु) और जिनका निश्चयसे (भरध्यै) भरण-पोषण, पालन करनेकी सब शक्ति वह एक अद्वितीय रुद्र (दाधृविः) धारण करता है। (महः) इस महान् रुद्रकी शक्तिको (सा मही माता विदे) वह मूल प्रकृतिरूपी बडी माता जानती है, अथवा प्राप्त करती है और (सु-भ्वे) जीवोंकी उत्तम अवस्था होनेके लिये (सा पृश्निः) वह विविध रंगरूपवाली माता (इत्) निश्चयसे (गर्भं आधात्) जीवोंको गर्भमें धारण करती है।"

इस मंत्रमें अनेक रुद्र इस एक रुद्रके पुत्र हैं, ऐसा स्पष्ट कहा है। इस लिये परमपिता परमात्मा ही रुद्र है और सब जीव उसके पुत्र हैं, ऐसा ही इसका अर्थ मानना उचित है।

अनंत प्राणी अनेक रुद्र हैं।

ये अनंत रुद्र जीव हैं, ये प्राणी अर्थात् जीवन धारण करनेवाले हैं। ये मर्य, मर्त्य हैं। इनका शरीर धारण होनेके कारण जन्म होता है और मृत्यु भी होती है। यद्यपि जन्ममरण शरीरका धर्म है, तथापि इन रुद्रोंकी शरीरके साथ स्थिति होनेके कारण, शरीरके साथ इनका जन्म और मरण हुआ, ऐसा कहा जाता है। अर्थात् शरीरके धर्मोंका इनके ऊपर आरोपण होता है। ये '**मर्त्य**' हैं, ऐसा निम्न मंत्रमें कहा है—

ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः। पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः॥
(ऋ० १।६४।२)

"(ते) वे अनंत रुद्र (ऋष्वासः) उच्च (दिवः उक्षाणः) दिव्य बलसे युक्त (असु-राः) जीवनशक्तिसे प्रकाशनेवाले, (अ-रेपसः) निष्कलंक और (मर्याः) मर्त्य हैं। वे उस (रुद्रस्य जज्ञिरे) एक रुद्रसे प्रकट होते हैं। वे (पावकासः)

अग्निके समान पवित्र (शुचयः) तेजस्वी और शुद्ध (सूर्य इव सत्वानः) सूर्यके समान सत्वशाली और (द्रप्सिनः न) वर्षा करनेवाले मेघोंके समान (घोर-वर्पसः) सुंदर और विशाल रूप धारण करनेवाले हैं।"

इस मंत्रमें रुद्रसंज्ञक जीवके गुणधर्म बताये हैं। इनमें '**मर्त्य**' शब्द आया है। प्राणी, शरीरधारी, मरणधर्मवाला, ऐसा उस शब्दका अर्थ है। जिन अनंत रुद्रोंमें एक महान् रुद्र व्यापक हो रहा है वे अनंत रुद्र '**अनंत मर्त्य**' प्राणी हैं; यह भाव इस मंत्रसे प्रकट हो रहा है। '**जनानां राजा रुद्रः**' ऐसा एक वचन पूर्व स्थलमें आया है। उसके साथ इस मंत्रका आशय '**मर्त्यानां पिता रुद्रः**' देखने योग्य है। एक ही भाव किस प्रकार भिन्न भिन्न प्रकारसे बताया गया है, यह यहां देखने योग्य है। इसी विषयका स्पष्टीकरण करनेवाले निम्न लिखित मंत्र यहां देखिए—

क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः ॥ १ ॥ न किर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अंग विद्रे मिथो जनित्रम् ॥ २ ॥ (ऋ० ७।५६)

"(अध) अजी ! (स्वश्वाः = सु-अश्वाः) उत्तम भोग भोगनेवाले, (स-नीळाः) एक आश्रयसे रहनेवाले और (व्यक्ताः नरः) अलग अलग दीखनेवाले पुरुष (के) कौन हैं ? वे (रुद्रस्य मर्याः) रुद्रके मर्त्य पुत्र हैं। (एषां जनूंषि) इनके जन्मका वृत्तांत (न किः वेद) कोई भी नहीं जानता ? हे (अंग) प्रिय ! (ते मिथः) वेही परस्पर एक दूसरेका (जनित्रं) जन्म (विद्रे) जानते हैं।"

इस मंत्रमें '**रुद्रस्य मर्याः**' रुद्रके मर्त्य पुत्रोंका वर्णन फिर आया है। इनमें अलग अलग व्यक्तित्व अर्थात् व्यक्तित्व, पृथक्त्व, इकाई है, इस लिये इनको 'व्यक्त' अर्थात् 'व्यक्ति-भाव' से युक्त कहा है। प्रकृति और पुरुष ऐसे जो दो भेद है, उनमें ये 'पुरुष' हैं, इसलिये मंत्रमें इनको '**नर**' कहा है। एक ईश्वरके आश्रयसे ये रहते हैं, इसलिये इन सबको 'स-नीळाः' (स-नीडाः) कहा है। यहां—

यत्र विश्वं भवत्येक-नीडम्। (यजु० ३२।८)
यत्र विश्वं भवत्येक-रूपम्। (अथर्व० २।१।१)

इन मंत्रोंमें '**एक-नीडं**' और '**एक-रूपं**' ये शब्द देखने योग्य हैं। '**स-नीळ, स-नीड, एक-नीड, एक-रूप**' ये सब शब्द 'सबका एक ही आश्रयस्थान है,' ऐसा बता रहे हैं।

इस विचारसे पता लग जायगा कि (१) अनंत रुद्रोंका जन्म, (२) उनको पुत्र कहना, (३) उनकी माताका वर्णन, (४) उनके गर्भधारणका वर्णन यहां है।

रुद्रके पुत्र मरुत् हैं। मरुतोंके विषयमें श्री सायणाचार्य लिखते हैं कि '**मनुष्यरूपा वा मरुतः। पूर्वं मनुष्याः संतः पश्चात् सुकृतविशेषेण ह्यमरा आसन्।**' मरुत् पहिले मनुष्य ही होते हैं, परंतु उत्तम प्रशस्त कर्म करनेके कारण जो अमर बनते हैं (ऋ० सायणभाष्य, मं. १०, सू. ७७, मं.२) इस प्रकार मरुतोंके मनुष्यरूप होनेमें शंका ही नहीं है। मनुष्योंके अतिरिक्त भी मरुतोंका अर्थ है, उसका विचार मरुतदेवताके ग्रंथमें किया गया है। अब मरुतोंके मनुष्य होनेके विषयमें वेदका प्रमाण देखिए—

अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टय आत्वेषमुग्रमव ईमहे वयम्। ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः॥ (ऋ. ३।२६।५)

"(ते रुद्रियाः मरुतः) वे रुद्रके पुत्र मरुत् (अग्नि-श्रियः) अग्निके समान तेजस्वी, (स्वानिनः) उत्तम शब्द बोलनेवाले, (सिंहा न हेषक्रतवः) सिंहके समान गंभीर शब्द करनेवाले, (वर्ष-निर्णिजः) वृष्टिके द्वारा शुद्ध होनेवाले, (सु-दानवः) उत्तम दान करनेवाले, (विश्वकृष्टयः) सर्व-मनुष्य हैं। (वयं) हम सब (त्वेषं उग्रं अवः) तेजस्वी शौर्यमय संरक्षण उनसे (आ ईमहे) प्राप्त करते हैं।"

इस मंत्रमें '**विश्व-कृष्टि**' शब्द अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। '**कृष्टि**'- शब्दका अर्थ- (१) मनुष्यमात्र, मानवजाति है। (२) देशनिवासी राष्ट्रीय जनता। '**विश्व-कृष्टिः**'= (विश्व+ जन=सर्व+जन) सब मनुष्य, मनुष्यमात्र, मनुष्यजाति।

यहां कई शंका करेंगे कि मानवजातिके विषयका उल्लेख वेदमें कहां है ? वैदिक धर्म '**वैयक्तिक**' होनेके कारण उसमें '**सार्व-जनिक भाव**' नहीं होगा। इस शंकाका उत्तर देनेके लिये यहां सार्वजनिक भाव बतानेवाले कुछ वैदिक शब्दोंका उल्लेख करना चाहिए। देखिए निम्न शब्द—

(१) **विश्व-कृष्टिः** = (सर्व-मनुष्य)= मानवजाति।
(२) **विश्व-चर्षणिः** =(सर्व-जन)= सब लोक, मनुष्य, मनुष्यमात्र, मानवजाति।
(३) **विश्व-जनः**= (सर्व-जन)= मानवजाति।
(४) **विश्व-मनुष्यः** } =(सर्व-मनुष्य)= मनुष्यमात्र।
(५) **विश्व-मानुषः** }

(६) **विश्वा-नरः**= (सर्व-नर)= सब मनुष्य ।

(७) **पंच-जनाः**= ज्ञानी, शूर, व्यापारी, कारीगर और साधारण लोक । ये पांच प्रकारके लोक मिलकर सब जनता होती है ।

इस तरह सार्वजनिक भावोंकी विस्तारपूर्वक कल्पना वेदमें ही स्पष्ट है । वैदिक धर्म '**सार्वजनिक भावका धर्म**' ही है।

प्रस्तुत मंत्रमें '**विश्व-कृष्टि**' शब्द 'मानव-जाति' का भाव बता रहा है । मरुतोंका अथवा रुद्र-पुत्रोंका अर्थात् छोटे छोटे असंख्य रुद्रोंका स्वरूप 'विश्व-कृष्टि' शब्दने बताया है । इस प्रकार अनेक रुद्र ये अनंत मानवप्राणी हैं, यह बात सिद्ध हो गई । 'मर्य' शब्दसे साधारण मर्त्य अर्थात् मरणधर्मवाले प्राणिमात्र, ऐसा भी भाव निकल सकता है । इसका निश्चय अब करेंगे ।

अनेक रुद्रोंकी संख्या ।

इस अनंत रुद्रोंकी संख्याके विषयमें वाजसनेय यजुर्वेदमें निम्न लिखित मंत्र देखने योग्य है—

असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम् ।
(यजु. १६।५४)

"असंख्यात हजार (ये रुद्राः) जो रुद्र (भूम्यां अधि) पृथ्वी पर हैं ।" अर्थात् ये अनेक रुद्र अनंत हजार इस पृथ्वीपर हैं। प्राणियोंकी संख्या किसी समयमें भी पृथ्वीपर निश्चित नहीं कही जा सकती । क्योंकि प्राणियोंकी संख्या अनेक कारणोंसे बढ भी सकती है और घट भी सकती है। इस हेतुसे यहां निश्चित संख्या नहीं कही, परंतु 'अनंत हजार' ऐसा ही कहा है । इससे वेदके शब्दोंका अद्भुत महत्त्व ज्ञात हो सकता है ।

यजुर्वेद वाजसनेय संहिता अ० १६ में रुद्रोंके कई नाम लिखे हैं । यह अध्याय काण्व संहितामें १७ वां है । और तैत्तिरीय संहितामें यही रुद्राध्याय ४।५।१।१ में है । अब इन रुद्रोंका वर्गीकरण करना है । परंतु इससे पूर्व '**रुद्र**' शब्दका भाष्यकार आचार्योंका किया हुआ अर्थ अवश्य देखना चाहिए । क्योंकि उन अर्थोंको देख कर ही हम रुद्रोंके वर्ग बना सकते हैं ।

रुद्रके विषयमें श्रीसायणाचार्यजीका मत ।

श्री सायणाचार्यजीने चारों वेद और सब मुख्य ब्राह्मणोंपर भाष्य किया है । इनका भाष्य विशेषतया याज्ञिक पद्धतिके अनुसार है । इस लिये इनका भाष्य देखनेसे याज्ञिक-संप्रदायवालोंका मत

ज्ञात हो सकता है । अब देखिए श्री सायणाचार्यजी 'रुद्र' के विषयमें क्या कहते हैं—

ऋग्वेद-भाष्य ।

१. रुद्रस्य कालात्मकस्य परमेश्वरस्य । (ऋ. ६।२८।७)
२. रुद्राय क्रूराय अग्नये । (ऋ १।२७।१०)
३. रुत् दुःखं तद्धेतुभूतं पापं वा । तस्य द्रावयितारौ रुद्रौ । संग्रामे भयंकरं शब्दयन्तौ वा ॥ (ऋ. १।१५८।१)
४. रुद्राणां......प्राणरूपेण वर्तमानानां मरुतां । यद्वा । रोदयितॄणां प्राणानां । प्राणा हि शरीरान्निर्गता-सन्तो बंधुजनान् रोदयन्ति ॥ (ऋ. १।१०१।७)
५. रुद्राणां रोदनकारिणां शूरभटानां वर्तनिर्मार्गो धाटीः रूपो ययोस्तौ रुद्रवर्तनी। (ऋ. १।३।३)
६. रोदयन्ति शत्रूनिति रुद्राः । (ऋ. ३।३२।३)
७. रुद्रौ संग्रामे रुदन्तौ । (ऋ. ८।२६।५)
८. हे रुद्र ! ज्वरादिरोगस्य प्रेक्षणेन संहर्तर्देव । (ऋ. १।१६९।१)
९. रुद्रियं सुखं । (ऋ. २।११।३)
१०. रुद्रियं रुद्रसंबंधि भेषजं । (ऋ. १।४३।२)

अथर्ववेद-भाष्य ।

१. रोदयति सर्वं अंतकाले इति रुद्रः संहर्ता देवः । (अथर्व. १।१९।३)
२. रौति शब्दायते तारकं ब्रह्म उपादिशतीति रुद्रः । तथा च जाबालश्रुतिः । 'अत्र हि जन्तोः प्राणे-षूत्क्रामत्सु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे ॥ (जाबा. उ. १) (अथर्व. २।२७।६)
३. तस्मै जगत्स्रष्ट्रे सर्वं जगदनुप्रविष्टाय रुद्राय । (अथर्व. ७।९२।१)
४. रुत् दुःखं दुःखहेतुर्वा तस्य द्रावको देवो रुद्रः परमेश्वरः । (अथर्व. ११।२।३)
५. सर्वप्राणिनो मामनिष्ट्वा विनश्यन्ति इति स्वयं रौति रुद्रः । (अथर्व. १८।१।४०)
६. स्वसेवकानां दुःखस्य द्रावकत्वं (रुद्रस्य) । (अथर्व. १८।१।४०)
७. महानुभावं रुद्रं । (अथर्व. १८।१।४०)
८. रुद्रस्य हिंसकस्य देवस्य । (अथर्व. ६।५९।३)

अग्निके समान पवित्र (शुचयः) तेजस्वी और शुद्ध (सूर्य इव सत्वानः) सूर्यके समान सत्त्वशाली और (द्रप्सिनः न) वर्षा करनेवाले मेघोंके समान (घोर-वर्पसः) सुंदर और विशाल रूप धारण करनेवाले हैं।"

इस मंत्रमें रुद्रसंज्ञक जीवके गुणधर्म बताये हैं। इनमें '**मर्त्य**' शब्द आया है। प्राणी, शरीरधारी, मरणधर्मवाला, ऐसा उस शब्दका अर्थ है। जिन अनंत रुद्रोंमें एक महान् रुद्र व्यापक हो रहा है वे अनंत रुद्र '**अनंत मर्त्य**' प्राणी हैं; यह भाव इस मंत्रसे प्रकट हो रहा है। '**जनानां राजा रुद्रः**' ऐसा एक वचन पूर्व स्थलमें आया है। उसके साथ इस मंत्रका आशय '**मर्त्यानां पिता रुद्रः**' देखने योग्य है। एक ही भाव किस प्रकार भिन्न भिन्न प्रकारसे बताया गया है, यह यहां देखने योग्य है। इसी विषयका स्पष्टीकरण करनेवाले निम्न लिखित मंत्र यहां देखिए—

क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः ॥ १ ॥ न किर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अंग विद्रे मिथो जनित्रम् ॥ २ ॥ (ऋ० ७।५६)

"(अध) अजी ! (स्वश्वाः = सु-अश्वाः) उत्तम भोग भोगनेवाले, (स-नीळाः) एक आश्रयसे रहनेवाले और (व्यक्ताः नरः) अलग अलग दीखनेवाले पुरुष (के) कौन हैं ? वे (रुद्रस्य मर्याः) रुद्रके मर्त्य पुत्र हैं। (एषां जनूंषि) इनके जन्मका वृत्तांत (न किः वेद) कोई भी नहीं जानता ? हे (अंग) प्रिय ! (ते मिथः) वेही परस्पर एक दूसरेका (जनित्रं) जन्म (विद्रे) जानते हैं।"

इस मंत्रमें '**रुद्रस्य मर्याः**' रुद्रके मर्त्य पुत्रोंका वर्णन फिर आया है। इनमें अलग अलग व्यक्तित्व अर्थात् व्यक्तित्व, पृथक्त्व, इकाई है, इस लिये इनको 'व्यक्त' अर्थात् 'व्यक्ति-भाव' से युक्त कहा है। प्रकृति और पुरुष ऐसे जो दो भेद हैं, उनमें ये 'पुरुष' हैं, इसलिये मंत्रमें इनको '**नर**' कहा है। एक ईश्वरके आश्रयसे ये रहते हैं, इसलिये इन सबको 'स-नीळाः' (स-नीडाः) कहा है। यहां—

यत्र विश्वं भवत्येक-नीडम्। (यजु० ३२।८)
यत्र विश्वं भवत्येक-रूपम्। (अथर्व० २।१।१)

इन मंत्रोंमें '**एक-नीडं**' और '**एक-रूपं**' ये शब्द देखने योग्य हैं। '**स-नीळ, स-नीड, एक-नीड, एक-रूप**' ये सब शब्द 'सबका एक ही आश्रयस्थान है,' ऐसा बता रहे हैं।

इस विचारसे पता लग जायगा कि (१) अनंत रुद्रोंका जन्म, (२) उनको पुत्र कहना, (३) उनकी माताका वर्णन, (४) उनके गर्भधारणका वर्णन यहां है।

रुद्रके पुत्र मरुत् हैं। मरुतोंके विषयमें श्री सायणाचार्य लिखते हैं कि '**मनुष्यरूपा वा मरुतः। पूर्वं मनुष्याः संतः पश्चात् सुकृतविशेषेण ह्यमरा आसन्।**' मरुत् पहिले मनुष्य ही होते हैं, परंतु उत्तम प्रशस्त कर्म करनेके कारण जो अमर बनते हैं (ऋ० सायणभाष्य, मं. १०, सू. ७७, मं. २) इस प्रकार मरुतोंके मनुष्यरूप होनेमें शंका ही नहीं है। मनुष्योंके अतिरिक्त भी मरुतोंका अर्थ है, उसका विचार मरुत्देवताके ग्रंथमें किया गया है। अब मरुतोंके मनुष्य होनेके विषयमें वेदका प्रमाण देखिए—

अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टय आत्वेषमुग्रमव ईमहे वयम्। ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः॥ (ऋ. ३।२६।५)

"(ते रुद्रियाः मरुतः) वे रुद्रके पुत्र मरुत् (अग्नि-श्रियः) अग्निके समान तेजस्वी, (स्वानिनः) उत्तम शब्द बोलनेवाले, (सिंहा न हेषक्रतवः) सिंहके समान गंभीर शब्द करनेवाले, (वर्ष-निर्णिजः) वृष्टिके द्वारा शुद्ध होनेवाले, (सु-दानवः) उत्तम दान करनेवाले, (विश्वकृष्टयः) सर्व-मनुष्य हैं। (वयं) हम सब (त्वेषं उग्रं अवः) तेजस्वी शौर्यमय संरक्षण उनसे (आ ईमहे) प्राप्त करते हैं।"

इस मंत्रमें '**विश्व-कृष्टि**' शब्द अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। '**कृष्टि**'– शब्दका अर्थ– (१) मनुष्यमात्र, मानवजाति है। (२) देशनिवासी राष्ट्रीय जनता। '**विश्व-कृष्टिः**' = (विश्व+जन=सर्व+जन) सब मनुष्य, मनुष्यमात्र, मनुष्यजाति।

यहां कई शंका करेंगे कि मानवजातिके विषयका उल्लेख वेदमें कहां है ? वैदिक धर्म '**वैयक्तिक**' होनेके कारण उसमें '**सार्व-जनिक भाव**' नहीं होगा। इस शंकाका उत्तर देनेके लिये यहां सार्वजनिक भाव बतानेवाले कुछ वैदिक शब्दोंका उल्लेख करना चाहिए। देखिए निम्न शब्द—

(१) **विश्व-कृष्टिः** = (सर्व-मनुष्य) = मानवजाति।
(२) **विश्व-चर्षणिः** = (सर्व-जन) = सब लोक, मनुष्य, मनुष्यमात्र, मानवजाति।
(३) **विश्व-जनः** = (सर्व-जन) = मानवजाति।
(४) **विश्व-मनुष्यः**
(५) **विश्व-मानुषः** } = (सर्व-मनुष्य) = मनुष्यमात्र

(६) **विश्वा-नरः**= (सर्व-नर)= सब मनुष्य ।

(७) **पंच-जनाः**= ज्ञानी, शूर, व्यापारी, कारीगर और साधारण लोक । ये पांच प्रकारके लोक मिलकर सब जनता होती है ।

इस तरह सार्वजनिक भावोंकी विस्तारपूर्वक कल्पना वेदमें ही स्पष्ट है । वैदिक धर्म ' **सार्वजनिक भावका धर्म** ' ही है।

प्रस्तुत मंत्रमें ' **विश्व-कृष्टि** ' शब्द ' मानव-जाति ' का भाव बता रहा है । मरुतोंका अथवा रुद्र-पुत्रोंका अर्थात् छोटे छोटे असंख्य रुद्रोंका स्वरूप ' विश्व-कृष्टि ' शब्दने बताया है । इस प्रकार अनेक रुद्र ये अनंत मानवप्राणी हैं, यह बात सिद्ध हो गई । ' मर्य ' शब्दसे साधारण मर्त्य अर्थात् मरणधर्मवाले प्राणिमात्र, ऐसा भी भाव निकल सकता है । इसका निश्चय अब करेंगे ।

अनेक रुद्रोंकी संख्या ।

इस अनंत रुद्रोंकी संख्याके विषयमें वाजसनेय यजुर्वेदमें निम्न लिखित मंत्र देखने योग्य है—

असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम् ।
(यजु. १६।५४)

" असंख्यात हजार (ये रुद्राः) जो रुद्र (भूम्यां अधि) पृथ्वी पर हैं । " अर्थात् ये अनेक रुद्र अनंत हजार इस पृथ्वीपर हैं। प्राणियोंकी संख्या किसी समयमें भी पृथ्वीपर निश्चित नहीं कही जा सकती । क्योंकि प्राणियोंकी संख्या अनेक कारणोंसे बढ भी सकती है और घट भी सकती है। इस हेतुसे यहां निश्चित संख्या नहीं कही, परंतु ' अनंत हजार ' ऐसा ही कहा है । इससे वेदके शब्दोंका अद्भुत महत्त्व ज्ञात हो सकता है ।

यजुर्वेद वाजसनेय संहिता अ० १६ में रुद्रोंके कई नाम लिखे हैं । यह अध्याय काण्व संहितामें १७ वां है । और तैत्तिरीय संहितामें यही रुद्राध्याय ४।५।१।१ में है । अब इन रुद्रोंका वर्गीकरण करना है । परंतु इससे पूर्व ' **रुद्र** ' शब्दका भाष्यकार आचार्योंका किया हुआ अर्थ अवश्य देखना चाहिए । क्योंकि उन अर्थोंको देख कर ही हम रुद्रोंके वर्ग बना सकते हैं ।

रुद्रके विषयमें श्रीसायणाचार्यजीका मत ।

श्री सायणाचार्यजीने चारों वेद और सब मुख्य ब्राह्मणोंपर भाष्य किया है । इनका भाष्य विशेषतया याज्ञिक पद्धतिके अनुसार है । इस लिये इनका भाष्य देखनेसे याज्ञिक-संप्रदायवालोंका मत ज्ञात हो सकता है । अब देखिए श्री सायणाचार्यजी ' **रुद्र** ' के विषयमें क्या कहते हैं—

ऋग्वेद-भाष्य ।

१. रुद्रस्य कालात्मकस्य परमेश्वरस्य । (ऋ. ६।२८।७)
२. रुद्राय क्रूराय अग्नये । (ऋ १।२७।१०)
३. रुत् दुःखं तद्धेतुभूतं पापं वा । तस्य द्रावयितारौ रुद्रौ । संग्रामे भयंकरं शब्दयन्तौ वा ॥ (ऋ. १।१५८।१)
४. रुद्राणां......प्राणरूपेण वर्तमानानां मरुतां । यद्वा । रोदयितॄणां प्राणानां । प्राणा हि शरीरान्निर्गताः सन्तो बंधुजनान् रोदयन्ति ॥ (ऋ. १।१०१।७)
५. रुद्राणां रोदनकारिणां शूरभटानां वर्तनिर्मार्गो धाटीः रूपो ययोस्तौ रुद्रवर्तनी। (ऋ. १।३।३)
६. रोदयन्ति शत्रूनिति रुद्राः । (ऋ. ३।३२।३)
७. रुद्रौ संग्रामे रुदन्तौ । (ऋ. ८।२६।५)
८. हे रुद्र ! ज्वरादिरोगस्य प्रेक्षणेन संहर्तर्देव । (ऋ. १।१६९।१)
९. रुद्रियं सुखं । (ऋ. २।११।३)
१०. रुद्रियं रुद्रसंबंधि भेषजं । (ऋ. १।४३।२)

अथर्ववेद-भाष्य ।

१. रोदयति सर्वं अंतकाले इति रुद्रः संहर्ता देवः । (अथर्व. १।१९।३)
२. रौति शब्दायते तारकं ब्रह्म उपदिशतीति रुद्रः । तथा च जाबालश्रुतिः । ' अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रामत्सु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे ॥ (जाबा. उ. १) (अथर्व. २।२७।६)
३. तस्मै जगत्स्रष्ट्रे सर्वं जगदनुप्रविष्टाय रुद्राय । (अथर्व. ७।९२।१)
४. रुत् दुःखं दुःखहेतुर्वा तस्य द्रावको देवो रुद्रः परमेश्वरः । (अथर्व. ११।२।३)
५. सर्वप्राणिनो मामनिष्ट्वा विनश्यन्ति इति स्वयं रौति रुद्रः । (अथर्व. १८।१।४०)
६. स्वसेवकानां दुःखस्य द्रावकत्वं (रुद्रस्य) । (अथर्व. १८।१।४०)
७. महानुभावं रुद्रं । (अथर्व. १८।१।४०)
८. रुद्रस्य हिंसकस्य देवस्य । (अथर्व. ६।५९।३)

९. रुद्रस्य ज्वराभिमानिदेवस्य हेतिः आयुधं। (अथर्व. ४।२१।७)

१०. रुद्रः रोदयिता शूलाभिमानी देवः। (अथर्व. ६।९०।१)

११. रोदयति उपतापेन अश्रूणि मोचयति इति रुद्रो ज्वराभिमानी देवः। (अथर्व. ६।२०।२)

१२. रोदयति शत्रूनिति रुद्रः। (अथर्व. ७।९२।१)

१३. रुद्रा रोदकाः। (अथर्व. ११।२।१०)

१४. रुद्राः रोदयितारः अन्तरिक्षस्थानीया देवाः। (अथर्व. १९।११।४)

१५. रुद्रः पशूनां अभिमन्ता पीडाकरो देवः। (अथर्व. ६।१४१।१)

ये 'रुद्र' शब्दके श्री सायणाचार्यजीके किये हुए अर्थ हैं। अब यजुर्वेदके भाष्यमें श्री उवटाचार्य और श्री महीधराचार्य क्या कहते हैं, देखिए—

श्री उवटाचार्यजीका 'रुद्र' विषयक मत।

१. रुद्रैः स्तोतृभिः। (यजु. भाष्य, ३८।१६)

२. रुद्रवर्तनी रुग्णवर्तनी। (य. १९।८२)

३. रुद्रौ शत्रूणां रोदयितारौ। (य. २०।८१)

४. रुद्रैः धीरैः। (य. ११।५५)

श्री महीधराचार्यजीका 'रुद्र' संबंधी मत।

१. रुद्रस्य शिवस्य। (वा. यजु. भाष्य १६।५०)

२. रुद्राय शंकराय। (य. १६।४८)

३. रुत् दुःखं द्रावयति रुद्रः।
रवणं रुत् ज्ञानं राति ददाति।
पापिनो नरान् दुःखभोगेन रोदयति। (य. १६।१)

४. रुद्रस्य क्रूरदेवस्य। (य. ११।१५)

५. रुत् दुःखं द्रावयति नाशयति रुद्रः। (य. १६।२८)

६. रुद्रो दुःखनाशकः। (य. १६।३९)

७. रोदयति विरोधिनां शतं इति रुद्रः। (य. ३।५७)

८. रुद्रौ शत्रूणां रोदयितारौ। (य. २०।८१)

९. रुद्रैः धीरैः बुद्धिमद्भिः। (य. ११।५५)

१०. रुद्रैः स्तोतृभिः। (य. ३८।१६)

११. रुद्रवर्तनी रुग्णवर्तनी भिषजौ अश्विनौ। (य. १९।८२)

१२. कदन्नभक्षणे चौर्ये वा प्रवर्त्य, रोगमुत्पाद्य, जनान् घ्नन्ति तेभ्यः पृथ्वीस्थेभ्यो अन्नायुधेभ्यो रुद्रेभ्यः॥ (य. १६।६६)

१३. कुवातेनान्नं विनाश्य वातरोगं वा उत्पाद्य जनान् घ्नन्ति। (य. १६।६५)

श्री स्वामी दयानंद सरस्वतीजीका रुद्रके विषयमें मत।

ऋग्वेद-भाष्य।

१. रुद्राय परमेश्वराय जीवाय वा॥......॥ रुद्रशब्देन त्रयोऽर्था गृह्यन्ते। परमेश्वरो जीवो वायुश्चेति। तत्र परमेश्वरः सर्वज्ञतया येन यादृशं पापकर्म कृतं तत्फलदानेन रोदयिताऽस्ति। जीवः खलु यदा मरणसमये शरीरं जहाति पापफलं च भुंक्ते तदा स्वयं रोदिति। वायुश्च शूलादिपीडा कर्मणा कर्मनिमित्तः सन् रोदयितास्ति। अत एते रुद्रा विज्ञेयाः। (ऋग्वेद. १।४३।१)

२. रुद्रः दुःखनिवारकः। (ऋ. २।३३।७)

३. रुद्रः दुष्टानां भयंकरः। (ऋ. ५।४६।२)

४. रुद्रः दुष्टदण्डकः। (ऋ. ५।५१।१३)

५. रुद्रः सर्वरोगदोषनिवारकः। (ऋ. २।३३।२)

६. रुद्रस्य रोगाणां द्रावकस्य निःसारकस्य। (ऋ. ७।५६।१)

७. रुद्रः रोगाणां प्रलयकृत्। (ऋ. २।३३।३)

८. रुद्रः कुपथ्यकारिणां रोदयिता। (ऋ. २।३३।४)

९. रुद्रस्य प्राणस्य वर्तनिः मार्गः ययोस्तौ रुद्रवर्तनी। (ऋ. १।३।३)

१०. रुद्रं शत्रुरोद्दारं। (ऋ. १।११४।४)

११. रुद्रस्य शत्रूणां रोदयितुर्महावीरस्य। (ऋ. १।८५)

१२. रुद्राणां प्राणानां दुष्टान् श्रेष्ठांश्च रोदयतां। (ऋ. १०।१०१७)

१३. रुद्र ! रुतः सत्योपदेशान् राति ददाति तत्संबुद्धौ। (ऋ. १।११४।३)

१४. रुद्रः अधीतविद्यः। (ऋ. १।११४।११)

१५. रुद्राय सभाध्यक्षाय। (ऋ. १।११४।६)

१६. रुद्रः न्यायाधीशः। (ऋ. १।११४।२)

१७. रुद्रियं रुद्रस्येदं कर्म। (ऋ. १।४३।२)

यजुर्वेद-भाष्य ।

१. रुद्रः परमेश्वरः । चतुश्चत्वारिंशद्वर्षकृतब्रह्मचर्यो विद्वान् वा । (यजु. ४।२०)
२. रोदयत्यन्यायकारिणो जनान् स रुद्रः । (य. ३।५७)
३. दुष्टानां रोदयिता विद्वान् रुद्रः । (य. ४।२१)
४. रुद्रः शत्रूणां रोदयिता शूरवीरः । (य. ९।३९)
५. रुद्रस्य शत्रुरोदकस्य स्वसेनापतेः । (य. ११।१५)
६. रुद्रः जीव । (य. ८।५८)
७. रुद्राः एकादशप्राणाः । (य.२।५)
८. रुद्राः प्राणरूपा वायवः । (य. ११।५४)
९. रुद्रा बलवंतो वायवः । (य. १५।११)
१०. रुद्राः सजीवा अजीवाः प्राणादयो वायवः । (य. १६।५४)
११. रुद्रा मध्यस्थाः । (य. १२।४४)
१२. रुद्रा रुद्रसंज्ञका विद्वांसः । (य. ११।५८)
१३. रुद्रः राजवैद्यः । (य. १६।४९)
१४. रुद्रस्य सभेशस्य । (१६।५०)

इस तरह भाष्य में अर्थ हैं ।

यजु० अ० १६ में रुद्रवाचक अनेक पद आये हैं । इनकी संख्या लगभग २४० है ।

(१) विश्व-रूप, (२) विद्युत्, (३) वायु, (४) वृक्ष, (५) गृत्स, (६) मंत्रिन्, (७) भिषक्, (८) सभा, (९) सभापति, (१०) स्थ-पति, (११) सेनानी, (१२) सेना, (१३) इषु-कृत्, (१४) रथी, (१५) वणिज्, (१६) किरिक, (१७) तक्षन्, (१८) परि-चर, (१९) स्तेन, (२०) प्रतरण, (२१) श्वन्, (२२) तल्प्य।

ये सब रुद्र ही हैं- (१) सर्वव्यापक ईश्वर, (२) बिजुली, (३) वायु, (४) वृक्ष, (५) विद्वान्, (६) दिवाण, (७) वैद्य, (८) सभा, (९) सभापति, (१०) राजा, (११) सेनापति, (१२) सेना, (१३) शस्त्र बनानेवाला, (१४) वीर, (१५) बनिया, (१६) किसान, (१७) बढई, (१८) नौकर, (१९) चोर, (२०) धोखेबाज, (२१) कुत्ता, (२२) खटमल; इन सबको यहां रुद्र ही कहा है, इस सबमें ' **रुद्रत्व** ' है यह निश्चित है।

' **रोदयति इति रुद्रः** ' (जो दूसरोंको रुलाता है, वह रुद्र है) यह रुद्र शब्दका एक अर्थ है । दूसरोंको रुलानेका धर्म रुद्रमें है, यह बात इस अर्थसे सिद्ध होती है । रुलानेका तात्पर्य कष्ट अथवा दुःख देना है । देखिए—

(१) **रोदयति शत्रून् इति रुद्रः महा-वीरः ।**
(२) **रोदयति दुष्टान् इति रुद्रः न्यायाधीशः ।**
(३) **रोदयति धनिकान् इति रुद्रः चोरः ।**
(४) **रोदयति निद्राक्रान्तान् इति रुद्रः तल्प्य-कीटः ।**

(१) शत्रुओंको रुलानेके कारण शूरको रुद्र कहते हैं । (२) दुष्टोंको रुलानेके कारण न्यायाधीशको रुद्र कहते हैं । (३) धनिकोंको रुलानेके कारण चोरको रुद्र कहते हैं । (४) सोनेवालोंको रुलानेके कारण खटमलको रुद्र कहते हैं ।

उक्त चार विग्रहोंमें क्रमशः ' **(१) शत्रून्, (२) दुष्टान्, (३) धनिकान्, (४) निद्राक्रान्तान्।** ' इन चार पदोंका अध्याहार अर्थात् कल्पना की है । और उस कल्पनाके अनुसार ' रुद्र ' शब्दके चार भिन्न भिन्न अर्थ किये हैं । जहां जैसा पूर्वापर संबंध होगा, वहां वैसा अर्थ लेना उचित है ।

उक्त चार अर्थोंमें ' **रुलानेका धर्म** ' सबमें समान है । यही यहां ' **रुद्रत्व** ' है । ' **रोदयितृत्वं रुद्रत्वं** ' रुलानेका धर्म ही रुद्रपन है, ऐसा हम यहां कह सकते हैं । जहां जहां ' रुलानेका गुण ' होगा, वहां वहां रुद्रत्व होगा, यह इस विवरण का तात्पर्य है ।

इस प्रकार अन्य स्थानोंमें भी समझना चाहिए । यह बात स्पष्ट है कि इस अर्थमें ' स्वयं दुःखका अनुभव करना रुद्रपनका लक्षण ' है । दूसरोंको रुलाना अथवा स्वयं रोना ये दोनों रुद्रके लक्षण हैं । इन दोनों अर्थोंको लेनेसे पूर्वोक्त रुद्रवाचक अनेक शब्दोंमेंसे कई शब्दोंका मूल आशय खुल जाता है और इस बातका निश्चय होता है, कि इनको रुद्र क्यों कहा गया है ।

' **रुद्र** ' के इतने ही लक्षण नहीं हैं । ' **रुतं ज्ञानं तत् ददाति इति रुद्रः** । ' जो ज्ञानको उपदेश द्वारा देता है, वह रुद्र होता है । इस अर्थको लेनेसे ' **ज्ञानी, उपदेशक, गुरु, व्याख्यानदाता** ' ये रुद्र हैं, ऐसा प्रतीत होगा । पूर्वोक्त शब्दोंमें ' अधिवक्ता ' शब्द इसी अर्थका प्रकाश करनेवाला है । ' श्रुत, गृत्स, मंत्रिन् ' ये भी शब्द इसी भावको बतानेवाले हैं । ' **ज्ञानदातृत्वं रुद्रत्वं** ' दूसरोंको उपदेश करनेका रुद्रका धर्म है, ऐसा इस अर्थसे सिद्ध होता है ।

' **रुद् दुःखं द्रावयति विनाशयति इति रुद्रः** । ' रुत् अर्थात् दुःख, उसका जो नाश करता है, वह रुद्र कहलाता है । ' क्षत्र ' शब्दका अर्थ ' क्षतात् त्रायते ' जो दुःखसे बचाता है,

ऐसा होता है। यह रुद्रका एक अर्थ है।

रुद्+द्र= दुःखको दूर करनेवाला।

क्षत्+त्र= दुःखसे बचानेवाला।

ये दोनों शब्द बिलकुल समान अर्थवाले हैं। इसलिये क्षत्रिय-वाचक शब्द रुद्रके लिये आये हैं। इस बातको पूर्वोक्त वीरवर्गमें पाठक देख सकते हैं।

'रुद् रोगं राति ददाति इति रुद्रः रोगोत्पादकः।' जो रोगोंको उत्पन्न करता है, उसको रुद्र कहते हैं। बुरी हवा, सडा हुआ जल, दुर्गन्धयुक्त भूमि, कुपथ्य आदि सब इस अर्थके कारण रुद्र होते हैं। 'रुत्' शब्दके दुःख और रोग ऐसे अर्थ कोशोंमें हैं। रोग उत्पन्न करना यह रुद्रका कार्य कई मंत्रोंमें वर्णन किया है, उनमेंसे एक मंत्र यहां देखिए—

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्।

(यजु. अ. १६।६२)

'(ये) जो रुद्र (अन्नेषु) अन्नोंमें और (पात्रेषु) बर्तनोंमें प्रविष्ट होकर (पिबतः जनान्) जल पीनेवाले मनुष्योंको (विविध्यन्ति) अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं।' यह रुद्रका वर्णन विशेष प्रकारसे देखने योग्य है। इसी मंत्रके भाष्य देखिए—

श्री सायणाचार्य— ये रुद्रा अन्नेषु भुज्यमानेषु स्थिताः सन्तो जनान् विविध्यन्ति, विशेषेण ताडयन्ति। धातुवैषम्यं कृत्वा रोगान् उत्पादयन्ति इत्यर्थः। तथा पात्रेषु पात्रस्थक्षीरोदकादिषु स्थिताः सन्तः क्षीरादिपानं कुर्वतो जनान् विविध्यन्ति। अन्नोदकभोक्तारो व्याधिभिः पीडनीया इति भावः॥ (काण्वयजु. १७।७।१६)

श्री महीधराचार्य— (पूर्ववत्)

श्री उवटाचार्य— ये अन्नेषु अवस्थिताः विविध्यन्ति अतिशयेन विध्यन्ति ताडयन्ति। येषामयमधिकारः अन्नस्य भक्षयितारो व्याधिभिर्गृहीतव्या इति इ०॥

उक्त आचार्य-मतका तात्पर्य— ये रुद्र अन्न और पानीमें प्रविष्ट होकर उस अन्नको खानेवाले और उस पानीको पीनेवाले लोगोंमें रोग उत्पन्न करते हैं।

रोग उत्पन्न करना रुद्रोंका कर्म है। रोगजन्तुओंका यह वर्णन है। **'रोग-जन्तु'** अन्नके द्वारा और जलके द्वारा शरीरमें प्रविष्ट होकर शरीरमें नाना प्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं, यही भाव उक्त मंत्रका है। इसलिये रोगबीजोंका नाम रुद्र हुआ है। रोगजंतु किस प्रकारके होते हैं और कहां रहते हैं, इस बातका ज्ञान पूर्वोक्त अध्यायमें **'जन्तुवर्ग'** के रुद्रवाचक शब्दोंके अर्थोंका विचार करनेसे स्पष्टतया हो सकता है।

तात्पर्य इस प्रकार रुद्रोंके लक्षण हैं। यहां नमूनेके लिये थोडेसे दिये हैं। विशेष विचार करनेके लिये पूर्वोक्त आचार्योंके अर्थोंका मनन करना उचित है। इन अर्थोंको देखनेसे **'रुद्रत्व'** की कल्पना हो सकती है। अर्थात् **'रुद्र'** यह कोई एक ही पदार्थ नहीं है, परंतु यह अनेक कल्पनाओंका समूहवाचक शब्द है।

जिस प्रकार 'प्राणी' कहनेसे 'मनुष्य, घोडा, गाय, चूहा' आदि का बोध होता है अथवा 'मनुष्य' कहनेसे 'ज्ञानी, शूर, व्यापारी' आदि जनोंका बोध होता है, इसी प्रकार 'रुद्र' कहनेसे 'ज्ञानी, शूर, दुष्ट, सज्जन' आदिका बोध होता है। परंतु ये सब प्रत्यक्षमें एक नहीं हैं, इनमें भिन्नत्व है। इस भिन्नत्वका स्वरूप यहां बताया है और इस समयतक के संपूर्ण विवरणमें भी इसी भिन्नत्वका रूप स्पष्ट किया है।

श्री भ० गीताके विभूतियोगके साथ तुलना।

श्रीमद्भगवद्गीताके १० अध्यायमें 'विभूतियोग' कहा है। उसका थोडासा भाग देखिए—

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्॥२३॥
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः॥२५॥
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्॥३०॥
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्॥३२॥
द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥३६॥
वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पांडवानां धनंजयः॥३७॥
यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्॥४१॥
अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन॥
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥४२॥

(श्री भ० गी० अ० १०)

"रुद्रोंमें मैं शंकर, यक्ष और राक्षसोंमें मैं कुबेर, वसुओंमें मैं पावक, चोटियोंवाले पहाडोंमें मैं मेरुपर्वत हूं। यज्ञोंमें जपयज्ञ, स्थिर पदार्थोंमें हिमालय, मृगोंमें सिंह, पक्षियोंमें गरुड, विद्याओंमें आत्मविद्या और वक्ताओंका भाषण मैं ही हूं। **कपटियोंका द्यूत** अर्थात् **जूआ,** तेजस्वियोंका तेज, वृष्णियोंमें वासुदेव, पांडवोंमें अर्जुन **मैं हूं।** जो जो विशेष ऐश्वर्ययुक्त,

शोभायुक्त और उच्च तत्त्व होगा, वह सब मेरे ही अंशसे हुआ है, ऐसा तुम जानो। अथवा इतने विस्तारसे कहनेकी क्या आवश्यकता है? सारांशरूपसे इतना ही कहना पर्याप्त है कि एक अंशसे सब जगत् व्यापकर मैं रहा हूं।'

जगत्में जो जो ऐश्वर्ययुक्त सत्त्व होता है, वह परमेश्वरके अंशसे होता है, ऐसा यहां कहा है।

इसी 'विभूतियोग' के समान 'रुद्रको चोरके रूपमें मानना' है। कई टीकाकारोंने इस रुद्राध्यायपर टीका करते हुए लिखा है कि चोर और डाकू भी रुद्रके रूप हैं। देखिए—

रुद्रो लीलया चोरादिरूपं धत्ते, यद्वा रुद्रस्य जगदात्मकत्वाच्चोरादयो रुद्रा एव ज्ञेयाः। यद्वा स्तेनादिशरीरे जीवेश्वररूपेण रुद्रो द्विधा तिष्ठति तत्र जीवरूपं स्तेनादिपदवाच्यं तदीश्वररुद्ररूपं लक्षयति यथा शाखाग्रं चन्द्रस्य लक्षकम्। किंबहुना लक्ष्यार्थविवक्षया मंत्रेषु लौकिकाः शब्दाः प्रयुक्ताः॥

(महीधरभाष्य य. अ. १६।२०)

"रुद्ररूपी जगदात्मा लीलासे चोरका रूप धारण करता है। अथवा रुद्र जगदात्मा होनेसे चोरादि सब रुद्र ही जान लीजिए। अथवा चोरादिकोंके शरीरमें जीव और ईश्वररूपसे रुद्र दो प्रकारका होकर रहता है, वहां चोर आदि शब्द जीवरूपके दर्शक होते हुए भी ईश्वररूपके बोधक होते हैं, जिस प्रकार शाखाके अग्रसे चंद्रमाका ज्ञान बताया जाता है। बहुत क्या कहना है? ईश्वरका ज्ञान देनेकी इच्छासे मंत्रोंमें बहुतसे लौकिक शब्द प्रयुक्त किये है।"

श्री सायणाचार्य भी अपने काण्व-यजु० अ० १७ के भाष्य में उक्त प्रकार ही कहते हैं। उक्त विषयमें सायण और महीधर की संमति एक जैसी ही है।

१. **छलयतां द्यूतं अस्मि** (गीता)-कपटीयोंका द्यूत मैं हूं।
२. **स्तेनानां पतिः अस्मि** (वेद)-चोरोंका स्वामी मैं हूं।
३. **स्तायूनां पतिः अस्मि।** (वेद)- ठगोंका मुखिया मैं हूं।
४. **तस्कराणां पतिः अस्मि।** (वेद)-डाकुओंका सरदार मैं हूं।
५. **मुष्णतां पतिः अस्मि।** (वेद)-लुटेरोंका श्रेष्ठ मैं हूं।

उक्त गीताके वचनमें '**रुद्राणां शंकरश्चास्मि।**' यह वाक्य है। 'अनंत रुद्रोंमें मैं एक शंकरनामक रुद्र हूं।' इन वाक्यमें रुद्रोंका अनंतत्व और शंकरका एकत्व सिद्ध है। यहां शंकर शब्दसे परमात्मा और रुद्र शब्दसे परमात्मासे उत्पन्न पूर्वोक्त इतर रुद्र लेना उचित है। इस प्रकार करनेसे इस वाक्यकी वेदके आशयके साथ संगति लग सकती है।

पं० जान डॉसनसाहबका मत।

'हिंदु-क्लासिकल डिक्शनरी' में पं० डॉसनसाहब लिखते हैं कि—

'He is the howling terrible god, the god of storms, the father of the Rudras or Maruts, and is sometimes identified with the god of fire. On the one hand he is a distructive deity who brings diseases upon men and cattle, and upon the other he is a beneficent deity supposed to have a healing influence. These are the germs which afterwards developed into the god Siva.'

(पृ. २६९)

'यह (रुद्र) गर्जना करनेवाला भयानक देव है, जो तूफानका देव है और जो रुद्रों अथवा मरुतोंका पिता है। कभी कभी इसका संबंध अग्निदेव के साथ जोडा जाता है। एक ओर यह देव सबका नाश करता है और प्राणियोंमें बीमारियाँ फैलाता है, तथा दूसरी ओर इसको सुखदायक और आरोग्य देनेवाला देव समझा जाता है। ये ही मूल अंकुर हैं कि जिनका विकास होकर आगे जाकर शिवजीका स्वरूप बना है।'

रुद्रको केवल बादलोंका देव पं० डॉसनसाहब मानते हैं। परंतु यदि वे 'रुद्र और मरुत्' के मूल अर्थोंकी थोडीसी भी खोज करते, तो उनको पता लगता कि '**रुद्र**' को '**जगतां पतिः**' अर्थात् 'अनंत ब्रह्मांडोंका स्वामी' कहा है। यह मंत्रों का विधान ये यूरोपियन पंडित देखते ही नहीं।

सर मोनिअर वुइलियमसाहबकी संमति।

यह साहब कहते हैं कि—

'Rudra, roarer, the god of tempests and father and ruler of Rudras and Maruts. (In Veda he is closely connected with Indra and still more with Agni, the god of fire ...... and also with Kala or time, the all-consumer with whom he is afterwards indentified; though

generally represented as a destroying deity... he has also the epithet Siva, ' benevolent or auspicious' and is even supposed to possess healing powers...... from his purifying the atmosphere; ....)'

(सर मो. वुइलियम का संस्कृत-इंग्लिश कोश)

' गरजनेवाला रुद्र तूफानोंका देव है और रुद्रों और मरुतोंका पिता और राजा है। (वेदमें रुद्र देवका इन्द्र और विशेष कर अग्निके साथ संबंध बताया है।...... बादमें सर्वभक्षक कालके साथ भी जोड दिया है। यद्यपि इसको संहारक देव समझा जाता है......तथापि यह कल्याणकारक और आरोग्यदायक भी वर्णन किया है। यह हवा को शुद्ध करता है।)'

एक ही परमेश्वर जगत्का उत्पादक, पालक, संहारक, कल्याणकारक, सुखदायक आदि अनंत गुणोंसे युक्त है। ये लोग इन सब गुणोंको रुद्र-वर्णनमें देखते हैं, परंतु रुद्रको ईश्वर माननेके समय झिझकते हैं।

श्री० म० आर्थर आंटोनी मॅक्डोनेल-साहबकी संमति।

'This god occupies a subordinate position in the Rig Veda being celebrated in only three entire hymhs, in part of another, and in one conjointly with Soma. His hand, his arms, and his limbs are mentioned. He has beautiful lips and wears braided hair. His colour is brown; his form is dazzling, for he shines like the radiant sun, like gold...... he holds the thunderbolt in his arm, and discharges his lightning shaft from the sky; but he is usually said to be armed with a bow & arrows, which are strong and swift.'

' Rudra is very often associated with the Maruts (i. 85). He is their father, and is said to have generated them from the shining under of the cow prishni.'

' He is fierce and destructive like a terrible beast, and is called a bull, as well as the ruddy (arusa) boar of heaven. He is exalted, strongest of the strong, swift, unassailable, unsurpassed in might. He is young and unaging, a lord (Ishana) and father of the world. By his rule and universal dominion he is aware of the doings of man and gods. He is bountiful (midhvams), easily invoked and auspicious (Shiva). But he is usually regarded as malevolent; for the hymns addressed to him chiefly express fear of his terrible shafts and deprication of his wrath.................. He is, however, not purely maleficent like a demon. He not only preserves from calamity, but bestows blessing. His healing powers are especially often mentioned; he has a thousand remedies, and is the greatest physician of physicians...............'

' The physical basis represented by Rudra is not clearly apparent. But it seems probable that the phenomènon underlying his nature was the storm. ....' [A Vedie Reader, pages 56-57]

' ......यह रुद्रदेव ऋग्वेदमें निम्न कोटिका देव है। क्योंकि संपूर्ण ऋग्वेदमें इसके लिये केवल तीन सूक्त ही हैं।...... उसके हात, बाहू और अवयवोंका वर्णन किया है। उसके होंठ सुंदर हैं, और वह जटाजूट धारण करनेवाला है। उसका बदामी रंग है और इसका आकार चमकीला है, क्योंकि तेजस्वी सूर्यके समान वह चमकता है...... मेघविद्युत् का वज्र वह हाथमें धरता है, और आकाशसे तेजस्वी बाण मारता है, परंतु बहुत करके धनुष्यबाण धारण करता है, ऐसा ही कहा गया है...'

' रुद्रका मरुतोंके साथ बहुत संबंध बताया है। वह उनका पिता है और पृश्निनामक गायके चमकीले गर्भस्थानसे मरुतोंकी उत्पत्ति की गई है, ऐसा कहा गया है।'

' क्रूर पशुके समान भयानक और विनाशक वह रुद्र है। और उसको बैल कहते हैं, तथा उसको स्वर्गका लाल सुवर कहा है। वह बडा उच्च, बलवानोंमें बलवान्, चपल, न दबनेवाला और सबसे प्रबल है। वह तरुण और वृद्धावस्थासे रहित है। वह सबका राजा और जगत्का पिता है। सब मनुष्य और सब देवताओंके सब कर्मोंको वह जानता है, क्योंकि उसका राज्य

और उसका शासन सर्व जगत्में है । वह दानशूर, कल्याणमय और सुलभतासे संतुष्ट होनेवाला है । परंतु बहुधा ऐसा समझा जाता है कि वह बडा द्रोही है, क्योंकि जिन सूक्तोंसे उनकी प्रार्थना की गई है, उन सूक्तोंमें उसके क्रोधकी भीति और उसके शस्त्रोंका डर व्यक्त हुआ है । ...... परंतु वह राक्षसके समान अत्याचारी नहीं है । वह कष्टोंसे न केवल बचाता है, परंतु आशीर्वाद भी देता है । उसकी आरोग्यवर्धनकी शक्तियोंका वर्णन आया है और उसके पास हजारों दवाइयां हैं और वह वैद्योंमें बडा वैद्य है ... .. । '

' रुद्रके द्वारा जिस पांचभौतिक घटनाका वर्णन हुआ है, वह घटना स्पष्ट रीतिसे ज्ञात नहीं होती । परंतु यह संभव है कि उसके स्वभावके नीचे जो पांचभौतिक घटना है, वह बहुधा तूफानी अवस्था होगी ...... '

(वैदिक रीडर, पृ. ५६-५७)

युरोपियन पंडितोंकी ये ही संमतियां है । अन्य अनेक पंडितोंने रुद्र देवताके विषयपर बहुतसा लिखा है, परंतु उसका मुख्य अंश उक्त संमतियोंमें हैं । इसलिये और अधिक संमतियां न देता हुआ मैं इनकी ही समालोचना करता हूं । उक्त संमतियां देखनेसे निम्न मत प्रतीत होते हैं—

(१) रुद्रका दर्जा बहुत नीचे है, क्योंकि उसके लिये थोडे सूक्त हैं ।

(२) उसके अवयवोंका और रंगरूपका वर्णन होनेसे वह साकार है ।

(३) धनुष्यबाणका वर्णन होनेसे वह शस्त्रधारी साकार है ।

(४) रुद्र मरुतोंका पिता है और पृश्निनामक गायसे मरुतोंकी उत्पत्ति हुई है ।

(५) रुद्र देव क्रूर, द्रोही, भयानक है, परंतु राक्षसके समान अत्याचारी नहीं है ।

(६) वह उच्च, श्रेष्ठ, सर्वशक्तिमान्, चपल, न दबनेवाला, सबसे प्रबल, तेजस्वी, सर्वज्ञ, दाता, मंगलमय और संतुष्ट है । वह सब जगत्का पिता और राजा है ।

(७) यह आरोग्यदाता और रोग दूर करनेवाला है ।

(८) रुद्रके वर्णनके बीचमें जो नैसर्गिक घटना है, वह गुप्त है, उसका पता नहीं लगता । परंतु वह घटना बहुधा तूफानकी हवा होगी ।

(९) वह बैल और दिव्य सुवर कहा गया है ।

(१०) रुद्र मेघस्थानकी बिजुली है ।

अब हम रुद्रसूक्तका थोडासा विचार करते हैं—

पौराणिक रुद्र और वैदिक रुद्र ।

पुराणोंमें आया हुआ रुद्रका वर्णन और वेदका रुद्रका वर्णन कई अंशोंमें भिन्न है । देखिए—

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राऽम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा । एष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः ॥ (यजु० ३।५७)

' हे रुद्र ! यह तेरा भाग है । अपनी बहन अंबिकाके साथ उसका सेवन करो । यह तेरा भाग है और चूहा तेरा पशु है । '

यहां इतना ही बताना है कि वेदमें अंबिका रुद्रदेवकी बहन कही है, परंतु पुराणोंमें उसकी धर्मपत्नी कही है । तथा रुद्रका पशु चूहा इस मंत्रमें बताया है । परंतु पुराणोंमें चूहा गणपतिका पशु कहा है । यह भेद देखने योग्य है । तथा—

भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय । ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ (अथर्व. ११।२।१४)

' भव और शर्व ये दोनों (सयुजा) साथ रहनेवाले मित्र, (संविदानौ) उत्तम ज्ञानवाले हैं । (उभौ उग्रौ) दोनों प्रतापी हैं, वे (वीर्याय चरतः) वे पराक्रम करनेके लिये चलते हैं । (यतमस्यां दिशि) जिस किसी दिशामें वे होंगे, उनको हमारा नमस्कार है । '

इससे ' भव और शर्व ' ये परस्पर भिन्न हैं, परंतु साथ रहनेवाले और बडा पराक्रम करनेवाले हैं, ऐसा पता लगता है । पुराणमें ये दोनों शब्द एक ही रुद्रके लिये आये हैं ।

' भव ' का अर्थ ' उत्पन्नकर्ता ' है और ' शर्व ' का अर्थ ' प्रलय करनेवाला ' है । परमात्मामें ये दोनों गुण होनेसे वहां इनकी भिन्नता लुप्त होती है, ऐसा भी माना जा सकता है । इसलिये यह भिन्नत्व और एकत्व विशेष विचारसे सोचना चाहिए ।

रुद्रका शरीर ।

शिवपुराणमें निम्न श्लोक ' रौद्री तनुः ' अर्थात् रुद्रके शरीरके विषयमें आते हैं, रुद्रका विचार करनेके समय इसका भी विचार करना उचित है—

अग्निरित्युच्यते रौद्री घोरा या तैजसी तनुः ।
सोमः शाक्तोऽमृतमयः शक्तेः शांतिकरी तनुः ॥३॥
विविधा तेजसे वृत्तिः सूर्यात्मा च जलात्मिका ।
तथैव रसवृत्तिश्च सोमात्मा च जलात्मिका ॥४॥
वैद्युतादिमयं तेजः मधुरादिमयो रसः ।
अग्नेरमृतनिष्पत्तिरमृताद्ग्निरेधते ॥ ५ ॥

अग्नितत्त्वको रुद्रका भयानक तैजस् शरीर कहते हैं । तथा जलमय सोमतत्त्वको शक्तिका-(रुद्रपत्नी)-शांतिकारक शरीर कहते हैं । तेजके तत्त्व अनेक प्रकारके हैं तथा जलके तत्त्व भी विविध हैं । विद्युत् आदि तेज हैं और मधुर आदि रस हैं । अग्नि से जलकी उत्पत्ति और जलसे अग्निका प्रकाश होता है । ' इस प्रकार सब जगत् ' तैजस् उग्र शक्तिके साथ जलात्मक शांत शक्तिके वास्तव्य ' से होता है ।

उक्त वर्णनका तात्पर्य इतना ही है कि, इस जगत्में दो शक्तियां हैं, (१) एक तेजस शक्ति गति उत्पन्न करनेवाली है; (२) दूसरी शांति करनेवाली एक शक्ति है । इन दो शक्तियोंसे यह जगत् चल रहा है । दोनों शक्तियां कार्य कर रहीं हैं । पहिली रुद्र शक्ति है और दूसरी रुद्रकी धर्मपत्नी है । इसलिये इन को जगत् के माता पिता कहते हैं ।

रुद्र	अंबिका
महादेव	पार्वती
अग्नि	जल
सूर्य	चंद्र
अग्नि	सोम

इत्यादि शब्दोंसे उक्त आशयका पता लग सकता है । आशा है कि इस विधानका भी पाठक विचार करेंगे ।

खोजका विषय ।

' रुद्र ' देवताका परिचय देनेके लिये बहुतसा रुद्रविषयक ज्ञान इस निबंधमें एकत्रित किया है । अभी बहुतसे बातोंका संशोधन करना है । आशा है कि पाठक इन बातोंका विचार करेंगे और रुद्रत्वका निश्चय करनेके लिये अन्य ग्रंथोंका संशोधन करके अधिक ज्ञान प्रकाशित करेंगे ।

रुद्रदेवताका यजुर्वेदोक्त विश्वरूप ।

यह रुद्रसूक्त यजुर्वेद-संहिता में है । वाजसनेयी संहिता का १६ वां अध्याय; काण्वसंहिताका १७ वां अध्याय; मैत्रायणी संहिताका काण्ड २, प्रपाठक ९; काठकसंहिताका १७,१३-१४; कपिष्ठल कठ संहिता का २७,३-४; तैत्तिरीय संहिताका कां. ७।५।४-५ रुद्रदेवता के वर्णन के लिये ही प्रसिद्ध हैं । जो सूक्त हम यहां आज विचार करनेके लिये लेना चाहते हैं, वह इतनी संहिताओं में प्रमाणत्वेन विद्यमान है ।' इस अध्याय में रुद्रदेवताका बडा विस्तृत वर्णन है ।

यहां विचार करनेके लिये हम वा० यजु० अ० १६ के १७-४६ और ५४ ये ३१ मंत्र लेते हैं ।

यहां कई रुद्रों के नाम गिनाये हैं । इन मन्त्रों में नाम ही नाम गिनाये हैं । इन नामों के हम नीचे वर्ग करके बता देते हैं, जिन से पाठकों को पता लगेगा कि, वे सब रुद्र किन किन वर्गों में संमिलित होने योग्य हैं । इन में से जो मानवों में संमिलित होनेयोग्य हैं, उन के वर्ग वे हैं—

मानवरूपोंमें रुद्र ।
(ज्ञानी पुरुष)

पूर्वोक्त मन्त्रों में जो ज्ञानी-वर्ग के रुद्र हैं, उनकी नामावलि यह है । ज्ञानी-वर्गके रुद्रोंको ब्राह्मणवर्ग के रुद्र कहा जा सकता है ।

१. **गृत्स** = ज्ञानी, कवि, एक ऋषि [२५]
२. **गृत्सपति** = ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, गृत्सों का अधिष्ठाता [२५]
३. **श्रुत** = विख्यात, प्रसिद्ध, विद्वान्, श्रुति का वेत्ता [३५]
४. **पुलस्ति** = विद्वान्, ऋषि [४३]
५. **रुद्र** = [रु] शब्द शास्त्र का [द्र] पारंगत, ज्ञानी [१८]
६. **उद्गुरमाण** = उत्तम ज्ञानका उपदेश देनेवाला, वक्ता [४६]
७. **अधिवक्ता** = [वा० य० १६।५] = उपदेशक, अध्यापक, वक्ता ।
८. **मंत्री** = राजा का मन्त्री, दिवान, सलाहगार, सुविचारी, बुद्धिमान्, चतुर, हित की मंत्रणा देनेवाला [१९]
९. **देवानां हृदयः** = देवताओंके लिये जिसने अपना हृदय दिया है, भक्त, प्रेमी, साधु, सज्जनों की सेवा करनेवाला [४६]
१०. **भिषक्, दैव्यो भिषक्** = दिव्य वैद्य [वा० य० १६।५], आयुर्बृध [६०] आयुष्य की वृद्धि करनेवाला ।

११. ओषधीनां पतिः = औषधियां अपने पास रखनेवाला [१९]
१२. सभा = सभा, परिषद्, विविध सभाओं के सभासद [२४]
१३. सभापतिः = सभा का अध्यक्ष, परिषद् का प्रमुख [२४]
१४. श्रवः = कान, सुननेवाला, श्रवण करनेवाला, शिष्य [३४] प्रमृशः = परामर्श लेनेवाले पंडित [३६]
१५. प्रतिश्रवः = सुनानेवाला, उपदेश करनेवाला, गुरु [३४]। वादी-प्रतिवादी, प्रश्न-प्रतिप्रश्न के समान श्रव-प्रतिश्रव ये पद हैं। इनका परस्परसंबंध है। सोभ्यः [३३] = पुण्यकर्म करनेवाले तथा प्रतिसर्य [३३] = गुप्त बात प्रकट करनेवाले।
१६. श्लोक्यः = प्रशंसनीय, श्लोकों के योग्य, प्रशंसनीय विद्वान् [३३]

प्राचीन परंपराके अनुसार वैद्य, राजा का मंत्री, अध्यापक आदि ब्राह्मण अथवा ज्ञानी-वर्गके लोग ही हुआ करते हैं। अर्थात् ये ब्राह्मण हैं अथवा ज्ञानी तो निःसन्देह हैं।

पुरुषसूक्त में 'ब्राह्मणों को नारायण का मुख' कहा है। यहां उसी नारायण के अथवा रुद्रदेवता के मुख में किन का समावेश होता है, यह अधिक नाम देकर बताया है। यहां के कई नाम जैसे 'उद्गुरमाण' आदि अन्य वर्गमें भी गिने जाना स्वाभाविक है। जो शेष बचेंगे, वे इस वर्ग में रहेंगे। इस तरह ब्राह्मणवर्ग के रुद्रोंका विचार करने के पश्चात् अब क्षत्रियवर्ग के रुद्रों का, अथवा वीरोंका विचार करते हैं। रुद्र का नाम '**वीरभद्र**' सुप्रसिद्ध है। कल्याण करनेवाला वीर 'वीरभद्र' कहा जाता है। देखिये, वीरभद्रके वर्गमें कौनसे रुद्र गिने जाने योग्य हैं—

क्षत्रिय-वर्गके रुद्र।

(वीर रुद्र।)

(**रोदयति इति रुद्रः**) जो रुलाता है, वह रुद्र है। शत्रुओं को रुलाने के कारण वीर को रुद्र कहते हैं। इस तरह क्षत्रिय वीर रुद्र कहे जाते है।

१. रुद्रः = शत्रुओं को रुलानेवाला वीर [१, १८] तवस् = बलवान् [४८] आगे राजाके अनेक अधिकारी, ओहदेदार, रुद्र करके गिनाये हैं।
२. क्षेत्राणां पतिः = खेतोंकी रक्षा करनेवाला [१८]

भूतानां अधिपतिः = प्राणियों के रक्षक [५९]
३. वनानां पतिः = वनोंकी पालना करनेवाला [१८] वन्यः = वनमें उत्पन्न [३४]
४. अरण्यानां पतिः = अरण्यों का संरक्षण करनेवाला [२०]
५. स्थपतिः = स्थानोंका पालक [१९], पथिरक्षी [६०], प्रपथ्य [४३] = मार्गों की रक्षा करनेहारे।
६. कक्षाणां पतिः [१९] दिशां पतिः [१७] (कक्षा) = गुप्त स्थान, अन्तका भाग, बडा अरण्य, बहुत ही बडा वन। [कक्षाणां पतिः, कक्षापः] = गुप्त स्थान की रक्षा करनेवाला, अन्तिम विभाग का रक्षक, बडे अरण्योंका रक्षक [१९], कक्ष्यः = अरण्य की कक्षा में रहनेवाला [३४]
७. पत्तीनां पतिः = सेनाओं का पालक, सेनापति, पादचारी सेनाविभाग का अधिपति [१९], सत्वनां पतिः = प्राणियोंका रक्षक [२०]
८. आव्याधिनीनां पतिः = उत्तम निशाना मारनेवाले सैनिकोंका अधिपति, सेनापति [२०], [व्याधिन्] = शत्रु का वेध करनेवाला [२०, २४]
९. विकृन्तानां पतिः = शत्रु सैनिकोंका अधिपति [२१]
१०. कुलुञ्चानां पतिः = शत्रुसेनाको पीसनेवाले, शत्रुपर चढाई करके उनके सेनाविभागोंको पृथक् करके उनका नाश करनेवाले वीरोंके प्रमुख अधिपति [२२]
११. गणपतिः = वीरोंके गणों के अधिपति [२५] ककुभः = प्रमुख, मुख्य [२०]
१२. व्रातपतिः = वीरों के समूह के प्रमुख [२५]
१३. सेना, १४ व्रातः, १५ गणः = ये सेनाविभागोंके नाम हैं; सैनिकों की संख्या के अनुसार ये नाम प्रयुक्त होते हैं [२५, २६]।
१६. शूरः = वीर, शूर [३४], क्षयद्वीरः = शत्रु का नाश करनेवाला वीर [४८]; उग्रः, भीमः = उग्र, शूर वीर, भयानक कर्म करनेवाले [४०]
१७. विचिन्वत्कः = शूर वीर, बहादुर, चुन चुन कर शत्रुवीरों का वेध करनेवाला वीर [४६], विकिरिद्रः = विशेष नाश करनेवाला [५२]
१८. रथी = रथमें बैठनेवाला वीर [२६]

१९. अरथी = रथके विना युद्ध करनेमें प्रवीण वीर [२६]
२०. आशुरथ = जो त्वराके साथ रथयुद्ध करता है, त्वरासे रथ चलानेवाला वीर [३४]
२१. उगणा = शस्त्रास्त्रों को ऊपर उठाकर शत्रुपर हमला करनेवाली सेना का समूह [२४]
२२. आशुसेनः = अपनी सेनाको अतिशीघ्र तैयार करनेवाला वीर, अपनी सेनाको सदा सिद्ध रखनेवाला वीर [३४]
२३. श्रुतसेनः = जिस सेनाका यश चारों और फैला हो, विख्यात, यशस्वी, सदा विजयी सेनापति [३५]
२४. सेनानी = सेनाको कुशलता के साथ चलानेवाला सेनापति [२६]
२५. दुंदुभ्यः = नौबत, ढोल अथवा बाजेके साथ रहकर लडनेवाला सैन्य [३५]
२६. असिमान् = तलवारसे लडनेवाले सैनिक वीर [२१]
२७. इषुमान् = बाणोंका उपयोग करनेवाले, बाणोंको बर्तनेवाले वीर [२२, २९]
२८. सृकायी = तीक्ष्ण बाण अथवा भाला बर्तनेवाला वीर [२१]
सृकाहस्ताः = शस्त्र धारण करनेवाले [६१]
२९. निषङ्गी = खड्गधारी वीर [२०,२१, ३६]
३०. धन्वायी = धनुष्य धारण करके शत्रुपर चढाई करनेवाला वीर [२२]
आयुधी = शस्त्रोंको साथ रखनेवाला वीर [३६]
३१. शतधन्वा = सौ धनुष्योंका धारण करनेवाला वीर [२९]
३२. इषुधिमान् = बाणोंके तर्कसको पास रखनेवाला [२१, ३६]
३३. तीक्ष्णेषुः = तीखे बाणोंका उपयोग करनेवाला [३६]
३४. स्वायुधः = उत्तम आयुधोंको पास रखनेवाला [३६]
३५. सुधन्वन् = उत्तम धनुष्यका उपयोग करनेवाला [३६]
३६-३९. वर्मी, कवची, बिल्मी, वरूथी = विविध प्रकारके कवच धारण करनेवाला वीर [३५]
४०. कृत्स्नायतया धावन् = आकर्ण धनुष्य पूर्णतया खींचकर युद्धभूमिमें दौडनेवाला वीर [२०]
४१. निव्याधी [१८, २०] = शत्रुका निःशेष वेध करनेवाला वीर [२०]
४२. जिघांसत् = शत्रुकी कत्ल करनेवाला वीर [२१]
४३. विध्यत् = शत्रुका वेध करनेवाला [२३]
४४. अवभेदी = शत्रुको नीचे गिराकर उसको छिन्नभिन्न करनेवाला वीर [३४]
४५. हन्ता = शत्रुका हनन करनेवाला [४०]
४६. हनीयान् = शत्रुका संहार करनेवाला [४०]
४७. अभिघ्नत् = शत्रुपर प्रहार करनेवाला [४६]
४८. अग्रेवधः = अग्रभागमें रहकर शत्रुका वध करनेवाला [४०]
४९. दूरेवधः = दूरसे शत्रुका वध करनेवाला [४०]
५०. आहनन्यः = शत्रुपर आघात करनेवाला [३५] ढोलका शब्द करता हुआ शत्रुपर आक्रमण करनेवाला।
५१ धृष्णुः = शत्रुका वध करनेवाला साहसी वीर [१४,३६]
५२. विक्षिणत्क = शत्रुका नाश करनेवाला [४६]
५३. आनिर्हत = आसमन्तात् भागसे जिसने शत्रुका वध किया है [४६]
५४. सहमानः = शत्रुका पराभव करनेवाला [२०]
५५. आतन्वानः = धनुष्यकी प्रत्यंचा चढानेवाला वीर [२१]
५६. प्रतिदधानः = प्रत्यंचा चढाये धनुष्यपर बाण लगानेवाला [२२]
५७. आयच्छत् = धनुष्यकी डोरी खींचनेवाला वीर [२२]
५८. अस्यत् = शत्रुपर बाण फेंकनेवाला [२२]
५९. विसृजत् = शत्रुपर विशेष रूपसे बाण फेंकनेवाला [२३]
६०-६१. आखिदत् प्रखिदत् = शत्रुको खेद उत्पन्न करने योग्य आचरण करनेवाला वीर [४६]
६२-६३. आव्याधिनी [२४], आव्याधिनीनां पतिः [२०] = शत्रुसेनापर चारों ओरसे हमला करनेवाला वीर तथा ऐसी वीरसेनाका सेनापति ।
६४. विविध्यन्ती = विशेष रीतिसे शत्रुसेना का वेध करनेवाली प्रबल वीरसेना [२४]
६५. तृंहती = शत्रुका नाश करनेवाली वीरसेना [२४]
६६. अवसान्यः = अन्तिम भागपर खडा रहकर संरक्षण करनेवाला वीर [३३]
६७. पथीनां पतिः = मार्गस्थोंके रक्षक वीर [१७]
६८. मृगयुः = मृगया, अथवा शिकार करनेवाला वीर [२७]

ये वीरवर्ग अथवा क्षत्रियवर्गके नाम हैं। रुद्रोंके ही ये नाम हैं, जैसे ब्राह्मणवर्गके रुद्र पीछे दिये हैं, वैसे ही ये क्षत्रियवर्गके

रुद्र हैं। जिस तरह ब्राह्मण रुद्र हैं, वैसे ही क्षत्रिय भी रुद्र हैं। अब वैश्यवर्गके रुद्र देखिये। वैश्यवर्गमें खेती और पशुपालन करनेवालोंका समावेश होता है, अतः उक्त मन्त्रोंमें वैश्यरुद्रोंका वर्णन देखिये—

वैश्यवर्गके रुद्र।

वैश्यवर्गमें निम्नलिखित रुद्रोंका अन्तर्भाव हो सकता है—

१. **वाणिजः** = बनिया, व्योपारी, दूकानदारी करनेवाला [१९]

२. **संग्रहीता** = पदार्थों का संग्रह करनेवाला [२६] **वारिवस्कृत** [१९] धनकी उत्पत्ति करनेवाला।

३-४. **अन्धसस्पतिः** [४७], **अन्नानां पतिः** [१८]= अन्नका पालनकर्ता, अन्नके लिये उपयोगी होनेवाले विविध धान्यादि पदार्थोंका पालन करनेवाला[४७,१८] **ऐलबृदाः** [६०] = अन्नकी वृद्धि करनेवाला।

५. **वृक्षाणां पतिः** = वृक्षवनस्पति आदिओं की पालना करनेवाला [१९]

६-७. **पशुपतिः** [२८], **पशूनां पतिः** [१७] = पशुओंका पालनेवाला।

८. **अश्वपतिः** = घोडोंकी पालना करनेवाला [२४]

९-१०. **श्वपतिः** [२८], **श्वनी** [२७], कुत्तोंकी पालना करनेवाला।

११. **पुष्टानां पतिः** = पुष्टोंके स्वामी [१७]

१२. **जगतां पतिः** = चलनेवालोंका पालक [१८]

वैश्योंका कर्तव्य खेती, वृक्षसंवर्धन और पशुपालन है। यह कर्म करनेवाले ये रुद्र इस रुद्रसूक्तमें दीखते हैं। इस तरह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्गोंके रुद्रोंका वर्णन हमने यहां तक देखा। शूद्रवर्गके रुद्रोंका वर्णन अब देखना है। शूद्रोंमें सब कारीगरों का समावेश होता है। देखिये—

शिल्पिवर्गके रुद्र।

पूर्वोक्त मंत्रोंमें निम्नलिखित रुद्र शिल्पिवर्गके आ गये है—

१. **सूतः** = सारथी, रथ चलानेवाला, घोडोंको शिक्षा देनेवाला, भाट और वीरोंकी कथाओंको सुनानेवाला।

२-४. **क्षत्ता** [२६], **तक्षा** [२७], **रथकारः** [२७]= बढई, तर्खाण, रथ बनानेवाला, लकडीका काम करनेवाला [२६]

५-६. **धनुष्कृत**, **इषुकृत** = धनुष्य और बाण बनानेवाला कारीगर [४६]

७. **कर्मारः** = लुहार, लोहेका अथवा धातुका कार्य करनेवाला [२७]

८. **कुलालः** = कुम्हार [२७]

९. **निषादः** = जंगलमें रहनेवाला, जंगली आदमी, सभामें [नि-साद] सबसे नीचे बैठने योग्य [२७]

१०. **पुंजि-ष्ठ** = टोलियां बनाकर रहनेवाले लोग [२७]

११. **गिरि-चरः** [२२] **गिरिशयः** [२९] **गिरिशन्त** [२] पहाडियोंपर घूमनेवाला, पहाडी लोग।

१२. **उत्तरण, प्रतरण, तार** = नदीके पार करानेवाला, नदीपार करानेमें कुशल [४२]

१३. **अहन्तिः सूतः** = हननसे बचानेवाला सूत [१८]

ये नाम प्रायः कारीगरोंके तथा अन्यान्य व्यवहार करनेवालों के वाचक हैं। अर्थात् शूद्रों के वाचक हैं। शूद्रोंमें जो कारीगरी कर नहीं सकते, वे परिचर्या, सेवा शुश्रूषा करके अपनी आजीविका करते है, उनके नाम उपर्युक्त रुद्रमंत्रों में ये हैं—

१४. **परि-चरः** - परिचारक, नौकर, सेवक, परिचर्या करनेवाले [२२]

१५. **नि-चेरुः** = नौकरी करनेवाला, नीचे के स्थानमें रहनेयोग्य [२०]

१६. **जघन्यः** - हीन, अन्त्यज, नीच वृत्तिका मनुष्य, अधःपतित मनुष्य [३२]

ये नाम शूद्रवर्ग के हैं। इनमें 'परिचर' नाम परिचर्या करनेवाले का स्पष्ट है। लुहार, बढई आदि के नाम भी सब को मालूम हैं। शूद्रों में दो भेद हैं, एक सच्छूद्र कहलाते हैं। जो कारीगरीके द्वारा अपनी आजीविका प्राप्त करके निर्वाह करते हैं और दूसरे असच्छूद्र हैं; जो सेवा करके आजीविका प्राप्त करते हैं। इन दोनों प्रकारके शूद्रों का वर्णन पूर्वोक्त शब्दोंद्वारा हुआ है।

यहां तक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्गोंके अर्थात् ज्ञानी, शूर, व्यापारी और कारीगर इन चार प्रकार के व्यवसायियों के नाम रुद्र के नामों में दीखते हैं। वे सब रुद्र के रूप हैं। रुद्रदेवता इन रूपों में इस भूमिपर विचर रहा है। रुद्रदेवता की भेट करनी हो, तो इन रूपों में रुद्र का दर्शन हो सकता है। रुद्र इन नाना रूपों में इस भूमिपर विचर रहा है। रुद्रदेवता के भक्त अपनी उपास्य देवता का दर्शन करें। वेद ने रुद्रदेवता का इस तरह प्रत्यक्ष साक्षात्कार कराया है। पाठक इस का स्वीकार करें।

पाठक यह जानते हैं कि, ' रुद्र ' उसी अद्वितीय देव का नाम है, जिस को ' पुरुष, नारायण, अग्नि, इन्द्र, ' आदि अनेक नाम दिये गये हैं ।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्
बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः
पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ [ऋ० १०।९०।१२]

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णोंके लोग ये सब परमात्माके क्रमशः सिर, बाहू, पेट या जंघा तथा पांव हैं । अर्थात् चारों वर्ण मिलकर परमात्मा का शरीर है । परमात्मा के शरीरके ये चार अवयव हैं । इस परमात्मा को आत्मा, ब्रह्म, पुरुष, नारायण या रुद्र आदि नामों से पुकारते हैं । रुद्र और नारायण एक ही देव है । एक ही देवताके ये दो नाम हैं । इसलिये जो वर्णन नारायणपुरुष का पुरुषसूक्त में हुआ है, वही वर्णन रुद्र का विस्तार से रुद्रसूक्त में दिखाई दिया, तो वह उचित ही है ।

यहां पाठक देखें कि, पुरुषसूक्त में जो वर्णन अतिसंक्षेप से है, वही वर्णन रुद्रसूक्त में विस्तार से है । पुरुषसूक्त में पुरुष-नारायण-देवता के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये लोग अवयव हैं, ऐसा कहा है और रुद्रसूक्त में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्गों के कई नाम गिनाये हैं । अर्थात् पुरुषसूक्त का यह विस्तार से स्पष्टीकरण है । इस रुद्रसूक्तमें ये रुद्र के रूप हैं, ऐसा कहा है; और इन रुद्र को नमस्कार किया है । ये उपास्य और संसेव्य हैं, ऐसा यहां बताया है ।

मानवों को जो परमात्मा संसेव्य है, वह ज्ञानी, शूर, व्यापारी और सेवक रूप से इस भूमिपर विचरनेवाला ही परमात्मा है । यह बात इस रुद्रसूक्त के मनन से सिद्ध हो रही है । परमात्मा सब रूपों में इस भूमि पर विचर रहा है, इन में मानवों के रूप भी हैं । हमें परमात्मा की सेवा करके कृतकृत्य बनना है, तो हमें इन मानवों की-जनतारूपी जनार्दन की सेवा करना उचित है । वेदका यही धर्म है, पर आज मानवों की सेवा अपनी कृतकृत्यता के लिये करने का भाव समाज से दूर हुआ है और अन्यान्य उपासनाएं प्रचलित हुई हैं ! ! वैदिक धर्म से जनता कितनी दूर जा रही है, इसका विचार यहां इस विवेक से हो सकता है ।

चार वर्णों के रुद्र ।

चार वर्णों के चार वर्गों में जो रुद्र होते हैं, उनकी गणना उपर के लेख में की है, परन्तु वहां ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य ये नाम नहीं आये हैं । इसलिये पाठकोंके मनमें सन्देह हो सकता है कि, ये नाम चार वर्णों के कैसे माने जायेंगे ? इस शंकाका निवारण यजुर्वेदकी मैत्रायणी-संहिता में किया है, वह मन्त्र भाग अब देखिये—

नमो ब्राह्मणेभ्यो राजन्येभ्यश्च वो नमः ।
नमः सूतेभ्यो विश्येभ्यश्च वो नमः ॥
(मैत्रायणी सं० २।९।५)

' ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और सूत संज्ञक रुद्रों को मैं प्रणाम करता हूं । ' वहां शूद्र नाम नहीं है, पर ' सूत ' नाम है, जो शूद्र का वाचक है । अन्य तीन नाम हैं । इस से सिद्ध होता है कि, चारों वर्णों के लोग रुद्र देवताके रूप हैं । इसलिये इस विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है ।

पूर्वोक्त चार वर्णों के रुद्रोंमें ही संपूर्ण जनता समाप्त नहीं होती है । जिनको दुष्ट डाकू आदि कहा जाता है, उन रूपों में भी रुद्रदेवता हमारे सम्मुख उपस्थित होती है, देखिये—

आततायी वर्ग के रुद्र ।

१. **आततायी** = घातपात करनेवाला [१८] धनुष्य सज्य करके हमला करनेवाला घातक ।

२-५. **स्तेनानां पतिः** [२०], **तस्कराणां पतिः** [२१], **मुष्णतां पतिः** [२१], **स्तायूनां पतिः** [२१] = चोर, डाकू, लुटेरे, ठगानेवाले ।

६-८. **वञ्चत्** [२१], **परिवञ्चत्** [२१] = धोखेबाज, फरेबी, मक्कार, कपटी, छल करनेवाला ।

९. **लोप्यः** = नियमों का लोप करनेवाला, नियमों का उल्लंघन करनेवाला [४५] ।

१९. **नक्तं चरत्** = रात्री के समय दुष्ट इच्छा से भ्रमण करनेवाला [२१]

ये नाम चोर, डाकू, लुटेरे, आततायी दुष्टोंके हैं । निःसंदेह ये दुष्ट भाववाले मानवों के वाचक हैं । परन्तु ये भी रुद्र के ही रूप हैं । जिस तरह ज्ञानदाता ब्राह्मण, सब के पालन करनेवाले क्षत्रिय, सब के पोषणकर्ता वैश्य और सबकी सहायतार्थ कर्म

करनेवाले शूद्र रुद्रके रूप हैं, उसी तरह चोरी करके लोगों को लूटनेवाले भी रुद्र के ही रूप हैं।

पाठकों को यह मानने के लिये बडा कठिन कार्य है। चोर भी परमात्मा का अंश है। क्या यह सत्य नहीं हैं ? भगवद्गीता में कहा है कि—

मम एव अंशः जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
[भ. गी. १५।७]

'मेरा ही सनातन एक अंश जीवलोकमें जीव होता है।' यदि मानवों का जीव परमात्मा का अंश है, तब तो वह जैसा ज्ञानी योगियों का जीव परमात्मा का अंश है, वैसा ही दुष्ट डाकुओं का भी जीव परमात्मा का ही अंश है। जीवमात्र परमात्मा का अंश है, यह जैसा भगवद्गीता में कहा है, वैसा ही वेद में- पुरुषसूक्त में भी कहा है। पुरुष का एक अंश इस विश्वमें वारंवार जन्मता है, यह बात पुरुषसूक्त में कही है। अस्तु, इस तरह चार वर्णोंके मानवों का जीव जैसा परमात्मा का अंश है, वैसा ही चोर, डाकू, लुटेरे दुष्टों का भी जीव परमात्माका ही अंश है। तत्त्वतः सब की एकता है।

इसी तरह आंख में सूर्य का अंश, जिह्वा में जल का अंश, नासिकामें पृथ्वीका अंश और अन्यान्य इंद्रियों में और अवयवों में अन्यान्य देवताओं के अंश आकर वसे हैं। ये जैसे सत्पुरुषके देह में बसे हैं, वैसे ही दुष्ट दुर्जनोंके देहों में भी वसे हैं। देवताओं के अंशों के निवास की दृष्टि से भी सब मानवों की, सब प्राणियों की समता है। इस रीति से ३३ देवताओं के अंश और परमात्मा का अंश शरीर में आकर रहे हैं, इस दृष्टि से सब के देह समान हैं। प्रत्येक देह में ३३ देवताओं के अंशों के साथ परमात्मा का अंश रहता है। देह सज्जन का हो या दुर्जन का, उसमें परमात्माके अंशके साथ देवताओं के अंश रहते ही हैं।

अतः वेद का कथन यह है कि, जिस तरह चार वर्णों में विद्यमान जनता संसेव्य है, उसी तरह चोर, डाकू आदि भी वैसे ही संसेव्य हैं। पर सज्जनों की अपेक्षा दुर्जनों की सेवा अधिक प्रेमसे करनी चाहिये, क्योंकि इन दुष्ट मानवों की दुष्टता उन के शारीरिक और मानसिक विकृति के कारण होती है।

सेवा उसकी करनी चाहिये, जिस के लिये सेवाकी आवश्यकता है। जैसे किसीको सर्दी लगती हो, तो उसको कंबल देना चाहिये, प्यासेको जल, भूखेको अन्न, रोगीको दवा आदि देना सेवा है। जो तृप्त है, उसको अन्न देना सेवा नहीं है। सर्वत्र न्यूनता, हीनता, विकृतता की पूर्तिके लिये ही सेवा हुआ करती है। रोगी-की सेवा शुश्रूषा उसमें उत्पन्न विकार अथवा न्यूनता को दूर करनेके लिये की जानी चाहिये। इसी तरह चोर, डाकू, आततायी, लुटेरे, ठग, कपटी आदि जो गुनहगार हैं, वे यकृत, प्लीहा या मस्तिष्क की विकृतिके कारण अथवा सामाजिक, आर्थिक या राजकीय दोषोंके कारण गुनाह करनेके लिये प्रवृत्त होते है। देखिये, यकृत बिगडनेसे मस्तिष्क बिगडता है और क्रोधी प्रकृति बनती है, जिसका परिणाम खून करनेतक होता है। दरिद्रताके कारण त्रस्त हुआ मनुष्य चोरी की ओर झुकता है। इसी तरह अन्यान्य कुप्रवृत्तियोंके कारण शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक अथवा राजकीय विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। इसलिये जैसे ज्वरके रोगी चिकित्साद्वारा संसेव्य हैं, उसी तरह चोर, डाकू, खूनी, आततायी भी शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक अथवा राजकीय चिकित्सासे सेवा करनेयोग्य हैं।

आजकल इन चोर, डाकू आदिकोंको जेलखानेमें बंद करते हैं, कोडोंसे मारते हैं अथवा खूनियोंको फांसी देते हैं। पर वेद कहता है कि, ये भी वैसे ही रुद्रके अवतार हैं, जैसे उत्तम ब्राह्मण और श्रेष्ठ क्षत्रिय। अतः ये भी सेवाके योग्य हैं। उनकी सेवा करके जिन दोषोंके कारण उनमें कुप्रवृत्तियां उठीं, उनको दूर करके उनकी तनदुरुस्ती अथवा मनदुरुस्ती करनी चाहिये। सदैक्यवादकी भूमिकाके अनुकूल और वेदके द्वारा कथित उपदेशके अनुसार चोर भी ईश्वरका रूप है और वह भी सज्जनके समान ही सेवाके योग्य है। यदि ठीक तरह इस ईश्वरके रूपकी सेवा होगी, तो जो उस ईश्वरके रूपमें अप्रसन्नता थी, वहां सुप्रसन्नता होगी और वेही लोग समाजमें प्रसन्नता बढायेंगे। सदैक्यवादसे अर्थात् वैदिक दृष्टिकोन धारण करनेसे इस तरह चोर और डाकू भी दिव्य भावप्रकाशनका अवसर मिलनेसे देवत्वको प्रकट कर सकते हैं। सेवा तो अप्रसन्नकी प्रसन्नता करनेके लिये ही की जाती है। इस विषयमें अधिक आगे लिखा जायगा। यहां किंचित् दिग्दर्शनमात्र लिखना पर्याप्त है।

यहांतक मानवी प्राणियोंके रुद्र के रूपों का वर्णन हुआ, अब अन्य प्राणियों के रूपों में जो रुद्र का अवतरण हआ है, उस विषय में देखिये—

प्राणियों में रुद्र के रूप।

१. अश्वः = घोडा [२४]
२. श्वा = कुत्ता [२८]
३. व्रज्यः = वज्र अर्थात् ग्वालों के वाडोंमें पालनेयोग्य गौ आदि पशु [४४]
४. गोष्ठ्यः = गोशालामें पालनेयोग्य गौ आदि पशु [४४]
५. शीभ्यः = बैल आदि गतिमान् पशु [३१]
६. गेह्यः = घरोंमें पालनेयोग्य पशु, अर्थात् गाय, भैंस, बैल, कुत्ता, बिल्ली आदि पशु [४४]
७. किरिकः = किरिः = सूवर, सूकर [४६]
८. तल्प्य = बिछोना, चारपाई, खटियां, तकिया आदि में जो कृमिकीट होते हैं, जिनको खटमल आदि नाम हैं, वे कृमि [४४]
९. रेष्म्यः = हिंसक कृमिकीट अथवा जीव [३९]
१०. गह्वरेष्ठः = घन जंगलों में, पहाडों की गुफा में रहनेवाले सिंह, व्याघ्र आदि पशु [४४], गुहा में रहनेवाले मनुष्य।
११. इरिण्यः = उजाड मैदान में, रेतीले स्थानमें, जो भूमि उपजाऊ नहीं है, वैसी भूमि में रहनेवाले, प्राणी अथवा कृमि [४३]
१२. सिकत्यः = रेतीले स्थान में रहनेवाले पशु अथवा कृमिकीट [४३]
१३. किंशिलः = पत्थरोंवाले स्थान में रहनेवाले पशु अथवा जीव [४३]
१४-१५. पांसव्यः, रजस्यः = धूली में रहनेवाले जीवजन्तु [४५]
१६-१७. ऊर्व्यः [४५], उर्वर्यः [३३], = उपजाऊ भूमिमें रहनेवाले जीव।
१८. खल्यः = खलियान में जो जीव रहते हैं [३३]
१९. सूर्व्यः = [सु-ऊर्व्यः], उत्तम उपजाऊ भूमि में होनेवाला जीव [४५]
२०-२१. शुष्क्यः [४५], अवर्ष्यः, [३८], = शुष्क स्थानमें, वर्षा न होनेवाली भूमिमें होनेवाले जीवजन्तु।
२२-२३. हरित्यः [४५], वर्ष्यः [३८] = हरेभरे स्थानमें रहनेवाले, वर्षाके स्थानमें होनेवाले जीवजन्तु।
२४. अवट्यः = छोटे तालाव में रहनेवाले जीव [३८]
२५. उलप्यः = घास जहां उगता है, ऐसे स्थान में होनेवाले कृमि [४५]
२६. शष्प्यः = कोमल घासके ऊपर रहनेवाले कृमि [४२]
२७-२८. पर्णः, पर्णशदः = पत्तोंपर रहनेवाले जीव-जन्तु [४६]
२९-३०. पथ्यः [३७], प्रपथ्यः [४३], = मार्गों पर रहनेवाले जीव, मार्गोंके रक्षक।
३१. नीप्यः = पहाडके निम्न स्थानमें रहनेवाले प्राणी [३७] अथवा पहाडियों की तराईपर निवास करनेवाले मनुष्य।
३२. आतप्यः = धूपमें रहनेवाले प्राणी [३८]
३३. वात्यः = वायुरूप में रहनेवाले प्राणी [३९]
३४. वीध्र्यः = शुष्क अभ्ररूप में रहनेवाले [३८]
३५. मेघ्यः = मेघ में रहनेवाले प्राणी [३८]
३६-३७ काट्यः [३७, ४४], कूप्यः [३८] = कुवें में रहनेवाले प्राणी, कूप के पास रहनेवाले मनुष्य।
३८-४६. कुल्यः [३७], कूल्यः [४२] = जल-प्रवाहमें अथवा प्रवाहके समीप रहनेवाले प्राणी, जलप्रवाह के पास रहनेवाले मनुष्य।
३९. सरस्यः = तालाव के समीप अथवा तालाव में रहनेवाले जीव या मानव [३७]
४०. नाद्यः = नदी में अथवा नदीके समीप रहनेवाले जीव या मानव [३१, ३७]
४१. वैशन्तः = छोटे तालावमें रहनेवाले जीव [३७] अथवा मनुष्य।
४२. तीर्थ्यः = तीर्थस्थान में रहनेवाले [४२], ये तीर्थानि प्रचरन्ति (६१) = जो तीर्थों में विचरते हैं, यात्री।
४३. ऊर्म्यः = लहरों में रहनेवाले [३१]
४४. प्रवाह्यः = प्रवाह में रहनेवाले [३१]
४५. पार्यः = परतीर में रहनेवाले [४२]
४६. अवार्यः = नदीके इधरके तीरपर रहनेवाले [४२]
४७. फेन्यः = जलके फेनमें रहनेवाले [४२]
४८. द्वीप्यः = द्वीपमें रहनेवाले, टापूमें रहनेवाले [३१]
४९. निवेष्प्यः = पानीके भंवरमें रहनेवाले [४४]
५०. क्षयणः = जहां पानी स्थिर रहता है, ऐसे स्थानमें रहनेवाले [४३]

ये सब रुद्र जलस्थानोंमें रहनेवाले प्राणियोंके रूप हैं। और देखिये--

५१. **हृदय्यः** = हृदयमें रहनेवाले (४४), हृदयको प्रिय लगनेवाले स्थानमें रहनेवाले।

५२. **वास्तुपः** = घरोंका संरक्षण करनेवाले [३९] पहरेदार।

५३. **वास्तव्यः** = घरोंमें रहनेवाले [३९]

' **वास्तव्य** तथा **वास्तुप** ' ये दो पद सर्वसाधारण मानव-जातिके वाचक हो सकते हैं। क्योंकि प्रायः मानव घरोंमें रहते और घरोंकी रक्षा करते हैं।

सर्वसाधारण रुद्र ।

१. **उपवीति** = यज्ञोपवीत अथवा उत्तरीय धारण करनेवाले [१७]

२. **उष्णीषी** = पगडी अथवा साफा धारण करनेवाले [२२]

३. **हिरण्यबाहुः** = बाहुओंपर सुवर्णभूषण धारण करनेवाले [१७]

४. **कपर्दी**=जटा अथवा शिखा धारण करनेवाले [२९, ४८]

५. **व्युप्तकेशः** = जिनके बाल कटे हैं, हजामत बनाये हुए [२९], **विशिखासः** [५९] = शिखा न रखनेवाले, सिर मुंडन करनेवाले।

६. **सोम्यः** = शान्त [३९]

७. **याम्यः** = नियममें रहनेवाले [३३]

८. **क्षेम्यः** = आराम देनेवाले [३३], घरमें रहनेवाले,

९-११. **आशु, शीघ्र्य, अजिर** = शीघ्रता करनेवाले [३१]

१२-१९. **महान्** [२६], **सवृद्ध** [३०], **पूर्वज** [३२], **ज्येष्ठ** [३२], **अग्र्य** [३०], **प्रथम** [३०], **बृहत्** [३०], **वर्षीयस्** [३०], **वृद्ध** [३९],= बडा, ज्येष्ठ. श्रेष्ठ, पूर्वज।

२०-२६. **अर्भक** [२६], **ह्रस्व** [३०], **वामन** [३०], **मध्यम** [३२], **अपर-ज** [३२], **कनिष्ठ**, [३२] **अवसान्य** [३३] = छोटा, कनिष्ठ, बालक, निकृष्ट,

२७. **बुध्न्य** = तह में रहनेवाला [३२]

२८. **अप्रगल्भ** = अज्ञानी [३२]

२९-३०. **ताम्र, अरुण** [३९] = **विलोहित** [७,५२, ५८] **बभ्रु** [६], **सस्पिंजर** [१७] लाल रंगवाले,

३१. **आक्रन्दयन्, उच्चैर्घोषः** = गर्जना करनेवाला [१९]

३२. **स्वपत्** = सोनेवाला [२३]

३३. **जाग्रत्** = जागनेवाला [१६]

३४. **शयानः** = लेटनेवाला [२३]

३५. **आसीनः** = बैठनेवाला [२३]

३६. **तिष्ठत्** = खडा रहनेवाला [२३]

३७. **धावत्** = दौडनेवाला [२३]

यहां नानाविध प्राणियों के नाम हैं, तथापि इनमें कईपद मानवप्राणियोंके भी वाचक हो सकते हैं, जैसा देखिये- **गव्हरेष्ठ** [४४] यह पद सिंहव्याघ्रादि जंगली जानवरों का वाचक करके ऊपर दिया है, पर इस पदका अर्थ ' गुहा में रहनेवाला मानव ' भी हो सकता है। जो गुहामें रहता है, वह गव्हरेष्ठ है। इसी तरह ' **नीप्य** = [३७] पहाड की तराई पर रहनेवाला ' यह मानव भी हो सकता है, क्योंकि पहाडों की तराई पर मनुष्य भी रहते हैं। ' **कूल्य** ' [४२] = नदीतीरपर रहनेवाला यह जैसा मानव, वैसाही अन्य प्राणी भी होना संभव है। इसी तरह अन्ततक समझना उचित है। ये पद प्राणियोंके वाचक हैं, फिर ये प्राणी मनुष्य हों अथवा अन्य हों। ये सब रुद्रदेवता के रूप हैं।

वास्तुपः— [३९] यह पद घरोंकी सुरक्षा के लिये जो पहरेदार होते हैं, उन का वाचक है। आगे ' **उपवीति** ' [१७] आदि शब्द मानवों के ही वाचक हैं। **व्युप्तकेश** [हजामत किये हुए], **विशिखासः** [शिखारहित, संन्यासी] ये सब निःसंदेह मानवही हैं।

इस के आगे [३२-३७] जागनेवाले, सोनेवाले, लेटनेवाले, बैठनेवाले, दौडनेवाले ये सब जाति के प्राणी हो सकते हैं, क्योंकि सभी प्राणी इन क्रियाओं को करते हैं।

१२ ते २६ तकके शब्द भी बालक–वृद्ध, जवान–तरुण, मध्यम–कनिष्ठ आदि अवस्थाओं के वाचक हैं, अतः ये पद सब प्राणियों के लिये प्रयुक्त हो सकते हैं। अतः इन अवस्थाओंमें रहनेवाले सभी प्राणी रुद्रदेवता के रूप हैं। बालक, तरुण, वृद्ध ये सब रुद्र हैं, अर्थात सभी प्राणी रुद्र हैं।

यहां प्राणियों की कोई भी अवस्था छूटी नहीं है, अर्थात् सब अवस्थाओं में विद्यमान सब प्राणी रुद्रदेवता के रूप हैं, यह यहां सिद्ध हुआ। पशुपक्षी. मानव. कृमिकीट. पतंग सभी रुद्र

के रूप हैं । इसी तरह सूक्ष्म कृमि भी रुद्र हैं, जो जलों और अन्नोंद्वारा मनुष्यादि प्राणियों में प्रविष्ट होकर नाना प्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं । इनकी भयानकता प्रसिद्ध है—

सूक्ष्म रुद्र ।

ये अन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् ।
(वा. १६-६२)

जो अन्नों में तथा जलमें रहते हैं, और अन्न खानेवालों तथा जल पीनेवालों में नाना प्रकार की पीडा उत्पन्न करते हैं, ये भी सूक्ष्म रोगकृमि रुद्र के रूप हैं ।

वृक्षरूपी रुद्र ।

१. **वृक्ष** (४०) = वृक्ष, पेड, वनस्पति ।
२. **हरिकेश** (३०) = हरे रंगवाले पत्तेरूपी केश जिनको होते हैं, ऐसे ।

इस तरह वृक्षवनस्पति भी रुद्र के रूप हैं ।

ईश्वरवाचक रुद्र ।

अब ईश्वरको इस रुद्रसूक्तमें ' विश्वरूप ' कहा है । क्योंकि जब सभी रूप परमात्मा के हैं, तब विश्व के सब रूपों को कहां तक गिना जाय ? एक वार **' विश्वरूप '** कहा, तो उसमें सब रूप आ गये, इसलिये ये नाम देखिये—

१. **विश्वरूपः** (२५) = विश्वका रूप धारण करनेवाला,
२. **विरूप** (२५) = विविध रूप धारण करनेवाला,
३. **भव** (२८) = सबका उत्पादक,
४. **शर्व** (२८) = प्रलयकर्ता,
५. **भगवः, ईशानः** (४३) = भगवान्, ईश्वर,
६. **भवस्य हेतिः** (१८) = संसार के दुःखों को दूर करने का साधन ।

ईश्वर सब का कल्याण करता है, इसलिये निम्न लिखित पद उस में सार्थ होते हैं—

कल्याणकारी रुद्र ।

३८-४०. **शिव, शिवतर** (४१), **शिवतम** (५१),= कल्याण करनेवाला ।
४१-४२. **शंभु, शंकर** (४१) = शांति करनेवाला।
४३-४४. **मयोभव, मयस्कर** (४१) = सुख देनेवाला।
४५. **अघोर** (२) = जो भयानक नहीं है, जो शांत है।
४६. **सुमंगल** (६) = जो मंगल है ।
४७. **शंगु** (४०) = शांतिसुख का दाता ।
४८. **मीढुष्टम** (५१) = सुखदाता ।
४९. **त्विषीमत्** (१७) = तेजस्वी ।
५०. **विद्युत्य** (३८) = बिजली के समान तेजस्वी ।
५१-५२. **शिपिविष्ट, सहस्राक्षः** (२९) = सहस्रों किरणों से युक्त, तेजस्वी ।

यहां तक जो रुद्रदेवता का वर्णन हुआ, उससे पाठकों को पता लग सकता है कि, तमाम विश्वरूप ही परमेश्वर का रूप है, इस रूप में सब रूप आ गये । सूर्य चंद्रके रूप, जल, पृथ्वी, अग्नि, विद्युत् के रूप, सब प्राणियोंके रूप, सब जन्तुओं के रूप इसमें आ गये हैं ।

स्थावर-जंगम में राज्ययन्त्रके कर्मचारी, राजा, मन्त्री, नाना प्रकारके ओहदेदार, प्रजाजन, सैनिक, योद्धा, क्षत्रिय, स्त्रियां, बालक, वृद्ध, तरुण, पशुपक्षी आदि सब आते हैं, जो परमात्मा के ही रूप हैं । यही तो सदैक्यवादद्वारा बताया जा रहा है । इसलिये परमेश्वर के रूप में राज्ययंत्र का अन्तर्भाव होना स्वाभाविक है । सब राज्य-यन्त्र ईश्वर का स्वरूप है । इस विषय में इस यजुर्वेद के रुद्राध्यायद्वारा जो गूढ उपदेश दिया है, वह इस लेख में प्रकट करना है ।

रुद्रदेवता संहार की देवता है, पर वह संहार जनता की भलाई करने के उद्देश्य में होता है। इसलिये यह रुद्रदेवता संघटना का कार्य भी करती है। इस देवताद्वारा जो संहार होता है, वह संघटना के लिये ही होता है । इस लिये रुद्रदेवता संघटना के लिये सहायक देवता है, यह बात यहां भूलनी नहीं चाहिये ।

रुद्रदेवता ईश्वर का ही रूप है । ईश्वर संहारकारी है, वैसा रचनाकारी भी है । इसलिये जन्म और मृत्यु ये दोनों उसी के रूप हैं। इसलिये संहार से घबराना योग्य नहीं है । जंगल तोडने के बाद उस लकडी से घर बनते हैं, अर्थात् वृक्षों का तोडना घरों के बनानेका सहायक है । इसी तरह संहार आगामी रचना के लिये आवश्यक ही है ।

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी ।
शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ॥
(वा० य० १६।४९)

जिघांसद्भ्यः ॥ ११ ॥ क्षयणाय च ॥ ४३ ॥

(वा० य० १६)

रुद्रकी दो तनुएँ हैं । एक ' घोरा ' तनु और दूसरी ' शिवा ' तनु । रुद्र का घोर कर्म करनेवाला एक शरीर है और कल्याण-कारक कर्म करनेवाला दूसरा शरीर है । इसीलिये इस रुद्र को जैसे ' शिव ' कहते हैं, वैसे ही ' क्रूर ' भी कहते हैं । अस्तु । इस से ज्ञात हो सकता है कि, इस देवताके मिष से जैसे विघटना के, तोडने के कार्यों का विधान है, वैसे ही संघटना के, संगठन के कार्यों का भी उल्लेख है । शत्रु के साथ लडना और उस का नाश करना, इसका एक विघटनाका कार्य है और राष्ट्रकी घटना करना इस का दूसरा संघटनाका कार्य है । यह दूसरा कार्य अब बताना है ।

वा० यजु० के अ० १६, मं० २५ में " **नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमः, नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमः** " कहा है । यह गणपति-संस्था की महत्त्व की बात है । गणपतिके सहस्रनामों से ' **गण, गणेश, गणपति, गण-मण्डल, गणमण्डलाध्यक्ष, महागणपति** ' आदि पद हैं । ये भी यहा देखने आवश्यक हैं । यही गणपति-संस्था रुद्र की शासनसंस्था में प्रधान कार्य करनेवाली संस्था है । गण और व्रात ये दो इन के संघटना के मूल भाग है ।

गण और व्रात ।

' व्रत ' पालन करनेवालों के संघ का नाम ' व्रात ' है और जो केवल एकत्र गिनाये गये हैं, उन का नाम ' **गण** ' है । ' **गण्** संख्याने ' धातु से ' **गण** ' शब्द बनता है, अतः इस का अर्थ जिनकी संख्या निश्चित की गयी है, जो गिने हैं, जिन-की गणना की गयी है, ऐसा होता है और एक व्रतसे, एक नियम से, एक उद्देश्य तथा एक ध्येय के कारण जो इकट्ठे कार्य कर रहे हैं, वे ' **व्रात** ' हैं । तीसरा एक संघटना बतानेवाला पद इस रुद्राध्याय में है, वह है ' **पुञ्जिष्ठ** ' अर्थात् पुञ्ज करके रहनेवाले, अनेक लोग मिलकर अपना जमाव बनाकर रहनेवाले । ' पुञ्ज ' का अर्थ एकत्र मिलकर रहना है । रुद्रसंघटना के ये तीन भेद हैं ।

वेदमें ' **संभूति** ' शब्द (वा. य. अ. ४०।९-११ में) आया है । कारीगरों की संघटना (व्यवसाय करनेवाली मंडली = ' कंपनी ') के अर्थ में यह पद है । ' **संभूति, सं-भवन, संभूयसमुत्थान** ' आदि अनेक पद मिलकर व्यवसाय करने के अर्थ में भारतीय अर्थशास्त्र में प्रचलित हुए हैं । अनेक लोगोंने मिलकर बहुत धन इकट्ठा करके बडा व्यापारव्यवहार करने के अर्थ में ये पद प्राचीन काल से प्रयुक्त होते हैं । स्मृतियों और अर्थशास्त्र में इस तरह की संघटना के विषय में विस्तारपूर्वक उल्लेख हैं । यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में उक्त ' **संभूति, संभव** ' ये पद मानवों के सांघिक जीवनविषयक व्यवहारके लिये आये हैं । पर रुद्राध्याय में इस पदका प्रयोग नहीं है, इसलिये हम यहाँ इस पदका विचार नहीं करेंगे ।

गण, व्रात और पुञ्ज ये तीन पद रुद्र की संघटना के लिये इस रुद्राध्याय में प्रयुक्त हुए हैं, इसलिये इनका विचार हम यहाँ करेंगे ।

१. ' **गण** ' पदसे ' गणना किये गये, गिने हुए लोग, '

२. ' **व्रात** ' पद से ' एक व्रत का पालन करनेवाले लोग, ' और—

३. ' **पुञ्ज** ' पदसे ' एक जातिके लोग ' बोधित होते हैं ।

जनगणना करनेकी बात ' गण ' पदसे बोधित होती है । रुद्रकी शासनसंस्थामें जनोंकी गणना की जाती थी, यह इससे सूचित होता है । विना गणना किये ' गण ' बन ही नहीं सकते । इसलिये जहां गणोंका राज्य होता है, वहां जनगणना अवश्य होती है । महादेवके भूतगण प्रसिद्ध हैं । इन भूतगणोंमें जन-गणना की जाती थी । ये ही गण रुद्रशासनमें प्रमुख घटक माने गये हैं ।

एक नियमका पालन करनेवाले, एक कार्य करनेवाले, एक उद्देश्यसे संघटित हुए, एक ध्येयको माननेवाले जो लोग होंगे, उनके समूहका नाम ' **व्रात** ' है । कर्मव्यवसायसे, व्यापार-व्यवहारसे ये व्रात नामक संघ निर्माण होते हैं । सैनिकोंके समूहों के भी ये नाम मरुत्सूक्तोंमें प्रसिद्ध हैं । एक ही उद्देश्यसे एक ही कर्ममें लगनेके कारण इनमें सांघिक बल बढा चढा रहता है ।

पूर्वोक्त रुद्रसूक्तमें ' **गण, गणपति, व्रात, व्रातपति** ' ऐसे पद आये हैं । अर्थात् इन संघोंका एक अध्यक्ष भी रहता है । इस अध्यक्ष का कार्य अपने संघका हित करना होता है । (आजकल Union, Guild आदि श्रमजीवी लोगोंके संघ और उनके अध्यक्ष रहते हैं, वैसे ही यहां ये दीखते हैं ।)

इससे पूर्व कहा है, ' **गण, गणमण्डल, गणमहामण्डल** ' ऐसे संघोंसे छोटे और मोटे संघ हुआ करते हैं । इसी तरह '**गणेश, गणपति, गणमण्डलेश, गणमहामण्डलाधि-**

पति, महागणपति ' आदि नाम गणपतिसहस्रनामोंमें संघाधिपतियोंके दिये हैं। इससे इनके कर्तव्योंका ज्ञान हो सकता है और ये संघ अपने संघमें रहनेवाले लोगोंके लिये क्या कार्य करते हैं, इसका भी ज्ञान इन नामोंके मननसे हो सकता है।

' **पुंज** ' के लिये ' **पुंजपति** ' नहीं है। ' **पुंजिष्ठ** ' पद ही है। अर्थात् इस नामके संघमें कोई अध्यक्ष नहीं होता था। ये संघके सभी सदस्य मिलकर अपना प्रबंध किया करते थे।

पुंज के सदस्य इकट्ठे होते हैं और वे सबके सब अपना संघ का हित या प्रबंध करने के लिये जो कुछ करना होगा वह कर लेते हैं। इनके नाम से यह सिद्ध होता है कि, ये संघशासक हैं। इन संघशासकों में कोई एक मुखिया नहीं होता। अतः ये पूरे पूरे ' समाजशासक ' होते हैं। इस पुंजव्यवस्था से गण और व्रात की व्यवस्थामें कुछ भिन्नता है। पाठक इस भेद को ध्यान में अवश्य धारण करें। पुंज का जाति के साथ संबंध है और ऐसा जातीय समाजशासन इस भरतखण्ड में कई जातियों में प्राचीन काल से इस समय तक प्रचलित है।

ये गण और व्रात संघ कार्य, व्यवहार, धंधा, उद्योग, सिद्धान्त या ध्येय के साथ संबंधित हैं। पुंज के समान जाति के या कुल के साथ संबंधित नहीं हैं। इसीलिये गण और व्रातके पूर्व दूसरे व्यवसायों का वाचक कोई पद अवश्य रखना चाहिये, तब इस व्यवस्था की कल्पना ठीक तरह ध्यानमें आ सकती है। वा० यजुर्वेदके १६ वें अध्यायमें ऐसे अनेक धंधोंके पद हैं, उनको इस के साथ जोड दें। देखिये, इससे ये संघ सिद्ध होते हैं—

धंधा	संघ
भिषक् (वैद्य)	भिषग्गण (वैद्यों का संघ)
वणिक् (वैश्य)	वणिग्गण (व्यापारियों का संघ)
क्षत्ता (बढई)	क्षत्तृगण (बढइयों का संघ)
तक्षा (तर्खाण)	तक्षगण (तर्खाणों का संघ)
रथकार (रथ बनानेवाला)	रथकारगण (गाडी बनानेवालों का संघ)
कुलाल (कुम्हार)	कुलालगण (कुम्हारों का संघ)

इस तरह कार्यव्यवहार करनेवाले धन्धेवालों के **गण** होते थे और शर्तें लगाकर, नियम बांधकर एक ध्येय से प्रेरित होकर जो संघ बनते थे, वे ' **व्रात** ' कहलाते थे। उतने नियमों का, उतनी शर्तोंका ही बन्धन उन व्रातनामक संघवालोंपर रहता था। व्रात संघके सदस्य अन्य व्यवहारके लिये स्वतंत्र समझे जाते थे। ' गण ' व्यवस्थामें हरएक सदस्यपर अन्य सदस्योंके हिताहितकी जिम्मेवारी पूर्णतया रहती थी, पर ' व्रात ' व्यवस्थामें उतने निश्चित व्रतकी मर्यादा तक की ही यह जिम्मेवारी रहती थी। गणमें उत्तरदायित्व अधिक और व्रातमें नियमानुकूल मर्यादित रहता था। इस कारण गणमें प्रविष्ट होनेवालोंको लाभ भी अधिक होते थे और व्रातमें उसकी अपेक्षासे लाभ भी कम होते थे।

विचार करनेसे पता चलता है कि, गणसंस्थामें संमिलित होनेवाले सदस्योंका हित करनेका पूर्णतासे उत्तरदायित्व गणके अधिष्ठातापर रहता था। इसलिये गणेश अर्थात् गणके अधिष्ठाताको तथा गणपति अर्थात् गणके पालनकर्ताको गणके प्रत्येक सदस्यके हितकी सब जिम्मेवारी उठानी पडती थी। अर्थात् गणमें प्रविष्ट सदस्य बीमार हुआ, युद्धमें जखमी हुआ, किसी अन्य आपत्तिमें फँसा, तो ऐसी सब आपत्तियोंका निवारण करनेके लिये सुप्रबन्ध करनेका कार्य गणपतिको करना पडता था। यह भाव निम्नलिखित नामोंसे ज्ञात होता है– ' **गणभीतिहर, गणदुःखप्रणाशन, गणभीत्यपहारक, गणसौख्यप्रद, गणाभीष्टकर, गणरक्षणकर्ता,** ' ऐसे अनेक नाम हैं, जो बताते हैं कि गणोंका सब प्रकारसे हित करनेके लिये गणोंके अध्यक्षको अनेक प्रकारका योग्य प्रबंध करना पडता था।

' व्रात ' के विषयमें जिम्मेवारी थोडी होती है। जिस नियम या शर्तसे वह व्रात संघटित होता था, उतना ही उत्तरदायित्व संघाधिपतिपर रहता था। अन्य बातोंके विषयमें उसको देखने की आवश्यकता नहीं होती थी।

गण व्यवस्थामें छोटीमोटी कई संस्थाएं थीं, जो निम्नलिखित नामोंसे ज्ञात हो सकती हैं– ' गणप, गणवर, गणेश, गणपति, गणाधीश, गणाग्रणी, गणाध्यक्ष, गणेश्वर, गणैकराट्, गणाधिराज, गणनायक, गणमण्डलाध्यक्ष ' ये पद एक अर्थके वाचक नहीं हैं। प्रत्येक पदमें अधिकारका भेद है और तदनुसार छोटे या बडे संघका भी वह सूचक है।

गणमण्डलाध्यक्ष वह है, जो अनेक गणोंके संघोंका अध्यक्ष होता है। गणनायक वह है, जो गणोंको चलानेवाला है। गणप वह है कि जो गणोंका पालन करता है। ये सब पद गणशासन की प्रणाली बताते हैं। इन सबका विचार करनेसे इस शासनसम्बन्धी सब बातोंका पता लग सकता है, पर हमें इस लेखमें गणपतिसंस्थाका पूर्ण विचार करना नहीं है, प्रत्युत रुद्रशासन-

संस्थाका विचार करना है। इसके अन्तर्गत गणपति पद होनेसे गणपतिसंस्थाका थोडासा विचार करना आवश्यक हुआ, अतः अतिसंक्षेपसे यह विचार यहां किया है।

अपना प्रकृत विषय ठीक तरह समझमें आनेके लिये यजुर्वेद अ. १६ में आये गण और गणपति का थोडासा अधिक विचार करना आवश्यक है। विचार करनेके लिये मान लीजिये कि, '**रथकार-गण**' है, अर्थात् गाडियाँ बनानेवालोंका एक संघ रुद्रके अधिराज्यमें स्थापन हुआ है। इसका एक अध्यक्ष होगा, जिसका नाम '**रथकार-गणेश**' होगा। इस अध्यक्षका प्रथम कर्तव्य है अपने संघमें स्थित सदस्योंकी गणना करना, एक पुस्तकमें अपने सदस्योंके नाम, स्थान तथा उनकी आवश्यकताओंका लेख तैयार करके सुरक्षित रखना। अपने गणको अर्थात् संघसदस्यको कार्य न होगा, तो उसको कार्य देना, भोजनका प्रबंध न होगा तो करना, बीमार होनेपर दवाका प्रबंध करना, अर्थात् काम लेना और उसके बदले दाम देना अथवा सुखसाधन देना। इतने वर्णनसे पाठकोंके मनमें यह बात आयी होगी कि, यह गणव्यवस्था कैसी होनी चाहिये।

'**गण-आर्ति-हर**' यह नाम इस प्रबंधकी सुव्यवस्था का सूचक है। गणव्यवस्थामें आये सदस्योंकी हरप्रकारकी आपत्तियोंको दूर करना गणनायकका कर्तव्य होता है और वह उसको करना ही पडता है। सदस्य कर्म करनेके जिम्मेवार हैं, शेष जिम्मेवारी नायकपर रहती है।

पाठक ऐसी कल्पना करें कि, इस **रथकार-गण** में १०० सदस्य होंगे, तो उन को उन के करनेयोग्य काम देना, उन से काम करवा लेना और उन को सुखसाधन समय पर देना, यह इस गणसंस्था में अध्यक्ष का मुख्य कर्तव्य है। ऐसा प्रबन्ध करने के लिये देशभर कैसी सुव्यवस्था रखना आवश्यक है, इस का विचार पाठक कर सकते हैं। यह रथकार-संघ के विषय में हुआ।

इस के पश्चात् ऐसे अनेक गणों का '**गण-मण्डल**' होता है। जिस में एक दूसरे के साथ सम्बन्ध रखनेवाले अनेक उपकारण गणों का परस्पर सम्मेलन होता है और अनेक 'गणमण्डलों' का मिलकर एक '**महागणमण्डल**' हुआ करता है। हम पूर्वोक्त रुद्राध्यायमें देखेंगे कि, गणमण्डल में रथकार-गण के साथ कौन से अन्य गण संमिलित हो सकते हैं। हमारे विचार से निम्नलिखित कारीगरोंका गणमण्डल रथकार-गणके साथ बन सकता है- (क्षत्तृगण) बढइयोंका संघ, (तक्षगण) तर्खाणों का संघ, (कर्मारगण) लुहारों का संघ, ये और ऐसे एक दूसरेके साथ सम्बन्ध रखनेवाले अनेक कारीगरों के गणोंका मिलकर यह गणमण्डल होगा।

इस गणमण्डल का एक अध्यक्ष होगा। उसका कर्तव्य सब गणों का हित करना होगा। इस तरह सदस्यों का गण, गणों का गणमण्डल और गणमण्डलों का महागणमण्डल होता है। ऐसा संघों का यह जाला देशभर फैला रहता है। यह है गणशासन की आयोजना।

रुद्रसूक्त में जो नाम गिनाये हैं, उन में जो कार्यव्यवहार के वाचक नाम हैं, उन सब के ऐसे गण हैं, ऐसा समझकर इस रुद्रशासनप्रणाली का विचार करना चाहिये। तब वैदिक गणशासन का महत्त्व ध्यान में आ सकता है। यहां प्रत्येक के संघ का स्वतन्त्र विचार करके लेख को व्यर्थ बढाने की आवश्यकता नहीं है। रुद्र की शासनव्यवस्था की कल्पना ही पाठकों को देना है। ऊपर दिये वर्णन से वह व्यवस्था पाठकों के मन में आ गयी होगी। इस तरह ब्राह्मणवर्ग में कई गण अथवा संघ, क्षत्रियों में अनेक गण अथवा संघ, इसी तरह वैश्य और शूद्रों में भी कार्यव्यवहार तथा व्यवसाय के गण बनाने से यह रुद्रशासनप्रणाली परिपूर्ण होती है।

राष्ट्र में कोई मनुष्य गणव्यवस्था से बाहर नहीं रहने पाय, जिसके कर्म और व्यवहार की गणना नहीं हुई, ऐसा भी कोई मनुष्य नहीं रहना चाहिये। प्रत्येक मनुष्य को उसके करनेके लिये सुयोग्य कार्य मिलना चाहिये और उस कर्म के बदले उसको कर्मफलस्वरूप आवश्यक सुखसाधन प्राप्त होने चाहिये। यह इस गणव्यवस्था का मूल सूत्र है।

प्रत्येक मनुष्य को अपना कर्म उत्तम कुशलता के साथ समाप्त करना चाहिये, कर्म के फलस्वरूप सुखसाधन देना इस शासनसंस्था की जिम्मेवारी है। कर्म करनेपर हरएक को आवश्यक सुखसमाधान मिलने ही चाहिये। आवश्यक सुखसाधनों में रहने के लिये सुयोग्य स्थान, भोजन के लिये योग्य और आवश्यक अन्न, पीने के लिये उत्तम जल, ओढने के लिये आवश्यक वस्त्र, बीमारी की निवृत्ति के लिये चिकित्सा के साधन, धर्मसंस्कार के समय पर होनेकी व्यवस्था, विद्या की पढाईकी व्यवस्था और आध्यात्मिक उन्नति के लिये आवश्यक गुरूपदेश आदिका समावेश होना स्वाभाविक है। जो सदस्य उत्तम धर्मा-

नुकूल रहेंगे, उनका इस व्यवस्था से कल्याण होगा। पर जो नियमभंग करेंगे, उनको कठोर दण्ड देना भी इस रुद्रशासन के प्रबंधद्वारा ही होता रहता है। उसमें क्षमा नहीं होगी।

रुद्रसूक्त में जो नाम कार्यव्यवहार करनेवालोंके गिनाये हैं, उतने ही कार्यव्यवहार करनेवाले हैं, ऐसी बात नहीं है। किसी देशविशेषमें इससे न्यून वा अधिक भी कार्यव्यवहार करनेवाले लोग हो सकते हे। वहा की स्थिति के अनुसार न्यून वा अधिक गणों की व्यवस्था होगी। उस रुद्राध्याय के वर्णन में इस रुद्रीय शासनव्यवस्था का पता लगने के लिये केवल सूचनामात्र उल्लेख है। उस अध्याय में '**गण, गणपति**' तथा '**व्रात, व्रातपति**' ऐसे नाम लिखकर इस गणशासन के व्यवहार की सूचना दी है। परन्तु प्रत्येक धंधेवाले के साथ '**गण**' शब्द उस अध्याम में लगाया नहीं है। वह उन धंधेवाले नामों के साथ लगाकर इस शासन की कल्पना पाठकों को करनी चाहिये, इसीलिये यह लेख लिखा है।

उक्त अध्याय में कई पद सर्वसामान्य भाव बतानेवाले हैं, उन्हें देखिये- (**उपवीती**) यज्ञोपवीतधारी, (**उष्णीषी**) पगडीधारी, (**कपर्दी**) शिखाधारी, (**व्युप्तकेश**) जिस के बाल कटे हैं। ये पद सामान्य हैं। प्रत्येक वर्णके लोगों को ये पद लगाये जा सकते हैं। 'उपवीती' पद तीन वर्णों के लिये प्रयुक्त हो सकता है, शेष तीनों पद सब मानवोंके लिये प्रयुक्त हो सकते हैं।

इसी तरह (स्वपत्) सोनेवाला, (जाग्रत्) जागनेवाला, (शयानः) लेटनेवाला, (आसीनः) बैठनेवाला आदि पद सर्वसामान्य मानवों के लिये अथवा प्राणियों के लिये लगाये जा सकते हैं। तथा (महान्) बडा, (ज्येष्ठ) श्रेष्ठ, (प्रथम) पहिला, (कनिष्ठ) छोटा आदि पद भी सामान्य पद हैं, जो हरएक प्राणी के लिये प्रयुक्त हो सकते हैं। ऐसे सामान्य पद इस अध्याय में कौनसे हैं, उनका पता पाठकों को उक्त पदों का अर्थ देखने से लग सकता है। ऐसे सर्वसामान्य पद छोडने चाहिये, और शेष पदों में जो पद कामधंधेके सूचक हैं, व्यापार व्यवहार के सूचक तथा विशेष उद्यम के सूचक हैं, उनके साथ ही यह '**गण**' पद अथवा '**व्रात**' पद लग सकता है। ये '**गण, व्रात** और **पुंज**' पद सब व्यवसायों के साथ लगनेवाले पद हैं। उदाहरणके लिये हम कुछ ऐसे गण बता देते हैं—

ब्राह्मणवर्ण में- **गृत्सगण** (कवियोंका संघ), **श्रुतगण** (श्रुतिशास्त्रज्ञों का संघ), **अधिवक्तृगण** (उपदेशक संघ), **भिषग्गण** (वैद्यों का संघ), इ. इ.

क्षत्रियवर्ण में- **क्षेत्रपति-गण** (खेतोंके मालिकों का संघ), **रथीगण** (रथियोंका संघ), **स्वायुधगण** (उत्तम हथियार चलानेवालों का संघ), **दूरेवधगण** (दूर से वध करनेवालों का संघ), इ. इ.

वैश्यवर्णमें- **वणिग्गण** (व्यापारियोंका संघ), **संग्रहीतृ-गण** (बडे बडे संग्रह [Store] करनेवालोंका संघ), **पशु-पतिगण** (पशुपालकों का संघ), इ. इ.

शूद्रवर्ण में- **रथकारगण** (गाडी बनानेवालों का संघ), **इषुकृद्गण** (बाण बनानेवालों का संघ), **कुलालगण** (कुम्हारों का संघ), **निषादगण** (निषादोंका संघ), इ. इ.

इस तरह इस रुद्राध्याय का विचार करके जितने धंधेवाले यहां हैं और जितने कल्पना में आ सकते हैं, उतनों के संघों की अर्थात् उतने गणोंकी अथवा व्रातोंकी कल्पना पाठक कर सकते हैं। इस तरह गणोंकी स्थापना के पश्चात् अनेक परस्पर सहायक गणोंका मिलकर एक गणमण्डल बनने की भी कल्पना पाठक करें। प्रत्येक गण का एक अध्यक्ष तथा गणमण्डल का प्रमुख बनाने का भी विचार इसी तरह हो सकता है। इस संस्था के अध्यक्ष वा प्रमुख का कर्तव्य पूर्व स्थानमें बताया ही है। गणके सब सदस्यों का ठीक तरह योगक्षेम चलाना संघप्रमुखों का कर्तव्य है। कर्म कुशलता से करना संघस्थों का कर्तव्य है। इस तरह विचार करनेसे निःसन्देह पता लग सकता है कि, यह गणशासन की आयोजना अत्यंत उत्तम है और बडी सुखदायी भी है।

इस में कर्मकर्ताओं को चिंता नहीं है, प्रमुखों को ही चिंता रहती है। कर्मकर्ताको इतनी ही चिंता रहती है कि, अपनी कारीगरी की अत्यधिक उन्नति करना। सबका योगक्षेम गणव्यवस्थाके प्रबंधद्वारा यथायोग्य होता रहता है।

शिक्षाका प्रबंध ब्राह्मणों के द्वारा विनामूल्य होता रहता है। रक्षाका प्रबंध क्षत्रिय करते रहते हैं। इसी तरह वैश्यशूद्रों के व्यवसायों का प्रबंध होता रहता है। और सब मानवों का योगक्षेम चलता है।

'**गणनायक**' का कार्य गणके सदस्यों को चलाना है। यहां नायक का अर्थ अधिपति नहीं है, परन्तु नेता अर्थात्

चालक है। आज क्या कर्तव्य करना चाहिये, इस विषय की योग्य संमति अपने सदस्यों को देकर जो अपने संघ से उत्तमोत्तम कार्य कराता रहता है, वही गणनायक होता है। गण का ईश, गण का पालक, गण का अधिपति, गण का नायक ये सब विभिन्न कर्तव्य बतानेवाले पद हैं। इनके विभिन्न कर्तव्य अच्छी तरह समझनेसे ही गणशासन का उपयोगित्व ठीक तरह ध्यान में आ सकता है।

गण का अधिष्ठाता जानता है कि, अपने संघ में कितने कर्मकर्ता हैं, किसको किस वस्तु की जरूरत है, उस की आवश्यकता की पूर्तता किस तरह करनी चाहिये, अपने संघ में कौन बीमार है, किस वैद्य से उसकी चिकित्सा करनी योग्य है, आदि का विचार गण का अधिष्ठाता करता रहता है। गणमण्डल के अन्दर अनेक संघ संमिलित रहते हैं, उनके धंधोंका परस्पर संबंध रहता है और वे धंधे एक दूसरे के साहाय्यकारी रहते हैं। इसलिये गणमण्डल की सुव्यवस्थासे सब गणों का सुख बढता जाता है।

गणमण्डलों के मुख्य **महागणमण्डलाध्यक्ष** के पास सभी प्रकार की व्यवस्था रहती है। सारे कारीगरोंके सब पदार्थ उसके कार्यालयमें जमा होते हैं और आवश्यकताके अनुसार वह पदार्थों का लेनदेन करता है। अनावश्यक वस्तुओं के निर्माण पर वह प्रतिबंध रखता है, और आवश्यक वस्तुओं के निर्माण की प्रेरणा करता है। एक वार इस तरह की सुव्यवस्था की कल्पना पाठकोंके मनमें उतर गयी, तो वे ही इस सब व्यवस्था के विषय में उत्तम कल्पना अपने मन में कर सकते हैं। इस दृष्टि से यह वा० यजुर्वेद का १६ वाँ अध्याय विशेष अध्ययनीय है। साथ ही साथ वा० यजुर्वेद ३० वाँ अध्याय भी मननपूर्वक अध्ययन करनेयोग्य है। १६ वाँ अध्याय रुद्रदेवताके रूप बताने के लिये है और ३० वाँ अध्याय नारायण पुरुष के रूप बताने के लिये है। पर तत्त्वदृष्टि से दोनों का आशय एक ही है।

यह गणशासनव्यवस्था वेद की आदर्श शासनव्यवस्था है। इस से प्रजा का हित अधिक से अधिक हो सकता है। प्रजा का सुख अधिक से अधिक करने के लिये इसी मार्ग से जाना चाहिये। इस में शासकों की व्यवस्था इस तरह रहती है—

१. **रुद्र** = (महारुद्र, महादेव) = सर्वाधिपति।

२. **मंत्री** = मन्त्री, सलाहकार।

३. **सभा, सभापति** = राष्ट्रसभा, राष्ट्रसभापति, ग्रामसभा, प्रांतसमिति, आमंत्रण (मन्त्रीमंडल)।

४. **गण, गणपति** = गणोंकी नाना प्रकार के संघों की व्यवस्था।

५. **व्रात, व्रातपति** = नाना प्रकार व्रतनिष्ठ संघों की व्यवस्था।

६. **पुञ्जिष्ठ** = मानवपुञ्जों की व्यवस्था।

यह व्यवस्था पूर्व स्थान में बतायी है। गण, महागण, गणमण्डल आदि बडे बडे संघों में से राष्ट्रसभा के सदस्य चुने जाते हैं और इस तरह राज्य का नियंत्रण होता रहता है और वहां प्रत्यक्ष जनताके साथ रातदिन रहनेवाले और जनता की स्थिति देखनेवाले ही लोग आते हैं, इसलिये उन का शासन जनहित का साधक होता है।

इस के साथ साथ निम्न लिखित कार्यकर्ता भी होते हैं—

७. **क्षेत्रपतिः** = खेतों की रक्षा करनेवाले,

८. **वनपतिः** = वनों की पालना करनेवाले,

९. **स्थपतिः** = स्थानों के पालनकर्ता,

१०. **कक्षाणां पतिः** = राष्ट्र की कक्षा चारों ओर की परिधि होती है, वहीं की सुरक्षा करने के लिये जो नियुक्त होते हैं, वे कक्षापति कहलाते हैं, गुप्त स्थानों के रक्षक।

११. **पत्तीनां पतिः** = पैदल विभाग के नेता,

१२. **सेना, सेनापतिः** = सब प्रकार की सेना और उस के अधिपति,

१३. **सेनानी** = सेना का संचालन करनेवाले,

१४. **आव्याधिनीनां पतिः** = हमला करनेवाली सेना के नेता।

इस तरह सेना की व्यवस्था इस रुद्रशासन में रहती है। इस रुद्राध्याय में सैनिकों के नाम बडे विस्तारपूर्वक दिये हैं। पाठक उन सब को यहां रखकर उन का कार्य राष्ट्ररक्षा में कितना है, इस का यथायोग्य विचार करें, उन सबको यहां पुनः लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है।

१५. **वास्तुपः** = घरोंकी रक्षाके लिये नियुक्त पहरेदार,

१६. **वास्तव्यः** = लोग जहां रहते हैं, वहां रहनेवाला,

१७ गह्वरेष्ठः = गिरिकंदरों की रक्षाके लिये नियुक्त,
१८. नादेयः, तीर्थ्यः = नदी तैरकर पार होनेके स्थान-पर रक्षा के लिये तथा सहाय-तार्थ नियुक्त,
१९. नक्तंचरः = रात्रीके समय घूमकर रक्षा करनेमें नियुक्त।

इस तरह अनेकानेक पदोंसे पाठक योग्य बोध प्राप्त कर सकते हैं और रुद्र की शासनव्यवस्थाका पता भी इस से लगा सकते हैं।

यहां पाठक देखें कि, रुद्राध्याय (वा. यजु. अ. १६) के विशेष सूक्ष्म रीति के इस अध्ययन से एक विशेष प्रकार की गणशासन की प्रणाली का बोध यहां हमें मिला है। यह वैदिक व्यवस्था है और प्रत्येक प्रजाजनका इससे लाभ हो सकता है। इस विषय में विस्तारपूर्वक बहुत कुछ स्पष्टीकरण करना आवश्यक है, परन्तु वैसा करने के लिये हमारे पास यहां स्थान नहीं है।

एक रुद्रके अनेक रूप हैं।

एक ही रुद्र के ये सब मानवी रूप हैं। गण, गणपति ये दोनों रुद्र के रूप हैं। मन्त्री और राजा, सेना और सेनापति, क्षेत्र और क्षेत्रपति, वणिक् और ग्राहक, शिष्य और गुरु ये सब रुद्र के रूप हैं। कोई मनुष्य, कोई प्राणी अथवा कोई वस्तु रुद्रका रूप नहीं, ऐसी वस्तु यहां नहीं है।

यहां राजा भी ईश्वर का रूप है और प्रजा भी। दोनों मिलकर एक ईश्वरके दो रूप हैं। राजा-प्रजा, गुरु-शिष्य, मालक-मजदूर, धनी-सेवक, ज्ञानी-अज्ञानी ये सब ईश्वरके ही रूप हैं, अतः ये परस्पर की सेवा करनेयोग्य हैं। एक सत्ता के ये अंश हैं। अतः सब की मिलकर एक ही सत्ता माननी चाहिये। यहां किसी की भी विभिन्न सत्ता नहीं है। हम सब एक ही जीवन के अंश हैं, यह जानकर परस्पर के सहायक व्यवहार हम सबको करने चाहिये।

जिस तरह एक शरीर में सिर, आंख, नाक, कान, मुख, जिह्वा, दांत, होट, गाल, बाहु, अंगुलियां, हात, पेट, पांव आदि अनेक अवयव एक ही जीवनके अवयव हैं और पूर्णतया परस्पर सहायता करना इनका कर्तव्य है, सब का मिलकर एक जीवन है, यह जानना, मानना और उस एक जीवन के हितके लिये अपना समर्पण करना प्रत्येक अवयव का कर्तव्य है, उसी तरह सब मानव एक ही जीवनके अंश हैं, यह जानना, मानना और उस अखंड, अटूट, अनन्य एक जीवनका अत्यधिक हित करनेके लिये अपने जीवनको लगाना, अर्थात् पूर्ण की सेवाके लिये अंशने अपना अर्पण करना आवश्यक है।

जो लोग शंका करते हैं कि सदैक्यवादसे राष्ट्रीय शासन किस तरह होगा, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रकी उन्नति तथा राष्ट्रीय संघटना किस तरह होगी, इस शंकाका उत्तर इस लेखमें दिया गया है। वेदने जनताकी उन्नतिके लिये '**सदैक्यवाद**' दिया और इस वादसे सिद्ध होनेवाला राष्ट्रीय संघटनाका आदर्श भी मानवोंके सम्मुख गणव्यवस्थाद्वारा रख दिया। सदैक्यवादसे अनन्य-भावकी सिद्धता होती है और सब प्राणियोंका मिलकर एक अखण्ड और अटूट जीवन है, इसके विषयमें निश्चय होता है। इस निश्चयके पश्चात् व्यक्ति व्यक्तिकी, संघ संघकी तथा जाति जाति की सेवामें लगकर, परस्पर सेवाशुश्रूषासे जो सबकी उन्नति होती है, उस उन्नतिकी आयोजनाकी कल्पना इस गणसंस्थासे पाठकों के मनमें स्थिर हो सकती है। इस तरह सदैक्यवादसे राष्ट्रोन्नति सिद्ध होती है और इससे मानवताका भी पूर्ण विकास हो सकता है।

इस रुद्राध्याय में सब प्राणी रुद्रके रूप हैं ऐसा कहकर संघ-टना का वैदिक संदेश दिया है। अन्य स्थानों में पुरुष, नारायण, आत्मा, ब्रह्म आदिके सब रूप हैं, ऐसा बता कर वही संदेश दिया है। सदैक्यवाद का तत्त्व यह है कि, सबके रूप भिन्न होने पर भी सब की सत्ता तत्त्वतः एक मानना। यहां तत्त्वतः भिन्न अनेक सत्ताएं नहीं हैं। इस सदैक्यवाद के सिद्धान्त को व्यवहार में लानेके लिये छोटे छोटे गणों में यह तत्त्व प्रथम आचरणद्वारा तथा परस्पर सेवाद्वारा सिद्ध करना चाहिये। पश्चात् गणों के, संघों के और राष्ट्रके व्यवहार में लाना चाहिये और अन्त में मानवों के व्यवहार में लाना योग्य है। इसका मार्ग जो वेद ने बताया है, वह यह है। इसका विचार पाठक करें।

अस्तु। रुद्रदेवताका स्वरूप और उसका कार्य इसका विचार यहांतक हुआ। पाठक रुद्रके मंत्रोंका अधिक विचार करें और वेदका आशय जाननेका यत्न करें। यहां रुद्रके संपूर्ण मंत्रोंका संग्रह इसी प्रकारके मनन के लिये इकट्ठा किया है।

रुद्रदेवताकी विषयसूची।

रुद्र-देवता-मंत्रोंकी ऋषिसूची।

रुद्रः।

रुद्रसहचारी देवगणः ।

रुद्र-देवताकी सूचियाँ ।



दैवत-संहिता।

(ऋग्यजुःसामाथर्वणां संहितानां सर्वान् मन्त्रान् दैवतानुसारेण संगृह्य निर्मिता।)

७ रुद्रदेवता।

॥ १ ॥ (ऋ० १।४३।१-२,४-६)

(१-५) कण्वो घौरः। गायत्री।

कद् रुद्राय प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे । वोचेम शंतमं हृदे १
यथा नो अदितिः करत् पश्वे नृभ्यो यथा गवे । यथा तोकाय रुद्रियम् २
गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम् । तच्छंयोः सुम्नमीमहे ४
यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते । श्रेष्ठो देवानां वसुः ५
शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये । नृभ्यो नारिभ्यो गवे ६ ५

॥ २ ॥ (ऋ० १।११४।१-११)

(१-१६) कुत्स आङ्गिरसः। जगती; १०-११ त्रिष्टुप्।

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् १
मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु २
अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः।
सुम्नायन्निद् विशो अस्माकमा चरा रिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ३
त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वङ्कुं कविमवसे नि ह्वयामहे।
आरे अस्मद् दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद् वयमस्या वृणीमहे ४ ९

दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे ।
हस्ते बिभ्रद् भेषजा वार्याणि शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ५ १०
इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम् ।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ ६
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ७
मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधी— र्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ८
उप ते स्तोमान् पशुपा इवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे ।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमा— था वयमव इत् ते वृणीमहे ९
आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु ।
मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवा— धा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः १० १५
अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता— मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ११ १६

॥ ३ ॥ (ऋ० २।३३।१-१५)

(१७-३१) गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः । त्रिष्टुप् ।

आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः ।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः १
त्वादत्तेभी रुद्र शंतमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः ।
व्य१स्मद् द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः २
श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो ।
पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीती रपसो युयोधि ३
मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभि— र्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती ।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभि— र्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ४ २०
हवीमभिर्हवते यो हविर्भि— रव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय ।
ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ५
उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान् त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् ।
घृणीव च्छायामरपा अशीया— ऽऽ विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् ६ २३

कया स्य ते रुद्र मृळयाकु—र्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः ।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्या—भी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ७
प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि ।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभि—र्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ८
स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरे—र्न वा उ योषद् रुद्रादसुर्यम् ९ २५
अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वा—र्हन् निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति १०
स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानो ऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ११
कुमारश्चित् पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम् ।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे १२
या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शंतमा वृषणो या मयोभु ।
यानि मनुरवृणीता पिता न—स्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि १३
परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात् ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ १४ ३०
एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि ।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद् वदेम विदथे सुवीराः १५ ३१

॥ ४ ॥ (ऋ० ७।४६।१-४)

(३२-३५) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । जगती, ४ त्रिष्टुप् ।

इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने ।
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः १
स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति ।
अवन्नवन्तीरुप नो दुरश्चरा—ऽनमीवो रुद्र जासु नो भव २
या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति परि सा वृणक्तु नः ।
सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः ३
मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य ।
आ नो भज बर्हिषि जीवशंसे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४ ३५

*

॥ ५ ॥ (ऋ० ७।५९।१२)

रुद्रः (त्र्यम्बकः) (मृत्युविमोचनी ऋक्) । अनुष्टुप् ।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् १२ ३६

॥ ६ ॥ (३७-१११) (वा० य० ३।५७-६३) ×

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहैष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः ५७
अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम् ।
यथा नो वस्यसस्करद् यथा नः श्रेयसस्करद् यथा नो व्यवसाययात् ५८
भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् । सुखं मेषाय मेष्यै ५९
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनं । उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ६० ४०
एतत् ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि ।
अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिंसन्नः शिवोऽतीहि ६१
त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद् देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ६२
शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः ।
निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ६३ ४३

॥ ७ ॥ (वा० य० १०।२०)

रुद्र यत् ते क्रिवि परं नाम तस्मिन् हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा २० ४४

॥ ८ ॥ (वा० य० ११।५४)

रुद्राः संसृज्य पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे ।
तेषां भानुरजस्र इच्छुक्रो देवेषु रोचते ५४ ४५

॥ ९ ॥ (वा० य० १६।१-६६) +

नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः १
या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी ।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि २
यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत् ३ ४८

× वा० य० ३।६० (पूर्वार्धः) = ऋ० ७।५९।१२

+ वा० य० १६।१५-१६= ऋ० १।११४।७-८

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि ।
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमना असत् ४
अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् ।
अहीꣳश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परासुव ५ ५०
असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः ।
ये चैनꣳ रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषाꣳ हेड ईमहे ६
असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः ।
उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः ७
नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे ।
अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः ८
प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम् ।
याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप ९
विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ२ उत ।
अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः १० ५५
या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः ।
तयास्मान् विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परिभुज ११
परि ते धन्वनो हेतिरस्मान् वृणक्तु विश्वतः ।
अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्निधेहि तम् १२
अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे ।
निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव १३
नमस्त आयुधायानातताय धृष्णवे । उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने १४
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः १५ ६०
मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे १६

नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः
पशूनां पतये नमो नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो हरिकेशायो-
पवीतिने पुष्टानां पतये नमः १७ ६२

नमो बभ्लुशाय व्याधिनेऽन्नानां पतये नमो नमो भवस्य हेत्यै जगतां पतये नमो नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणां पतये नमो नमः सूतायाहन्त्यै वनानां पतये नमः १८

नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो नम उच्चैर्घोषायाक्रन्दयते पत्तीनां पतये नमः १९

नमः कृत्स्नायतया धावते सत्वनां पतये नमो नमः सहमानाय निव्याधिन आव्याधिनीनां पतये नमो नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमः २० ६५

नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निषङ्गिण इषुधिमते तस्कराणां पतये नमो नमः सृकायिभ्यो जिघांसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो नमोऽसिमद्भ्यो नक्तञ्चरद्भ्यो विकृन्तानां पतये नमः २१

नम उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमो नम इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमो नम आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नम आयच्छद्भ्योऽस्यद्भ्यश्च वो नमः २२

नमो विसृजद्भ्यो विध्यद्भ्यश्च वो नमो नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमो नमः शयानेभ्य आसीनेभ्यश्च वो नमो नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमः २३

नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो नमोऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो नम आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमो नम उगणाभ्यस्तृंहतीभ्यश्च वो नमः २४

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः २५ ७०

नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्यो अरथेभ्यश्च वो नमो नमः क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यो अर्भकेभ्यश्च वो नमः २६

नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः २७

नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च २८ ३७

नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिश-
याय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च २९
नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे
च नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च ३० ७५
नम आशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चाव-
स्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च ३१
नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय
चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ३२
नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय
चावसान्याय च नम उर्वर्याय च खल्याय च ३३
नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नम आशुषेणाय
चाशुरथाय च नमः शूराय चावभेदिने च ३४
नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरूथिने च नमः श्रुताय च
श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च ३५ ८०
नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायु-
धिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च ३६
नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः कुल्याय च
सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च ३७
नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वीध्र्याय चातप्याय च नमो मेघ्याय च
विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च ३८
नमो वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय
च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च ३९
नमः शङ्गवे च पशुपतये च नम उग्राय च भीमाय च नमोऽग्रेवधाय च दूरे-
वधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ४० ८५
नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय
च शिवतराय च ४१
नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च
कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च ४२ ८७

नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किꣳशिलाय च क्षयणाय च नमः कप-
र्दिने च पुलस्तये च नम इरिण्याय च प्रपथ्याय च ४३

नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च
निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च ४४

नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पाꣳसव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय
चोलप्याय च नम ऊर्व्याय च सूर्व्याय च ४५ ९०

नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नम आखिदते च
प्रखिदते च नम इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानाꣳ
हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नम आनिर्हतेभ्यः ४६

द्रापे अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित ।
आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ्मो च नः किञ्चनाममत् ४७

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ४८

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी ।
शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ४९

परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड ५० ९५

मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव ।
परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिं वसान आचर पिनाकं बिभ्रदागहि ५१

विकिरिद्र विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः ।
यास्ते सहस्रꣳ हेतयोऽन्यमस्मन्निवपन्तु ताः ५२

सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः । तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ५३

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम् ।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ५४

अस्मिन् महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा अधि । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव० ५५ १००

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवꣳ रुद्रा उपश्रिताः । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव० ५६

नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव० ५७

ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव० ५८ १०३

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः । तेषांꣳ सहस्रयोजनेऽव० ५९
ये पथां पथिरक्षय ऐलबृदा आयुर्युधः । तेषांꣳ सहस्रयोजनेऽव० ६० १०५
ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः । तेषांꣳसहस्रयोजनेऽव० ६१
येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् । तेषांꣳ सहस्रयोजनेव० ६२
य एतावन्तश्च भूयांꣳसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे । तेषांꣳ सहस्रयोजनेऽव० ६३

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ६४

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ६५ ११०

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ६६ १११

॥ १० ॥ (अथर्व० १।१९।३)
(११२-११७) ब्रह्मा । पथ्यापङ्क्तिः ।

यो नः स्वो यो अरणः सजात उत निष्ट्यो यो अस्माँ अभिदासति ।
रुद्रः शरव्ययैतान् ममामित्रान् वि विध्यतु ३ ११२

॥ ११ ॥ (अथर्व० ६।५५।२-३)
२ त्रिष्टुप्, ३ जगती ।

ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद् वर्षाः स्विते नो दधात ।
आ नो गोषु भजता प्रजायां निवात इद् वः शरणे स्याम २
इदावत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन्नमः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ३ ११४

॥ १२ ॥ (अथर्व० १३।४।४; १३।६।२५-२६) ।
४ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, २५ एकपदाऽऽसुरी गायत्री, २६ आर्च्यनुष्टुप् ।

सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ४ ११५

स एव मृत्युः सोऽमृतं सोऽभ्वं१ स रक्षः २५
स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेये नमोवाके वषट्कारोऽनु संहितः २६ ११७

॥ १३ ॥ (अथर्व० १।२७।६)

(११८) कपिञ्जलः । अनुष्टुप् ।

रुद्र जलाषभेषज नीलशिखण्ड कर्मकृत् ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ६ ११८

॥ १४ ॥ (अथर्व० ७।८७।१)

(११९-१४१) अथर्वा । जगती ।

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्व१न्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश ।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये १ ११९

॥ १५ ॥ (अथर्व० १५।५।१-२१)

१ त्रिपदा समविषमा गायत्री; २ त्रिपदा भुरिगार्ची त्रिष्टुप्; ३,६,९,१२,१५,१८,२१ द्विपदा प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ४ त्रिपदा स्वराट् प्राजापत्या पङ्क्तिः; ५,८,११,१७ त्रिपदा ब्राह्मी गायत्री; ७,१०,१६ त्रिपदा ककुप्; १३,१९ भुरिग् विषमा गायत्री, १४ निचृद्ब्राह्मी गायत्री; २० विराट्,

तस्मै प्राच्या दिशो अन्तर्देशाद् भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १ ॥ १ १२०
भव एनमिष्वासः प्राच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ २ ॥ २
नास्य पशून् समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ ३ ॥ ३
तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशाच्छर्वमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १ ॥ ४
शर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ २ ॥ ५ नास्य पशून्० ॥ ३ ॥ ६ १२५
तस्मै प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशात् पशुपतिमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १ ॥ ७
पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ २ ॥ ८ नास्य पशून्० ॥ ३ ॥ ९
तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशादुग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १ ॥ १०
उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ २ ॥ ११ नास्य पशून्० ॥ ३ ॥ १२
तस्मै ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशाद् रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १ ॥ १३ १३२

रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ २ ॥ १४ नास्य पशून्० ॥ ३ ॥ १५
तस्मा ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशान्महादेवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १ ॥ १६ १३५
महादेव एनमिष्वास ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ २ ॥ १७ नास्य पशून्० ॥ ३ ॥ १८
तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्य ईशानमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १ ॥ १९
ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्योऽनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ २ ॥ २०
नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ ३ ॥ २१ १४०

॥ १६ ॥ (अथर्व० १९।१८।३) आर्च्यनुष्टुप् ।

सोमं ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवो दक्षिणाया दिशोऽभिदासात् ३ १४१

रुद्र-सहचारी देवगणः ।

(१) रुद्रः मित्रावरुणौ च ।

॥ १७ ॥ (ऋ० १।४३।३)

(१४२) कण्वो घौरः । गायत्री ।

यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति । यथा विश्वे सजोषसः ३ १४२

(२) रुद्रः, दिशः ।

॥ १८ ॥ (अथर्व० ३।२६।१-६)

(१४३-२००) अथर्वा । दिशः, रुद्रः; १ साग्नयो हेतयः, २ सकामा अविष्यवः, ३ वैराजः, ४ सवाताः प्रविध्यन्तः, ५ सौषधिका निलिम्पाः, ६ बृहस्पतियुता अवस्वन्तः । त्रिष्टुप्; २,५-६ जगती; ३-४ भुरिक्; १-६ पञ्चपदा विपरीतपादलक्ष्मा ।

ये३ऽस्यां स्थ प्राच्यां दिशि हेतयो नाम देवास्तेषां वो अग्निरिषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा १
ये३ऽस्यां स्थ दक्षिणायां दिश्य् विष्यवो नाम देवास्तेषां वः काम इषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा २
ये३ऽस्यां स्थ प्रतीच्यां दिशि वैराजा नाम देवास्तेषां व आप इषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ३ १४५

❀

येऽ३ऽस्यां स्थोदीच्यां दिशि प्रविध्यन्तो नाम देवास्तेषां वो वात इषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ४
येऽ३ऽस्यां स्थ ध्रुवायां दिशि निलिम्पा नाम देवास्तेषां व ओषधीरिषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ५
येऽ३ऽस्यां स्थोर्ध्वायां दिश्यवस्वन्तो नाम देवास्तेषां वो बृहस्पतिरिषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ६ १४८

॥ १९ ॥ (अथर्व० ३।२७।१-६)

दिशः, रुद्रः; १ अग्निः असितः, आदित्याः; २ इन्द्रः, तिरश्चिराजी, पितरः; ३ वरुणः; पृदाकुः, अन्नं; ४ सोमः, स्वजः, अशनिः; ५ विष्णुः, कल्माषग्रीवो वीरुधः; ६ बृहस्पतिः, श्वित्रं, वर्षम् ।
१-६ पञ्चपदा ककुम्मतीगर्भाऽष्टिः, (२ अत्यष्टिः, ५ भुरिक्)

प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽ३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः १
दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽ३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः २ १५०
प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽ३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ३
उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽ३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ४
ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽ३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ५
ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽ३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ६ १५४

(३) आदित्याः, रुद्राः।

॥ २० ॥ (अथर्व० ५।३।११)

बृहद्दिवोऽथर्वा। विराड् जगती।

ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामह एनान्।
आदित्या रुद्रा उपरिस्पृशो न उग्रं चेत्तारमधिराजमक्रत १० १५५

(४) सोमारुद्रौ।

॥ २१ ॥ (अथर्व० ५।६।१-१४)

१ ब्रह्म, २ कर्माणि, ३-४ रुद्रगणाः, ५-८ सोमारुद्रौ, ९ हेतिः, १०-१४ सर्वात्मा रुद्रः।
त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप्, ३ जगती, ४ अनुष्टुबुष्णिकत्रिष्टुब्गर्भा पञ्चपदा जगती,
५, ७ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री, ८ एकावसाना द्विपदाऽऽर्च्यनुष्टुप्,
१० प्रस्तारपङ्क्तिः, ११-१३ पङ्क्तिः, १४ स्वराट्पङ्क्तिः।

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः १
अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे।
वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् व एतत् पुरो दधे २
सहस्रधार एव ते समस्वरन् दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः।
तस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवे ३
पर्यू षु प्र धन्वा वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः।
द्विषस्तदध्यर्णवेनेयसे सनिस्रसो नामासि त्रयोदशो मास इन्द्रस्य गृहः ४
न्वे३तेनारात्सीरसौ स्वाहा।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ५ १६०
अवैतेनारात्सीरसौ स्वाहा। तिग्मायुधौ तिग्महेती० ६
अपैतेनारात्सीरसौ स्वाहा। तिग्मायुधौ तिग्महेती० ७
मुमुक्तमस्मान् दुरितादवद्याज्जुषेथां यज्ञममृतमस्मासु धत्तम् ८
चक्षुषो हेते मनसो हेते ब्रह्मणो हेते तपसश्च हेते।
मेन्या मेनिरस्यमेनयस्ते सन्तु ये३ऽस्माँ अभ्यघायन्ति ९
यो३ऽस्माँश्चक्षुषा मनसा चित्त्याकूत्या च यो अघायुरभिदासात्।
त्वं तानग्ने मेन्यामेनीन् कृणु स्वाहा १० १६५

इन्द्रस्य गृहोऽसि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ११
इन्द्रस्य शर्मासि । तं त्वा प्र पद्ये तं० १२
इन्द्रस्य वर्मासि । तं त्वा प्र पद्ये तं० १३
इन्द्रस्य वरूथमसि । तं त्वा प्र पद्ये तं० १४ १६९

(५) भव-शर्व-रुद्राः । ×

॥ २२ ॥ (अथर्व० ११।२।१-३१)

त्रिष्टुप्; १ पराऽतिजागता विराड्जगती; २ अनुष्टुब्गर्भा पञ्चपदा पथ्याजगती; ३ चतुष्पदा स्वराडुष्णिक्; ४-५,७,१३,१५-१६,२१ अनुष्टुप्; ६ आर्षी गायत्री; ८ महाबृहती; ९ आर्षी; १० पुरोकृति त्रिपदा विराट्; ११ पञ्चपदा विराड्जगतीगर्भा शक्करी; १२ भुरिक्; १४,१७-१९,२३,२६-२७ विराड्गायत्री; २० भुरिग्गायत्री; २२ विषमपादलक्ष्मा त्रिपदा महाबृहती; २४,२९ जगती; २५ पञ्चपदा ऽतिशक्करी; ३० चतुष्पदा उष्णिक्; ३१ त्र्यवसाना विपरीतपादलक्ष्मा षट्पदा (जगती ?) ।

भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम् ।
प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः १ १७०
शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा अविष्यवः ।
मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त २
क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः । नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ३
पुरस्तात् ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत । अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ४
मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव । त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ५
अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याय ते । दुद्भ्यो गन्धाय ते नमः ६ १७५
अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना । रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ७
स नो भवः परि वृणक्तु विश्वत आप इवाग्निः परि वृणक्तु नो भवः ।
मा नोऽभि मांस्त नमो अस्त्वस्मै ८
चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दश कृत्वः पशुपते नमस्ते ।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ९ १७८

× दै० [आयुर्वेद०] १७१३-१७१९ । मन्त्राः द्रष्टव्याः ।

तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वऽन्तरिक्षम् ।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु
उरुः कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः ।
स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ११ १८०
धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिनम् ।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीतः १२
योऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।
पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव १३
भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय ।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीतः १४
नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते । नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः १५
नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः १६ १८५
सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद् रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम् ।
मोपाराम जिह्वयेयमानम् १७
श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथं केशिनः पादयन्तम् ।
पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै १८
मा नोऽभि स्रा मत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते ।
अन्यत्रास्मद् दिव्यां शाखां वि धूनु १९
मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्ग्धि मा क्रुधः । मा त्वया समरामहि २०
मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो अजाविषु ।
अन्यत्रोग्र वि वर्तय पियारूणां प्रजां जहि २१ १९०
यस्य तक्मा कासिका हेतिरेकमश्वस्येव वृषणः क्रन्द एति ।
अभिपूर्वं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै २२
योऽन्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितोऽयज्वनः प्रमृणन् देवपीयून् ।
तस्मै नमो दशभिः शक्करीभिः २३
तुभ्यमारण्याः पशवो मृगा वने हिता हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
तव यक्षं पशुपते अप्स्वन्तस्तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या आपो वृधे २४ १९३

शिंशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि ।
न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान् परि
पश्यसि भूमिं पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन्त्समुद्रे २५
मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना ।
अन्यत्रास्मद् विद्युतं पातयैताम् २६ १९९
भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्वन्तरिक्षम् ।
तस्मै नमो यतमस्यां दिशीतः २७
भव राजन् यजमानाय मृड पशूनां हि पशुपतिर्बभूथ ।
यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदेऽस्य मृड २८
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा नो वहन्तमुत मा नो वक्ष्यतः ।
मा नो हिंसीः पितरं मातरं च स्वां तन्वं रुद्र मा रीरिषो नः २९
रुद्रस्यैलबकारेभ्योऽसंसूक्तगिलेभ्यः ।
इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः ३०
नमस्ते घोषिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः ।
नमो नमस्कृताभ्यो नमः संभुञ्जतीभ्यः ।
नमस्ते देव सेनाभ्यः स्वस्ति नो अभयं च नः ३१ २००

॥ २३ ॥ (अथर्व० ६।९३।१-२)

(२०१-२०२) शन्तातिः । रुद्रः; १ यमो मृत्युः, शर्वः; २ भवः, शर्वः । त्रिष्टुप् ।

यमो मृत्युरघमारो निर्ऋथो बभ्रुः शर्वोऽस्ता नीलशिखण्डः ।
देवजनाः सेनयोत्तस्थिवांसस्ते अस्माकं परि वृञ्जन्तु वीरान् १
मनसा होमैर्हरसा घृतेन शर्वायास्त्र उत राज्ञे भवाय ।
नमस्येभ्यो नम एभ्यः कृणोम्यन्यत्रास्मदघविषा नयन्तु २ २०१

(६) रुद्रः, व्याघ्रः ।

॥ २४ ॥ (अथर्व० ४।३।१-७)

(२०३-२०९) अथर्वा । अनुष्टुप्, १ पथ्यापङ्क्तिः, ३ गायत्री ७ ककुम्मतीगर्भोपरिष्टाद्बृहती ।

उदितस्त्रयो अक्रमन् व्याघ्रः पुरुषो वृकः ।
हिरुग्घि यन्ति सिन्धवो हिरुग् देवो वनस्पतिर्हिरुङ्नमन्तु शत्रवः १ २०३

परेणैतु पथा वृकः परमेणोत तस्करः।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु २
अक्ष्यौ च ते मुखं च ते व्याघ्र जम्भयामसि।
आत् सर्वान् विंशतिं नखान् ३ २०५
व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि।
आदु ष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम् ४
यो अद्य स्तेन आयति स संपिष्टो अपायति।
पथामपध्वंसेनैत्विन्द्रो वज्रेण हन्तु तम् ५
मूर्णा मृगस्य दन्ता अपिशीर्णा उ पृष्टयः।
निम्रुक् ते गोधा भवतु नीचायच्छशयुर्मृगः ६
यत् संयमो न वि यमो वि यमो यन्न संयमः।
इन्द्रजाः सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम् ७ २०९

(७) रुद्रः (अग्निः)।

॥ २५ ॥ (ऋ० ४।३।१)

(२१०) वामदेवो गौतमः। रुद्रः। त्रिष्टुप्।

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ता-द्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् १ २१०

॥ २६ ॥ (ऋ० १०।१८।१-४)

(२११-२१४) संकुसुको यामायनः। मृत्युः। त्रिष्टुप्।

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात्
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् १
मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः २
इमे जीवा वि मृतैराववृत्र-न्नभूद् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ३
इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूची-रन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ४ २१४

॥ २७ ॥ (अथर्व० ६।१३।१-३)

(२१५-२१७) अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः) । मृत्युः । अनुष्टुप् ।

नमो देववधेभ्यो नमो राजवधेभ्यः ।
अथो ये विश्यानां वधास्तेभ्यो मृत्यो नमोऽस्तु ते १ २१५
नमस्ते अधिवाकाय परावाकाय ते नमः ।
सुमत्यै मृत्यो ते नमो दुर्मत्यै त इदं नमः २
नमस्ते यातुधानेभ्यो नमस्ते भेषजेभ्यः ।
नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यो ब्राह्मणेभ्य इदं नमः ३ २१७

॥ २८ ॥ (अथर्व० ४।३५।१-७)

(२१८-२२४) प्रजापतिः । अतिमृत्युः । त्रिष्टुप्, ३ भुरिग्जगती ।

यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत् ।
यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात् तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् १
येनातरन् भूतकृतोऽति मृत्युं यमन्वविन्दन् तपसा श्रमेण ।
यं पपाच ब्रह्मणे ब्रह्म पूर्वं तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् २
यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजसं यो अन्तरिक्षमापृणाद् रसेन ।
यो अस्तभ्नाद् दिवमूर्ध्वो महिम्ना तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ३ २२०
यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः ।
अहोरात्रा यं परियन्तो नापुस्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ४
यः प्राणदः प्राणदवान् बभूव यस्मै लोका घृतवन्तः क्षरन्ति ।
ज्योतिष्मतीः प्रदिशो यस्य सर्वास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ५
यस्मात् पक्वादमृतं संबभूव यो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव ।
यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ६
अव बाधे द्विषन्तं देवपीयुं सपत्ना ये मेऽप ते भवन्तु ।
ब्रह्मौदनं विश्वजितं पचामि शृण्वन्तु मे श्रद्दधानस्य देवाः ७ २२४

॥ २९ ॥ (अथर्व० ७।१०२।१)

(२२५) द्यावापृथिवी, अन्तरिक्षम् , मृत्युः । विराट् पुरस्ताद्बृहती ।

नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे ।
मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन्मा मा हिंसिषुरीश्वराः १ २२५

॥ ३० ॥ (अथर्व० ६।६३।२-३)

(२२६-२२७) द्रुह्वणः । २ यमः, ३ मृत्युः । २ अतिजगतीगर्भा, ३ जगती ।

नमोऽस्तु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे २

अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ३ २२७

इति रुद्रदेवता समाप्ता ।

रुद्रदेवता-पुनरुक्त-मन्त्रभागाः ।

ऋग्वेदस्य प्रथमं मण्डलम् ।

[११] १।११४।६ (कुत्स आङ्गिरसः । रुद्रः)

—रुद्राय — —

त्मने तोकाय तनयाय मृळ ।

(३०) २।३३।१४ (गृत्समदः शौनकः । रुद्रः)

—रुद्रस्य — — ।

मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ ।

[१४] १।११४।९ उप ते स्तोमान् पशुपा इवाकरं ।

१०।१२७।८ (विहव्य आङ्गिरसः । विश्वे देवाः)

उप ते गा इवाकरं ।— स्तोमं ।

[१५] १।११४।१० मृळा च नो अधि च ब्रूहि देव ।

(अदितिः० ४१९) १।३५।११ (हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः। सविता)

रक्षा च नो अधि ... ।

ऋग्वेदस्य द्वितीयं मण्डलम् ।

[१८] २।३३।२ (गृत्समदः शौनकः । रुद्रः)

व्य१स्मद् द्वेषो वितरं व्यंहो ।

(इन्द्रः २०५१) ६।४४।१६ (शंयुर्बार्हस्पत्यः। इन्द्रः)

व्य१स्मद् द्वेषो युयवद् व्यंहः ।

[३०] २।३३।१४ (गृत्समदः शौनकः । रुद्रः)

परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः ।

६।२८।७ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । गावः)

परि वो हेती — ।

(इन्द्रः ३१९३) ७।८४।२ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। इन्द्रावरुणौ)

परि नो हेळो वरुणस्य वृज्याः ।

[३०] २।३३।१४=(११) १।१४।६ तोकाय तनयाय मृळ ।

ऋग्वेदस्य चतुर्थं मण्डलम् ।

[२२७] ४।३।१ (वामदेवो गौतमः । रुद्रः)

होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।

(अग्निः १०८७) ६।१६।४६ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । अग्निः)

होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।

ऋग्वेदस्य सप्तम मण्डलम् ।

[३२] ७।४६।१ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । रुद्रः)

अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे ।

(इन्द्रः १२१८) २।२१।२ (गृत्समदो भार्गवः शौनकः। इन्द्रः)

अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे ।

[३५] ७।४६।४ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । रुद्रः)

मा नो वधी रुद्र मा परा दाः ।

(इन्द्रः ८५४) १।१०४।८ (कुत्स आङ्गिरसः । इन्द्रः)

मा नो वधीरिन्द्र मा परा दाः ।

दैवत-संहितान्तर्गत

रुद्रदेवता-मन्त्राणां सूची।

दैवत-संहितान्तर्गत

रुद्रदेवताया गुणबोधक-पदसूची ।

[१ ऋग्वेदसंहिता ' ऋ० '; अथर्ववेदसंहिता ' अ० '; संहितानामविरहिताः यजुर्वेदमन्त्राः । २ जातसंज्ञाः रुद्राः बहुवचनेन निर्दिष्टाः ।]

* रुद्रस्य धनुः- शतवधं, शिखण्डि, सहस्रघ्नि, हरितं, हिरण्ययं च। (अथर्व० ११,२,१२. १८१)

* अस्य श्वानः– असंसूक्तगिलाः, ऐलबकाराः, महास्याः । (अ० ११,२,३०. १९९)

× अस्य सेनाः– केशिन्यः, घोषिण्यः, नमस्कृताः, संभुञ्जनयः । (अ० १०,२,३१. २००)

मृत्युदेवता-गुणबोधक-पदानि

मृत्युनिवारक-ब्रह्मौदन-गुणबोधक-पदानि ।

दिग्भेदेन रुद्ररूपाणि ।

अथर्व० ३.२६.१-६ (१४३-१४८) दिङ्नाम ।	देवाः ।	इषवः ।	अथर्व० ३.२७.१-६ (१४९-१५४) अधिपतिः ।	रक्षिता ।	इषवः ।	अथर्व० १५.५.१-२१ (१२०-१४०) अन्तर्देशात् अनुष्ठाता इष्वासः ।
प्राची	हेतयः	अग्निः	अग्निः	असितः	आदित्याः	भवः
दक्षिणा	अविष्यवः	कामः	इन्द्रः	तिरश्चिराजिः	पितरः	शर्वः
प्रतीची	वैराजाः	आपः	वरुणः	पृदाकुः	अन्नम्	पशुपतिः
उदीची	प्रविध्यन्तः	वातः	सोमः	स्वजः	अशनिः	उग्रः
ध्रुवा	निलिम्पाः	ओषधीः	विष्णुः	कल्माषग्रीवः	वीरुधः	रुद्रः
ऊर्ध्वा	अवस्वन्तः	बृहस्पतिः	बृहस्पतिः	श्वित्रः	वर्षम्	महादेवः
सर्वे अन्तर्देशाः।	.....	......	......	......	......	ईशानः

दैवत-संहितान्तर्गत-

रुद्रदेवताया उपमा-सूची ।

आप इव अग्निः	अ० ११,२,८. १७७	परि वृणक्तु नो भवः ।
वृषणः अश्वस्य क्रन्दः इव	अ० ११,२,२२. १९१	यस्य तक्मा कासिका हेतिः ।
घृणी इव च्छायाम्	ऋ० २,३३,६. २२	अरपाः रुद्रस्य सुम्नं अशीय ।
पशुपाः इव	ऋ० १,११४,९. १४	ते स्तोमान् उपाकरम् ।
मृगं न	ऋ० २,३३,११. २७	भीमम् ।
सूर्यः इव	ऋ० १,४३,५. ४	यः शुक्रः ।
हिरण्यं इव	ऋ० १,४३,५. ४	यः रोचते ।



दैवत-संहिता।

(८)

उषा-देवता।

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

साहित्यवाचस्पति, गीतालंकार

अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल

[स्व. नारायणजी पुरुषोत्तम विश्वस्तनिधिके बंबई निवासी विश्वस्तोंने संपूर्ण 'दैवत-संहिता' के मुद्रणके लिये १५०००) रु० दिये, इस धनके भागसे यह विभाग मुद्रित हुआ है ।]

स्वाध्याय मण्डल, पारडी

संवत् २०१५, शक १८८०, सन् १९५९

प्रकाशक :
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर, बी. ए.,
स्वाध्याय-मण्डल, भारत मुद्रणालय,
पोस्ट- ' स्वाध्याय मण्डल (पारडी) '
पारडी (जि. सुरत)

द्वितीय वार

मूल्य रु. १·७५ न. पैसे

मुद्रक :
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर, बी. ए.,
स्वाध्याय-मण्डल, भारत मुद्रणालय,
पोस्ट- ' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) '
पारडी (जि. सुरत)

उषा का परिचय

(१)

उषादेवता के सूक्तोंमें साधारणतया प्राभातिक दृश्यका अत्यन्त मनोरम एवं काव्यमय वर्णन किया हुआ है ऐसा प्रथमतः मनमें विचार उठ खडा होता है, और यह धारणा है भी ठीक, क्योंकि उषादेवता के लगभग २०० मंत्रोंमें करीब ८० मंत्र भाग स्पष्टतया प्रातःकालीन स्फूर्तिप्रद तथा प्रकाशमय दृश्य का बयान करते हुए पाये जाते हैं। इस उषावेलाके सजीव एवं आन्दोलनमय वर्णन के अतिरिक्त पचास से अधिक बार इन मंत्रोंमें आर्थिक और सांपत्तिक समृद्धि एवं वैभव के देने और पानेका उल्लेख पाया जाता है। इसलिये ऐसा निःसन्देह कहा जा सकता है कि, इन मंत्रोंमें भौतिक संपन्नता और उषःकालीन प्राकृतिक सुरम्यता का ही अत्यधिक चित्रण एवं निर्देश किया है।

अँधेरे का हट जाना और उजेलेका आविर्भाव मंत्रोंमें इस भाँति चित्रित किया है।

१. ज्योतिः कृणोति सूनरी। (ऋ. १।४८।८)

२. ज्योतिः विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती...उषा तमः वि आवः। (ऋ. १।९२।४)

३. अप प्रागात् तम आ ज्योतिरेति। (ऋ. १।११३।१६)

४. ...वि आवः ज्योतिषा तमः। उषः अनु स्वधां अव। (ऋ. ४।५२।६)

५. अप...बाधमाना तमांसि उषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात्। (ऋ. ५।८०।५)

६. पुनः ज्योतिः युवतिः पूर्वथा अकः। (ऋ. ५।८०।६)

७. ... चित्रं भान्ति उषसः ... वि ता बाधन्ते तम ऊर्म्यायाः। (ऋ. ६।६५।२)

८. ...अकः ज्योतिः बाधमाना तमांसि। (ऋ. ७।७७।१)

९. उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरिता अप देवी। (ऋ. ७।७८।२)

१०. एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि। (ऋ. ७।८०।२)

११. अपो महि व्ययति चक्षसे तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी। (ऋ. ७।८१।१)

१२. अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी। (साम. ३०३ पूर्व आ.)

१३. सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति ज्योतिः यच्छन्ति...। (ऋ. ७।७९।२)

१४. ...त्याः प्रत्यदृश्रन् पुरस्तात् ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातीः। ...अपाचीनं तमो अगादजुष्टम्। (ऋ. ७।७८।३)

१५. ...उषा ज्योतिः यच्छत्यग्रे अह्नाम्। (ऋ. ५।८०।२)

१६. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्। (ऋ. १।११३।१)

१७. इदं ...त्यत् पुरुतमं पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो ... अस्थात्। (ऋ. ४।५१।१)

१८. अस्थुः ...चित्रा उषसः पुरस्तात् ...वि ...तमसो द्वारोच्छन्तीः। (ऋ. ४।५१।२)

१. " यह भली भाँति ले चलनेवाली उषा प्रकाशका सृजन करती है; २. समूचे संसार के लिए उजाला निर्माण करती हुई उषा अँधेरा हटाचुकी है; ३. अँधेरा बिलकुल दूर हटगया और अब उजाला चला आरहा है; ४. हे उषे! तू उजालेसे अँधेरा हटा चुकी है और अब स्वकीय धारक शक्तिके अनुकूल रक्षा कर; ५. द्युलोक की मानों कन्यासी यह उषा अन्धःकार के पुञ्ज को दूर भगाती हुई उजालेके साथ आचुकी है; ६. इस युवती उषाने फिर पहले जैसेही उजाला बनाया है; ७. उषाएँ अनूठे ढंगसे जगमगाती हैं और वे रात्रीके अँधेरेको विशेषरूपसे हटाती हैं; ८. अंधःकार हटाती हुई उषा उजाला करचुकी है; ९. द्योतमान उषा सारे अँधेरे एवं बुराइयोंको उजालेसे दूर भगाती हुई चली आती है; १०. यही वह उषा जागृत हुई है जो उजालेसे अँधेरा छिपाकर नवीन जीवनका धारण करलेती है; ११. सुन्दर ढंगसे ले चलनेवाली उषा देखना संभव हो इसलिये बडा भारी अँधेरा दूर करती है; १२. हे उषे! तेरी किरणें अँधेरेको ठीक तरह हटाती हैं और उजेला दे डालती हैं; १३. वे जगमगानेवाली उषाएँ प्रकाश देती हुई सामने दीख पडीं और अ-सेवनीय अंधेरा नीचा मुंह कर चला गया; १४. दिन के आरम्भ में है

उषा उजाला देती है; १५. यह सभी प्रकाशोंमें उच्च कोटिका प्रकाश आपहुँचा है; १६. अँधेरेमेंसे यह विशालतम प्रकाश सामने उठखडा हुआ है; १७. सामने ये जगमगाती हुई उषाएँ विशेषरूपसे अँधःकारको हटाती हुई खडी हो चुकी हैं।"

इसभाँति अँधियारीके दूर हो जानेपर और सभी जगह प्रकाश का पूर्ण संचार हो चुकनेपर प्राणिमात्रमें जागृति तथा हलचल शुरु होती है जिसका वर्णन निम्न मंत्रोंमें किया दीख पडता है—

१. सूनरी उषा आयाति, पद्वत् ईयते, पक्षिणः उत्पातयति। (ऋ. १।४८।५)

२. उत्ते वयश्चित् वसतेरपप्तन् नरश्च...व्युष्टौ। (ऋ. १।१२४।१२;६।६४।६)

३. वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ (ऋ. १।४८।६)

४. वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवः अन्तेभ्यस्परि (ऋ. १।४९।३)

" १. सुन्दर रूपवाली या अच्छे ढंगसे ले चलनेवाली उषा चली जाती है तब जो कोई पैरोंसे युक्त होता है, वह चलने- लगता है और पंछी उडने लगते हैं; २. हे उषे! तेरे उठ- आनेपर मानव तथा पंछी भी अपने निवासस्थानसे उठ बाहर निकल आये; ३. हे उषे! तेरे उदय होनेपर उडनेवाले पंछी कभी नहीं बैठ जाते हैं याने तुरन्त उडना शुरु करते हैं; ४, हे (अर्जुनि उषः) श्वेतवर्णवाली उषे! (ते ऋतून् अनु) तेरी हलचल होनेके उपरान्तही (द्विपत् चतुष्पत्) मानव, चौपाये (पतत्रिणः वयः चित्) और डैनोंवाले पंछी भी (दिवः अंतेभ्यः परि) आकाशके एक छोरसे ले दूसरे छोरतक चारों ओरसे (प्रआरन्) जाने आने लगे।" तथा और भी देखिए-

१. अचेति दिवो दुहिता...विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम्। (७।७८।४)

२. उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै। (७।७७।१)

३. आविष्कृण्वती भुवनानि विश्वा। (ऋ. ७।८०।१)

४. आविरकर्भुवनं विश्वमुषाः। (ऋ. ७।७६।१)

५. विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्य...उर्विया वि भाति।
विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती...॥ (ऋ. १।९२।९)

६. विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगत्...। (१।४८।८)

७. विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरी। (ऋ. १।४८।१०)

८. दभ्रं पश्यद्भ्यः उर्विया वि चक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा। (ऋ. १।११३।५)

९. ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात्...। (ऋ. १।१२४।४)

१०. यूयं हि देवीः...परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः।
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम्॥ (ऋ. ४।५१।५)

" १. द्युलोककी कन्या इस उषाका पता लगा, अब सभी विशेषरूपसे जगमगाती हुई उषाको देख लेते हैं; २. यह उषा समूचे प्राणीमात्रको संचारके लिए प्रेरित करती हुई युवती महिलाके तुल्य समीप आकर जगमगाती है; ३. सारे विश्वको प्रकट करती है; ४. समूचे संसारको स्पष्ट कर चुकी है; ५. समूचे जीव- लोकको संचारार्थ जगाती हुई द्योतमान उषा अखिल जगत को देखकर अत्यन्त अधिक रूपसे सुहाती है; ६. सारा संसार इसे देखनेके लिए नम्र हुआ है; ७. हे सुन्दरी उषे! जो तू ऊपर उठ आती है तो सचमुच सबकी प्राणशक्ति तथा जीवनशक्ति तुझपर निर्भर है; ८. जो तनिकसा देख रहे हों वे विस्तृत रूपमें देख सकें इसलिए उषाने सारे संसारको जगाया है; ९. सोने- वालोंको जगाती हुई उषा हमेशा आती है; १०. तुम द्योतमान उषाओ! तुरन्तही तुम अखिल विश्वमें संचार करती हो और मानव एवं चौपाये जीवोंको जो कि सोये पडे हैं, संचार करनेके लिए जगाती हो।"

उपर्युक्त अवतरणोंसे स्पष्ट हुआ कि उषाके आगमनमात्रसे सारे संसारमें जागृति एवं संचरणशीलताका सूत्रपात होता है। निद्राधीन प्राणीमात्रको जागृत करना उषाकाही कार्य है। तेजस्विता, सूर्यकिरणों एवं विविध वर्णोंका चेतोहारी दर्शन उषःकालमें हमें होता है। इस संबंधमें निम्न मंत्र देखने योग्य हैं—

१. उष आभाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः। (ऋ. १।४८।९)

२. उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः। (ऋ. १।४८।१५)

३. अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाहि। (ऋ. ७।७७।५)

४. एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगुः। (ऋ. ७।७५।३)

"१. हे द्युलोककन्ये उषे! तू आल्हाददायक किरणसे जगमगाती रह; २. हे उषे! आज तू किरणकी सहायतासे मानों द्युलोकके दरवाजोंको खोल चुकी है; ३. हमारे लिए उच्च कोटिके किरणोंसे युक्त हो जगमगाने लगो; ४. देखने योग्य

उषाके येही वे अनूठे एवं अमृतत्वके गुणोंसे पूर्ण किरण आ पहुँचे है।"

१. व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमा भासि रोचनम्।
(ऋ. १।४९।४)

२. सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना। (ऋ १।९२।१२)

३. आ द्यां तनोषि रश्मिभिरान्तरिक्षं उरु प्रियं।
उषः शुक्रेण शोचिषा (ऋ. ४।५२।७)

"१. हे. उषे! तू ऊपर उठती हुई अपने किरणोंसे सारे जगत् को कान्तिमान् बनादेती है; २. सूर्यकिरणोंसे दर्शनीय उषाका पता लगा; ३. हे उषे! तू दीप्त तेजसे तथा किरणोंसे विशाल अन्तरिक्ष एवं द्युलोकको व्याप्त करलेती है।'

उषाके आगमनके फलस्वरूप जनताको पथज्ञान भली भाँति हो जाता है, जिसके बारेमें निम्न निर्देश पाये जाते हैं—

१. एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान् पथः कृण्वती याति अग्रे। (ऋ. ५।८०।२)

२. कृणोति विश्वा सुपथा सुगानि...। (ऋ. ६।६४।२)

३. वि उषा आवः पथ्या जनानाम्...। (ऋ. ७।७९।१)

४. एषा...पथो रदन्ती सुविताय देवी...वि भाति।
(ऋ. ५।८०।३)

५. ...दिवो दुहितरो विभातीर्गातुं कृणवन्नुषसो जनाय।
(ऋ. ४।५१।१)

६. भास्वती...अचेति चित्रा वि दुरो न आवः।
(ऋ. १।११३।४)

"१. यह दर्शनीय उषा जनताको जगाती हुई और मार्गोंको आसानीसे यात्रा करने योग्य बनाती हुई आगे बढती है; २. सारे अच्छे मार्गोंको सुगमतापूर्वक जाने योग्य बनाती है; ३. जनताकी सडकोंको उषाने विशेष ढंगसे व्यक्त किया है; ४. यह द्योतमान उषा भलाईके लिए मार्गोंको खोदती हुई विशेषरीतिसे कान्ति युक्त दिखाई देती है; ५. जगमगानेवाली द्युलोक कन्या उषाओंने जनताके लिए गमनके लिए सडक बनाई है; ६. जगमगाती हुई अनोखी उषा ज्ञात हुई और उसने हमारे लिए द्वार खोल दिये हैं।"

शुभ्र वस्त्र पहनी हुई नारीके समान उषा दीख पडती है ऐसा उल्लेख वेदमंत्रोंमें पाया जाता है—

१. एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः
(ऋ. १।११३।७)

२. एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना...।
(ऋ. १।१२४।३)

३. ...रुशद्वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत्। (ऋ. ७।७७।२)

४. ...इयं अश्वैत् युवतिः पुरस्तात्...। (ऋ. १।१२४।११)

५. रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागात्। (ऋ. १।११३।२)

"१. यह द्युलोककी कन्या श्वेतवस्त्र पहनी हुई युवतीकी तरह ऊपर उठती हुई सबको दीखपडी; २. ज्योतिसे मानों ढकी हुई इस आकाशकन्याका दर्शन हुआ; ३. श्वेत एवं चमकीला वस्त्र धारण करती हुई उषा विकसित तथा शुभ्र हुई; ४. यह युवती नारीके समान आभावाली उषा सामने श्वेतवर्णवाली हुई; ५. जगमगानेवाली एवं चमकीले सूर्यबिम्बको साथ ले शुभ्र उषा आपहुँची है।"

प्रातःकालके समय पूर्वदिशाका दृश्य कितना मनोरम एवं हृदयंगम होता है सो नीचे दिये हुए मंत्रोंमें बताया है—

१. यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत...सा..उषा।
(ऋ. १।४८।१३)

२. ...त्या उषसः केतुं अक्रत पूर्वे अर्धे...भानुं अञ्जते।
(ऋ. १।९२।१)

३. चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना। (ऋ. १।११३।१५)

४. पूर्वे अर्धे रजसः ... अकृत प्र केतुम् (ऋ. १।१२४।५)

"१. जिसकी जगमगानेवाली कल्याणकारक ज्वालाएँ सामने दीख पडीं वह उषा है; २. वे उषाएँ पूर्व गोलार्धमें मानों झंडा खडा करचुकीं और रश्मिजालको सुशोभित करती हैं; ३. जागृत होती हुई उषा मानों अनोखा झंडा-ज्ञापक चिन्ह कर लेती है; ४. विश्वके पूर्व विभागमें झंडा ऊँचा किया गया है।"

पूर्व दिशामें रक्तिमाका दृश्य कैसे होता है सो बताया है।

१. एषा गोभिः अरुणेभिः युजाना...। (ऋ. ५।८०।३)

२. ...इयं...युवतिः...युङ्क्ते गवामरुणानामनीकम्।
(ऋ. १।१२४।११)

३. उदपप्तन् अरुणा भानवो...स्वायुजो अरुषीःगा अयुक्षत।
...उषासो...रुशन्तं भानुं अरुषीः अशिश्रयुः।
(ऋ. १।९२।२)

४. युक्ष्वा हि... अश्वान् अद्य अरुणान् उषः।
(ऋ. १।९२।१५)

५. निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः, प्रति गावो अरुषीः यन्ति... (ऋ. १।९२।१)

६. प्रति अर्चिः रुशत् अस्या अदर्शि, वितिष्ठते बाधते कृष्णं अभ्वम् । चित्रं दिवो दुहिता भानुं अश्रेत् । (ऋ. १।९२।५)
७. गूहन्तीरभ्वमसितं रुशद्भिः शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुचानाः ...दिवो दुहितरो विभातीः... । (ऋ. ४।५१।९)
८. द्युतत्-यामानं...अरुणप्सुं विभातीं, देवीं उषसं... (ऋ. ५।८०।१)
९. उत्ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन्.. उषो देवि रोचमाना महोभिः (ऋ ६।६४।२)
१०. एषा स्या...दुहिता दिवोजाः...या भानुना रुशता राम्यासु अज्ञायि तिरस्तमसश्चिदक्तून् । (ऋ. ६।६५।१)
११. प्रति द्युतानां अरुषासो अश्वाः चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहन्तः । (ऋ. ७।७५।६)
१२. ऊर्ध्वा अस्या अञ्जयो वि श्रयन्ते । (ऋ. ७।७८।१)
१३. प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक् । (ऋ. ३।६१।५)
१४. उषा अदर्शि रश्मिभिः व्यक्ता । (ऋ. ७।७७।३)
१५. दिवो अर्कैः अबोधि । (ऋ. ३।६१।६)

" १. यह उषा लालरंगवाले किरणोंसे युक्त होती हुई दीख पडती है; २. यह नवयौवन संपन्न नारीके तुल्य मोहकरूपवाली उषा रक्तिमामय किरणोंके समूहको जोडदेती है; ३. रक्तवर्णवाले किरण ऊपर उठ आये और लालिमामय एवं स्वयं ही जुटजानेवाले रश्मिसमूह को जोड दिया तथा रक्तिम आभावाली उषाएँ दीप्तिमान सूर्य किरणके सहारे खडी हैं; ४. हे उषे ! आज तू रक्तिम कान्तिवाले तथा व्याप्त होनेवाले किरणोंको जोड दे; ५. ये लाल किरण चारों ओर चले जाते हैं तो ऐसा जान पडता है कि, मानों साहसी वीर अपने हथियार खींच निकालते हों; ६. इस उषाकी दैदीप्यमान ज्वालासी कान्ति दिखाई दी और यह विशेष रूपसे खडे रहकर काले कलूटे तथा प्रचंड अंधःकारको विनष्ट करडालती है पश्चात् यह द्युलोककन्या उषा विचित्ररूपवाले या अद्‌भुत सूर्यके सहारे रहती है; ७. ये द्युलोक की कन्यारूप उषाएँ सुशोभित होती हुई तथा पवित्र एवं विशुद्ध हो चमकती हुई और दीप्त बनकर तेजस्वी रूपोंसे बडे भारी कृष्ण वर्णको मानों छिपाती हैं; ८. द्योतमान उषाको जो कि रक्तिम आभावाली होकर भासमान होती है, तथा जिसका मार्ग जगमगारहा है; ९. हे द्योतमान् उषे ! तेरी आभा तथा रश्मियाँ आकाशमें उपर उठ चुकी हैं और तू तेजस्वितासे बडी सुहावनी प्रतीत होती है; १०. यही वह द्युलोकमें उत्पन्न कन्या है जो तेजस्वी किरण की बदौलतही रात्रियोंमें अँधेरा एवं तारागण की टिमटिमाहट की अपेक्षा कहीं अधिक प्रतीत होती है; ११. अनूठे, लाल रंगवाले, व्यापकशक्तिसे युक्त किरण द्योतमान उषाको उठाकर लेचलते हुएसे दीख पडे; १२. इस उषाके विभूषण ऊपरवाली दिशामें टिके हुए दिखाई देते हैं; १३. देखनेमें रमणीय प्रतीत होनेवाली उषा आभामय हो यथेष्ट सुहाने लगी; १४. किरणोंके कारण स्पष्ट होकर उषा दृष्टिगोचर हुई; १५. द्युलोकमें अर्चनीय किरणोंसे वह जागृत हुई । "

उषाके बारेमें मंत्र क्या कहते हैं सो देख लीजिए—

१. उषो देवि अमर्त्या वि भाहि । (ऋ. ३।६१।२)
२. उषः...ऊर्ध्वा तिष्ठसि अमृतस्य केतुः । (ऋ. ३।६१।३)

" १. हे द्योतमान उषे ! तू अमरणशील होकर विशेषतया जगमगाती रह; २. तू अमरपनकी पताकासी है और ऊँची जगह ठहरती है । " इसीलिए यह उषा जो कि—

१. भास्वती...दिवः...दुहिता । (ऋ १।९२।७)
२. शुक्रा कृष्णात् अजनिष्ट श्वितीची । (ऋ. १।१२३।९)
३. उषा याति स्वसरस्य पत्नी...आ अन्तात् दिवः पप्रथे आ पृथिव्याः । (ऋ. ३।६१।४)

अर्थात् ' १. जगमगाती हुई द्युलोककन्या तथा २. कृष्णवर्ण अंधकारमेंसे तेजस्विनी और शुभ्रवर्णवालीके रूपमें उत्पन्न हुई एवं ३. दिनकी मानों पत्नीसी बनकर यात्रा करती है, अतः द्युलोक एवं भूलोकके एक कोनेसे लेकर दूसरे कोनेतक फैलचुकी है ' और

व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्ती उषा मृतं कंचन बोधयन्ती । (ऋ. १।११३।८)

"उषा ऊपर उठते समय जीवनमात्रको ऊपर उठनेके लिए प्रेरित करती हुई किसी भी निश्चेष्ट पडे हुए को जगाती हुई " दीख पडती है जब उदित होती है तो लोग कहने लगते कि—

अतारिष्म तमसः पारं अस्य । (ऋ. १।९२।६)

' हम इस अंधःकारको पार कर गये हैं ' क्योंकि अब तो

उषा उच्छन्ती...स्मयते विभाती सुप्रतीका (ऋ. १।९२।६)

' ऊपर उठानेवाली उषा सुन्दर स्वरूपवाली होकर और प्रकाशमान बनकर हँस रही है । ' यह उषा

व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोधि, अप स्वसारं सनुतर्युयोति। (ऋ. १।९२।११)

आकाशकी चरम सीमाको खोलती हुई उठगयी है और अपनी मानों बहनसी रात्रिको हमेशाही दूर हटाती है । '

वि अञ्जिभिः दिव आतासु अद्यौत् अप कृष्णां निर्णिजं देवी आवः । (ऋ. १।११३।१४)

' द्योतमान उषा ऊपरकी दिशाओंमें किरणजालसे चमकने लगी और रात्रिके कालेकलूटे स्वरूपको दूर कर चुकी है । '

पूर्वा विश्वस्माद्भुवनादबोधि..उच्चा व्यख्यद्युवतिः पुनर्भूः... । (ऋ. १।१२३.२)

' सारे संसारके पहलेही यह जागृत हुई और नवयौवनसंपन्न तथा बारबार उत्पन्न होनेवाली यह उषा उच्च पदपर चढकर खूब सुहाने लगी । '

पुनःपुनः जायमाना पुराणी समानं वर्णं अभिशुम्भमाना । (ऋ. १।९२।१०)

' यह उषा पुरानी है पर बारबार उत्पन्न होती हुई वर्णको समान रूपसे साफसुथरा एवं परिमार्जित करती हुई दिखाई देती है । '

पुराणी देवी युवतिः पुरन्धिः अनु व्रतं चरसि विश्ववारे । (ऋ. ३।६१।१)

' हे दीप्तियुक्त तथा सबके स्वीकरणीय उषे ! तू पुरानी है लेकिन नवयौवनयुक्त और बहुतोंका धारण करनेवाली महिला जैसी है तथा व्रत-नियमके अनुकूल संचार करती है । '

१. संस्मयमाना युवतिः पुरस्तात्... । (ऋ. १।१२३।१०)
२. सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषाः... (ऋ. १।१२३।११)

' १. यह उषा जनताके सम्मुख सुहास्य वदनी युवतीकी नाईं दिखाई देती है; २. यह उषा मानों माताने विभूषित की हुई सुस्वरूप युवती नारीके तुल्य है ।'

१. एषा...आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात् । (ऋ. ५।८०।४)
२. एषा...ऊर्ध्वेव स्नाती दशये नो अस्थात् ।(ऋ. ५।८०।५)
३. आविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती । (ऋ. १।१२३।१०)
४. आविस्तन्वं कृणुषे दृशे कम् । (ऋ. १।१२३।११)

' १. यह उषा सामने अपने शरीरको व्यक्त करती हुई और २. ऊँची जगह मानों जलमग्न हुईसी हमारे दर्शनार्थ खडी है;

"हे उषे ! तू सुहाती हुई जनताके दर्शनार्थ अपना सुन्दर शरीर भलीभांति स्पष्ट अनावृत करती है । "

ऊपरके वचनोंसे स्पष्ट हुआ होगा कि विश्वके पुरातनतम साहित्य-अर्थात् वेदमें प्राभातिक वेलाका कितना काव्यमय, रसिकतापूर्ण एवं सौन्दर्यग्राही वर्णन किया हुआ उपलब्ध होता है । ऐसा निस्सन्देह कहा जा सकता है कि, उषादेवताके सूक्त वास्तवमें वेदकालीन प्रतिभाशाली कवियोंकी रसिकता तथा सौन्दर्य लोलुपताका भलीभाँति परिचय करानेकी क्षमता रखनेवाले काव्य हैं ।

उषा सूक्तोंको ध्यानपूर्वक पढलेनेसे जहाँ एक ओर वैदिक कवियोंकी सौन्दर्यासक्ति तथा सहृदयताका ज्वलन्त उदाहरण दीख पडता है, वहां इस बातका भी स्मरण हुए बिना नहीं रहा जाता कि, वैदिक सूक्तोंके सृजन करनेकी क्षमतासे युक्त वे प्राचीन कवि आर्थिक सुसमृद्धि एवं भौतिक वैभवको प्राप्त करनेकी आवश्यकताके बारेमें पर्याप्त रूपसे सतर्क और सचेष्ट रहा करते थे । बात भी बिलकुल ठीक जँचती है, क्योंकि साधारणतया ऐसा दिखाई देता है कि, जिस समाजमें पर्याप्त मात्रामें वैभव-संपन्नता विद्यमान है, वहींपर रसिकता सहृदयता एवं प्रतिभा-संपन्न सुरुचिताका प्रादुर्भाव हुआ करता है । वैदिक सूक्त पढ लेनेसे साफ जाहिर होता कि वैदिक समाज व्यवस्थामें सांपत्तिक सुविधा एवं भौतिक ऐश्वर्यको अक्षुण्ण बनाये रखनेकी ओर तत्कालीन जनताका ध्यान किस तीव्रतासे आकृष्ट हो चुका था। अस्तु, अब हमें उन मंत्र भागोंकी ओर दृष्टिपात करना चाहिए जहाँ आर्थिक प्रगति करनेके स्पष्ट निर्देश पाये जाते हैं ।

१. दिवः दुहितर् ! त्वोभिः वाजेभिः आगहि, रयिं अस्मे नि धारय । (ऋ. १।३०।२२)
२. सा न आवह...रयिं दिवो दुहितर्... । (ऋ. ६।६४।४)
३. उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवत्...सुवीरं रयिं गृणते रिरीहि... । (ऋ. ६।६५।६)
४. महे नो अद्य सुविताय बोधि उषो...चित्रं रयिं यशसं धेहि अस्मे... । (ऋ. ७।७५।२)
५. एषा नेत्री राधसः...उषा...दीर्घश्रुतं रयिं अस्मे दधाना... । (ऋ. ७।७६।७)
६. वामेन सह, बृहता द्युम्नेन राया सह नः वि उच्छ । (ऋ. १।४८।१)
७. सा अस्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्यं उषो वाजं सुवीर्यम् । (ऋ. १।४८।१२)
८. बृहता विश्वपेशसा राया, इळाभिः वाजैः द्युम्नेन नः सं मिमिक्ष्व (ऋ. १।४८।१६)
९. उषो अद्येह...रेवदस्मे व्युच्छ । (ऋ. १।९२।१४)
१०. उषस्तच्चित्रमाभरास्मभ्यं ...येन तोकं तनयं च धामहे । (ऋ. १।९२।१३)

११. ... अस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् (ऋ. १।११३।१७)

१२. ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः । (ऋ. १।१२४।९)

१३. तेभ्यो द्युम्नं बृहद्यश उषो मघोन्यावह । (ऋ. ५।८९।७)

१४. रयिं दिवो दुहितरो विभातीः प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः । (ऋ. ४।५१।१०)

१५. स्योनादा वः प्रतिबुध्यमानाः सुवीर्यस्य पतयः स्याम । (ऋ. ४।५१।१०)

१६. महे नो अद्य बोधय उषो राये दिवित्मती । (ऋ. ५।७९।१)

१७. ...नो गोमतीरिषः आ वहा दुहितर्दिवः... । (ऋ. ५।७९।८)

१८. तच्चित्रं राध आभरोषो ... यत्ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तत् रास्व भुनजामहै । (ऋ. ७।८१।५)

" १. हे द्युलोककन्ये ! उन अन्नों या बलोंके साथ इधर आजा और हममें धन रख दे; २. तू हमतक धन पहुँचा दे; ३. पहले जैसही तू उदित होती रह और स्तोताको अच्छी वीरतासे युक्त धन देडाल; ४. हे उषे ! हमारी बडी भारी भलाई हो इसलिए तू आज जाग तथा हमारे बीच अनूठे वैभव और यशकी स्थापना कर; ५. यह उषा बहुत दूरतक विख्यात धन हमारे मध्य रखती हुई धनको पहुँचानेवाली है; ६. हमारेलिए तू सुन्दरताके साथ बडे भारी धन एवं वैभवको साथ ले उदित होजा; ७. गायों और घोडोंसे युक्त, अच्छी वीरता से परिपूर्ण एवं सराहनीय अन्नसामग्री या बल हममें धरदे; ८. बडे प्रचंड, विश्वभरमें सुन्दर धन, अन्न सामग्रियों, बलों तथा वैभवसे तू हमें भली भाँति संयुक्त कर; ९. उषे ! आज तू हमारे लिए धनसंपन्न हो उदित हो; १०. वह अनूठा धन हमें दे डाल ताकि हम पुत्र पौत्रोंका धारण करसकें; ११. हमें संतानयुक्त दीर्घजीवन दे डाल; १२. वे उषाएँ हमारेलिए पहले जैसे अबभी अच्छे दिनवालीं एवं धनसंपन्न हो उदित हों; १३. हे ऐश्वर्य संपन्न उषे ! उन्हें बडा भारी यश और धन पहुंचादे; १४. वे द्योतमान द्युलोक कन्याएँ हमारे मध्य संतानयुक्त धन का प्रदान करें; १५. हे उषाओ ! आपके दिये हुए सुखसे हम जागृत होकर अच्छी वीरताके अधिपति बनें; १६. हे द्योतमान उषे ! आज हमें बडा भारी धन मिले इसीलिए जागृत कर; १७. हे द्युलोककन्ये ! हमारे समीप गोधन युक्त अन्नसामग्रियाँ पहुंचादे; १८. वह अनूठा धन देदे और जो तेरे निकट मानवोंके उपभोग योग्य वस्तु हो उसे प्रदान कर ताकि हम उपभोग लें। "

उषाके संबंधमें वैदिक कवि कहते हैं—

१. चित्रामघा राय ईशे वसूनाम् । (ऋ. ७।७५।५)

२. अग्रं अग्रमित् भजते वसूनाम् । (ऋ. १।१२३।४)

३. विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ । (ऋ. १।११३।७)

४. ... उतोषो वस्व ईशिषे । (ऋ. ४।१२।३)

५. धनानां सनये उषा एति । (ऋ. १।१२४।७)

६. एषा ..अक्षेधन्ती रयिं अप्रायु चक्रे (ऋ. ५।८०।३)

७. ...ता भद्रा उषसः पुरा आसुः...यास्वीजानः...स्तुवन् शंसन् द्रविणं सद्य आप । (ऋ. ४।५१।७)

८. अभूदुषा...मघोन्यजीजनत् सुविताय श्रवांसि । (ऋ. ७।७९।३)

" १. यह उषा अनोखे धनसे संपन्न है और संपत्तियोंपर प्रभुत्व रखती है; २. धनोंमें जो परले दर्जेका हो उसेही ले लेती है; ३. हे सुंदर ऐश्वर्यवाली उषे ! तू समूचे भूमंडलस्थ धनपर प्रभुत्त्व रखती हुई आज उदित हो; ४. तेरे आधीन धन है; ५. धनोंका दान करनेके लिए उषा आती है; ६. यह उषा क्षीण न होती हुई धनको स्थिर कर चुकी है; ६. पहले वे सुन्दर हितकारक उषाएँ थीं जिनमें यज्ञ करनेवाला सराहना एवं भाषण करता हुआ तुरन्त धन पा सका; ८. उषा ऐश्वर्यसंपन्न हुई और भलाईके लिए अन्नोंका उत्पादन करचुकी । "

अच्छे कार्य करनेवाले तथा दानशूर पुरुषकोही धन देनेके बारेमें निम्न मंत्रोंमें निर्देश मिलते हैं जिससे स्पष्ट होता है कि वैदिक कवि संपत्तिके विकेन्द्रीकरणके अनुकूल थे और ऐसी समाज व्यवस्था चाहते थे जहाँ आर्थिक विषमता न हो तथा अधिकांश जनता निर्धन और कुछ इनेगिने व्यक्ति अत्यधिक संपन्न एवं धनशाली हैं ऐसी दशा न होने पाय ।

१. ...वहसि भूरि वामं उषो देवि दाशुषे मर्त्याय । (ऋ. १।१२४।१२)

२. या वहसि पुरु स्पार्हं...रत्नं न दाशुषे मयः । (ऋ. ७।८१।३)

३. वि दिवो देवी दुहिता दधाति...सुकृते वसूनि ।

४. याति शुभ्रा...दधाति रत्नं विधते जनाय। (ऋ. ७।७५।६)

५. श्रवो वाजं इषं ऊर्जं वहन्तीः नि दाशुषे उषसो मर्त्याय...श्रवो धात विधते रत्नं अद्य। (ऋ. ६।६५।३)

६. एषा...दुहिता दिवो...व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि। (ऋ. ५।८०।६)

७. या गोमतीरुषसः...व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय... ता अश्वदा अश्नवत् सोमसुत्वा। (ऋ. १।११३।१८)

"१. हे उषे! देवि! तू दानशूर मानवके लिए प्रचंड सुन्दर धन पहुँचाती है; २. तू दान देचुकनेपर उसे यथेष्ट, स्पृहणीय रत्नतुल्य सुख पहुँचाती है; ३. दानशूर द्युलोककन्या सुन्दर कार्य करनेवालेके लिए धनसमूह रखती है; ४. श्वेतवर्णवाली उषा कार्यकर्ता लोगों के लिए रत्न धरदेती हुई चली आती है; ५. दानी मानवके लिए उषाएँ अन्न, यश तथा बल पहुंचाती हैं, आज कार्यकर्ताके लिए रक्षा एवं रत्न रख दो; ६. यह द्युलोककन्या दानीके लिए स्वीकरणीय वस्तुओंको खोल देती है; ७. दानी पुरुषके लिए जो उषाएं गोधनयुक्त हो उदित होती हैं उन अश्व देनेवाली उषाओंको सोम निचोडनेवाला पाता है।"

वैदिक कवि उषासे क्या अपेक्षा रखते हैं सो देखलीजिए—

१. उष आ भाहि भानुना...आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगम्। (ऋ. १।४८।९)

२. अथा नो विश्वा सौभगान्यावह (ऋ. १।९२।१५)

३. सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसं उषा ददातु सुग्म्यम्। (ऋ. १।४८।१३)

४. ...प्र नो यच्छतादवृकं पृथु छर्दिः प्र देवी गोमतीरिषः। (ऋ. १।४८।१५)

५. उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं...रयिं... (ऋ. १।९२।८)

६. ... भद्रं भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि।
उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छ अस्मासु रायो मघवत्सु च स्युः। (ऋ. १।१२३।१३)

७. युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम्। (ऋ. १।१२४।१३)

८. एतावद् वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि। (ऋ. ५।७९।१०)

९. नू नो गोमद्वीरवद्धेहि रत्नं उषो अश्वावत् पुरुभोजो अस्मे। (ऋ. ७।७५।८)

१०. ... उरुगायमधि धेहि श्रवो नः। (ऋ. ६।६५।६)

११. ... उषो देवि प्रतिरन्ती न आयुः।
इषं च नो दधती... गोमदश्वावद्रथवच्च राधः (ऋ. ७।७७।५)

१२. तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत् स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना। (ऋ. ७।७९।४)

१३. उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वामं अस्मभ्यं वक्षि। (ऋ. ७।७८।१)

"१. हे उषे! रश्मिसे तू जगमगाती रह और हमारे लिए बहुतसा अच्छा भाग्य पहुँचाती रह; २. अच्छा, अब तो हमें सभी सौभाग्य प्राप्त करा; ३. वह उषा हमें सुखरूप, सबके स्वीकरणीय एवं सुखदायक धनवैभव देवे; ४. हे द्योतमान! हमें विस्तीर्ण, वृकरहित (जिसमें भेडिया नहीं घुस सकता हो) घर तथा गोधनयुक्त अन्नसामग्रियाँ यथेष्ट दे दे; ५ हे उषे! मैं अच्छी वीरतासे युक्त एवं यशसे पूर्ण धनसंपदाको प्राप्त कर लूं; ६. हममें अच्छे अच्छे कार्योंको धरदेती चल और हे उषे! तू आज हमारे लिए सुखपूर्वक बुलाने योग्य है अतः उदित हो तथा हममें और धनिकोंमें संपत्तियाँ रहें ऐसा प्रबंध कर; ७. हे द्योतमान उषाओ! तुम्हारी रक्षाके फलस्वरूप हम सैकडों और हजारोंकी संख्यामें अन्न प्राप्त करें; ८. हे उषे! इतना तो जरूरही लेकिन और भी फिर, तू हमें दे दे, ९. अब हमें गोधन, वाजिधन एवं वीरोंसे युक्त और बहुतोंको भोगसाधन मिल सके ऐसा रत्न दे डाल; १० बहुतसे लोक जिसके बारेमें गायन करते हों ऐसा यश हममें धर दे; ११. हे देवतारूपी उषे! हमारा जीवन बढाती हुई और गौओं, घोडों तथा रथादि वाहनोंसे युक्त धन एवं अन्न हमें देती हुई..., १२. हे उषे! स्तोताओंको जितना धन तूने दिया उतना तू हमें देदे; १३. हे उषे! प्रकाशयुक्त और बडे रथको, जो कि हमारी ओर ही आ रहा है साथ लेकर तू सुन्दर धन हमें देती रह।"

उषासे ऐसी प्रार्थना इसलिये की जाती है कि—

स्पार्हा वसूनि तमसा अपगूळ्हा आविष्कृण्वन्ती उषसो विभातीः। (ऋ. १।१२३।६)

'चमकती हुई उषाएं अंधेरेने गुप्तरूपसे ढकी हुई स्पृहणीय धनोंको खोलदेती हैं।' और भी एक बात है कि,

प्राप्या जगद्व्युनो रायो अख्यत्। (ऋ. १।११३।४)

'जगत्को अच्छी तरह दृष्टिगोचर कराके उषाने हमारे

धनोंको विशेष रीतिसे खोल दिया, चमका दिया ।' यह उषा हमारे लिए '(**आवहन्ती पोष्या वार्याणि**) ऋ. १।११३।१५' पोषणीय तथा स्वीकरणीय वस्तुओंको पहुंचाती रहती है। और '**अस्मभ्यं गोमतः वाजान् सूरिभ्यः अमृतं वसुत्वनं श्रवः चोदयित्री** । (ऋ. ७।८१।६) ' अर्थात्, हमें गौओंसे युक्त अन्न और विद्वानोंको अमरपन, धनाढ्यता एवं यश देनेकी प्रेरणा करनेवाली है ।

केवल पर्याप्त मात्रामें प्रकाश, अन्न, बल, धन देनेसेही देवता का कार्य पूर्ण नहीं होता, किन्तु द्वेष्टा, विरोधियों तथा शत्रु-ओंको हटानाभी अत्यन्त आवश्यक है । देखिए, वैदिक कवियोंने इस संबंधमें क्या कहा है—

... उषा स्रिधः अप उच्छत् । (ऋ. ७।८१।६)

अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्रिधः । (ऋ. १।४८।८)

अर्थात् ' द्युलोककन्या एवं ऐश्वर्यसंपन्न उषा द्वेषकरनेवालों को और शत्रुओंको हटानेके लिए उदित हो जाए । '

अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः ।
यावय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि । (ऋ. ७।७७।४)

' हे (मघोनि) ऐश्वर्यसंपन्न उषे ! तू (अन्ति-वामा) अपने समीप हमें देनेके लिए धन रखनेवाली है, अब (अमित्रं दूरे उच्छ) शत्रुको दूर हटादे और (नः) हमारे लिए (उर्वीं गव्यूतिं) विशाल मार्ग तथा (अभयं कृधि) निर्भयतामय वातावरणका सृजन कर; पश्चात् (द्वेषः यावय) द्वेषको हटादे और (वसूनि आ भर) हमें धन ला दे एवं (गृणते राधः चोदय) स्तोताके लिए धन प्रेरित कर । '

वि उषा आवो...आविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टं... ॥ (ऋ. ७।७५।१)

' उषा प्रकट हुई है, वह महिमाको साफ तौरसे व्यक्त करती हुई आ चुकी है और द्वेष करनेवालेको एवं असेवनीय अँधेरेको दूर भगाया है । '

उषःवेलामें अनूठेपनके रहनेपरभी अनोखी समानरूपता पाई जाती है जिसका उल्लेख यूं है—

सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो... । (ऋ. १।१२३।८)

शुभ्रं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्याः । (ऋ. ४।५१।६)

आज ये उषाएँ समानरूपवाली हैं तो कलभी उसी तरह रूपवाली दिखाई देती हैं; ये शुभ्रवर्णवाली एवं जीर्ण न होनेवाली उषाएँ भलीभाँति हितके लिए संचार करती हैं और समान स्वरूपवाली होनेसे पृथक् पृथक् नहीं जानी जाती हैं । '

विख्यात ऋषि उषाकी सराहना करते थे ऐसा निम्न मंत्रोंसे सूचित होता है—

१. प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः । (ऋ. ७।७६।६)

२. एषा...उषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः(ऋ. ७।७६।७)

३. प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन् । (ऋ. ७।८०।१)

४. ऋषिष्टुता...मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना । (ऋ. ७।७५।५)

५. देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते । (ऋ. ५।८०।१)

६. यावयद् द्वेषसं त्वा...प्रति स्तोमैरभुत्स्महि । (ऋ. ४।५२।४)

७. अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति वह्नयः । (ऋ. ५।७९।४)

८. उषो...स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि । (ऋ. ३।६१।१)

९. व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।
तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥ (ऋ. १।४९।४)

" १. हे सुन्दर ऐश्वर्यवाली उषे ! सुबह जाग उठनेवाले एवं स्तुति करनेवाले वसिष्ठ परिवारके लोग स्तुतिमय काव्योंसे तेरी प्रशंसा करते हैं; २. उदित होनेवाली उषाकी स्तुति वसिष्ठ वंशके ऋषियोंसे की जाती है; ३. प्रथम श्रेणीके तथा ज्ञानी वसिष्ठ कुलके ऋषि उषाके आगमनके मौकेपर स्तोत्रपाठ कर चुके; ४. यह ऐश्वर्यसंपन्न एवं ऋषियोंद्वारा प्रशंसित उषा उदित होती है जबकि हव्योंको ढोनेवाले यजमान उसकी स्तुति करने लगते हैं; ५. स्वर्गतुल्य तेज पहुँचानेवाली तथा दैदीप्यमान उषाकी स्तुति विद्वान लोग मननीय काव्योंसे करते हैं; ६. तू उदित होनेपर द्वेषभाव हटाती है इसलिए हम स्तोत्रोंसे तुझको मानों जगाते हैं; ७. हे विशेष तेजवाली उषे ! हवनीय वस्तु-ओंको इष्टस्थानतक पहुँचानेवाले जो यजमान हैं वे स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं; ८. ऐश्वर्यसंपन्न उषे ! स्तोताके स्तुतिमय काव्यका स्वीकार कर; ९ हे उषे ! उदित होती हुई तू समूचे जगत्को सुन्दर करती है, ऐसे तुझको धन चाहनेवाले कण्व वंशके ऋषि भाषणोंसे बुलाते हैं । '

उषा सुन्दर रथपर चढकर आती है और बलिष्ठ घोडे उसे खींचते हैं ऐसा वर्णन पाया जाता है जैसे—

१. उषो देवि...चन्द्ररथा...ईरयन्ती । (ऋ. ३।६१।२)

२. आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥ (ऋ. ३।६१।२)

' १. हे द्योतमान उषे ! तू सुन्दर, आल्हाद दायक रथवाली है और दूसरोंको प्रेरणा देनेवाली है इसलिए; २. जो विशाल बलयुक्त तथा भलीभाँति नियमित घोडे हैं वे सुवर्ण कान्तिवाली तुझको इधर ले आयँ । '

सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उषस्त्वम् । (ऋ. १।४९।२)

' हे उषे ! जिस सुन्दररूपवाले एवं सुखदायक रथपर तू चढचुकी थी। '

सा नो रथेन बृहता...श्रुधि चित्रामघे हवम् ।
(ऋ. १।४८।१०)

' हे अनोखे ऐश्वर्यसे युक्त उषे ! बडे भारी रथपर चढकर आती हुई तू हमारी पुकार सुनले । '

एषा अयुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ॥
(ऋ १।४८।७)

' यह उषा सूर्योदयके पहले ही सुदूर स्थानमें रथोंको घोडे जोत चुकी है, ताकि शीघ्र यात्राका प्रारंभ हो; यह सुन्दर ऐश्वर्यवाली उषा मानवोंके समीप मानों सैकडों रथोंसे चली जाती है । '

... अद्योदुषाः शोशुचता रथेन । (ऋ. १।१२३।७)

' उषा जगमगाते हुए रथके कारण चमकने लगी । '

बृहद्रथा बृहती...उषा ज्योतिर्यच्छति... ।
(ऋ. ५।८०।२)

' महान उषा बडे भारी रथसे आती हुई उजेला देडालती है।'

... अरुषासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहन्तः ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन... (ऋ. ७।७५।६)

' रक्तिम आभावाले अनूठे घोडे उषाको ले आते हुए दीखपडे और यह तेजस्वी उषा सभीरूप धारण करनेवाले रथपरसे चली जाती है । '

... दिवो दुहिता... आस्थात् रथं स्वधया युज्यमानं आ यं अश्वासः सुयुजो वहन्ति । (ऋ. ७।७८।४)

' द्युलोककन्या उषा, स्वकीय धारणशक्तिसे तैयार होनेवाले रथपर, जिसे भली भाँति जोते हुए घोडे लेचलते हैं, चढगई ।

अश्विनौ जैसे अथकरूपसे लोक सेवा करनेवालोंसे मित्रता पूर्ण बर्ताव रखना और और गौओंकी माता बनना उषाकी विशेषता है, देखिए—

हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृग् गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि ।
(ऋ. ७।७७।२)

' सुवर्णकी कान्तिवाली अतः जिसका दर्शन बडाही रमणीय है ऐसी यह गौओंकी माता उषा जो कि दिनोंकी नेत्री है जगमगाने लगी । '

...अरुषी माता गवां...सखा अभूदश्विनोरुषाः ।
उत सखा असि अश्विनोरुत माता गवामसि... ।
(ऋ. ४।५२।२-३)

' लालिमामय आभावाली उषा गौओंकी माता एवं अश्विनौ की मित्रा है । '

लोगोंके दिलमें उषाके प्रति कैसी आदरमय भावना रहा करती थी सो निम्न मंत्रोंसे स्पष्ट होगा—

उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे ।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः ॥
(ऋ. ७।८१।४)

' हे (महि देवि) महनीय देवतारूपी उषे ! (या उच्छन्ती) जो तू उदित होती हुई (मंहना) अपने तेजसे (स्वः) स्वर्गको (दृशे) दर्शनके योग्य तथा (प्रख्यै कृणोषि) विशेष स्पष्टताके अनुकूल बनाती है उस (तस्याः ते) तुझको जो कि (रत्नभाजः) रत्न साथ रखनेवाली है हम (ईमहे) चाहते हैं, या प्रार्थना करते हैं कि (वयं) हम तेरी निगाहमें (मातुः सूनवः न) माताके लिए उसके पुत्र जैसे प्यारे होते हैं, वैसेही (स्याम) प्रिय हों । '

उषो भद्रेभिरागहि दिवश्चिद्रोचनादधि । (ऋ. १।४९।१)

' हे उषे ! तू (रोचनात् दिवः चित्) चमकीले द्युलोक से भी (भद्रेभिः अधि आगहि) कल्याणप्रद किरणों से युक्त हो हमें प्राप्त होजा । '

तद्वो दिवो दुहितरो विभातीरुप ब्रुव उषसः ...
वयं स्याम यशसो जनेषु ... (ऋ. ४।५१।११)

' हे चमकती हुई, द्युलोककी कन्यासी उषाओ ! मैं तुमसे वही कहना चाहता हूं कि हम जनता में यशस्वी हों । '

यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयन्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।
सा अस्मासु धा रयिमृष्वं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।
(ऋ. ७।७७।६)

' हे (सुजाते) सुन्दर ढंगसे उत्पन्न ! द्युलोककन्ये उषे ! (यां त्वा) जिस तुझको वसिष्ठवंशोत्पन्न लोग (मतिभिः वर्धयन्ति) बुद्धि से निष्पादित काव्योंद्वारा वृद्धिंगत करते हैं ऐसी (सा) वह तू (अस्मासु) हममें (बृहन्तं ऋष्वं रयिं धा) बडे दैदीप्यमान धन रख दे और तुम हमें सदैव कल्याणकारक बातोंसे सुरक्षित रखो । '

उषा में इन्द्रशक्ति एवं अंगिरसोंकी शक्ति बढनेका उल्लेख मिलता है जैसे—

अभूदुषा इन्द्रतमा मघोनी ... दधात्यङ्गिरस्तमा सुकृते वसूनि । (७।७९।३)

...समानेन योजनेना परावतः । ... इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे ... ॥ (ऋ. १।९२।३)

' यह ऐश्वर्यसंपन्न उषा इन्द्रशक्तिकी खूब वृद्धि कर चुकी है और अंगिरसोंकी सामर्थ्य यथेष्ट बढाकर सुकर्मकर्ताको धन दे डालती है; ये उषाएं सुदूर देशसे भी सदृश आयोजनाके अनुकूल अच्छे दानी एवं सुन्दर कार्यकर्ता को अन्न पहुंचाती हैं । '

इस तरह उषा के सूक्तोंमें हमें एक सुरम्य प्राकृतिक दृश्य का और शाश्वतिक मानवी आकांक्षाका संमिश्र वर्णन देखने मिलता है । इन सूक्तोंमें इस बातका परिचय मिलता है कि मानवी मन प्राचीन कालमें मनोहर प्राकृतिक घटना से किस भाँति प्रभावित हुआ करता था और साथही यह भी ज्ञात होता है कि उत्साहवर्धक एवं नयनमनोरम प्राकृतिक दृश्य से प्रभावित होने और उस में रस लेनेकी दशामें भी अनिवार्य सामाजिक आवश्यकताओंकी पूर्तिका भी ख्याल रखना पडता है । वैदिक सुकवियोंके विशाल एवं व्यापक दृष्टिकोणका इससे बढकर और क्या अधिक परिचायक हो सकता है कि प्रतिदिन दृश्यमान एक नैसर्गिक दृश्य का सौन्दर्यग्राही वर्णन करते हुए भी शाश्वतिक मानवी आवश्यकताओं का बारंबार उल्लेख करना वे नहीं भूलते ।

(२)

उषा सूक्तोंमें अतीन्द्रिय ज्ञान

योगी श्री अरविंदजी महाराज अपने वेद रहस्य में उषा के स्वरूपका वर्णन अत्यंत हृदयंगम करते हैं, उसे अब यहां देखिये–

" **गोमद् वीरवद् धेहि रत्नम् उषो अश्वावत्** " उस समय कर्मकाण्डपरक व्याख्याकार को इस प्रार्थना में केवल उस सुखमय धन-दौलत की ही याचना दीखती है, जो गौओं, वीर मनुष्यों (या पुत्रों) और घोडों से युक्त हो । दूसरी तरफ यदि ये शब्द प्रतीकरूप हों, तो इसका अभिप्राय होगा– " हमारे अन्दर आनन्द की उस अवस्था को स्थिर करो, जो ज्योति से, विजय शील शक्ति से और प्राण-बलसे भरपूर हो । " इसलिये यह आवश्यक है कि एक वार सभी स्थलों के लिये वेद मंत्रों में आनेवाले, ' गौ ' शब्द का अर्थ क्या है, इस का निर्णय कर लिया जाय । यदि यह सिद्ध हो जाय, कि यह प्रतीकरूप है, तो निरन्तर इस के साथ आनेवाले अश्व (घोडा), वीर (मनुष्य या शूरवीर), अपत्य या प्रजा (औलाद), हिरण्य (सोना), वाज (समृद्धि, या सायण के अनुसार अन्न). इन दूसरे शब्दों का अर्थ भी अवश्य प्रतीकरूप और इसका सजातीय ही होगा ।

' गौ ' का अलंकार वेद में निरन्तर उषा और सूर्यके साथ सम्बद्ध मिलता है । इसे हम उस कथानक में भी पाते हैं, जिस में इन्द्र और बृहस्पति ने सरमा कुतिया (देवशुनी) और अङ्गिरस ऋषियों की मदद से पणियों की गुफा में से खोई हुई गौओं को फिर से प्राप्त किया है । उषा का विचार और अङ्गिरसों का कथानक ये मानो वैदिक सम्प्रदायके हृदयस्थानीय हैं और इन्हें करीब करीब वेद के अर्थों के रहस्य की कुञ्जी समझा जा सकता है । इसलिये ये ही दोनों हैं, जिन की हमें अवश्य परीक्षा कर लेनी चाहिये, जिन से आगे अपने अनुसंधान के लिये हमें एक दृढ आधार मिल सके ।

अब उषासंबंधी वेद के सूक्तों को बिल्कुल ऊपर ऊपर से जांचने पर भी इतना बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि, उषा की गौएं या सूर्यकी गौएँ ' ज्योति ' का प्रतीक है, इसके सिवाय और कुछ नहीं हो सकतीं । सायण खुद इन मन्त्रों का भाष्य करते हुए विवश होकर कहीं इस शब्द का अर्थ ' गाय ' करता है और कहीं ' किरणें, ' हमेशा की अपनी आदत के अनुसार परस्पर संगति बैठाने की भी कुछ पर्वाह नहीं रखता; कहीं वह यह भी कह जाता है कि, ' गौ ' का अर्थ सत्यवाची ' ऋत ' शब्द की तरह पानी होता है । असल में देखा जाय तो यह स्पष्ट है कि इस शब्दसे दो अर्थ लिये जाने अभिप्रेत हैं,

(१) ' प्रकाश ' इस का असली अर्थ है और (२) ' गाय ' उस का स्थूल रूपक-रूप और शाब्दिक अलंकारमय अर्थ है।

ऐसे स्थलों में गौओं का अर्थ ' किरणें ' इस में कोई मतभेद नहीं हो सकता, जैसे कि इंद्र के विषय में मधुच्छन्दस् ऋषिके सूक्त (१.७) का तीसरा मन्त्र है- ' इंद्रने दीर्घ दर्शन के लिये सूर्य को द्युलोकमें चढाया उसने उसे उसकी किरणों (गौओं) के द्वारा सारे पहाड पर पहुंचा दिया- वि गोभिः अद्रिम् ऐरयत्* । ' परन्तु इस के साथ ही सूर्य की किरणें ' सूर्य ' देवता की गौएं हैं, हीलियस (Helios) की वे गौएँ हैं, जिन्हें ओडिसी (Odyssey) में ओडिसस (Odysseus) के साथियोंने वध किया है, जिन्हें हर्मिज (Hermes) के लिये कहे गये होमर के गीतों में हर्मिजने अपने भाई अपोलो (Apollo) के पास से चुराया है। ये वे गौएँ हैं, जिन्हें ' वल ' नामक शत्रूने या पणियोंने छिपा लिया था। जब मधुच्छन्दस् इंद्रको कहता है- ' तूने वलकी उस गुफाको खोल दिया, जिस में गौएँ बंद पडी थीं ' - तब उस का यही अभिप्राय होता कि, वल गौओं को कैद करनेवाला है, प्रकाश को रोकनेवाला है और वह रोका हुआ प्रकाश ही है, जिसे इन्द्र यज्ञ करनेवालों के लिये फिर से ला देता है। खोई हुई या चुराई हुई गौओं को फिर से पालने का वर्णन वेद के मन्त्रों में लगातार आया है और इस का अभिप्राय पर्याप्त स्पष्ट हो जायगा, जब कि हम पणियों और अङ्गिरसोंके कथानककी परीक्षा करना शुरू करेंगे।

एक बार यदि यह अभिप्राय, यह अर्थ सिद्ध हो जाता है, स्थापित हो जाता है, तो ' गौओं ' के लिये की गई वैदिक प्रार्थनाओं की जो भौतिक व्याख्या की जाती है, वह एकदम हिल जाती है। क्योंकि खोई हुई गौएं, जिन्हें फिर से पा लेने के लिये ऋषि इंद्र का आह्वान करते हैं, वे यदि द्रविड लोगों-द्वारा चुराई गई भौतिक गौएं नहीं हैं, किंतु सूर्य की ज्योति की चमकती हुई गौएं हैं, तो हमारा यह विचार बनाना न्याय-संगत ठहरता है कि, जहां केवल गौओं के लिये ही प्रार्थना है और साथ में कोई विरोधी निर्देश नहीं है, वहां भी यह अलंकार लगता है, वहां भी गौ भौतिक गाय नहीं है। उदाहरण के लिये ऋ० १,४,१,२ × में इंद्र के विषय में कहा गया है कि, वह पूर्ण रूपों को बनानेवाला है और वह गौओं के दोहने में ऐसा चतुर है कि, उस का सोम-रस से चढनेवाला मद सचमुच गौओंको देनेवाला है, ' गोदा इद् रेवतो मदः ' ।

निरर्थकता और असंगतताकी हद हो जायगी, यदि इस कथनका यह अर्थ समझा जाय कि, इन्द्र कोई बडा समृद्धिशाली देवता है और जब वह पिये हुए होता है, उस समय गौओं के दान करने में बडा उदार हो जाता है। यह स्पष्ट है कि जैसे पहली ऋचा में गौओं का दोहना एक अलंकार है, वैसे ही दूसरी में गौओं का देना भी अलंकार ही है। और यदि हम वेद के दूसरे सन्दर्भों से यह जान लें कि ' गौ ' प्रकाश का प्रतीक है तो यहां भी हमें अवश्य यही समझना चाहिये कि, इंद्र जब सोम-जनित आनन्द में भरा होता है, तब वह निश्चित ही हमें ज्योतिरूप गौएं देता है।

उषा के सूक्तों में भी, गौएं ज्योति का प्रतीक हैं, यह भाव वैसा ही स्पष्ट है। उषा को सब जगह ' गोमती ' कहा गया है, जिस का स्पष्ट ही अवश्य यही अभिप्राय होना चाहिये कि, वह ज्योतिर्मय या किरणोंवाली है, क्योंकि यह तो बिल्कुल मूर्खतापूर्ण होगा कि, उषा के साथ एक नियत विशेषण के तौरपर ' गौओं से पूर्ण ' यह विशेषण उस के शाब्दिक अर्थ में ही प्रयुक्त किया जाय। पर गौओं का प्रतीक वहां पर विशषण में है, क्योंकि उषा केवल ' गोमती ' ही नहीं है, वह ' गोमती अश्वावती ' है, वह हमेशा अपने साथ अपनी गौएं और अपने घोडे रखती है।

' वह सारे संसारके लिये ज्योति को रचकर देती है और अन्धकार को, जो गौओं का बाडा है, खोल देती है, १.९२.४ + ' यहां हम देखते हैं कि, बिना किसी भूलचूक की सम्भावना के गौएं ज्योति का प्रतीक ही हैं। हम इस पर भी ध्यान दे सकते हैं कि, इस सूक्त (१.९२) में अश्विनों को कहा

* इस का अनुवाद हम यह भी कर सकते हैं कि, " उसने अपने वज्र (अद्रि) को उस से निकलती हुई चमकों के साथ चारों ओर भेजा " पर यह अर्थ उतना अच्छा और संगत नहीं लगता। पर यदि हम इसे ही मानें, तो भी ' गोभिः ' का अर्थ ' किरणें ' ही होता है, गाय पशु नहीं।

× सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि।
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब। गोदा इद्रेवतो मदः ॥ (ऋ० १।४।१-२)

+ ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः ॥ (ऋ० १।९२।४)

गया है कि, वे अपने रथ को उस पथपर हांक कर नीचे ले जायें, जो ज्योतिर्मय और सुनहरा है-× '**गोमद् हिरण्यवद्**' इस के अतिरिक्त उषा के संबंध में कहा गया है कि, उस के रथ को अरुण **गौऐं** खींचतीं हैं और कहीं यह भी कहा है कि, अरुण घोडे खींचते हैं।

' वह अरुण गौओंके समूह को अपने रथ में जोतती है। **युङ्क्ते गवामरुणानामनीकम्**। ऋ. १.१२४.११ ' यहां ' अरुण किरणों के समूह को ' यह दूसरा अर्थ भी स्थूल अलंकार के पीछे स्पष्ट ही रखा हुआ है। उषा का वर्णन इस रूप में हुआ है कि, वह गौओं या किरणों की माता है, '**गवां जनित्री अकृत प्रकेतुम्** ऋ. १.१२४.५. गौओं (किरणों) की माता ने दर्शन (Vision) को रचा है। ' और दूसरे स्थानपर उस के कार्य के विषय में कहा है, ' अब दर्शन या बोध उदित हो गया है। जहां पहले कुछ नहीं (असत्) था '। + इस से पुनः यह स्पष्ट है कि, ' गौएं ' प्रकाश की ही चमकती हुई किरणें हैं। उस की इस रूप में भी स्तुति की गई है कि, वह चमकती हुई गौओं का नेतृत्व करनेवाली है (**नेत्री गवाम्** ७.७६.६) और एक दुसरी ऋचा इस पर पूरा ही प्रकाश डाल देती है, जिस में ये दोनों ही विचार इकट्ठे आ गये हैं, ' गौओं की माता दिनों की नेत्री ' (**गवां माता नेत्री अह्नाम्**। ऋ. ७.७७.२) अन्तमें मानो इस अलंकार पर से आवरण को कतई हटा देने के लिये ही, वेद स्वयं हमें कहता है कि, गौएँ प्रकाश की किरणों के लिये एक अलंकार है, " उसकी सुखमय किरणें दिखाई दीं, जैसे छोडी हुई गौएँ " **प्रति भद्रा अदृक्षत गवां सर्गा न रश्मयः**। ऋ. ४.५२.५ हमारे सामने इससे भी अधिक निर्णयात्मक एक दूसरी ऋचा (ऋ. ७.७९.२) है- ' तेरी गौएँ (किरणें) अन्धकार को हटा देती हैं और ज्योति को फैलाती हैं- **सं ते गावस्तम आवर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति**⊙ ।

लेकिन उषा इन प्रकाशमय गौओंद्वारा केवल खींची ही नहीं जाती, वह इन गौओं को यज्ञ करनेवालों के लिये उपहाररूप में देती है। वह इन्द्र की ही भांति, जब सोम के आनन्द में होती है, तो **ज्योति** को देती है वसिष्ठके एक सूक्त (७.७५) में उसका वर्णन इस रूपमें है कि, वह देवों के कार्य में हिस्सा लेती है और उससे वे दृढ स्थान जहां गौएं बन्द पडी हैं, टूट कर खुल जाते हैं और गौएं मनुष्यों को प्राप्त हो जाती हैं। " वह ÷ सच्चे देवोंके साथ सच्ची है, महान् देवों के साथ महान् है, वह दृढ स्थानों को तोड कर खोलती है और प्रकाशमय गौओंको छोड देती हैं, गौएं उषाके प्रति रँभाती हैं " **रुजद् दृळ्हानि ददद् उस्रियाणाम्, प्रति गाव उषसं वावशन्त**। (ऋ. ७.७५.७) और ठीक अगली ही ऋचामें उसमे प्रार्थना की गई है कि, वह यज्ञकर्ता के लिये आनन्द की उस अवस्था को स्थिर करे या धारण करावे, जो प्रकाश से (गौओं से), अश्वों से (प्राण-शक्ति से) और बहुत से सुख-भोगों से परिपूर्ण हो- " **गोमद् रत्नम् अश्वावत् पुरुभोजः**। " इसलिये जिन गौओं को उषा देती है, वे गौएं ज्योतिकी ही चमकती हुई सेनायें हैं; जिन्हें देवता और अङ्गिरस ऋषि वल और पणियोंके दृढ स्थानों से उद्धार करके लाये हैं। साथ ही गौओं (और अश्वों) की सम्पत्ति जिस के लिये ऋषि लगातार प्रार्थना करते हैं उसी ज्योति की सम्पत्तिके अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकती; क्योंकि यह कल्पना असंभवसी है कि, जिन गौओं को देने के लिये इस सूक्त की सातवीं ऋचा में उषा को कहा गया है, वे उन गौओं से भिन्न हों जो ८ वी में मांगी गई हैं, कि पहले मन्त्र में ' गौ ' शब्द का अर्थ है ' प्रकाश ' और अगले में

× अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद् दस्रा हिरण्यवत्। अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम्। (ऋ० १।९२।१६)

+ वि नूनमुच्छाद् असति प्रकेतुः। (ऋ. १।१२४।११)

⊙ निस्संदेह इसमें मतभेद हो सकता कि वेद में गौ का अर्थ प्रकाश है; उदाहरण के लिये जब यह कहा जाता है कि, ' गवा, ' ' गौ ' से, प्रकाश से, वृत्र को मारा गया, तो यहां गाय पशुका तो कोई प्रश्न ही नहीं है, प्रश्न यह है कि, यहां द्व्यर्थक प्रयोग है और गौ यहां प्रतीकरूप है।

÷ सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः।
रुजद् दृळ्हानि दददुस्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशन्त ॥ (ऋ० ७।७५।७)
नू नो गोमद् वीरवद् धेहि रत्नमुषो अश्वावत् पुरुभोजो अस्मे ॥ (ऋ० ७।७५।८)

' गाय, ' और यह कि ऋषि मुखसे निकालते ही उसी क्षण यह भूल गया कि किस अर्थ में वह शब्द का प्रयोग कर रहा था।

कहीं कहीं ऐसा है कि प्रार्थना ज्योतिर्मय आनन्द या ज्योतिर्मय समृद्धिके लिये नहीं है, बल्कि प्रकाशमय प्रेरणा या बल के लिये है, ' हे द्यु की पुत्री उषः! तू हमारे अन्दर सूर्य की रश्मियों के साथ प्रकाशमय प्रेरणाको ला '- ' **गोमतीरिष आवहा दुहितर्दिवः, साकं सूर्यस्य रश्मिभिः।**' ५।७९।८ सायणने ' **गोमतीः इषः** ' का अर्थ किया है ' चमकता हुआ अन्न ' +। परन्तु यह स्पष्ट ही एक निरर्थक सी बात लगती है कि उषा से कहा जाय कि, वह सूर्य किरणों के साथ किरणों से युक्त अन्नों को लाये। यदि ' इष् ' का अर्थ अन्न है, तो हमें इस प्रयोग का अभिप्राय लेना होगा।

इन नमूने के उदाहरणों से हम समझ सकते हैं कि, प्रकाश की गौओं का यह अलंकार कैसा व्यापक है और कैसे अनिवार्य रूप से यह वेदके लिये एक अध्यात्मपरक अर्थ की ओर निर्देश कर रहा है। एक सन्देह भी बीच में आ उपस्थित होता है। हमने माना कि, यह एक अनिवार्य परिणाम है कि ' गौ ' प्रकाश के लिये प्रयुक्त हुआ है, पर इससे हम क्यों न समझें कि, इसका सीधासाधा मतलब दिन के प्रकाश से है, जैसा कि, वेद की भाषा से निकलता प्रतीत होता है? वहां किसी प्रतीक की कल्पना क्यों करें, जहां केवल एक अलंकार ही है? हम उस दूसरे अलंकार की कठिनाई को निमंत्रण क्यों दें, जिस में ' गौ ' का अर्थ तो हो ' उषा का प्रकाश ' और उषाके प्रकाश को ' आन्तरिक ज्योति ' का प्रतीक समझा जाय? यह क्यों न मान लें कि ऋषि आत्मिक ज्योति के लिये नहीं, बल्कि दिन के प्रकाश के लिये प्रार्थना कर रहे थे?

ऐसा माननेपर अनेक प्रकार के आक्षेप आते हैं और उन में कुछ तो बहुत प्रबल हैं। यदि हम यह मानें कि, वैदिक सूक्तों की रचना भारत में हुई थी और यह उषा भारत की उषा है और यह रात्रि वही यहां की दस या बारह घण्टे की छोटीसी रात है, तो हमें यह स्वीकार कर के चलना होगा कि, वैदिक ऋषि जंगली थे, अन्धकार के भय से बडे भयभीत रहते थे और समझते थे कि, इस में भूत-प्रेत रहते हैं, वे दिन-रात की परम्परा के प्राकृतिक नियम से जिसका अब तक बहुत से सूक्तों में बडा सुन्दर चित्र खिंचा मिलता है- भी अनभिज्ञ थे और उनका ऐसा विश्वास था कि, आकाश में जो सूर्य निकलता था और उषा अपनी बहिन रात्रि के आलिङ्गन से छूटकर प्रकट होती थी, वह सब केवल उन की प्रार्थनाओं के कारण से ही होता था। पर फिर भी वे देवोंके कार्यमें अटल नियमों का वर्णन करते हैं और कहते हैं कि, उषा हमेशा शाश्वत सत्य व दिव्य नियम के मार्ग का अनुसरण करती है! हमें यह कल्पना करनी होगी कि, ऋषि जब उल्लास में भरकर पुकार उठता है ' हम अन्धकार को पार करके दूसरे किनारे पहुंच गये हैं! ' तो यह केवल दैनिक सूर्योदय पर होनेवाला सामान्य जागना ही है।

जिस की ऋषि ऐसी उत्कण्ठा से स्तुति कर रहा है। हमें यह कल्पना करनी होगी कि, वैदिक लोग उषा निकलने पर यज्ञ के लिये बैठ जाते थे और प्रकाश के लिये प्रार्थना करते थे, जब कि वह पहले से ही निकल चुका होता था। और यदि हम इन सब असंभव कल्पनाओं को मान भी लें, तो आगे हमें यह एक स्पष्ट कथन मिलता है कि, नौ या दस महीने बैठ चुकने के उपरान्त ही यह हो सका कि अङ्गिरस ऋषियों को खोया हुआ प्रकाश और खोया हुआ सूर्य फिर से मिल पाया। और जो पितरों के द्वारा ' ज्योति ' के खोजे जाने का कथन लगातार मिलता है, उस का हम क्या अर्थ लगायेंगे।

" हमारे पितरों ने छिपी हुई ज्योति को ढूंढकर पा लिया, उनके विचारों में जो सत्य था, उस के द्वारा उन्होंने उषा को जन्म दिया— **गूळ्हं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन्, सत्यमन्त्रा अजनयन् उषासम्**। (ऋ. ७।७६।४) यदि हम किसी भी साहित्य के किसी कविता संग्रह में इस प्रकार का कोई पद्य पावें, तो तुरन्त हम उसे एक मनोवैज्ञानिक या आध्यात्मिक रूप दे देंगे, तो फिर वेद के साथ हम दूसरा ही बर्ताव करें, इस में कोई युक्तियुक्त कारण नहीं दीखता।

फिर भी यदि हमें वेद के सूक्तों की प्रकृतिवादी व्याख्या ही करनी है और कोई नहीं, तो भी यह बिलकुल साफ है कि, वैदिक उषा और रात्रि कमसे कम भारत की रात्रि और उषा तो नहीं हो सकतीं। यह केवल उत्तरीय ध्रुव के प्रदेशों में ही हो सकता है कि इन प्रकृति की घटनाओं के संबंध में ऋषियों की जो मनोवृत्ति है और अंगिरसों के विषय में जो बातें कही गई हैं, वे कुछ समझ में आनेलायक बन सकें। प्राचीन वैदिक आर्य उत्तरीय ध्रुव से

+ गोमतीर्गोभिरुपेतानि इषोऽन्नानि आवह आनय— सायण

आये, इस कल्पना (वाद) को क्षणभर के लिय मान लेनेपर भी यद्यपि यह बहुत अधिक सम्भव हो सकता है कि, उत्तरीय ध्रुव की स्मृतियां वेद के बाह्य अर्थ में आ गई हों, फिर भी इस कल्पना से प्रकृति से खींचे हुए इन प्राचीन अलंकारों के पीछे जो एक आन्तरिक अर्थ है, उस का निराकरण नहीं हो सकता, नहीं इस के मान लेने से यह सिद्ध हो जाता है कि, उषासंबंधी ऋचाओं की इस की अपेक्षा और अधिक सुसंबद्ध और सीधी किसी दूसरी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है ।

उदाहरण के लिये हमारे सामने अश्विनों को कहा गया प्रस्कण्व काण्वका सूक्त [१४६] है, जिस में उस ज्योतिर्मय अन्तःप्रेरणा का संकेत है, जो हमें अन्धकार में से पार कर के परले किनारे पर पहुंचा देती है। उस सूक्त का उषा और रात्रिके वैदिक विचार के साथ घनिष्ट संबंध है। इस में वेद में नियतरूप से आनेवाले बहुत से अलंकारों का संकेत मिलता है; जैसे ऋत के मार्ग का, नदियों को पार करने का, सूर्य के उदय होने का, उषा और अश्विनों में परस्पर संबंध का, सोम-रस के रहस्यमय प्रभाव का और उसके सामुद्रिक रस का ।

' देखो, आकाशमें उषा खिल रही है, जिस से अधिक उच्च और कोई वस्तु नहीं है, जो आनन्द से भरी हुई है। हे अश्विनो ! तुम्हारी मैं महान् स्तुति करता हूं। ❀ (१) तुम जिन की सिंधु माता है, जो कार्य को पूर्ण करनेवाले हो, जो मन में से होते हुए उस पार पहुंचकर ऐश्वर्यों (रयि) को पा लेते हो, जो दिव्य हो और उस ऐश्वर्य (वसु) को विचार के द्वारा पाते हो । (२) हे समुद्र-यात्रा के देवो जो शब्द को मनोमय करनेवाले हो ! यह तुम्हारे विचारों को भंग करनेवाला है- तुम प्रचण्ड रूपसे सोम का पान करो (५) हे अश्विनो ! हमें वह ज्योतिष्मती अन्तःप्रेरणा दो, जो हमें तमस् से निकाल कर पार पहुंचा दे। (६) हमारे लिये तुम अपनी नावपर बैठकर चलो, जिस से हम मन के विचारों से परे परले पार पहुंच सकें। हे अश्विनो ! तुम अपने रथ को जोतो (७) अपने उस रथ को जो द्युलोक में इसकी नदियों को पार करने के लिये एक बडे पतवारवाले जहाज का काम देता है। विचार के द्वारा आनन्द की शक्तियां जोती गई हैं। (८) जलों के स्थान पर द्युलोक में आनन्दरूपी सोम-शक्तियां ही वह ऐश्वर्य [वसु] है। पर अपने उस आवरण को तुम कहां रख दोगे, जो तुमने अपने आपको छिपने के लिये बनाया है ? (९) नहीं, सोम का आनंद लेनेके लिये प्रकाश उत्पन्न हो गया है,- सूर्य ने जो कि, अन्धकारमय था, अपनी जिह्वा को हिरण्य की ओर लपलपाया है (१०) ऋत का मार्ग प्रकट हो गया है, जिस से हम उस पार पहुंचेंगे; द्यु के बीच का सारा खुला मार्ग दिखलाई पड गया है। (११) खोजनेवाला अपने जीवन में अश्विनों के ज्यों ज्यों सोम के आनन्दमें तृप्ति-लाभ करते हैं, त्यों त्यों उनके निरन्तर एक के बाद दूसरे आविर्भाव की ओर प्रगति किये जा रहा है ! (१२) उस सूर्य में जिस में ज्योति ही ज्योति है, तुम निवास करते हुए [या चमकते हुए] सोम-पानके द्वारा, वाणीके द्वारा हमारी मानवीयता में सुख का सर्जन करनेवाले के तौरपर आओ। (१३) तुम्हारी कीर्ति और विजयके अनुरूप उषा हमारे पास आती है, जब तुम हमारे सब लोकों में व्याप्त हो जाते हो और रात्रि में से सत्यों को विजय कर लाते हो। (१४) दोनों मिलकर हे अश्विनो ! सोम-पान करो, दोनों मिलकर हमारे अन्दर शक्ति को प्राप्त कराओ उन विस्तारों के द्वारा जिन की पूर्णता सदा अविच्छिन्न रहती है। (१५)

यह इस सूक्त का सीधा और स्वाभाविक अर्थ है और हमें इस का भाव समझने में कठिनाई नहीं होगी, यदि हम वेद के मूलभूत विचारों और अलङ्कारों को स्मरण रखेंगे। ' रात्रि ' स्पष्ट ही आन्तरिक अन्धकार के लिये आलंकारिक रूप से कहा

❀ एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १ ॥ या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ॥ २ ॥ आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा । पातं सोमस्य धृष्णुया ॥ ५ ॥ या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः । तामस्मे रासाथामिषम् ॥ ६ ॥ आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे । युञ्जाथामश्विना रथम् ॥ ७ ॥ अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः । धिया युयुज्र इन्दवः ॥ ८ ॥ दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे । स्वं वव्रिं कुह धित्सथः ॥ ९ ॥ अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः । व्यख्यज्जिह्वयासितः ॥ १० ॥ अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया । अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥ ११ ॥ तत्तदिदश्विनोरवो जरिता प्रति भूषति । मदे सोमस्य पिप्रतोः ॥ १२ ॥ वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा । मनुष्वच्छंभू आ गतम् ॥ १३ ॥ युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत् । ऋता वनथो अक्तुभिः ॥ १४ ॥ उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् । अविद्रियाभिरूतिभिः ॥ १५ ॥ (ऋ. १।४६)

गया है; उषा के आगमन के द्वारा रात्रि में से 'सत्यों' को जीतकर हस्तगत किया जाता है। यही उस सूर्यका, **सत्यके सूर्य का**, उदय होना है, जो अन्धकार के बीच में खो गया था– वही खोये हुए सूर्य का हमारा परिचित अलंकार जिस में उसे देवों और ऋषियोंने फिर से पाया है। और अब यह अपनी अग्नि की जिह्वा को स्वर्णिल **ज्योति** के प्रति– 'हिरण्य' के प्रति लपलपाता है।

सुवर्ण उच्चतर ज्योति का स्थूल प्रतीक है, यह सत्य का सोना है और यही वह निधि है, न कि कोई सोनेका सिक्का, जिस के लिये वैदिक ऋषि देवों से प्रार्थना करते हैं। आन्तरिक अन्धकार में से निकाल कर ज्योति में लाने के इस महान् परिवर्तन को अश्वी करते हैं, जो मन की और प्राण-शक्तियों की प्रसन्नतायुक्त ऊर्ध्वगति के देवता हैं, और इसे वे इस प्रकार करते हैं कि, आनन्द का अमृतरस मन और शरीर में उण्डेला जाता है और वहां वे इस का पान करते हैं। वे व्यंजक शब्द को मनोमय रूप देते हैं, वे हमें विशुद्ध मन के उस स्वर्ग में ले जाते हैं, जो इस अन्धकार से परे है और वहां वे **विचार** के द्वारा **आनन्द** की शक्तियों को काम में लाते हैं।

पर वे द्यु के जलों को भी पार कर के उससे भी ऊपर चल जाते हैं, क्योंकि सोम की शक्ति उन्हें सब मानसिक रचनाओं को तोड डालने में सहायता देती है और वे इस आवरण को भी उतार फेंकते हैं। वे मन से परे चले जाते हैं और सबसे अन्तिम चीज जो वे प्राप्त करते हैं वह 'नदियों का पार करना' कही गई है, जो कि विशुद्ध मनके द्युलोकमें से गुजरने की यात्रा है, वह यात्रा है, जिस से **सत्य** के मार्ग पर चलकर किनारे पर पहुंचा जाता है और जब तक अन्त में हम उच्चतम पद, परमा परावत्‌पर नहीं पहुंच जाते, तब तक हम इस महान् मानवीय यात्रा से विश्राम नहीं लेते।

हम देखेंगे कि, न केवल इस सूक्त में बल्कि सब जगह उषा सत्य को लानेवाली के रूप में आती है, स्वयं वह सत्य की ज्योति से जगमगानेवाली है। वह दिव्य उषा है और यह भौतिक उषा (प्रभात होना) उस की केवल छायामात्र है और प्राकृतिक जगत् में उस का प्रतीक है।

उषा सत्य के पथ की दृढ अनुगामिनी है और चूंकि इस बात का उसे ज्ञान या बोध रहता है, इसलिये वह असीमता को, बृहत् को, जिसकी कि वह ज्योति है, सीमित नहीं करती। यही इस मन्त्र का असली अभिप्राय है, यह बात ५ मण्डल की एक ऋचा (ऋ. ५।८०।१) से निर्विवाद स्पष्ट रूपसे सिद्ध हो जाती है और इस में भूलचूक की कोई संभावना नहीं रह जाती। इस में उषा के लिये कहा है– **द्युतद्यामानं बृहतीम् ऋतेन ऋतावरीं, स्वरावहन्तीम्।** 'वह प्रकाशमय गतिवाली है, ऋतसे महान् है, ऋत में सर्वोच्च (या ऋत से युक्त) है, अपने साथ स्वःको लाती है।' यहाँ हम बृहत् का विचार, सत्य का विचार, स्वर्लोक के सौर प्रकाश का विचार पाते हैं; और निश्चय ही वे सब विचार इस प्रकार घनिष्ठता और दृढता से एकमात्र भौतिक उषा के साथ सम्बद्ध नहीं रह सकते। इसके साथ हम ७।७५।१ के वर्णन की भी तुलना कर सकते हैं– **व्युषा आवो दिविजा ऋतेन, आविष्कृण्वाना महिमानमागात्।** "द्यौमें प्रकट हुई उषा सत्यके द्वारा वस्तुओं को खोल देती है, वह महिमा को व्यक्त करती हुई आती है।" यहां पुनः हम देखते हैं कि, उषा सत्य की शक्ति के द्वारा सब वस्तुओं को प्रकट करती है और इसका परिणाम यह बताया गया है कि, एक प्रकार की महत्ता का आविर्भाव हो जाता है।

अन्तमें इसी विचार को हम आगे भी वर्णित किया गया पाते हैं, बल्कि यहाँ सत्यके लिए 'ऋत' के बजाय सीधा 'सत्य' शब्द ही है, जोकि 'ऋतम्' की तरह दूसरा अर्थ किये जा सकने की सम्भावनामें डालनेवाला भी नहीं है– **सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिः।** (ऋ० ७।७५।७) 'उषा अपनी सत्ता में सच्चे देवों के साथ सच्ची है, महान् देवों के साथ महान् है।' वामदेव ने अपने एक सूक्त ४।५१ में उषा के इस 'सत्य' पर बहुत बल दिया है; क्योंकि वहाँ वह उषाओं के बारे में केवल इतना ही नहीं कहता कि, 'तुम सत्य के द्वारा जोते हुए अश्वों के साथ जल्दी से लोकों को चारों ओर से घेर लेती हो,' × **ऋतयुग्भिः अश्वैः** (तुलना करो ऋ. २।६५।२ +) परन्तु वह उनके लिए कहता है– **भद्रा ऋतजातसत्याः** (ऋ. ४।५१।७) 'वे सुखमय हैं और सत्यसे उत्पन्न हुई सच्ची हैं।' और एक दूसरी ऋचा में वह उनका वर्णन इस रूप में करता है कि, 'वे देवी हैं जो कि ऋतके स्थानमें प्रबुद्ध होती हैं। ●'

× यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः। (ऋ. ४।५१।५)

+ वि तद् ययुररुणयुग्भिरश्वैश्चित्रं भान्त्युषसश्चन्द्ररथाः। (ऋ. ६।६५।२)

● ऋतस्य देवीः सदसो बुधानाः। (ऋ. ४।५१-८)

'भद्रा' और 'ऋत' का यह निकट सम्बन्ध अग्निको कहे गये मधुच्छन्दस् के सूक्त मे इसी प्रकार का जो विचारों का परस्पर सम्बन्ध है, उस का हमें स्मरण करा देता है। वेद की अपनी आध्यात्मिक व्याख्या में हम प्रत्येक मोड पर इस प्राचीन विचार को पाते हैं कि 'सत्य' आनन्द को प्राप्त करने का मार्ग है। तो उषाको, सत्य की ज्योति से जगमगाती उषा को, भी अवश्य सुख और कल्याण को लानेवाला होना चाहिए। उषा आनन्द को लानेवाली है, यह विचार वेद में हम लगातार पाते हैं और वशिष्ठने (ऋ. ७।८१।३) में इसे बिल्कुल स्पष्ट रूप में कह दिया है- **या वहसि पुरुस्पार्हं रत्नं न दाशुषे मयः।** "तू जो देनेवाले को कल्याण-सुख प्राप्त कराती है, जो कि अनेक रूप है और स्पृहणीय आनन्द रूप है।"

वेद का एक सामान्य शब्द '**सूनृता**' है जिसका अर्थ सायण ने 'मधुर और सत्य वाणी' किया है, परन्तु प्रतीत होता है कि, इसका प्रायः और भी अधिक व्यापक अभिप्राय '**सुखमय सत्य**' है। उषा का कहीं कहीं यह कहा गया है कि, वह '**ऋतावरी**' है, सत्य से परिपूर्ण है और कहीं उसे '**सूनृतावती**' कहा गया है। वह आती है सच्चे और सुखमय शब्दों को उच्चरित करती हुई "**सूनृता ईरयन्ती।**" जैसे उस का वह वर्णन किया गया है कि, वह जगमगाती हुई गौओं की नेत्री है और दिनों की नेत्री है, वैसे ही उसे सुखमय सत्यों की प्रकाशवती नेत्री कहा गया है। **भास्वती नेत्री सूनृतानाम्।** (ऋ० १।९२।७) और वैदिक ऋषियों के मनमें ज्योति, किरणों या गौओं के विचार और सत्य के विचार में जो परस्पर गहरा सम्बन्ध है, वह एक दूसरी ऋचा (ऋ. १।९२।१४) में और भी अधिक स्पष्ट तथा असन्दिग्ध रूप से पाया जाता है- **गोमति अश्वावती विभावरि... ... ... सूनृतावति।** "हे उषा, जो तू अपनी जगमगाती हुई गौओंके साथ है, अपने अश्वोंके साथ है, अत्यधिक प्रकासमान है और सुखमय सत्योंसे परिपूर्ण है।" इसी जैसा पर तो भी इससे अधिक स्पष्ट वाक्यांश (ऋ. १।४८।२) में है, जो इन विशेषणों के इस प्रकार रखे जानेके अभिप्राय को सूचित कर देता है- **गोमतीरश्वावतीर्विश्वसुविदः।** "उषाएं जो अपनी ज्योतियों (गौओं) के साथ हैं, अपनी त्वरितगतियों (अश्वों) के साथ हैं और जो सब वस्तुओं को ठीक प्रकार से जानती हैं।"

वैदिक उषा के आध्यात्मिक स्वरूपका निर्देश करनेवाले जो उदाहरण ऋग्वेद में पाये जाते हैं, वे किसी भी प्रकार वहीं तक परिमित नहीं हैं। उषा को निरन्तर इस रूप में प्रदर्शित किया गया है कि, वह दर्शन, बोध, ठीक दिशामें गति को जागृत करती है। गोतम राहूगण कहता है, "वह देवी सब भुवनोंको सामने होकर देखती है, वह दर्शनरूपी आँख अपनी पूर्ण विस्तीर्णता में चमकती हैं, ठीक दिशा में चलने के लिए सम्पूर्ण जीवन को जगाती हुई वह सब विचारशील लोगों के लिए वाणी को प्रकट करती है।" + **विश्वस्य वाचमविदन् मनायोः।** (ऋ० १।९२।९)

वहां हम उषा को इस रूप में पाते हैं कि, वह जीवन और मनको बन्धन मुक्त करके अधिकसे अधिक पूर्ण विस्तार में पहुंचा देती है और यदि हम इस उपर्युक्त निर्देश को वहीं तक सीमित रखें कि, यह केवल भौतिक उषा के उदय होने पर पार्थिव जीवन के पुनः जाग उठने का ही वर्णन है, तो हम ऋषि के चुने हुए शब्दों और वाक्यांशों में जो बल है, उस सारे की उपेक्षा ही कर रहे होंगे और यदि यह हो कि, उषा से लाये जानेवाले दर्शन के लिए यहाँ जो शब्द प्रयुक्त किया गया है, 'चक्षुः' उसे केवल भौतिक दर्शनशक्ति को ही सूचित कर सकने योग्य माना जाय, तो दूसरे सन्दर्भोंमें हम इसके स्थान पर 'केतु' शब्द पाते हैं, जिसका अर्थ है बोध, मानसिक चेतना में होनेवाला बोधयुक्त दर्शन, ज्ञान की एक शक्ति। उषा है 'प्रचेताः' इस बोधयुक्त ज्ञान से पूर्ण। उषाने जो कि ज्योतियों की माता है, मन के इस बोधयुक्त ज्ञान को रचा है, **गवां जनित्री अकृत प्र केतुम्** (ऋ. १।१२४।५)। वह स्वयं ही दर्शनरूप है- "अब बोधमय दर्शनकी उषा खिल उठी है, जहाँ कि पहले कुछ नहीं (असत्) था," **वि नूनमुच्छादसति प्र केतुः** (ऋ. १।१२४-११)। वह अपनी बोधयुक्त शक्ति के द्वारा सुखमय सत्योंवाली है, **चिकित्वत् सूनृतावरि।** (ऋ. ४।५२।४)

यह बोध, यह दर्शन, हमें बताया गया है, अमरत्व का है- **अमृतस्य केतुः** (ऋ. ३।६१।३)। दूसरे शब्दोंमें यह उस सत्य और सुख की ज्योति है, जिनसे उच्चतर या अमर चेतना का निर्माण होता है। रात्रि वेद में हमारी उस अन्धकारमय चेतना का प्रतीक है जिस के ज्ञान में अज्ञान भरा पडा है और जिसके संकल्प तथा क्रिया में स्खलन पर स्खलन होते रहते हैं और इसलिए जिसमें सब प्रकार की बुराई, पाप तथा कष्ट रहते हैं। प्रकाश है ज्योतिर्मयी उच्चतर चेतनाका आगमन जो कि सत्य और सुख को प्राप्त कराता है। हम निरन्तर 'दुरितम्' और 'सुवितम्' इन दो शब्दों का विरोध पाते हैं। 'दुरितम्' का

+ विश्वं नि देवी भुवनाभिचक्ष्या प्रतीची चक्षुरुर्विया वि भाति।
विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः॥ (ऋ० १।९२।९)

शाब्दिक अर्थ है स्खलन, गलत रास्ते पर जाना और औपचारिक रूप से यह सब प्रकार की गलती और बुराई, सब पाप, भूल और विपत्तियों का सूचक है। 'सुवितम्' का शाब्दिक अर्थ है, ठीक और भले रास्ते पर जाना और यह सब प्रकारकी अच्छाई तथा सुख को प्रकट करता है और विशेषकर इसका अर्थ वह सुख-समृद्धि है, जो कि सही मार्ग पर चलनेसे मिलती है। सो वसिष्ठ इस देवी उषाके विषयमें (ऋ. ७।७८।२) में इस प्रकार कहता है– "दिव्य उषा अपनी ज्योति से सब अन्धकारों और बुराइयों को हटाती हुई आ रही है" *(**विश्वा तमांसि दुरिता**) और बहुतसे मन्त्रों में इस देवीका वर्णन इस रूपमें किया गया है कि, यह मनुष्योंको जगा रही है, प्रेरित कर रही है, ठीक मार्ग की ओर, सुख की ओर (**सुविताय**)।

इसलिये वह केवल सुखमय सत्यों की ही नहीं, किंतु हमारी आध्यात्मिक समृद्धि और उल्लास की भी नेत्री है, उस आनन्दको लानेवाली है, जिस तक मनुष्य सत्य के द्वारा पहुँचता है या जो सत्यके द्वारा मनुष्य के पास लाया जाता है, (**एषा नेत्री राधसः सूनृतानाम्** । (ऋ. ७।७६।७) यह समृद्धि जिस के लिए ऋषि प्रार्थना करते हैं, भौतिक दौलतों के अलङ्कार से वर्णन की गई है; यह '**गोमद् अश्वावद् वीरवद्**' है, या वह '**गोमद् अश्वावद् रथवच्च राधः**' है। गौ (गाय), अश्व (घोडा), प्रजा या असत्य (सन्तान), नृ या वीर (मनुष्य या शूरवीर), हिरण्य (सोना), रथ (सवारीवाला रथ) **श्रवः** (भोजन या कीर्ति)– याज्ञिक सम्प्रदायवालों की व्याख्या के अनुसार ये ही उस सम्पत्ति के अंग हैं, जिस की वैदिक ऋषि कामना करते थे। यह लगेगा कि, इससे अधिक ठोस दुनियावी पार्थिव और भौतिक दौलत कोई और नहीं हो सकती थी, निःसन्देह ये ही वे ऐश्वर्य हैं, जिन के लिए कोई बेहद भूखी, पार्थिव वस्तुओं की लोभी, कामुक, जंगली लोगोंकी जाति अपने आदि देवोंसे याचना करती। परन्तु हम देख चुके हैं कि 'हिरण्य' वेदमें भौतिक सोने की अपेक्षा दूसरे ही अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। हम देख आए हैं कि 'गौएं' निरन्तर उषा के साथ सम्बद्ध होकर बार बार आती हैं, कि यह **प्रकाश** के उदय होने का आलङ्कारिक वर्णन होता है और हम यह भी देख चुके हैं कि, इस प्रकाश का सम्बन्ध मानसिक दर्शन के साथ है और उस सत्य के साथ है जो कि सुख लाता है। और अश्व, घोडा, आध्यात्मिक भावों के निर्देशक इन मूर्त अलंकारों में सर्वत्र गौ के प्रतीकात्मक अलंकार के साथ जुडा हुआ आता है; उषा '**गोमती अश्वावती**' है। वसिष्ठ ऋषिकी एक ऋचा (ऋ० ७।७७।३) है, जिसमें वैदिक मंत्र का प्रतीकात्मक अभिप्राय बडी स्पष्टता और बडे बल के साथ प्रकट होता है–

देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती, श्वेतं नयन्ती
सुदृशीकमश्वम् । उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता,
चित्रमघा विश्वमनु प्रभूता ॥

'देवों की दर्शनरूपी आँख को लाती हुई, पूर्ण दृष्टिवाले सफेद घोडेका नेतृत्व करती हुई सुखमय उषा रश्मियों द्वारा व्यक्त होकर दिखाई दे रही है, यह अपने चित्रविचित्र ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण है, अपने जन्मको सब वस्तुओंमें अभिव्यक्त कर रही है।' यह पर्याप्त स्पष्ट है कि 'सफेद घोडा' पूर्णतया प्रतीकरूप ही है × (सफेद घोडा यह मुहावरा अग्निदेवता के लिए प्रयुक्त किया गया है, जो कि अग्नि + 'द्रष्टा का संकल्प' है कविक्रतु है, दिव्य संकल्पकी अपने कार्यों को करने की पूर्ण दृष्टि–शक्ति है। (ऋ. ५।१।४) और ये 'चित्र-विचित्र ऐश्वर्य' भी आलंकारिक ही हैं, जिन्हें कि वह अपने साथ लाती है, निश्चय ही सबका अभिप्राय भौतिक धन–दौलत से नहीं है।

उषाका वर्णन किया गया है कि यह '**गोमती अश्वावती वीरवती**' है और क्योंकि उसके साथ लगाये गये 'गोमती' और 'अश्वावती' ये दो विशेषण प्रतीकरूप हैं और इन का अर्थ यह नहीं है कि, यह 'भौतिक गौओं और भौतिक घोडोंवाली' है, बल्कि यह अर्थ है कि यह ज्ञान की ज्योति से जगमगानेवाली और शक्ति की तीव्रतासे युक्त है, तो 'वीरवती' का अर्थ भी यह नहीं हो सकता कि यह 'मनुष्योंवाली है या शूर वीरों, नौकरचाकरों या पुत्रों से युक्त' है, बल्कि इस की अपेक्षा इस का अर्थ यह होगा कि, यह विनयशील शक्तियों से संयुक्त है अथवा यह शब्द बिल्कुल इसी अर्थ में नहीं, तो

---

* उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरिताप देवी। (ऋ० ७।७८।२)

× घोडा प्रतीकरूप ही है, यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है। दीर्घतमस् के सूक्तों में जो कि यज्ञ के घोडे के सम्बन्ध में हैं, अश्वदधिक्रावन् विषयक भिन्न भिन्न ऋषियों के सूक्तों में और फिर बृहदारण्यक उपनिषद् के आरम्भ में जहां यह जटिल आलङ्कारिक वर्णन है, जिसका आरम्भ 'उषा घोडे का सिर है,' (उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः) इस वाक्य से होता है।

\+ अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्ये सं चरन्ति ।
यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम् ॥ (ऋ० ५।१।४)

*

कमसे कम किसी ऐसे ही और प्रतीकरूप अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। यह बात (ऋ० १।११३।१८) में बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। '**या गोमतीरुषसः सर्ववीरा ... ... ता अश्वदा अश्नवत् सोम सुत्वा।**' इस का यह अर्थ है कि, 'ये उषाएं जिन में कि भौतिक गायें हैं और सब मनुष्य या सब नौकर-चाकर हैं, सोम अर्पित कर के मनुष्य उन का भौतिक घोडों को देनेवाली के रूप में उपभोग करता है।' उषा देवी यहाँ आन्तरिक उषा है, जो कि मनुष्य के लिए उस की बृहत्तम सत्ता की विविध पूर्णताओं को, शक्ति को, चेतना को और प्रसन्नता को लाती है; यह अपनी ज्योतियों से जगमग है, सब संभव शक्तियों और बलों से युक्त है, यह मनुष्य को जीवन-शक्तिका पूर्ण बल प्रदान करती है, जिस से कि यह उस बृहत्तर सत्ता के असीम आनन्द का स्वाद ले सके।

अब हम अधिक देर तक '**गोमद् अश्वावद् वीरवद् राधः**' को भौतिक अर्थों में नहीं ले सकते; वेदकी भाषा ही हमें इस से बिलकुल भिन्न तथ्य का निर्देश कर रही है। इस कारण देवोंद्वारा दी गई इस सम्पत्ति के अन्य अंगों को भी हमें इसी की तरह अवश्यमेव आध्यात्मिक अर्थों में ही लेना चाहिए; सन्तान, सुवर्ण, रथ ये प्रतीकरूप ही हैं; '**श्रवः**' कीर्ति या भोजन नहीं है, बल्कि इस में आध्यात्मिक अर्थ अन्तर्हित है और इस का अभिप्राय है, वह उच्चतर दिव्य ज्ञान जो कि इंद्रियों या बुद्धि का विषय नहीं है, बल्कि जो सत्य की दिव्य श्रुति है और सत्य के दिव्य दर्शन से प्राप्त होता है; '**रयिं दीर्घश्रुत्तमम्**' **रयिं** '**श्रवस्युम्**' सत्ता की यह सम्पन्न अवस्था है, यह आध्यात्मिक समृद्धि से युक्त वैभव है, जो कि दिव्य ज्ञान की ओर प्रवृत्त होता है (**श्रवस्यु**) और जिस में उस **दिव्य शब्द** के कम्पनों को सुननेके लिये सुदीर्घ, दूर तक फैली श्रवणशक्ति है, **दिव्य शब्द** हमारे पास असीम के प्रदेशों (**दिशः**) से आता है। इस प्रकार उषाका यह उज्ज्वल अलंकार हमें वेदसम्बन्धी उन सब भौतिक, कर्म-काण्डिक, अज्ञानमूलक भ्रांतियों से मुक्त कर देता है, जिनमें कि यदि हम फंसे रहते तो वे हमें असंगति और अस्पष्टता की रात्रि में ठोकरों पर ठोकरें खिलाती हुई एक से दूसरे अन्धकूपमें ही गिराती रहतीं, वह हमारे लिए बन्द द्वारों को खोल देती है और वैदिक ज्ञान हृदय के अन्दर हमारा प्रवेश करा देती है।

उषा सूक्तों का यह आध्यात्मिक रहस्य श्री योगी अरविन्द जी की खोजसे प्राप्त हुआ है जिसे पाठकोंको मननपूर्वक अपनाना योग्य है।

(३)
उषादेवताका वर्णन

उषा देवताका वर्णन कई विभिन्न रीतियोंसे भी देखने योग्य है। उषा के सूक्तों में काव्य का आलंकारिक वर्णन तो बडा ही मनोरंजक और हृदयंगम है हि परंतु इसकी अन्यभी कुछ विशेषताएं हैं जो देखनें योग्य हैं।

सूर्योदयके पूर्व उषाएँ
(वसिष्ठो मैत्रावरुणिः)

तानीदहानि बहुलान्यासन् या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य।
यतः परि जार इव आचरन्ती उषः ददृक्षे न पुनर्यतीव॥
(१४९) ऋ. ७।७६।३

'(सूर्यस्य प्राचीनं या उदिता) सूर्यके पूर्व जो उदय हुए थे, (तानि अहानि बहुलानि इत् आसन्) ऐसे वे उषःकाल निःसन्देह बहुत ही थे।'

इस मंत्र में 'सूर्योदयके पूर्व अनेक उषःकाल अथवा (अहानि) अनेक दिन व्यतीत हुए' ऐसा वर्णन किया है। क्या कभी हमें इसका अनुभव है? नहीं, हमें अपने देशमें तो एक उषःकाल जानेके बादही उसी दिन प्रत्यक्ष सूर्य उगता हुआ दिखाई देता है। सूर्य उदयके पूर्व बहुत दिन व्यतीत हुए और बहुत दिन व्यतीत होनेतक सूर्य का उदय नहीं हुआ, ऐसा इस देशमें कभी नहीं होता है। ये बहुत दिन उषःकालके ही हैं, जैसी उषा लाल वर्णके प्रकाशसे युक्त होती है, वैसेही ये दिन हैं। सूर्यप्रकाशवाले ये दिन नहीं हैं। क्यों कि इस सूक्तकी देवता उषा है और इस मंत्रमें भी 'उषः' संबोधन करके ही वर्णन है, देखिये इसी मंत्रका उत्तरभाग—

'हे उषा देवी! तूं जारके समान आचरण करनेवाली दीखती है, संन्यासिनी यती स्त्रीके समान तूं दीखती नहीं।' ऐसा उषाको संबोधन करके कहा है। यार की प्रतीक्षा करती हुई जैसी कोई स्त्री रहती है, वह अपने प्रियकी प्रतीक्षा करती रहती है, वह पति न आया तो भी आतुरताके साथ

वह स्त्री प्रतीक्षा करतीही रहती है, परंतु अपने प्रियपर क्रोध करके संन्यासिनी बन कर उसको नहीं छोडती, तद्वत् यह उषा है।

यहां सूर्य उदय होनेतक अनेक दिन उषःकाल ही उषःकाल रहनेका स्पष्ट वर्णन है। हमारे देशमें घण्टाभर तक उषःकाल रहता है, पश्चात् सूर्यका उदय होता है। अतः यह वर्णन यहां के उषःकालपर घटता ही नहीं। यहां तो सूर्योदयके पूर्व बहुत उषःकाल आते नहीं, प्रतिदिन उषा सूर्य की प्रतीक्षा करती रहती है, पर सूर्य देव उसके पास नहीं आते, ऐसा यहां नहीं होता, अतः उषा अपने प्रियकी प्रतीक्षा बहुत दिन करती रही, पर सूर्य देव नहीं आये तथापि वह उषा यती (संन्यासिनी) बनी नहीं, अपने प्रिय पर पूर्ववत् प्रेमही करती रही, यह वर्णन यहांके उषःकालका नहीं हो सकता।

जिस देशमें सूर्योदयके पूर्व अनेक दिन उषःकाल रहता होगा, वहीं पर ऐसी कल्पना कवि कर सकता है। और वहीं यह कल्पना प्रत्यक्ष सृष्टीमें दीख सकती है। जहां घण्टाभर ही उषःकाल रहता होगा, वहां सूर्योदय के पूर्व बहुत दिन उषःकाल रहा, ऐसा वर्णन नहीं हो सकता।

यहां '**बहुलानि अहानि**' पद है, अनेक दिन व्यतीत होनेके पश्चात् वहां सूर्यदेवका दर्शन होता है। यहां दिनका अर्थ पृथ्वीका अपने इर्दगिर्द भ्रमणका काल है। आकाशमें जो तारका मण्डल दीखता है वह भ्रमण करतासा दीखता है। उसके २४ घण्टोंके परिभ्रमणसे दिनकी कल्पना होती है। ऐसे बहुत दिन व्यतीत होनेतक यह उषा सूर्यकी प्रतीक्षा करती रहती है, और पश्चात् सूर्य देव आते हैं और उषा सूर्यदेवके साथ संलग्न होती है।

यहां '**बहुलानि अहानि**' पद है। इस वर्णनसे कितने दिन लेने योग्य हैं, इसका भी यहां विचार करना चाहिये। यदि ३० दिन व्यतीत हो जायँ तो एक महिना व्यतीत हुआ ऐसा कहेंगे, इसलिये जिस कारण यहां 'अहानि' अर्थात् 'दिन' ही व्यतीत हुए ऐसा कहा है, उस कारण हम कह सकते हैं कि, तीस दिनोंसे कम ही ये उषःकाल होंगे। यदि आठ दस दिनतक ही यह उषःकाल रहता होगा, तो उसके लिये 'बहुत दिन' ऐसा प्रयोग कोई नहीं करेगा, क्योंकि सात संख्यातक संख्या 'बहुत दिन' कहने योग्य नहीं होती। इसलिये ३० दिन भी नहीं और दस दिन तक भी नहीं अर्थात् बीससे कुछ अधिक दिन ऐसा यह उषाका अवधि '**बहुलानि अहानि**' पदोंसे लेना योग्य है।

संस्कृत व्याकरणके अनुसार '**बहुलानि अहानि**' (बहुत दिन) का अर्थ कमसे कम तीन दिन और अधिकसे अधिक जितने भी होंगे उतने दिन बोधित होंगे। अतः व्याकरण हमारी इतनीहि यहां सहायता करता है और कहता है कि इन पदोंसे कमसे कम तीन दिनोंका अवधि निर्धारित हो सकता हैं, ज्यादा कितने दिन ले सकते हैं यह व्याकरण नहीं कह सकता। पर केवल तीन ही दिनोंके लिये 'बहुतही दिन' ऐसा कोई भी नहीं कहता। इसलिये यह अवधि निश्चयसे तीन दिनोंसे अधिक है इसमें संदेह नहीं, अनेक उषाओंका वर्णन वेदमंत्रोंमें भी है, अतः उषाका बहुवचनमें प्रयोग अनेक वेदमंत्रोंमें दिखाई देता है—

स्पार्हा वसूनि तमसाऽपगूळ्हा
आविष्कृण्वन्त्युषसो विभातीः॥ (६४; ऋ १।१२३।६)

'स्पृहणीय पदार्थ जो गूढ अन्धकारसे ढंके थे, उन सबको ये अनेक (विभातीः उषसः आविष्कृण्वन्ति) प्रकाशनेवाली उषायें प्रकट कर रही हैं।' अर्थात् ये अनेक उषायें आकर सूर्य आनेके पूर्वही विश्वान्तर्गत नाना पदार्थोंको हमारे सामने प्रकट करती हैं। इसी सूक्तका अगला मंत्र इस मंत्रका आशय अधिक स्पष्ट कर रहा है—

परा च यन्ति पुनरा च यन्ति
भद्रा नाम वहमाना उषासः। (७०; ऋ० १।१२३।१२)

'ये (उषासः) उषायें (भद्रा नाम वहमानाः) कल्याणकारक यशका धारण करती हुई (परा यन्ति) जाती हैं और (पुनः च आयन्ति) फिर वापस आती हैं।' उषःकाल चला गयासा दीखता है और उसी समय फिर नया शुरू होने लगता है। वह वर्णन बडा महत्त्व रखनेवाला वर्णन है। हमारे देशमें एक बार उषःकाल गया तो दिन आता है, दिनके बाद सायंकाल और उसके बाद रात्री व्यतीत होती है, इसतरह २४ घण्टे व्यतीत होते हैं, तत्पश्चात् दूसरी उषा आती है। अतः यह वर्णन यहांका नहीं है जिस भूभाग पर एकवार उषा गयी तो उसी समय पुनः दूसरी उषःकाल आनेकी संभावना हो, वहीं यह वर्णन प्रत्यक्ष दीख सकता है, और वहीं सूर्योदयके पूर्व अनेक उषाओंका होना भी संभव हो सकता है। ऐसी कई उषायें लगातार आतीं हैं और पश्चात् सूर्य देव उगते हैं, वहीं कवि कह सकता है कि, 'एक उषा गयी और फिरसे दूसरी उषा पुनः आगयी।' इसी तरह और भी वर्णन देखिये—

क स्विदासां कतमा पुराणी ? (९६; ऋ. ४।५१।६)

'इस सब उषाओंमें कौनसी भला उषा पुरानी है ?' यह प्रश्न तब हो सकता है कि, जब अनेक उषःकाल साथसाथ आते हों। हमारे भारतवर्षमें तो एकही उषःकाल रहता है इस लिये इसमें पुराना और नया ऐसा भेद नहीं हो सकता, परंतु

कमसे कम किसी ऐसे ही और प्रतीकरूप अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है । यह बात (ऋ० १।११३।१८) में बिलकुल स्पष्ट हो जाती है । ' **या गोमतीरुषसः सर्ववीरा ... ... ता अश्वदा अश्नवत् सोम सुत्वा ।** ' इस का यह अर्थ है कि, ' ये उषाएं जिन में कि भौतिक गायें हैं और सब मनुष्य या सब नौकर-चाकर हैं, सोम अर्पित कर के मनुष्य उन का भौतिक घोडों को देनेवाली के रूप में उपभोग करता है । ' उषा देवी यहाँ आन्तरिक उषा है, जो कि मनुष्य के लिए उस की बृहत्तम सत्ता की विविध पूर्णताओं को, शक्ति को, चेतना को और प्रसन्नता को लाती है; यह अपनी ज्योतियों से जगमग है, सब संभव शक्तियों और बलों से युक्त है, यह मनुष्य को जीवन-शक्तिका पूर्ण बल प्रदान करती है, जिस से कि यह उस बृहत्तर सत्ता के असीम आनन्द का स्वाद ले सके ।

अब हम अधिक देर तक ' **गोमद् अश्वावद् वीरवद् राधः** ' को भौतिक अर्थों में नहीं ले सकते; वेदकी भाषा ही हमें इस से बिलकुल भिन्न तथ्य का निर्देश कर रही है । इस कारण देवोंद्वारा दी गई इस सम्पत्ति के अन्य अंगों को भी हमें इसी की तरह अवश्यमेव आध्यात्मिक अर्थों में ही लेना चाहिए; सन्तान, सुवर्ण, रथ ये प्रतीकरूप ही हैं; ' **श्रवः** ' कीर्ति या भोजन नहीं है, बल्कि इस में आध्यात्मिक अर्थ अन्तर्हित है और इस का अभिप्राय है, वह उच्चतर दिव्य ज्ञान जो कि इंद्रियों या बुद्धि का विषय नहीं है, बल्कि जो सत्य की दिव्य श्रुति है और सत्य के दिव्य दर्शन से प्राप्त होता है; ' **रयिं दीर्घश्रुत्तमम्** ' रयिं ' **श्रवस्युम्** ' सत्ता की यह सम्पन्न अवस्था है, यह आध्यात्मिक समृद्धि से युक्त वैभव है, जो कि दिव्य ज्ञान की ओर प्रवृत्त होता है (**श्रवस्यु**) और जिस में उस दिव्य शब्द के कम्पनों को सुननेके लिये सुदीर्घ, दूर तक फैली श्रवणशक्ति है, दिव्य शब्द हमारे पास असीम के प्रदेशों (**दिशः**) से आता है । इस प्रकार उषाका यह उज्ज्वल अलंकार हमें वेदसम्बन्धी उन सब भौतिक, कर्म-काण्डिक, अज्ञानमूलक भ्रांतियों से मुक्त कर देता है, जिनमें कि यदि हम फंसे रहते तो वे हमें असंगति और अस्पष्टता की रात्रि में ठोकरों पर ठोकरें खिलाती हुई एक से दूसरे अन्धकूपमें ही गिराती रहतीं, वह हमारे लिए बन्द द्वारों को खोल देती है और वैदिक ज्ञान हृदय के अन्दर हमारा प्रवेश करा देती है ।

उषा सूक्तों का यह आध्यात्मिक रहस्य श्री योगी अरविन्द जी की खोजसे प्राप्त हुआ है जिसे पाठकोंको मननपूर्वक अपनाना योग्य है ।

(३)

उषादेवताका वर्णन

उषा देवताका वर्णन कई विभिन्न रीतियोंसे भी देखने योग्य है । उषा के सूक्तों में काव्य का आलंकारिक वर्णन तो बडा ही मनोरंजक और हृदयंगम है हि परंतु इसकी अन्यभी कुछ विशेषताएं हैं जो देखनें योग्य हैं ।

सूर्योदयके पूर्व उषाएँ

(वसिष्ठो मैत्रावरुणिः)

तानीदहानि बहुलान्यासन् या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य ।
यतः परि जार इव आचरन्ती उषः ददृक्षे न पुनर्यतीव ॥
(१४९) ऋ. ७।७६।३

' (सूर्यस्य प्राचीनं या उदिता) सूर्यके पूर्व जो उदय हुए थे, (तानि अहानि बहुलानि इत् आसन्) ऐसे वे उषःकाल निःसन्देह बहुत ही थे । '

इस मंत्र में ' सूर्योदयके पूर्व अनेक उषःकाल अथवा (अहानि) अनेक दिन व्यतीत हुए ' ऐसा वर्णन किया है । क्या कभी हमें इसका अनुभव है ? नहीं, हमें अपने देशमें तो एक उषःकाल जानेके बादही उसी दिन प्रत्यक्ष सूर्य उगता हुआ दिखाई देता है । सूर्य उदयके पूर्व बहुत दिन व्यतीत हुए और बहुत दिन व्यतीत होनेतक सूर्य का उदय नहीं हुआ, ऐसा इस देशमें कभी नहीं होता है । ये बहुत दिन उषःकालके ही हैं, जैसी उषा लाल वर्णके प्रकाशसे युक्त होती है, वैसेही ये दिन हैं । सूर्यप्रकाशवाले ये दिन नहीं हैं । क्यों कि इस सूक्तकी देवता उषा है और इस मंत्रमें भी ' उषः ' संबोधन करके ही वर्णन है, देखिये इसी मंत्रका उत्तरभाग-

' हे उषा देवी ! तूं जारके समान आचरण करनेवाली दीखती है, संन्यासिनी यती स्त्रीके समान तूं दीखती नहीं । ' ऐसा उषाको संबोधन करके कहा है । यार की प्रतीक्षा करती हुई जैसी कोई स्त्री रहती है, वह अपने प्रियकी प्रतीक्षा करती रहती है, वह पति न आया तो भी आतुरताके साथ

वह स्त्री प्रतीक्षा करतीही रहती है, परंतु अपने प्रियपर क्रोध करके संन्यासिनी बन कर उसको नहीं छोडती, तद्वत् यह उषा है।

यहां सूर्य उदय होनेतक अनेक दिन उषःकाल ही उषःकाल रहनेका स्पष्ट वर्णन है। हमारे देशमें घण्टाभर तक उषःकाल रहता है, पश्चात् सूर्यका उदय होता है। अतः यह वर्णन यहां के उषःकालपर घटता ही नहीं। यहां तो सूर्योदयके पूर्व बहुत उषःकाल आते नहीं, प्रतिदिन उषा सूर्य की प्रतीक्षा करती रहती है, पर सूर्य देव उसके पास नहीं आते, ऐसा यहां नहीं होता, अतः उषा अपने प्रियकी प्रतीक्षा बहुत दिन करती रही, पर सूर्य देव नही आये तथापि वह उषा यती (संन्यासिनी) बनी नहीं, अपने प्रिय पर पूर्ववत् प्रेमही करती रही, यह वर्णन यहांके उषःकालका नहीं हो सकता।

जिस देशमें सूर्योदयके पूर्व अनेक दिन उषःकाल रहता होगा, वहीं पर ऐसी कल्पना कवि कर सकता है। और वहीं यह कल्पना प्रत्यक्ष सृष्टीमें दीख सकती है। जहां घण्टाभर ही उषःकाल रहता होगा, वहां सूर्योदय के पूर्व बहुत दिन उषःकाल रहा, ऐसा वर्णन नहीं हो सकता।

यहां '**बहुलानि अहानि**' पद है, अनेक दिन व्यतीत होनेके पश्चात् वहां सूर्यदेवका दर्शन होता है। यहां दिनका अर्थ पृथ्वीका अपने इर्दगिर्द भ्रमणका काल है। आकाशमें जो तारका मण्डल दीखता है वह भ्रमण करतासा दीखता है। उसके २४ घण्टोंके परिभ्रमणसे दिनकी कल्पना होती है। ऐसे बहुत दिन व्यतीत होनेतक यह उषा सूर्यकी प्रतीक्षा करती रहती है, और पश्चात् सूर्य देव आते हैं और उषा सूर्यदेवके साथ संलग्न होती है।

यहां '**बहुलानि अहानि**' पद है। इस वर्णनसे कितने दिन लेने योग्य हैं, इसका भी यहां विचार करना चाहिये। यदि ३० दिन व्यतीत हो जायँ तो एक महिना व्यतीत हुआ ऐसा कहेंगे, इसलिये जिस कारण यहां 'अहानि' अर्थात् 'दिन' ही व्यतीत हुए ऐसा कहा है, उस कारण हम कह सकते हैं कि, तीस दिनोंसे कम ही ये उषःकाल होंगे। यदि आठ दस दिनतक ही यह उषःकाल रहता होगा, तो उसके लिये 'बहुत दिन' ऐसा प्रयोग कोई नहीं करेगा, क्योंकि सात संख्यातक संख्या 'बहुत दिन' कहने योग्य नहीं होती। इसलिये ३० दिन भी नहीं और दस दिन तक भी नहीं अर्थात् बीससे कुछ अधिक दिन ऐसा यह उषाका अवधि '**बहुलानि अहानि**' पदोंसे लेना योग्य है।

संस्कृत व्याकरणके अनुसार '**बहुलानि अहानि**' (बहुत दिन) का अर्थ कमसे कम तीन दिन और अधिकसे अधिक जितने भी होंगे उतने दिन बोधित होंगे। अतः व्याकरण हमारी इतनीहि यहां सहायता करता है और कहता है कि इन पदोंसे कमसे कम तीन दिनोंका अवधि निर्धारित हो सकता है, ज्यादा कितने दिन ले सकते है यह व्याकरण नहीं कह सकता। पर केवल तीन ही दिनोंके लिये 'बहुतही दिन' ऐसा कोई भी नहीं कहता। इसलिये यह अवधि निश्चयसे तीन दिनोंसे अधिक है इसमें संदेह नहीं, अनेक उषाओंका वर्णन वेदमंत्रोंमें भी है, अतः उषाका बहुवचनमें प्रयोग अनेक वेदमंत्रोंमें दिखाई देता है—

स्पार्हा वसूनि तमसाऽपगूळ्हा
आविष्कृण्वन्त्युषसो विभातीः॥ (६४; ऋ १।१२३।६)

'स्पृहणीय पदार्थ जो गूढ अन्धकारसे ढंके थे, उन सबको ये अनेक (विभातीः उषसः आविष्कृण्वन्ति) प्रकाशनेवाली उषायें प्रकट कर रही हैं।' अर्थात् ये अनेक उषायें आकर सूर्य आनेके पूर्वही विश्वान्तर्गत नाना पदार्थोंको हमारे सामने प्रकट करती हैं। इसी सूक्तका अगला मंत्र इस मंत्रका आशय अधिक स्पष्ट कर रहा है—

परा च यन्ति पुनरा च यन्ति
भद्रा नाम वहमाना उषासः। (७०; ऋ० १।१२३।१२)

'ये (उषासः) उषायें (भद्रा नाम वहमानाः) कल्याणकारक यशका धारण करती हुई (परा यन्ति) जाती हैं और (पुनः च आयन्ति) फिर वापस आती हैं।' उषःकाल चला गयासा दीखता है और उसी समय फिर नया शुरू होने लगता है। यह वर्णन बडा महत्त्व रखनेवाला वर्णन है। हमारे देशमें एक बार उषःकाल गया तो दिन आता है, दिनके बाद सायंकाल और उसके बाद रात्री व्यतीत होती है, इसतरह २४ घण्टे व्यतीत होते हैं, तत्पश्चात् दूसरी उषा आती है। अतः यह वर्णन यहांका नहीं है जिस भूभाग पर एकवार उषा गयी तो उसी समय पुनः दूसरी उषःकाल आनेकी संभावना हो, वहीं यह वर्णन प्रत्यक्ष दीख सकता है, और वहीं सूर्योदयके पूर्व अनेक उषाओंका होना भी संभव हो सकता है। ऐसी कई उषायें लगातार आती हैं और पश्चात् सूर्य देव उगते हैं, वहीं कवि कह सकता है कि, 'एक उषा गयी और फिरसे दूसरी उषा पुनः आगयी।' इसी तरह और भी वर्णन देखिये—

क स्विदासां कतमा पुराणी ? (९६; ऋ. ४।५१।६)

'इस सब उषाओंमें कौनसी भला उषा पुरानी है?' यह प्रश्न तब हो सकता है कि, जब अनेक उषःकाल साथसाथ आते हों। हमारे भारतवर्षमें तो एकही उषःकाल रहता है इस लिये इसमें पुराना और नया ऐसा भेद नहीं हो सकता, परंतु

न्यून प्रकाशवाला और अधिक प्रकाशवाला ऐसे अनेक क्रमपूर्वक उषःकाल जहां होंगे, वहीं एक उषःकाल पुराना और दूसरा नया यह भाषा संभवनीय हो सकती है। इसीतरह और भी-

ता घा ता भद्रा उषसः पुरासुः । (८०; ऋ. ४।५१।७)

' वे निःसंदेह वे कल्याणकारक उषःकाल (पुरा आसुः) पहिले हो चुके थे । ' यहां अनेक संख्यामें कुछ उषःकाल पहिले हो चुके ऐसा कहा है । अनेक संख्यामें उषःकालोंका होना यह जहां संभवनीय होगा, वहीं यह वर्णन हो सकता है । ये सब मंत्र किसी देशमें प्रत्यक्ष दीखनेवाले दृश्यका वर्णन कर रहे हैं । उषा दृश्यमान है, हमारे देशमें प्रतिदिन आती है, परंतु यहां अनेक उषाएं सूर्योदयके पूर्व नहीं आतीं और नहीं इनमें एक प्राचीन और दूसरी अर्वाचीन कही जा सकती है । और जो वर्णन इन उषा सूक्तोंमें है, वहां अनेक उषाएं सूर्योदयके पूर्व होती हैं, और ये उषाएं एकके पीछे दूसरी ऐसी क्रमपूर्वक आती हैं, देखिये—

क्रमसे उषाओंका आना

आसां पूर्वासां अहसु स्वसॄणां
अपरा पूर्वां अभ्येति पश्चात् ।
ताः प्रत्नवन्नव्यसीः नूनं अस्मे
रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥ (८०; ऋ. १।१२४।९)

' (आसां पूर्वासां स्वसॄणां अहसु) इन पहिले बहिनरूपी अनेक उषाओंके दिनोंमें (पूर्वां पश्चात् अपरा अभ्येति) पहिली उषाके पश्चात् ही दूसरी उषा उसके पीछेसेही लगातार आती रहती है । (ताः) वे (नव्यसीः उषासः) नयीं उषाएं (प्रत्नवत्) पुराणी उषाओंके समानही निश्चय पूर्वक (अस्मे) हमें (रेवत् सुदिना उच्छन्तु) ऐश्वर्य युक्त उत्तम दिन देवें । '

इस मन्त्रमें **' पूर्वां पश्चात् अपरा अभि एति '** यह वाक्य **बडे महत्त्वका है इसका आशय ऐसा है कि-** ' पूर्व उषाके पश्चात् ही, उस उषाके पीछेसेही दूसरी उषा सब प्रकारसे आती है ।' एक उषा समाप्त हुई तो दूसरी उषा शुरू होती है । यह दृश्य इस देशका नहीं है ।

यहां ' उषा ' पद अनेक वचनमें है, इससे अनेक उषाओं का होना सिद्ध है, अनेक उषाएं होनेके कारण उनको इस मंत्रने (स्वसॄः) बहिनें कहा है । एक पिताकी अनेक पुत्रियाँ आपसमें बहिनें होती हैं। सूर्य आनेवाला है, उसके कारण उत्पन्न होनेवाली अनेक उषाएं आपसमें बहिनें कहीं जा सकती हैं । बहिन कहनेसे भी एक सूर्य देवके कारण उत्पन्न होनेवाली सूर्यकी अनेक पुत्रियां, ये उषाएँ हैं, अतः वे आपसमें बहिनें हैं यह सिद्ध है । इससे सूर्योदयके पूर्व अनेक उषाओंका होना सिद्ध हुआ है ।

उषाओंका क्रमसे और एकके पीछे दूसरीका आना सिद्ध कर रहा है कि ऐसा दृश्य किसी दूसरे देशमें होगा, इस भारत वर्षमें तो ऐसा दृश्य कदापि नहीं होता ।

पहिले दिनको जाननेवाली उषा

जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम

शुक्रा कृष्णादजनिष्ट श्वितीची (६७; ऋ १।१२३।९)

' यह उषा (प्रथमस्य अह्नः जानती) पहिले दिनका नाम जानती है, और (शुक्रा श्वितीची) यह प्रकाश देनेवाली तेजस्विनी उषा (कृष्णात् अजनिष्ट) कृष्ण वर्ण अन्धकारसे उत्पन्न हुई । '

हमारे देशमें पहिले दिनकी उषा ऐसा कोई भेद नहीं है, क्योंकि सभी उषाएं एकसी होती हैं, पर जहां जिस प्रदेशमें बडे अन्धकारके पश्चात् पहिलाही उषःकाल शुरू होता है और वह उषःकाल अनेक दिनोंतक लगातार रहता है वहीं यह संभव हो सकता है कि यह उषा प्रथम दिनकी है और यह दूसरे दिनकी है, पर वे आपसमें बहिनें हैं और एकके पीछे एक आती रहती हैं । इस मंत्र में प्रथम दिनकी उषा (प्रथमस्य अह्नः उषा) कहीं है, यह वर्णन विशेष महत्व का है । इसी तरह के वर्णन के ये मन्त्र हैं—

१. शश्वतीनां विभातीनां प्रथमा उषा व्यश्वैत् ।
(५३; ऋ. १।११३।१५)

२. शश्वतीनां आयतीनां प्रथमा उषा व्यद्यौत् ।
(७३; ऋ. १।१२४।२)

३. परायतीनां अन्वेति पाथः
आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम् । (४६; ऋ. १।११३।८)

४. उषा अगन् प्रथमा पूर्व हूतौ । (६०; ऋ. १।११३।८)

५. उषः सूनृते प्रथमा जरस्व । (६३; ऋ. १।१२३।२)

६. उषः सूजाते प्रथमा जरस्व । (१५२; ऋ, ७।७६।६)

' (१) शाश्वत चमकनेवाली उषाओंमें यह पहली उषा प्रकाशित हुई है । (२) शाश्वत आनेवाली उषाओंमें पहिली उषा उदित हुई है (३) जानेवाली उषाओंके मार्गका अनुसरण करनेवाली और आनेवाली उषाओंमें पहिली यह उषा है । (४) यह पहिली उषा आगई है । (५–६) हे उत्तम निर्माण हुई उषा ! तू पहिली उषा है । '

(१,३) कुत्स आंगिरसः, (२,४–५) कक्षीवान् दैर्घतमसः,

(६) वसिष्ठ के देखे ये मंत्र हैं। इन में यह पहिली उषा है ऐसा कहा है।

यहां पहिली उषा करके उसमें कोई विशेषता नहीं होती। पर जहां बडे प्रदीर्घ अन्धेरेके पश्चात् वर्षमें प्रथमही उषाके प्रकाशका दर्शन होता होगा, वहांका आनन्द इन मंत्रोंमें वर्णित हुआ दीखता है।

तीस बहिनें

त्रिंशत्स्वसार उपयन्ति निष्कृतं। (तै. सं ४।३।२।६)

' तीस बहिनें नियत स्थानपर चलती हैं।' बहिनें उषायें हैं यह जो ऋग्वेदमें कहा था, वे तीस बहिनें हैं ऐसा इस मंत्रने कहा है। तीस ही उषाएं क्यों हैं? क्योंकि छः मास की रात्री के पश्चात् तीस उषाएं आकर ही सूर्यका उदय होता है।

भयानक रात्री

न यस्याः पारं ददृशे न योयुवद्विश्वमस्यां नि विशते यदेजति।। अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि भद्रे पारमशीमहि॥ (अथर्व. १९।४७।२)

' (न यस्याः पारं ददृशे) जिस रात्रीका पार अर्थात् समाप्ति का समय हम देखते नहीं, इतनी यह विशाल रात्री है।

(न योयुवत्) इस रात्री में भिन्नता भी नहीं दीखती, एक जैसी अखण्ड यह रात्री रहती है (विश्वं अस्यां निविशते) सब कुछ इस रात्री में प्रविष्ट होता है (यत् एजति) जो कुछ हिलता है वह सब भी इस रात्री में ही रहता है। (अ-रिष्टासः) हम विनष्ट न होते हुए, हे (उर्वि तमस्वति रात्रि) बडी अन्धेरी रात्री! तेरे पार (अशीमहि) हम होंगे। हे कल्याणि रात्री! तेरे पार हम होंगे।'

यह विशेष दीर्घकालीन रात्रीका ही वर्णन दीखता है। यह हमारी १२ घण्टोंकी रात्री नहीं है, यह छः मासकी रात्री है जो संवत्सर जैसी है इसका वर्णन देखिये—

संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज॥ ३॥
(अ. ३।१०।३)

' (यां संवत्सरस्य प्रतिमां रात्रिं त्वां) संवत्सरकी प्रतिमारूपी रात्रीकी (उपास्महे) हम उपासना करते हैं। (सा नः) वह रात्री हमारी (आयुष्मतीं प्रजां) दीर्घायुवाली प्रजाको (रायः पोषेण संसृज) धन और पुष्टीके साथ पूर्ण करो।'

संवत्सरस्य प्रतिमा रात्री= ये पद निःसंदेह वर्षकी दीर्घरात्रीको अर्थात् अर्धसंवत्सर तक चलनेवाली रात्रीको बता रहे हैं। नहीं तो ' संवत्सरकी प्रतिमा रात्री ' का कोई विशेष तात्पर्य ही नहीं है।

ऐसे बडे अन्धकारके पार होनेको ही अन्धेरेसे पार होना कहते हैं—

अन्धकारका पार होना

बडे अन्धकारका पार होना भी इन उषा सूक्तोंमें दीखता है—

अतारिष्म तमसस्पारं अस्य
उषा उच्छन्ती वयुना कृणोति। (२९; ऋ.१।९२।६)

' (अस्य तमसः पारं अतारिष्म) इस अन्धकारको हमने पार किया, अब यह (उषा उच्छन्ती) उषा अपना प्रकाश करती हुई अपने उद्देश प्रकट करती है।'

इस मंत्रमें (**अस्य तमसः पारं अतारिष्म**) इस अन्धकारके पार हम हो चुके, यह वाक्य प्रगाढ और दीर्घकालके अन्धेरे की सूचना दे रहा है। प्रतिरात्रीके अन्धकारके विषयमें ऐसा कोई नहीं कहेगा, क्योंकि हमें पता है कि छः सात बजे यह अन्धेरा दूर होनेका निश्चय है। यदि अन्धेरा ऐसा हो कि जो कई महिने रहनेवाला हो, तो उस अन्धकारकी समाप्तिपर ऐसा वाक्य बोला जाना सर्वथा संभव है कि ' इस दुस्तर अन्धकारसे अब हम पार हो चुके हैं।' इतने मंत्रोंका आशय मनन पूर्वक देखनेसे हमें ऐसा प्रतीत होता है कि बडे अन्धकारके व्यतीत होनेपर कई उषायें लगातार आतीं, उनमें पहिली और अन्तिम ऐसी भी उषाएं रहती हैं, ऐसे अनेक उषःकाल व्यतीत होनेपर दिनका प्रारंभ होता है, जहां ऐसा होता हो वहाँका यह वर्णन है।

हमें विदित है कि अपनीही पृथ्वीपर ऐसे प्रदेश हैं कि जहां करीब पांच महिनोंकी प्रचण्ड रात्री रहती है, इस निबिड गाढ अंधेरी प्रचण्ड रात्रीके पश्चात् करीब तीस दिनका उषःकाल और प्रभात होता है, पश्चात् करीब पांच महिनेका दिन होता है और पश्चात् वैसा ही मासका सायंकाल होता है। दिन और रात्रीका प्रमाण न्यूनाधिक भी कई प्रदेशोंमें रहता है। नार्वे स्वीडन के प्रदेशोंमें इस तरहके प्रचण्ड दिन रात आज भी होते हैं। महाभारतकारने ध्रुव पर्वतका वर्णन दिया है वहां छः महिनोंका दिन और वैसी ही प्रचण्ड रात्री होनेका वर्णन है। अगस्ति ऋषि वहां गये थे ऐसा भी महाभारतमें लिखा है। देखो—

एनं त्वहरहर्मेरुं सूर्याचन्द्रमसौ ध्रुवम्।
प्रदक्षिणमुपावृत्य कुरुतः कुरुनन्दन॥
ज्योतींषि चाप्यशेषेण सर्वाण्यनघ सर्वतः।
परियन्ति महाराज गिरिराजं प्रदक्षिणम्॥
(म. भा. वन. १६३।३७-३८)

स्वतेजसा तस्य नगोत्तमस्य महौषधीनां च तथा प्रभावात् ।
विविक्तभावो न बभूव कश्चिदहोनिशानां पुरुषप्रवीर ॥
बभूव रात्रिर्दिवसश्च तेषां संवत्सरेणैव समानरूपः ।

म. भा. वन. १६४।११,१३

दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ।

अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् (मनु. १।६७)

एकं वा एतद्देवानामहः यत्संवत्सरः । (तै. ब्रा. ३।९।२२।१)

' मेरुपर्वत है, उसकी प्रदक्षिणा सूर्य, चन्द्र, तथा सब नक्षत्र करते हैं। उस मेरुपर्वत पर दिन और रात्रीका ऐसा भेद नहीं (जैसा यहां हमारे देशमें प्रतिदिन दिखाई देता है ।) वहां दिन और रात्री वर्ष जैसी होती है (अर्थात् वहां छः मासोंकी रात्र और छः मासोंका दिन होता है, इसमें उषःकाल और सायंकालके संधिसमय अन्तर्भूत हुए हैं।) यह महाभारतका वर्णन है ।

मनुस्मृतिमें कहा है कि उत्तरायण दिवस है और दक्षिणायन रात्री है । (अर्थात् छः मासोंका उत्तरायण दिन है और छः मासोंका दक्षिणायण रात्री है ।)

इस तरह मेरुपर्वतका वर्णन हमारे ग्रंथोंमें है। मेरुपर्वतही उत्तरीय ध्रुव है । आज भी वहां छः मासोकी प्रचण्ड घन अन्धकारमयी रात्री है और छः मासोंका प्रचण्ड दिन है । उत्तरीय ध्रुवके नीचे दक्षिण दिशामें नार्वे और स्वीदन देश हैं, इसलिये वहां यह प्रमाण थोडा न्यूनाधिक रहता है । उत्तरीय ध्रुवमें सूर्य चन्द्र तथा नक्षत्र चक्रीके समान घूमते हुए नजर आते हैं, हमारे देशमें जैसे सिरपर आकर अस्त होनेका दृश्य है वैसा वहां नहीं है, वहां किसी देवताको प्रदक्षिणा करनेके समान ये सब सूर्य चन्द्र और नक्षत्र घूमते हैं और मेरुको प्रदक्षिणा करते दीखते हैं।

संक्षेपसे यहां ५ महिनोंकी निबिड गाढ अन्धकारवाली प्रचण्ड रात्री होती है, इसके बाद पहिली उषा चमकती है, इस कारण वह (प्रथम उषा) पहिली उषा कही जाती है, इसके नंतर करीब सत्ताईस उषाएं क्रमपूर्वक एकके पीछे दूसरी ऐसी आती है, अतः ये परस्पर बहिने होती हैं, पश्चात् सूर्य देव प्रकाशते हैं । ये करीब ५ महिनें प्रकाशते ही रहते हैं, तथापि कभी ये मध्यान्हके समय जैसे आकाशमध्यमें नहीं चढते । नौ बजने जितने ऊपर चढते हैं यह अधिक से अधिक ऊंचाई होती है। जिस किसी ऊंचाई पर हो दिनभर उसी ऊंचाईपर रहते हुए ये ध्रुवपर्वत की प्रदक्षिणा करते हैं, पश्चात् सायं समय भी करीब उषःकाल जितनाही होता है और पश्चात् रात्री होती है । इस तरह छः मास सूर्य दर्शन नहीं और छः मास गाढ अन्धकार नहीं ऐसी वर्षकी अवधी काटी जाती है । नक्षत्रोंके एक परिभ्रमणसे एक दिन समझा जाता है, तथा वहां विद्युत्प्रकाश इस छः मासकी रात्रीमें कुछ रोशनी करता रहता है । यह वहां की परिस्थिति ध्यानमें धारण करके पूर्वोक्त मंत्रोंके निम्नलिखित वाक्य पुनः देखिये—

१. **अस्य तमसः पारं अतारिष्म** । (२९; ऋ. १।९२।६)= अब हम इस गाढ निबिड और प्रचंड अन्धकारके पार हो चुके ।
२. **कृष्णात् शुक्रा प्रथमस्य अह्नः (उषा) अजनिष्ट** । (६७; ऋ. १।१२३।३) = गाढ अन्धेरी रात्रीके पश्चात् प्रथम दिनकी यह पहिली उषा अब प्रकाशित हुई है ।
३. **विभातीनां प्रथमा उषा व्यश्वैत्** ।(७३; ऋ. १।१२४।२)= प्रकाशित होनेवालियोंमें यह पहिली उषा प्रकाशित हुई ।
४. **आसां स्वसॄणां पूर्वा पश्चात् अपरा अभ्येति** । (८०; ऋ. १।१२४।९) = ये बहिनें जैसी अनेक उषाएं एकके पीछे दूसरी क्रमसे आती हैं ।
५. **भद्रा उषसः पुरा आसुः** । (८०;ऋ. ४।५१।७)=कल्याण कारक अनेक उषाएँ (सूर्य उदयके) पूर्व प्रकाशित हो चुकी हैं ।
६. **उषसः परा यन्ति, पुनः आयन्ति** । (७०; ऋ. १। १२३।१२) = इन उषाओंमें कई जाती हैं और नयीं आती हैं ।
७. **उषसः विभातीः** (६४, ऋ. १।१२३।६) = अनेक उषायें (क्रमशः आकर) प्रकाशती हैं ।
८. **सूर्यस्य प्राचीनं उदिता अहानि बहुलानि आसन्** । (१४९; ऋ० ७।७६।३) = सूर्य उदयके पूर्व उदय को प्राप्त होनेवाली उषाएं अनेक हैं ।

इस तरह किसी ऐसे प्रदेशमें मंत्रों के ये पद अत्यंत सार्थक दीखते हैं । पाठक इसका विचार करें ।

इतना होनेपर भी उषःकाल जाग्रतिका सूचक है । यह जाग्रति आध्यात्मिक मानना उचित है । क्यों कि आत्मिक जाग्रति में सब अन्य जाग्रतियां समाविष्ट होती हैं । यह भाव इन मंत्रों में पाठक देख सकते हैं और उससे आध्यात्मिक उन्नति के मार्गका बोध भी प्राप्त कर सकते हैं । यह आध्यात्मिक उन्नति वेदकी मुख्य उन्नति है इस की सिद्धि करनेकी आवश्यकता बिलकुल नहीं है । क्योंकि यह बात सबको स्वीकृत ही है।

इस तरह उषाके हृदयंगम सूक्तोंका विचार पाठक कर सकते हैं।



दैवत-संहिता ।

(ऋग्यजुःसामाथर्वणां संहितानां सर्वान् मन्त्रान् दैवतानुसारेण संगृह्य निर्मिता ।)

८ उषादेवता ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।३०।२०-२२)

(१-३) शुनःशेप आजीगर्तिः । गायत्री ।

कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये । कं नक्षसे विभावरि २०
वयं हि ते अमन्मह्या ऽऽन्तादा पराकात् । अश्वे न चित्रे अरुषि २१
त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः । अस्मे रयिं नि धारय २२ ३

॥ २ ॥ (ऋ० १।४८।१-१६)

(४-२३) प्रस्कण्वः काण्वः । प्रगाथः = (विषमा बृहती+समा सतोबृहती ।)

सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती १
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे ।
उदीरय प्रति मा सूनृता उष श्चोद राधो मघोनाम् २ ५
उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम् ।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ३
उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः ।
अत्राह तत् कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ४
आ घा योषेव सूनर्यु षा याति प्रभुञ्जती ।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ५ ८

वि या सृजति समनं व्य१र्थिनः पदं न वेत्योदती ।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवति ६
एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ७ १०
विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्निधः ८
उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ९
विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि ।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् १०
उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ११
विश्वान् देवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्य१मुषो वाजं सुवीर्यम् १२ १५
यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् १३
ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा १४
उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः १५
सं नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिळाभिरा ।
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति १६ १९

॥ ३ ॥ (ऋ० १।४९।१-४) अनुष्टुप् ।

उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद् रोचनादधि ।
वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् १ २०
सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उषस्त्वम् ।
तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः २ २१

वयश्चित् ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि ।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ३
व्युच्छन्ती हि रश्मिभि- र्विश्वमाभासि रोचनम् ।
तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ४ २३

॥ ४ ॥ (ऋ० १।९२।१-१५)

(२४-३८) गोतमो राहूगणः । १-४ जगती; ५-१२ त्रिष्टुप्; १३-१५ उष्णिक् ।

एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः १
उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः २ २५
अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ३
अधि पेशांसि वपते नृतूरिवा- पोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम् ।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः ४
प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम् ।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्ज- श्चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ५
अतारिष्म तमसस्पारमस्यो- षा उच्छन्ती वयुना कृणोति ।
श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती सुप्रतीका सौमनसायाजीगः ६
भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।
प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्या- नुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान् ७ ३०
उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ८
विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्या प्रतीची चक्षुरुर्विया वि भाति ।
विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः ९
पुनःपुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभि शुम्भमाना ।
श्वघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनाना मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः १०
व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबो- ध्यप स्वसारं सनुतर्युयोति ।
प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा वि भाति ११ ३४

पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत् ।
अमिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना १२
उषस्तच्चित्रमा भरा स्मभ्यं वाजिनीवति । येन तोकं च तनयं च धामहे १३
उषो अद्येह गोम त्यश्वावति विभावरि । रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति १४
युक्ष्वा हि वाजिनीव त्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः । अथा नो विश्वा सौभगान्या वह १५ ३८

॥ ५ ॥ (ऋ० १।११३।१-२०)

(३९-५८) कुत्स आङ्गिरसः । १ (उत्तरार्धस्य) रात्रिश्च । त्रिष्टुप् ।

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागा च्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् १
रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागा दारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने २ ४०
समानो अध्वा स्वस्रोरनन्त स्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ३
भास्वती नेत्री सूनृताना मचेति चित्रा वि दुरो न आवः ।
प्रार्प्या जगद्व्यु नो रायो अख्य दुषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ४
जिह्मश्ये३ चरितवे मघो न्याभोगयं इष्टये राय उ त्वम् ।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ५
क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै ।
विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ६
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः ।
विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ ७ ४५
परायतीनामन्वेति पाथ आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम् ।
व्युच्छन्ती जीवमुदीरय न्त्युषा मृतं कं चन बोधयन्ती ८
उषो यदग्निं समिधे चकर्थ वि यदावश्चक्षसा सूर्यस्य ।
यन्मानुषान् यक्ष्यमाणाँ अजीग स्तद् देवेषु चकृषे भद्रमप्नः ९
कियात्या यत् समया भवाति या व्यूषुर्याश्च नूनं व्युच्छान् ।
अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति १०
ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन् व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभू दो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ११ ४९

यावयद्द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीति मिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ १२ ५०
शश्वत् पुरोषा व्युवास देव्य थो अद्येदं व्यावो मघोनी ।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यू नजरामृता चरति स्वधाभिः १३
व्यञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौ दप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः ।
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वै रोषा याति सुयुजा रथेन १४
आवहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् १५
उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगा दप प्रागात् तम आ ज्योतिरेति ।
आरैक् पन्थां यातवे सूर्याया गन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः १६
स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः ।
अद्या तदुच्छ गृणते मघो न्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् १७ ५५
या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय ।
वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत् सोमसुत्वा १८
माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती वि भाहि ।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे १९
यच्चित्रमप्न उषसो वहन्ती जानाय शशमानाय भद्रम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः २० ५८

॥ ६ ॥ (ऋ० १।१२३।१-१३)

(५९-८४) कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । त्रिष्टुप् ।

पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यै नं देवासो अमृतासो अस्थुः ।
कृष्णादुदस्थादुर्या३ विहाया श्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय १
पूर्वा विश्वस्माद् भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री ।
उच्चा व्यख्यद् युवतिः पुनर्भू रोषा अगन् प्रथमा पूर्वहूतौ २ ६०
यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते ।
देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ३
गृहंगृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवे अधि नामा दधाना ।
सिषासन्ती द्योतना शश्वदागा दग्रमग्रमिद् भजते वसूनाम् ४ ६२

भगस्य स्वसा वरुणस्य जामि-रुषः सूनृते प्रथमा जरस्व ।
पश्चा स दध्या यो अघस्य धाता जयेम तं दक्षिणया रथेन ५
उदीरतां सूनृता उत् पुरन्धी-रुदग्नयः शुशुचानासो अस्थुः ।
स्पार्हा वसूनि तमसापगूळ्हा-विष्कृण्वन्त्युषसो विभातीः ६
अपान्यदेत्यभ्य१न्यदेति विषुरूपे अहनी सं चरेते ।
परिक्षितोस्तमो अन्या गुहाक-रद्यौदुषाः शोशुचता रथेन ७ ६५
सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घं सचन्ते वरुणस्य धाम ।
अनवद्यास्त्रिंशतं योजना-न्येकैका क्रतुं परि यन्ति सद्यः ८
जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम शुक्रा कृष्णादजनिष्ट श्वितीची ।
ऋतस्य योषा न मिनाति धामा-हरहर्निष्कृतमाचरन्ती ९
कन्येव तन्वा३ शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम् ।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्ता-दाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती १०
सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषा-विस्तन्वं कृणुषे दृशे कम् ।
भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तत् ते अन्या उषसो नशन्त ११
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।
परा च यन्ति पुनरा च यन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः १२ ७०
ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना भद्रंभद्रं क्रतुमस्मासु धेहि ।
उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छा-स्मासु रायो मघवत्सु च स्युः १३ ७१

॥ ७ ॥ (ऋ० १।१२४।१-१३)

उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत् ।
देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद् द्विपत् प्र चतुष्पदित्यै १
अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीना-मायतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् २
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ३
उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधा इवाविरकृत प्रियाणि ।
अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात् पुनरेयुषीणाम् ४ ७५

पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्र केतुम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीय ओ—भा पृणन्ती पित्रोरुपस्था ५
एवेदेषा पुरुतमा दृशे कं नाजामिं न परि वृणक्ति जामिम् ।
अरेपसा तन्वा३ शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ६
अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः ७
स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारै—गपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्या—ञ्ज्यङ्क्ते समनगा इव व्राः ८
आसां पूर्वासामहसु स्वसॄणा—मपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।
ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ९ ८०
प्र बोधयोषः पृणतो मघो—न्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।
रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत् स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती १०
अवेयमश्वैद् युवतिः पुरस्ताद् युङ्क्ते गवामरुणानामनीकम् ।
वि नूनमुच्छादसति प्र केतु—र्गृहंगृहमुप तिष्ठाते अग्निः ११
उत् ते वयश्चिद् वसतेरपप्तन् नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाम—मुषो देवि दाशुषे मर्त्याय १२
अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेऽवीवृधध्वमुशतीरुषासः ।
युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् १३ ८४

॥ ८ ॥ (ऋ० ३।६१।१–७)

(८५–९१) गाथिनो विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् ।

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि ।
पुराणी देवि युवतिः पुरंधि—रनु व्रतं चरसि विश्ववारे १ ८५
उषो देव्यमर्त्या वि भाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये २
उषः प्रतीची भुवनानि विश्वो—र्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः ।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ३
अव स्यूमेव चिन्वती मघो—न्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।
स्व१र्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद् दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ४ ८८

अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत् प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक् ५
ऋतावरी दिवो अर्कैरबो—ध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात् ।
आयतीमग्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ६ ९०
ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन् वृषा मही रोदसी आ विवेश ।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरुत्रा ७ ९१

॥ ९ ॥ (ऋ० ४।५१।१-११)
(९२-१०९) वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप्

इदमु त्यत् पुरुतमं पुरस्ता—ज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात् ।
नूनं दिवो दुहितरो विभाती—र्गातुं कृणवन्नुषसो जनाय १
अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्ता—न्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु ।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारो—च्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः २
उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान् राधोदेयायोषसो मघोनीः ।
अचित्रे अन्तः पणयः सस—न्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ३
कुवित् स देवीः सनयो नवो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य ।
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ४ ९५
यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम् ५
क्व स्विदासां कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणाम् ।
शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्याः ६
ता घा ता भद्रा उषसः पुरासु—रभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः ।
यास्वीजानः शशमान उक्थैः स्तुवञ्छंसन् द्रविणं सद्य आप ७
ता आ चरन्ति समना पुरस्तात् समानतः समना पप्रथानाः ।
ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना गवां न सर्गा उषसो जरन्ते ८
ता इन्न्वेव समना समानी—रमीतवर्णा उषसश्चरन्ति ।
गूहन्तीरभ्वमसितं रुशद्भिः शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुचानाः ९ १००
रयिं दिवो दुहितरो विभातीः प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः ।
स्योनादा वः प्रतिबुध्यमानाः सुवीर्यस्य पतयः स्याम १० १०१

तद् वो॑ दिवो दुहितरो विभा॒ती॒रुप॑ ब्रुव उषसो य॒ज्ञके॑तुः ।
व॒यं स्या॑म य॒शसो॒ जने॑षु तद् द्यौश्च॑ ध॒त्तां पृ॑थि॒वी च॑ दे॒वी ११

॥ १० ॥ (ऋ० ४।५२।१-७) गायत्री ।

प्र॒ति ष्या सू॒नरी॒ जनी॑ व्यु॒च्छन्ती॒ परि॒ स्वसुः॑ । दि॒वो अ॑दर्शि दु॒हि॒ता १
अश्वे॑व चि॒त्रारु॑षी मा॒ता गवा॑मृ॒ताव॑री । सखा॑भूद॒श्विनो॑रु॒षाः २
उ॒त सखा॑स्य॒श्विनो॑रु॒त मा॒ता गवा॑मसि । उ॒तोषो॒ वस्व॑ ईशिषे ३ १०५
या॒वय॒द् द्वे॑षसं त्वा चिकि॒त्वित् सू॑नृतावरि । प्र॒ति स्तोमै॑रभुत्स्महि ४
प्रति॑ भ॒द्रा अ॑दृक्षत॒ गवां॒ सर्गा॒ न र॒श्मयः॑ । ओषा अ॑प्रा उ॒रु ज्रयः॑ ५
आ॒प॒प्रुषी॑ विभावरि॒ व्याव॒ज्ज्योति॑षा॒ तमः॑ । उषो॒ अनु॑ स्व॒धाम॑व ६
आ द्यां त॑नोषि र॒श्मिभि॒रान्तरि॑क्षमु॒रु प्रि॒यम् । उषः॑ शु॒क्रेण॑ शो॒चिषा॑ ७ १०९

॥ ११ ॥ (ऋ० ५।७९।१-१०)
(११०-१२५) सत्यश्रवा आत्रेयः । पङ्क्तिः ।

म॒हे नो॑ अ॒द्य बो॑धयो॒षो रा॒ये दि॒वित्म॑ती ।
यथा॑ चिन्नो॒ अबो॑धयः स॒त्यश्र॑वसि वा॒य्ये सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते १ ११०
या सु॒नी॒थे शौ॑चद्र॒थे व्यौच्छो॑ दुहितर्दिवः ।
सा व्यु॑च्छ॒ सही॑यसि स॒त्यश्र॑वसि वा॒य्ये सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते २
सा नो॑ अ॒द्याभ॒रद्व॑सु॒र्व्यु॑च्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः॒ सही॑यसि स॒त्यश्र॑वसि वा॒य्ये सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ३
अ॒भि ये त्वा॑ विभावरि॒ स्तोमै॑र्गृ॒णन्ति॒ वह्न॑यः ।
म॒घैर्म॑घोनि सु॒श्रियो॒ दाम॑न्वन्तः सुरा॒तयः॒ सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ४
यच्चि॒द्धि ते॑ ग॒णा इ॒मे छ॒दय॑न्ति म॒घत्त॑ये ।
परि॑ चि॒द् वष्ट॑यो द॒धु॒र्दद॑तो॒ राधो॒ अह्र॑यं सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ५
ऐषु॑ धा वी॒रव॒द् यश॒ उषो॑ मघोनि सू॒रिषु॑ ।
ये नो॒ राधां॒स्यह्र॑या म॒घवा॑नो॒ अरा॑सत॒ सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ६ ११५
तेभ्यो॑ द्यु॒म्नं बृ॒हद् यश॒ उषो॑ मघो॒न्या व॑ह ।
ये नो॒ राधां॒स्यश्व्या॑ ग॒व्या भज॑न्त सू॒रयः॒ सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ७
उ॒त नो॒ गोम॑ती॒रिष॒ आ व॑हा दुहितर्दिवः ।
सा॒कं सूर्य॑स्य र॒श्मिभिः॑ शु॒क्रैः शोच॑द्भिर॒र्चिभिः॒ सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ८ ११७

व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः ।
नेत् त्वा स्तेनं यथा रिपुं तपाति सूरो अर्चिषा सुजाते अश्वसूनृते ९
एतावद् वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि ।
या स्तोतृभ्यो विभावर्यु—च्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसूनृते १० ११९

॥ १२ ॥ (ऋ० ५।८०।१-६) त्रिष्टुप् ।

द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते १ १२०
एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान् पथः कृण्वती यात्यग्रे ।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वो—षा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम् २
एषा गोभिररुणेभिर्युजाना ऽस्रेधन्ती रयिमप्रायु चक्रे ।
पथो रदन्ती सुविताय देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति ३
एषा व्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ४
एषा शुभ्रा न तन्वो विदानो—र्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात् ।
अप द्वेषो बाधमाना तमांस्यु—षा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ५
एषा प्रतीची दुहिता दिवो नॄन् योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः ।
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः ६ १२५

॥ १३ ॥ (ऋ ६।६४।१-६)
(१२६-१३७) भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । त्रिष्टुप् ।

उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः ।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगा—न्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी १
भद्रा ददृक्ष उर्विया वि भा—स्युत् ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन् ।
आविर्वक्षः कृणुषे शुम्भमानो—षो देवि रोचमाना महोभिः २
वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गावः सुभगामुर्विया प्रथानाम् ।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून् बाधते तमो अजिरो न वोळ्हा ३
सुगोत ते सुपथा पर्वते—ष्ववाते अपस्तरसि स्वभानो ।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै ४ १२९

सा वंह योक्षभिरवातो॒षो वरं॒ वहंसि जोषमनु॑ ।
त्वं दिंवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः ५ १३०
उत ते वयश्चिद् वसतेरपप्तन् नरश्च ये पितुभाजो व्युंष्टौ ।
अमा सते वंहसि भूरिं वाम॒मुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ६ १३१

॥ १४ ॥ (ऋ० ६।६५।१-६)

एषा स्या नो दुहिता दिंवोजाः क्षितीरुच्छन्ती मानुंषीरजीगः ।
या भानुना रुशंता राम्या॒स्वज्ञांयि तिरस्तमसश्चिदक्तून् १
वि तद् ययुररुणयुग्भिरश्वै॒श्चित्रं भान्त्युषसंश्चन्द्ररंथाः ।
अग्रं यज्ञस्य बृहतो नयन्ती॒र्वि ता बांधन्ते तम ऊर्म्यायाः २
श्रवो वाजमिषमूर्जं वहन्ती॒र्नि दाशुषं उषसो मर्त्याय ।
मघोनीर्वीरवत् पत्यमाना अवो धात विधते रत्नमद्य ३
इदा हि वो विधते रत्नमस्ती॒दा वीराय दाशुषं उषासः ।
इदा विप्राय जरते यदुक्था नि ष्म मावंते वहथा पुरा चित् ४ १३५
इदा हि तं उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति ।
व्य१र्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद् देवहूतिः ५
उच्छा दिंवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद् विधते मघोनि ।
सुवीरं रयिं गृणते रिंरीह्यु॒रुगायमधिं धेहि श्रवो नः ६ १३७

॥ १५ ॥ (ऋ० ७।४१।७)

(१३८-१७८) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७ १३८

॥ १६ ॥ (ऋ० ७।७५।१-८)

व्यु१षा आवो दिविजा ऋतेना॒ऽऽविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्ट॒मङ्गिरस्तमा पथ्या अजीगः १
महे नो अद्य सुवितायं बो॒ध्युषो महे सौभंगाय प्र यन्धि ।
चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम् २ १४०
एते त्ये भानवो दर्शताया॒श्चित्रा उषसो अमृतास आगुः ।
जनयन्तो दैव्यानि व्रतान्या॒पृणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थुः ३ १४१

*

एषा स्या युजाना पराकात् पञ्च क्षितीः परि सद्यो जिगाति ।
अभिपश्यन्ती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ४
वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनाम् ।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघो-न्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ५
प्रति द्युतानामरुषासो अश्वा-श्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहन्तः ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय ६
सत्या सत्येभिर्महती महद्भि-र्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
रुजद् दृळ्हानि ददुस्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशन्त ७ १४५
नू नो गोमद् वीरवद् धेहि रत्न-मुषो अश्वावत् पुरुभोजो अस्मे ।
मा नो बर्हिः पुरुषता निदे क-र्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ८

॥ १७ ॥ (ऋ० ७।७६।१-७)

उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत् ।
क्रत्वा देवानामजनिष्ट चक्षु-राविरकर्भुवनं विश्वमुषाः १
प्र मे पन्था देवयाना अदृश्र-न्नमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः ।
अभूदु केतुरुषसः पुरस्तात् प्रतीच्यागादधि हर्म्येभ्यः २
तानीदहानि बहुलान्यासन् या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य ।
यतः परि जार इवाचर-न्त्युषो ददृक्षे न पुनर्यतीव ३
त इद् देवानां सधमाद आस-न्नृतावानः कवयः पूर्व्यासः ।
गूळ्हं ज्योतिः पितरो अन्वविन्द-न्त्सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम् ४ १५०
समान ऊर्वे अधि संगतासः सं जानते न यतन्ते मिथस्ते ।
ते देवानां न मिनन्ति व्रता-न्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमानाः ५
प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः ।
गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छो-षः सुजाते प्रथमा जरस्व ६
एषा नेत्री राधसः सूनृताना-मुषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः ।
दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७ १५३

॥ १८ ॥ (ऋ० ७।७७।१-६)

उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै ।
अभूदग्निः समिधे मानुषाणा-मकर्ज्योतिर्बाधमाना तमांसि १ १५४

विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद् रुशद् वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत् ।
हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृग् गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि २ १५५
देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती श्वेतं नयन्ती सुदृशीकमश्वम् ।
उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता ३
अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छो—र्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः ।
यावय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ४
अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाह्यु—षो देवि प्रतिरन्ती न आयुः ।
इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावद् रथवच्च राधः ५
यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धय—न्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।
सास्मासु धा रयिमृष्वं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६

॥ १९ ॥ (ऋ० ७।७८।१-५)

प्रति केतवः प्रथमा अदृश्र—न्नूर्ध्वा अस्या अञ्जयो वि श्रयन्ते ।
उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वाममस्मभ्यं वक्षि १ १६०
प्रति षीमग्निर्जरते समिद्धः प्रति विप्रासो मतिभिर्गृणन्तः ।
उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरिताप देवी २
एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन् पुरस्ता—ज्ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातीः ।
अजीजनन्त्सूर्यं यज्ञमग्नि—मपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ३
अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम् ।
आस्थाद् रथं स्वधया युज्यमान—मा यमश्वासः सुयुजो वहन्ति ४
प्रति त्वाद्य सुमनसो बुधन्ता—ऽस्माकासो मघवानो वयं च ।
तिल्विलायध्वमुषसो विभाती—र्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५ १६४

॥ २० ॥ (ऋ० ७।७९।१-५)

व्युषा आवः पथ्या जनानां पञ्च क्षितीर्मानुषीर्बोधयन्ती ।
सुसंदृग्भिरुक्षभिर्भानुमश्रेद् वि सूर्यो रोदसी चक्षसावः १ १६५
व्यञ्जते दिवो अन्तेष्वक्तून् विशो न युक्ता उषसो यतन्ते ।
सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेव बाहू २
अभूदुषा इन्द्रतमा मघो—न्यजीजनत् सुविताय श्रवांसि ।
वि दिवो देवी दुहिता दधा—त्यङ्गिरस्तमा सुकृते वसूनि ३ १६७

तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत् स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना ।
यां त्वा जज्ञुर्वृषभस्या रवेण वि दृळ्हस्य दुरो अद्रेरौर्णोः ४
देवंदेवं राधसे चोदयन्त्य—स्मद्र्यक् सूनृता ईरयन्ती ।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५ १६९

॥ २१ ॥ (ऋ० ७।८०।१-३)

प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन् ।
विवर्तयन्तीं रजसी समन्ते आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा १ १७०
एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि ।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत् सूर्यं यज्ञमग्निम् २
अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३

॥ २२ ॥ (ऋ० ७।८१।१-६) प्रगाथः = (विषमा बृहती +, समा सतोबृहती) ।

प्रत्यु अदर्श्यायत्यु१—च्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो महि व्ययति चक्षसे तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी १
उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि २
प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि ।
या वहसि पुरु स्पार्हं वनन्वति रत्नं न दाशुषे मयः ३ १७५
उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे ।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः ४
तच्चित्रं राध आ भरो—षो यद् दीर्घश्रुत्तमम् ।
यत् ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद् रास्व भुनजामहै ५
श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः ।
चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्यु—षा उच्छदप स्रिधः ६ १७८

॥ २३ ॥ (ऋ० ८।१०१।१३)

(१७९) जमदग्निर्भार्गवः । उषाः सूर्यप्रभा वा । बृहती ।

इयं या नीच्यर्किणी रूपा रोहिण्या कृता ।
चित्रेव प्रत्यदर्श्यायत्य१—न्तर्दशसु बाहुषु १३ १७९

॥ २४ ॥ (ऋ० १०।१७२।१-४)

(१८०-१८३) संवर्त आङ्गिरसः । द्विपदा विराट् ।

आ याहि वनसा सह　गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः　　१　१८०

आ याहि वस्व्या धिया　मंहिष्ठो जारयन्मखः सुदानुभिः　१　२

पितुभृतो न तन्तुमित्　सुदानवः प्रति दध्मो यजामसि　　३

उषा अप स्वसुस्तमः　सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता　२　४　१८३

॥ २५ ॥ (१८४) (वा० य० १२।४६)

संज्ञानमसि कामधरणं मयि ते कामधरणं भूयात् ।

अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि चित स्थ परिचित ऊर्ध्वचितः श्रयध्वम्　४६　१८४

॥ २६ ॥ (साम० ३०३,७५१) +

(१८५-१८६) वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । बृहती ।

प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः ।

अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी　३०३　१८५

॥ २७ ॥ (अथर्व० १९।१२।१)

वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ।

अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः　१　१८६

उषा-सहचारी देवगणः ।

(१) आदित्योषसः । (दुःष्वप्नघ्नम्)

॥ २८ ॥ (ऋ० ८।४७।१४-१८)

(१८७-१९१) त्रित आप्त्यः । महापङ्क्तिः ।

यच्च गोषु दुःष्वप्न्यं　यच्चास्मे दुहितर्दिवः ।

त्रिताय तद् विभावर्याप्त्याय परा वहानेहसो व ऊतयः　सुऊतयो व ऊतयः १४

निष्कं वा घा कृणवते　स्रजं वा दुहितर्दिवः ।

त्रिते दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परि दद्मस्यनेहसो व ऊतयः　सुऊतयो व ऊतयः १५

तदन्नाय तदपसे　तं भागमुपसेदुषे ।

त्रिताय च द्विताय चोषो दुःष्वप्न्यं वहानेहसो व ऊतयः　सुऊतयो व ऊतयः १६　१८९

+ सा० ७५२ = ऋ० ७,८१,२। (दै० उषा १७४)

यथा कलां यथा शफं यथ ऋणं संनयामसि ।
एवा दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये सं नयामस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १७ १९०
अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम् ।
उषो यस्माद् दुःष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छत्वनेहसो व ऊतयः
सुऊतयो व ऊतयः १८ १९१

(२) उषासानक्ता ।×

॥ २९ ॥ (१९२-१९४) (वा० य० २०।४१)

उषासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम् ।
तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती देवानां देवं यजतः सुरुक्मे ४१

॥ ३० ॥ (वा० य० २८।१४,३७)

देवी उषासानक्तेन्द्रं यज्ञे प्रयत्यह्वेताम् ।
दैवीर्विशः प्रायासिष्टां सुप्रीते सुधिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज १४
देवी उषासानक्ता देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम् ।
अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियं बलमिन्द्रे वयो दधद् वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ३७ १०४

× दै० (अग्निः) [आप्रीसूक्तानि] १९१२; १९२४; १९३६; १९४७; १९५८; १९६९; १९७९; १९८६; १९९७; २००८; २०१९; २०३१; २०४१; २०८९; २१११; २१२३.

उषादेवता-पुनरुक्त-मन्त्रभागाः ।

ऋग्वेदस्य प्रथमं मण्डलम् ।

[२] १।३०।२१ (शुनःशेप आजीगर्तिः । उषाः)

अश्वे न चित्रे अरुषि ।

(१०४) ४।५२।२ (वामदेवो गौतमः । उषाः)

अश्वेव चित्रारुषी ।

[३] १।३०।२२ (शुनःशेप आजीगर्तिः । उषाः)

अस्मे रयिं नि धारय ।

(इन्द्रः २४८८) १०।२४।१ (विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा वासुक्रः । इन्द्रः)

.........धारय वि वो मदे ।

[४] १।४८।१ (प्रस्कण्वः काण्वः । उषा)

व्युच्छा दुहितर्दिवः ।

(११२) ५।७९।३= (११८) ५।७९।९ (सत्यश्रवा आत्रेयः । उषाः)

[५] १।४८।२ (प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः)

चोद राधो मघोनाम् ।

(आयुर्वेद० १०८९) ७।९६।२ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सरस्वती)

[११] १।४८।८ (प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः)

चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।

अप...दुहिता दिव उषा उच्छदप स्रिधः ।

(१७३) ७।८१।१ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषाः)

......दुहिता दिवः ।

अपो...चक्षसे तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।

(१७८) ७।८१।६ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषाः)

उषा उच्छदप स्रिधः ।

[१६] १।४८।१३ (प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः)

प्रति भद्रा अदृक्षत ।

(१०७) ४।२५।५ (वामदेवो गौतमः । उषाः)

[१७] १।४८।१४ (प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः)

ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।

सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥

(अश्विनौ ४२६) ८।८।६ (सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)

यच्चिद्धि वां पुर ऋषयो जुहूरेऽवसे नरा ।

आ यातमश्विना गतमुपेमां सुष्टुतिं मम ।

(१०९) ४।५२।७ (वामदेवो गौतमः । उषाः)

उषः शुक्रेण शोचिषा ।

(अश्विनौ ४१२) ८।५।३० (ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ)

उपेमां सुष्टुतिं मम ।

(अश्विनौ ५३०-५३२) ८।३५।२२-२४ (श्यावाश्व आत्रेयः । अश्विनौ)

आ यातमश्विना गतम् ।

[१८] १।४८।१५ (प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः)

प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः ।

(अश्विनौ ४४४) ८।२।१ (शशकर्णः काण्वः । अश्विनौ)

प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिः ।

[२०] १।४९।१ (प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः)

दिवश्चिद् रोचनादधि ।

(मरुतः २७५) ५।५६।१ (श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः)

(अश्विनौ ४२७) ८।८।७ (सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)

[२३] १।४९।४ (प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः)

विश्वमाभासि रोचनम् ।

१।५०।४ (प्रस्कण्वः काण्वः । सूर्यः)

विश्वमा भासि — ।

(इन्द्रः १४०३) ३।४४।४ (गाथिनो विश्वामित्रः । इन्द्रः)

विश्वमा भाति रोचनम् ।

[२६] १।९२।३ (गोतमो राहूगणः । उषाः)

इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे ।

(अश्विनौ ४६) १।४७।८ (प्रस्कण्वः काण्वः । अश्विनौ)

इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानवे ।

[२७] १।९२।४ (गोतमो राहूगणः । उषाः)

ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती ।

(अग्निः ७४६) ४।१४।१ (वामदेवो गौतमः । अग्निः)

— — कृण्वन् ।

[२९] १।९२।६ (गोतमो राहूगणः । उषाः)

अतारिष्म तमसस्पारमस्य ।

(अश्विनौ २०७) १।१८३।६=(अश्विनौ २१३) १।१८४।६ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ)

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो ।

(अश्विनौ ३७३) ७।७३।१ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अश्विनौ)
अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति सोमं ।
[३०] १।९२।७ (गोतमो राहूगणः । उषाः)
भास्वती नेत्री सूनृतानाम् ।
(४२) १।११३।४ (कुत्स आङ्गिरसः । उषाः)
[३४] १।९२।११ (गोतमो राहूगणः । उषाः)
प्रमिनती मनुष्या युगानि ।
[३५] १।९२।११ (गोतमो राहूगणः । उषाः)
अमिनती दैव्यानि व्रतानि ।
(७३) १।१२४।२ (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । उषाः)
अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि ।
[३६] १।९२।१३ (गोतमो राहूगणः । उषाः)
उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
येन तोकं च तनयं च धामहे ।
४।५५।९ (वामदेवो गौतमः । विश्वे देवाः)
उषो मघोन्या वह ।
अस्मभ्यं वाजिनीवति ।
(सोमः ६६१) ९।७४।५ (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः। पवमानः सोमः)
येन तोकं च तनयं च धामहे ।
[४२] १।११३।४=(३०) १।९२।७
[४२-४४] १।११३।४-६ (कुत्स आङ्गिरसः । उषाः)
उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ।
[४५] १।११३।७ (कुत्स आङ्गिरसः । उषा)
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि...... शुक्रवासाः।
उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ ।
(७४) १।१२४।३ (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । उषाः)
— प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना ।
(७१) १।१२३।१३ (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । उषाः)
उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छ ।
[५२] १।११३।१४ (कुत्स आङ्गिरसः । उषाः)
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन ।
(अग्निः ७४७) ४।१४।३ (वामदेवो गौतमः । अग्निः)
प्रबोधयन्ती सुविताय देव्युषा ईयते सुयुजा रथेन ।
[५३] १।११३।१५ (कुत्स आङ्गिरसः । उषाः)
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् ।
(७३) १।१२४।२ (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । उषाः)
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ।

[५४] १।११३।१६ (कुत्स आङ्गिरसः । उषाः)
आगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ।
(सोमः ११४५) ८।४८।११ (प्रगाथो घौरः काण्वः । सोमः)
अगन्म — — ।
[६३] १।१२३।५ (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । उषाः)
उषः सूनृते प्रथमा जरस्व ।
(१५१) ७।७६।६ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषाः)
उषः सुजाते प्रथमा जरस्व ।
[७०] १।१२३।१२ (कक्षीवान दैर्घतमस औशिजः । उषाः)
यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।
(अग्निः ७९३) ५।४।४ (वसुश्रुत आत्रेयः । अग्निः)
यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य ।
[७१] १।१२३।१३=(४५) १।११३।७
[७३] १।१२४।२=(३५) १।९२।१२
[७३] १।१२४।२=(३४) १।९२।११
[७३] १।१२४।२=(५३) १।११३।१५
[७४] १।१२४।३=(४५) १।११३।७
[७४] १।१२४।३ (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । उषाः)
...... पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति।
(१२३) ५।८०।४ (सत्यश्रवा आत्रेयः । उषाः)
१०।६६।१३ (वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वे देवाः)
ऋतस्य पन्थामन्वेमि साधुया ।
[७६] १।१२४।५ (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । उषाः)
व्यु प्रथते वितरं वरीय ।
(अग्निः २००६) १०।११०।४ (जमदग्निर्भार्गवः, रामो वा जामदग्न्यः । आप्रीसूक्तं [बर्हिः])
[७८] १।१२४।७ (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । उषाः)
जायेव पत्य उशती सुवासाः ।
(अग्निः ६६७) ४।३।२ (वामदेवो गौतमः । अग्निः)
=१०।७१।४ (बृहस्पतिराङ्गिरसः । ज्ञानम्)
(अग्निः १६६३) १०।९१।१३ (अरुणो वैतहव्यः । अग्निः)
[७८] १।१२४।७ उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः ।
(१२५) ५।८०।६ (सत्यश्रवा आत्रेयः । उषाः)
योषेव भद्रा नि— ।
[८१] १।१२४।१० (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः। उषाः)
पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।
रेवदुच्छ मघवद्‌भ्यो मघोनि ।
(९४) ४।५१।३ (वामदेवो गौतमः । उषाः)

उच्छन्तीरद्य चितयन्त — — मघोनीः ।
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्वबुध्यमानाः ।
[८३] १।१२४।१२ (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । उषाः)

=(१३१) ६।६४।६ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । उषाः)
उत् ते वयश्चिद् वसतेरपप्तन् नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥

ऋग्वेदस्य तृतीयं मण्डलम् ।

[९१] ३।६१।७ (गाथिनो विश्वामित्रः । उषाः)
वृषा मही रोदसी आ विवेश ।

(अग्निः १६४५) १०।८०।१ (अग्निः सौचीको वैश्वानरो वा, सप्तिर्वाजंभरो वा । अग्निः)
अग्निर्मही रोदसी आ विवेश ।

ऋग्वेदस्य चतुर्थं मण्डलम् ।

[९४] ४।५१।३ (वामदेवो गौतमः । उषाः)
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्तु ।
(८१) १।१२४।१० (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । उषाः)
अबुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।
[१०१] ४।५१।१० (वामदेवो गौतमः । उषाः)
सुवीर्यस्य पतयः स्याम ।
(इन्द्रः ११७०) ६।४७।१२ (गर्गो भारद्वाजः । इन्द्रः)
(इन्द्रः २७७६) १०।१३१।६ (सुकीर्तिः काक्षीवतः । इन्द्रः)
(सोमः ७९९) ९।८९।७ (उशना काव्यः । पवमानः सोमः)

(सोमः ८३२) ९।९५।५ (प्रस्कण्वः काण्वः । पवमानः सोमः)
[१०४] ४।५२।२ (वामदेवो गौतमः । उषाः)
अश्वेव चित्रारुषी ।
(२) १।३०।२१ (शुनःशेपः आजीगर्तिः । उषाः)
अश्वे न चित्रे अरुषि ।
[१०७] ४।५२।५ (वामदेवो गौतमः । उषा)
प्रति भद्रा अदृक्षत ।
(१६) १।४८।१३ (प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः)
[१०९] ४।५२।७=(१७) १।४८।१४
उषः शुक्रेण शोचिषा ।

ऋग्वेदस्य पञ्चमं मण्डलम् ।

[११०-१२] ५।७९।१-३ (सत्यश्रवा आत्रेयः । उषाः)
सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ।
(११०-११९) ५।७९।१-१० सुजाते अश्वसूनृते
[१११] ५।७९।२=(११२) ५।७९।३
सा (यो) व्युच्छ (व्यौच्छः) सहीयसि ।
[११२] ५।७९।३=(११८) ५।७९।९ व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
(४) १।४८।१ (प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः)
(१२) १।४८।९ चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।
(२१) १।४९।१ (प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः)
प्रावाय दुहितर्दिवः ।
(१११) ५।७९।२ व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
(११७) ५।७९।८ आ वहा दुहितर्दिवः ।
[११५] ५।७९।६ येषु धा वीरवद् यशः ।
(इन्द्रः १६५६) ४।३२।१२ (वामदेवो गौतमः । इन्द्रः)

[११५-१६] ५।७९।६-७ ये नो राधांस्यह्रया (७ अश्व्या)
[११६] ५।७९।७ उषो मघोन्या वह ।
४।५५।९ (वामदेवो गौतमः । विश्वे देवाः)
[११७] ५।७९।८ (सत्यश्रवा आत्रेयः । उषाः)
उत नो गोमतीरिषः ।
(अश्विनौ ३९२) ८।५।९ (ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ)
(सोमः ४४१) ९।६२।२४ (जमदग्निर्भार्गवः । पवमानः सोमः)
[११८] ५।७९।८ साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।
(अश्विनौ ४५) १।४७।७ (प्रस्कण्वः काण्वः । अश्विनौ)
(अदितिः० २११) १।१३७।१ (परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ)
(७०) १।१२३।१२ (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । उषाः)
यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।

*

(अदितिः० ३७०) ८।१०१।१
(जमदग्निर्भार्गवः । मित्रावरुणौ)
[१२३] ५।८०।४ ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु ।
(७४) १।१२४।३ (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । उषाः)
१०।६६।१३ (वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वे देवाः)
ऋतस्य पन्थामन्वेमि साधुया ।
[१२३] ५।८०।४ प्रजानतीव न दिशो मिनाति ।
(७४) १।१२४।३ (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । उषाः)

[१२५] ५।८०।६ (सत्यश्रवा आत्रेयः । उषाः)
योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः ।
(७८) १।१२४।७ (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । उषाः)
उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः ।
[१२५] ५।८०।६ (सत्यश्रवा आत्रेयः । उषाः)
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि ।
६।५०।८ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः [सविता])
व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि ।

ऋग्वेदस्य षष्ठं मण्डलम् ।

[१३१] ६।६४।६ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । उषाः)
=(८३) १।१२४।१२(कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । उषाः)
उत् ते वयश्चिद् वसतेरपप्तन् नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥

[१३४] ६।६५।३ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । उषाः)
नि दाशुष उषसो मर्त्याय ।
=(८३) १।१२४।१२=(१३१) ६।६४।६
उषो देवि दाशुषे मर्त्याय ।

ऋग्वेदस्य सप्तमं मण्डलम् ।

[१३८] ७।४१।७=(१७२) ७।८०।३ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषाः)
अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।
[१३८] × ७।४१।७ यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।
=(१४६) ७।७५।८=(१५३) ७।७६।७
=(१५९) ७।७७।६=(१६४) ७।७८।५
=(१६९) ७।७९।५=(१७२) ७।८०।३
[१४४] ७।७५।६ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषाः)
दधाति रत्नं विधते जनाय ।
(अश्विनौ २५४) ४।४४।४ (पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ । अश्विनौ)
दधथो रत्नं विधते जनाय ।
[१४५] ७।७५।७ देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
४।५६।२ (वामदेवो गौतमः । द्यावापृथिवी)
देवी देवेभिर्यजते यजत्रैः ।
[१५१] ७।७६।५ ते देवानां न मिनन्ति व्रतानि ।
(आयुर्वेद० ८७३) ७।४७।३ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आपः)
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि ।
[१५२] ७।७६।६ = (६३) १।१२३।५
उषः सुजाते (५ सूनृते) प्रथमा जरस्व ।

[१५७] ७।७७।४ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषाः)
अन्ति — दूरे अमित्रं — उर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः ।
(सोमः ६८५) ९।७८।५ (कविर्भार्गवः । पवमानः सोमः)
शत्रुमन्तिके दूरके ... उर्वीं गव्यूतिमभयं च नस्कृधि ।
[१६१] ७।७८।३ एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन् ।
(आयुर्वेद० ७७८) १।१९१।५ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अप्तृणसूर्याः [विषघ्नोपनिषद्])
एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन् ।
[१६२] ७।७८।३ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषाः)
अजीजनन्त्सूर्यं यज्ञमग्निम् ।
[१७१] ७।८०।२ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषाः)
एषा स्या नव्यमायुर्दधाना ।
प्राचिकितत्सूर्यं यज्ञमग्निम् ।
३।५३।१६ (गाथिनो विश्वामित्रः । वाक् [ससर्परी])
सा पक्ष्या नव्यमायुर्दधाना ।
[१७२] ७।८०।३ = (१३८) ७।४१।७
[१७३] ७।८१।१ प्रत्यु अदर्श्यायति ।
(१७९) ८।१०१।१३ (जमदग्निर्भार्गवः । उषाः सूर्यप्रभा वा)
चित्रेव प्रत्यदर्श्यायति ।
[१७३] ७।८१।१ =(११) १।४८।८
ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।

× [दै०- अग्निः, २०६ पृष्ठे ऋग्वेदस्य सप्तमे मण्डले एष मन्त्रभागो द्रष्टव्यः ।]

[१७३] ७।८१।१ = (११) १।४८।८
उच्छन्ती (८ मघोनी) दुहिता दिवः ।
[१७८] ७।८१।६ = (११) १।४८।८
उषा उच्छदप स्रिधः ।

[१७८] ७।८१।६ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषाः)
श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनम् ।
(इन्द्रः ३३२) ८।१३।१२ (नारदः काण्वः । इन्द्रः)

ऋग्वेदस्याष्टमं मण्डलम् ।

[१७९] ८।१०१।१३ (जमदग्निर्भार्गवः । उषाः सूर्यप्रभा वा)
चित्रेव प्रत्यदर्श्यायति ।
(१७३) ७।८१।१ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषाः)
प्रत्यु अदर्श्यायति ।

दैवत-संहितान्तर्गत-

उषादेवता-मन्त्राणां सूची।

दैवत-संहितान्तर्गत--

उषादेवता-मन्त्राणां उपमा-सूची।

अजिरः न वोळ्हा ६,६४,३; ११८ तमः बाधते।
अनसत् न १,१२४,४; ७५ ससतः बोधयन्ती।
अपसः न १,९२,३; २६ नारीः विष्टिभिः आ परावतः अर्चन्ति।
अपां न ऊर्मयः ६,६४,१; ११६ उषसः श्रियः उत् अस्थुः।
अभ्राता इव प्रतीची १,१२४,७; ७८ उषा एति।
अश्वा इव ४,५२,२; १०४ चित्रा अरुषी उषा।
अस्ता इव ६,६४,३; ११८ शूरा शत्रून् अपेजते।
उस्रा इव बर्जहम् १,९२,४; २७ उषा वक्षः अपोर्णुते।
(यथा) ऋणम् ८,४७,१७; १९० दुःष्वप्न्यं आप्त्ये संनयामसि।
कन्या इव १,१२३,१०; ६८ तन्वा शाशदाना।
(यथा) कलाम् ८,४७,१७; १९० दुःष्वप्न्यं आप्त्ये संनयामसि।
गर्तारुक् इव १,१२४,७; ७८ धनानां सनये गर्तं एति।
गवां सर्गाः न ४,५१,८; ९९ ऋतस्य सदसः बुधानाः जरन्ते।
गवां सर्गाः न ४,५२,५; १०७ उरु ज्रयः आ अप्राः।
गावः न व्रजम् १,९२,४; २७ विश्वस्मै भुवनाय ज्योतिः।
चक्रं इव ३,६१,३; ८७ समानं अर्थं चरणीयमाना।
चन्द्रा इव ३,६१,७; ९१ माया पुरुत्रा भानुं वि दधे।
(यथा) चित् ५,७९,१; ११० नः अबोधयः।
चित्रा इव ८,१०१,१३; १७८ आयती प्रत्यदर्शि।
जाया इव पत्ये उशती सुवासाः १,१२४,७; ७८ उषाः अप्सः।
जारः इव ७,७६,३; १४९ परि आ चरन्ती।
तन्तुं ततं इव वा० य० २०,४१; १९२ पेशसा संवयन्ती।
(आयुधानि इव) धृष्णवः १,९२,१; २४ निष्कृण्वानः गावः प्रति।
नृतूः इव १,९२,४; २७ पेशांसि अधि वपते।
नोधाः इव १,१२४,४; ७५ प्रियाणि आविः अकृत।
पशून् न १,९२,१२; ३५ प्रथाना उर्विया व्यश्वैत्।
पितुभृतः न १०,१७२,३; १८१ तन्तुं इत् प्रति दध्मः।
पूर्वथा १,९२,२; २५ वयुनानि अक्रन्।
पूर्वथा ५,८०,६; १२५ युवतिः पुनः ज्योतिः अकः।
प्रजानती इव १,१२४,३; ७४ ऋतस्य पन्थां साधु एति।
प्रजानती इव ५,८०,४; १२३ दिशः न मिनाति।
प्रत्नवत् ६,६५,६; १३७ नः उच्छ।
भद्रा योषा इव ५,८०,६; १२५ नूनं अप्सः नि रिणीते।
भरद्वाजवत् ६,६५,६; १३७ नः धनं रिरीहि।
मातुः न सूनवः ७,८१,४; १७६ वयं ते स्याम।
यती इव ७,७६,३; १४९ पुनः न ददृक्षे।
युवतिः [इव] १,१२३,१०; ६८ संस्मयमाना वक्षांसि आविः।
युवतिः अह्रयाणा ७,८०,२; १७१ सूर्यं आचिकितत्।
युवतिः न योषा ७,७७,१; १५४ उप रुरुचे।
योषा इव सूनरी १,४८,५; ८ प्रभुञ्जती घा आ याति।
योषा इव १,१२३,११; ६९ सुसंकाशा तन्वं दृशे आविः कृणुषे।
रत्नं न ७,८१,३; १७५ दाशुषे पुरु स्पार्हं वहसि।
(वृषभस्य) रवेण ७,७९,४; १६८ त्वा प्रकाशेन जज्ञुः।
(यथा) रात्री सवितुः प्रसूता १,११३,१; ३९ उषसे सवाय।
वायोः इव १,११३,१८; ५६ सूनृतानां उदर्के।
विशः न युक्ताः ७,७९,२; १६६ उषासः अक्तून् यतन्ते।
(समनगा इव) व्राः १,१२४,८; ७९ एषा अञ्जि अङ्क्ते।
(यथा) शफम् ८,४७,१७; १९० दुःष्वप्न्यं आप्त्ये संनयामसि।
शुन्ध्युवः न वक्षः १,१२४,४; ७५ एषा उषो अदर्शि।
शुभ्रा न ५,८०,५; १२४ तन्वः विदाना नः दृशये अस्थात्।
(समुद्रे न) श्रवस्यवः १,४८,३; ६ अस्याः आचरणेषु रथाः।
श्रिये छन्दः न १,९२,६; २९ विभाती उषाः स्मयते।
श्वघ्नी इव कृत्नुः १,९२,१०; ३३ मर्तस्य आयुः जरयन्ती।
सविता इव बाहू ७,७९,२; १६६ उषसः ज्योतिः यच्छन्ति।
सिन्धुः न क्षोदः १,९२,१२; ३५ उषाः उर्विया व्यश्वैत्।
(उद्यन्) सूर्यः [इव] १,१२४,१; ७२ उर्विया ज्योतिः अश्रेत्।
(रिपुं) स्तेनं यथा ५,७९,९; ११८ त्वां अर्चिषा नेत् तपाति।
स्यूमा इव ३,६१,४; ८८ (तमः) अव चिन्वती उषा याति।
(अध्वरेषु मिताः) स्वरवः इव ४,५१,२; ९३ चित्राः उषसः।
(विदथेषु) स्वरुं न १,९२,५; २८ पेशः उषा अनक्ति।
स्नाती ऊर्ध्वा इव ५,८०,५; १२४ उषाः नः दृशये अस्थात्।
हस्रा इव १,१२४,७; ७८ उषाः अप्सः नि रिणीते।

दैवत–संहितान्तर्गत–

उषादेवताया गुणबोधक-पदानि ।

अङ्गिरस्तमा ७,७९,३; १६७
अजरा १,११३,१३; ५१
अजुर्याः ४,५१,६; ९७
अदितेः अनीकम् १,११३,१९; ५७
अद्रिसानुः ६,६५,५; १३६
अध्वा समानः स्वस्रोः १,११३,३; ४१
अनवद्याः १,१२३,८; ६६
अनीकम् अदितेः १,११३,१९; ५७
अनुयच्छमाना ऋतस्य रश्मिम् १,११३,१२; ७१
अनूची [राज्युषसौ] १,११३,२; ४०
अन्तिवामा ७,७७,४; १५७
अभिपश्यन्ती जनानां वयुना ७,७५,४; १४२
अभिष्टिद्युम्नाः ४,५१,७; ९८
अमर्त्या ३,६१,२; ८६
अमिनती दैव्यानि व्रतानि १,९२,१२; ३५ । १२४,२; ७१
अमीतवर्णा ४,५१,९; १००
अमृतस्य केतुः ३,६१,३; ८७
अमृता १,११३,१३; ५१
अमृते [राज्युषसौ] १,११३,२; ४०
अरुणप्सुः ५,८०,१; १२०
अरुषी १,३०,२१; २ । ९२,१–२; २४–२५ । ४,५२, २; १०४
अर्किणी ८,१०१,१३; १७९
अर्या १,१२३,१; ५९
अवाता ६,६४,५; १३०
अश्वदाः १,११३,१८; ५६
अश्वं नयन्ती सुदृशीकं श्वेतम् ७,७७,३; १५६
अश्वसूनृता ५,७९,१-१०; ११०-११९
अश्वा १,३०,२१; २
अश्वावती-तीः १,४८,२; ५ । ९२,१४; ३७ । १२३, १२; ७० । ७,४१,७; १३८ । ८०,३; १७२
असितं अभ्वं गूहन्तीः ४,५१,९; १००
अश्विनोः सखा ४,५२,२-३; १०४-१०५
अस्रेधन्ती ५,८०,३; १२२
अह्ना १,१२३,४; ६२
अह्नः प्रथमस्य नाम जानती १,१२३,९; ६७
अह्नां नेत्री ७,७७,२; १५५

आपप्रुषी ४,५२,६; १०८
आभरद्वसुः ५,७९,३; ११२
आमिनाना विजः १,९२,१०; ३३
आमिनाने वर्णम् [नक्तोषासा] १,११३,२; ४०
आयती ३,६१,६; ९० । ७,८१,१; १७३ । साम० ३०३; १८५
आयती अन्तः दशसु बाहुषु ८,१०१,१३; १७९
आयतीनां प्रथमा १,१२४,२; ७३
आयुः जरयन्ती १,९२,१०; ३३
आयुः प्रतिरन्ती ७,७७,५; १५८
आवहन्ती पोष्या वार्याणि १,११३,१५; ५३
आवहन्ती स्वर् ५,८०,१; १२०
आविष्कृण्वती विश्वा भुवनानि ७,८०,१; १७०
आविष्कृण्वाना तन्वम् ५,८०,४; १२३
आविष्कृण्वाना महिमानम् ७,७५,१; १३९

इन्द्रतमा ७,७९,३; १६७
इषं दधती ७,७७,५; १५८
इषं वहन्ती १,९२,३; २६

ईयुषीणां शश्वतीनां उपमा १,११३,१५; ५३
ईरयन्ती सूनृता १,११३,१२; ५० । ३,६०,२; ८६ । ७,७९,५; १६९
ईशाना वस्वः विश्वस्य पार्थिवस्य १,११३,७; ४५
ईशिषे वस्वः ४,५२,३; १०५
ईशे वसूनां रायः ७,७५,५; १४३

उच्छन्ती १,९२,६; २९ । १२४,१; ७२ । ४,५१,३; ९४ । ६,६५,१; १३२ । ७,७६,७; १५३ । ८१,१, ४; १७३,१७६ । साम० ३०३; १८९
उच्छन्ती व्रजस्य तमसः द्वारा ४,५१,२; ९३
उदीरयन्ती जीवम् १,११३,८; ४६
उपमा ईयुषीणां शश्वतीनाम् १,११३,१५; ५३ । १२४, २; ७३
उर्विया १,९२,११; ३५ । ६,६४,२,३; १२७;१२८

*

अग्निदेवतामन्त्रान्तर्गत-

आप्रीसूक्तेषु ‘ उषासानक्ता ’-देवताया गुणबोधक-पद-संग्रहः ।

इन्द्रस्य धेनू	२०८९
उक्षिते	१९४७
उपाके	१९५८; १९२४
उपाके	२०७९
उभे	२१००
उशती	१९९७
उषे	२०४२
ऋतस्य मातरा	१९२४; १९६९
चरन्ती मित्रावरुणा अन्तरा	२१११
ततं तन्तुं संवयन्ती	१९४७
दधाने शुक्रपिशम्	२००८
दर्शते	१९८६
दर्शते	२१००
दिवः दुहितरा	१९९७
दिव्ये	१९७९
दिव्ये (योषणे)	२००८
दिव्ये योषिते	२०६६
दुहितरः दिवः	१९९७
देवी	१९९७
धेनू इन्द्रस्य	२०८९
नृः पतिभ्यः योनिं कृण्वाने	२१३५
पयस्वती	१९४७
पुरुहूते	१९७९
बर्हिषदा	१९७९
बृहती	१९८६
बृहती	२००८
बृहती	२१००
बृहती	२१३५
भन्दमाने	१९२४
मघोनी	१९७९
मही	१९७९
मही	१९८६
मही	२०८९
मातरा	२०८९
मातरा ऋतस्य	१९२४
यजते	२००८
यजते	२०७९
यह्वी	१९२४
यह्वी	२०३१
योषणे	२००८
योषणे	१९७९
योषणे दिव्ये	२०६६
रण्विते	१९४७
वयोवृधा	१९६९
वय्या इव	१९४७
शुक्रपिशं दधाने	२००८
विरूपे	१९५८
संवयन्ती ततं तन्तुम्	१९४७
संविदाने	२१११
संस्मयमाने	२१३५
संजानाने	२०३१
समीची	१९४७
सबातरौ	२०८९
सनता	१९४७
सुदुघे	१९४७
सुपेशसा	१९१२; २०४२
सुपेशसा	१९२४; २१३५
सुपेशसा	१२३६; २१००
सुपेशसा	२०१९; २०५४
सुपेशसा	२०३१; २०४२
सुप्रतीके	१९६९
सुरुक्मे	१९३६; २००८
सुशिल्पे	१९८६ } २००८ १९९७ } २१००
सुष्वयन्ती	२८०८; २०७९
सुहिरण्ये	२१११



दैवत-संहिता ।

(१)

अदितिः, आदित्याश्च ।

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
साहित्यवाचस्पति, गीतालंकार
अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल

[स्व. नारायणजी पुरुषोत्तम विश्वस्तनिधिके बंबई निवासी विश्वस्तोंने संपूर्ण 'दैवत-संहिता' के मुद्रणके लिये १५०००) रु० दिये, इस धनके भागसे यह विभाग मुद्रित हुआ है ।]

स्वाध्याय-मण्डल, पारडी

संवत् २०१६, शक १८८१, सन् १९५९

प्रकाशक :
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर, बी. ए.,
स्वाध्याय-मण्डल, भारत मुद्रणालय,
पोस्ट- ' स्वाध्याय मण्डल (पारडी) '
पारडी (जि. सुरत)

द्वितीय वार

मूल्य ३) रु.

मुद्रक :
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर, बी. ए.,
स्वाध्याय-मण्डल, भारत मुद्रणालय,
पोस्ट- ' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) '
पारडी (जि. सुरत)



आदित्योंके कार्य और उनकी लोकसेवा

जिस प्रकार अश्विनौ सदैव जनताके हितके लिए कार्य करनेमें लगे रहते हैं वैसे ही आदित्य अर्थात् अदिति के पुत्र भी जन-सेवाको बडे ही स्पृहणीय ढंग से प्रचलित रखते हैं। अदिति याने अदीनता, अखंडता एवं पूर्णता के इन पुत्रोंने वीरतापूर्वक और साहस से कार्य करके एवं जनताकी रक्षा करके लोगोंका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है अतः भक्त तथा उपासक इन आदित्यों से क्या कहते हैं सो वेदके शब्दोंमें देखना ठीक होगा।

जनताके सम्मुख अपनी रक्षाकी समस्या सदैव उठखडी होती है। अतः अपना संरक्षण भलीभाँति हो ऐसी तीव्र लालसा हमेशा जनमनमें जागृत रहती है और देवतारूपी सभी सुयोग्य एवं कार्यक्षम व्यक्तियों से इसी संबंधमें वारंवार निवेदन किया जाता है। जैसे—

अपना संरक्षण

त्यान् नु क्षत्रियान् अव आदित्यान् याचिषामहे। (ऋ. ८।६७।१)

'उन विख्यात आदित्यों के सम्मुख, जो कि क्षत्रिय हैं, हम संरक्षणकी माँग पेश करते हैं।'

महि वो महतामवो ... अवांस्यावृणीमहे। (ऋ. ८।६७।४)

'आप जैसे महान् लोगोंके संरक्षण बहुत बडे होते हैं इसलिए हम आपकी संरक्षण आयोजनाओं को स्वीकृत करते हैं।'

महि वो महतामवो ... दाशुषे। यं आदित्या अभि द्रुहो रक्षथा न ईं अघं नशत् ... ॥ (ऋ. ८।४७।१)

'आप जैसे बडे वीरोंका दानी पुरुषके लिए दिया हुआ संरक्षण बडा है क्योंकि जिसे आदित्य द्वेष्टाओं से बचाते हैं उसे पाप या बुराई घेर नहीं सकती है।'

स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि आदित्यानामुतावसि। (ऋ. ८।४७।५)

'हम लोग प्रभु इन्द्रके सुखकी या आदित्योंके संरक्षण की छत्रछाया में रहें।'

... अनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः। (ऋ. ८।४७।१)

'आप आदित्योंकी रक्षाएं निर्दोष, निष्पाप एवं सुन्दर हैं।'

आदित्या विश्वे... तुष्टुवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः। (ऋ. ७।५१।३)

'आप सारे आदित्य प्रशंसित होनेपर हमेशा कल्याणकारक बातों से हमारी रक्षा कीजिए।'

आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शन्तमेन। (ऋ. ७।५१।१)

'हम लोग आदित्योंकी नई रक्षासे एवं अत्यन्त शक्तिदायक सुखसे जुड जायँ।'

आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां ...अस्माकं सन्तु भुवनस्य गोपाः पिबन्तु सोमं अवसे नो अद्य। (ऋ. ७।५१।२)

'अदिति और आदित्य हर्षित हों और हमारे भुवन के संरक्षक बनें तथा आज हमारी रक्षा करनेमें उत्साह मिल जाय इसलिए सोमरसका पान करें।'

युष्मे देवा अपि ष्मसि युध्यन्त इव वर्मसु।
यूयं महो न एनसो यूयमर्भादुरुष्यथ॥ (ऋ.८।४७।८)

'हे दानी या द्योतमान आदित्यो! तुम्हारे सहारे हम ऐसे रहते हैं मानों कवचधारी लोग लडते हों, याने वे जैसे निर्भय हुआ करते वैसे ही हम हैं और आप हमें बडे एवं छोटे पापसे बचाते हैं।'

शश्वत् हि वः सुदानव आदित्या ऊतिभिर्वयं पुरा नूनं बुभुज्महे॥ (ऋ. ८।६७।१६)

'हे अच्छे दानी! अदितिके पुत्रो! हमेशा ही हम लोग आपकी रक्षाओं से पहले तथा अब भी सुखोंका उपभोग लेते रहते हैं।'

ते न आस्नो वृकाणामादित्यासो मुमोचत।
स्तेनं बद्धं इवादिते ॥ (ऋ. ८।६७।१४)

'हे अदिति! एवं वे ऐसे विख्यात आदित्यो। हमें भेडिये जैसे क्रूर तथा लालची लोगोंके मुँहसे ऐसे छुडाओ जैसे बाँधकर रखे हुए चोरको छुडाया जाता है।'

ये मूर्धानः क्षितीनां अदब्धासः स्वयशसा।
व्रता रक्षन्ते अद्रुहः ॥ (ऋ. ८।६७।१३)

'जो आदित्य द्वेष न करते हुए अपनी अर्जित यशस्विता के कारण न दबाये हुए होकर मानवों के अग्रभाग में रहते हैं और व्रतोंकी रक्षा करते हैं।'

धारयन्त आदित्यासो जगत् स्था देवा विश्वस्य भुवनस्य गोपाः......रक्षमाणा असुर्यम् .....।
(ऋ. २।२७।४)

'ये देवतारूपी आदित्य! अखिल भुवनके संरक्षक होते हुए जंगम तथा स्थावर का धारण करते हैं और प्राणशक्ति को बचाते हैं।'

विद्यां आदित्या अवसो वो अस्य...यत्...भय आ चित् मयोभु। (ऋ. २।२७।५)

'हे अदितिके पुत्रो! मैं चाहता हूँ कि आपकी इस रक्षासे परिचित हो जाऊँ जो रक्षा भय के अवसरपर भी सुखदायक बनी रहती है।'

इन ऊपर दिये हुए मंत्रों और मन्त्रभागोंसे स्पष्ट दिखाई देता है कि जनताकी रक्षा करनेमें अदिति के पुत्र बडे सिद्ध-हस्त थे, अतः लोग भी आदित्यों की संरक्षण आयोजना से लाभ उठानेमें अत्यन्त उत्सुक रहा करते थे। वेद में ऐसे निर्देश मिलते हैं कि लोगों का नेतृत्त्व भी आदित्य सफलतापूर्वक कर लिया करते थे और जो लोग मार्ग भूले भटके होते हैं तथा जो अन्धकार में रहते हैं उनके पथप्रदर्शन तथा प्रकाशमान का कार्य आदित्य सफलतापूर्वक पूर्ण करते हैं जैसे—

प्रकाशके वीर

आदित्या ... युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम्।
(ऋ. २।२७।११)

'हे आदित्यो! तुम्हारे नेतृत्वमें मैं निर्भयता से पूर्ण प्रकाश को प्राप्त कर लूँ।'

...पुत्रासो अदितेः...मर्त्याय ज्योतिर्यच्छन्त्य-जस्रम्। (ऋ. १०।१८५।३)

'आदित्य मानव को लगातार उजेला या प्रकाशपुञ्ज देते हैं।'

मृळ यद्वो वयं चकृमा कच्चिदागः। उरु अश्यां अभयं ज्योतिः...मा नो दीर्घा अभि नशन् तमिस्राः ॥ (ऋ. २।२७।१४)

'यद्यपि हम से आप का कुछ अपराध हुआ हो तो भी हमें सुख दो; मैं विशाल एवं निर्भयतामय प्रकाश को प्राप्त हो जाऊँ और सुदीर्घ अन्धियारी हमें न घेर ले।'

नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूरात् य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥ (ऋ. २।२७।१३)

'जो कोई आदित्योंके श्रेष्ठ नेतृत्वके तत्त्वावधानमें रहता है उसे न कोई दूरसे या समीपसे होकर मार सकते हैं।'

...आदित्या... युष्माकं...प्रणीतौ परि श्वभ्रेव दुरितानि वृज्याम्। (ऋ. २।७७।५)

'हे आदित्यो! तुम्हारे श्रेष्ठ नेतृत्व में मैं बुराइयों को इस तरह टाल दूँ जैसे कोई गढोंको टाल देता हो अर्थात् जहाँ नेता की धुरा आदित्य उठा लेते हैं वहाँ बुराइयों का भय रहता ही नहीं।'

बुराई दूर हो

सभी बुराइयों को हटाने की क्षमता आदित्यों में विद्यमान है ऐसा निम्न मन्त्रभागों से ज्ञात होता है।

यत् आविः यत् अपीच्यं... अस्ति दुष्कृतं... तत् विश्वं... आरे अस्मत् दधातन ...।
(ऋ. ८।४७।१३)

'जो कोई बुरा कृत्य चाहे प्रकटरूपसे या गुप्तरूपसे विद्यमान हो उस सारी बुराई को हम से दूर रखो।'

अपामीवामपस्रिधं अप सेधत दुर्मतिं। आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ॥ (ऋ. ८।१८।१०)

'हे आदित्यो! रोग, शत्रु तथा दुष्ट बुद्धि को दूर हटा दो और हमें पाप से पृथक् रखो।'

अपो षु ण इयं शरुरादित्या अप दुर्मतिः। अस्मदेत्वजघ्नुषी ॥ (ऋ. ८।६७।१५)

'हे आदित्यो! यह हिंसक हथियार तथा यह दुष्ट विचारधारा हमें पीडा न देती हुई, भलीभाँति हम से दूर हो जाए।'

मा नो हेतिः...आदित्यः कृत्रिमा शरुः पुरा नु जरसो वधीत्। (ऋ. ८।६७।२०)

'हे आदित्यो ! वृद्धावस्था के पहले यह शस्त्र तथा बनाया हुआ हथियार हमें न मार डाले ऐसा प्रबंध करो।'

ते नो भद्रेण शर्मणा युष्माकं नावा ... अति विश्वानि दुरिता पिपर्तन। (ऋ. ८।१८।१७)

'वे ऐसे विख्यात तुम कल्याणकारक सुखसे और आप की नौका से हमें सभी बुराइयों के पार ले चलो-।'

युयोत शरुमस्मत्... आदित्यास उतामतिं। ऋधग् द्वेषः कृणुत विश्ववेदसः। (ऋ. ८।१८।११)

'हे सर्वज्ञ आदित्यो ! हमसे हिंसक शस्त्र, कुमति एवं शत्रुओंको पृथक् कर दो।'

वैदिक सूक्तोंके दर्शन कर्ता सुकवि आदित्यों से कैसी प्रार्थना करते हैं सो निम्न मंत्रोंमें देखने योग्य है—

तत् सु नः शर्म यच्छत आदित्या यन्मुमोचति। एनस्वन्तं चिदेनसः सुदानवः ॥ (ऋ. ८।१८।१२)

हे अच्छे दानशूर आदित्यो ! हमें भलीभाँति वह सुख दे डालो जो पापीको भी पाप से छुडा सकता है।'

यद् वः श्रान्ताय सुन्वते वरूथमस्ति यच्छर्दिः। तेना नो अधि वोचत ॥ (ऋ. ८।६७।६)

'कार्य करके थके हुए और उपयुक्त वस्तुका उत्पादन करनेवाले के लिए आप के पास जो वरणीय धन तथा घर है उसे साथ लेकर हमसे वार्तालाप करो।' इस प्रार्थनासे स्पष्ट हुआ कि परिश्रमी तथा आवश्यक मानी हुई वस्तुओं के उत्पादक को ये आदित्य स्वीकार करने योग्य धन देते एवं निवास करनेके लिए योग्य गृहका प्रबंध भी कर डालते।

जीवान् नो अभि धेतन आदित्यासः पुरा हथात्। कद्ध स्थ हवनश्रुतः। (ऋ. ८।६७।५)

'हमारी पुकार सुननेवाले हे आदित्यो ! भला तुम किधर हो ? जबतक हम जीवित हैं, और मृत्युके पहले ही हमारे निकट चले आओ।' इस मंत्र में वैदिक ऋषि आदित्यों के संपर्क में आनेके लिए कितने उत्सुक है सो स्पष्ट दिखाई देता है।

ये चिद्धि मृत्युबंधव आदित्या मनवः स्मसि। प्र सू न आयुर्जीवसे तिरेतन। (ऋ. ८।१८।२२)

'हे आदित्यो ! हममें जो कोई मृत्यु के अत्यन्त निकट चले गये हों तो भी जीवनके लिए हमारी आयु बढाइये।' दीर्घ जीवन की कुंजी आदित्यों के समीप थी ऐसा जान पडता है और वे मूमुर्ष लोगोंको मृत्युपाशसे छुडानेकी चेष्टा करते थे। जनसेवाके गुरुतर कार्यमें आयुवृद्धिका बहुत ऊँचा स्थान है अतः आदित्य इस विषय में पूर्ण सतर्क रहा करते।

दीर्घ आयुष्य

तुचे तुनाय तत् सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे। आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥ (ऋ. ८।१८।१८)

'हे आदित्यो ! तुम भलीभाँति महनीय तेजसे युक्त हो इसलिए हमारी सन्तानके लिए जीवनार्थ उस दीर्घ आयुष्यका प्रबंध करो।'

शतं नो रास्व शरदो विचक्षेऽश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा। (ऋ. २।२७।१०)

'हमें विशेष दर्शनके लिए सौ वर्ष प्रदान करो (उतना दीर्घ जीवन मिले) और हम भलीभाँति रखी हुई पूर्वकालीन आयुर्मर्यादाको प्राप्त कर लें।'

वेदकालीन कवि आदित्यो से कष्टनिवारणके लिए प्रार्थना करते थे और अदितिके पुत्र जनताके सुखको बढाने का प्रयत्न करते थे ऐसा निम्न मंत्रों से व्यक्त होता है—

सुख इच्छा

इदं ह नूनमेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः। आदित्यानां... (ऋ. ८।१८।१)

'अब इन आदित्यों के सामने मानव इस सुखकी माँग पेश करे।

तत् सु नः ... शर्म यच्छन्तु सप्रथो यदीमहे। (ऋ. ८।१८।३)

'हमें वही विस्तृत सुख जिसकी चाह हम करते हैं आदित्य हमें दे दें।'

विद्मा देवा अघानामादित्यासो अपाकृतिम्। पक्षा वयो यथोपरि व्यस्मे शर्म यच्छत... (ऋ. ८।४७।२)

'हे दानी आदित्यो ! तुम पापों को हटाना जानते हो और जैसे पंछी ऊपर से डैनों को फैलाते हैं ताकि पक्षिशावकोंको सुख मिले, उसी तरह तुम हमें विशेष ढंग से सुखका प्रदान करो।'

व्य१स्मे अधि शर्म तत् पक्षा वयो न यन्तन विश्वानि विश्ववेदसो वरूथ्या मनामहे...। (ऋ. ८।४७।३)

'हे सर्वज्ञ आदित्यो ! हम सारे स्वीकरणीय वस्तुओं को पाना चाहते हैं अतः विशेष रूपसे हमें वह सुख देदो जिस तरह पंछी अपने शिशुओं पर सुखके लिए पर फैलाते हैं।'

धनाढ्य बनकर (वसुदावा रथेन याति) धन का दानी होता हुआ रथ पर से संचार करता है । '

...हिरण्ययाः शुचयो धारपूताः अस्वप्नजो... अदब्धाः उरुशंसा ऋजवे मर्त्याय। (ऋ. २।२७।९)

' सुवर्णमय आभावाले, विशुद्ध तथा जलधाराओं से पवित्र होते हुए आदित्य (अस्वप्नजः) स्वप्नशीलता से दूर रहकर और कठिनाइयों से न दबकर (ऋजवे मर्त्याय) सरल बर्ताव रखनेवाले मानव के लिए (उरुशंसाः) अत्यधिक मात्रा में उपदेश देनेवाले या भाषण करनेवाले हैं । ' अर्थात् जिस मानवमें सरलता तथा निष्कपटता पाई जाती है उसके समीप आकर आदित्य सहायता करने के लिए या पथप्रदर्शनार्थ बहुत सारी बातें कहनेवाले होते हैं ।

शुचिरपः सूयवसा अदब्ध उपक्षेति वृद्धवयाः सुवीरः । ... य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥ (ऋ. २।२७।१३)

' जो अपने आपको आदित्यों के नेतृत्व के नीचे रखता है वह अच्छा वीर होकर (वृद्ध वयाः) अन्नभाण्डारों की वृद्धि करता हुआ (अदब्धाः) विपत्तियोंसे न दबकर (सूयवसाः) अच्छे तृणों से युक्त, (शुचिः अपः उप क्षेति) निर्मल जलों-जलाशयोंके निकट निवास करता है । ' इससे स्पष्ट हुआ कि आदित्य जनताके नेता बनकर उन्हें वीर बनाने का प्रयत्न करते तथा अन्नों की वृद्धि कैसे करनी चाहिए सो बतलाकर अच्छे तृण, शुद्ध जल आदि बातों से युक्त स्थानोंके निकट घर बनाकर रहने का प्रबंध करते ।

अनर्वाणो ह्येषां पन्था आदित्यानाम् । अदब्धाः सन्ति पायवः सुगेवृधः ॥ (ऋ. ८।१८।२)

इन आदित्यों का मार्ग (अन्-अर्वाणः) हिंसारहित है और इनके संरक्षण सुगमतापूर्वक बढनेवाले तथा शत्रुओं से न दबाये हुए हैं ।' आदित्यों की योग्यता का अच्छा परिचय इसमें मिलता है । आदित्यों के कार्य करने के मार्ग इस ढंगके हुआ करते कि यथा संभव हिंसा न हो और स्वयं ही अपनी आन्तरिक शक्ति से संरक्षण की आयोजनाएँ फलती फूलती रहें ।

अब अदितिके संबन्धमें क्या कहा है सो देखना चाहिए, क्योंकि इन आदित्यों को- अदिति के पुत्रों को उसी से प्रेरणा मिलती है ।

अदितिके गुण

अदितिर्न उरुष्यत्वदितिः शर्म यच्छतु । माता मित्रस्य रेवतोऽर्यम्णो वरुणस्य च ॥ ... (ऋ. ८।४७।९)

' धनाढ्य मित्र, अर्यमा एवं वरुणकी माता जो अदिति है वह हमारी रक्षा करे और सुख दे दे । '

पिपर्तु नो अदितिः राजपुत्रा अति द्वेषांस्यर्यमा सुगेभिः । बृहन्मित्रस्य वरुणस्य शर्मोप स्याम पुरुवीराः अरिष्टाः । (ऋ. २।२७।७)

' जिसके पुत्र विराजमान हैं ऐसी वह अदिति हमारा पालन करे, अर्यमा हमें सुगमतापूर्वक या सुखकर मार्गों से शत्रुओंके परे पहुँचा दे; मित्र एवं वरुण का दिया हुआ सुख सचमुच बडा प्रचंड है अतः हम अनेक वीरोंसे युक्त होकर बिना क्षति उठाये उसके समीप रहें । '

मही... मातरं सुव्रतानां ऋतस्य पत्नीमवसे हुवेम । तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् । (वा. यजु. २१।५; अथर्व. ७।६।२)

' हम अदिति को अपनी रक्षा का प्रबंध करनेके लिए बुलायें, जो महनीय, अच्छे व्रतधारी आदित्यों की माता, ऋत की पत्नी, अत्यधिक क्षत्रियोचित वीरता से युक्त, जीर्ण न होनेवाली, विशालता से पूर्ण, सुन्दर सुख देनेवाली एवं भलीभाँति आगे ले चलनेवाली है । '

आदितिर्नो दिवा... अदितिर्नक्तं... अदितिः पातु अंहसः सदावृधा। (ऋ. ८।१८।६)

' हमेशा बढनेवाली अदिति हमें दिन और रात पाप से बचाए । '

उत स्या नो दिवा... अदितिरूत्या गमत् । सा... मयस्करदप स्रिधः ॥ (ऋ. ८।१८।७)

' और वह अदिति दिन के समय संरक्षण की आयोजनाके साथ हमारे निकट चली आए और वह शत्रुओंको दूर हटाकर सुखमय वायुमण्डल का सृजन करे । '

आदित्यों की असाधारण योग्यता का परिचय होने के कारण वैदिक कवि इस प्रकार उनकी सराहना करते हैं—

इमा गिरः आदित्येभ्यो... सनात् राजभ्यो जुह्वा जुहोमि । शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नः तुविजातो वरुणो... (ऋ. २।२७।१)

' मैं सनातनकाल से विराजमान आदित्यों के लिए इन भाषणों का मानों हविर्भागसा अपनी ओरसे अर्पण करता हूँ, हमारी इन वक्तृताओंको ये आदित्यमंडलके सदस्य जैसे मित्र, वरुण, अर्यमा एवं भग सुन लें। '

इमं स्तोमं सक्रतवो मे अद्य ...जुषन्त।
आदित्यासः शुचयो धारपूता अवृजिना
अनवद्या अरिष्टाः। (ऋ. २।२७।२)

' आज मेरे इस स्तुतिमय भाषणका स्वीकार, कार्यशील आदित्य, जोकि विशुद्ध, पवित्र, पापरहित, निर्दोष और स्वस्थ है, कर लें। '

ऐसा प्रतीत होता है कि अदिति के पुत्र, आदित्य ऐसा नाम अबतक बतलाये हुए गुणों से युक्त कुछ चुने हुए देवोंको दिया जाता था जिनका सर्वोपरि कार्य केवलमात्र लोकरक्षा तथा लोक सेवा करना ही था। इस आदित्यमण्डल के सदस्य वेही हो सकते जो संपूर्णतया निर्दोष एवं पूर्णतया विकसित हों, जिन में किसी भी प्रकार की त्रुटि न पाई जाती हो, क्योंकि त्रुटि होनेसे वे अदिति अखण्डता, अदीनता के पुत्र कहलाने के अधिकारी नहीं हो सकते। यद्यपि एक स्थान में कहा है कि—

अशीतिभिस्तिसृभिः सामगेभिरादित्येभिः...।
(अथर्व. ३।१२।४)

जिससे ज्ञात होता है कि आदित्यों की संख्या ८०×३= २४० थी और इन्हें सामगान विदित था, तथापि इस आदित्य-मण्डल में प्रमुखतया मित्र, वरुण, अर्यमा, भग एवं सविता का स्थान था। क्योंकि अपने वैशिष्ट्यपूर्ण कार्यों से शायद इनकी ही अमिट छाप वैदिक कवियों के अन्तस्तलपर पडी हुई हो। आदित्यों के निश्चित कार्य को संभवतः मित्र, वरुण एवं अर्यमा ही अविकलभाव से संपूर्ण करने की क्षमता से युक्त हों अतः इन तीनों का उल्लेख आदित्यों के सूक्तों में बार बार पाया जाता है। जैसे कि निम्न मंत्रों से स्पष्ट होगा—

मित्रो नो अत्यंहतिं वरुणः पर्षदर्यमा।
आदित्यासो यथा विदुः॥ (ऋ. ८।६७।२)

' आदित्य जैसे जानते हैं वैसे ही कार्य करके हमें मित्र, वरुण तथा अर्यमा दुर्गति या पापके पार ले चलें। '

संरक्षणका कार्य

महि वो महतामव वरुण मित्रार्यमन्...।
(ऋ. ८।६७।४)

' हे वरुण ! मित्र ! अर्यमन् ! आप जैसे बडे आदित्यों का संरक्षण बडा है। '

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः।
दुराधर्षं वरुणस्य॥ (१०।१८५।१)

' तीनों अर्थात् मित्र, वरुण तथा अर्यमा का संरक्षण महान, दिव्य तथा शत्रुओंके अपराभवनीय हो जाए। '

अनेहो मित्रार्यमन् नृवद् वरुण शंस्यं।
त्रिवरूथं मरुतो यन्त नश्छर्दिः॥ (ऋ. ८।१८।२१)

' हे वीर मरुतो ! हे मित्र, वरुण तथा अर्यमन् ! हमें निष्पाप, नेताओंसे युक्त, प्रशंसनीय और तीन प्रकार के स्वीकरणीय धन से पूर्ण घर दे डाले। '

... मित्रमीमहे वरुणं स्वस्तये। (ऋ. ८।१८।२०)

' हम कल्याण के लिए मित्र तथा वरुणको चाहते हैं। '

महि वो महतामवो वरुण मित्र दाशुषे।
(ऋ. ८।४७।१)

' हे वरुण और मित्र ! दानीके लिए जो तुम बडे आदित्य रक्षा का प्रबंध कर डालते हो वह बडा है। '

वयं ते वो वरुण मित्रार्यमन्त्स्यामेदृतस्य रथ्यः।
(ऋ. ८।१९।३५)

' हे वरुण, मित्र तथा अर्यमन् ! हम अवश्य ही आप के ऋतको ले चलनेवाले हों। '

तत् सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा।
शर्म यच्छन्तु सप्रथो यदीमहे। ' (ऋ. ८।१८।३)

' वह विस्तारशील सुख जिसे हम चाहते हैं मित्र, वरुण, अर्यमा, सविता और भग हमें भली प्रकार से दे डालें। '

यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा।
सुवाति सविता भगः॥ (ऋ. ७।६६।४)

' आज जब कि सूर्य का उदय होनेपर (अनागाः) निष्पाप मित्र, अर्यमा, भग एवं सविता (सुवाति) कार्य निष्पन्न कर दिखाता है। '

...सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम्।
अर्यमणं रिशादसम्॥ (ऋ. ७।६६।७)

' सूर्योदय के पश्चात् मित्र, वरुण एवं हिंसकोंके वधकर्ता अर्यमा की सराहना करता हूँ। '

ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह।
इषं स्वश्च धीमहि॥ (ऋ. ७।६६।९)

'हे द्योतमान वरुण तथा हे मित्र ! हम विद्वानोंके साथ तेरे ही बनकर रहें तथा अन्न एवं तेजको पानेके उपाय सोचें।'

अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत। (ऋ. ७।६६।११)

'तीनों विराजमान वरुण, मित्र एवं अर्यमा को ऐसा क्षत्रियोचित बल मिला कि जो दूसरोंको पाना असंभव प्रतीत हुआ।'

ऊपर दिये हुए मन्त्रोंसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि आदित्यों के संगठित दल में मित्र, वरुण और अर्यमा का स्थान बडा ही ऊँचा था। हो सकता है कि आदित्यदल के कार्यकारी मंडल के सत्ताधारी सदस्य उक्त नाम धारण करते हों। वेद में इन तीनों आदित्य दल के प्रमुख सदस्यों के बारेमें कहा है कि—

इमे चेतारो अनृतस्य भूरेर्मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति। इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः॥ (ऋ. ७।६०।५)

'ये मित्र, अर्यमा एवं वरुण अदिति के (अदब्धाः शग्मासः) न दबे हुए शक्तिशाली पुत्र हैं और ये ऋत के (दुरोणे ववृधुः) घरमें पले हुए हैं तथा (भूरेः अनृतस्य चेतारः) बडे भारी असत्यको पहचाननेवाले हैं।' अर्थात् ये कभी मिथ्या बातों में फँस नहीं सकते और इनकी शिक्षादीक्षा ऋतके घरमें हुई है। इस प्रकार शिक्षित होकर ये आदित्यदलके संगठन कार्य में ऊँचे पदपर विराजमान होते हैं। इन के कार्य का स्वरूप बताया है कि ये--

...तिरश्चिदंहः सुपथा नयन्ति। (ऋ. ७।६०।६)

'अच्छे मार्ग से लोगोंको पाप के परे ले चलते हैं।'

...अचेतसं चिश्चितयन्ति दक्षैः।

...चिकित्वांसो अचेतसं नयन्ति॥ (ऋ.७।६०।६७)

'अच्छे उपायों से अज्ञानी को भी ज्ञानसम्पन्न बनाते हैं और चिकित्सक बुद्धिवाले होकर अनजान को ठीक मार्ग पर ले चलते हैं।'

आदित्योंके गुण

अब विचार करना चाहिए आदित्यों के लिये कौन से विशेषण प्रयुक्त हुए हैं जिन से ज्ञात होगा कि आदित्य दल में प्रवेश पाने के लिए योग्यता का मानदंड कितना ऊँचा रखा था।

१. **सक्रतवः** = कार्योंसे युक्त, कभी खाली हाथ या निठल्ले न बैठे हुए।

२. **शुचयः, धारपूताः** = विशुद्ध एवं जलधाराओंमें नहा धोकर साफसुथरे रहनेवाले।

३. **अ-वृजिनाः, अनवद्याः** = पापरहित, अनिन्द्य।

४. **अरिष्टाः, अदब्धासः** = अहिंसित, न दबे हुए।

५. **उरवः, गभीराः** = बृहदाकार, गंभीर मुखाकृतिवाले।

६. **अस्वप्नजाः, अनिमिषाः** = निद्रासुख का उपभोग न लेनेवाले और पलक न मारनेवाले। यह दूसरा विशेषण अथक परिश्रम करने की सूचना देता है।

७. **दीर्घाधियः** = विशाल बुद्धिवाले या महान् कार्यक्रम रखनेवाले।

८. **ऋणानि चयमानाः** = ऋणोंको बटोरनेवाले ताकि उऋण हो सकें।

९. **ऋजवे मर्त्याय उरुशंसाः** = सरल, निष्कपट आचरणवाले मानव को खूब उपदेश की बातें कहनेवाले।

१०. **राजभ्यः (आदित्येभ्यः) राजानः** = विराजमान आदित्यों के लिए, लोक सेवकों को जनता के मध्य विराजमान होने की चेष्टा करनी चाहिए।

११. **सु-दानवः** = अच्छे दानशूर। कृपणतासे कोसों दूर रहनेवाले।

१२. **यजत्राः** = पूजनीय।

१३. **रजिष्ठाः** = लोकोंके मध्य खूब संचार करनेवाले।

१४. **ये अंहः अतिपिप्रति** = जो पाप के परे ले जाते हैं, जनता को निष्पाप करनेका प्रयत्न करते हैं।

१५. **ये अदब्धस्य व्रतस्य ईशते** = जो न दबे हुए व्रतके अधिपति हैं।

१६. **ऋतावृधः, घोरासो अनृतद्विषः** = ऋत की वृद्धि करनेवाले और असत्य के भीषण विरोधी।

१७. **ऋतजाताः ऋतस्य दुरोणे ववृधुः** = ऋत से या ऋतके लिए उत्पन्न, ऋत के घर में पले हुए।

१८. **विश्व-वेदसः** = सब कुछ जाननेहारे।

१९. सु-महसः = बडे अच्छे तेजस्वी।
२०. प्र-चेतसः = प्रकृष्ट ज्ञानवाले।
२१. सुमृळीकाः = बहुत अच्छे ढंगसे सुख देनेवाले।
२२. हवनश्रुतः = जनता की पुकार सुननेवाले।
२३. अ-द्रुहः = द्वेष न करनेवाले।
२४ क्षितीनां मूर्धानः = मानवोंके प्रमुख।
२५. अद्भुत-एनसः = जिन्होंने पहले पापकृत्य किया ही न हो।

इन ऊपर दिये हुए विशेषणों से आदित्यदलके सदस्यों की योग्यतापर बहुत अच्छा प्रकाश पडता है। जो निरलस कार्यकर्ता, सत्यप्रेमी, उत्कृष्ट ज्ञानी, सेवातत्पर, निष्पाप, साफ सुथरे, दानशूर, विशालचेता और लोकरक्षक बननेके इच्छुक होते वही आदित्यदल में प्रवेश पा सकते थे और अदिति अर्थात् अदीनता, स्वतंत्रता, पूर्णता के पुत्र कहलानेके अधिकारी बन सकते थे।

मित्रका ऊंचा स्थान

इस आदित्यदल में मित्र का स्थान बहुत ही ऊँचा है, इसलिए वेदमें मित्र के बारे में क्या कहा है सो देखना चाहिए—

...मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत। (ऋ. ३।५९।१)

'मित्रके लिए घृतयुक्त हवनीय वस्तुका अर्पण करो।'

तस्मा एतत् पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविराजुहोत। (ऋ. ३।५९।५)

'उस अत्यन्त प्रशंसनीय मित्र के लिए यह सेवनीय हविर्भाग अग्नि में डाल दो।' इस भाँति मित्र का सुस्वागत करनेके पश्चात् कवि कहते हैं—

अनमीवास इळया मदन्तो... वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम। (ऋ. ३।५९।३)

'हम नीरोगी और अन्न मिलनेके कारण हर्षित होते हुए मित्र की प्रसन्न बुद्धि की छत्रछायामें रहें।'

अयं मित्रो नमस्यः ... राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट...
तस्य वयं सुमतौ... भद्रे सौमनसे स्याम।
(ऋ. ३।५९।४)

'यह मित्र विराजमान्, अच्छे क्षत्रियोचित बल से युक्त एवं नमन करनेयोग्य हो प्रकट हुआ है अतः हम उस की कल्याणकारक प्रसन्नताके तत्त्वावधान में रहें। अर्थात् कभी ऐसा न होने पाय कि मित्र को क्रोधित होना पडे।'

महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः। (ऋ. ३।५९।५)

'यह मित्र बडा भारी आदित्य है जो जनता को प्रेरित करता हुआ प्रशंसा करनेवाले को सुन्दर ढंगसे सुख देता है और जिस के समीप नमनपूर्वक बैठना चाहिए।'

मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो...।
(ऋ. ३।५९।१)

'मित्र लोगों को उपदेश की बातें कहता हुआ कार्यप्रवृत्त करता है।'

मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे...। (ऋ. ३।५९।१)

'मित्र टकटकी लगाकर कृषिकर्म में लगे लोगों को देखता है ताकि कहीं काम में भूल न होने पाय।'

मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम्। (ऋ. ३।५९।१)
...स देवान् विश्वान् बिभर्ति। (ऋ. ३।५९।८)

'मित्र द्युलोक एवं भूलोक की धारणा करता है और सभी देवों का भरणपोषण करता है।' अर्थात् समूचे विश्व में सुव्यवस्था हो ऐसी कोशिश करता है।

न हन्यते न जीयते त्वोतो, नैनं
अंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात्। (ऋ. ३।५९।२)

'हे मित्र! तू जिसकी रक्षा कर चुका है वह न मारा जाता है और नाहि जीता जाता है, इसे न समीप से न दूर से ही पाप व्याप्त कर पाता है।'

अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः।
अभि श्रवोभिः पृथिवीम्॥ (ऋ. ३।५९।७)

'जो मित्र विशाल होकर अपने महनीय तेज से द्युलोक को तथा अन्नोंसे भूमण्डलको व्याप्त कर चुका है।'

मित्रो... जनाय... इषः... अकः। (ऋ. ३।५९।९)

'मित्रने जनताके लिए अन्न बनाया है।'

इस प्रकार मित्र की योग्यता बडी है, परन्तु वह स्वयं अकेला ही प्रकट न होकर बहुधा वरुण के साथ मिलकर कार्य करता है। अतः वेद में दोनोंका संयुक्त उल्लेख पाया जाता है। जैसे—

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्...
...मित्रावरुणौ ऋतावृधौ ऋतस्पृशा...
कवी... मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया...
(ऋ. १।२।७-९)

'शुद्ध बलवाले मित्र और शत्रुविध्वंसक वरुण को बुलाता हूँ; मित्र एवं वरुण ऋत के संपर्क में रह उस की वृद्धि करनेवाले हैं; मित्र और वरुण विद्वान्, विशालता में उत्पन्न और विस्तृत स्थल में निवास करनेवाले हैं।'

मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये...
...यौ... ऋतस्य ज्योतिषस्पती। ता मित्रावरुणा हुवे। वरुणः प्राविता भुवन् मित्रो विश्वाभिरूतिभिः। करतां नः सुराधसः।
(ऋ. १।२३।४-६)

'हम मित्र और वरुण को सोम पीनेके लिए बुलाते हैं; जो ऋत एवं प्रकाशके अधिपति हैं, उन मित्र एवं वरुण को मैं बुलाता हूँ; वरुण उत्कृष्ट संरक्षक बने तथा सभी संरक्षणसाधनों से युक्त होकर मित्र भी रक्षणकर्ता हो और दोनों मिलकर हमें अच्छे धनिक बना दें।'

मित्र और वरुण के स्वागत का वर्णन वैदिक कवियोंने इस तरह किया है—

आ नो गन्तं रिशादसा वरुण मित्र... उपेमं चारुमध्वरम्। (ऋ. ५।७१।१)

'हे शत्रुविध्वंसक मित्र एवं वरुण! इस सुन्दर, हिंसारहित कार्य के समीप आने के लिए हमारे पास आओ।'

उप नः सुतमा गतं वरुण मित्र दाशुषः... सोमस्य पीतये। (ऋ. ५।७१।३)

'हे मित्र और वरुण! हमारे निचोडे हुए सोमके निकट आओ, ताकि दानीके सोमका पी जाना संभव हो।'

आ यातं मित्रावरुणा जुषाणावाहुतिं नरा। पातं सोममृतावृधा। (ऋ. ७।६६।१९)

'हे नेता एवं ऋत की वृद्धि करनेवाले मित्र और वरुण! हमारे दान का स्वीकार करते हुए तुम दोनों आओ तथा सोम पी जाओ।'

...आयातं...गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो... आ राजाना दिविस्पृशाऽस्मत्रा गन्तमुप नः इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्राः...।
(ऋ. १।१३७।१)

'हे विराजमान एवं द्युलोक के छूनेवाले मित्र एवं वरुण! आओ, हमारी ओर आओ; क्योंकि आपके लिए ये तेजस्वी सोम दुग्धमिश्रित बनाकर रखे हैं।'

अस्मत्रा गन्तमुप नोऽर्वाञ्चा सोमपीतये। अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः॥ (ऋ. १।१३७।३)

'हे मित्र तथा वरुण! सोम पीनेके लिए हमारी ओर आओ, क्योंकि यह सोम तुम्हारे पीने के लिए मनुष्यों से निचोडा गया है।'

इससे स्पष्ट है कि आदित्यों का स्वागत तथा सत्कार करने के लिए दुग्धमिश्रित सोम का रस दिया जाता था। अब देखना चाहिए कि वैदिक कवि मित्र एवं वरुण से किस तरह की प्रार्थना करते हैं, या उनके सम्मुख कौनसी माँग पेश करते हैं—

अभयं मित्रावरुणाविहास्तु नोऽर्चिषात्रिणो नुदतं प्रतीचः। मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम्॥
(अथर्व. ३।३२।३)

'हे मित्र और वरुण! हमारे लिए इधर निर्भयता रहे और अपने तेज से स्वार्थी लोगों को पराङ्मुख बनाकर दूर कर दो। ध्यानमें रहे कि वे किसी भी बतानेवाले ज्ञानी को और मानसम्मान को न पा सकें, अपितु आपसमें ही एक दूसरे की राह में रोडे अटकाते हुए मौत के मुँह में समाविष्ट हो जायँ।'

...मित्रावरुणा... प्रजावत् क्षत्रं मधुनेह पिन्वतम्। बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत्॥ (अथर्व. ६।९७।२)

'हे मित्र एवं वरुण! सन्तानयुक्त क्षत्रियोचित वीरताको तुम मधु से पुष्ट करो, बुराई को दूर से ही हटा दो और जो कुछ पाप किया हो, उसे हम से अलग कर दो।'

यो अद्य सेन्यो... उदीरते। युवं तं मित्रावरुणो अस्मद्यावयतं परि॥ (अथर्व. १।२०।२)

'आज जो कोई हत्यारा सेना साथ ले ऊपर उठ जाता हो, हे मित्र और वरुण! उसे तुम हम से दूर भगा दो।'

मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपती तौ मावताम्।
(अथर्व. ५।२४।५)

'वे दोनों मित्र और वरुण जो स्वामी हैं, वर्षा से मेरी रक्षा करें।'

... मित्रावरुणा धारयत्क्षिती ... युवो ... सख्यैरभिष्याम रक्षसः। (ऋ. १०।१३२।२)

'हे मानवोंके धारणकर्ता मित्र एवं वरुण ! तुम्हारी मित्रता मिलनेपर हम राक्षसों को पराभूत करेंगे।'

एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं ... अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीः । ...

(ऋ. ७।६५।५; ७।६४।५)

'हे मित्र एवं वरुण ! तुम्हारे लिए यह स्तोत्र तैयार किया है; तुम हमारे कर्मों को सुरक्षित रखो और बहुतों के धारणक्षम बातों को जागृत करो ।'

इयं... पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि । विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो... ।

(ऋ. ७।६०।१२; ७।६१।७)

'यज्ञों में, हे मित्र और वरुण ! तुम्हारे लिए यह पुरस्क्रिया कर डाली है; अतः सभी बहिड स्थानों को पार करके हमारी पुष्टि करो ।'

आ मां मित्रावरुणेह रक्षतं ... (ऋ. ७।५०।१)

... हुवे वां मित्रावरुणा सबाधः ।

(ऋ. ७।६१।६)

'हे मित्र तथा वरुण ! यहाँ मेरी रक्षा करो; बाधा से घिर जानेपर तुम्हें मैं पुकारता हूँ।'

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन । आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥ (ऋ. ७।६२।५)

'हे मित्र एवं वरुण ! अपने बाहुओं को खूब फैलाओ ताकि हम जीवित रहें और घृतसे हमारे मार्ग को सींच दो, युवकतुल्य तुम जनता में हमें विख्यात करो, मेरी इन पुकारोंको तुम सुन लेना ।'

राजाना... ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक् । इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वतं जीरदानू ॥ (ऋ. ७।६४।२)

'हे विराजमान मित्र एवं वरुण ! तुम ऋत के संरक्षक, क्षत्रिय, शीघ्रदानी और समुद्रपर प्रभुत्व रखनेवाले हो, इसलिए हमारे अभिमुख आओ और द्युलोक से हमें वृष्टि एवं अन्न प्रेरित करो।'

सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा । वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे ... ... (ऋ. ५।६३।२)

'हे भलीभाँति विराजमान तुम इस भुवनपर प्रभुत्व रखनेवाले मित्र और वरुण ! यज्ञमें स्वकीय शक्ति से सब कुछ देखनेवाले हो; तुम से हम अमरपन और धन तथा वृष्टि चाहते हैं।'

यत् बंहिष्ठं... सुदानू... अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा । तेन नो मित्रावरुणावविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम ॥ (ऋ. ५।६२।९)

'हे अच्छे दानशूर एवं विश्वके पालनकर्ता मित्र और वरुण ! जो कुछ भी छिद्ररहित (त्रुटिरहित, अखंड) और अत्यधिक सुख है, उससे हमारी रक्षा करो; ताकि हम धन का वितरण करते हुए जिगीषु बनें ।'

... मित्रावरुणा... दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम् । (ऋ. ५।६३।५)

'हे द्युलोक के सम्राट्तुल्य मित्र और वरुण ! हमें दूध एवं जलसे सींच दो अर्थात् हमारे यहाँ दुग्ध एवं जल की न्यूनता न हो ।'

सम्राजा या...मित्रश्चोभा वरुणश्च देवा देवेषु प्रशस्ता । ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ॥

(ऋ. ५।६८।२-३)

'जो ये सम्राट्तुल्य, दानी, देवतागण में प्रशंसित मित्र एवं वरुण हैं, वे हमें भूमंडल एवं द्युलोकस्थ महनीय धन दे डालें, क्योंकि देवताओं में तुम्हारा क्षत्रियोचित बल महान् है।'

नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु । सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु ... ॥

(ऋ. ७।६२।६)

'अब अर्यमाके साथ मित्र और वरुण हमें तथा बालबच्चोंको धन दे डालें और हमारे लिए सभी मार्ग सुन्दर एवं सुगम हों।'

मा हेळे भूम वरुणस्य ... मा मित्रस्य ... नृणाम् ।

(ऋ. ७।६२।४)

'हम लोग वरुण के तथा मानवोंके अत्यन्त प्यारे मित्र के भी द्वेष में न रहें' अर्थात् ऐसा कभी न होने पाय कि वे हमारा द्वेष करने लगें । इस से स्पष्ट है कि मित्रावरुणों का कितना भारी प्रभाव जनतापर पडा था ।

मित्रस्तन्नो वरुणो देवो...प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयन्तु । (ऋ. ७।६४।३)

' तो हमें मित्र एवं देवतारूपी वरुण अत्यन्त सुगम मार्गो से अधिकाधिक ले चलें । '

मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त शर्म तोकाय तनयाय गोपाः । मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत् कर्म ... यच्चयध्वे ॥ (ऋ ७।५२।२)

' संरक्षक मित्र एवं वरुण उस सुख को हमारी सन्तान के लिए देदें, हम आप के ही हैं, इसलिए दूसरों से उत्पन्न पाप का भार हमें न उठाना पडे और नाहि हम वह कार्य करें कि जिसे तुम नष्ट करना चाहो । '

यत् गोपा अवदत् अदितिः शर्म भद्रं मित्रो यच्छन्ति वरुणः । तस्मिन्ना तोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं... ॥ (ऋ. ७।६०।८)

' संरक्षक अदितिने जो कहा था कि मित्र एवं वरुण कल्याणकारक सुख देते हैं, उसीमें हम अपनी सन्तान रखते हुए ऐसा कर्म न करें कि जिससे देवोंका क्रोध प्रतति हो । '

ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितॄणाम् । मित्र साधयतं धियः ॥ (ऋ. ७।६६।३)

' हे विख्यात गृहरक्षक तथा शरीरसंरक्षक मित्र और वरुण ! हम स्तोताओं के कर्मो को या बुद्धियोंको सफलता दो । '

ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वामपो न नावा दुरिता तरेम । (ऋ. ७।६५।३)

' हे मित्रावरुणो ! तुम्हारे ऋतके मार्गसे हम बुराइयों को इस भाँति लाँघकर आगे बढें, जैसे नौकाके सहारे लोग जलोंको तैर जाते हैं । '

वयं मित्रस्यावसि स्याम सप्रथस्तमे ... ॥ (ऋ. ५।६५।५)

' हम अत्यन्त विस्तृत एवं चौडे मित्रके संरक्षणमें रहें । '

इन ऊपर दिये हुए मंत्रभागों से मित्र और वरुणके कार्योंका स्वरूप स्पष्ट हो जाता है । जनताकी सेवा वे कितनी लगनसे करते थे, सो सूर्यप्रकाशवत् सुस्पष्ट होता है । वेदमें अन्यत्र इनके बारेमें जो उल्लेख पाये जाते है उनसे भी इसी बात की पुष्टि होती है । जैसे—

यां मे धियं ... देवा अददात वरुण मित्र यूयं । तां पीपयत पयसेव धेनुं कुवित् गिरो अधि रथे वहाथ ॥ (ऋ. १०।६४।१२)

' हे द्योतमान मित्र एवं वरुण ! तुमने जो बुद्धि मुझे प्रदान की है, उसे तुम ऐसी पुष्ट करो जैसे कोई गायको अत्यन्त दुग्धवती बनाए अर्थात् बुद्धि यथेष्ट सफल हो । क्योंकि तुम अपने रथोंमें बहुतसी वक्तृताओं को ले चलते हो । ' इससे स्पष्ट होता है कि रथारोही होकर जहाँ जहाँ ये पहुँचते, उधर लोग इनके लिए भाषण किया करते थे । निःसन्देह इन भाषणोंमें मित्रावरुणकी योग्यताका यथोचित वर्णन रहता अतः वैदिक कवि उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे दोनों तथा अन्य देव भी उन्हे भली भाँति लाभ पहुंचायें । मित्र और वरुण तथा अन्य आदित्य लोकसेवामें अनवरत रूपसे लगे हैं, इसलिए वैदिक कवि कहते हैं—

आ नो बर्ही रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा । सीदन्तु मनुषो यथा ॥ (ऋ. १।२६।४)

आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् । (ऋ. १।४४।१३)

' शत्रुहिंसक तीन प्रमुख आदित्य मित्र, वरुण और अर्यमा हमारे बिछाए हुए दर्भासनपर अन्य मानवोंके तुल्य बैठें । प्रातःकाल ही अहिंसक कार्यमें उपस्थित रहनेके लिए जानेवाले मित्र एवं अर्यमा कुशासनपर बैठ जाएँ । '

वैदिक कवि अग्निसे कहते हैं कि—

त्वमादित्याँ आवह तान् ह्युश्मसि । अग्ने... (ऋ. १।९४।३)

' हे अग्ने । तू अदितिके पुत्रोंको इधर ले आ, क्योंकि हम उन्हें बहुत चाहते हैं । ' आदित्योंकी योग्यताके बारेमें कहा है कि—

ते हि पुत्रासो अदितेर्विदुर्द्वेषांसि योतवे । अंहोश्चिदुरुचक्रयोऽनेहसः ॥ (ऋ. ८।१८।५)

' वे तो अदितिके पुत्र निष्पाप और विशाल मात्रा में कार्य करनेवाले हैं और जानते हैं कि किस ढंगसे हमें पापसे दूर रखा जाय तथा द्वेष्टाओं को हमसे पृथक् किया जाय । '

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुः ... दधिरे दिवि क्षयम् । (ऋ. १०।६३।५)

' जो सम्राटतुल्य भली भाँति बढनेवाले आदित्य हैं वे यज्ञमें आचुके हैं तथा द्युलोकमें निवासस्थान बना चुके हैं । '

आदित्यों से जनताको कैसे लाभ पहुँचता था इस विषय में कहा है कि—

अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते... यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥ (ऋ. १०।६३।१३)

' जिस मानव को आदित्य अच्छी नीतियों से सारी बुराइयों के पार सुख के लिए ले चलते हैं, वह अखंडरूप से अहिंसित होता हुआ वृद्धिंगत होता है और संतानों द्वारा विशेष रूप से जन्म लेता है । '

इस कारण वैदिक कवि इन से प्रार्थना करते हैं कि—

त आदित्या अभयं शर्म यच्छत । सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥ (ऋ. १०।६३।७)

' ऐसे वे विख्यात आदित्यो ! तुम भयरहित सुख प्रदान करो और भलाई के लिए हमारे लिए सुन्दर मार्ग सुखपूर्वक गमन करने योग्य कर दो । '

त आदित्या आगता सर्वतातये... । (ऋ. १०।३५।११)

' ऐसे वे तुम आदित्यो ! सबके विस्तार या वृद्धिके लिए आओ । '

तन्नो देवा यच्छत सुप्रवाचनं छर्दिरादित्याः सुभरं नृपाय्यम् । (ऋ. १०।३५।१२)

' हे देवतारूपी आदित्यो ! तो हमें ऐसा घर दो कि जिसे नेताओं का संरक्षण प्राप्त हो, जो भलीभाँति भरण करता हो तथा अत्यन्त प्रशंसनीय हो । '

···स्वस्तये आदित्यासो भवन्तु नः । (ऋ. ५।५१।१२)

' हमारे कल्याण के लिए आदित्य प्रयत्नशील रहें । '

ऐसे विख्यात आदित्यों के दलमें प्रमुखतया विराजमान मित्र, वरुण एवं अर्यमा के संबंधमें निम्न मंत्र देखने योग्य हैं—

प्रीतये वरुणं मित्रं... कृण्वावसे नो अद्य । (ऋ. ६।२१।९)

' आज विशेष ढंग से संरक्षण हो इसलिए मित्र एवं वरुण को तैयार कर ले । '

ते नः सन्तु युजः सदा वरुणो मित्रो अर्यमा । वृधासश्च प्रचेतसः ॥ (ऋ. ८।८३।२)

' वे वर्धनशील तथा उत्कृष्ट ज्ञानवाले मित्रावरुण एवं अर्यमा हमेशा हमारे साथ रहनेवाले हों । '

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ (ऋ. १।९०।१)

शं नो मित्रः, शं वरुणः. शं नो भवत्वर्यमा... । (ऋ. १।९०।९)

' सरल एवं निष्कपट नीतिसे प्रेरित होकर जाननेवाला मित्र, वरुण तथा देवताओं से युक्त अर्यमा हमें ले चलें । '

' तीनों आदित्य हमारे लिए हितकारक बनें । '

आ नो...गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः । (ऋ. १।१८६।२)

' हमारे निकट तीनों देवतारूपी मित्रावरुण तथा अर्यमा मिल कर आ जायँ । '

वामं नो अस्त्वर्यमन् वामं वरुण शंस्यम् । वामं हि आवृणीमहे ॥ (ऋ. ८।८३।४)

' वे वरुण एवं अर्यमन् ! हमें प्रशंसनीय एवं सुन्दर धन मिल जाय; क्योंकि हम तो सुन्दर चीजको ही सर्वथा स्वीकार कर लेते हैं । '

ते हि श्रेष्ठवर्चसस्त उ नस्तिरो विश्वानि दुरिता नयन्ति । सुक्षत्रासो वरुणो...॥ (ऋ. ६।५१।१०)

' वे उत्तम क्षत्रियोचित बलसे पूर्ण मित्र एवं वरुण उच्च कोटि के तेजवाले हैं और निश्चय से हमें सारी बुराइयोंके पार ले चलते हैं । '

त आगमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो... । (ऋ. ६।४९।१)

' वे अच्छे क्षत्रिय मित्रावरुण इधर आ जायँ और हमारे कथन को सुन लें । '

इस भाँति, मित्र और वरुण जिन्हें आदित्य दल में सर्वोपरि स्थान मिल गया है अपनी तीव्र लगन एवं अदम्य उत्साहसे जनसेवा को इतने अच्छे ढंग से निभाते हैं कि वैदिक कवि प्रसन्नचेता होकर उनकी खूब सराहना करते हैं, देखिए—

इमां वां मित्रावरुणा सुवृक्तिमिषं न कृण्वे असुरा नवीयः ॥ (ऋ. ७।३६।२)

' हे बल तथा प्राण शक्ति देनेवाले मित्र और वरुण ! तुम दोनोंके लिए मैं इस नयी सुन्दर वक्तृता को बना देता हूँ, मानों जैसे कि कोई अन्न बनाता हो अर्थात् सोच विचार के उपरान्त परिश्रमपूर्वक तैयार कर देता हूँ । '

सविता देवताका परिचय

सविता के संबन्ध में ब्राह्मणग्रन्थों में निम्न निर्देश मिलते हैं जैसे—

सविता वै देवानां प्रसविता। (शत. १।१।२।१७)
(जै. उ. ३।१८।३)

सविता वै प्रसविता। (कौ. ६।१४)

'सविता सचमुच देवोंको उत्पन्न करनेवाला है, उत्पादक है।'

सविता वै प्रसवानामीशे। (कौ. १।३०; ७।१६)

सविता प्रसवानामीशे। (कौ. ५।२)

'सविता विशेष उत्पादनोंका प्रभु है।' इस से स्पष्ट हुआ कि उत्पादन या सृजनक्रिया से सविताका घनिष्ठ संबंध है। यही बात निम्न निर्देश में दिखाई देती है—

एताभिर्वै (रात्रिभिः) सविता सर्वस्य प्रसवमगच्छत्। (ताण्ड्य. २४।१५।२)

'इन्हीं से युक्त हो सविता सबके उत्पादन के निकट चला गया।'

सविता प्राजनयत्। (तै. ब्रा. १।६।२।२)

प्रजापतिः सविता भूत्वा प्रजा असृजत।
(तै. ब्रा. १।६।४।१)

'सविताने प्रकृष्टतया उत्पन्न किया, प्रजापतिने सविता बनकर प्रजाओं का सृजन किया।'

अब देखना चाहिए कि वेदमंत्रोंमें उत्पादक सविता के संबंधमें कौनसे निर्देश पाये जाते हैं—

दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापतिः ... विचक्षणः प्रथयन्नापृणन्नुर्वजीजनत् सविता सुम्नमुक्थ्यम्।
(ऋ. ४।५३।२)

'विश्वकी प्रजाओंका पालनकर्ता, द्युलोकका धारण करनेवाला और विशेष ढंगसे द्रष्टा सविता फैलानेका तथा भरनेका कार्य करता हुआ प्रशंसनीय एवं विशाल सुखका सृजन कर चुका।'

...प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे। (ऋ. ५।८१।२)

'मानवों तथा चौपायोंके लिए सविताने हितका निर्माण प्रकृष्ट रूपसे किया।'

उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इत्... (ऋ. ५।८१।५)

'हे सवितर्! तू अकेला ही उत्पादन कार्यपर प्रभुत्व रखता है।'

स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भगः।
तं भागं चित्रमीमहे॥ (ऋ. ५।८२।३)

'वह सेवनीय या ऐश्वर्यवान् सविता तो दानी पुरुषके लिए रत्नोंका सृजन करता है और हम उस अनूठे भागको पाना चाहते हैं।'

... देवः सविता दमूना ... आ दाशुषे सुवति भूरि वामम्। (ऋ. ६।७१।४)

'दान देनेकी इच्छा मनमें रखता हुआ द्योतमान सविता दानी पुरुषको देनेके लिए सुन्दर धन को प्रचुरमात्रा में बना देता है।'

सविता प्रसवानामधिपतिः स मावतु...।
(अथर्व. ५।२४।१)

'प्रकृष्ट उत्पादनोंका स्वामी जो सविता है वह मेरी रक्षा करे।'

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः। (ऋ. ६।७१।६)

'हे सवितर्! आज हमारे लिए सुन्दर धनका सृजन कर, कल के दिन भी और प्रतिदिन धनका निर्माण कर।'

अद्या नो देव सवितः प्रजावत् सावीः सौभगम्।
(५।८२।४)

'हे देवतारूपी सवितर्! आज तू हमारे लिये सन्तानयुक्त अच्छे ऐश्वर्यका सृजन कर।'

देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम्। (४।५४।२)

'हे सवितर्! पहले तो तू पूजनीय देवोंके लिए उत्कृष्ट तथा भजनीय धनका और अमरपनका निर्माण करता है।'

य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन।
प्र च सुवाति सविता॥ (ऋ. ५।८२।९)

'जो सविता इन सभी वस्तुओं को प्रकर्ष से उत्पन्न करता है और उत्पादित होनेपर श्लोक द्वारा चारों ओर सुनाता है।

उदु तिष्ठ सवितः श्रुध्यास्य... व्युर्वीं पृथ्वीं... सृजानः आ नृभ्यो मर्तभोजनं सुवानः ॥

(ऋ. ७।३८।२)

'हे सवितर्! तू उठ खडा रह, इस प्रार्थना को सुन ले और तू विशाल पृथ्वी को बनाता है तथा मानवों के लिए मनुष्योपभोग्य धन-संपदा को प्रेरित करता है।'

इन उपर्युक्त मन्त्रों से भी स्पष्ट होता है कि उत्पादन एवं प्रेरण सविता के प्रमुख कार्यों में गिने जाते थे। दोनों कार्य निःसन्देह महत्त्वपूर्ण हैं और वैदिक कवि सविता से निम्न प्रकार प्रार्थना करते हैं—

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे। तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥ (ऋ. १।३५।११)

'हे (देव सवितर्) द्योतमान! उत्पादक तथा प्रेरक सवितर्! अन्तरिक्ष में (ते ये पूर्व्यासः) तेरे जो पूर्वकाल से विद्यमान (अरेणवः सु कृताः) बिना धूलि के अर्थात् निर्मल एवं भली भाँति बनाये हुए (पन्थाः) मार्ग हैं (तेभिः) उनपर से, (सुगेभिः पथिभिः) जो कि सुगमतापूर्वक यात्रा करने योग्य हैं, आकर (अद्य नः रक्ष) आज हमारी रक्षा कर (अधि ब्रूहि च) और हमसे वार्तालाप कर, कुछ उपदेश की बातें हम से कह दे।'

अस्मभ्यं तद्दिवो अद्भ्यः पृथिव्यास्त्वया दत्तं काम्यं राधः आ गात्। शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवात्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे ॥

(ऋ. २।३८।११)

'हे (सवितर्) उत्पादक तथा प्रेरक देव! (त्वया दत्तं) तूने दिया हुआ (तत् काम्यं राधः) वह कमनीय धन (दिवः अद्भ्यः पृथिव्याः) द्युलोक से, जलों से तथा भूमंडलपर से (अस्मभ्यं आ गात्) हमारे लिए आ जाय, (यत्) जो धन, (स्तोतृभ्यः) स्तोताओं के लिए तथा (उरुशंसाय जरित्रे) विस्तारपूर्वक कहनेवाले प्रशंसक के लिए (शं आपये भवति) शान्तिदायक तथा आप्तवत् बन जाता है।'

बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः स्थातुरुभयस्य यो वशी। स नो देवः सविता शर्म यच्छत्वस्मे क्षयाय त्रिवरूथमंहसः ॥

(ऋ. ४।५३।६)

'(देवः सविता) दानी सविता (यः वशी) जो सब को वश में रखनेवाला, (जगतः स्थातुः) जंगम एवं स्थावर (उभयस्य जगतः निवेशनः) द्विविध संसार को ठीक बिठानेवाला, (प्रसवीता) प्रकर्ष से प्रेरित या उत्पन्न करनेवाला और (बृहत्सुम्नः) प्रचंड सुख या धन साथ रखनेवाला है (सः नः) वह हमें (शर्म यच्छतु) सुख दे डाले और (अस्मे) हमारे लिए (अंहसः क्षयाय) पाप का विनाश हो इसलिए (त्रिवरूथं) तीन विभागवाले घर का दान करे।' इससे विदित होता है कि सविता का कार्यक्षेत्र समूचे विश्व में फैला हुआ है।

आगन् देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं, दधातु नः सविता सुप्रजामिषम्। स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु, प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु ॥

(ऋ. ४।५३।७)

'देवतारूपी सविता (ऋतुभिः आगन्) विभिन्न मौसम में आ जाए और (क्षयं वर्धतु) हमारे निवासस्थल को बढाए तथा (सुप्रजां इषं) अच्छी सन्तान तथा अन्न (नः दधातु) हमें देदे; वह सविता (क्षपाभिः अहभिः च) रात-दिन (नः जिन्वतु) हमें संतुष्ट रखे और (अस्मे) हमारी ओर (प्रजावन्तं रयिं सं इन्वतु) सन्तानयुक्त धन भलीभाँति प्रेरित करे।'

अभूद्देवः सविता वन्द्यो नु नः... वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत् ॥ (ऋ. ४।५४।१)

'हमारे लिएं द्योतमान सविता वन्दनीय हुआ है, इसमें सन्देह नहीं; जो मानवों को रमणीय धन बाँटकर देता है वह जैसे इधर हमारे लिए उच्च कोटि का द्रव्य रखे ऐसा प्रबंध करो।'

गाव इव ग्रामं युयुधिरिवाश्वान् वाश्रेव वत्सं सुमना दुहाना। पतिरिव जायामभि नो न्येतु, धर्ता दिवः सविता विश्ववारः ॥ (ऋ. १०।१४९।४)

'जैसे गौएँ सायंकाल अपने ग्राम की ओर सहर्ष लौट आती है, योद्धा जिस तरह उत्सुकतापूर्वक घोडों के पास जा पहुँचता है, अच्छी मनवाली गौ दुहते समय रँभाती हुई अपने बछडे के निकट जिस प्रकार शीघ्र जाती है और पतिदेव अपनी पत्नी के निकट जैसे तत्परतया जाता है वैसे ही यह सविता, जो

कि द्युलोक का धारणकर्ता और सब लोगों के लिए वरणीय है, हमारे समीप अत्यन्त अधिक मात्रा में आ जाए।'

देवस्य वयं सवितुः सवीमनि, श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने। यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भूमनः॥ (ऋ. ६।७१।२)

(वयं) हम लोग देवतारूपी सविता के उच्चकोटि के (सवीमनि) उत्पादन-कार्य की तथा (वसुनः दावने) धन-वितरण-कार्य की छत्रछाया में रहें, हे सवितर्! जो तू अखिल मानव तथा चौपायों के यथेष्ट सृजन एवं प्रस्थापन-कार्य में लगा हुआ है।' इस मन्त्र में सविता के विशाल कार्यक्षेत्र की झलक मिलती है। वह केवल श्रेष्ठ ढंग के उत्पादन कार्य में ही लगा हो सो बात नहीं अपितु धनके विभाजन में भी उसका ध्यान बराबर लगा रहता है, क्योंकि यदि उत्कृष्ट उत्पादन की ओर ही ध्यान दिया जाय और उचित वितरण का कुछ भी ख्याल न रखा जाय तो बडी बिकट समस्याएँ उठ खडी होती हैं जैसे कि वर्तमान आर्थिक संगठन से स्पष्ट होता है। समूचे विश्व के उत्पादन तथा ठीक जगह बिठाने के कार्य को सविता सुचारुरूप से निभाता है।

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वं शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम्। हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत॥ (ऋ. ६।७१।३)

'हे सवितर्! तू आज (नः गयं) हमारे धन तथा गृहको (शिवेभिः अदब्धेभिः पायुभिः) हितकारक तथा न दबाये गये संरक्षणसाधनों से (परि पाहि) चतुर्दिक् सुरक्षित रख और तू (हिरण्यजिह्वः) हितरमणीय वाणी स कहनेवाला है इसलिए हम तेरे सामने यह माँग पेश करते हैं कि हमें (नव्यसे सुविताय) नई भलाई के लिए बचा दे एवं हमपर (अघ-शंसः) बुरी बातें कहनेवाला कोई भी (माकिः ईशत) कभी न शासन प्रस्थापित करे।'

अपि ष्टुतः सविता देवो अस्तु, यमा चित् विश्वे वसवो गृणन्ति। स नः स्तोमान् नमस्य श्चनो धाद्विश्वेभिः पातु पायुभिर्नि सूरीन्॥

(ऋ. ७।३८।३)

'सभी वसुतक जिसकी प्रशंसा करते हैं वह दानशील सविता भी प्रशंसित होवे, वह नमन करने योग्य है और हमारे स्तोत्रोंको सुनकर हमें अन्न दे डाले तथा सारी संरक्षण आयोजनाओं को साथ लेकर विद्वन्मण्डली की रक्षा कर ले।'

इससे स्पष्ट है कि उत्पादन, प्रेरण के अतिरिक्त संरक्षण कार्य करनेकी क्षमता भी पर्याप्तरूपसे सवितामें विद्यमान थी।

सूर्य और सविता

साधारणतया सूर्यको सविता कहा जाता है, अतः प्रश्न उठ खडा होता है कि क्या सूर्य और सविता अभिन्न हैं? ब्राह्मण-ग्रंथों के कुछ वचन इस अभिन्नता को मानते हैं ऐसा प्रतीत होता जैसे—

आदित्य एव सविता। गोपथ. १।३३; जै. उ. ४।२७।११

असावादित्यो देवः सविता। शतपथ. ६।३।१।१८

असौ वै सविता योऽसौ (सूर्यः) तपति।

कौ. ७।६; गोपथ. १।२०

एष वै सविता य एष (सूर्यः) तपति।

शतपथ. ३।२।३।१८; ४।४।१।३; ५।३।१।१७

इन वचनों से स्पष्ट होता है कि सविता वास्तवमें सूर्य ही है, क्योंकि विश्वभरमें प्रेरणा और उत्पादन-क्रिया का सजीव प्रतीक सूर्य है, यह निःसन्देह है। वेदमें भी कुछ ऐसे मंत्र पाये जाते हैं जिनसे सूर्य एवं सविताकी अभिन्नताकी सूचना मिलती है, जैसे—

अष्टौ व्यख्यत् ककुभः पृथिव्याः... हिरण्याक्षः सविता देव आगात्, दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि।

(ऋ. १।३५।८)

'हितरमणीय दृष्टिसे युक्त सविता द्योतमान होता हुआ, दानी पुरुष के लिए स्वीकरणीय रत्नों को धारण करता हुआ, पृथ्वीके आठों दिग्विभागों को प्रकाशित कर गया और आ पहुँचा है।'

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिः, उभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते, अपामीवां बाधते ..अभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति॥ (ऋ. १।३५।९)

'विशेष रीतिसे द्रष्टा और हाथ में सुवर्ण धारण करता हुआ भूलोक एवं द्युलोक दोनों के बीच चला आता है, रोगों को दूर भगाता है और आकर्षक तेजसे द्युलोक को व्याप्त करता है।'

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो...हिरण्ययेन सविता रथेना आ देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

(ऋ. १।३५।२)

' आकर्षक तेज से युक्त हो आनेवाला द्योतमान सविता सुवर्ण के बने अर्थात् तेजस्वी जगमगाते हुए रथपर से विश्व को निहारता हुआ चला आता है । '

**वि नाकमख्यत् सविता वरेण्योऽनु प्रयाण-
मुषसो वि राजति । (ऋ. ५।८१।२)**

' श्रेष्ठ सविताने आकाश को विशेष ढंग से प्रकाशित कर दिया है और वह उषाके प्रयाण के पश्चात् विराजमान हो उठता है । '

**नृचक्षा एष दिवो मध्य आस्ते, आपप्रिवान्
रोदसी अन्तरिक्षम् । (ऋ. १०।१३९।२)**

' द्युलोक, भूलोक तथा अन्तरिक्ष पूर्ण करता हुआ यह मानवोंका निरीक्षण करनेवाला आकाश के मध्य बैठे रहता है । '

**सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात् सविता ज्योति-
रुदयाँ अजस्रम् । (ऋ. १०।१३९।१)**

' सूर्य की रश्मिवाला तथा हरण करने की क्षमता से युक्त सविता सदैव प्रकाशपुंज को ऊपर उठाता है । '

**सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता
द्यामदृंहत् । (ऋ. १०।१४९।१)**

' सविताने भूमि को यंत्रोंद्वारा स्थिर किया है और निरालंब से दिखाई देनेवाले स्थान में द्युलोक को स्थायी बनाया है । '

**आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा... प्र बाहू
अस्राक् सविता सवीमनि निवेशयन् प्रसुव-
न्नक्तुभिर्जगत् ॥ (ऋ. ४।५३।३)**

' द्युलोकस्थ तथा भूमंडलस्थ लोकोंको अपने तेज से व्याप्त कर चुका और जगत् को दिन और रात के समय प्रेरित तथा अपने स्थान पर बिठाकर उत्पादन कार्यके लिए सविताने अपने बाहुओं को खूब आगे बढाया है । ' सूर्य का सवितृत्व अत्यन्त स्पष्ट है ।

संरक्षण-कार्य करने के लिए सविता को निमंत्रण भेजने के निर्देश देखने योग्य हैं ।

**... ह्वयामि देवं सवितारमूतये । (ऋ. १।३५।१)
हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुपह्वये ।
(ऋ. १।२२।५)**

**विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः ।
सवितारं नृचक्षसम् ॥ (ऋ. १।२२।७)**

' संरक्षण हो इसलिए मैं देवतारूपी सविता को, जो हाथमें सुवर्ण धारण करता है, बुलाता हूँ; मानवों के द्रष्टा और अनूठे धन का विभजन करनेवाले सविता को हम बुलाते हैं । ' इस प्रकार भक्तोंके दिये हुए निमंत्रण को पाकर सविता रथपर चढकर यात्रा करने लगता है, जैसे—

**हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदेवो याति भुवनानि
पश्यन् । ... बृहन्तं आस्थाद्रथं सविता चित्र-
भानुः । (ऋ. १।३५।२-४)**

' देव सविता भुवनों को देखता हुआ सुनाहले रथपरसे चला आता है; विचित्र किरणोंवाला याने तेजस्वी सविता बडे भारी रथपर चढ गया । '

इस भाँति, आदित्यों के महनीय कार्यका वर्णन वेदमें किया है । पाठक भी आदित्यों के मंत्र एवं सूक्त पढलें और मनन करें, ऐसी विनन्ति है ।



दैवत–संहिता ।

(ऋग्यजुःसामाथर्वणां संहितानां सर्वान् मन्त्रान् दैवतानुसारेण संगृह्य निर्मिता ।)

९ अदितिः, आदित्याश्च ।

(१) अदितिः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।८९।१०)

(१)× गोतमो राहूगणः । त्रिष्टुप् ।

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्ष मदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् १०

॥ २ ॥ (ऋ० ८।१८।४-७)

(२-५) इरिम्बिठिः काण्वः । उष्णिक् ।

देवेभिर्देव्यदिते ऽरिष्टभर्मन्ना गहि । स्मत् सूरिभिः पुरुप्रिये सुशर्मभिः ४
ते हि पुत्रासो अदिते विदुर्द्वेषांसि योतवे ।
अंहोश्चिदुरुचक्रयोऽनेहसः ५
अदितिर्नो दिवा पशु मदितिर्नक्तमद्वयाः । अदितिः पात्वंहसः सदावृधा ६
उत स्या नो दिवा मति रदितिरूत्या गमत् । सा शंताति मयस्करदप स्रिधः ७ ५

॥ ३ ॥ (ऋ० ८।६७।१०-१२)

(६-८) मत्स्यः साम्मदः, मैत्रावरुणिर्मान्यः बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः । गायत्री ।

उत त्वामदिते म ह्यहं देव्युप ब्रुवे । सुमृळीकामभिष्टये १०
पर्षि दीने गभीर आँ उग्रपुत्रे जिघांसतः । माकिस्तोकस्य नो रिषत् ११
अनेहो न उरुव्रज उरूचि वि प्रसर्तवे । कृधि तोकाय जीवसे १२ ८

॥ ४ ॥ (९-१५) (वा० य० ११।५६-५७,५९)

सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा । सा तुभ्यमदिते मह्योखां दधातु हस्तयोः ६६ ९

× वा० य० २५,२३ । अथर्व० ७।६।१ ।

उखां कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया ।
माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं बिभर्त्तु गर्भ आ । मखस्य शिरोऽसि ५७ १०
अदित्यै रास्नास्यदितिष्टे बिलं गृभ्णातु ।
कृत्वाय सा महीमुखां मृन्मयीं योनिमग्नये ।
पुत्रेभ्यः प्रायच्छददितिः श्रपयानिति ५९ ११

॥ ५ ॥ (वा० य० २१।५-७)×

महीमू षु मातरꣳ सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम ।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम् ५
सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावꣳ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ६
सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीमनागसम् । शतारित्राꣳ स्वस्तये ७ १४

॥ ६ ॥ (वा० य० २९।४) *

स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम् ।
देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु ४ १५

॥ ७ ॥ (अथर्व० ७।६।४)+

(१६-१७) अथर्वा । विराड् जगती ।

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे ।
यस्या उपस्थ उर्वन्तरिक्षं सा नः शर्म त्रिवरूथं नि यच्छात् ४ १६

॥ ८ ॥ (अथर्व० ७।७।१) आर्षी जगती ।

दितेः पुत्राणामदितेरकारिषमव देवानां बृहतामनर्मणाम् ।
तेषां हि धाम गभिषक् समुद्रियं नैनान् नमसा परो अस्ति कश्चन १ १७

अदिति-सहचारी देवगणः ।

(१) सोमः, अदितिः ।

॥ ९ ॥ (अथर्व० ६।७।१-२) [दै० सोमः ११५१-५२ मन्त्रौ द्रष्टव्यौ]

× अथर्व० ७।६।२-३; * दै० [अग्निः] ११०९ ।
+ वा० य० ९,५;१८,३० ।

(२) आदित्याः ।

॥ १० ॥ (ऋ० १।४१।४-६)

(१८-२०) कण्वो घौरः । गायत्री ।

सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावखादो अस्ति वः ४
यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा । प्र वः स धीतये नशत् ५
स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्मना । अच्छा गच्छत्यस्तृतः ६ २०

॥ ११ ॥ (ऋ० २।२७।१-१७)

(२१-३७) कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । त्रिष्टुप् ।

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद् राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।
शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः १
इमं स्तोमं सक्रतवो मे अद्य मित्रो अर्यमा वरुणो जुषन्त ।
आदित्यासः शुचयो धारपूता अवृजिना अनवद्या अरिष्टाः २
त आदित्यास उरवो गभीरा अदब्धासो दिप्सन्तो भूर्यक्षाः ।
अन्तः पश्यन्ति वृजिनोत साधु सर्वं राजभ्यः परमा चिदन्ति ३
धारयन्त आदित्यासो जगत् स्था देवा विश्वस्य भुवनस्य गोपाः ।
दीर्घाधियो रक्षमाणा असुर्यमृतावानश्चयमाना ऋणानि ४
विद्यामादित्या अवसो वो अस्य यदर्यमन् भय आ चिन्मयोभु ।
युष्माकं मित्रावरुणा प्रणीतौ परि श्वभ्रेव दुरितानि वृज्याम् ५ २५
सुगो हि वो अर्यमन् मित्र पन्था अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति ।
तेनादित्या अधि वोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म ६
पिपर्तु नो अदिती राजपुत्रा ऽति द्वेषांस्यर्यमा सुगेभिः ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य शर्मोप स्याम पुरुवीरा अरिष्टाः ७
तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीँरुत द्यून् त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम् ।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु ८
त्री रोचना दिव्या धारयन्त हिरण्ययाः शुचयो धारपूताः ।
अस्वप्नजो अनिमिषा अदब्धा उरुशंसा ऋजवे मर्त्याय ९
त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः ।
शतं नो रास्व शरदो विचक्षे ऽश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा १०

न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।
पाक्या चिद् वसवो धीर्या चिद् युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ११
यो राजभ्य ऋतनिभ्यो ददाश यं वर्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः ।
स रेवान् याति प्रथमो रथेन वसुदावा विदथेषु प्रशस्तः १२
शुचिरपः सूयवसा अदब्ध उप क्षेति वृद्धवयाः सुवीरः ।
नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद् य आदित्यानां भवति प्रणीतौ १३
अदिते मित्र वरुणोत मृळ यद् वो वयं चकृमा कच्चिदागः ।
उर्वश्यामभयं ज्योतिरिन्द्र मा नो दीर्घा अभि नशन् तमिस्राः १४
उभे अस्मै पीपयतः समीची दिवो वृष्टिं सुभगो नाम पुष्यन् ।
उभा क्षयावाजयन् याति पृत्सू—भावर्धौ भवतः साधू अस्मै १५ ३५
या वो माया अभिद्रुहे यजत्राः पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ताः ।
अश्वीव ताँ अति येषं रथेना—रिष्टा उरावा शर्मन्त्स्याम १६
माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदान्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद् वदेम विदथे सुवीराः १७ ३७

॥ १२ ॥ (ऋ० ७।५१।१-३)
(३८-५३) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शंतमेन ।
अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः १
आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः ।
अस्माकं सन्तु भुवनस्य गोपाः पिबन्तु सोममवसे नो अद्य २
आदित्या विश्वे मरुतश्च विश्वे देवाश्च विश्व ऋभवश्च विश्वे ।
इन्द्रो अग्निरश्विना तुष्टुवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३ ४०

॥ १३ ॥ (ऋ० ७।५२।१-३)

आदित्यासो अदितयः स्याम पूर्देवत्रा वसवो मर्त्यत्रा ।
सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम द्यावापृथिवी भवन्तः १
मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त शर्म तोकाय तनयाय गोपाः ।
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत् कर्म वसवो यच्चयध्वे २ ४१

तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त रत्नं देवस्य सवितुरियानाः ।
पिता च तन्नो महान् यजत्रो विश्वे देवाः समनसो जुषन्त ३ ४३

॥ १४ ॥ (ऋ० ७।६६।४-१३)

गायत्री, १०-१३ प्रगाथः = (समा बृहती+विषमा सतोबृहती)

यदद्य सूर उदिते ऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ४
सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः । ये नो अंहोऽतिपिप्रति ५ ४५
उत स्वराजो अदिति रदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ६
प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् । अर्यमणं रिशादसम् ७
राया हिरण्यया मति रियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये ८
ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इषं स्वश्च धीमहि ९
बहवः सूरचक्षसो ऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभि र्विश्वानि परिभूतिभिः १० ५०
वि ये दधुः शरदं मासमादह र्यज्ञमक्तुं चादृचम् ।
अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत ११
तद् वो अद्य मनामहे सूक्तैः सूर उदिते ।
यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्यः १२
ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः ।
तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नरः स्याम ये च सूरयः १३ ५३

॥ १५ ॥ (ऋ० ८।१८।१-३,१०-२२)

(५४-६९) इरिम्बिठिः काण्वः । उष्णिक् ।

इदं ह नूनमेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः । आदित्यानामपूर्व्यं सवीमनि १
अनर्वाणो ह्येषां पन्था आदित्यानाम् । अदब्धाः सन्ति पायवः सुगेवृधः २ ५५
तत् सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा । शर्म यच्छन्तु सप्रथो यदीमहे ३
अपामीवामप स्रिध मप सेधत दुर्मतिम् । आदित्यासो युयोतना नो अंहसः १०
युयोता शरुमस्मदाँ आदित्यास उतामतिम् । ऋधग् द्वेषः कृणुत विश्ववेदसः ११
तत् सु नः शर्म यच्छता ऽऽदित्या यन्मुमोचति । एनस्वन्तं चिदेनसः सुदानवः १२
यो नः कश्चिद् रिरिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यः । स्वैः ष एवै रिरिषीष्ट युर्जनः १३
समित् तमघमश्नवद् दुःशंसं मर्त्यं रिपुम् । यो अस्मत्रा दुर्हणावाँ उप द्वयुः १४ ६१

पाकत्रा स्थन देवा हृत्सु जानीथ मर्त्यम् । उप द्वयुं चाद्वयुं च वसवः १५
आ शर्म पर्वताना—मोतापां वृणीमहे । द्यावाक्षामारे अस्मद् रपस्कृतम् १६
ते नो भद्रेण शर्मणा युष्माकं नावा वसवः । अति विश्वानि दुरिता पिपर्तन १७
तुचे तनाय तत् सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे । आदित्यासः सुमहसः कृणोतन १८ ६५
यज्ञो हीळो वो अन्तर आदित्या अस्ति मृळत ।
युष्मे इद् वो अपि ष्मसि सजात्ये १९
बृहद् वरूथं मरुतां देवं त्रातारमश्विना । मित्रमीमहे वरुणं स्वस्तये २०
अनेहो मित्रार्यमन् नृवद् वरुण शंस्यम् । त्रिवरूथं मरुतो यन्त नश्छर्दिः २१
ये चिद्धि मृत्युबन्धव आदित्या मनवः स्मसि ।
प्र सू न आयुर्जीवसे तिरेतन २२ ६६

॥ १६ ॥ (ऋ० ८।१९।३४-३५)
(७०-७१) सोभरिः काण्वः । ३४ उष्णिक्, ३५ सतोबृहती ।

यमादित्यासो अद्रुहः पारं नयथ मर्त्यम् । मघोनां विश्वेषां सुदानवः ३४ ७०
यूयं राजानः कं चिच्चर्षणीसहः क्षयन्तं मानुषाँ अनु ।
वयं ते वो वरुण मित्रार्यम—न्त्स्यामेदृतस्य रथ्यः ३५ ७१

॥ १७ ॥ (ऋ० ८।४७।१-१३]
(७२-८४) त्रित आप्त्यः । महापङ्क्तिः ।

महि वो महतामवो वरुण मित्र दाशुषे ।
यमादित्या अभि द्रुहो रक्षथा नेमघं नश—दनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १
विदा देवा अघाना—मादित्यासो अपाकृतिम् ।
पक्षा वयो यथोपरि व्य१स्मे शर्म यच्छता—नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः २
व्य१स्मे अधि शर्म तत् पक्षा वयो न यन्तन ।
विश्वानि विश्ववेदसो वरूथ्या मनामहे ऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ३
यस्मा अरासत क्षयं जीवातुं च प्रचेतसः ।
मनोर्विश्वस्य घेदिम आदित्या राय ईशते ऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ४ ७५
परि णो वृणजन्नघा दुर्गाणि रथ्यो यथा ।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्म—ण्यादित्यानामुतावस्य—नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ५ ७६

परिह्वृतेदना जनो युष्मादत्तस्य वायति ।
देवा अदभ्रमाश वो यमादित्या अहेतना—नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ६
न तं तिग्मं चन त्यजो न द्रासदभि तं गुरु ।
यस्मा उ शर्म सप्रथ आदित्यासो अराध्व—मनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ७
युष्मे देवा अपि ष्मसि युध्यन्त इव वर्मसु ।
यूयं महो न एनसो यूयमर्भादुरुष्यता—नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ८
अदितिर्न उरुष्यत्व—दितिः शर्म यच्छतु ।
माता मित्रस्य रेवतो ऽर्यम्णो वरुणस्य चा—नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ९ ८०
यद् देवाः शर्म शरणं यद् भद्रं यदनातुरम् ।
त्रिधातु यद् वरूथ्यं१ तदस्मासु वि यन्तना—नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १०
आदित्या अव हि ख्यता—धि कूलादिव स्पशः ।
सुतीर्थमर्वतो यथा—नु नो नेषथा सुग—मनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ११
नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत ।
गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यते ऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १२
यदाविर्यदपीच्यं१ देवासो अस्ति दुष्कृतम् ।
त्रिते तद् विश्वमाप्त्य आरे अस्मद् दधातना—नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १३ ८४

॥ १८ ॥ (ऋ० ८।६७।१-९,१३-२१)

(८५-१०१) मत्स्यः साम्मदः, मैत्रावरुणिर्मान्यः, बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः । गायत्री ।

त्यान् नु क्षत्रियाँ अव आदित्यान् याचिषामहे । सुमृळीकाँ अभिष्टये १ ८५
मित्रो नो अत्यंहतिं वरुणः पर्षदर्यमा । आदित्यासो यथा विदुः २
तेषां हि चित्रमुक्थ्यं१ वरूथमस्ति दाशुषे । आदित्यानामरंकृते ३
महि वो महतामवो वरुण मित्रार्यमन् । अवांस्या वृणीमहे ४
जीवान् नो अभि धेतना—ऽऽदित्यासः पुरा हथात् । कद्ध स्थ हवनश्रुतः ५
यद् वः श्रान्ताय सुन्वते वरूथमस्ति यच्छर्दिः । तेना नो अधि वोचत ६ ९०
अस्ति देवा अंहोरुर्व—स्ति रत्नमनागसः । आदित्या अद्भुतैनसः ७
मा नः सेतुः सिषेदयं महे वृणक्तु नस्परि । इन्द्र इद्धि श्रुतो वशी ८
मा नो मृचा रिपूणां वृजिनानामविष्यवः । देवा अभि प्र मृक्षत ९
ये मूर्धानः क्षितीना—मदब्धासः स्वयशसः । व्रता रक्षन्ते अद्रुहः १३ ९४

ते न आस्नो वृकाणा—मादित्यासो मुमोचत । स्तेनं बद्धमिवादिते १४ ९५
अपो षु ण इयं शरु—रादित्या अप दुर्मतिः । अस्मदेत्वजघ्नुषी १५
शश्वद्धि वः सुदानव आदित्या ऊतिभिर्वयम् । पुरा नूनं बुभुज्महे १६
शश्वन्तं हि प्रचेतसः प्रतियन्तं चिदेनसः । देवाः कृणुथ जीवसे १७
तत् सु नो नव्यं सन्यस आदित्या यन्मुमोचति । बन्धाद् बद्धमिवादिते १८
नास्माकमस्ति तत् तर आदित्यासो अतिष्कदे । यूयमस्मभ्यं मृळत १९ १००
मा नो हेतिर्विवस्वत आदित्याः कृत्रिमा शरुः । पुरा नु जरसो वधीत् २०
वि षु द्वेषो व्यंहति—मादित्यासो वि संहितम् । विष्वग् वि वृहता रपः २१ १०१

॥ १९ ॥ (ऋ० ८।१०१।६)

(१०२) जमदग्निर्भार्गवः। सतोबृहती।

ते हिन्विरे अरुणं जेन्यं वस्वे—कं पुत्रं तिसृणाम् ।
ते धामान्यमृता मर्त्यानां—मदब्धा अभि चक्षते ६ १०२

॥ २० ॥ (ऋ० १०।१८५।१-३)

(१०४-१०६) सत्यधृतिर्वारुणिः। आदित्यः (स्वस्त्ययनम्)। गायत्री।

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य १
नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु । ईशे रिपुरघशंसः २ १०५
यस्मै पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ३ १०६

॥ २१ ॥ (१०७-११०) (वा० य० ८।१-५)

उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा ।
विष्ण उरुगायैष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन् १
कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यत आदित्येभ्यस्त्वा २
कदा चन प्रयुच्छस्युभे निपासि जन्मनी ।
तुरीयादित्य सवनं त इन्द्रियमातस्थावमृतं दिव्यादित्येभ्यस्त्वा ३
यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासदादित्येभ्यस्त्वा ४ ११०
विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व ५ १११

॥ २२ ॥ (वा० य० १३।३,५)

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ३ ११२

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ५ ११३

॥ २३ ॥ (वा० य० १७।५९-६०)

विमान एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
स विश्वाचीरभिचष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ५९
उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा विचक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ६० ११५

॥ २४ ॥ (वा० य० २३।५;३३।१७)×

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ५
अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टा विदधद् रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे १७ ११७

॥ २५ ॥ (वा० य० ३३।८१-८३)

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ८१
यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ८२
अयꣳ सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ८३ १२०

॥ २६ ॥ (अथर्व० २।३२।१-६) [दै० (आयुर्वेद०) १२५ सूक्तं द्रष्टव्यम् ।]
॥ २७ ॥ (अथर्व० १६।३।१-६)

(१२१-१६३) ब्रह्मा । १ आसुरी गायत्री; २-३ आर्च्यनुष्टुप्; ४ प्राजापत्या त्रिष्टुप्; ५ साम्न्युष्णिक्; ६ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप् ।

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् १
रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां मूर्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम् २
उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां धर्ता च मा धरुणश्च मा हासिष्टाम् ३
विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टामार्द्रदानुश्च मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम् ४ १२४

× वा० य० २३।५ = दै० [इन्द्रः] २४; अथर्व० २०,२६,४;४७,१०;६९,९; साम० १४६८

२ दै. [अदितिः]

बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ५ १२५
असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा ६ १२६

॥ १८ ॥ (अथर्व० १६।४।१-७)

१,३ साम्न्यनुष्टुप्; २ साम्न्युष्णिक्; ४ त्रिपदाऽनुष्टुप्; ५ आसुरी गायत्री; ६ आर्च्युष्णिक्; ७ त्रिपदा विराड्गर्भाऽनुष्टुप्।

नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् १
स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा २
मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ३
सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ४ १३०
प्राणापानौ मा मां हासिष्टं मा जने प्र मेषि ५
स्वस्त्यद्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय ६
शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ७ १३१

॥ १९ ॥ (अथर्व० १७।१।१-३०)

१ जगती, १-८ त्र्यवसाना, १-३ अतिजगती; ६-७,१९ अत्यष्टिः, ८,११, १६ अतिधृतिः; ९ पञ्चपदा शक्वरी; १०-१३,१६,१८-१९,२४ त्र्यवसाना; १० अष्टपदा धृतिः; १२ कृतिः; १३ प्रकृतिः; १४-१५ पञ्चपदा शक्वरी; १७ पञ्चपदा विराडतिशक्वरी; १८ भुरिगष्टिः; २४ विराडत्यष्टिः; १-५ षट्पदा; ११-१३,१६,१८-१९,२४ सप्तपदा; २० ककुप्; २१ चतुष्पदा उपरिष्टाद्बृहती; २२ याजुषी अनुष्टुप्; २३ निचृद्बृहती (२२-२३ द्विपदा); २५-२६ अनुष्टुप्; २७,३० जगती; २८-२९ त्रिष्टुप्।

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान् भूयासम् १
विषासहिं०। सहमानं०। ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम् २ १३५
विषासहिं०। सहमानं०। ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम् ३
विषासहिं०। सहमानं०। ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम् ४
विषासहिं०। सहमानं०। ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम् ५
उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि।
द्विषंश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ६ १३९

उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि ।
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो० । त्वं नः० ७ १४०
मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्वन्तर्ये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र ।
हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो० । त्वं नः० ८
त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुभिस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० ९
त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव ।
आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा स्वस्तये तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १०
त्वमिन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहूतस्त्वमिन्द्र ।
त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो० । त्वं नः० ११

अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानमन्तरिक्षे ।
अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि षंछर्म यच्छ तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १२ १४५
या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि ।
ययेन्द्र तन्वान्तरिक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वा शर्म यच्छ तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १३
त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्रं नि षेदुर्ऋषयो नाधमानास्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १४
त्वं तृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदं तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १५
त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं शोचिषा नभसी वि भासि ।
त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि विद्वांस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १६

पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयार्वाङशस्तिमेषि सुदिने बाधमानस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १७ १५०
त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः ।
तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १८
असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम् ।
भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १९
शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि । स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् २०
रुचिरसि रोचोऽसि । स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन
च रुचिषीय २१

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः । विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः २२

बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ५ १२५
असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा ६ १२६

॥ २८ ॥ (अथर्व० १६।४।१-७)

१,३ साम्न्यनुष्टुप्; २ साम्न्युष्णिक्; ४ त्रिपदाऽनुष्टुप्; ५ आसुरी गायत्री; ६ आर्च्युष्णिक्; ७ त्रिपदा विराड्गर्भाऽनुष्टुप्।

नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् १
स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा २
मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ३
सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ४ १३०
प्राणापानौ मा मां हासिष्टं मा जने प्र मेषि ५
स्वस्त्यद्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय ६
शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ७ १३१

॥ २९ ॥ (अथर्व० १७।१।१-३०)

१ जगती, १-८ त्र्यवसाना, १-३ अतिजगती; ६-७,१९ अत्यष्टिः, ८,११, १६ अतिधृतिः; ९ पञ्चपदा शक्वरी; १०-१३,१६,१८-१९,२४ त्र्यवसाना; १० अष्टपदा धृतिः; १२ कृतिः; १३ प्रकृतिः; १४-१५ पञ्चपदा शक्वरी; १७ पञ्चपदा विराडतिशक्वरी; १८ भुरिगष्टिः; २४ विराडत्यष्टिः; १-५ षट्पदा; ११-१३,१६,१८-१९,२४ सप्तपदा; २० ककुप्; २१ चतुष्पदा उपरिष्टाद्बृहती; २२ याजुषी अनुष्टुप्; २३ निचृद्बृहती (२२-२३ द्विपदा); २५-२६ अनुष्टुप्; २७,३० जगती; २८-२९ त्रिष्टुप्।

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान् भूयासम् १
विषासहिं० । सहमानं० । ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम् २ १३५
विषासहिं० । सहमानं० । ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम् ३
विषासहिं० । सहमानं० । ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम् ४
विषासहिं० । सहमानं० । ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम् ५
उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि ।
द्विषंश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ६ १३९

उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि ।
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो० । त्वं नः० ७ १४०
मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्व१न्तर्ये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र ।
हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो० । त्वं नः० ८
त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुभिस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० ९
त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव ।
आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा स्वस्तये तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १०
त्वमिन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहूतस्त्वमिन्द्र ।
त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो० । त्वं नः० ११

अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानमन्तरिक्षे ।
अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि षंछर्म यच्छ तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १२ १४५
या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि ।
ययेन्द्र तन्वा३न्तरिक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वा३ शर्म यच्छ तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १३
त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्रं नि षेदुरृषयो नाधमानास्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १४
त्वं तृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदं तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १५
त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं शोचिषा नभसी वि भासि ।
त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि विद्वांस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १६

पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयार्वाङशस्तिमेषि सुदिने बाधमानस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १७ १५०
त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः ।
तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १८
असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम् ।
भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १९
शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि । स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् २०
रुचिरसि रोचोऽसि । स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन
च रुचिषीय २१

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः । विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः २२ १५५

बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ५ १२५
असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा ६ १२६

॥ २८ ॥ (अथर्व० १६।४।१-७)

१,३ साम्न्यनुष्टुप्; २ साम्न्युष्णिक्; ४ त्रिपदाऽनुष्टुप्; ५ आसुरी गायत्री; ६ आर्च्युष्णिक्; ७ त्रिपदा विराड्गर्भाऽनुष्टुप्।

नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् १
स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा २
मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ३
सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ४ १३०
प्राणापानौ मा मां हासिष्टं मा जने प्र मेषि ५
स्वस्त्यद्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय ६
शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ७ १३१

॥ २९ ॥ (अथर्व० १७।१।१-३०)

१ जगती, १-८ त्र्यवसाना, १-३ अतिजगती; ६-७,१९ अत्यष्टिः, ८,११, १६ अतिधृतिः; ९ पञ्चपदा शक्करी; १०-१३,१६,१८-१९,२४ त्र्यवसाना; १० अष्टपदा धृतिः; १२ कृतिः; १३ प्रकृतिः; १४-१५ पञ्चपदा शक्करी; १७ पञ्चपदा विराडतिशक्करी; १८ भूरिगष्टिः; २४ विराडत्यष्टिः; १-५ षट्पदा; ११-१३,१६,१८-१९,२४ सप्तपदा; २० ककुप्; २१ चतुष्पदा उपरिष्टाद्बृहती; २२ याजुषी अनुष्टुप्; २३ निचृद्बृहती (२२-२३ द्विपदा); २५-२६ अनुष्टुप्; २७,३० जगती; २८-२९ त्रिष्टुप्।

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान् भूयासम् १
विषासहिं० । सहमानं० । ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम् २ १३५
विषासहिं० । सहमानं० । ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम् ३
विषासहिं० । सहमानं० । ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम् ४
विषासहिं० । सहमानं० । ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम् ५
उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि ।
द्विषंश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ६ १३९

उद्विद्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि ।
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो० । त्वं नः० ७ १४०
मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्वन्तर्ये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र ।
हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो० । त्वं नः० ८
त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुभिस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० ९
त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव ।
आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा स्वस्तये तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १०
त्वमिन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहूतस्त्वमिन्द्र ।
त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो० । त्वं नः० ११

अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानमन्तरिक्षे ।
अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि षंछर्म यच्छ तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १२ १४५
या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि ।
ययेन्द्र तन्वाऽन्तरिक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वा शर्म यच्छ तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १३
त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्रं नि षेदुरृषयो नाधमानास्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १४
त्वं तृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदं तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १५
त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं शोचिषा नभसी वि भासि ।
त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि विद्वांस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १६

पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयार्वाङशस्तिमेषि सुदिने बाधमानस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १७ १५०
त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः ।
तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतस्तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १८
असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम् ।
भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो० । त्वं नः० १९
शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि । स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् २०
रुचिरसि रोचोऽसि । स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन
च रुचिषीय २१

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः । विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः २२ १५५

अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः । विराजे नमः स्वराजे नमः० २३
उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह ।
सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् २४
आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्राति पारय २५
सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्राति पारय २६
प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् २७ १६०
परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय २८
ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः २९
अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान् ।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् ३० १६३

॥ ३० ॥ (अथर्व० १९।१८।४)
(१६४) अथर्वा । आर्च्यनुष्टुप् ।

वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ४ १६४

(१६५) ॥ ३१ ॥ (अथर्व० २०।१३५।६)

आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन् ।
तां ह जरितः प्रत्यायंस्तामु ह जरितः प्रत्यायन् ६ १६५

आदित्य-सहचारी देवगणः ।

(१) आदित्योषसः ।

॥ ३१ ॥ [दै० (उषा) १८७-१९१ मन्त्राः द्रष्टव्याः ।]

(२) अग्निमित्रवरुणादित्यविश्वेदेवाः ।

(१६६) ॥ ३३ ॥ (वा० य० ४।११)

व्रतं कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियः ।
दैवीं धियं मनामहे सुमृडीकामभिष्टये वर्चोधां यज्ञवाहसꣳ सुतीर्था नो असद्वशे ।
ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षक्रतवस्ते नोऽवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा ११ १६६

(३) आदित्या वसवोऽङ्गिरसः पितरः ।

॥ ३४ ॥ (अथर्व० २।१२।४) (१६७) भरद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

अशीतिभिस्तिसृभिः सामगेभिरादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ।
इष्टापूर्तमवतु नः पितॄणामामुं ददे हरसा दैव्येन ४ १६७

(४) भगादित्याः ।

॥ ३५ ॥ (अथर्व० ३।१६।२-३,५) (१६८-१७०); अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह २
भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ३
भग एव भगवाँ अस्तु देवस्तेना वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीमि स नो भग पुरएता भवेह ५ १७०

(५) बृहस्पतिः, आदित्यः ।

॥ ३६ ॥ (अथर्व० ४।१।१-७)+

(१७१-१७७) वेनः । त्रिष्टुप्, २,५ पुरोऽनुष्टुप् ।

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः १
इयं पित्र्या राष्ट्र्येत्वग्रे प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः ।
तस्मा एतं सुरुचं ह्वारमह्यं घर्मं श्रीणन्तु प्रथमाय धास्यवे २ १७२

+ वा० य० १३।३ (११२)

प्र यो जज्ञे विद्वानस्य बन्धुर्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति।
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ ३
स हि दिवः स पृथिव्या ऋतस्था मही क्षेमं रोदसी अस्कभायत्।
महान् मही अस्कभायद् वि जातो द्यां सद्म पार्थिवं च रजः ४
स बुध्न्यादाष्ट्र जनुषोऽभ्यग्रं बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट्।
अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टाथ द्युमन्तो वि वसन्तु विप्राः ५ १७५
नूनं तदस्य काव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम।
एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था पूर्वे अर्धे विषिते ससन्नु ६
योऽथर्वाणं पितरं देवबन्धुं बृहस्पतिं नमसाव च गच्छात्।
त्वं विश्वेषां जनिता यथासः कविर्देवो न दभायत् स्वधावान् ७ १७७

(६) दिवादित्यौ।

॥ ३७ ॥ (अथर्व० ४।३९।५-६)

(१७८-१७९) आङ्गिराः। ५ त्रिपदा महाबृहती, ६ संस्तारपङ्क्तिः।

दिव्या॒॑दित्याय समनमन्त्स आर्ध्नोत्।
यथा दिव्या॒॑दित्याय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ५
द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः। सा म आदित्येन वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम्।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ६ १७९

(७) आदित्यादयः।

॥ ३८ ॥ (अथर्व० ५।२१।१०-१२)

(१८०-१८१) ब्रह्मा। अनुष्टुप्, ११ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्।

आदित्य चक्षुरा दत्स्व मरीचयोऽनु धावत। पत्सङ्गिनीरा संजन्तु विगते बाहुवीर्ये॒॑ १० १८०
यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून्।
सोमो राजा वरुणो राजा महादेव उत मृत्युरिन्द्रः ११
एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः। अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा १२ १८१

(८) आदित्या रुद्रा वसवश्च।

॥ ३९ ॥ (१८२) (अथर्व० २०।१३५।९)

आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेनु त इदं राधः प्रति गृभ्णीह्यङ्गिरः।
इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत्पृथु ९ १८२

(३) मित्रः, मित्रावरुणौ च ।

॥ ४० ॥ (ऋ० १।१५१।१)

(१८४) दीर्घतमा औचथ्यः । जगती ।

मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन् ।
अरेजेतां रोदसी पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामवः १ १८४

॥ ४१ ॥ (ऋ० ३।५९।१-९)×

(१८५-१९३) गाथिनो विश्वामित्रः । त्रिष्टुप्, ६-९ गायत्री ।

मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत १ १८५
प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् २
अनमीवास इळया मदन्तो मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः ।
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ३
अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्याऽपि भद्रे सौमनसे स्याम ४
महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः ।
तस्मा एतत् पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविरा जुहोत ५
मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ६ १९०
अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः । अभि श्रवोभिः पृथिवीम् ७
मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे । स देवान् विश्वान् बिभर्ति ८
मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे । इष इष्टव्रता अकः ९ १९३

॥ ४२ ॥ (१९४) (वा० य० ११।५३)

मित्रः सꣳसृज्य पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह ।
सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वा सꣳसृजामि प्रजाभ्यः ५३ १९४

॥ ४३ ॥ (अथर्व० १९।१९।१)

(१९५) अथर्वा भुरिग्बृहती ।

मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु १ १९५

× ऋ० ३,५९,६ = वा० य० ११,६२; काण्व० १२,६४ ।

॥ ४४ ॥ (ऋ० १।२।७-९)

(१९६-१९८) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। गायत्री।

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्। धियं घृताचीं साधन्ता ७
ऋतेन मित्रावरुणा वृतावृधावृतस्पृशा। क्रतुं बृहन्तमाशाथे ८
कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया। दक्षं दधाते अपसम् ९ १९८

॥ ४५ ॥ (ऋ० १।२३।४-६)

(१९९-२०१) मेधातिथिः काण्वः। गायत्री।

मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये। जज्ञाना पूतदक्षसा ४
ऋतेन यावृतावृधा वृतस्य ज्योतिषस्पती। ता मित्रावरुणा हुवे ५ २००
वरुणः प्राविता भुवन् मित्रो विश्वाभिरूतिभिः। करतां नः सुराधसः ६ २०१

॥ ४६ ॥ (ऋ० १।४३।३)

(२०२) कण्वो घौरः। गायत्री।

यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति। यथा विश्वे सजोषसः ३ २०२

॥ ४७ ॥ (ऋ० १।१३६।१-७)

(२०३-२१३) परुच्छेपो दैवोदासिः। अत्यष्टिः, ७ त्रिष्टुप्।

ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळयद्भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम्।
राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता।
ः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे १
गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभि श्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः।
मेत्रस्य सादन मर्यम्णो वरुणस्य च।
दधाते बृहदुक्थ्यं वय उपस्तुत्यं बृहद् वयः २
वैष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचेते दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे।
वैष्मत् क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती।
स्तयोर्वरुणो यातयज्जनो ऽर्यमा यातयज्जनः ३ २०५
मित्राय वरुणाय शंतमः सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो देवो देवेष्वाभगः।
वासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः।
राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ४ २०६

यो मित्राय वरुणायाविधज्जनो ऽनर्वाणं तं परि पातो अंहसो दाश्वांसं मर्तमंहसः ।
तमर्यमाभि रक्ष—त्यृजूयन्तमनु व्रतम् ।
उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् ५
नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुषे सुमृळीकाय मीळ्हुषे ।
इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम् ।
ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ६
ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो मरुद्भिः ।
अग्निर्मित्रो वरुणः शर्म यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च ७ २०९

॥ ४८ ॥ (१।१३७।१-३) अतिशक्वरी ।

सुषुमा यातमद्रिभि—र्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे ।
आ राजाना दिविस्पृशा ऽस्मत्रा गन्तमुप नः ।
इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः १ २१०
इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः ।
उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।
सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये २
तां वां धेनुं न वासरी—मंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः ।
अस्मत्रा गन्तमुप नो ऽर्वाञ्चा सोमपीतये ।
अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ३ २११

॥ ४९ ॥ (ऋ० १।१३९।१) अत्यष्टिः ।

यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृताद—ध्याददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना ।
युवोरित्थाधि सद्म—स्वपश्याम हिरण्ययम् ।
धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः २ २१२

॥ ५० ॥ (ऋ० १।१५१।२-९)
(२१४-२२१) दीर्घतमा औचथ्यः । जगती ।

यद्ध त्यद् वां पुरुमीळ्हस्य सोमिनः प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः ।
अध क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः २
आ वां भूषन् क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।
यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्या वीथो अध्वरम् ३ २१५

प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिय ऋतावानावृतमा घोषथो बृहत् ।
युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युप युञ्जाथे अपः ४
मही अत्र महिना वारमृण्वथोऽरेणवस्तुज आ सद्मन् धेनवः ।
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्य—मा निम्रुच उषसस्तक्ववीरिव ५
आ वामृताय केशिनीरनूषत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चथः ।
अव त्मना सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ६
यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।
उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वर—मच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ७
युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु ।
भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोऽदृप्यता मनसा रेवदाशाथे ८ १२०
रेवद् वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरितऊति माहिनम् ।
न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पणयो नानशुर्मघम् ९ १२१

॥ ५१ ॥ (ऋ० १।१५२।१-७) त्रिष्टुप् ।

युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।
अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे १
एतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान् ।
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन् २
अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद् वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत् ३
प्रयन्तमित् परि जारं कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ।
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ४ १२५
अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत् पतयदूर्ध्वसानुः ।
अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर्युवानः प्र मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ५
आ धेनवो मामतेयमवन्ती—र्ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन्नूधन् ।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वा—नासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ६
आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं नमसा देवाववसा ववृत्याम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ७ १२८

॥ ५२ ॥ (ऋ० १।१५३।१-४)

यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।
घृतैर्घृतस्नू अध यद् वामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति
प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्ति-रयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः ।
अनक्ति यद् वां विदथेषु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणावियक्षन् २ २३०
पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।
हिनोति यद् वां विदथे सपर्यन्त्स रातहव्यो मानुषो न होता ३
उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः ।
उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन् वीतं पातं पयस उस्रियायाः ४ २३२

॥ ५३ ॥ (ऋ० २।४१।४-६) ×

(२३३-२३५) गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । गायत्री ।

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतं हवम् ४
राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आसाते ५
ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती । सचेते अनवह्वरम् ६ २३५

॥ ५४ ॥ (ऋ० ३।६२।१६-१८) +

(२३६-२३८) गाथिनो विश्वामित्रः, जमदग्निर्वा । गायत्री ।

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू १६
उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता १७
गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोममृतावृधा १८ २३८

॥ ५५ ॥ (ऋ० ५।६२।१-९)

(२३९-२४७) श्रुतविदात्रेयः । त्रिष्टुप् ।

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान् ।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम् १
तत् सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुह्रे ।
विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त २
अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना वरुणा महोभिः ।
वर्धयतमोषधीः पिन्वतं गा अव वृष्टिं सृजतं जीरदानू ३ २४१

× ऋ० २,४१,४= वा० य० ७,९;
+ ऋ० ३,६२,१६=वा० य० २१।८; सा० २२०,६६३

*

आ वामश्वा॑सः सुयुजो॑ वहन्तु यतर॑श्मय उप॑ यन्त्ववा॒र्क् ।
घृतस्य॑ निर्णिगनु॑ वर्तते वा॒मुप॒ सिन्ध॑वः प्रदिवि॑ क्षरन्ति ४
अनु॑ श्रुताममतिं॒ वर्ध॑दुर्वीं बर्हिरि॑व यजु॑षा रक्ष॑माणा ।
नम॑स्वन्ता धृतदक्षाधि॒ गर्ते॒ मित्रासा॑थे वरुणेळा॑स्वन्तः ५
अक्र॑विहस्ता सुकृते॑ परस्पा यं त्रासा॑थे वरुणेळा॑स्वन्तः ।
राजा॑ना क्षत्रमहृ॑णीयमाना सहस्र॑स्थूणं बिभृथः सह द्वौ ६
हिर॑ण्यनिर्णिगयो॑ अस्य स्थूणा॒ वि भ्राजते दि॒व्य१॒॑श्वाजनी॑व ।
भद्रे क्षेत्रे निमि॑ता तिल्वि॑ले वा स॒नेम॒ मध्वो॒ अधि॑गर्त्य॑स्य ७ २४५
हिर॑ण्यरूपमुषसो॒ व्यु॑ष्टा॒वयः॑स्थूणमुदि॑ता सूर्य॑स्य ।
आ रो॑हथो वरुण मित्र॒ गर्त॒मत॑श्चक्षाथे॒ अदि॑तिं दिति॑ं च ८
यद्ब॑ंहिष्ठं नाति॒विधे॑ सुदानू अच्छि॑द्रं शर्म॑ भुवनस्य गोपा ।
तेन॑ नो मित्रावरुणावविष्टं॒ सिषा॑सन्तो जिगीवा॑सः स्याम ९

॥ ५६ ॥ (ऋ० ५।६३।१-७)

(१४८-२६१) अर्चनाना आत्रेयः । जगती ।

ऋत॑स्य गोपावधि॑ तिष्ठथो॒ रथं॒ सत्य॑धर्माणा परमे॒ व्यो॑मनि ।
यमत्र॑ मित्रावरुणाव॑थो युवं तस्मै॑ वृष्टिर्मधु॑मत् पिन्वते दिवः १
सम्राजा॑वस्य भुव॑नस्य राजथो॒ मित्रा॑वरुणा विदथे॑ स्वर्दृशा॑ ।
वृष्टिं॑ वां राधो॑ अमृतत्वमी॑महे द्यावा॑पृथिवी वि च॑रन्ति तन्यवः॑ २
सम्राजा॑ उग्रा वृ॑षभा दिवस्पती॑ पृथिव्या मित्रावरु॑णा विच॑र्षणी ।
चित्रेभि॑रभ्रैरुप॑ तिष्ठथो॒ रवं॒ द्यां व॑र्षयथो॒ असुरस्य मायया॑ ३ ५५०
माया वां॑ मित्रावरुणा दिवि॒ श्रिता सूर्यो॒ ज्योति॑श्चरति चित्रमायु॑धम् ।
तमभ्रेण॑ वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्ज॑न्य द्रप्सा मधु॑मन्त ईरते ४
रथं॑ युञ्जते मरुतः॑ शुभे सुखं शूरो॒ न मित्रावरुणा गवि॑ष्टिषु ।
रजां॑सि चित्रा वि च॑रन्ति तन्यवो॑ दिवः स॑म्राजा पय॑सा न उक्षतम् ५
वाचं॒ सु मित्रावरुणाविरा॑वतीं पर्जन्य॑श्चित्रां व॑दति त्विषी॑मतीम् ।
अभ्रा व॑सत मरुतः॒ सु मायया॒ द्यां व॑र्षयतमरुणाम॑रेपसम् ।
धर्म॑णा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता र॑क्षेथे असु॑रस्य मायया॑ । ६
ऋतेन॒ विश्वं॒ भुव॑नं॒ वि राज॑थः सूर्य॑मा ध॑त्थो दिवि चित्र्यं॒ रथ॑म् ७ २५४

॥ ५७ ॥ (ऋ० ५।६४।१-७) अनुष्टुप्, ७ पङ्क्तिः ।

वरुणं वो रिशादसमृचा मित्रं हवामहे । परि व्रजेव बाह्वोर्जगन्वांसा स्वर्णरम् १ २५५
ता बाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते । शेवं हि जार्यं वां विश्वासु क्षासु जोगुवे २
यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा । अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे ३
युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा । यद्ध क्षये मघोनां स्तोतॄणां च स्पूर्धसे ४
आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सधस्थ आ । स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे ५
युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च बिभृथः । उरु णो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये ६ २६०
उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि ।
सुतं सोमं न हस्तिभिरा पड्भिर्धावतं नरा बिभ्रतावर्चनानसम् ७ २६१

॥ ५८ ॥ (ऋ० ५।६५।१-६)

(२६२-२७३) रातहव्य आत्रेयः । अनुष्टुप्, ६ पङ्क्तिः ।

यश्चिकेत स सुक्रतुर्देवत्रा स ब्रवीतु नः । वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः १
ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा । ता सत्पती ऋतावृध ऋतावाना जनेजने २
ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप ब्रुवे सचा । स्वश्वासः सु चेतुना वाजाँ अभि प्र दावने ३
मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते । मित्रस्य हि प्रतूर्वतः सुमतिरस्ति विधतः ४ २६५
वयं मित्रस्यावसि स्याम सप्रथस्तमे । अनेहसस्त्वोतयः सत्रा वरुणशेषसः ५
युवं मित्रेमं जनं यतथः सं च नयथः ।
मा मघोनः परि ख्यतं मो अस्माकमृषीणां गोपीथे न उरुष्यतम् ६ २६७

॥ ५९ ॥ (ऋ० ५।६६।१-६) अनुष्टुप् ।

आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा । वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे १
ता हि क्षत्रमविह्रुतं सम्यगसुर्यमाशाते । अध व्रतेव मानुषं स्वर्ण धायि दर्शतम् २
ता वामेषे रथानामुर्वीं गव्यूतिमेषाम् । रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक् स्तोमैर्मनामहे ३ २७०
अधा हि काव्या युवं दक्षस्य पूर्भिरद्भुता । नि केतुना जनानां चिकेथे पूतदक्षसा ४
तदृतं पृथिवि बृहच्छ्रवएष ऋषीणाम् । ज्रयसानावरं पृथ्वति क्षरन्ति यामभिः ५
आ यद् वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः । व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ६ २७३

॥ ६० ॥ (ऋ ५।६७।१-५)

(२७४-२८३) यजत आत्रेयः । अनुष्टुप् ।

बळित्था देव निष्कृतमादित्या यजतं बृहत् । वरुण मित्रार्यमन् वर्षिष्ठं क्षत्रमाशाथे १
आ यद् योनिं हिरण्ययं वरुण मित्र सदथः । धर्तारा चर्षणीनां यन्तं सुम्नं रिशादसा २ २७५

विश्वे हि विश्ववेदसो वरुणो मित्रो अर्यमा । व्रता पदेव सश्चिरे पान्ति मर्त्यं रिषः ३
ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने । सुनीथासः सुदानवो ऽहोश्चिदुरुचक्रयः ४
को नु वां मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम् । तत् सु वामेषते मति रत्रिभ्य एषते मतिः ५ २७८

॥ ६१ ॥ (ऋ० ५।६८।१-५) गायत्री ।

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् १
सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता २ २८०
ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ३
ऋतमृतेन सपन्ते षिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवौ वर्धेते ४
वृष्टिद्यावा रीत्यापे षस्पती दानुमत्याः । बृहन्तं गर्तमाशाते ५ २८३

॥ ६२ ॥ (ऋ० ५।६९।१-४)

(२८४-२९१) उरुचक्रिरात्रेयः । त्रिष्टुप् ।

त्री रोचना वरुण त्रीँरुत द्यून् त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि ।
वावृधानावमतिं क्षत्रियस्या ऽनु व्रतं रक्षमाणावजुर्यम् १
इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद् वां सिन्धवो मित्र दुह्रे ।
त्रयस्तस्थुर्वृषभासस्तिसृणां धिषणानां रेतोधा वि द्युमन्तः २ २८५
प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यंदिन उदिता सूर्यस्य ।
राये मित्रावरुणा सर्वताते ळे तोकाय तनयाय शं योः ३
या धर्तारा रजसो रोचनस्यो तादित्या दिव्या पार्थिवस्य ।
न वां देवा अमृता आ मिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ४ २८७

॥ ६३ ॥ (ऋ० ५।७०।१-४) गायत्री ।

पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्य वो नूनं वां वरुण । मित्र वंसि वां सुमतिम् १
ता वां सम्यगद्रुह्वाणे षमश्याम धायसे । वयं ते रुद्रा स्याम २
पातं नो रुद्रा पायुभि रुत त्रायेथां सुत्रात्रा । तुर्याम दस्यून् तनूभिः ३ २९०
मा कस्याद्भुतक्रतू यक्षं भुजेमा तनूभिः । मा शेषसा मा तनसा ४ २९१

॥ ६४ ॥ (ऋ० ५।७१।१-३)

(२९२-२९७) बाहुवृक्त आत्रेयः गायत्री ।

आ नो गन्तं रिशादसा वरुण मित्र बर्हणा । उपेमं चारुमध्वरम् १
विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः । ईशाना पिप्यतं धियः २ २९३

उप नः सुतमा गतं   वरुण मित्र दाशुषः   । अस्य सोमस्य पीतये   ३   २९४

॥ ६५ ॥ (ऋ० ५।७२।१-३) उष्णिक् ।

आ मित्रे वरुणे वयं   गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत्   । नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये   १   २९५
व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा   धर्मणा यातयज्जना   । नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये   २
मित्रश्च नो वरुणश्च   जुषेतां यज्ञमिष्टये   । नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये   ३

॥ ६६ ॥ (ऋ० ६।६७।१-११)
(२९८-३०८) बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

विश्वेषां वः सतां ज्येष्ठतमा   गीर्भिर्मित्रावरुणा वावृधध्यै ।
सं या रश्मेव यमतुर्यमिष्ठा   द्वा जनाँ असमा बाहुभिः स्वैः   १
इयं मद् वां प्र स्तृणीते मनीषोप   प्रिया नमसा बर्हिरच्छ ।
यन्तं नो मित्रावरुणावधृष्टं   छर्दिर्यद् वां वरूथ्यं सुदानू   २
आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप   प्रिया नमसा हूयमाना ।
सं यावप्नःस्थो अपसेव जनाञ्छ्रुधीयतश्चिद् यतथो महित्वा   ३   ३००
अश्वा न या वाजिना पूतबन्धू   ऋता यद् गर्भमदितिर्भरध्यै ।
प्र या महि महान्ता जायमाना   घोरा मर्ताय रिपवे नि दीधः   ४
विश्वे यद् वां मंहना मन्दमानाः   क्षत्रं देवासो अदधुः सजोषाः ।
परि यद् भूथो रोदसी चिदुर्वी   सन्ति स्पशो अदब्धासो अमूराः   ५
ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु द्यून्   दृंहेथे सानुमुपमादिव द्योः ।
दृळ्हो नक्षत्र उत विश्वदेवो   भूमिमातान् द्यां धासिनायोः   ६
ता विग्रं धैथे जठरं पृणध्या   आ यत् सद्म सभृतयः पृणन्ति ।
न मृष्यन्ते युवतयोऽवाता   वि यत् पयो विश्वजिन्वा भरन्ते   ७
ता जिह्वया सदमेदं सुमेधा   आ यद् वां सत्यो अरतिर्ऋते भूत् ।
तद् वां महित्वं घृतान्नावस्तु   युवं दाशुषे वि चयिष्टमंहः   ८   ३०५
प्र यद् वां मित्रावरुणा स्पूर्धन्   प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति ।
न ये देवास ओहसा न मर्ता   अयज्ञसाचो अप्यो न पुत्राः   ९
वि यद् वाचं कीस्तासो भरन्ते   शंसन्ति के चिन्निविदो मनानाः ।
आद् वां ब्रवाम सत्यान्युक्था   नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा   १०
अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ   युवोर्मित्रावरुणावस्कृधोयु ।
अनु यद् गावः स्फुरानृजिप्यं   धृष्णुं यद् रणे वृषणं युनजन्   ११   ३०८

॥ ६७ ॥ (ऋ० ७।५०।१)

(३०९-३४७) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । जगती ।

आ मां मित्रावरुणेह रक्षतं कुलाययद् विश्वयन्मा न आ गन् ।
अजकावं दुर्दृशीकं तिरो दधे मा मां पद्येन रपसा विदत् त्सरुः १ ३०९

॥ ६८ ॥ (ऋ० ७।६०।२-१२) त्रिष्टुप् ।

एष स्य मित्रावरुणा नृचक्षा उभे उदेति सूर्यो अभि ज्मन् ।
विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् २ ३१०
अयुक्त सप्त हरितः सधस्थाद् या ईं वहन्ति सूर्यं घृताचीः ।
धामानि मित्रावरुणा युवाकुः सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे ३
उद् वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थु—रा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।
यस्मा आदित्या अध्वनो रदन्ति मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ४
इमे चेतारो अनृतस्य भूरे—र्मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति ।
इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः ५
इमे मित्रो वरुणो दूळभासो ऽचेतसं चिच्चितयन्ति दक्षैः ।
अपि क्रतुं सुचेतसं वतन्त—स्तिरश्चिदंहः सुपथा नयन्ति ६
इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्या—श्चिकित्वांसो अचेतसं नयन्ति ।
प्रव्राजे चिन्नद्यो गाधमस्ति पारं नो अस्य विष्पितस्य पर्षन् ७ ३१५
यद् गोपावददितिः शर्म भद्रं मित्रो यच्छन्ति वरुणः सुदासे ।
तस्मिन्ना तोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं तुरासः ८
अव वेदिं होत्राभिर्यजेत रिपः काश्चिद् वरुणध्रुतः सः
परि द्वेषोभिरर्यमा वृणक्तू—रुं सुदासे वृषणा उ लोकम् ९
सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषा—मपीच्येन सहसा सहन्ते ।
युष्मद् भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मृळता नः १०
यो ब्रह्मणे सुमतिमायजाते वाजस्य सातौ परमस्य रायः ।
सीक्षन्त मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु ११
इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १२ ३२०

॥ ६९ ॥ (ऋ० ७।६१।१-७)

उद् वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान् ।
अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत १
प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियर्ति ।
यस्य ब्रह्माणि सुक्रतू अवाथ आ यत् क्रत्वा न शरदः पृणैथे २
प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव ऋष्वाद् बृहतः सुदानू ।
स्पशो दधाथे ओषधीषु विक्ष्वृ-धग्यतो अनिमिषं रक्षमाणा ३
शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम शुष्मो रोदसी बद्बधे महित्वा ।
अयन् मासा अयज्वनामवीराः प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते ४
अमूरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासु चित्रं ददृशे न यक्षम् ।
द्रुहः सचन्ते अनृता जनानां न वां निण्यान्यचिते अभूवन् ५ ३२५
समु वां यज्ञं महयं नमोभि-र्हुवे वां मित्रावरुणा सबाधः ।
प्र वां मन्मान्यृचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन्निमानि ६
इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७ ३२७

॥ ७० ॥ (ऋ० ७।६२।४-६)×

द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नो ये वां जज्ञुः सुजनिमान ऋष्वे ।
मा हेळे भूम वरुणस्य वायो-र्मा मित्रस्य प्रियतमस्य नृणाम् ४
प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ५
नू मित्रो वरुणो अर्यमा न-स्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः *६ ३३०

॥ ७१ ॥ (ऋ० ७।६४।१-५)

दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन् ।
हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुषन्त १ ३३१

× ऋ० ७,६२,५ = वा० य० २१,९ । * ऋ० ७।६३।६

आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक् ।
इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टि— मव दिव इन्वतं जीरदानू २
मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयन्तु ।
ब्रवद् यथा न आदुरिः सुदास इषा मदेम सह देवगोपाः ३
यो वां गर्तं मनसा तक्षदेत— मूर्ध्वां धीतिं कृणवद् धारयच्च ।
उक्षेथां मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुक्षितीस्तर्पयेथाम् ४
एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधी— र्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५ ३३५

॥ ७२ ॥ (ऋ० ७।६५।१-५)

प्रति वां सूर उदिते सूक्तै— र्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम् ।
ययोरसुर्यमक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु १
ता हि देवानामसुरा तावर्या ता नः क्षितीः करतमूर्जयन्तीः ।
अश्याम मित्रावरुणा वयं वां द्यावा च यत्र पीपयन्नहा च २
ता भूरिपाशावनृतस्य सेतू दुरत्येतू रिपवे मर्त्याय ।
ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वा— मपो न नावा दुरिता तरेम ३
आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं घृतैर्गव्यूतिमुक्षतमिळाभिः ।
प्रति वामत्र वरमा जनाय पृणीतमुद्नो दिव्यस्य चारोः ४
एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधी— र्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५ ३४०

॥ ७३ ॥ (ऋ० ७।६६।१-३,१७-१९) गायत्री ।

प्र मित्रयोर्वरुणयोः स्तोमो न एतु शूष्यः । नमस्वान् तुविजातयोः १
या धारयन्त देवाः सुदक्षा दक्षपितरा । असुर्याय प्रमहसा २
ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितॄणाम् । मित्र साधयतं धियः ३
काव्येभिरदाभ्या ऽऽयातं वरुण द्युमत् । मित्रश्च सोमपीतये १७
दिवो धामभिर्वरुण मित्रश्चा यातमद्रुहा । पिबतं सोममातुजी १८ ३४५
आ यातं मित्रावरुणा जुषाणावाहुतिं नरा । पातं सोममृतावृधा १९ ३४६

॥ ७४ ॥ (ऋ० ८।२५।१-९,१३-२४)
(३४७-३६७) विश्वमना वैयश्वः । उष्णिक्, १३ उष्णिग्गर्भा ।

ता वां विश्वस्य गोपा देवा देवेषु यज्ञिया । ऋतावाना यजसे पूतदक्षसा १ ३४७

मित्रा तना न रथ्या३ वरुणो यश्च सुक्रतुः । सनात् सुजाता तनया धृतव्रता २
ता माता विश्ववेदसा ऽसुर्याय प्रमहसा । मही जजानादितिर्ऋतावरी ३
महान्ता मित्रावरुणा सम्राजा देवावसुरा । ऋतावानावृतमा घोषतो बृहत् ४ ३५०
नपाता शवसो महः सूनू दक्षस्य सुक्रतू । सृप्रदानू इषो वास्त्वधि क्षितः ५
सं या दानूनि येमथुर्दिव्याः पार्थिवीरिषः । नभस्वतीरा वां चरन्तु वृष्टयः ६
अधि या बृहतो दिवो३ ऽभि यूथेव पश्यतः । ऋतावाना सम्राजा नमसे हिता ७
ऋतावाना नि षेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू । धृतव्रता क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः ८
अक्ष्णश्चिद् गातुवित्तरा ऽनुल्बणेन चक्षसा । नि चिन्मिषन्ता निचिरा नि चिक्यतुः ९ ३५५
तद् वार्यं वृणीमहे वरिष्ठं गोपयत्यम् । मित्रो यत् पान्ति वरुणो यदर्यमा १३
उत नः सिन्धुरपां तन्मरुतस्तदश्विना । इन्द्रो विष्णुर्मीढ्वांसः सजोषसः १४
ते हि ष्मा वनुषो नरो ऽभिमातिं कयस्य चित् । तिग्मं न क्षोदः प्रतिघ्नन्ति भूर्णयः १५
अयमेक इत्था पुरू रु चष्टे वि विश्पतिः । तस्य व्रतान्यनु वश्चरामसि १६
अनु पूर्वाण्योक्या साम्राज्यस्य सश्चिम । मित्रस्य व्रता वरुणस्य दीर्घश्रुत् १७ ३६०
परि यो रश्मिना दिवो ऽन्तान् ममे पृथिव्याः । उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा १८
उदु ष्य शरणे दिवो ज्योतिरयंस्त सूर्यः । अग्निर्न शुक्रः समिधान आहुतः १९
वचो दीर्घप्रसद्मनीशे वाजस्य गोमतः । ईशे हि पित्वोऽविषस्य दावने २०
तत् सूर्यं रोदसी उभे दोषा वस्तोरुप ब्रुवे । भोजेष्वस्माँ अभ्युच्चरा सदा २१
ऋज्रमुक्षण्यायने रजतं हरयाणे । रथं युक्तमसनाम सुषामणि २२ ३६५
ता मे अश्व्यानां हरीणां नितोशना । उतो नु कृत्व्यानां नृवाहसा २३
स्मदभीशू कशावन्ता विप्रा नविष्ठया मती । महो वाजिनावर्वन्ता सचासनम् २४ ३६७

॥ ७५ ॥ (ऋ० ८।१०१।१-४)+

(३६८-३७१) जमदग्निर्भार्गवः १-२ प्रगाथः=(बृहती+सतोबृहती), ३ गायत्री, ४ सतोबृहती ।

ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये ।
यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय आचक्रे हव्यदातये १
वर्षिष्ठक्षत्रा उरुचक्षसा नरा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।
ता बाहुता न दंसना रथर्यतः साकं सूर्यस्य रश्मिभिः २
प्र यो वां मित्रावरुणा ऽजिरो दूतो अद्रवत् । अयःशीर्षा मदेरघुः ३ ३७०

+ ऋ० ८,१०१,१ = वा० य० ३३,८७ ।

न यः संपृच्छे न पुनर्हवीतवे न संवादाय रमते ।
तस्मान्नो अद्य समृतेरुरुष्यतं बाहुभ्यां न उरुष्यतम् ४ ३७१

॥ ७६ ॥ (ऋ० १०।१३२।२–७)

(३७२–३७७) शकपूतो नार्मेधः । विराड्रूपा; २,६ प्रस्तारपङ्क्तिः, ७ महासतोबृहती ।

ता वां मित्रावरुणा धारयत्क्षिती सुषुम्नेषितत्वता यजामसि ।
युवोः क्राणाय सख्यै॒रभि ष्याम रक्षसः २
अधा चिन्नु यद्दिधिषामहे वा॒मभि प्रियं रेक्णः पत्यमानाः ।
दद्वाँ वा यत् पुष्यति रेक्णः सम्वारन् नकिरस्य मघानि ३
असावन्यो असुर सूयत द्यौ॒स्त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ।
मूर्धा रथस्य चाकन् नैतावतैनसान्तकध्रुक् ४
अस्मिन्त्स्वे३तच्छकपूत एनो हिते मित्रे निगतान् हन्ति वीरान् ।
अवोर्वा यद्धात् तनूष्ववः प्रियासु यज्ञियास्ववो ५ ३७५
युवोर्हि मातादितिर्विचेतसा द्यौर्न भूमिः पयसा पुपूतनि ।
अव प्रिया दिदिष्टन सूरो निनिक्त रश्मिभिः ६
युवं ह्यप्नराजावसीदतं तिष्ठद् रथं न धूर्षदं वनर्षदम् ।
ता नः कणूकयन्ती॒र्नृमेधस्तत्रे अंहसः सुमेधस्तत्रे अंहसः ७

॥ ७७ ॥ (३७८–३८२) (वा० य० ७।१०) +

राया वय॑ँ ससवा॑ँसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः ।
तां धेनुं मित्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम् १० ३७८

॥ ७८ ॥ (वा० य० १०।१६,२१)

हिरण्यरूपा उषसो विरोक उभाविन्द्रा उदिथः सूर्यश्च ।
आरोहतं वरुण मित्र गर्त्तं ततश्चक्षाथामदितिं दितिं च मित्रोऽसि वरुणोऽसि १६
मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि २१ ३८०

॥ ७९ ॥ (वा० य० २९।६)

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने ।
उषासा वा॑ँ सुहिरण्ये सुशिल्पे ऋतस्य योनाविह सादयामि ६ ३८१

+ दै० [इन्द्रः] ३१६० ।

॥ ८० ॥ (वा० य० ३३।७२)

काव्ययोराजानेषु क्रत्वा दक्षस्य दुरोणे । रिशादसा सधस्थ आ ७२ ३८१

॥ ८१ ॥ (अथर्व० २।२८।२) +

(३८३) शम्भुः । त्रिष्टुप् ।

मित्र एनं वरुणो वा रिशादा जरामृत्युं कृणुतां संविदानौ ।
तदग्निर्होता वयुनानि विद्वान् विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति २ ३८३

॥ ८२ ॥ (अथर्व० ३।२५।१-६)

(३८४-३८९) भृगुः । अनुष्टुप् ।

उत्तुदस्त्वोत्तुदतु मा धृथाः शयने स्वे ।
इषुः कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि १
आधीपर्णां कामशल्यामिषुं संकल्पकुल्मलाम् ।
तां सुसंनतां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि २ ३८५
या प्लीहानं शोषयति कामस्येषुः सुसंनता ।
प्राचीनपक्षा व्योषा तया विध्यामि त्वा हृदि ३
शुचा विद्धा व्योषया शुष्कास्याभि सर्प मा ।
मृदुर्निमन्युः केवली प्रियवादिन्यनुव्रता ४
आजामि त्वाजन्या परि मातुरथो पितुः । यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ५
व्यस्यै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम् । अथैनामक्रतुं कृत्वा ममैव कृणुतं वशे ६ ३८९

॥ ८३ ॥ (अथर्व० ४।२९।१-७) [आयुर्वेदप्रकरणे सूक्तं (२६४) द्रष्टव्यम् ।]

॥ ८४ ॥ (अथर्व० १।२०।२)

(३९०-३९४) अथर्वा । अनुष्टुप् ।

यो अद्य सेन्यो वधोऽघायूनामुदीरते । युवं तं मित्रावरुणावस्मद्यावयतं परि २ ३९०

॥ ८५ ॥ (अथर्व० ५।२४।५) चतुष्पदातिशक्वरी ।

मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपती तौ मावताम् ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकू-
त्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ५ ३९१

+ दै० [आयुर्वेद०] २ ।

॥ ८६ ॥ (अथर्व० ६।३२।३) त्रिष्टुप् ।+

अभयं मित्रावरुणाविहास्तु नोऽर्चिषात्त्रिणो नुदतं प्रतीचः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ३ ३९२

॥ ८७ ॥ (अथर्व० ६।८९।३) अनुष्टुप् ।

मह्यं त्वा मित्रावरुणौ मह्यं देवी सरस्वती ।
मह्यं त्वा मध्यं भूम्या उभावन्तौ समस्यताम् ३ ३९३

॥ ८८ ॥ (अथर्व० ६।९७।२) जगती ।

स्वधास्तु मित्रावरुणा विपश्चिता प्रजावत् क्षत्रं मधुनेह पिन्वतम् ।
बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् २ ३९४

॥ ८९ ॥ (अथर्व० ९।१०।२३)
(३९५) ब्रह्मा । त्रिष्टुप् ।

अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्या ऋतं पिपर्त्यनृतं नि पाति २३ ३९५

॥ ९० ॥ (अथर्व० १०।५।११)
(३९६) सिन्धुद्वीपः । पथ्यापङ्क्तिः ।

मित्रावरुणयोर्भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ११ ३९६

॥ ९१ ॥ (३९७-३९९) (सा० ९८६-९८७) ❀

ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च । वयं वां मित्रा स्याम २
पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा । साह्याम दस्यूं तनूभिः ३ ३९८

॥ ९२ ॥ (सा० १६४७)×

त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः । त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ३ ३९९

मित्र-मित्रावरुण-सहचारी-देवगणः ।

(१) मित्रावरुणौ नभस्यश्च ।

॥ ९३ ॥ (ऋ० २।३६।६)

गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । जगती ।

जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु ।
अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यं मधु ६ ४००

(२) मित्रावरुणादित्याः ।

॥ ९४ ॥ (ऋ० ८।१०१।५)

जमदग्निर्भार्गवः । बृहती ।

प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।
वरूथ्यं१ वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ५ ४०१

(३) उखामित्रौ ।

॥ ९५ ॥ (वा० य० ११।६४)

उत्थाय बृहती भवोदु तिष्ठ ध्रुवा त्वम् ।
मित्रैतां त उखां परिददाम्यभित्या एषा मा भेदि ६४ ४०२

(४) सविता ।

॥ ९६ ॥ (ऋ० १।२२।५-८)+

(४०३-४०६) मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ५
अपां नपातमवसे सवितारमुप स्तुहि । तस्य व्रतान्युश्मसि ६
विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः । सवितारं नृचक्षसम् ७ ४०५
सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः । दाता राधांसि शुम्भति ८ ४०६

॥ ९७ ॥ (ऋ० १।२४।३-५)

(४०७-४०९) आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । (५ भगो वा) । गायत्री ।

अभि त्वा देव सवित—रीशानं वार्याणाम् । सदावन् भागमीमहे ३
यश्चिद्धि त इत्था भगः शशमानः पुरा निदः । अद्वेषो हस्तयोर्दधे ४
भगभक्तस्य ते वय—मुदशेम तवावसा । मूर्धानं राय आरभे ५ ४०९

॥ ९८ ॥ (ऋ० १।३५।२-११)×

(४१०-४१९) हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । त्रिष्टुप्, ९ जगती ।

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना—ऽऽ देवो याति भुवनानि पश्यन् २ ४१०
याति देवः प्रवता यात्युद्वता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम् ।
आ देवो याति सविता परावतो ऽप विश्वा दुरिता बाधमानः ३
अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम् ।
आस्थाद् रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः ४
वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन् रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः ।
शश्वद् विशः सवितुर्दैव्यस्यो—पस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ५
तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट् ।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थु—रिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ६
वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद् गभीरवेपा असुरः सुनीथः ।
क्वेदानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान ७
अष्टौ व्यख्यत् ककुभः पृथिव्या—स्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद् दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ८ ४१६

+ ऋ. १,२२,५ = वा. य. २२,१० । × ऋ. १।४५।१ = दै० [अग्निः] २४४८; ऋ. १।३५।८-१०=वा. य. ३४।२४-२७

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणि—रुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते ।
अपामीवां बाधते वेति सूर्य—मभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ९
हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
अपसेधन् रक्षसो यातुधाना—नस्थाद् देवः प्रतिदोषं गृणानः १०
ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासो ऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ११ ४१९

॥ ९९ ॥ (ऋ० २।३८।१-११)

(४२०-४३०) गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः। त्रिष्टुप् ।

उदु ष्य देवः सविता सवाय शश्वत्तमं तदपा वह्निरस्थात् ।
नूनं देवेभ्यो वि हि धाति रत्न—मथाभजद् वीतिहोत्रं स्वस्तौ १ ४२०
विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र बाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति ।
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा अयं चिद् वातो रमते परिज्मन् २
आशुभिश्चिद्यान् वि मुचाति नून—मरीरमदतमानं चिदेतोः ।
अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्या—मनु व्रतं सवितुर्मोक्यागात् ३
पुनः समव्यद् विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः ।
उत् संहायास्थाद् व्यृ१तूँरदर्धर—रमतिः सविता देव आगात् ४
नानौकांसि दुर्यो विश्वमायु—र्वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः ।
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधा—दन्वस्य केतमिषितं सवित्रा ५
समाववर्ति विष्ठितो जिगीषु—र्विश्वेषां कामश्चरताममाभूत् ।
शश्वाँ अपो विकृतं हित्व्यागा—दनु व्रतं सवितुर्दैव्यस्य ६ ४२५
त्वया हितमप्यमप्सु भागं धन्वान्वा मृगयसो वि तस्थुः ।
वनानि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ७
याद्राध्यं१ वरुणो योनिमप्य—मनिशितं निमिषि जर्भुराणः ।
विश्वो मार्ताण्डो व्रजमा पशुर्गात् स्थशो जन्मानि सविता व्याकः ८
न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः ।
नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ९
भगं धियं वाजयन्तः पुरंधिं नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।
आये वामस्य संगथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम १० ४२९

अस्मभ्यं तद् दिवो अद्भ्यः पृथिव्या—स्त्वया दत्तं काम्यं राध आ गात् ।
शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवा—त्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे ११ ४३०

॥ १०० ॥ (ऋ० ३।६२।१०–१२)×

(४३१-४३३) गाथिनो विश्वामित्रः । गायत्री ।

तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् १०
देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरंध्या । भगस्य रातिमीमहे ११
देवं नरः सवितारं विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः । नमस्यन्ति धियेषिताः १२ ४३३

॥ १०१ ॥ (ऋ० ४।५३।१–७)

(४३४–४४६) वामदेवो गौतमः । जगती ।

तद् देवस्य सवितुर्वार्यं महद् वृणीमहे असुरस्य प्रचेतसः ।
छर्दिर्येन दाशुषे यच्छति त्मना तन्नो महाँ उदयान् देवो अक्तुभिः १
दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापतिः पिशङ्गं द्रापिं प्रति मुञ्चते कविः ।
विचक्षणः प्रथयन्नापृणन्नुर्व—जीजनत् सविता सुम्नमुक्थ्यम् २ ४३५
आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे ।
प्र बाहू अस्राक् सविता सवीमनि निवेशयन् प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ३
अदाभ्यो भुवनानि प्रचाकशद् व्रतानि देवः सविताभि रक्षते ।
प्रास्राग् बाहू भुवनस्य प्रजाभ्यो धृतव्रतो महो अज्मस्य राजति ४
त्रिरन्तरिक्षं सविता महित्वना त्री रजांसि परिभूस्त्रीणि रोचना ।
तिस्रो दिवः पृथिवीस्तिस्र इन्वति त्रिभिर्व्रतैरभि नो रक्षति त्मना ५
बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः स्थातुरुभयस्य यो वशी ।
स नो देवः सविता शर्म यच्छ—त्वस्मे क्षयाय त्रिवरूथमंहसः ६
आगन् देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजामिषम् ।
स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु ७ ४४०

॥ १०२ ॥ (ऋ० ४।५४।१–६) जगती, ६ त्रिष्टुप् ।

अभूद् देवः सविता वन्द्यो नु न इदानीमह्न उपवाच्यो नृभिः ।
वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत् १
देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्यो ऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम् ।
आदिद् दामानं सवितर्व्यूर्णुषे ऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः २ ४४२

× ऋ. ३,६२,१० = वा. य. ३,३५; २२,९; ३०,२; ३६,३ ।

अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता ।
देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः ३
न प्रमिये सवितुर्दैव्यस्य तद् यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति ।
यत् पृथिव्या वरिमन्ना स्वङ्गुरि- र्वर्ष्मन् दिवः सुवति सत्यमस्य तत् ४
इन्द्रज्येष्ठान् बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः क्षयाँ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः ।
यथायथा पतयन्तो वियेमिर एवैव तस्थुः सवितः सवाय ते ५ ४४५
ये ते त्रिरहन्त्सवितः सवासो दिवेदिवे सौभगमासुवन्ति ।
इन्द्रो द्यावापृथिवी सिन्धुरद्भि- रादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ६ ४४६

॥ १०३ ॥ (ऋ० ५।८१।१-५)×

(४४७-४६०) श्यावाश्व आत्रेयः । जगती ।

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इ- न्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः १
विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
वि नाकमख्यत् सविता वरेण्यो ऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति २
यस्य प्रयाणमन्वन्य इद् ययु- र्देवा देवस्य महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ३
उत यासि सवितस्त्रीणि रोचनो- त सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि ।
उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ४ ४५०
उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इ- दुत पूषा भवसि देव यामभिः ।
उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे ५ ४५१

॥ १०४ ॥ (ऋ० ५।८२।१-९)+ । गायत्री, १ अनुष्टुप् ।

तत् सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि १
अस्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम् । न मिनन्ति स्वराज्यम् २
स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भगः । तं भागं चित्रमीमहे ३
अद्या नो देव सवितः प्रजावत् सावीः सौभगम् । परा दुःष्वप्न्यं सुव ४ ४५५
विश्वानि देव सवित- र्दुरितानि परा सुव । यद् भद्रं तन्न आ सुव ५
अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे । विश्वा वामानि धीमहि ६ ४५७

× ऋ. ५।८१।१-३ = वा. य. ५,१४; ११।४,६; ३७,२; १२,३ । अथर्व, ७,७२,६ (उत्तरार्धः) ।
+ ऋ. ५।८२।४-५ = वा. य. ३०,३; सा . १४१ ।

*

आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे । सत्यसवं सवितारम् ७
य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन् । स्वाधीर्देवः सविता ८
य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन । प्र च सुवाति सविता ९ ४६०

॥ १०५ ॥ (ऋ० ६।७१।१-६)

(४६१-४६६) बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । जगती, ४-६ त्रिष्टुप् ।

उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया बाहू अयंस्त सवनाय सुक्रतुः ।
घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि १
देवस्य वयं सवितुः सवीमनि श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने ।
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भूमनः २
अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वं शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ३
उदु ष्य देवः सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात् ।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वामम् ४
उदू अयाँ उपवक्तेव बाहू हिरण्यया सविता सुप्रतीका ।
दिवो रोहांस्यरुहत् पृथिव्या अरीरमत् पतयत् कच्चिदभ्वम् ५ ४६५
वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ६ ४६६

॥ १०६ ॥ (ऋ० ७।३८।१-६)

(४६७-४७६) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । ६ उत्तरार्धस्य भगो वा । त्रिष्टुप् ।

उदु ष्य देवः सविता ययाम हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
नूनं भगो हव्यो मानुषेभिर्वि यो रत्ना पुरूवसुर्दधाति १
उदु तिष्ठ सवितः श्रुध्य१स्य हिरण्यपाणे प्रभृतावृतस्य ।
व्यु१र्वी पृथ्वीममतिं सृजान आ नृभ्यो मर्तभोजनं सुवानः २
अपि ष्टुतः सविता देवो अस्तु यमा चिद्विश्वे वसवो गृणन्ति ।
स नः स्तोमान् नमस्य१श्चनो धाद् विश्वेभिः पातु पायुभिर्नि सूरीन् ३
अभि यं देव्यदितिर्गृणाति सवं देवस्य सवितुर्जुषाणा ।
अभि सम्राजो वरुणो गृणन्त्यभि मित्रासो अर्यमा सजोषाः ४ ४७०
अभि ये मिथो वनुषः सपन्ते रातिं दिवो रातिषाचः पृथिव्याः ।
अहिर्बुध्न्य उत नः शृणोतु वरूत्र्येकधेनुभिर्नि पातु ५ ४७१

अनु तन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरियानः ।
भगमुग्रोऽवसे जोहवीति भगमनुग्रो अध याति रत्नम् ६ ४७४

॥ १०७ ॥ (ऋ० ७।४५।१-४)

आ देवो यातु सविता सुरत्नो ऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः ।
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयंश्च प्रसुवञ्च भूम १
उदस्य बाहू शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया दिवो अन्ताँ अनष्टाम् ।
नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्याम् २
स घा नो देवः सविता सहावा ऽऽ साविषद् वसुपतिर्वसूनि ।
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं मर्तभोजनमध रासते नः ३ ४७५
इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगभस्तिमीळते सुपाणिम् ।
चित्रं वयो बृहदस्मे दधातु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४ ४७६

॥ १०८ ॥ (ऋ० १०।१३९।१-३)
(४७७-४७९) देवगन्धर्वो विश्वावसुः । त्रिष्टुप् ।

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात् सविता ज्योतिरुदयाँ अजस्रम् ।
तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्संपश्यन् विश्वा भुवनानि गोपाः १
नृचक्षा एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
स विश्वाचीरभि चष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् २
रायो बुध्नः संगमनो वसूनां विश्वा रूपाभि चष्टे शचीभिः ।
देव इव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ३ ४७९

॥ १०९ ॥ (ऋ० १०।१४९।१-५)
(४८०-४८४) अर्चन् हैरण्यस्तूपः । त्रिष्टुप् ।

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृंहत् ।
अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम् १ ४८०
यत्रा समुद्रः स्कभितो व्यौनदपां नपात् सविता तस्य वेद ।
अतो भूरत आ उत्थितं रजो ऽतो द्यावापृथिवी अप्रथेताम् २
पश्चेदमन्यदभवद् यजत्रममर्त्यस्य भुवनस्य भूना ।
सुपर्णो अङ्ग सवितुर्गरुत्मान् पूर्वो जातः स उ अस्यानु धर्म ३ ४८२

गावं इव ग्रामं यूयुधिरिवाश्वान् वाश्रेवं वत्सं सुमना दुहाना।
पतिरिव जायामभि नो न्येतु धर्ता दिवः सविता विश्ववारः ४
हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वा ऽऽङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन्।
एवा त्वार्चन्नवसे वन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम् ५ ४८४

॥ ११० ॥ (४८५-५१६) (वा० य० १।१०,३१)+

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् १० ४८५
सवितुस्त्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः।
सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ३१ ४८६

॥ १११ ॥ (वा० य० ४।४,२५)*

चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः।
तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ४
अभि त्यं देवꣳसवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवꣳ रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम्।
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः २५ ४८८

॥ ११२ ॥ (वा० य० ५।३९)

देव सवितरेष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन्।
एतत् त्वं देव सोम देवो देवाँ२ उपागा इदमहं मनुष्यान्त्सह रायस्पोषेण स्वाहा ३९ ४८९

॥ ११३ ॥ (वा० य० ८।७)

उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनोधाश्चनोधा असि चनो मयि धेहि।
जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे ७ ४९०

॥ ११४ ॥ (वा० य० ९।१; ११।७; ३०,१)×

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाजं नः स्वदतु स्वाहा १ ४९१

+ वा० य० १।११,२४; २।११; ५।२२,२६; ६।१,९,३०; ९।३०,३८; १०।६; ११।९,२८; १८।३७; २०।३; २२।१; ३७।१; ३८।१। अथर्व. १९।५१।२।

* अथर्व. ७।१४।१-२। सा० ४६४।

× वा० य० ९,५; १८,३० = दै० [अदितिः०] १६।

॥ ११५ ॥ (वा० य० १०,५; २८)×

सवित्रे स्वाहा ॥ ५ ॥　　सवितासि सत्यप्रसवः　२८　४९३

॥ ११६ ॥ (वा० य० ११।१-३,८,११,६३)

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः ।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्　१
युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे । स्वर्ग्याय शक्त्या　२　४९५
युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवम् ।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान्　३
इमं नो देव सवितर्यज्ञं प्रणय देवाव्यꣳ सखिविदꣳ सत्राजितं धनजितꣳ स्वर्जितम् ।
ऋचा स्तोमꣳ समर्धय गायत्रेण रथन्तरं बृहद्गायत्रवर्त्तनि स्वाहा　८
हस्त आधाय सविता बिभ्रदभ्रिꣳ हिरण्ययीम् ।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्　११
देवस्त्वा सवितोद्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुबाहुरुत शक्त्या ।
अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिश आपृण　६३　४९९

॥ ११७ ॥ (वा० य० १७।७४)

ताꣳ सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम् ।
यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनाꣳ सहस्रधारां पयसा महीं गाम्　७४　५००

॥ ११८ ॥ (वा० य० १९।४३)

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । मां पुनीहि विश्वतः　४३　५०१

॥ ११९ ॥ (वा० य० २०।७०)*

य इन्द्र इन्द्रियं दधुः सविता वरुणो भगः । स सुत्रामा हविष्पतिर्यजमानाय सश्चत ७०　५०२

॥ १२० ॥ (वा० य० २१।२१)

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम् ।
ककुप् छन्द इहेन्द्रियं वशा वेहद्वयो दधुः　२१　५०३

॥ १२१ ॥ (वा० य० २२।११-१४)

देवस्य चेततो महीं प्र सवितुर्हवामहे । सुमतिꣳ सत्यराधसम्　११
सुष्टुतिꣳ सुमतीवृधो रातिꣳ सवितुरीमहे । प्र देवाय मतीविदे　१२　५०५

× वा० य० १०,५ = २२,६;　* वा० य० २०।७१-७२ = दै० [इन्द्रः] २९५५-५६ ।

रातिं सत्पतिं महे सवितारमुप ह्वये । आसवं देववीतये १३
देवस्य सवितुर्मतिमासवं विश्वदेव्यम् । धिया भगं मनामहे १४ ५०७

॥ १२२ ॥ (वा० य० ३०।४)

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः । सवितारं नृचक्षसम् ४ ५०८

॥ १२३ ॥ (वा० य० ३५।२-३,५)

सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्याँल्लोकमिच्छतु । तस्मै युज्यन्तामुस्रियाः २
सविता पुनातु ३ ५१०
सविता ते शरीराणि मातुरुपस्थ आ वपतु । तस्मै पृथिवि शं भव ५ ५११

॥ १२४ ॥ (वा० य० ३७।११-१२,१४-१५)

देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु । ११
सुषदा पश्चाद् देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः १२
गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम् ।
सं देवो देवेन सवित्रा गत स सूर्येण रोचते १४
समग्निरग्निना गत सं दैवेन सवित्रा स सूर्येणारोचिष्ट ।
स्वाहा समग्निस्तपसा गत सं दैव्येन सविता स सूर्येणारूरुचत १५ ५१५

॥ १२५ ॥ (३८।८)

सवित्रे त्वं ऋभुमते विभुमते वाजवते स्वाहा ८ ५१६

॥ १२६ ॥ (अथर्व० १।१८।३ +

(५१७) द्रविणोदाः । विराडास्तारपङ्क्तिस्त्रिष्टुप् ।

यत् त आत्मनि तन्वां घोरमस्ति यद् वा केशेषु प्रतिचक्षणे वा ।
सर्वं तद् वाचाप हन्मो वयं देवस्त्वा सविता सूदयतु ३ ५१७

॥ १२७ ॥ (अथर्व० ५।२४।१)

(५१८-५२४) अथर्वा । चतुष्पदाऽतिशक्करी ।

सविता प्रसवानामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकू-
त्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा १ ५१८

+ दै० [आयुर्वेद०] ६७५ ।

॥ १२८ ॥ (अथर्व० ६।१।१-३)

उष्णिक्, १ त्रिपदा पिपीलिकमध्या साम्नी जगती, २–३ पिपीलिकमध्या पुर उष्णिक् ।

दोषो गाय बृहद् गाय द्युमद् धेहि । आथर्वण स्तुहि देवं सवितारम् १

तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः । सत्यस्य युवानमद्रोघवाचं सुशेवम् २ ५२०

स घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि । उभे सुष्टुती सुगातवे ३ ५२१

॥ १२९ ॥ (अथर्व० ७।१४।३–४) +

३ त्रिष्टुप्, ४ जगती ।

सावीर्हि देव प्रथमाय पित्रे वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै ।

अथास्मभ्यं सवितर्वार्याणि दिवोदिव आ सुवा भूरि पश्वः ३

दमूना देवः सविता वरेण्यो दधद् रत्नं दक्षं पितृभ्य आयूंषि ।

पिबात् सोमं ममददेनमिष्टे परिज्मा चित् क्रमते अस्य धर्मणि ४ ५२३

॥ १३० ॥ (अथर्व० १९।१६।१) अनुष्टुप् ।

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम् ।

सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः १ ५२४

॥ १३१ ॥ (अथर्व० ५।२५।१२)

(५२५-५२६) ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।

सवितः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।

पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे १२ ५२५

॥ १३२ ॥ (अथर्व० ५।२६।२) द्विपदा प्राजापत्या बृहती ।

युनक्तु देवः सविता प्रजानन्नस्मिन् यज्ञे महिषः स्वाहा २ ५२६

॥ १३३ ॥ (अथर्व० ७।१६।१)

(५२७) भृगुः । त्रिष्टुप् ।

बृहस्पते सवितर्वर्धयैनं ज्योतयैनं महते सौभगाय ।

संशितं चित् संतरं सं शिशाधि विश्व एनमनु मदन्तु देवाः १ ५२७

॥ १३४ ॥ (अथर्व० १०।५।१४)

(५२८) सिन्धुद्वीपः । पथ्यापङ्क्तिः ।

देवस्य सवितुर्भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।

प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये १४ ५२८

+ अथर्व० ७।१४।१–२ । = दै० [अदिति०] ४८८ ।

६ [दै० अदितिः०]

सवितृ-सहचारी देवगणः ।

(१) सवित्राद्याः ।

॥ १३५ ॥ (५२९-५३०) (वा० य० १०।३०)

सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा
पशुभिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाग्निना
तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्पामि ३० ५२९

(२) सवित्रादयः ।

॥ १३६ ॥ (वा० य० ३९।६)

सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीये आदित्यश्चतुर्थे
चन्द्रमाः पञ्चम ऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे ।
मित्रो नवमे वरुणो दशम इन्द्र एकादशे विश्वे देवा द्वादशे ६ ५३०

(३) इन्द्रः, भगः, सविता ।

॥ १३७ ॥ (अथर्व० १।२६।२)

(५३१) ब्रह्मा । त्रिपदा एकावसाना साम्नी त्रिष्टुप् ।

सखासावस्मभ्यमस्तु रातिः सखेन्द्रो भगः सविता चित्रराधाः २ ५३१

(४) सविता, आदित्याः, रुद्राः, वसवः ।

॥ १३८ ॥ (अथर्व० ६।६८।१)

(५३२) अथर्वा । पुरो विराडतिशाक्वरगर्भा चतुष्पदा जगती ।

आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि ।
आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः १ ५३२

(५) बृहस्पतिः सविता मित्रोऽर्यमा भगोऽश्विनौ ।

॥ १३९ ॥ (अथर्व० ६।१०३।१)

(५३३) उच्छोचनः । अनुष्टुप् ।

संदानं वो बृहस्पतिः संदानं सविता करत् ।
संदानं मित्रो अर्यमा संदानं भगो अश्विना १ ५३३

(५) सूर्यः ।

॥ १४० ॥ (ऋ० १।५०।१-१३) *

(५३४-४६) प्रस्कण्वः काण्वः । गायत्री, १०-१३ अनुष्टुप् ।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् १
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे २ ५३५
अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ३
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचनम् ४
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ५
येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ६
वि द्यामेषि रजस्पृथ्व्हा मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ७ ५४०
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ८
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ९
उद् वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् १०
उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् । हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ११
शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि । अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि १२ ५४५
उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह । द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं द्विषते रधम् १३ ५४६

॥ १४१ ॥ (ऋ० १।११५।१-६) +

(५४७-५१) कुत्स आङ्गिरसः । त्रिष्टुप् ।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च १
सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् २
भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः ।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ३ ५४९

---

* ऋ० १।५०।१-१०,१२-१३ = वा० य० ७,४१; ८,४०-४१; २०,२१; २७,१०; ३३,३१-३२,३६; ३५,१४; ३८,२४. सा० ३१,६३३-६४० । अथर्व० १।२२,४; १३,२,१६-२४; १७,१,२४; २०,४७,१३-२१ । ऋ० १।५०।११—१३ = दै० [आयुर्वेद०] ५४५-४७ ।

+ ऋ० १।११५।१-२,४-६ = वा० य० ७,४२; १३,४६; ३३,३७-३८,४२ । अथर्व० १३,२,३५; २०,१०७,१४-१५; १२३,१-२ । सा० ६२९ ।

❀

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्था—दाद् रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ४ ५५०
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ५
अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता—मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ६ ५५२

॥ १४२ ॥ (ऋ० १।१६४।४६-४७) ×

(५५३-५४) दीर्घतमा औचथ्यः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु—रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वद—न्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ४६
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्या—दिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते ४७ ५५४

॥ १४३ ॥ (ऋ० ४।४०।५) +

(५५५) वामदेवो गौतमः । जगती ।

हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षस—द्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद् वरसदृतसद् व्योमस—दब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ५ ५५५

॥ १४४ ॥ (ऋ० ५।४०।५)

(५५६) अत्रिर्भौमः । । अनुष्टुप् ।

यत् त्वा सूर्य स्वर्भानु—स्तमसाविध्यदासुरः। अक्षेत्रविद् यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः५ ५५६

॥ १४५ ॥ (ऋ० ७।६०।१)

(५५७-५६७) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

यदद्य सूर्य ब्रवोऽनागा उद्यन् मित्राय वरुणाय सत्यम् ।
वयं देवत्रादिते स्याम तव प्रियासो अर्यमन् गृणन्तः १ ५५७

॥ १४६ ॥ (ऋ० ७।६२।१-३)

उत् सूर्यो बृहदर्चींष्यश्रेत् पुरु विश्वा जनिम मानुषाणाम् ।
समो दिवा ददृशे रोचमानः क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् १
स सूर्य प्रति पुरो न उद् गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः ।
प्र नो मित्राय वरुणाय वोचो—ऽनागसो अर्यम्णे अग्नये च २ ५५९

× दै० [आयुर्वेद०] ७७४-७८९ (अप्तृणसूर्याः) । + वा० य० १०,२४;१२,१४

वि नः सहस्रं शुरुधो रदन्त्वृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं मा नः कामं पूपुरन्तु स्तवानाः　३　५६०

॥ १४७ ॥ (ऋ० ७।६३।१-४)

उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः　साधारणः सूर्यो मानुषाणाम् ।
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मेव यः समविव्यक् तमांसि　१
उद्वेति प्रसवीता जनानां　महान् केतुरर्णवः सूर्यस्य ।
समानं चक्रं पर्याविवृत्सन्　यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः　२
विभ्राजमान उषसामुपस्थाद्　रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः ।
एष मे देवः सविता चच्छन्द　यः समानं न प्रमिनाति धाम　३
दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति　दूरेअर्थस्तरणिर्भ्राजमानः ।
नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता　अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि　४　५६४

॥ १४८ ॥ (ऋ० ७।६६।१४-१६) +

प्रगाथः = (समा बृहती + विषमा सतोबृहती) १६ पुर उष्णिक् ।

उदु त्यद् दर्शतं वपुर्दिव एति प्रतिह्वरे ।
यदीमाशुर्वहति देव एतशो　विश्वस्मै चक्षसे अरम्　१४　५६५
शीर्ष्णःशीर्ष्णो जगतस्तस्थुषस्पतिं　समया विश्वमा रजः ।
सप्त स्वसारःसुविताय सूर्यं　वहन्ति हरितो रथे　१५
तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं　जीवेम शरदः शतम्　१६　५६७

॥ १४९ ॥ (ऋ० ८।१०१।११-१२) ×

(५६८-६९) जमदग्निर्भार्गवः । प्रगाथः = (विषमा बृहती + समा सतोबृहती)

बण्महाँ असि सूर्य　बळादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यते　ऽद्धा देव महाँ असि　११
बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि　सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो　विभु ज्योतिरदाभ्यम्　१२　५६९

+ ऋ० ७।६६।१६ = वा० य० ३६,२४ ।
× वा० य० ३३,३९-४० । अथर्व० १३,२,२९; २०,५८,३-४ । सा० २७६,१७८८-८९ ।

॥ १५० ॥ (ऋ० १०।३७।१-१२)×

(५७०-८१) सौर्योऽभितपाः । जगती, १० त्रिष्टुप् ।

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं सपर्यत ।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत १ ५७०
सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च ।
विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहाऽऽपो विश्वाहोदेति सूर्यः २
न ते अदेवः प्रदिवो नि वासते यदेतशेभिः पतरै रथर्यसि ।
प्राचीनमन्यदनु वर्तते रज उदन्येन ज्योतिषा यासि सूर्य ३
येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना ।
तेनास्मद् विश्वामनिरामनाहुति—मपामीवामप दुष्ष्वप्न्यं सुव ४
विश्वस्य हि प्रेषितो रक्षसि व्रत—महेळयन्नुच्चरसि स्वधा अनु ।
यदद्य त्वा सूर्योपब्रवामहै तं नो देवा अनु मंसीरत क्रतुम् ५
तं नो द्यावापृथिवी तन्न आप इन्द्रः शृण्वन्तु मरुतो हवं वचः ।
मा शूने भूम सूर्यस्य संदृशि भद्रं जीवन्तो जरणामशीमहि ६ ५७५
विश्वाहा त्वा सुमनसः सुचक्षसः प्रजावन्तो अनमीवा अनागसः ।
उद्यन्तं त्वा मित्रमहो दिवेदिवे ज्योग् जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ७
महि ज्योतिर्बिभ्रतं त्वा विचक्षण भास्वन्तं चक्षुषेचक्षुषे मयः ।
आरोहन्तं बृहतः पाजसस्परि वयं जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ८
यस्य ते विश्वा भुवनानि केतुना प्र चेरते नि च विशन्ते अक्तुभिः ।
अनागास्त्वेन हरिकेश सूर्या—ऽह्नाह्ना नो वस्यसावस्यसोदिहि ९
शं नो भव चक्षसा शं नो अह्ना शं भानुना शं हिमा शं घृणेन ।
यथा शमध्वञ्छमसद् दुरोणे तत् सूर्य द्रविणं धेहि चित्रम् १०
अस्माकं देवा उभयाय जन्मने शर्म यच्छत द्विपदे चतुष्पदे ।
अदत् पिबदूर्जयमानमाशितं तदस्मे शं योररपो दधातन ११ ५८०
यद् वो देवाश्चकृम जिह्वया गुरु मनसो वा प्रयुती देवहेळनम् ।
अरावा यो नो अभि दुच्छुनायते तस्मिन् तदेनो वसवो नि धेतन १२ ५८१

× ऋ० १०,३७,१ = वा० य० ४,३५ ।

॥ १५१ ॥ (ऋ० १०।१५८।१-५)

(५८१-८६) चक्षुः सौर्यः । गायत्री, २ स्वराट् ।

सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात् । अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः १

जोषा सवितर्यस्य ते हरः शतं सवाँ अर्हति । पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः २

चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः । चक्षुर्धाता दधातु नः ३

चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः । सं चेदं वि च पश्येम ४ ५८५

सुसंदृशं त्वा वयं प्रति पश्येम सूर्य । वि पश्येम नृचक्षसः ५ ५८६

॥ १५२ ॥ (ऋ० १०।१७०।१-४) ❀

(५८७-९०) विभ्राट् सौर्यः । जगती, ४ आस्तारपङ्क्तिः ।

विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविहुतम् ।

वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति १

विभ्राड् बृहत् सुभृतं वाजसातमं धर्मन् दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।

अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा २

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद् धनजिदुच्यते बृहत् ।

विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ३

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः ।

येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता ४ ५९०

॥ १५३ ॥ (५९१-६०९) (वा० य० १।११)

भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषं दृंहन्तां दुर्याः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि ।

पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्या उपस्थेऽग्ने हव्यं रक्ष ११ ५९१

॥ १५४ ॥ (वा० य० २।२६) ×

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि । सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते २६ ५९२

॥ १५५ ॥ (वा० य० ३।५,९-१०)

भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा ।

तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ५ ५९३

❀ ऋ० १०,१७०,१-३ = वा० य० ३३,३०; सा० ६२८,१४५३-१४५५

× वा० य० २।२६ (उत्तरार्धः) = अथर्व० १०,५,३७ (२); वा० य० २।२७

सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा । सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।
ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ९
सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा १० ५९५

॥ १५५ ॥ (वा० य० ५।३३)

अध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ३३ ५९६

॥ १५७ ॥ (वा० य० ८।४०)※

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ२ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ।
उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजायैषते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय ।
सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ४० ५९७

॥ १५८ ॥ (वा० य० १२।५८)×

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।
सूर्यस्तेऽधिपतिस्तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ५८ ५९८

॥ १५९ ॥ (वा० य० २०।१६,२१)+

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनाꣳसि चकृमा वयम् ।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳ हसः १६
उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् २१ ६००

॥ १६० ॥ (वा० य० ३३।३३-३५,४१) ●

दैव्यावध्वर्यू आ गतꣳ रथेन सूर्यत्वचा । मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे ३३
आ न इडाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु ।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ३४
यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ३५
आर्यन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ४१ ६०४

※ वा० य० ८।४१। × वा० य० १२।४३=दै० [अदितिः०] ५०१ मन्त्रः द्रष्टव्यः ।
+ वा० य० २०।१६=अथर्ववेदे (६।११५।१-२) पाठभेद रूपेण, तथा च वा० य० २०।२१; २७।१०; ३५,१४; ३८,२४
= ऋ० १।५०।१० अथर्व० ७।५३।७ पाठभेदेन च दृश्यते ।
● वा० य० ३३।३५,४१ = दै० [इन्द्रः] १४३३,१३७८।

॥ १६१ ॥ (वा० य० ३६।९,२४)×

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ९ ६०५
तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः
शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् २४ ६०६

॥ १६२ ॥ (वा० य० ३७।१६-१८)

धर्ता दिवो वि भाति तपसस्पृथिव्या धर्ता देवो देवानाममर्त्यस्तपोजाः ।
वाचमस्मे नि यच्छ देवायुवम् १६
अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्त्ति भुवनेष्वन्तः १७
विश्वासां भुवां पते विश्वस्य मनसस्पते विश्वस्य वचसस्पते सर्वस्य वचसस्पते ।
देवश्रुत्त्वं देव घर्म देवो देवान् पाह्यत्र प्रावीरनु वां देववीतये ।
मधु माध्वीभ्यां मधु माधूचीभ्याम् १८ ६०९

॥ १६३ ॥ (अथर्व० १।३।५)

(६१०-६११) अथर्वा । पथ्यापङ्क्तिः ।

विद्मा शरस्य पितरं सूर्यं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ५ ६१०

॥ १६४ ॥ (अथर्व० २।२१।१-५)

[एकावसानम्] १-४ निचृद्विषमा गायत्री, ५ भुरिग्विषमा ।

सूर्य यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः १
सूर्य यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः २
सूर्य यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ३
सूर्य यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ४
सूर्य यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ५ ६१५

× दै० [आयुर्वेद०] ११९-१२६ ।

॥ १६५ ॥ (अथर्व० ५।२४।९) चतुष्पदाऽतिशक्वरी ।

सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामा-
कूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ९ ६१६

॥ १६६ ॥ (अथर्व० ७।१३।१-२) अनुष्टुप् ।

यथा सूर्यो नक्षत्राणामुद्यंस्तेजांस्याददे एवा स्त्रीणां च पुंसां च द्विषतां वर्च आ ददे १
यावन्तो मा सपत्नानामायन्तं प्रतिपश्यथ ।
उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आ ददे २ ६१८

॥ १६७ ॥ (अथर्व० १९।१७।५) अतिजगती ।

सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ५ ६१९

॥ १६८ ॥ (अथर्व० १९।१८।५) सम्राडाचर्यनुष्टुप् ।

सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवः प्रतीच्या दिशोऽभिदासात् ५ ६२०

॥ १६९ ॥ (अथर्व० १९।१९।३) भुरिग्बृहती ।

सूर्यो दिवोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ३ ६२१

॥ १७० ॥ (अथर्व० १९।२३।२४) दैवी पङ्क्तिः ।

सूर्याभ्यां स्वाहा २४ ६२२

॥ १७१ ॥ (अथर्व० २।३६।५)
(६२३) पतिवेदनः । अनुष्टुप् ।

भगस्य नावमा रोह पूर्णामनुपदस्वतीम् । तयोपप्रतारय यो वरः प्रतिकाम्यः ५ ६२३

॥ १७२ ॥ (अथर्व० ४।४०।७)
(६२४) शुक्रः । त्रिष्टुप् ।

य उपरिष्टाज्जुह्वति जातवेद ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
सूर्यमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ७ ६२४

॥ १७३ ॥ (अथर्व० ६।५२।१)
(६२५) भागलिः । अनुष्टुप् ।

उत्सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन् ।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा १ ६२५

॥ १७४ ॥ (अथर्व० १६।९।३-४)

(६२६-२७) यमः । ३ साम्नी पङ्क्तिः, ४ परोष्णिक् ।

अगन्म स्व१ः स्वरगन्म सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ३

वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान् भूयासं वसु मयि धेहि ४ ६२७

॥ १७५ ॥ (साम० ४५८)

(६२८) गौराङ्गिरसः । अतिजगती (अष्टिर्वा) ।

अयं सहस्रमानवो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म ।

ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयदरेपसः । सचेतसः स्वसरे मन्युमन्तश्चिता गोः २ ६२८

॥ १७६ ॥ (साम० १७९०-९२) × सुकक्ष आङ्गिरसः । गायत्री ।

सूर्य-सहचारी देवगणः ।

(१) सूर्यः पर्जन्याग्नयो वा, सरस्वान् सूर्यो वा ।

॥ १७७ ॥ (ऋ० १।१६४।५१-५२)

(६२९-३०) दीर्घतमा औचथ्यः । ५१ अनुष्टुप्, ५२ त्रिष्टुप् ।

समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभिः ।

भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः ५१

दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम् ।

अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ५२ ६३०

(२) सूर्यमित्रावरुणाः ।

॥ १७८ ॥ (ऋ० ७।६३।५)

(६३१) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

यत्रा चक्रुरमृता गातुमस्मै श्येनो न दीयन्नन्वेति पाथः ।

प्रति वां सूर उदिते विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यैः ५ ६३१

(३) सूर्याविवाहः ।

॥ १७९ ॥ (ऋ० १०।८५।६-१६)

(६३२-५८) सावित्री सूर्या ऋषिका । अनुष्टुप्, १४ त्रिष्टुप् ।

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।

सूर्याया भद्रमिद् वासो गाथयैति परिष्कृतम् ६ ६३२

× दै० [इन्द्रः] २४६०-२४६२ ।

*

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ७
स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वरा ऽग्निरासीत् पुरोगवः ८
सोमो वधूयुरभव दश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात् ९ ६३५
मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात् सूर्या गृहम् १०
ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितः ।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ११
शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मनस्मयं सूर्या ऽऽरोहत् प्रयती पतिम् १२
सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत् ।
अघासु हन्यन्ते गावो ऽर्जुन्योः पर्युह्यते १३
यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
विश्वे देवा अनु तद् वामजानन् पुत्रः पितराववृणीत पूषा १४ ६४०
यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप । क्वैकं चक्रं वामासीत् क्व देष्ट्राय तस्थथुः १५
द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद् गुहा तदद्धातय इद् विदुः १६ ६४१

(४) सूर्या--सावित्री ।

॥ १८० ॥ (ऋ० १०।८५।३२-४७)

अनुष्टुप्, ३४ उरोबृहती, ३६-३७,४४ त्रिष्टुप्, ४३ जगती ।

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दंपती ।
सुगेभिर्दुर्गमतीता मप द्रान्त्वरातयः ३२
सुमङ्गलीरियं वधू रिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वाया ऽथास्तं वि परेतन ३३
तृष्टमेतत् कटुकमेत दपाष्ठवद् विषवन्नैतदत्तवे ।
सूर्यां यो ब्रह्मा विद्यात् स इद् वाधूयमर्हति ३४ ६४५

आशसंनं विशसंन॒मथो॑ अधिवि॒कर्तनम् ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्र॒ह्मा तु शुन्धति ३५
गृभ्णामि ते सौभग॒त्वाय॒ हस्तं॒ मया॒ पत्या॑ ज॒रद॑ष्टि॒र्यथासः॑ ।
भगो॑ अर्य॒मा स॑वि॒ता पुर॑न्धि॒र्मह्यं॑ त्वादु॒र्गार्ह॑पत्याय दे॒वाः ३६
तां पू॑षञ्छि॒वत॑मा॒मेर॑यस्व॒ यस्यां॒ बीजं॑ मनु॒ष्या॒३ वप॑न्ति ।
या न॑ ऊ॒रू उ॑श॒ती वि॒श्रया॑ते॒ यस्या॑मु॒शन्तः॑ प्र॒हरा॑म॒ शेप॑म् ३७
तुभ्य॑म॒ग्रे पर्य॑वह॒न्त्सू॒र्यां व॑ह॒तुना॑ स॒ह ।
पुनः॒ पति॑भ्यो जा॒यां दा अ॑ग्ने प्र॒जया॑ स॒ह ३८
पुनः॒ पत्नी॑म॒ग्निर॑दा॒दायु॑षा स॒ह वर्च॑सा ।
दी॒र्घायु॑रस्या॒ यः पति॒र्जीवा॑ति श॒रदः॑ श॒तम् ३९ ६५०

सोमः॑ प्रथ॒मो वि॑विदे गन्ध॒र्वो वि॑विद॒ उत्त॑रः ।
तृ॒तीयो॑ अ॒ग्निष्टे॒ पति॑स्तु॒रीय॑स्ते मनुष्य॒जाः ४०
सोमो॑ ददद् गन्ध॒र्वाय॑ गन्ध॒र्वो द॑दद॒ग्नये॑ ।
र॒यिं च॑ पु॒त्राँश्चा॑दा॒द॒ग्निर्मह्य॑मथो॑ इ॒माम् ४१
इ॒हैव स्तं॒ मा वि यौ॑ष्टं॒ विश्व॒मायु॒र्व्य॑श्नुतम् ।
क्रीळ॑न्तौ पु॒त्रैर्नप्तृ॑भि॒र्मोद॑माना॒ स्वे गृ॒हे ४२
आ नः॑ प्र॒जां ज॑नयतु प्र॒जाप॑तिराजर॒साय॒ सम॑नक्त्वर्य॒मा ।
अदु॑र्मङ्ग॒लीः प॑तिलो॒कमा वि॑श॒ शं नो॑ भव द्वि॒पदे॒ शं चतु॑ष्पदे ४३
अघो॑रचक्षु॒रप॑तिघ्न्येधि शि॒वा प॒शुभ्यः॑ सु॒मनाः॑ सु॒वर्चाः॑ ।
वी॒र॒सूर्दे॒वका॑मा स्यो॒ना शं नो॑ भव द्वि॒पदे॒ शं चतु॑ष्पदे ४४ ६५५

इ॒मां त्वमि॑न्द्र मीढ्वः सुपु॒त्रां सु॒भगां॑ कृणु ।
दशा॑स्यां पु॒त्राना धे॑हि॒ पति॑मेकाद॒शं कृ॑धि ४५
स॒म्राज्ञी॒ श्वशु॑रे भव स॒म्राज्ञी॒ श्व॒श्र्वां भ॑व ।
नना॑न्दरि स॒म्राज्ञी॑ भव स॒म्राज्ञी॒ अधि॑ दे॒वृषु॑ ४६
सम॑ञ्जन्तु॒ विश्वे॑ दे॒वाः समापो॒ हृद॑यानि नौ ।
सं मा॑त॒रिश्वा॒ सं धा॒ता समु॒ देष्ट्री॑ दधातु नौ ४७ ६५८

[५] सूर्य-वैश्वानरोऽग्निः।

॥ १८१ ॥ (ऋ० १०।८८।१-१९)

(६५९-७७) आङ्गिरसो मूर्धन्वान्, वामदेव्यो वा। त्रिष्टुप्।

हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ।
तस्य भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त १
गीर्णं भुवनं तमसापगूळ्ह माविः स्वरभवज्जाते अग्नौ।
तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापो ऽरणयन्नोषधीः सख्ये अस्य २ ६६०
देवेभिर्न्विषितो यज्ञियेभि रग्निं स्तोषाण्यजरं बृहन्तम्।
यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमा मातताना रोदसी अन्तरिक्षम् ३
यो होताऽऽसीत् प्रथमो देवजुष्टो यं समाञ्जन्नाज्येना वृणानाः।
स पतत्रीत्वरं स्था जगद्य च्छ्वात्रमग्निरकृणोज्जातवेदाः ४
यज्जातवेदो भुवनस्य मूर्ध न्नतिष्ठो अग्ने सह रोचनेन।
तं त्वाहेम मतिभिर्गीर्भिरुक्थैः स यज्ञियो अभवो रोदसिप्राः ५
मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्नि स्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन्।
मायामू तु यज्ञियानामेता मपो यत् तूर्णिश्चरति प्रजानन् ६
दृशेन्यो यो महिना समिद्धो ऽरोचत दिवियोनिर्विभावा।
तस्मिन्नग्नौ सूक्तवाकेन देवा हविर्विश्व आजुहवुस्तनूपाः ७ ६६५
सूक्तवाकं प्रथममादिदग्नि मादिद्धविरजनयन्त देवाः।
स एषां यज्ञो अभवत् तनूपा स्तं द्यौर्वेद तं पृथिवी तमापः ८
यं देवासोऽजनयन्ताग्निं यस्मिन्नाजुहवुर्भुवनानि विश्वा।
सो अर्चिषा पृथिवीं द्यामुतेमा मृजूयमानो अतपन्महित्वा ९
स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्नि मजीजनञ्छक्तिभी रोदसिप्राम्।
तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे कं स ओषधीः पचति विश्वरूपाः १०
यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम्।
यदा चरिष्णू मिथुनावभूता मादित् प्रापश्यन् भुवनानि विश्वा ११
विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वानरं केतुमह्नामकृण्वन्।
आ यस्ततानोषसो विभाती रपो ऊर्णोति तमो अर्चिषा यन् १२ ६७०

वैश्वानरं कवयो यज्ञियासो ऽग्निं देवा अजनयन्नजुर्यम् ।
नक्षत्रं प्रत्नममिनच्चरिष्णु यक्षस्याध्यक्षं तविषं बृहन्तम् १३
वैश्वानरं विश्वहा दीदिवांसं मन्त्रैरग्निं कविमच्छा वदामः ।
यो महिम्ना परिबभूवोर्वी उतावस्तादुत देवः परस्तात् १४
द्वे स्रुती अशृणवं पितॄणा—महं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्तरा पितरं मातरं च १५
द्वे समीची बिभृतश्चरन्तं शीर्षतो जातं मनसा विमृष्टम् ।
स प्रत्यङ् विश्वा भुवनानि तस्था—वप्रयुच्छन् तरणिर्भ्राजमानः १६
यत्रा वदेते अवरः परश्च यज्ञन्योः कतरो नौ वि वेद ।
आ शेकुरित् सधमादं सखायो नक्षन्त यज्ञं क इदं वि वोचत् १७ ६७५
कत्यग्नयः कति सूर्यासः कत्युषासः कत्यु स्विदापः ।
नोपस्पिजं वः पितरो वदामि पृच्छामि वः कवयो विद्मने कम् १८
यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं सुपर्ण्यो३ वसते मातरिश्वः ।
तावद् दधात्युप यज्ञमायन् ब्राह्मणो होतुरवरो निषीदन् १९ ६७७

(६) सूर्यो, हरिमा हृद्रोगश्च ।

॥ १८१ ॥ [दै० (आयुर्वेद०) ४८९-९१ मन्त्राः द्रष्टव्याः ।]

(७) सूर्यः प्रजापतिः ।

॥ १८२ ॥ [दै० (आयुर्वेद०) १३३१-३३ मन्त्रौ द्रष्टव्यौ ।]

(८) सूर्याचन्द्रमसौ ।

॥ १८४ ॥ (अथर्व० ६।८३।१)×

(६७८) भगः । अनुष्टुप् ।

अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव ।
सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु १ ६७८

॥ १८५ ॥ (अथर्व० ७।८१।१-६)+

(६७९-८४) अथर्वा । त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप्, ४ आस्तारपङ्क्तिः, ५ स्वराडास्तारपङ्क्तिः ।

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः १ ६७९

+ दै० [आयुर्वेद०] ५१३ । × ऋ० १०।८५।१८-१९; अथर्व० १३।२।११; १४।१।२३-२४ ।

नवोनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः २ ६८०
सोमस्यांशो युधां पतेऽनूनो नाम वा असि ।
अनूनं दर्श मा कृधि प्रजया च धनेन च ३
दर्शोऽसि दर्शतोऽसि समग्रोऽसि समन्तः ।
समग्रः समन्तो भूयासं गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ४
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्य त्वं प्राणेना प्यायस्व ।
आ वयं प्याशिषीमहि गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ५
यं देवा अंशुमाप्याययन्ति यमक्षितमक्षिता भक्षयन्ति ।
तेनास्मानिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिरा प्याययन्तु भुवनस्य गोपाः ६ ६८४

(९) सूर्यः आपश्च ।

॥ १८६ ॥ (अथर्व० ७।१०७।१)
(६८५) भृगुः । अनुष्टुप् ।

अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः ।
आपः समुद्रिया धारास्तास्ते शल्यमसिस्रसन् १ ६८५

(१०) सूर्यः गौः ।

॥ १८७ ॥ (अथर्व० २०।४८।१-६)
(६८६-९१) खिलम्, ४-६ सर्पराज्ञी । गायत्री ।

अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरण्यवः । अभि वत्सं न धेनवः १
ता अर्षन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः । जातं जात्रीर्यथा हृदा २
वज्रापवसाध्यः कीर्तिर्म्रियमाणमावहन् । मह्यमायुर्घृतं पयः ३
आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ४
अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः । व्यख्यन्महिषः स्वः ५
त्रिंशद्धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् । प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ६ ६९१

(६) त्वष्टा, धाता, पूषा, भगः, अर्यमा ।

[१] त्वष्टा । *

॥ १८८ ॥ (ऋ० १०।१८।६)

(६९२) संकुसुको यामायनः । त्रिष्टुप् ।

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति ष्ठ ।
इह त्वष्टा सुजनिमा सजोषा दीर्घमायुः करति जीवसे वः　६　६९२

॥ १८९ ॥ [६९३-९७] (वा० य० २।२४) ×

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन ।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्　२४　६९३

॥ १९० ॥ (वा० य० ६।७)

उपावीरस्युप देवान् दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्नितमान् ।
देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम्　७　६९४

॥ १९१ ॥ (वा० य० ८।१७) +

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपा देवोऽअग्निः ।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया सꣳरराणा यजमानाय द्रविणं दधात स्वाहा　१७　६९५

॥ १९२ ॥ (वा० य० २०।४४)

त्वष्टा दधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णेऽपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरूणि ।
वृषा यजन् वृषणं भूरिरेता मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान्　४४　६९६

॥ १९३ ॥ (वा० य० २९।९)

त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरर्वा जायत आशुरश्वः ।
त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्तारमिह यक्षि होतः　९　६९७

॥ १९४ ॥ (अथर्व० ३।३१।५)

(६९८-९९) ब्रह्मा । विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः ।

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं युनक्तीतीदं विश्वं भुवनं वि याति ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा　५　६९८

---

* दे० [अग्निः (आप्री सूक्तानि)] १९१५,१९२७,१९३९,१९५०,१९६१,१९७१,१९८९,२०००,२०११,२०११, २०३४,२०४५,२०५७,२०६९, २०८१,२०९२,२१०३,२११४,२११६,२१३८ ।

× वा० य० ८।१४,१६; अथर्व० ६।५३।३ (पाठभेदेन) ।　+ अथर्व० ७।१७।४ ।

(अथर्व० ५।२६।८) द्विपदा प्राजापत्या बृहती ।

त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ८ ६९९

॥ १९५ ॥ (अथर्व० ६।५३।३)

(७००) बृहच्छुक्रः । त्रिष्टुप् ।

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन ।
त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वो३ यद् विरिष्टम् ३ ७००

॥ १९६ ॥ (अथर्व० ६।७८।३)

(७०१-२) अथर्वा । अनुष्टुप् ।

त्वष्टा जायामजनयत् त्वष्टास्यै त्वां पतिम् ।
त्वष्टा सहस्रमायूंषि दीर्घमायुः कृणोतु वाम् ३ ७०१

॥ १९७ ॥ (अथर्व ६।८१।३)

यं परिहस्तमबिभरदितिः पुत्रकाम्या ।
त्वष्टा तमस्या आ बध्नाद् यथा पुत्रं जनादिति ३ ७०२

त्वष्टृ-सहचारी देवगणः ।

(१) त्वष्टा शुक्रश्च ।

॥ १९८ ॥ (ऋ० २।३६।३)

(७०३) गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । जगती ।

अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।
अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ३ ७०३

(२) त्वष्टा, पर्जन्यः, ब्रह्मणस्पतिः, अदितिः ।

॥ १९९ ॥ (अथर्व० ६।४।१)

(७०४) अथर्वा । पथ्याबृहती ।

त्वष्टा मे दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहः १ ७०४

[२] धाता ।

॥ २०० ॥ (ऋ० १०।१८।५)

(७०५) संकुसुको यामायनः । त्रिष्टुप् ।

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ५ ७०५

॥ २०१ ॥ (अथर्व० १३।४।३)

(७०६) ब्रह्मा । प्राजापत्याऽनुष्टुप् ।

स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम् ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ३ ७०६

॥ २०२ ॥ (अथर्व० १८।३।२६)

(७०७-१०) । अथर्वा । जगती ।

धाता मा निर्ऋत्या दक्षिणाया दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ २६ ७०७

धातृ-सहचारी-देवगणः ।

(१) धाता, सविता, इन्द्रः, त्वष्टा, अदितिः ।

॥ २०३ ॥ (अथर्व० ३।८।२)

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तामिन्द्रस्त्वष्टा प्रति हर्यन्तु मे वचः ।
हुवे देवीमदितिं शूरपुत्रां सजातानां मध्यमेष्ठा यथासानि २ ७०८

(२) धाताविधातारौ, ऋतवः ।

॥ २०४॥ (अथर्व० ३।१०।१०)

ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे १० ७०९

(३) धाता, विधाता, सविता, आदित्याः, रुद्राः, अश्विनौ ।

॥ २०५ ॥ (अथर्व० ५।३।९)

धाता विधाता भुवनस्य यस्पतिर्देवः सविताभिमातिषाहः ।
आदित्या रुद्रा अश्विनोभा देवाः पान्तु यजमानं निर्ऋथात् ९ ७१०

(४) धाता, सविता ।

॥ २०६ ॥ (अथर्व० ७।१७।१-२)

(७११-१२) भृगुः । १--२ गायत्री, २ त्रिष्टुप् ।

धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः । स नः पूर्णेन यच्छतु १
धाता दधातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम् ।
वयं देवस्य धीमहि सुमतिं विश्वराधसः २ ७११

❀

धाता विश्वा वार्या दधातु प्रजाकामाय दाशुषे दुरोणे ।
तस्मै देवा अमृतं सं व्ययन्तु विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ३ ७१३

(५) सविता, धाता, पूषा, त्वष्टा ।

॥ २०७ ॥ (अथर्व० ११।६।३)

(७१४) शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम् । त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ३ ७१४

[३] पूषा ।

॥ २०८ ॥ (ऋ० १।२३।१३-१५)

(७१५-१७) मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

आ पूषञ्चित्रबर्हिष—माघृणे धरुणं दिवः । आजा नष्टं यथा पशुम् १३ ७१५
पूषा राजानमाघृणि—रपगूळ्हं गुहा हितम् । अविन्दच्चित्रबर्हिषम् १४
उतो स मह्यमिन्दुभिः षड् युक्ताँ अनुसेषिधत् । गोभिर्यवं न चर्कृषत् १५ ७१७

॥ २०९ ॥ (ऋ० १।४२।१-१०)

(७१८-२७) कण्वो घौरः । गायत्री ।

सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात् । सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः १
यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति । अप स्म तं पथो जहि २
अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम् । दूरमधि स्रुतेरज ३ ७२०
त्वं तस्य द्वयाविनो ऽघशंसस्य कस्य चित् । पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ४
आ तत् ते दस्र मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे । येन पितॄनचोदयः ५
अधा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम । धनानि सुषणा कृधि ६
अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु । पूषन्निह क्रतुं विदः ७
अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने । पूषन्निह क्रतुं विदः ८ ७२५
शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम् । पूषन्निह क्रतुं विदः ९
न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि । वसूनि दस्ममीमहे १० ७२७

॥ २१० ॥ (ऋ० १।१३८।१-४)

(७२८-३१) परुच्छेपो दैवोदासिः । अत्यष्टिः ।

प्रप्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते ।
अर्चामि सुम्नयन्नह—मन्त्यूतिं मयोभुवम् ।
विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः १ ७२८

प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध
उष्ट्रो न पीपरो मृधः ।
हुवे यत् त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः ।
अस्माकमाङ्गूषान् द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि　२
यस्य ते पूषन्त्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित् सन्तोऽवसा बुभुज्रिर
इति क्रत्वा बुभुज्रिरे ।
तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे ।
अहेळमान उरुशंस सरी भव वाजेवाजे सरी भव　३　७३०
अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवो ऽहेळमानो ररिवाँ अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व ।
ओ षु त्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः ।
नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह्नुवे　४　७३१

॥ २११ ॥ (ऋ० ३।६२।७-९)
(७३२-३४) गाथिनो विश्वामित्रः । गायत्री ।

इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देव नव्यसी । अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते　७
तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धियम् । वधूयुरिव योषणाम्　८
यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । स नः पूषाविता भुवत्　९　७३४

॥ २१२ ॥ (ऋ० ६।४८।१६-१९)
(७३५-३८) शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिः) १६ ककुप्, १७ सतोबृहती, १८ पुर उष्णिक्, १९ बृहती ।

आ मा पूषन्नुप द्रव शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे । अघा अर्यो अरातयः　१६　७३५
मा काकम्बीरमुद् वृहो वनस्पति मशस्तीर्वि हि नीनशः ।
मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः　१७
दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम् । अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः　१८
परो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया ।
अभि ख्यः पूषन् पृतनासु नस्त्व मवा नूनं यथा पुरा　१९　७३८

॥ २१३ ॥ (ऋ० ६।५३।१-१०)
(७३९-७७४) बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । गायत्री, ८ अनुष्टुप् ।

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये । धिये पूषन्नयुज्महि　१
अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम् । वामं गृहपतिं नय　२　७४०

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन् दानाय चोदय । पणेश्चिद् वि म्रदा मनः ३
वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि । साधन्तामुग्र नो धियः ४
परि तृन्धि पणीना मारया हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रन्धय ५
वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम् । अथेमस्मभ्यं रन्धय ६
आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रन्धय ७ ७४५
यां पूषन् ब्रह्मचोदनी मारां बिभर्ष्याघृणे ।
तया समस्य हृदय मा रिख किकिरा कृणु ८
या ते अष्ट्रा गोओपशा ऽऽघृणे पशुसाधनी । तस्यास्ते सुम्नमीमहे ९
उत नो गोषणिं धिय मश्वसां वाजसामुत । नृवत् कृणुहि वीतये १० ७४८

॥ २१४ ॥ (ऋ० ६।५४।१-१०)+ गायत्री ।

सं पूषन् विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति । य एवेदमिति ब्रवत् १
समु पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति । इम एवेति च ब्रवत् २ ७५०
पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते । नो अस्य व्यथते पविः ३
यो अस्मै हविषाविध न्न तं पूषाऽपि मृष्यते । प्रथमो विन्दते वसु ४
पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पूषा वाजं सनोतु नः ५
पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः । अस्माकं स्तुवतामुत ६
माकिर्नेशन्माकीं रिष न्माकीं सं शारि केवटे । अथारिष्टाभिरा गहि ७ ७५५
शृण्वन्तं पूषणं वय मिर्यमनष्टवेदसम् । ईशानं राय ईमहे ८
पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त इह स्मसि ९
परि पूषा परस्ता द्धस्तं दधातु दक्षिणम् । पुनर्नो नष्टमाजतु १० ७५८

॥ २१५ ॥ (ऋ० ६।५५।१-६)

एहि वां विमुचो नपा दाघृणे सं सचावहै । रथीर्ऋतस्य नो भव १
रथीतमं कपर्दिन मीशानं राधसो महः । रायः सखायमीमहे २ ७६०
रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व । धीवतोधीवतः सखा ३
पूषणं न्व१जाश्व मुप स्तोषाम वाजिनम् । स्वसुर्यो जार उच्यते ४
मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः । भ्रातेन्द्रस्य सखा मम ५
आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम् । देवं वहन्तु बिभ्रतः ६ ७६४

+ ऋ० ६,५४,९-१०=वा० य० ३४,४१; अथर्व० ७,९,३-४

॥ २१६ ॥ (ऋ० ६।५६।१-६) गायत्री, ६ अनुष्टुप् ।

य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम् । न तेन देव आदिशे १ ७६५
उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते २
उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम् । न्यैरयद् रथीतमः ३
यदद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस्र मन्तुमः । तत् सु नो मन्म साधय ४
इमं च नो गवेषणं सातये सीषधो गणम् । आरात् पूषन्नसि श्रुतः ५
आ ते स्वस्तिमीमह आरेअघामुपावसुम् । अद्या च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये ६ ७७०

॥ २१७ ॥ (ऋ० ६।५८।१-४)× त्रिष्टुप्, २ जगती ।

शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यद् विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु १
अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियंजिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः ।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत् संचक्षाणो भुवना देव ईयते २
यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमानः ३
पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः ।
यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसं स्वञ्चम् ४ ७७४

॥ २१८ ॥ (ऋ० १०।१७।३-६)+
(७७५-७८) देवश्रवा यामायनः । त्रिष्टुप् ।

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वा- ननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्यो ऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ३ ७७५
आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययु- स्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ४
पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरो ऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ५
प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ६ ७७८

× ऋ० ६,५८,१ = सा० ७५ ।
+ ऋ० १०,१७,५-६;३-४ = अथर्व० ७,९,१-२; १८,२,५४-५५ ।

॥ २१९ ॥ (ऋ० १०।२६।१-९)

(७७९-८७) विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । अनुष्टुप्; १,४ उष्णिक् ।

प्र ह्यच्छा मनीषाः स्पार्हा यन्ति नियुतः । प्र दुस्रा नियुद्रथः पूषा अविष्टु माहिनः १

यस्य त्यन्महित्वं वाताप्यमयं जनः । विप्र आ वंसद्धीतिभि श्चिकेत सुष्टुतीनाम् २ ७८०

स वेद सुष्टुतीना मिन्दुर्न पूषा वृषा । अभि प्सुरः प्रुषायति व्रजं न आ प्रुषायति ३

मंसीमहि त्वा वय मस्माकं देव पूषन् । मतीनां च साधनं विप्राणां चाधवम् ४

प्रत्यर्धिर्यज्ञानां मश्वहयो रथानाम् । ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्सखः ५

आधीषमाणायाः पतिः शुचायाश्च शुचस्य च ।

वासोवायोऽवीना मा वासांसि मर्मृजत् ६

इनो वाजानां पति रिनः पुष्टीनां सखा । प्र श्मश्रु हर्यतो दूधोद् वि वृथा यो अदाभ्यः ७ ७८५

आ ते रथस्य पूष न्नजा धुरं ववृत्युः । विश्वस्यार्थिनः सखा सनोजा अनपच्युतः ८

अस्माकमूर्जा रथं पूषा अविष्टु माहिनः । भुवद् वाजानां वृध इमं नः शृणवद्धवम् ९ ७८७

॥ २२० ॥ [७८८] (वा० य० ३४।४२) ×

पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानडर्कम् ।

स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा । ४२ ७८८

॥ २२१ ॥ [दै० (आयुर्वेद० १७६५-६७) मन्त्राः द्रष्टव्याः ।]

पूषा-सहचारी देवगणः ।

(१) मरुतः, पूषा, बृहस्पतिः, अग्निः ।

॥ २२२ ॥ (अथर्व० ७।३३।१)

(७८९) ब्रह्मा । पथ्यापङ्क्तिः ।

सं मा सिञ्चन्तु मरुतः सं पूषा सं बृहस्पतिः ।

सं मायमग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन च दीर्घमायुः कृणोतु मे १ ७८९

(२) अग्निः, सोमः, पूषा ।

॥ २२३ ॥ (अथर्व० १६।९।२)

(७९०) यमः । आर्च्युष्णिक् ।

तदग्निराह तदु सोम आह पूषा मा धात् सुकृतस्य लोके २ ७९०

× ऋ० ६,४९,८ ।

[४] भगः ।

॥ २२४ ॥ (ऋ० १।२४।५)

(७९१) आजीगर्तिः शुनःशेपः, स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । गायत्री ।

भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा । मूर्धानं राय आरभे ५ ७९१

॥ २२५ ॥ (ऋ० ७।३८।६ उत्तरार्धः)

(७९२-९७) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

भगमुग्रोऽवसे जोहवीति भगमनुग्रो अध याति रत्नम् ६ ७९२

॥ २२६ ॥ (ऋ० ७।४१।२-६)×

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह २
भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ३
उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ४ ७९५
भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ५
समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ६ ७९७

॥ २२७ ॥ (अथर्व० २।३०।५)

(७९८) प्रजापतिः । अनुष्टुप् ।

एयमगन् पतिकामा जनिकामोऽहमागमम् ।
अश्वः कनिक्रदद्यथा भगेनाहं सहागमम् ५ ७९८

॥ २२८ ॥ (अथर्व० २।३६।७)

(७९९) पतिवेदनः । अनुष्टुप् ।

इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमौक्षो अथो भगः । एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रतिकामाय वेत्तवे ७ ७९९

॥ २२९ ॥ (अथर्व० ५।२६।९)

(८००) ब्रह्मा । [एकावसाना] त्रिपदा पिपीलिकमध्या पुरउष्णिक् ।

भगो युनक्त्वाशिषो न्वस्मा अस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ९ ८००

× वा० य० ३४,३५-३९; अथर्व० ३,१६,२-६

१ दै. [अदितिः]

॥ २३० ॥ (अथर्व० ६।१२९।१-३)
(८०१-३) अथर्वाङ्गिराः । अनुष्टुप् ।

भगे॑न मा शांश॒पेन॑ सा॒कमिन्द्रे॑ण मे॒दिना॑ । कृ॒णोमि॑ भ॒गिनं॒ माप॑ द्रा॒न्त्वरा॑तयः १
येन॑ वृ॒क्षाँ अ॒भ्यभ॑वो॒ भगे॑न॒ वर्च॑सा स॒ह । तेन॑ मा भ॒गिनं॑ कृ॒णवप॑ द्रा॒न्त्वरा॑तयः २
यो अ॒न्धो यः पु॒नःस॒रो भगो॑ वृ॒क्षेष्वाहि॑तः। तेन॑ मा भ॒गिनं॑ कृ॒णवप॑ द्रा॒न्त्वरा॑तयः ३ ८०३

॥ २३१ ॥ (अथर्व० १४।१।५०-५१,५३,६०)
(८०४-७) सूर्या सावित्री । ५०,५३ त्रिष्टुप्, ५१ अनुष्टुप्, ६० पराऽनुष्टुप् ।

गृ॒ह्णामि॑ ते सौभग॒त्वाय॒ हस्तं॒ मया॒ पत्या॑ ज॒रद॑ष्टि॒र्यथास॑ः ।
भगो॑ अ॒र्य॒मा स॑वि॒ता पुरं॑धि॒र्मह्यं॑ त्वादु॒र्गार्ह॑पत्याय दे॒वाः ५०
भग॑स्ते॒ हस्त॑मग्रहीत् स॒वि॒ता हस्त॑मग्रहीत् ।
पत्नी॒ त्वम॑सि॒ धर्म॑णा॒हं गृ॒हप॑ति॒स्तव॑ ५१ ८०५
त्वष्टा॒ वासो॒ व्य॒दधाच्छु॒भे कं बृ॒हस्पते॑ः प्र॒शिषा॑ क॒वीनाम् ।
तेने॒मां नारीं॑ सवि॒ता भग॑श्च सू॒र्यामि॑व॒ परि॑ धत्तां प्र॒जया॑ ५३
भग॑स्तत॒क्ष च॒तुरः॒ पादा॒न् भग॑स्ततक्ष च॒त्वार्युष्प॑लानि ।
त्वष्टा॑ पिपेश म॒ध्यतोऽनु॒ वर्ध्रा॒न्त्सा नो॑ अस्तु सुमङ्ग॒ली ६० ८०७

भग-सहचारी-देवगणः ।

(१) अंशः, भगः, वरुणः, मित्रः, अर्यमा, अदितिः, मरुतः ।

॥ २३२ ॥ (अथर्व० ६।४।२)
(८०८) अथर्वा । प्रस्तारपङ्क्तिः ।

अं॒शो भगो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मादि॑ति॒ः पान्तु॑ म॒रुत॑ः ।
अप॒ तस्य॒ द्वेषो॑ गमेदभि॒ह्रुतो॑ यावय॒च्छत्रु॒मन्ति॑तम् २ ८०८

(२) धाता, अर्यमा, भगः, अश्विनौ ।

॥ २३३ ॥ (अथर्व० १४।२।१३)
(८०९) सूर्या सावित्री । त्रिष्टुप् ।

शि॒वा नारी॒यमस्त॒माग॑न्नि॒मं धा॒ता लो॒कम॒स्यै दि॑देश ।
ताम॑र्य॒मा भगो॑ अ॒श्विनो॒भा प्र॒जाप॑तिः प्र॒जया॑ वर्धयन्तु १३ ८०९

[५] अर्यमा ।

॥ २३४ ॥ (अथर्व० ६।६०।१-३)

(८१०-१२) अथर्वा। अनुष्टुप्।

अयमा यात्यर्यमा पुरस्ताद् विषितस्तुपः। अस्या इच्छन्नग्रुवै पतिमुत जायामजानये १ ८१०

अश्रमदियमर्यमन्नन्यासां समनं यती । अङ्गो न्वर्यमन्नस्या अन्याः समनमायति २

धाता दाधार पृथिवीं धाता द्यामुत सूर्यम् ।

धाताऽस्या अग्रुवै पतिं दधातु प्रतिकाम्यम् ३ ८१२

॥ २३५ ॥ (अथर्व० ११।६।४)

(८१३) शन्तातिः। अनुष्टुप्।

गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् ।

अर्यमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ४ ८१३

॥ २३६ ॥ (अथर्व० १३।४।४)

(८१४-१६) ब्रह्मा। प्राजापत्याऽनुष्टुप्।

सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः ।

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ४ ८१४

अर्यमन्-सहचारी-देवगणः ।

(१) अर्यमा, पूषा, बृहस्पतिः, इन्द्रः ।

॥ २३७ ॥ (अथर्व० ३।१४।२) अनुष्टुप् ।

सं वः सृजत्वर्यमा सं पूषा सं बृहस्पतिः ।

समिन्द्रो यो धनंजयो मयि पुष्यत यद्वसु २ ८१५

(२) मित्रः, वरुणः, त्वष्टा, अर्यमा, महादेवः ।

॥ २३८ ॥ (अथर्व० ९।७।७) त्रिपदा पिपीलिकमध्या निचृद्गायत्री ।

मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी महादेवो बाहू ७ ८१६

(३) अर्यमा, भगः, बृहस्पतिः, देवीः ।

॥ २३९ ॥ (अथर्व० ३।२०।३)

(८१७) वसिष्ठः। अनुष्टुप्।

प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः ।

प्र देवीः प्रोत सूनृता रयिं देवी दधातु मे ३ ८१७

(७) विष्णुः ।

॥ २४० ॥ (ऋ० १।२२।१६-२१)+
(८१८-२३) मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्त धामभिः १६
इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूळ्हमस्य पांसुरे १७
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् १८ ८२०
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा १९
तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् २०
तद् विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत् परमं पदम् २१ ८२३

॥ २४१ ॥ (ऋ० १।१५४।१-६)*
(८२४-२९) दीर्घतमा औचथ्यः । त्रिष्टुप् ।

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः १
प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणे-ष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा २ ८२५
प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थ-मेको विममे त्रिभिरित् पदेभिः ३
यस्य त्री पूर्णा मधुना पदा-न्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्या-मेको दाधार भुवनानि विश्वा ४
तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ५
ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ६ ८२९

॥ २४२ ॥ (ऋ० १।१५५।४-६) जगती ।

तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसी-नस्य त्रातुरवृकस्य मीळ्हुषः ।
यः पार्थिवानि त्रिभिरिद् विगामभि-रुरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ४ ८३०

+ ऋ० १।२२।१७-२१ = वा० य० ५,१५; ३४,४३-४४; ६,४-५; १३,३३; अथर्व. ७,२६,४-७; सा० २२२, १६६९-७४ ।

* ऋ. १।१५४।१-२,६ = वा० य० ५,१८,२०; ६,३; अथर्व. ७।२६।१-२,३ (प्रथमचरणः) ।

द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशो ऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ५
चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतीँरवीविपत् ।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम् ६ ८३१

॥ २४३ ॥ (ऋ० १।१५६।१-५)

भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः ।
अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता १
यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति ।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत् सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत् २
तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन ।
आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ३ ८३५
तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः ।
दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते ४
आ यो विवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः ।
वेधा अजिन्वत् त्रिषधस्थ आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत् ५ ८३७

॥ २४४ ॥ (ऋ० ७।९९।१-३,७)+

(८३८-४१) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।
उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से १
न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप ।
उदस्तभ्ना नाकमृष्वं बृहन्तं दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः २
इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या ।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ३
वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७ ८४१

+ ऋ० ७।९९।३,७ = वा. य. ५,१६; ऋ० ७।१००।७ । दै० [इन्द्रः] ३३०३-५ ।

॥ २४५ ॥ (ऋ० ७।१००।१-६)

नू मर्तो दयते सनिष्यन् यो विष्णव उरुगायाय दाशत् ।
प्र यः सत्राचा मनसा यजात एतावन्तं नर्यमाविवासात् १
त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्या मप्रयुतामेवयावो मतिं दाः ।
पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरे रश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः २
त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा ।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान् त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ३
वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ४ ८४५
प्र तत् ते अद्य शिपिविष्ट नामा ऽर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके ५
किमित् ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत् प्र यद् ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद् यदन्यरूपः समिथे बभूथ ६ ८४७

॥ २४६ ॥ (८४८-५०) (वा० य० १।२७,३०)

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि ।
सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चास्यूर्जस्वती चासि पयस्वती च २७
अदित्यै रास्नासि विष्णोर्वेष्पोऽस्यूर्जे त्वाऽदब्धेन त्वा चक्षुषावपश्यामि ।
अग्नेर्जिह्वासि सुहूर्देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ३० ८४९

॥ २४७ ॥ (वा० य० २।६,८,२५)

ध्रुवा असदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ६ ८५०
अङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिषं वसुमतीमग्ने ते च्छायामुपस्थेषं विष्णो स्थानमसीत इन्द्रो वीर्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वर आस्थात् ८
दिवि विष्णुर्व्यक्रꣳस्त जागतेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रꣳस्त त्रैष्टुभेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रꣳस्त गायत्रेण च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः २५ ८५१

॥ २४८ ॥ (वा० य० ५।१,१९,२१,२३-२५,३८)×

अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वातिथेरातिथ्यमसि विष्णवे
त्वा श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वाऽग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा　१
दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।
उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्र यच्छ दक्षिणादोत सव्याद् विष्णवे त्वा　१९
विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि ।
वैष्णवमसि विष्णवे त्वा　२१　८५५
रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे निष्ट्यो यममात्यो
निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखा-
नेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्निचखानेदमहं तं
वलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्यां किरामि　२३
स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा जनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्यमित्रहा २४
रक्षोहणो वो वलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान् रक्षोहणो वो वलगहनोऽवनयामि
वैष्णवान् रक्षोहणो वो वलगहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान् रक्षोहणौ वां
वलगहना उप दधामि वैष्णवी रक्षोहणौ वां वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी
वैष्णवमसि वैष्णवा स्थ　२५
उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।
घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा　३८　८५९

॥ २४९ ॥ (वा० य० ८।१)

उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा ।
विष्ण उरुगायैष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन्　१　८६०

॥ २५० ॥ (अथर्व० ७।२६।१-३,८)

विष्णोर्नु कं प्रा वोचं वीर्याणि यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः　१
प्र तद् विष्णु स्तवते वीर्याणि मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
परावत आ जगम्यात् परस्याः　२　८६१

× वा० य० ५।३८=वा० य० ५,४१; अथर्व० ७।२६।३

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ।
उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।
घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ३
दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ८ ८६४

॥ २५१ ॥ (अथर्व० १०।५।२५-३५)

(८६५-७५) कौशिकः । त्र्यवसाना षट्पदा यथाक्षरं शक्वर्यतिशक्वरी ।

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽग्नितेजाः ।
पृथिवीमनु वि क्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु २५ ८६५
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाऽन्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः ।
अन्तरिक्षमनु वि क्रमेऽहमन्तरिक्षात् तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो० २६
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा द्यौसंशितः सूर्यतेजाः ।
दिवमनु वि क्रमेऽहं दिवस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु २७
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा दिक्संशितो मनस्तेजाः ।
दिशोऽनु वि क्रमेऽहं दिग्भ्यस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो० २८
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाऽऽशासंशितो वाततेजाः ।
आशा अनु वि क्रमेऽहमाशाभ्यस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो० २९
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नह ऋक्संशितः सामतेजाः ।
ऋचोऽनु वि क्रमेऽहमृग्भ्यस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ३० ८७०
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः ।
यज्ञमनु वि क्रमेऽहं यज्ञात् तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ३१
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहौषधीसंशितः सोमतेजाः ।
ओषधीरनु वि क्रमेऽहमोषधीभ्यस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो० ३२
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाप्सुसंशितो वरुणतेजाः ।
अपोऽनु वि क्रमेऽहमद्भ्यस्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ३३
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा कृषिसंशितोऽन्नतेजाः ।
कृषिमनु वि क्रमेऽहं कृष्यास्तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ३४ ८७४

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा प्राणसंशितः पुरुषतेजाः ।
प्राणमनु वि क्रमेऽहं प्राणात् तं निर्भजामो० । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ३५ ८७५

विष्णु-सहचारी-देवगणः ।

(१) विष्णु-त्वष्टृ-प्रजापति-धातारः ।

॥ २५२ ॥ (ऋ० १०।१८४।१) +

(८७६) त्वष्टा गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्यः । अनुष्टुप् ।

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते १ ८७६

(२) विष्णुर्वरुणश्च ।

॥ २५३ ॥ (८७७) (वा० य० ८।५९) ×

ययोरोजसा स्कभिता रजांसि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठा ।
या पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णू अगन्वरुणा पूर्वहूतौ ५९ ८७७

॥ २५४ ॥ (अथर्व० ७।२५।२)

(८७८) मेधातिथिः । त्रिष्टुप् ।

यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते प्र चानति वि च चष्टे शचीभिः ।
पुरा देवस्य धर्मणा सहोभिर्विष्णुमगन्वरुणं पूर्वहूतिः २ ८७८

---

(८) विवस्वान् ।

॥ २५५ ॥ (८७९) (वा० य० ११।३०)

विवस्वते स्वाहा ३० ८७९

॥ २५६ ॥ (अथर्व० ६।११६।१-३) *

(८८०-८१) जाटिकायनः । जगती, २ त्रिष्टुप् ।

यद् यामं चक्रुर्निखनन्तो अग्रे कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया ।
वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम् १ ८८०
वैवस्वतः कृणवद् भागधेयं मधुभागो मधुना सं सृजाति ।
मातुर्यदेन इषितं न आगन् यद् वा पितापराद्धो जिहीडे २
यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन् ।
यावन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः ३ ८८१

+ अथर्व० ५।२५।५; × अथर्व० ७।२५।१; * दै० [आयुर्वेद०] २०५६

(९) संवत्सरः कालः ।

॥ २५७ ॥ (ऋ० १।१६४।४८)

(८८३) दीर्घतमा औचथ्यः । त्रिष्टुप् ।

द्वाद॑श प्र॒धय॑श्च॒क्रमेकं॒ त्रीणि॒ नभ्या॑नि॒ क उ॒ तच्चि॑केत ।
तस्मि॑न्त्सा॒कं त्रि॑श॒ता न श॒ङ्कवो॑ ऽर्पि॒ताः ष॒ष्टिर्न च॑लाच॒लासः॑ ४८ ८८३

॥ २५८ ॥ [८८४-८६] (वा० य० २२।२८)

सं॒व॒त्स॒राय॒ स्वाहा॑ २८ ८८४

॥ २५९ ॥ (वा० य० २७।४५)

सं॒व॒त्स॒रो॒ऽसि परिवत्स॒रो॒ऽसीदावत्स॒रो॒ऽसीद्वत्स॒रो॒ऽसि वत्स॒रो॒ऽसि ।
उ॒षस॑स्ते कल्पन्तामहोरा॒त्रास्ते॑ कल्पन्तामर्धमा॒सास्ते॑ कल्पन्तां॒ मासा॑स्ते
कल्पन्तामृ॒तव॑स्ते कल्पन्ता॒ᳪ संवत्स॒रस्ते॑ कल्पताम् ।
प्रेत्या॒ एत्यै॒ सं चाञ्च॒ प्र च॑ सारय ।
सु॒प॒र्ण॒चिद॑सि॒ तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वः सी॑द ४५ ८८५

॥ २६० ॥ (वा० य० ३०।१५)

सं॒व॒त्स॒राय॑ पर्या॒यिणी॑ परिवत्स॒राया॒विजातामिदावत्स॒राया॒तीत्व॑रीमिद्वत्स॒राया॑-
ति॒ष्कद्व॑रीं वत्स॒राय॒ विज॑र्जरा॒ᳪ संवत्स॒राय॒ पलि॑क्नीम् १५ ८८६

॥ २६१ ॥ (अथर्व० ३।१०।८)

(८८६-८९) अथर्वा । अनुष्टुप् ।

आयम॑गन्त्संवत्स॒रः पति॑रेकाष्टके॒ तव॑ ।
सा न॒ आयु॑ष्मतीं प्र॒जां रा॒यस्पोषे॑ण॒ सं सृ॑ज ८ ८८७

॥ २६२ ॥ (अथर्व० ४।१५।१३) ×

सं॒व॒त्स॒रं श॑शया॒ना ब्रा॑ह्म॒णा व्र॑तचा॒रिणः॑ ।
वाचं॑ प॒र्जन्य॑जिन्वितां॒ प्र म॒ण्डूका॑ अवादिषुः १३ ८८८

॥ २६३ ॥ (अथर्व० ११।७।१८)

स॒मृ॑द्धि॒रोज॒ आकू॑तिः क्ष॒त्रं रा॒ष्ट्रं षडु॒र्व्यः॑ ।
सं॒व॒त्स॒रो॒ऽध्युच्छि॑ष्ट॒ इडा॑ प्रै॒षा ग्रहा॑ ह॒विः १८ ८८९

॥ २६४ ॥ (अथर्व० १५।३।१) पिपीलिकमध्या गायत्री ।

स सं॑वत्स॒रमू॒र्ध्वो॑ऽतिष्ठ॒त् तं दे॒वा अ॑ब्रुव॒न् व्रात्य॒ किं नु ति॑ष्ठ॒सीति॑ १ ८९०

× [आयुर्वेद०] ९९४,१०१६ ।

॥ २६५ ॥ (अथर्व० ११।५।२०)

(८९१) ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।

ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः २० ८९१

॥ २६६ ॥ (अथर्व० १९।५३।१-१०)

(८९२-९०१) भृगुः । अनुष्टुप्; १-४ त्रिष्टुप्; ५ निचृत पुरस्ताद्बृहती ।

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा १
सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः ।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः २
पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ्कालं तमाहुः परमे व्योमन् ३
स एव सं भुवनान्याभरत् स एव सं भुवनानि पर्यैत् ।
पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः ४ ८९५

कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत ।
काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ५
कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः ।
काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ६
काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् ।
कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ७
काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् ।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ८
तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।
कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ९ ९००

कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् ।
स्वयंभूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत १० ९०१

❀

॥ २६७ ॥ (अथर्व० १९।५४।१-१५)

अनुष्टुप्, २ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री; ५ त्र्यवसाना षट्पदा विराडष्टिः।

कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः ।
कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः १
कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही । द्यौर्मही काल आहिता २
कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा । ३
कालादृचः समभवन् यजुः कालादजायत
कालो यज्ञं समैरयद् देवेभ्यो भागमक्षितम् ।
काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ४ ९०५
कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः ।
इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान् विधृतीश्च पुण्याः ।
सर्वांल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः ५ ९०६

---

(१०) ऋतवः ।

॥ २६८ ॥ (ऋ० १।१५।१-१२)+

(९०७-१८) मेधातिथिः काण्वः । [ऋतुदेवताः = १ इन्द्रः, २ मरुतः, ३ त्वष्टा, ४ अग्निः ५ इन्द्रः, ६ मित्रावरुणौ, ७-१० द्रविणोदाः, ११ अश्विनौ, १२ अग्निः] । गायत्री ।

इन्द्र सोमं पिब ऋतुना ऽऽ त्वा विशन्त्विन्दवः । मत्सरासस्तदोकसः १
मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद् यज्ञं पुनीतन । यूयं हि ष्ठा सुदानवः २
अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना । त्वं हि रत्नधा असि ३
अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु । परि भूष पिब ऋतुना ४ ९१०
ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु । तवेद्धि सख्यमस्तृतम् ५
युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूळभम् । ऋतुना यज्ञमाशाथे ६
द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे । यज्ञेषु देवमीळते ७
द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे । देवेषु ता वनामहे ८
द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ९ ९१५
यत् त्वा तुरीयमृतुभि-र्द्रविणोदो यजामहे । अध स्मा नो ददिर्भव १० ९१६

+ ऋ० १।१५।२,४,११ = दै० [अग्निः] २२-२३; [मरुतः] ५;

अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता । ऋतुना यज्ञवाहसा ११
गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि । देवान् देवयते यज १२ ९१८

॥ २६९ ॥ (ऋ० २।३६।१-६)*

(९११-३०) गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । [ऋतुदेवताः-१ इन्द्रो मधुश्च, २ मरुतो माधवश्च, ३ त्वष्टा शुक्रश्च, ४ अग्निः शुचिश्च, ५ इन्द्रो नभश्च, ६ मित्रावरुणौ नभस्यश्च। जगती।

तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ट गा अपो ऽधुक्षन्त्सीमविभिरद्रिभिर्नरः ।
पिबेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईशिषे १
यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभि-र्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत ।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः २ ९२०
अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।
अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धस-स्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ३
आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चो-शन् होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु ।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात् तव भागस्य तृप्णुहि ४
एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः ।
तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यमाभृत-स्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत् पिब ५
जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु ।
अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यं मधु ६ ९२४

॥ २७० ॥ (अथर्व० २०।६७।१-६)×

[ऋतुदेवताः- १-४ द्रविणोदा ऋतवश्च, ५ अश्विनौ, ६ अग्निः ऋतुश्च]

मन्दस्व होत्रादनु जोषमन्धसो ऽध्वर्यवः स पूर्णां वष्ट्यासिचम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशो ददि-र्होत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः १ ९२५
यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते ।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः २
मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसे ऽरिषण्यन् वीळयस्वा वनस्पते ।
आयूया धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्ट्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ३
अपाद्धोत्रादुत पोत्रादमत्तो-त नेष्ट्राद्जुषत प्रयो हितम् ।
तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यं द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः ४ ९२८

* ऋ० २।३६।३,६ = दै० [अदिति०] ४००,७०२ × ऋ० २।३७।५ = दै० [अश्विनौ] २१४

अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम् ।
पृङ्क्त हवींषि मधुना हि कं गत—मथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू ५
जोष्यग्ने समिधं जोष्याहुतिं जोषि ब्रह्म जन्यं जोषि सुष्टुतिम् ।
विश्वेभिर्विश्वाँ ऋतुना वसो मह उशन् देवाँ उशतः पायया हविः ६ ९३०

॥ २७१ ॥ [९३१-४८] (वा० य० ७।३०)

उपयामगृहीतोऽसि मधवे त्वोपयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुक्राय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुचये त्वोपयामगृहीतोऽसि नभसे त्वोपयामगृहीतोऽसि नभस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसीषे त्वोपयामगृहीतोऽस्यूर्जे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वोपयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वोपयामगृहीतोऽस्य꣡ꣳहसस्पतये त्वा ३० ९३१

॥ २७२ ॥ (वा० य० १३।२५)

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ।
ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे ।
वासन्तिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् २५ ९३२

॥ २७३ ॥ (वा० य० १४।६,१५-१६,२७,२९)

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू अग्नेरन्तः० ।०। ग्रैष्मावृतू अभिकल्पमाना० ६
नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू अग्नेरन्तः० ।०। वार्षिकावृतू अभिकल्पमाना० १५
इषश्चोर्जश्च शारदावृतू अग्नेरन्तः० ।०। शारदावृतू अभिकल्पमाना० १६ ९३५
सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू अग्नेरन्तः० ।०। हैमन्तिकावृतू अभिकल्पमाना० २७
एकादशभिरस्तुवत ऋतवोऽसृज्यन्तार्तवा अधिपतय आसन् २९ ९३७

॥ २७४ ॥ (वा० य० १५।५७)

तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू अग्नेरन्तः० ।०। शैशिरावृतू अभिकल्पमाना० ५७ ९३८

॥ २७५ ॥ (वा० य० १७।३)

ऋतव स्थ ऋतावृध ऋतुष्ठा स्थ ऋतावृधः ।
घृतश्चुतो मधुश्चुतो विराजो नाम कामदुघा अक्षीयमाणाः ३ ९३९

॥ २७६ ॥ (वा० य० २१।२३-२८)

वसन्तेन ऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुताः ।
रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः २३ ९४०
ग्रीष्मेण ऋतुना देवा रुद्राः पञ्चदशे स्तुताः ।
बृहता यशसा बलꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः २४
वर्षाभिर्ऋतुनादित्या स्तोमे सप्तदशे स्तुताः ।
वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः २५
शारदेन ऋतुना देवा एकविꣳश ऋभव स्तुताः ।
वैराजेन श्रिया श्रियꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः २६
हेमन्तेन ऋतुना देवास्त्रिणवे मरुत स्तुताः ।
बलेन शक्वरीः सहो हविरिन्द्रे वयो दधुः २७
शैशिरेण ऋतुना देवास्त्रयस्त्रिꣳशेऽमृता स्तुताः ।
सत्येन रेवतीः क्षत्रꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः २८ ९४५

॥ २७७ ॥ (वा० य० २२।२८)

ऋतुभ्यः स्वाहाऽऽर्तवेभ्यः स्वाहा २८ ९४६

॥ २७८ ॥ (वा० य० २३।४०)

ऋतवस्त ऋतुथा पर्व शमितारो वि शासतु ।
संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ४० ९४७

॥ २७९ ॥ (वा० य० २६।१४)

ऋतवस्ते यज्ञं वि तन्वन्तु मासा रक्षन्तु ते हविः ।
संवत्सरस्ते यज्ञं दधातु नः प्रजां च परि पातु नः १४ ९४८

॥ २८० ॥ (अथर्व० ३।१०।९)
(९४९-६४) अथर्वा । अनुष्टुप् ।

ऋतून् यज ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान् मासान् भूतस्य पतये यजे ९ ९४९

॥ २८१ ॥ (अथर्व० ५।२८।१३) पुरउष्णिक् ।

ऋतुभिष्ट्वार्तवैरायुषे वर्चसे त्वा ।
संवत्सरस्य तेजसा तेन संहनु कृण्मसि १३ ९५०

॥ २८२ ॥ (अथर्व० ११।३।१७) आसुर्यनुष्टुप् ।

ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धते १७ ९५१

॥ २८३ ॥ (अथर्व० १५।३।४) द्विपदाऽऽर्च्युष्णिक् ।

तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ ४ ९५२

॥ २८४ ॥ (अथर्व० १५।४।२-३,५-६,८-९,११-१२,१४-१५,१७-१८)

वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् बृहच्च रथंतरं चानुष्ठातारौ २

वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो बृहच्च रथंतरं चानु तिष्ठतो
य एवं वेद ३

ग्रैष्मौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानुष्ठातारौ ५ ९५५

ग्रैष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं
चानु तिष्ठतो य एवं वेद ६

वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ ८

वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो वैरूपं च वैराजं चानु तिष्ठतो
य एवं वेद ९

शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वञ्छ्यैतं च नौधसं चानुष्ठातारौ ११

शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतः श्यैतं च नौधसं चानु तिष्ठतो
य एवं वेद १२ ९६०

हैमनौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ १४

हैमनावेनं मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो भूमिश्चाग्निश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद १५

शैशिरौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ १७

शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो द्यौश्चादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद १८ ९६४

॥ २८५ ॥ (अथर्व० १०।६।१८)

(९६५) बृहस्पतिः । अनुष्टुप् ।

ऋतवस्तमबध्नतार्तवास्तमबध्नत । संवत्सरस्तं बद्ध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति १८ ९६५

॥ २८६ ॥ (अथर्व० ११।४।४)

(९६६) भार्गवो वैदर्भिः । अनुष्टुप् ।

यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः ।
सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि ४ ९६६

॥ २८७ ॥ (अथर्व० ११।६।१७,२२)

(९६७-६८) शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

ऋतून् ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान् मासांस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १७
या देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशर्तवः ।
संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते नः सन्तु सदा शिवाः । २२ ९६८

॥ २८८ ॥ (अथर्व० १२।१।३६)

(९६९) अथर्वा । विपरीतपादलक्ष्मा पङ्क्तिः ।

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ३६ ९६९

॥ २८९ ॥ (अथर्व० १६।८।२१)

(९७०) यमः । आसुरी पङ्क्तिः ।

स आर्तवानां पाशान्मा मोचि २१ ९७०

॥ २९० ॥ (अथर्व० ७१।१।२९)

(९७१) ब्रह्मा । त्रिष्टुप् ।

ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः २९ ९७१

(११) चन्द्रमाः ।×

॥ २९१ ॥ (ऋ० १०।८५।१९) *

(९७२) सावित्री सूर्या ऋषिका । त्रिष्टुप् ।

नवोनवो भवति जायमानो ऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन् प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः १९ ९७२

॥ २९२ ॥ (ऋ० १०।९०।१३) +

(९७३) नारायणः । अनुष्टुप् ।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत १३ ९७३

॥ २९३ ॥ [९७४-७९] (वा० य० २।२८)

पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुम् ।
यामैरयँश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासो अनुदिश्य यजन्ते २८ ९७४

×दै० [आयुर्वेद०] ६-७,३९,६८,७१,८८,९१,११६,११३,१५४,२३१,२४५,२६८,२७४,३११ सूक्तानि द्रष्टव्यानि ।
* अथर्व० ७,८१,१; १४,१,२४; + अथर्व १९,६,७ ।

॥ २९४ ॥

चन्द्राय स्वाहा (वा० य० २२।२८) + चन्द्रमसे किलासम् । (वा० य० ३०।२१) २८ १७६

॥ २९५ ॥ (वा० य० २३।४,१०)

एष ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा ।
यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्रमसि महिमा संबभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा ४
सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् १० १७७

॥ २९६ ॥ (वा०य० ३१।१२)

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद् वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत १२ १७८

॥ २९७ ॥ (वा० य० ३३।९०)

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहꣳ हरिरेति कनिक्रदत् ९० १७९

॥ २९८ ॥ (अथर्व० १।३।४)

(१८०-९०) अथर्वा । पथ्यापङ्क्तिः ।

विद्मा शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ४ १८०

॥ २९९ ॥ (अथर्व० २।२२।१-५)

(एकावसानम्) १-४ निचृद्विषमा गायत्री, ५ भुरिग्विषमा ।

चन्द्र यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः १
चन्द्र यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः २
चन्द्र यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ३
चन्द्र यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ४
चन्द्र यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ५ १८५

॥ ३०० ॥ (अथर्व० ५।२४।१०) चतुष्पदातिशक्वरी ।

चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा १० १८६

+ वा० य० २२,२९-३०; ३९,१ । अथर्व० १९,४३,४ ।

॥ ३०१ ॥ (अथर्व० ६।७८।१-२) अनुष्टुप् ।

तेन भूतेन हविषायमा प्यायतां पुनः ।
जायां यामस्मा आवाक्षुस्तां रसेनाभि वर्धताम् १
अभि वर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम् । रय्या सहस्रवर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ २ ९८८

॥ ३०२ ॥ (अथर्व० १८।४।८९) पञ्चपदा पथ्यापङ्क्तिः । ×

चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ८९ ९८९

॥ ३०३ ॥ (अथर्व० १९।१९।४) अनुष्टुप् ।

चन्द्रमा नक्षत्रैरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ९९०

॥ ३०४ ॥ (अथर्व० ११।६।७)
(९९१) शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

मुञ्चन्तु मा शपथ्या३दहोरात्रे अथो उषाः ।
सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति ९९१

॥ ३०५ ॥ (अथर्व० १९।२७।२,५)
(९९२-९३) भृग्वङ्गिराः । अनुष्टुप् ।

सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः ।
माद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु २
घृतेन त्वा समुक्षाम्यग्न आज्येन वर्धयन् ।
अग्नेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं मायिनो दभन् ५ ९९३

॥ ३०६ ॥ (अथर्व० १९।४३।४)
(९९४) ब्रह्मा । त्र्यवसाना शङ्कुमती पथ्यापङ्क्तिः ।

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह । चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे ४ ९९४

चन्द्रमा-सहचारी-देवगणः ।

(१) सूर्यः चन्द्रश्च ।

॥ ३०७ ॥ (अथर्व० २।१५।३)
(९९५-९६) ब्रह्मा । त्रिपाद् गायत्री ।

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः ३ ९९५

× ऋ० १।१०५।१; सा० ४१७

(२) द्यौः, पृथिवी, सूर्यः, चन्द्रमाः, अन्तरिक्षं च ।

॥ ३०८ ॥ (अथर्व० ८।१।१२) त्र्यवसाना पञ्चपदा जगती ।

मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात् संकसुकाच्चर ।
रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च । अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः १२ ९९६

॥ ३०९ ॥ (अथर्व० ११।६।५)
(९९७) शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा ।
विश्वानादित्यान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ५ ९९७

(३) दिक्चन्द्रमसः ।

॥ ३१० ॥ (अथर्व० ४।३९।७-८)
(९९८-९९) अङ्गिराः । ७ त्रिपदा महाबृहती, ८ संस्तारपङ्क्तिः ।

दिक्षु चन्द्राय समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथा दिक्षु चन्द्राय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ७
दिशो धेनवस्तासां चन्द्रो वत्सः । ता मे चन्द्रेण वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ८ ९९९

(४) अग्निः, चन्द्रमाश्च ।

॥ ३११ ॥ (अथर्व० ६।८६।२)
(१०००) अथर्वा । अनुष्टुप् ।

समुद्र ईशे स्रवतामग्निः पृथिव्या वशी ।
चन्द्रमा नक्षत्राणामीशे त्वमेकवृषो भव २ १०००

---

(१२) रात्रिः ।

॥ ३१२ ॥ (ऋ० १।११३।१ [उत्तरार्धः])
(१००१) कुत्स आङ्गिरसः । त्रिष्टुप् ।

यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् १ १००१

॥ ३१३ ॥ (ऋ० १०।१०।९)

(१००२) वैवस्वतो यमः ऋषिः । त्रिष्टुप् ।

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य बिभृयादजामि ९ १००२

॥ ३१४ ॥ (ऋ० १०।१२७।१-८)

(१००३-१०१०) कुशिकः सौभरः, रात्रिर्वा भारद्वाजी । गायत्री ।

रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्य१क्षभिः । विश्वा अधि श्रियोऽधित १
ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्यु१द्वतः । ज्योतिषा बाधते तमः २
निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती । अपेदु हासते तमः ३ १००५
सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि । वृक्षे न वसतिं वयः ४
नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः । नि श्येनासश्चिदर्थिनः ५
यावया वृक्य१ं वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये । अथा नः सुतरा भव ६
उप मा पेपिशत् तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित । उष ऋणेव यातय ७
उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः । रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ८ १०१०

॥ ३१५ ॥ [१०११-१६] (वा० य० ३।१८)

चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय १८ १०११

॥ ३१६ ॥ (वा० य० २३।१२) ×

द्यौरासीत् पूर्वचित्तिरश्व आसीद् बृहद्वयः ।
अविरासीत् पिलिप्पिला रात्रिरासीत् पिशङ्गिला १२ १०१२

॥ ३१७ ॥ (वा० य० २४।२५)

अर्द्ध पारावतानालभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः सन्धिभ्यो
जतूर्मासेभ्यो दात्यौहान्त्संवत्सराय महतः सुपर्णान् २५ १०१३

॥ ३१८ ॥ (वा० य० ३०।२१)

रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षम् २१ १०१४

॥ ३१९ ॥ (वा० य० ३४।३२) ❀

आ रात्रि पार्थिवꣳ रजः पितुरप्रायि धामभिः ।
दिवः सदाꣳसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः ३२ १०१५

× वा० य० २३।५४; ❀ अथर्व० १९,४७,१ ।

॥ ३२० ॥ (वा० य० ३७।२१ [उत्तरार्धः]) +

रात्रिः केतुना जुषताꣳ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा २१ १०१६

॥ ३२१ ॥ (अथर्व० १।१६।१)

(१०१७) चातनः । अनुष्टुप् ।

येऽमावास्यांꣳ रात्रिमुदस्थुर्व्राजमत्त्रिणः ।
अग्निस्तुरीयो यातुहा सो अस्मभ्यमधि ब्रवत् १ १०१७

॥ ३२२ ॥ (अथर्व० २।१५।२)

(१०१८-१९) ब्रह्मा । त्रिपाद् गायत्री ।

यथाहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः २ १०१८

॥ ३२३ ॥ (अथर्व० १३।४।३०) प्राजापत्याऽनुष्टुप् ।

स वै रात्र्या अजायत तस्माद् रात्रिरजायत ३० १०१९

॥ ३२४ ॥ (अथर्व० ५।५।१)

(१०२०-२९) अथर्वा । अनुष्टुप् ।

रात्री माता नभः पितार्यमा ते पितामहः ।
सिलाची नाम वा असि सा देवानामसि स्वसा १ १०२०

॥ ३२५ ॥ (अथर्व० १५।२।५,१३,२१,२९) द्विपदाऽऽर्ची गायत्री ।

श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ५
उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ० १३
इरा पुंश्चली हसो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ० २१
विद्युत् पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ० २९ १०२४

॥ ३२६ ॥ (अथर्व० १५।१३।१,३,५,७,९)

१ साम्न्युष्णिक्, ३,५,७ आसुरी गायत्री; ९ द्विपदानिचृद्गायत्री ।

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति १ १०२५
तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ३
तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यस्तृतीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ५
तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यश्चतुर्थीं रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ७
तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽपरिमिता रात्रीरतिथिर्गृहे वसति ९ १०२९

+ वा० य० ३८,१६ ।

॥ ३२७ ॥ (अथर्व० ६।१२८।२)
(१३०) अङ्गिराः । अनुष्टुप् ।

भद्राहं नो मध्यंदिने भद्राहं सायमस्तु नः ।
भद्राहं नो अह्नां प्राता रात्री भद्राहमस्तु नः २ १०३०

॥ ३२८ ॥ (अथर्व० १९।४७।१-९)*
(१०३१-५१) गोपथः । अनुष्टुप्; २ पञ्चपदाऽनुष्टुब्गर्भा पराऽतिजगती; ६ पुरस्ताद्बृहती; ७ त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।

न यस्याः पारं ददृशे न योयुवद् विश्वमस्यां नि विंशते यदेजति ।
अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि भद्रे पारमशीमहि २
ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव । अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः ३
षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत् पञ्च सुम्नयि । चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ४
द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः । तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ५
रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशत ।
मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत ६ १०३५
माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्यः ।
परमेभिः पथिभिः स्तेनो धावतु तस्करः । परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ७
अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु । हनू वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि ८
त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिष्यामसि जागृहि ।
गोभ्यो नः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ९ १०३८

॥ ३२९ ॥ (अथर्व० १९।४८।१-६)
अनुष्टुप्; १ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री; २ त्रिपदा विराडनुष्टुप्; ३ बृहतीगर्भाऽनुष्टुप्; ५ पथ्यापङ्क्तिः ।

अथो यानि च यस्मा ह यानि चान्तः परीणहि । तानि ते परि दद्मसि १
रात्रि मातरुषसे नः परि देहि । उषा नो अह्ने परि ददात्वहस्तुभ्यं विभावरि २ १०४०
यत् किं चेदं पतयति यत् किं चेदं सरीसृपम् ।
यत् किं च पर्वतायासत्वं तस्मात् त्वं रात्रि पाहि नः ३
सा पश्चात् पाहि सा पुरः सोत्तरादधरादुत ।
गोपाय नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि ४ १०४२

* अथर्व० १९।४७।१ = वा० य० ३४,३२ ।

ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति
पशून् ये सर्वान् रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति ते नः पशुषु जाग्रति ५
वेद वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि ।
तां त्वां भरद्वाजो वेद सा नो वित्तेऽधि जाग्रति ६ १०४४

॥ ३३० ॥ (अथर्व० १९।५०।१-७) अनुष्टुप् ।

अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु । अक्षौ वृकस्य निर्जह्यास्तेन तं द्रुपदे जहि १ १०४५
ये ते रात्र्यनड्वाहस्तीक्ष्णशृङ्गाः स्वाशवः । तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा २
रात्रिंरात्रिमरिष्यन्तस्तरेम तन्वा वयम् । गम्भीरमप्लवा इव न तरेयुररातयः ३
यथा शाम्याकः प्रपतन्नपवान् नानुविद्यते । एवा रात्रि प्र पातय यो अस्माँ अभ्यघायति ४
अप स्तेनं वासो गोअजमुत तस्करम् । अथो यो अर्वतः शिरोऽभिधाय निनीषति ५
यदद्या रात्रि सुभगे विभजन्त्ययो वसु । यदेतदस्मान् भोजय यथेदन्यानुपायसि ६ १०५०
उषसे नः परि देहि सर्वान् रात्र्यनागसः । उषा नो अह्ने आ भजादहस्तुभ्यं विभावरि ७ १०५१

॥ ३३१ ॥ (अथर्व० १९।४९।१-१०)

(१०५०-६०) गोपथः, भरद्वाजश्च । अनुष्टुप्; १-५,८ त्रिष्टुप्; ६ आस्तारपङ्क्तिः; ७ पथ्यापङ्क्तिः; १० त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।

इषिरा योषा युवतिर्दमूना रात्री देवस्य सवितुर्भगस्य ।
अश्वक्षभा सुहवा संभृतश्रीरा पप्रौ द्यावापृथिवी महित्वा १
अति विश्वान्यरुहद् गम्भीरो वर्षिष्ठमरुहन्त श्रविष्ठाः ।
उशती रात्र्यनु सा भद्राभि तिष्ठते मित्र इव स्वधाभिः २
वर्ये वन्दे सुभगे सुजात आजगन् रात्रि सुमना इह स्याम् ।
अस्मांस्त्रायस्व नर्याणि जाता अथो यानि गव्यानि पुष्ट्या ३
सिंहस्य रात्र्युशती पींषस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे ।
अश्वस्य ब्रध्नं पुरुषस्य मायुं पुरु रूपाणि कृणुषे विभाती ४ १०५५
शिवां रात्रिमनुसूर्यं च हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध येन त्वा वन्दे विश्वासु दिक्षु ५
स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे ।
आसाम सर्ववीरा भवाम सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनूषसः ६ १०५७

शम्या ह नाम दधिषे मम दिप्सन्ति ये धना ।
रात्रीहि तानसुतपा य स्तेनो न विद्यते यत् पुनर्न विद्यते　७
भद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विष्वं गोरूप युवतिर्बिभर्षि ।
चक्षुष्मती मे उशती वपूंषि प्रति त्वं दिव्या न क्षाममुक्थाः　८
यो अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः ।
रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत्　९　१०६०
प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत् ।
यो मलिम्लुरुपायति स संपिष्टो अपायति ।
अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति　१०　१०६१

॥ ३३२ ॥ [१०६१-६७] (वा० य० ६।२१)

अहोरात्रे गच्छ स्वाहा　२१　१०६२

॥ ३३३ ॥ (वा० य० १४।३०)

नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्यावसृज्येतामहोरात्रे अधिपत्नी आस्ताम्　३०　१०६३

॥ ३३४ ॥ (वा० य० १८।२३)

अहोरात्रे ऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्　२३　१०६४

॥ ३३५ ॥ (वा० य० २२।२८)

अहोरात्रेभ्यः स्वाहा　२८　१०६५

॥ ३३६ ॥ (वा० य० २३।४१)

अर्धमासाः परूंषि ते मासा आ च्छ्यन्तु शम्यन्तः ।
अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टꣳ सूदयन्तु ते　४१　१०६६

॥ ३३७ ॥ (वा० य० ३१।२२)

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।
इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण　२　१०६७

॥ ३३८ ॥ (अथर्व० ६।१२८।३)

(१०६८) अङ्गिराः । अनुष्टुप् ।

अहोरात्राभ्यां नक्षत्रेभ्यः सूर्याचन्द्रमसाभ्याम् ।
भद्राहमस्मभ्यं राजञ्छकधूम त्वं कृधि　३　१०६८

॥ ३३९ ॥ (अथर्व० १५।१।२२)
(१०६९-७३) अथर्वा । आसुरी गायत्री ।

अहंश्च रात्रीं च परिष्कन्दौ मनों विपथम् २२ १०६९

॥ ३४० ॥ (अथर्व० १५।६।१७-१८) १७ आर्ची पङ्क्तिः, १८ विराड् जगती ।

तमृतवंश्चार्तवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च मासाश्चार्धमासाश्चाहोरात्रे चानुव्यचलन् १७ १०७०
ऋतूनां च वै स आर्तवानां च लोकानां च लौक्यानां च मासानां चार्धमासानां
चाहोरात्रयोश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद १८ १०७१

॥ ३४१ ॥ (अथर्व० १५।१८।४-५) आर्च्यनुष्टुप् ।

अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले संवत्सरः शिरः ४
अह्ना प्रत्यङ् व्रात्यो रात्र्या प्राङ् नमो व्रात्याय ५ १०७३

॥ ३४२ ॥ (अथर्व० १६।८।२४)+
(१०७४) यमः । आसुरी जगती ।

सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि २४ १०७४

रात्रि-सहचारी-देवगणः ।

रात्रिः, धेनुः ।

॥ ३४३ ॥ (अथर्व० ३।१०।२-४)
(१०७५-७७) १-३ अनुष्टुप्, ४ त्रिष्टुप् ।

यां देवाः प्रतिनन्दन्ति रात्रिं धेनुमुपायतीम् ।
संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली २ १०७५
संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे ।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ३
इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ४ १०७७

॥ ३४४ ॥ (अथर्व० १०।२।६)

(१०७८) नारायणः । यामः । जगती ।

कः स॒प्त खानि॒ वि त॑तर्द शी॒र्षणि॑ कर्णा॑वि॒मौ नासि॑के॒ चक्ष॑णी॒ मुख॑म् ।
येषां॑ पुरु॒त्रा वि॑ज॒यस्य॑ म॒ह्मनि॒ चतु॑ष्पादो द्वि॒पदो॑ यन्ति॒ याम॑म् ६ १०७८

(१३) पूर्णिमा ।

॥ ३४५ ॥ (अथर्व० ७।८०।१-२,४)

(१०७९-८२) अथर्वा । त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप् ।

पू॒र्णा प॒श्चादु॒त पू॒र्णा पु॒रस्ता॒दुन्म॑ध्य॒तः पौ॒र्णमा॑सी जि॑गाय ।
तस्यां॑ दे॒वैः सं॒वस॑न्तो महि॒त्वा नाक॑स्य पृ॒ष्ठे समि॒षा म॑देम १
वृ॒ष॒भं वा॒जिनं॑ व॒यं पौ॒र्णमा॒सं य॑जामहे ।
स नो॑ ददा॒त्वक्षि॑तां र॒यिमनु॑पदस्वतीम् २ १०८०
पौ॒र्णमा॒सी प्र॑थ॒मा य॒ज्ञिया॑सी॒दह्नां॒ रात्री॑णामतिशर्व॒रेषु॑ ।
ये त्वां॑ य॒ज्ञैर्य॑ज्ञिये अ॒र्धय॑न्त्य॒मी ते नाके॑ सु॒कृतः॒ प्रवि॑ष्टाः ४

॥ ३४६ ॥ (अथर्व० १५।१६।१) साम्न्युष्णिक् ।

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य प्र॒थ॒मो॑ऽपा॒नः सा पौ॒र्णमा॒सी १ १०८२

(१४) राका ।

॥ ३४७ ॥ (ऋ० २।३२।४-५)*

(१०८३-८४) गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । जगती ।

रा॒काम॒हं सु॒हवां॑ सुष्टु॒ती हु॑वे शृ॒णोतु॑ नः सु॒भगा॒ बोध॑तु॒ त्मना॑ ।
सीव्य॒त्वपः॑ सू॒च्याच्छि॑द्यमानया॒ ददा॑तु वी॒रं श॒तदा॑यमु॒क्थ्य॑म् ४
यास्ते॑ राके सुम॒तयः॑ सु॒पेश॑सो॒ याभि॒र्ददा॑सि दा॒शुषे॒ वसू॑नि ।
ताभि॑र्नो अ॒द्य सु॒मना॑ उ॒पाग॑हि सहस्रपो॒षं सु॑भगे॒ ररा॑णा ५ १०८४

(१५) अमावास्या ।

॥ ३४८ ॥ (अथर्व० ७।७९।१-४)

(१०८५-९१) अथर्वा । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

यत् ते॑ दे॒वा अकृ॑ण्वन् भाग॒धेय॒ममा॑वास्ये सं॒वस॑न्तो महि॒त्वा ।
तेना॑ नो य॒ज्ञं पि॑पृहि विश्ववारे र॒यिं नो॑ धेहि सुभगे सु॒वीर॑म् १ १०८५
अ॒हमे॒वास्म्य॑मावा॒स्या॒३॒॑ मामा व॑सन्ति सु॒कृतो॒ मयी॒मे ।
मयि॑ दे॒वा उ॒भये॑ सा॒ध्याश्चेन्द्र॑ज्येष्ठाः॒ सम॑गच्छन्त॒ सर्वे॑ २ १०८६

* अथर्व० ७,४८,१-२ ।

*

आगन् रात्री संगमनी वसूनामूर्जं पुष्टं वस्वावेशयन्ती ।
अमावास्यायै हविषा विधेमोर्जं दुहाना पयसा न आगन् ३
अमावास्ये न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान ।
यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ४ १०८८

॥ ३४९ ॥ (अथर्व० १५।२।१४) साम्नी पङ्क्तिः ।

अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो विपथम् १४ १०८९

॥ ३५० ॥ (अथर्व० १५।१६।३) साम्न्युष्णिक् ।

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयोऽपानः सामावास्या ३ १०९०

॥ ३५१ ॥ (अथर्व० १५।१७।९) द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप् ।

तस्य व्रात्यस्य । यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावास्यां चैव तत् पौर्णमासीं च ९ १०९१

(१६) सिनीवाली ।

॥ ३५२ ॥ (ऋ० २।३२।६-७)×

(१०९२-९३) गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । अनुष्टुप् ।

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ६
या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ७ १०९३

॥ ३५३ ॥ (अथर्व० ७।४६।३)

(१०९४) अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

या विश्पत्नीन्द्रमसि प्रतीची सहस्रस्तुकाभियन्ती देवी ।
विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवींषि पतिं देवि राधसे चोदयस्व ३ १०९४

॥ ३५४ ॥ [१०९५] (वा० य० ११।५५)*

सꣳसृष्टां वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्यां मृदम् ।
हस्ताभ्यां मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम् ५५ १०९५

॥ ३५५ ॥ (अथर्व० ९।४।१४)

(१०९६) ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।

गुदा आसन्त्सिनीवाल्याः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन् ।
उत्थातुरब्रुवन् पद ऋषभं यदकल्पयन् १४ १०९६

× वा० य० ३४,१०, अथर्व० ७,४६,१-२ । * वा० य० ११,५६ = दै० [अदितिः०] ९

सिनीवाली-सहचारी-देवगणः ।

(१) गुंगू-सिनीवाली-राका-सरस्वतीन्द्राणीवरुणानीः ।

॥ ३५६ ॥ (ऋ० २।३२।३)

(१०९७) गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । अनुष्टुप् ।

या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती । इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ३ १०९७

(२) बृहस्पतिः, सिनीवाली, अनुमतिः ।

॥ ३५७ ॥ (अथर्व० २।२६।२)

(१०९८) सविता । त्रिष्टुप् ।

इमं गोष्ठं पशवः सं स्रवन्तु बृहस्पतिरा नयतु प्रजानन् ।
सिनीवाली नयत्वाग्रमेषामाजग्मुषो अनुमते नि यच्छ २ १०९८

(३) सिनीवाली-सरस्वत्याश्विनः ।

॥ ३५८ ॥ (अथर्व० ५।२५।३)×

(१०९९) ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति । गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा ३ १०९९

(४) प्रजापतिः, अनुमतिः, सिनीवाली ।

॥ ३५९ ॥ (अथर्व० ६।११।३)

(११००) प्रजापतिः । अनुष्टुप् ।

प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीक्लृपत् । स्त्रैषूयमन्यत्र दधत् पुमांसमु दधदिह ३ ११००

(५) विष्णुः, सरस्वती, सिनीवाली, भगः ।

॥ ३६० ॥ (अथर्व० १४।२।१५,२१)

(११०१-११०२) सूर्या सावित्री । १५ भुरिक्, २१ अनुष्टुप् ।

प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति ।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् १५
शर्म वर्मैतदा हरास्यै नार्या उपस्तरे । सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् २१ ११०२

(६) सरस्वती, सिनीवाली ।

॥ ३६१ ॥ (अथर्व० १९।३१।१०)

(११०३) सविता । अनुष्टुप् ।

आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् । सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः १० ११०३

× दै० [आश्विनौ०] ६८९ ।

(१७) कुहूः ।

॥ ३६१ ॥ (अथर्व० ७।४७।१-२)

(११०४-११०५) अथर्वा । १ जगती, २ त्रिष्टुप् ।

कुहूं देवीं सुकृतं विद्मनापसमस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि ।
सा नो रयिं विश्ववारं नि यच्छाद् ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् १
कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्य हविषो जुषेत ।
शृणोतु यज्ञमुशती नो अद्य रायस्पोषं चिकितुषी दधातु २ ११०५

(१८) नक्षत्राणि ।

॥ ३६३ ॥ [११०६-१३] (वा० य० १४।१९)

नक्षत्राणि छन्दः १९ ११०६

॥ ३६४ ॥ (वा० य० १८।१८,४०)

नक्षत्राणि च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् १८
तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम । ताभ्यः स्वाहा ४० ११०८

॥ ३६५ ॥ (वा० य० २२।२८)×

नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा २८ ११०९

॥ ३६६ ॥ (वा० य० २३।४३)

द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते ।
सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया ४३ १११०

॥ ३६७ ॥ (वा० य० २५।९)

नक्षत्राणि रूपेण ९ ११११

॥ ३६८ ॥ (वा० य० ३०।१०,२१)

प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम् ॥ १० ॥ नक्षत्रेभ्यः किर्मिरम् २१ १११३

॥ ३६९ ॥ (अथर्व० २।२।४)

(१११४) मातृनामा । त्रिपाद्विराण्नाम गायत्री ।

अभ्रिये दिद्युन्नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचध्वे ।
ताभ्यो वो देवीर्नम इत् कृणोमि ४ १११४

॥ ३७० ॥ (अथर्व० ३।७।७)

(१११५) भृग्वङ्गिराः । अनुष्टुप् ।

अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत । अपास्मत् सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ७ १११५

× वा० य० ११,२९;३९,२ ।

॥ ३७१ ॥ (अथर्व० ६।१२८।१,४)

(१११६-१७) अङ्गिराः । अनुष्टुप् ।

शकधूमं नक्षत्राणि यद् राजानमकुर्वत । भद्राहमस्मै प्रायच्छन्निदं राष्ट्रमसादिति १
यो नो भद्राहमकरः सायं नक्तमथो दिवा । तस्मै ते नक्षत्रराज शकधूम सदा नमः ४ १११७

॥ ३७२ ॥ (अथर्व० ९।७।१५)

(१११८-१९) ब्रह्मा । साम्नी बृहती ।

विश्वव्यचाश्चमौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम् १५ १११८

॥ ३७३ ॥ (अथर्व० १३।६।२८) प्राजापत्याऽनुष्टुप् ।

तस्यामू सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह २८ १११९

॥ ३७४ ॥ (अथर्व० १०।२।२२-२३)

(११२०-२१) नारायणः । अनुष्टुप् ।

केन देवाँ अनु क्षियति केन दैवजनीर्विशः । केनेदमन्यन्नक्षत्रं केन सत् क्षत्रमुच्यते २२ ११२०
ब्रह्म देवाँ अनु क्षियति ब्रह्म दैवजनीर्विशः ।
ब्रह्मेदमन्यन्नक्षत्रं ब्रह्म सत् क्षत्रमुच्यते २३ ११२१

॥ ३७५ ॥ (अथर्व० ११।६।१०)

(११२२) शन्तातिः । अनुष्टुप् ।

दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान् ।
समुद्रा नद्यो॑ वेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १० ११२२

॥ ३७६ ॥ (अथर्व० १५।१७।४)

(११२३) अथर्वा । साम्न्युष्णिक् ।

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थो व्यानस्तानि नक्षत्राणि ४ ११२३

॥ ३७७ ॥ (अथर्व० १९।७।१-५)

(११२४-३४) गार्ग्यः । त्रिष्टुप्, ४ भुरिक् ।

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि ।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् १
सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे २ ११२५
पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु ।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ३ ११२६

अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु ।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ४
आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ५ ११२८

॥ ३७८ ॥ (अथर्व० १९।८।१-५,७) त्रिष्टुप्, १ विराड् जगती ।

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु ।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु १
अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे ।
योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु २ ११३०
स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु ।
सुहवमग्ने स्वस्त्यमर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन् ३
अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम् । सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान् परा तान् सवितः सुव ४
अपपापं परिक्षवं पुण्यं भक्षीमहि क्षवम् । शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि मेहताम् ५
स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ७ ११३४

नक्षत्राणि-सहचारी-देवगणः ।

(१) द्यौः, चक्षुः, नक्षत्राणि, सूर्यः ।

॥ ३७९ ॥ (अथर्व० ६।१०।३)

(११३५) शन्तातिः । साम्नी बृहती ।

दिवे चक्षुषे नक्षत्रेभ्यः सूर्यायाधिपतये स्वाहा ३ ११३५

(२) सूर्यः, चन्द्रः, नक्षत्राणि ।

॥ ३८० ॥ (अथर्व० १५।६।५ - ६)

(११३६-३७) अथर्वा । ५ साम्नी त्रिष्टुप्, ६ निचृद्बृहती ।

तमृतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुव्यचलन् ५
ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चन्द्रस्य च नक्षत्राणां च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ६ ११३७

अदितेः, आदित्यानां च

गुणबोधक-पदानि ।

(१) अदितिः ।

अजरन्ती वा. य. २१,५; १२
अदितिः (सर्वत्र)
अनागाः वा. य. २१,७; १४
अनेहाः वा. य. २१,६; १३
अन्तरिक्षम् १,८९,१०; १
अरिष्टभर्मन् ८,१८,४; २
अस्रजन्ती वा. य. २१,६-७; १३-१४
उपस्थे यस्याः उरु अन्तरिक्षम् अ. ७,६,४; १६
उरुव्रजः ८,६७,१२; ८
उरूची वा. य. २१,५; १२
ऋतस्य पत्नी वा. य. २१,५; १२
ऋतावरी ८,२५,३; ३४२
कृण्वाना स्योनम् वा. य. २९,४; १५
जनाः पञ्च १,८९,१०; १
जनित्वम् १,८९,१०; १
जातम् १,८९,१०; १
जुषाणा आ वा. य. २९,४; १५
तुविक्षत्रा वा. य. २१,५; १२
देवी ८,१८,४; २ । ६७,१०; ६
दैवी नौः वा. य. २१,६; १३
द्यौः १,८९,१०; १ । वा. य. २१,६; १३
नौः दैवी वा. य. २१,६; १३
पञ्चजनाः १,८९,१०; १
पत्नी ऋतस्य वा. य. २१,५; १२
पिता १,८९,१०; १
पुत्रः १,८९,१०; १
पुरुप्रिया ८,१८,४; २
पृथिवी वा. य. २१,६; १३
मतिः ८,१८,७; ५
मही वा. य. २१,५६; ९ । २१,५; १२ । अ. ७,६,४; १६ । ऋ. ८,२५,३; ३४९
माता १,८९,१०; १ । अ. ७,६,४; १६ । ऋ. ८,२५,३; ३४९
माता मित्रस्य अर्यम्णः वरुणस्य च ८,४७,९; ८०
माता सुव्रतानाम् वा. य. २१,५; १२
राजपुत्रा २,२७,७; २७
विश्वे देवाः १,८९,१०; १
(विश्वात्मत्वं आदित्याः) १,८९,१०; १
शतारित्रा वा. य. २१,७; १४
सजोषाः वा. य. २९,४; १५
सुत्रामा वा. य. २१,६; १३
सु-नौः वा. य. २१,७; १४
सु-प्रणीतिः वा. य. २१,५-६; १२-१३
सुमृळीका ८,६७,१०; ६
सुव्रतानां माता वा. य. २१,५; १२
सुशर्मा वा. य. २१,५-६; १२-१३
स्योनं कृण्वाना वा. य. २९,४; १५
स्वरित्रा वा. य. २१,६; १३

(२) आदित्याः ।

अग्निजिह्वाः ७,६६,१०; ५०
अदब्धासः-ब्धाः २,२७,९; २९ । ८,६७,१३; ९४ । ८,१०१,६; १०३
अदितेः पुत्रासः ८,१८,५; ३ । १०,१८५,३; १०६
अद्भुतैनसः ८,६७,७; ९१
अद्रुहः ८,१९,३४; ७० । ६७,१३; ९४
अनवद्याः २,२७,२; २२
अनिमिषाः २,२७,९; २९
अनृतद्विषः ७,६६,१३; ५३
अनेहसः ८,१८,५; ३
अमृताः ८,१०१,६; १०३
अरिष्टाः २,२७,२; २२

अवृजिनाः १,२७,२; ११
अस्वप्नजः १,२७,९; १९
आदित्याः-त्यासः वा बहुशः सर्वत्र ।
आशवः × ८,४७,६; ७७
उरवः १,२७,३; १३
उरुचक्रयः ८,१८,५; ३
उरुशंसः १,२७,९; १९
ऊतयः अनेहसः (येषाम्) ८,४७,१-१३; ७१,८४
ऊतयः सुऊतयः (येषाम्) ८,४७,१-१३; ७१-८४
ऋणानि चयमानाः १,२७,४; १४
ऋतजाताः ७,६६,१३; ५३
ऋतनिभ्यः १,२७,११; ३१
ऋत (ता) वानः १,२७,४; १४ । ७,६६,१३; ५३
ऋत (ता) वृधः ७,६६,१०,१३; ५०,५३
ऋतस्य रथ्यः ७,६६,१२; ५२
क्षत्रियाः ८,६७,१; ८५
क्षितीनां मूर्धानः ८.६७,१३; ९४
गम्भीराः २,२७,३; १३
गोपाः विश्वस्य भुवनस्य ७,५१,२; ३९ । १,२७,४; १४
चयमानाः ऋणानि २,२७,४; १४
चर्षणीसहः ८,१९,३५; ७१
जगत् स्थाः धारयन्तः १,२७,४; १४
तुष्टुवानाः ७,५१,३; ४०
तिस्रः भूमीः धारयन् १,२७,८; १८
त्रीणि व्रतानि एषाम् १,२७,८; १८
त्री रोचना दिव्या धारयन्त १,२७,९; १९
त्रीन् द्यून् धारयन् २,२७,८; १८
त्रीणि विदथानि ये येमुः ७,६६,१०; ५०
दक्षक्रतवः (देवाः विशेष्यम्) वा. य. ४,११; १६६
दिप्सन्तः १,२७,३; १३
दीर्घ (र्घा) धियः १,२७,४; १४
देवाः (बहुषु स्थलेषु वर्तते ।)
देवत्राः वसवः ७,५२,१; ४१
धारपूताः १,२७,२,९; ११,१९
धारयन् तिस्रः भूमीः त्रीन् द्यून १,२७,८; १८
धारयन्त त्री रोचना दिव्या १,२७,९; १९
धारयन्तः जगत् स्थाः (च) १,२७,४; १४
नित्याः १,२७,११; ३१

पन्थाः एषां अदब्धाः, अनर्वाणः, पायवः, सुगेवृधः ८,१८,
२; ५५
पाकत्राः ८,१८,१५; ६१
पुत्रासः अदितेः ८,१८,५; २
पुष्टयः १,२७,११; ३१
प्रचेतसः ८,४७,४; ७५ । ६७,१७; ९८
बह्वः ७,६६,१०; ५०
भुवनस्य गोपाः १,२७,४; २४ । ७,५१,२; ३९
भूमीः तिस्रः धारयन् १,२७,८; २८
भूर्यक्षाः १,२७,३; २३
मनोजाताः (देवाः विशेष्यम्) वा. य. ४,११; १६६
मनोयुजः (देवाः विशेष्यम्) वा. य. ४,११; १६६
महान्तः ८,४७,१; ७१
मूर्धानः क्षितीनाम् ८,६७,१३; ९४
यजत्राः १,२७,१६; ३६
रक्षमाणाः १,२७,४; २४
रथ्यः ऋतस्य ७,६६,१२, ५२
राजानः २,२७,१,३,११; ११,१३,३१ । ७,६६,११; ५१।
८,१९,३५; ७१
राजानः व्रतस्य ७,६६,६; ४६
रिशादसः (अर्यमा) ७,६६,७; ४७
रोचना त्रीणि धारयन्त २,२७,९; १९
वरूथं, तेषां चित्रं, उक्थ्यम् ८,६७,३; ८७
वसवः ७,५२,१; ४१ । ८,१८,१५,१७; ६१,६४
विदथानि त्रीणि ये येमुः ७,६६,१०; ५०
विश्ववेदसः ८,१८,११; ५८ । ४७,३; ७४
व्रतानि त्रीणि विदथे एषाम् १,२७,८; १८
शुचयः १,२७,२,९; ११,१९
सुदानवः ७,६६,५; ४५। ८,५८,११; ५९। १९,३४;
७० । ६७,१६; ९७
सुमहसः ८,१८,१८; ६५
सुमृळीकाः ८,६७,१; ६५
सुशर्माणः ८,१८,४; २
सूरचक्षसः ७,६६,१०; ५०
सूरयः ८,१८,४; २
स्थाः जगत् धारयन्तः २,२७,४; १४
स्वयशसः ८,६७,१३; ९४
स्वराजः ७,६६,६; ४६

× अत्र ‘ आश, वः ’ इति पदद्वयमस्ति, किन्तु सायनभाष्ये ‘ आशवः ’ इति एकमेव पदम् । ‘ शीघ्रगमनाः ’ इत्यर्थेन गृहीतं वर्तते ।

आदित्यः ।

+ अत्र अथर्व० १७,१,१-५,९ १४,१८; १३४-३८,१४२-४७,१५१ मन्त्रान्तर्गतानि विद्यमानानि पदानि इन्द्ररूपेण वर्तमानस्य आदित्यस्य ।

❀

विष्णुः + अ. १७,१,६-१९; १३९-१५२
शुक्रः अ. १७,१,२०; १५३
शोचिषा नभसी विभासि अ. १७,१,१६; १४९
सन्धनाजितः अ. १७,१,१-५; १३४-१३८
समुद्रः वा. य. १७,६०; ११५
समुद्र इव पप्रथे वा. य. ३३,८३; १२०
सम्राट् अ. १७,१,२२-२३; १५५-१५६
सर्ववित् अ. १७,१,११; १४४
सहमानः अ. १७,१,१-५; १३४-१३८
सहस्कृतः ऋषिभिः वा. य. ३३,८३; १२०
सहीयान् अ. १७,१,१-५; १३४-१३८
सहोजितः अ. १७,१,१-५; १३४-१३८
सासहानः अ. १७,१,१-५; १३४-१३८
सुपर्णः वा. य. १७,६०; ११५
स्वराट् अ. १७,१,२२-२३; १५५-१५६
स्वर्जित् अ. १७,१,१-५; १३४-१३८

अदितेः, आदित्यानां च उपमासूची।

सुतीर्थं अर्वतः यथा ८,४७,११; ८१ तथा नः सुगमं अनु नेषथ।
अश्वी इव २,२७,१६; ३६ तान् रथेन अति येषम्।
यथा दिवि आदित्याय अ. ४,३९,५; १७८ एवा मह्यं सं नमः।
कूलात् इव स्पशः अधि ८,४७ ११; ८१ अव हि ख्यत।
माता पुत्रं यथा उपस्थे वा. य. ११,५७; १० उखा अग्निं।
बन्धात् बद्धं इव ८,६७,१८; ९९ यत् बन्धात् नः मुमोचति।
स्तेनं बद्धं इव ८,६७,१४; ९५ वृकाणां आस्नात् नः मुमोचत।
यथा त्वं भ्राजता भ्राजः अ. १७,१,२०;१५३ एवाहं...भ्राज्यासं।
युध्यन्त इव वर्मसु ८,४७,८; ७९ युष्मे देवाः अपि स्मसि।
यथा रथ्यः ८,४७,५, ७६ तथा नः दुर्गाणि अघा परि वृणजन्।
यथा त्वं रुच्या रोचः अ.१७,१,२१;१५४ एवाहं पशुभिः रुचिषीय।
वयो यथा पक्षा उपरि ८,४७,२; ७३ अस्मे शर्म विमोचत।
वयः न पक्षाः ८,४७,३; ७४ तन् शर्म अस्मे अधि वि यन्तन।
श्वभ्रा इव २,२७,५; २५ युष्माकं प्रणीतौ दुरितानि परि वृज्याम्।
समुद्र इव वा. य. ३३,८३, १२० पप्रथे।

आदित्य-मन्त्रान्तर्गता अन्यदेवताः।

अंशः २,२७,१; २१
अग्निः ७,५१,३; ४०। अ. १६,४,४,७; १३०,१३३। १७,१,३०; १६३। वा. य. ४,११; १६६
अदितिः २,२७,७,१४; १७,३४। ७,५१,२, ३९। ६६,६; ४६। ८,६७,१४; ९५
अर्यमा २,२७,१-२,५-८; २१-२२,२५-२८। ७,५१, २; ३९। ६६,४,७,११-१२; ४४,४७,५१-५२। ८,१८, ३,२१; ५६,६८। १९'३५; ७१। ४७,९; ८०। ६७, २,४; ८६,८८। १०,१८५,१; १०४
अश्विना ७,५१,३; ४०।८,१८,२०, ६०
आपः अथ. १६,४,६; १३१
आदित्यः वा.य.८,३,५;१०९,१११।१३,३,५;११२-११३। १७,५९-६०; ११४-११५। २३,५; ११६। ३१,१७; ११७। ३३,८१,८३, ११८,१२०। अथ. १७,१,१७;१५०
इन्द्रः २,२७,१४; ३४। ७,५१,३; ४०। ८,११,२०; ६७। ४७,५; ७६। ६७,८; ९१। वा.य. ८,२; १०८। ३३,८२; ११९। अथ. १७,१,१-३०; १३४-१६३।
उषसः अथ. १६,४,६; १३१। १७,१,३०, १६३
ऋभवः ७,५१,३; ४०
दक्षः २,२७,१; २१। (वरुणविशेषणं वा।)
द्यावापृथिवी २,२७,१५; ३५। ७,५२,१, ४१। ८,१८, १६; ६३
धीः दैवी वा. य. ४,११; १६६
पर्वताः अथ. १७,१,३०; १६३
पिता ७,५३,३; ४३। [वरुणः प्रजापतिर्वा]
पितरः अथ. २,११,४; १६७
बृहस्पतिः अथ. १६,३,५; १२५
भगः २,२७,१; २१। ७,६६,४; ४४
मरुतः ७,५१,३; ४०। ८,१८,२१; ६८
मातरिश्वा अथ. १६,३,४; १२४
मित्रः २,२७,१-२,६-८,१४; २१-२२, २६-२८, ३४। ७,५१,१; ३९। ५२,१; ४१। ६६,४,७,९,११-१२; ४४,४७,४९,५१-५२।८,१८,३,२०,२१; ५६,६७-६८। १९,३५; ७१। ४७,१,९; ७२,८०। ६७,२,४; ८६, ८८। १०,१८१,१; १०४
मित्रावरुणौ २,२७,५; २५। ७,५२,१; ४१। अथ. १६, ४,७; १३२
यमः अथ. १६,४,४; १३०

+ अस्यां सूच्यां अथर्व० १७,१,६-१९; १३९-५२ मन्त्रान्तर्गतानि पदानि विष्णवात्मकस्य आदित्यस्य सन्ति।

(३) मित्रः ।

मित्रावरुणौ ।

× अस्य स्थाने ' मित्रा ' इति सामवेदपाठः ३९७,३९८ ।

अर्यमादेवताया गुणबोधकपदानि । [मित्रावरुण-सहकारित्वेन]

+ सर्वताता ' सर्वतातौ यज्ञे ' इति सायनभाष्यम् ।

× ' अरिः अर्यः च ' इति द्वे पदे वर्जयित्वा एतानि सर्वाणि पदानि मित्रावरुणाभ्यां सहितायाः अर्यमादेवताया गुणबोधकानि सन्ति ।

निपातभाग्वरुणदेवताया गुणबोधकपदानि ।

अंशुं आप्याययन् अ. ७,८१,६; ६८४
अक्षितः ७,८१,६; ६८४
अक्षितं भक्षयन् ७,८१,६; ६८४
आदित्यवान् अ. १९,८,४; १६४
आप्याययन् अंशुम् अ. ७,८१,६; ६८४
ऋतावान् ७,६१,३; ५६०
गोपाः भुवनस्य अ. ७,८१,६; ६८४
चन्द्रः ७,६१,३; ५६०
तुविजातः २,२७,१; २१
दक्षः २,२७,१; २१
पिता ७,५२,३; ४३
भक्षयन् अक्षितम् अ. ७,८१,६; ६८४
भुवनस्य गोपाः अ. ७,८१,६; ६८४
महान् ७,५२,३; ४३ । ८,६७,४; ८८
यजत्रः ७,५२,३; ४३
राजा अ. ५,२१,११; १८१
रेवान् ८,४७,९; ८०

मित्रस्य, मित्रावरुणयोश्च उपमासूची ।

अग्निः न शुक्रः ८,२५,१९; ३६२ सूर्यः समिधानः आहुतः ।
अत्रिवत् ५,७२,१; २९५ वयं गीर्भिः आ जुहुमः ।
अपः न नावा ७,६५,३; ३३८ ऋतस्य पथा दुरिता तरेम ।
अपसा इव जनान् ६,६७,३; ३०० श्रुधीयतः जनान् सं यतथः ।
अश्वा न ६,६७,४, ३०१ वाजिना पूतबन्धू ऋता ।
अश्वाजनी इव ५,६२,७; २४५ स्थूणा अयः वि भ्राजते ।
उपमात् इव ६,६७,६; ३०३ दंहेथे द्योः सानुम् ।
गां न धुरि १,१५१,४; २१६ आभुवं अपः उप युञ्जाथे ।
तक्वीः इव १,१५१,५; २१७ सूर्यं निम्रुचः उषसः स्वरन्ति ।
तिग्मं न क्षोदः ८,२५,१५; ३५८ प्रतिघ्नन्ति भूर्णयः ।
द्यौः न १०,१३२,६; ३७६ भूमिः पयसा पुपूतनि ।
धेनुं न वासरीम् १,१३७,३; २१२ (अध्वर्यवः) अंशुं दुहन्ति ।
पदा इव ५,६७,३; २७६ व्रता सश्चिरे ।
बर्हिः इव यजुषा ५,६२,५; २४३ उर्वी रक्षमाणा वर्धत् ।
बाहुता न ८,१०१,२; ३६९ दंसना ता रथर्यतः ।
मनसः न प्रयुक्तिम् १,१५१,८; २२० युवां प्रथमा यज्ञैः अञ्जते।
मित्रं न १,१५१,१; १८४ (मित्रः) अग्निं शिम्या अप्सु जीजनन्।
मित्रासः न १,१५१,२; २१४ ऋत्विजः प्र दधिरे ।
यूथा इव ७,६०,३; ३११ जनिमानि सं चष्टे ।
यूथा इव ८,२५,७; ३१३ बृहतः अभि पश्यतः ।
रश्मा इव ६,६७,१; २९८ यमिष्ठा जनान् सं यमतुः ।
बाह्वोः व्रजा इव परि जगन्वांसा ५,६४,१; २५५ वः ऋचा हवामहे।
मानुषं व्रता इव ५,६६,२; २६९ दर्शतं धायि ।
शूरः न ५,६३,५; २५२ मरुतः रथं युञ्जते ।
शुक्रः सोमः न ७,६४,५; ३३५ एष स्तोमः अयामि ।
शुक्रः सोमः न ७,६५,५; ३४० एष स्तोमः अयामि ।
स्वर् न ५,६६,२; २६९ दर्शतं धायि ।
मानुषः होता न १,१५३,३; २३१ सः रातहव्यः विदथे वां ।

मित्रावरुणदेवतामन्त्रेषु निपातदेवताः ।

अग्निः १,१३६,६-७; २०८-२०९
आदितिः ५,६९,३; २८६ । ७,६०,८; ३१६ । ८,२५,३; ३४९ । ७,६२,४; ३२८×
अपां सिन्धुः ८,२५,१४-१५; ३५७-३५८
अर्यमा १,१३६,२-३,५-६; २०४-५,२०७-८ । ५,६७,१ ३-४; २७४,२७६-२७७ । ७,६०,४-६; ३१२-३१४ । ६२,६, ३३० । ६४,१,३; ३३१,३३३
अश्विना ८,२५,१४-१५; ३५७-३५८
आदित्यः १,१५२,३-५; २२४-२२६
इन्द्रः १,१३६,६; २०८ । ८,२५,१४-१५; ३५७-३५८
द्यौः १,१३६,६; २०८
द्यावाभूमी ७,६२,४; ३२८
पर्जन्यः ५,६३,४,६; २५१,२५३
पृथिवी ५,६६,५; २७२
भगः १,१३६,२,६; २०४,२०८
मरुतः १,१३६,७; २०९ । ५,६३,५-६; २५१-२५२ । ८,२५,१४-१५; ३५७-३५८
रोदसी १,१३६,६; २०८
वायुः ७,६२,४; ३२९ । ६४,५; ३३५ । ६५,५; ३४०
विश्वे देवाः १,१३६,४,७; २०६,२०९ । ६,६७,५; ३०१
विष्णुः ८,२५,१४-१५; ३५७-३५८
सूर्यः ७,६०,२; ३१०
सोमः १,१३६,६; २०८

× अत्र ' आदिते ' इति पदम् । तत्सायनैः ' द्यावाभूम्यो, ' प्रत्येकं संबोधनं गृह्यते ।

(४) सविता ।

सवितादेवताया उपमासूची।

(५) सूर्यः ।

शरस्य पिता अ. ४,३,५; ६१०
शिशू क्रीडन्तौ (सूर्याचन्द्रमसौ) अ. ७,८१,१; ६७९
शुक्रम् ७,६६,१६; ५६७ । वा॰ य. ३३,२४; ६०६
शुचिषद् ४,४०,५; ५५५
शोचिष्केशः १,५०,८; ५४१
श्रवसा महान् ८,१०१,११; ५६९
श्रेष्ठः (रश्मिः) वा. य. २,२६; ५९२
श्रेष्ठम् (ज्योतिः) १०,१७०,३; ५८९
सजूः देवेन सवित्रा वा. य. ३,१०; ५९५
सजूः उषसा इन्द्रवत्या वा. य. ३,१०; ५९५
सत्यम् (ज्योतिः) १०,१७०,२; ५८८
सध्रीचीः वसानः (घर्मः) वा. य. ३७,१७; ६०८
सपत्नहा (ज्योतिः) १०,१७०,२; ५८८
समः ७,६२,१; ५५८
समन्तः समग्रः अ. ७,८१,४; ६८२
सरस्वान् १,१६४,५२; ६३०
सविता ७,६३,३; ५६३ । १०,१५८,२-३; ५८३-८४ ।
वा. य. ३,१०; ५९५ । ऋ. १०,८५,९,१३; ६३५,६३९
सहस्रमानवः साम. ४५८; ६२८
साधारणः मानुषाणाम् ७,६३,१; ५६१
सुकृतः कर्तृभिः ७,६२,१; ५५८
सुपर्णः १,१६४,५२; ६३०
सुभगः ७,६३,१; ५६१
सुभृतम् [ज्योतिः] १०,१७०,२; ५८८
सुसंदृशः १०,१५८,५; ५८६
सूरः १,५०,२,९; ५३५,५४२ । ७,६३,५; ६३१
सूर्यः (प्रायः सर्वत्र ।) ७,६०,२; ३१०
सोमस्य अंशः अ. ७,८१,३; ६८१
स्वः वा. य. १,११; ५९१ । अ. १६,९,३; ६२६ ।
अ, २०,४८,४; ६८९
स्वयम्भूः वा. य. २,२६; ५९२
हंसः ४,४०,५; ५५५
हरिकेशः १०,३७,९; ५७८
होता ४,४०,५; ५५५

सूर्यस्यः रश्मयः ।

अपः वसानाः १,१६४,४७; ५५४
ऋतस्य सदनात् आववृत्रन् (ये) १,१६४,४७; ५५४
केतवः १,५०,३; ५३६
केतवः ये देवं वहन्ति १,५०,१; ५३४
कृष्णं नियानं हरयः १,१६४,४७; ५५४
देवाः उदिताः १,११५,६; ५५२

द्यावः (द्युभिः-तृतीया) अ. २०,४८,६; ६९१
भ्राजन्तः यथा अग्नयः १,५०,३; ५३६
रश्मयः सप्त १,५०,३; ५३६ । वा. य. ८,३; ५९७ ।
अ. ७,१०७,१; ६८५
सुपर्णाः १,१६४,४७; ५५४
हरितः १,११५,५; ५५१

सूर्यस्य द्विषन्नाशनी शक्तिः ।

अर्चिः अ. २,२१,३; ६१३
तपः अ. २,२१,१; ६११
तेजः अ. २,२१,५; ६१५
शोचिः अ. २,२१,४; ६१४
हरः अ. २,२१,२; ६१२

सूर्यस्य अश्वानां गुणबोधकपदानि ।

अनुमाद्यासः १,११५,३; ५४९
अश्वाः १,११५,३; ५४९
आशुः ७,६६,१४; ५६५
एतग्वाः १,११५,३; ५४९
एतशः ७,६३,२; ५६२ । ७,६६,१४; ५६५
एतशाः १०,३७,३; ५७२
केतवः १,५०,१; ५३४
चित्राः १,११५,३; ५४९
देवः ७,६६,१४; ५६५
धूर्षु युक्तः ७,६६,१४; ५६५
नप्त्यः रथस्य १,५०,९; ५४२

चन्द्रमसः सहचारित्वें सूर्यस्य गुणबोधकपदानि।

अधिपतिः अ. ६,१०,३; ११३५
अह्नां केतुः १०,८५,१९; ९७२
उषसां अग्रं एति १०,८५,१९; ९७२
चक्षोः (अस्य पुरुषस्य) अजायत ऋ. १०,९०,१३; ९७३।
वा. य. ३१,१२; ९७८
चरते एकाकी वा. य. २३,१०; ९७७
नमस्यन्तः १,११५,३; ५४९
पतराः १०,३७,३; ५७२
भद्राः १,११५,३; ५४९
युक्तः धूर्षु ७,६६,१४; ५६५
रथस्य नप्त्यः १,५०,९; ५४२
शुन्ध्युवः १,५०,९; ५४२
सप्त १,५०,८-९; ५४१-५४२
स्वयुक्तयः १,५०,९; ५४२ । ७,६६,१५; ५६६
स्वसारः ७,६६,१५; ५६६
हरितः १,११५,३-४; ५४९-५० । ७,६६,१५; ५६६

सूर्यसहचारी-वैश्वानराग्नेः गुणबोधकपदानि ।

(ऋ० १०,८८,१-१९; ६५९-७७)

अजरः ३; ६६१
अजुर्यः १३; ६७१
अध्यक्षः यक्षस्य १३; ६७१
अर्चिषा यन् १२; ६७०
आजुहवुः यस्मिन् विश्वा भुवनानि ९; ६६७
ऋजूयमानः अर्चिषा पृथिवीं द्यां च ९; ६६७
कः १; ६५९
कविः १४; ६७२
जातवेदाः ४-५; ६६२-६३
तनूपाः ८; ६६६
तविष् (षम्-द्वितीया) १३; ६७१
दिवियोनिः ७; ६६५
दिविस्पृक् १; ६५९
दीदिवान् १४; ६७२
दृशेन्यः महिना ७; ६६५
देवजुष्टः ४; ६६२
पचति यः विश्वरूपा ओषधीः १०; ६६८
प्रथमः होता ४; ६६२
बृहन् ३,१३; ६६१,६७१
भुवनस्य मूर्धनि अतिष्ठः ५; ६६३
मूर्धा भुवा भवति नक्तम् ६; ६६४
यज्ञः ८; ६६६
यज्ञियः ५; ६६३
रोदसिप्राः ५,१०; ६६३, ६६८
विभावा ७; ६६५
वेदयं पृथिवी द्यौः आपः ८; ६६६
समिद्धः ७; ६६५
सूक्तवाक् ८; ६६६
स्वर्वित् १; ६५९
होता प्रथमः ४; ६६२

सूर्यदेवताया उपमासूची ।

यथा अक्षेत्रविद् मुग्धः ५,४०,५; ५५६ भुवनानि अदीधयुः ।
यथा अग्नयः भ्राजन्तः १,५०,३; ५३६ । वा. य. ८,४०; ५९७ केतवः रश्मयः वि अदृश्रम् ।
चर्म इव ७,६३,१; ५६१ देवः तमांसि समविव्यक् ।
जातं जात्रीः यथा हृदा अ. २०,४८,२; ६८७ ता अर्षन्ति शुभ्रयः ।
त्ये तायवः यथा १,५०,२; ५३५ नक्षत्राः अक्तुभिः अप यन्ति ।
द्यौः इव भूम्ना वा. य. ३,५; ५९३ अहं भूयासम् ।
पृथिवी इव वरिम्णा वा. य. ३,५; ५९३ अहं भूयासम् ।
भागं न वा. य. ३३,४१; ६०४ जाते जनिमाने वसूनि प्रति ।
मर्यः न योषाम् १,११५,२; ५४८ सूर्यः उषसं पश्चात् अभ्येति ।
यथा युवानः मत्सथः वा. य. ३३,३४; ६०२ तथा नः विश्वं मनीषा ।
अभि वत्सं न धेनवः अ. २०,४८,१; ६८६ त्वा अभि गिरः ।
श्येनः न दीयन् ७,६३,५; ६३१ पाथः अनु एति ।
श्रायन्तः इव सूर्यम् वा. य. ३३,४१; ६०४ वयं विश्वा इन्द्रस्य ।
यथा सूर्यः...नक्षत्राणां अ. ७,१३,१; ६१७ एवा स्त्रीणां वर्चः ।
उद्यन् सूर्यः इव अ. ७,१३,२; ६१८ द्विषतां वर्चः आ ददे ।
सुपर्णः वसतेः इव अ. ६,८३,१; ६७८ अपचितः प्र पतत ।

सूर्यदेवतामन्त्रेषु निपातदेवतानां गुणबोधकपदानि।

अग्निः १,१६४,४६; ५५३ । ७,६२, २-३; ५५९-५६० [चन्द्रः ऋतावान् । (५६०)]
अग्निः (पार्थिवः) १०,१५८,१; ५८१
अदितिः १,११५,६; ५५२
अर्यमा ७,६२,२; ५५९
आपः १०,३७,६; ५७५
इन्द्रः १,१६४,४६, ५५३ । १०,३७,८; ५७५ । अ. ७, ८१,६; ६८४ । भुवनस्य गोपाः अक्षितः अक्षितं भक्षयन्, अंशुं आप्याययन् ।
चन्द्राः ७,६२,३; ५६० (अयं शब्दः मित्रावरुणाग्नीनां विशेषणं वा ।)
देवाः १,११५,६; ५५२।१०,३७,५,११-१२; ५७४,५८०-८१

(६) [१] त्वष्टा ।

[२] धाता ।

धातादेवताया उपमासूची ।

[३] पूषा ।

× पूष्णो अश्वाः— अजासः, निशुम्भाः ६,५५,६; ७६४ ।

पूषादेवताया उपमासूची ।

[४] भगः ।

× अत्र ' देवाः ' इति ऋग्वेदपाठः । अथर्व. ३,१६,२-३,५, १६८-७० = ऋग्वेद ७,४१,२-३,५; ७९३-९४,७९६ समाना एव ।

भगवान् ७,४१,५; ७९६ । अ. ३,१६,५; १७०
मघवा ७,४१,४; ७९५
वसुविद् ७,४१,६; ७९७
विधर्ता ७,४१,२; ७९३ । अ. ३,१६,२; १६८
वृक्षेषु आहितः अ. ६,१२९,३; ८०३
शांशपः अ. ६,१२९,१; ८०१
सत्यराधः ७,४१,३; ७९४ । अ. ३,१६,३; १६९
सुयुजः अ. ५,२६,९; ८००

भगदेवताया उपमासूची ।

अश्वः कनिक्रदद् अ. २,३०,५; ७९८ भगेन अहं सहागमम् ।
दधिक्रावा इव शुचये पदाय ७,४१,६; ७९७ उषसः अध्वराय ।
रथं इव अश्वाः वाजिनः ७,४१,६; ७९७ उषसः अर्वाचीनं भगं ।
सविता भगः सूर्या इव अ. १४,१,५३; ८०६ प्रजया परि धत्ताम् ।

(७) विष्णुः ।

अकुमारः १,१५५,६; ८३२
अदब्धः अ. १७,१,११; १४५
अदाभ्यः १,२२,१८; ८२०
अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः अ. १७,१,११; १४५
अन्यरूपः समिथे ७,१००,६; ८४७
अपोर्णुते व्रजम् (यः) १,१५६,४; ८३६
अप्रतीता [वरुणश्च] वा. य ८,५९; ८७७
अबृकः १,१५५,४; ८३०
आरोहन् त्रिदिवम् अ. १७,१,१०; १४३
इनः १,१५५,४; ८३०
इन्द्रस्य युज्यः सखा १,२२,१९; ८२१
उत्तरं सधस्थं अस्कभायत् १,१५४,१; ८२४ । अ. ७,२६, १; ८६१
उरुक्रमः १,१५४,५; ८२८
उरुगायः १,१५४,१,३,६; ८२४,८२६,८२९ । ७,१००,१; ८४२ । वा. य. ८,१; १०७,८६०
ऋक्वभिः विमिमानः १,१५५,६; ८३२
ऋतस्य गर्भः १,१६५,३; ८३५
एवयाः १,१५६,१; ८३३
एवयावन् (वा) ७,१००,२; ८४३
कुचरः १,१५४,२; ८२५ । अ. ७,२६,२; ८६२
गर्भः ऋतस्य १,१५६,३; ८३५
गिरिक्षित् १,१५४,३; ८२६
गिरिष्ठाः १,१५४,२; ८२५ । अ. ७,२६,२; ८६१
गोपाः १,२२,१८; ८२०
घृतासुतिः १,१५६,१; ८३३
तन्वा मात्रया परः वृधानः ७,९९,१; ८३८
तवसः ७,१००,५; ८४६
तवीयान् तवसः ७,१००,३; ८४४
त्राता १,१५५,४; ८३०
त्रिदिवं आरोहन् अ. १७,१,१०; १४३
त्रिधातु दाधार १,१५४,४; ८२७
त्रिष (ष) धस्थः १,१५६,५; ८३७
दक्षं उत्तमं अहर्विदं दाधार १,१५६,४; ८३६
देवः ७,९९,१-२; ८३८-३९
दैव्यः १,१५६,५; ८३७
धर्माणि धारयन् १,२२,१८; ८२०
नवीयाः १,१५६,२; ८३४
ना ८,२५,१५; ३५८
नाकं ऋष्वं उदस्तभ्नाः ७,९९,२; ८३९
पार्थिवानि रजांसि विममे १,१५४,१; ८२४
पूर्वहूतौ [वरुणश्च] वा. य. ८,५९; ८७७
पूर्व्यः १,१५६,२-३; ८३४-८३५
पृथिव्याः प्राचीं ककुभं दाधर्थ ७,९९,२; ८३९
बृहच्छरीरः १,१५५,६; ८३२
ब्रह्मणा वावृधानः अ. १७,१,११; १४५
भीमः मृगः न १,१५४,२; ८२५
भूर्णिः ८,२५,१५; ३५८
मीढ्वान् १,१५५,४; ८३० । ८,२५,१४; ३५७
युवा १,१५५,६; ८३२
वनीयान् ८,२५,१५; ३५८
वावृधानः ब्रह्मणा अ. १७,१,११; १४५
विचक्रमाणः त्रेधा १,१५४,१; ८२४ । अ. ७,२६,१; ८६१
विभूतद्युम्नः १,१५६,१; ८३३

विमिमानः ऋक्वभिः १,१५५,६; ८३२
विष्णुः× [प्रायः सर्वत्र।] अ. १७,१,६-१९; १३९-५२
वीरतमा वीर्येभिः [वरुणश्च] वा. य. ८,५९; ८७७
वृधानः तन्वा मात्रया परः ७,९९,१; ८३८
वृषा १,१५४,३,६; ८२६,८२९
वेधाः १,१५६,२,५; ८३४,८३७
व्रजं अपोर्णुते १,१५६,४; ८३६
शविष्ठा [वरुणश्च] वा. य. ८,५९; ८७०
शिपिविष्टः ७,९९,७; ८४१। १००,५-६; ८४६-८४७
शेव्यः १,१५६,१; ८३३
सखा युज्यः इन्द्रस्य १,२२,१९; ८२१
सखिवान् १,१५६,४; ८३६
सजोषाः ८,२५,१४; ३५७
सप्रथाः १,१५६,१; ८३३
समिथे अन्यरूपः ७,१००,६; ८४७
सहोभिः पत्यते [वरुणश्च] ८,५९; ८७७
सुकृत्तरः १,१५६,५; ८३७
सुजनिमा ७,१००,४; ८४५
सुमज्जानिः १,१५६,२; ८३४
स्थविरः ७,१००,३; ८४४
स्वर्दृशः १,१५५,५; ८३१

विष्णुदेवताया उपमासूची।

चक्रं न १,१५५,६; ८३२ विष्णु वृत्तं व्यतीन्...अवीविपत्।
दिविः इव चक्षुः १,२२,२०; ८२२ सूरयः विष्णो तत्पदं।
मित्रः न १,१५६,१; ८३३ शेव्यः सुप्रथाः भव।
मृगः न १,१५४,२; ८२५ भीमः कुचरः गिरिष्ठा प्र स्तवते।

विष्णोः विक्रमणम्।

१,२२,१६; ८१८ विष्णुः विचक्रमे। पृथिव्याः सप्त धामभिः।
१,२२,१७; ८१९ इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
१,२२,१८; ८२० त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुः।
१,१५४,१; ८२४ विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः।
अ. ७,२६,१; ८६१ विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः।
१,१५४,२; ८२५ यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधि क्षियन्ति।
अ. ७,२६,३; ८६३ भुवनानि विश्वा।
१,१५४,३; ८२६ य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः।
१,१५५,४; ८३० यः पार्थिवानि त्रिभिरिद्विगामभिरुरुक्रमिष्ट।
७,१००,३; ८४४ त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा।
७,१००,४; ८४५ वि चक्रमे पृथिवीमेष एताम्।
१,१५५,५; ८३१ द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति। तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः॥

विष्णोः पदम्।

१,२२,१७; ८१९ ...विष्णुः...त्रेधा नि दधे पदम्। समूळ्हमस्य पांसुरे॥
१,२२,२०; ८२२ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
१,२२,२१; ८२३ तद्विप्रासो ... समिन्धते। विष्णोर्यत् परमं पदम्॥
१,१५४,४; ८२७ यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।
१,१५४,५; ८२८ विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः।
१,१५४,६; ८२९ अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि।

(८) विवस्वान्।

राजा अ. ६,११६,१; ८८०
वैवस्वतः अ. ६,११६,१-२; ८८०-८८१

× अत्र अथर्व १७,१,६-१९; १३९-१५२ मंत्रेषु वर्तमानानि पदानि विष्णुस्वरूपेण वर्तमानस्य आदित्यस्य सन्ति।

(९) संवत्सरः कालः ।

संवत्सरपञ्चकम् ।

संवत्सरः वा. य. २७,४५; ८८५
परिवत्सरः वा. य. २७,४५; ८८५
इदावत्सरः वा. य. ३०,१५; ८८६
इद्वत्सरः वा य. ३०,१५; ८८६
वत्सरः वा. य. ३०,१५; ८८६

संवत्सरावयवाः ।

उषसः वा. य. २७,४५; ८८५
अहोरात्राः वा. य. २७,४५; ८८५
अर्धमासाः वा. य. २७,४५; ८८५
मासाः वा. य. २७,४५; ८८५
ऋतवः वा. य. २७,४५; ८८५
संवत्सरः वा. य. २७,४५; ८८५

संवत्सरकालयो गुणबोधकपदानि ।

संवत्सरः ।

पतिः एकाष्टकायाः अ. ३,१०,८; ८८७
सुपर्णचित् वा. य. २७,४५; ८८५

कालः ।

ईश्वरः सर्वस्य अ. १९,५३,८; ८९९
देवः परमो नु अ. १९,५४,५; ९०६
देवः प्रथमो नु अ. १९,५३,२; ८८३
पिता प्रजापतेः अ. १९,५३,९; ९००
ब्रह्म अ. १०,५३,९; ९००

(१०) ऋतवः ।

द्वादशदेवाः, संवत्सरस्य दंष्ट्राः । अ. ११,६,२२; ९६८

ऋतूनां नामानि ।

वसन्तः वा. य. २१,२३; ९४० । अ. १५,३,४; ९५२ ।
अ. १२,१,३६; ९६
ग्रीष्मः वा. य. २१,२४; ९४१ । अ. १५,३,४; ९५२ ।
अ. १२,१,३६; ९६९
वर्षाः, वर्षाणि वा. य. २१,२५; ९४२ । अ. १५,३४; ९५२ ।
अ. १२;१,३६; ९६९
शरद्, शारदः वा. य. २१,२६; ९४३ । अ. १५,३,४; ९५२ ।
अ. १२,१,३६; ९६९
हेमन्तः वा. य. २१,२७; ९४४ । अ. १२,१,३६; ९६९ ।
शैशिरः वा. य. २१,२८; ९४५ । अ. १२,१,३६; ९६९ ।

ऋत्ववयवानां मासानां नामानि ।

मधुः, माधवः वा. य. ७,३०; ९३१ । १३,२५; ९३२
शुक्रः, शुचिः वा. य. ७,३०; ९३१ । १४,६; ९३३
नभः नभस्यः वा. य. ७,३०; ९३१ । १४,१५; ९३४
इषः, ऊर्जः वा. य. ७,३०; ९३१ । १४,१६; ९३५
सहः, सहस्यः वा. य. ७,३०; ९३१ । १४,२७; ९३६
तपः, तपस्यः वा. य. ७,३०; ९३१ । १५,५७; ९३८
अंहसस्पतिः वा. य. ७,३०; ९३१

' हविरिन्द्रे वयो दधुः ' इति । वा. य. २१,२३-२८; ९४०-४५
मन्त्रेषु इन्द्रे हविराधाने वसन्तादीनामितरैः सह सहकारित्वम् ।

ऋतुनाम।	देवाः।	स्तोमनाम।	पृष्ठ(साम) नाम।	मंत्रांकः
वसन्तः	वसवः	त्रिवृत्	रथन्तरम्	२१,२३; ९४०
ग्रीष्मः	रुद्राः	पञ्चदशः	बृहत्	२१,२४; ९४१
वर्षाः	आदित्याः	सप्तदशः	वैरूपम्	२१,२५; ९४२
शारदः	ऋभवः	एकविंशः	वैराजम्	२१,२६; ९४३
हेमन्तः	मरुतः	त्रिणवः	शाक्वरम्	२१,२७; ९४४
शैशिरः	अमृताः	त्रयस्त्रिंशः	रैवतम्	२१,२८; ९४५

व्रात्यस्य (ब्रह्मचारिणः) मासानां गोप्त्रादयः ।

[अथर्व० १५-४ सूक्तं । ९५३-६४

दिङ्नाम।	गोप्तारौ।	अनुष्ठातारौ।	मंत्रांकः।
प्राची	वासन्तौ मासौ	बृहत् रथन्तरं च ।	२-३; ९५३-५४
दक्षिणा	ग्रैष्मौ मासौ	यज्ञायज्ञियं वामदेव्यं च।	५-६; ९५५-५६
प्रतीची	वार्षिकौ मासौ	वैरूपं वैराजं च ।	८-९; ९५७-५८
उदीची	शारदौ मासौ	श्यैतं नौधसं च ।	११-१२; ९५९-६०
ध्रुवा	हैमनौ मासौ	भूमिः अग्निः च ।	१४-१५; ९६१-६२
ऊर्ध्वा	शैशिरौ मासौ	द्यौः आदित्यः च ।	१७-१८; ९६३-६४

(१०) ऋतवः । (ऋग्वेद-संहिता)

सूक्तमंत्र-क्रमांकः	मंत्रोक्त-ऋतुवाचक पदम्	सोमपान-पात्रम्	मन्त्रोक्त-देवतापदम् (१,१५।२,३६-३७)	मंत्रोक्त-ऋतुवाचक पदम्	कात्यायन-सर्वानुक्रमण्युक्ता देवताः	सोमपान-पात्रम्	सूक्तमंत्र-क्रमांकः ।
१,१५,			उभयत्र				२,३६,
१;९०७	ऋतुना	...	इन्द्रः	...	मधुः	होत्रम्	१;९१९
२;९०८	ऋतुना	पोत्रम्	मरुतः	...	माधवः	पोत्रम्	२;९२०
३;९०९	ऋतुना	...	त्वष्टा	...	शुक्रः	...	३;९२१
४;९१०	ऋतुना	...	अग्निः	...	शुचिः	आग्नीध्रम्	४;९२२
५;९११	ऋतून् अनु	ब्राह्मणम्	इन्द्रः	...	नभः	ब्राह्मणम्	५;९२३
६;९१२	ऋतुना	...	मित्रावरुणौ	...	नभस्यः	प्रशास्त्रम्	६;९२४
					[सायनभाष्यानुसारेण]		२,३७,
७;९१३	...	...	द्रविणोदाः	ऋतुभिः	इषः	होत्रम्	१;९२५
८;९१४	...	...	द्रविणोदाः	ऋतुभिः	ऊर्जः	पोत्रम्	२;९२६
९;९१५	ऋतुभिः	नेष्ट्रम्	द्रविणोदाः	ऋतुभिः	सहः	नेष्ट्रम्	३;९२७
१०;९१६	ऋतुभिः	तुरीयम्	द्रविणोदाः	...	...	होत्रपोत्रनेष्ट्रतुरीयाणि	४;९२८
११,९१७	ऋतुना	...	अश्विनौ	...	...	...	५;९२९
१२;९१८	ऋतुना	..	अग्निः	ऋतुना	तपस्यः	...	६;९३०

२।३६ सूक्ते मंत्रेषु ऋतुवाचकपदस्य अभावः । कात्यायन सर्वानुक्रमण्यां देवतानामानि, मासानां नामानि, न तु ऋतूणाम् ।

(११) चन्द्रमाः ।

आयुर्वेदप्रकरणे ।

अवचाकशत् विश्वा भूता अ. ६,८०,१; १५८८
जन्म अप्सु अ. ६,८०,३; १५९०
दिव्यः श्वा अ. ६,८०,१,३; १५८८,१५९०
महिमा अनाः पृथिव्याम् ६,८०,३; १५९०
महिमा अन्तः समुद्रे ६,८०,३; १५९०
श्वा दिव्यः अ ६,८०,१,३; १५८८,१५९०
सधस्थं दिवि अ. ६,८०,३; १५९०

चन्द्ररश्मयः ।

विद्युतः ऋ. १,१०५,१; ९८२
हिरण्यनेमयः ऋ. १,१०५,१; ९८१

चन्द्रस्य द्विषन्नाशनी शक्तिः ।

अर्चिः अ. २,२२,३; ९८३
तपः अ. २,२२,१; ९८१
तेजः अ. २,२२,५; ९८५
शोचिः अ. २,२२,४; ९८४
हरः अ. २,२२,२; ९८२

(१२) रात्रिः ।

अन्तः महान्तः महिमानः अस्याम् अ. ३,१०,४; १०७७
अमर्त्या १०,१२७,२; १००४
अमावास्या रात्रिः अ. १,१६,१; १०१७
अश्वक्षमा अ. १९ ४९,१; १०५२
आयती १०,१२७,१,३; १००३,१००५
इषिरा अ. १९,४९,१; १०५२
उपायती [धेनुः वा] अ. ३,१०,२; १०७५
उर्वी अ. १९,४७,१; १०३१
उशती अ. १९,४९,२,८; १०५३,१०५९
केशाः [रात्री भवति] अ. १५, २, ५, १३, २१, २९; १०२१–१०२४
घृताची नाम वै असि अ. १९,४८,६; १०४४
चक्षुष्मती अ. १९,४९,८; १०५९
चित्रावसुः वा. य. ३,१८; १०३१
जनित्री अ. ३,१०,४; १०७७
ज्योतिषा तमः बाधते १०,१२७,२; १००४
ज्योतिषा सुज्योतिः वा. य. ३७,२१; १०१६
तमः अप ह्रासते १०,१२७,३; १००५
तमः ज्योतिषा बाधते १०,१२७,२; १००४
तमस्वती अ. १९,४७,२; १०३१
त्वेषं ते तमः आ वर्तते वा. य. ३४,३२; १०१५
दमूनाः अ. १९,४९,१; १०५२
दिवः दुहिता १०,१२७,८; १०१० । अ. १९,४७,५; १०३४
दुहिता दिवः १०,१२७,८; १०१० ।
देवी १०,१२७,१-३; १००३-५
धेनुः [धेनुः वा] अ. ३,१०,२; १०७५

नवगत् वधूः [धेनुः वा] अ. ३,१०,४; १०७७
पत्नी संवत्सरस्य [धेनुः वा] अ. ३,१०,२; १०७५
पिशङ्गिला वा. य. २३,१२; १०१२
पुरुत्रा १०,१२७,१; १००३
प्रतिमा संवत्सरस्य ३,१०,३; १०७६
प्रथमा या व्यौच्छत् [धेनुर्वा] अ. ३,१०,४; १०७७
प्रविष्टा आसु इतरासु [धेनुर्वा] अ, ३,१०,४; १०७७
बृहती वा. य. ३४,३२; १०१५
भद्रा अ. १९,४७,२,७; १०३१,१०३६ । ४९,२; १०५३
भद्राहं अस्तु रात्री अ. ६,१२८,२; १०३०
माता अ. १९,४८,२; १०४०
माता वनस्पतेः सिलाचीनाम्न्याः अ. ५,५,१; १०२०
माता हिमस्य अ. १९,४९,५; १०५६
युवतिः अ. १९,४९,१,८; १०५२,१०५९
योषा अ. १९,४९,१; १०५२
रात्रिः [प्रायशः सर्वत्र]
रात्रिः तस्मात् [ब्रह्मणः] अजायत अ. १३,४,३०; १०१९
राव्याः सः [ब्रह्मा] अजायत अ. १३,४,३०; १०१९
रेवती अ. १९,४७,४; १०३३
वर्या अ. १९,४९,३; १०५४
वाजिनी अ. १९,४७,४; १०३३
विभाती अ. १९,४९,४; १०५५
विभावरी अ. १९,४८,२,४; १०४०,१०४२ । ५०,७; १०५१ । ४९,६; १०५७
विश्वा श्रियः अधि अधित १०,१२७,१; १००३
संवत्सरस्य पत्नी अ. ३,१०,२; १०७५

रात्रिदेवताया उपमासूची ।

(१३) पूर्णिमा ।

(१४) राका ।

(१५) अमावास्या ।

(१६) सिनीवाली ।

विश्पत्नी अ. २,३२,७; १०९३ । ७,४६,३; १०९४
विष्णोः पत्नी अ. ७,४६,३; १०९४
सहस्रस्तुका अ. ७,४६,३; १०९४
सिनीवाली [प्रायशः सर्वत्र]
सु+अं (=स्वं) गुरिः अ. २,३२,७; १०९३
सुकपर्दा वा. य. ११,५६; ९
सुकुरीरा वा. य. ११,५६; ९
सुबाहुः अ. २,३२,७; १०९३
सुसू (षू) मा अ. २,३२,७; १०९३
स्वसा देवानाम् अ. २,३२,६; १०९२
स्वौपशा वा. य. ११,५६; ९

(१७) कुहूः ।

उशती अ. ७,४७,२; ११०५
कुहूः अ. ७,४७,१-२; ११०४-५
चिकितुषी अ. ७,४७,२; ११०५
देवानां अमृतस्य पत्नी अ. ७,४७,२; ११०५
देवी अ. ७,४७,१; ११०४
विद्मनापस अ. ७,४७,१; ११०४
सुकृत अ. ७,४७,१; ११०४
सुहवा अ. ७,४७,१; ११०४
हव्या अ. ७,४७,२; ११०५

(१८) नक्षत्राणि ।

अष्टाविंशानि अ. १९,८,२; ११३०
चित्राणि अ. १९,७,१; ११२४
जवानि भुवने अ. १९,७,१; ११२४
रोचनानि अ. १९,७,१; ११२४
व्रात्यस्य चतुर्थो व्यानः अ. १५,१७,४; ११२३
शग्मानि अ. १९,८,२; ११३०
शिवानि अ. १९,८,२; ११३०
नक्षत्राणि अस्य ब्रह्मणः रूपम् अ. ९,७,१५; १११८
इदं ब्रह्म अन्यत् नक्षत्रम् अ. १०,१,२३; ११२१
सरीसृपाणि अ. १९,७,१; ११२४

नक्षत्राणां राजा ।

नक्षत्रराजा अ. ६,१२८,४; १११७
शकधूमः अ. ६,१२८,४; १११७

क्रमशः नक्षत्राणां नामानि ।

१ कृत्तिका अ. १९,७,२; ११२५
२ रोहिणी अ. १९,७,२; ११२५
३ मृगशिरः अ. १९,७,२; ११२५
४ आर्द्रा अ. १९,७,२; ११२५
५ पुनर्वसू अ. १९,७,२; ११२५
६ पुष्यः अ. १९,७,२; ११२५
७ आश्लेषा अ. १९,७,२; ११२५
८ मघा अ. १९,७,२; ११२५
९ पूर्वा अ. १९,७,३; ११२६
१० फल्गुन्यौ अ. १९,७,३; ११२६
११ हस्तः अ. १९,७,३; ११२६
१२ चित्रा अ. १९,७,३; ११२६
१३ स्वाति अ. १९,७,३; ११२६
१४ विशाखे अ. १९,७,३; ११२६
१५ अनुराधा अ. १९,७,३; ११२६
१६ ज्येष्ठा अ. १९,७,३; ११२६
१७ मूलम् अ. १९,७,३; ११२६
१८ पूर्वा अषाढा अ. १९,७,४; ११२७
१९ उत्तरा अषाढा अ. १९,७,४; ११२७
२० अभिजित् अ. १९,७,४; ११२७
२१ श्रवणः अ. १९,७,४; ११२७
२२ शतभिषग् अ. १९,७,५; ११२८
२३ द्वया अ. १९,७,५; ११२८
२४ प्रोष्ठपदा अ. १९,७,५; ११२८
२५ रेवती अ. १९,७,५; ११२८
२६ अश्वयुजौ अ. १९,७,५; ११२८
२७ भरण्यः अ. १९,७,५; ११२८

निपातभाक्-अग्निदेवताया गुणबोधकपदानि ।

द्रविणोदा अग्निः ।

निपातभाक्-इन्द्रदेवताया गुणबोधकपदानि ।

निपातभाक्-सोमदेवताया गुणबोधकपदानि ।

अन्धः २,३७,३; ९२७
अमर्त्यः २,३७,४; ९२८
अमृक्तः २,३७,४; ९२८
आसुतः इन्द्राय २,३६,५; ९२३
तदोकसः इन्दवः १,१५,१; ९०७
तुरीयं पात्रं (पात्रस्थम्) २,३७,४; ९२८
नृम्णवर्धनः २,३६,५; ९२३
प्रयः २,३७,४; ९२८
प्रस्थितम् २,३६,४; ९२२
प्रहुतः २,३६,१; ९१९
बाह्वोः सहः ओजः हितः (इन्द्रस्य) २,३६,५; ९२३
मत्सरासः (इन्दवः) १,१५,१; ९०७
मधु २,३६,४; ९२२
राजा अ. ५,२१,११; १८१
वषट्कृतः २,३६,१; ९१९
सुतः २,३६,५; ९२३
हितः २,३७,४; ९२८

निपातभाक्-मरुद्देवताया गुणबोधकपदानि ।

अञ्जिषु प्रियाः २,३६,२; ९२०
उग्राः अ. ५,२१,११; १८१
ऋष्टिभिः शुभ्रासः २,३६,२; ९२०
दिवः नरः २,३६,२; ९२०
नरः ८,२५,१५; ३५८
नरः दिवः २,३६,२; ९२०
पृश्निमातरः अ. ५,२१,११; १८१
पृषतीभिः यामन् २,३६,२; ९२०
प्रियाः अञ्जिषु २,३६,२; ९२०
भरतस्य सूनवः २,३६,२; ९२०
भूर्णयः ८,२५,१५; ३५७
मीढ्वांसः ८,२५,१४; ३५७
यज्ञैः संमिश्लाः २,३६,२; ९२०
यामन् पृषतीभिः २,३६,२; ९२०
वनुषः (वनीयांसः) ८,२५,१५; ३५८
शुभ्रासः ऋष्टिभिः २,३६,२; ९२०
सजोषसः ८,२५,१४; ३५७
संमिश्लाः यज्ञैः २,३६,२; ९२०
सुदानवः १,१५,२; ९०८
सूनवः भरतस्य २,३६,२; ९२०

निपातभाक्-अश्विनौदेवताया गुणबोधकपदानि ।

दीद्यग्नी १,१५,११; ९१७
नरौ ८,२५,१५; ३५८
पुष्करस्रजा अ. ५,२५,३; १०९९
भूर्णी अ. ५,२५,३; १०९९
मीढ्वांसौ अ. ५,२५,१४; ३५७
यज्ञवाहसा १,१५,११; ९१७
वनीयांसौ ८,२५,१५; ३५८
वाजिनीवसू २,३७,५; ९२९
शुचिव्रता १,१५,११; ९१७
सजोषसौ ८,२५,१४; ३५७

निपातभाक्-बृहस्पतिदेवताया गुणबोधकपदानि ।

अंशुं आप्याययन् अ. ७,८१,६; ६८४
अक्षितः अ. ७,८१,६; ६८४
अक्षितं भक्षयन् अ. ७,८१,६; ६८४
अथर्वा अ. ४,१,७; १७७
आप्याययन् अंशुम् अ. ७,८१,६; ६८४
ऋतस्थाः दिवः अ. ४,१,४; १७४
ऋतस्थाः पृथिव्याः अ. ४,१,४; १७४
कविः अ. ४,१,७; १७७
गोपाः भुवनस्य अ. ७,८१,६; ६८४
जनिता विश्वेषाम् अ. ४,१,७; १७७
दिवः ऋतस्थाः अ. ४,१,४; १७४
देवः पूर्व्यः अ. ४,१,६; १७६

अदितेः, आदित्यानां च पुनरुक्त–मन्त्रभागाः।

ऋग्वेदस्य प्रथमं मण्डलम्।

[१०] १।४१।६ (कण्वो घौरः । आदित्याः)
विश्वं **तोकमुत त्मना ।**

(अग्निः १४५६) ८।८४।३ (उशना काव्यः । अग्निः)
रक्षा **तोकमुत त्मना ।**

ऋग्वेदस्य द्वितीयं मण्डलम्।

[११] २।२७।१ (कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । आदित्याः)
मित्रो अर्यमा वरुणो जुषन्त ।

(३३१) ७।६४।१ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ)
मित्रो अर्यमा ... वरुणो जुषन्त ।

[१४] २।२७।४ (कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । आदित्याः)
देवा **विश्वस्य भुवनस्य गोपाः ।**

(विश्वे देवाः ११९) १।१६४।२१ (दीर्घतमा औचथ्यः। विश्वे देवाः)
इनो **विश्वस्य भुवनस्य गोपाः।**

[२७] २।२७।७ (कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । आदित्याः)
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य शर्म ।

(आयुर्वेदः १९५९) १०।१०।६ (यमी वैवस्वती ऋषिका। यमः)
... ... वरुणस्य धाम ।

[१९] २।२७।३ (कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । आदित्याः)
त्री रोचना दिव्या धारयन्त ।

(इन्द्रः १६६७) ५।२९।१ (गौरिवीतिः शाक्त्यः । इन्द्रः)

[३७] २।२७।१७ (कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । आदित्याः)
=२।२८।११ (कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । वरुणः)
=(विश्वे देवाः १५७) २।२९।७ (कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । विश्वे देवाः)
**माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥**

ऋग्वेदस्य सप्तमं मण्डलम्।

[४१] ७।५२।२ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आदित्याः)
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत् कर्म वसवो यच्चयध्वे।

(विश्वे देवाः ३९९) ६।५१।७ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । आदित्याः)
मा व एनो अन्यकृतं भुजेम ... ।

[४३] ७।५२।३ **तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त ।**

(विश्वे देवाः ४९५) ७।४२।१ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः)

प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त ।

[४३] ७।५२।३ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आदित्याः)

रत्नं देवस्य सवितुरियानाः ।

(४७२) ७।३८।६ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सविता)

...... सवितुरियानः ।

[४४] ७।६६।४ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आदित्याः)

यदद्य सूर उदिते ।

(५१) ७।६६।१२ सूक्तः सूर उदिते ।

(विश्वे देवाः ५३०) ८।२७।१९ (मनुर्वैवस्वतः । विश्वे देवाः)

यदद्य सूर उद्यति ।

विश्ववेदसो ...... मध्यन्दिने ।

(विश्वे देवाः ५३१) ८।२७।२१ यदद्य सूर उदिते ..

मध्यन्दिने । विश्ववेदसो ... ।

[४४] ७।६६।४ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आदित्याः)

सुवाति सविता भगः ।

(४५४) ५।८२।३ (श्यावाश्व आत्रेयः । सविता)

[४६] ७।६६।६ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आदित्याः)

उत स्वराजो अदितिः ।

(इन्द्रः ३०१) ८।१२।१४ (पर्वतः काण्वः । इन्द्रः)

उत स्वराजे अदितिः ।

[४७] ७।६६।७ प्रति वां सूर उदिते ।

(६३१) ७।६३।५ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सूर्यमित्रवरुणाः)

[५०] ७।६६।१० अग्निजिह्वा ऋतावृधः ।

(अग्निः ९९) १।४४।१४ (प्रस्कण्वः काण्वः । अग्निः)

[५१] ७।६६।१२ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आदित्याः)

यूयमृतस्य रथ्यः ।

(विश्वे देवाः ५६१) ८।८३।३ (कुसीदी काण्वः । विश्वे देवाः)

ऋग्वेदस्याष्टमं मण्डलम् ।

[५४] ८।१८।१ (इरिम्बिठिः काण्वः । आदित्याः)

एषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः ।

(मरुतः ६०) ८।७।१५ (पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः)

[५६] ८।१८।३ (इरिम्बिठिः काण्वः । आदित्याः)

तत् सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा ।

(विश्वे देवाः २३८) ४।५५।१० (वामदेवो गौतमः । विश्वे देवाः)

[५६] ८।१८।३ भगो वरुणो मित्रो अर्यमा ।

(अग्निः ३१) १।२६।४ (शुनःशेप आजीगर्तिः । अग्निः)

रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।

[५६] ८।१८।३ (इरिम्बिठिः काण्वः । आदित्याः)

वरुणो मित्रो अर्यमा । शर्म यच्छन्तु सप्रथो यदीमहे ।

(विश्वे देवाः ७९८) १०।१२६।७ (कुल्मलबर्हिषः शैलूषिः अंहोमुग्वा वामदेव्यः । विश्वे देवाः)

वरुणो ... । शर्म ... सप्रथ आदित्यासो यदीमहे ।

[३] ८।१८।५ (इरिम्बिठिः काण्वः । अदितिः)

अंहोश्चिदुरुचक्रयः ।

(२७७) ५।६७।४ (यजत आत्रेयः । मित्रावरुणौ)

[५७] ८।१८।१० (इरिम्बिठिः काण्वः । आदित्याः)

अप सेधत दुर्मतिम् ।

(आयुर्वेदः २३०८) १०।१७५।२ (ऊर्ध्वग्रावा सर्प आर्बुदिः । ग्रावाणः)

[५९] ८।१८।१२ (इरिम्बिठिः काण्वः । आदित्याः)

तत् सु नः......आदित्या यन्मुमोचति ।

(९९) ८।६७।१८ (मत्स्यः साम्मदः मैत्रावरुणिर्मान्यः बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः । आदित्याः)

तत् सु नो...आदित्या ... ।

[६१] ८।१८।१४ दुःशंसं मर्त्यं रिपुम् ।

(अश्विनौ २२४) २।४१।८ (गृत्समदः शौनकः । अश्विनौ)

दुःशंसो मर्त्यो रिपुम् ।

[६३] ८।१८।१६ (इरिम्बिठिः काण्वः । आदित्याः)

आ शर्म पर्वतानां अपां वृणीमहे ।

८।३१।१० (मनुर्वैवस्वतः । दम्पत्याशिषः)

आ शर्म पर्वतानां वृणीमहे नदीनाम् ।

[६८] ८।१८।२१ नृवद् वरुण शंस्यम् ।

(विश्वे देवाः ५६२) ८।८३।४ (कुसीदी काण्वः । विश्वे देवाः)

वामं वरुण शंस्यम् ।

[६९] ८।१८।२२ प्र सू न आयुर्जीवसे तिरेतन ।

१०।५९।५ (बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः असुनीतिः)

जीतावसे सु प्र तिरा न आयुः ।

[७१] ८।१९।३५ (सोभरिः काण्वः । आदित्याः)
स्यामेदृतस्य रथ्यः ।
(५१) ७।६६।१२ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आदित्याः)
यूयमृतस्य रथ्यः ।

[७२] ८।४७।१ (त्रित आप्त्यः । आदित्याः)
महि वो महतामवो ।
(८८) ८।६७।४ (मत्स्यः साम्मदः मैत्रावरुणिर्मान्यः बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः । आदित्याः)

[७२] ८।४७।१ वरुण मित्र दाशुषे ।
(२९४) ५।७१।२ (बाहुवृक्त आत्रेयः । मित्रावरुणौ)
वरुण मित्र दाशुषः ।

[७२-८४] ८।४७।१-१३ (त्रित आप्त्यः । आदित्यः)
अनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ।
(उषा १८७-९१) ८।४७।१४-१८ (त्रित आप्त्यः । आदित्योषसः)

[७६] ८।४७।५ स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ।
(इन्द्रः ९) १।४।६ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः)

[८०] ८।४७।९ अदितिः शर्म यच्छतु ।
६।७५।१२ (पायुर्भारद्वाजः । इषवः)

[८०] ८।४७।९ (त्रित आप्त्यः । आदित्याः)
माता मित्रस्य रेवतो अर्यम्णो वरुणस्य ।
(विश्वे देवाः ५९६) १०।३६।३ (लुशो धानाकः । विश्वे देवाः)
माता मित्रस्य वरुणस्य रेवतः ।

[८०] ८।४७।९ अर्यम्णो वरुणस्य च ।
(१०४) १।१३६।२ (परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ)

[८५] ८।६७।१ (मत्स्यः साम्मदः मैत्रावरुणिर्मान्यः बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः । आदित्याः)
सुमृळीकाँ अभिष्टये ।
(६) ८।६७।१० सुमृळीकामभिष्टये ।

[८८] ८।६७।४ महि वो महतामवो वरुण मित्रार्यमन् ।
(७२) ८।४७।१ (त्रित आप्त्यः । आदित्याः)
...वरुण मित्र दाशुषे ।

[८८] ८।६७।४ वरुण मित्रार्यमन् ।
(२७४) ५।६७।१ (यजत आत्रेयः । मित्रावरुणौ)

[८८] ८।६७।४ अवांस्या वृणीमहे ।
८।२६।२१ (विश्वमना वैयश्वः, व्यश्वो वाङ्गिरसः । वायुः)

[९०] ८।६७।६ तेना नो अधि वोचत ।
(मरुतः १०७) ८।२०।२६ (सोभरिः काण्वः । मरुतः)

[९१] ८।६७।१८ आदित्या यन्मुमोचति ।
(५९) ८।१८।१२ (इरिम्बिठिः काण्वः । आदित्याः)

ऋग्वेदस्य तृतीयं मण्डलम् ।

[१८५] ३।५९।१ (गाथिनो विश्वामित्रः । मित्रः)
मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणः ।
(विश्वे देवाः ४६५) ७।३६।२ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः)
जनं च मित्रो यतति ब्रुवाणः ।

[१८५] ३।५९।१ मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
(विश्वे देवाः ४००) ६।५१।८ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः)
नमो दाधार ··· ··· ।

[१८५] ३।५९।१ मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ।
(आयुर्वेदः ८३७) ७।४७।३ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आपः)
सिन्धुभ्यो हव्यं ... ... ।

[१८७] ३।५९।३ अनमीवास इळया मदन्तः ।
(विश्वे देवाः १८९) ३।५४।२० (प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा । विश्वे देवाः)
ध्रुवक्षेमास इळया मदन्तः ।

[१८८] ३।५९।४ तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
(अग्निः ४६७) ३।१।२१ (विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः)

[१९३] ३।५९।९ (विश्वामित्रो गाथिनः । मित्रः)
जनाय वृक्तबर्हिषे ।
(अग्निः ९०५) ५।२३।३(द्युम्नो विश्वचर्षणिरात्रेयः । अग्निः)
जनासो वृक्तबर्हिषः ।
(इन्द्रः १७४१) ५।३५।६ (प्रभूवसुराङ्गिरसः । इन्द्रः)
जनासो वृक्तबर्हिषः ।
(अश्विनौ ४००)८।५।१७ (ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ)
जनासो वृक्तबर्हिषः ।
(इन्द्रः २७९) ८।६।३७ (वत्सः काण्वः । इन्द्रः)
जनासो वृक्तबर्हिषः ।

ऋग्वेदस्य प्रथमं मण्डलम् ।

[१९६] १।२।७ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । मित्रावरुणौ)
मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् ।
(३३६) ७।६५।१ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मित्रावरुणौ)
मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम् ।
(२५५) ५।६४।१ (अर्चनाना आत्रेयः । मित्रावरुणौ)
वरुणं वो रिशादसमृचा मित्रं हवामहे ।

[१९७] १।२।८ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । मित्रावरुणौ)
ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधौ ।
(२२२) १।१५२।१ (दीर्घतमा औचथ्यः । मित्रावरुणौ)
ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ।

[२०१] १।२३।६ (मेधातिथिः काण्वः । मित्रावरुणौ)
करतां नः सुराधसः ।
(इन्द्रः १४६५) ३।५३।१३ (विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः)
करदिन्नः सुराधसः ।

[२०३] १।१३६।१ (परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ)
ता सम्राजा घृतासुती ।
(२३५) २।४१।६ (गृत्समदः शौनकः । मित्रावरुणौ)

[२०४] १।१३६।२ (परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ)
मित्रस्य ... अर्यम्णो वरुणस्य च ।
(८०) ८।४७।९ (त्रित आप्त्यः । आदित्याः)
मित्रस्य ... अर्यम्णो वरुणस्य च ।

[२०५] १।१३६।३ (परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ)
सचेते... । ... आदित्या दानुनस्पती ।
(२३५) २।४१।६ (गृत्समदः शौनकः । मित्रावरुणौ)
आदित्या दानुनस्पती । सचेते... ।

[२०६] १।१३६।४ **अयं मित्राय वरुणाय शंतमः ।**
(सोमः ९७६) ९।१०४।३ (पर्वतनारदौ काण्वौ, काश्यपौ शिखण्डिन्यावप्सरसौ वा । पवमानः सोमः)
यथा मित्राय ... ... ।

[२१०] १।१३७।१ **अस्मत्रा गन्तमुप नः ।**
(२१२) १।१३७।३ (परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ)

[२१०] १।१३७।१ (परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ)
सोमाः शुक्रा गवाशिरः ।
(सोमः ५०५) ९।६४।२८ (कश्यपो मारीचः । पवमानः सोमः)

[२११] १।१३७।२ **सोमासो दध्याशिरः ।**
(इन्द्रः १८) १।५।५ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः)

[२११] १।१३७।२ **साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।**
(अश्विनौ ४५) (प्रस्कण्वः काण्वः । अश्विनौ)

[२११] १।१३७।२ (परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ)
चारुर्ऋताय पीतये ।
(सोमः १४४) ९।१७।८ (असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः)

[२१२] १।१३७।३ **अंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः ।**
(सोमः ५११) ९।६५।१५ (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । पवमानः सोमः)
तीव्रं दुहन्त्यद्रिभिः ।

[२१६] १।१५१।४ (दीर्घतमा औचथ्यः । मित्रावरुणौ)
ऋतावानावृतमा घोषथो बृहत् ।
(३५०) ८।२५।४ (विश्वमना वैयश्वः । मित्रावरुणौ)
... ... घोषतो बृहत् ।

[२२२] १।१५२।१ **ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ।**
(१९७) १।२।८ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । मित्रावरुणौ)
ऋतेन मित्रावरुणौ ।

[२२५] १।१५२।४ **प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ।**
(३२४) ७।६१।४ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ)
शंसा मित्रस्य ... .. ।
(आयुर्वेदः १९५९) १०।१०।६ (यमो वैवस्वत ऋषिः । यमी)
बृहन्मित्रस्य ... ... ।
(इन्द्रः २६६९) १०।८९।८ (रेणुर्वैश्वामित्रः । इन्द्रः)
प्र ये मित्रस्य ... ... ।
(२७) २।२७।७ (कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । आदित्याः)
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य ... ।
(अग्निः १७६१) ४।५।४ (वामदेवो गौतमः । वैश्वानरोऽग्निः)
... वरुणस्य धाम ... मित्रस्य ।

[२२६] १।१५२।५ (दीर्घतमा औचथ्यः । मित्रावरुणौ)
अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा ।
४।३६।१ (वामदेवो गौतमः । ऋभवः)
... ... अनभीशुरुक्थ्यो ।

[२१८] १।१५२।७ आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं ।
(३३९) ७।६५।४ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ)
आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
(२३६) ३।६२।१६ (गाथिनो विश्वामित्रः, जमदग्निर्वा । मित्रावरुणौ)
[२२९] १।१५३।१ (दीर्घतमा औचथ्यः । मित्रावरुणौ)
हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।
(इन्द्रः ३१५९) ४।४२।९ (त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः । इन्द्रावरुणौ)
हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
(इन्द्रः ३१९२) ७।८४।१ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रावरुणौ)
हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।

ऋग्वेदस्य द्वितीयं मण्डलम् ।

[२३३] २।४१।४ (गृत्समद [आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्] भार्गवः शौनकः)
अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा ।
(अश्विनौ ३९) १।४७।१ (प्रस्कण्वः काण्वः । अश्विनौ)
अयं वां मधुमत्तमः सुतः... ।
[२३५] २।४१।६ ता सम्राजा घृतासुती ।
(२०३) १।१२६।१ (परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ)
[२३५] २।४१।६ आदित्या दानुनस्पती । सचेते ।
(२०५) १।१३६।३ (परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ)
सचेते... । आदित्या दानुनस्पती ।

ऋग्वेदस्य तृतीयं मण्डलम् ।

[२३६] ३।६२।१६ (विश्वामित्रो गाथिनः जमदग्निर्वा । मित्रावरुणौ)
आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
(३३९) ७।६५।४ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ)
आ नो मित्रावरुणा ... घृतैर्गव्यूतिमुक्षतमिळाभिः ।
(अश्विनौ ३८९) ८।५।६ (ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ)
घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
[२३८] ३।६२।१८ (विश्वामित्रो गाथिनः, जमदग्निर्वा । मित्रावरुणौ)
गृणाना जमदग्निना ।
(आयुर्वेदः १०८०) ७।९६।३ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सरस्वती)
गृणाना जमदग्निवत् ।
(अश्विनौ ५७९) ८।१०१।८ (जमदग्निर्भार्गवः । अश्विनौ)
गृणाना जमदग्निना ।
(सोमः ४४१) ९।६२।२४ (जमदग्निर्भार्गवः । पवमानः सोमः)
गृणानो जमदग्निना ।
(सोमः ५३१) ९।६५।२५ (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । पवमानः सोमः)
गृणानो जमदग्निना ।
[२३८] ३।६२।१८ (गाथिनो विश्वामित्रः, जमदग्निर्वा । मित्रावरुणौ)
पातं सोममृतावृधा ।
(अश्विनौ ४१) १।४७।३ (प्रस्कण्वः काण्वः । अश्विनौ)

ऋग्वेदस्य पञ्चमं मण्डलम् ।

[२५५] ५।६४।१ (अर्चनाना आत्रेयः । मित्रावरुणौ)
वरुणं वो रिशादसम् ।
(१९६) (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । मित्रावरुणौ)
वरुणं च रिशादसम् ।
[२५६] ५।६४।२ विश्वासु क्षासु जोगुवे ।
(अग्निः २८१) १।१२७।१० (परुच्छेपो दैवोदासिः । अग्निः)
[२६३] ५।६५।२ (रातहव्य आत्रेयः । मित्रावरुणौ)
राजाना दीर्घश्रुत्तमा । ऋतावृध ऋतावाना जनेजने ।

(२६९) ८।१०१।२ (जमदग्निर्भार्गवः । मित्रावरुणौ)
राजाना ... ... ।
(२७७) ५।६७।४ (यजत आत्रेयः । मित्रावरुणौ)
ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने ।

[२६६] ५।६५।५ स्याम सप्रथस्तमे ।
(अग्निः २६८) १।९४।१३ (कुत्स आङ्गिरसः । अग्निः)
स्याम...सप्रथस्तमे ।

[२६६] ५।६५।५ अनेहसस्त्वोतयः ।
(७२-८४) ८।४७।१-१३ अनेहसो व ऊतयः ।
(उषा १८७-९१) ८।४७।१४-१८ (त्रित आप्त्यः । आदित्यः)

[२७०] ५।६६।३ (रातहव्य आत्रेयः । मित्रावरुणौ)
ता वामेषे रथानाम् ।
(इन्द्रः ३०४३) ५।८६।४ (अत्रिर्भौमः । इन्द्राग्नी)

[२७१] ५।६६।४ नि केतुना जनानाम् ।
(आयुर्वेदः ७७७) १।१९१।४ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अप्तृणसूर्याः)
नि केतवो जनानाम् ।

[२७४] ५।६७।१ (यजत आत्रेयः । मित्रावरुणौ)
वरुण मित्रार्यमन् ।
(८८) ८।६७।४ (मत्स्यः साम्मदः मान्यो मैत्रावरुणिः बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः । आदित्याः)
(विश्वे देवाः ७९३) १०।१२६।२ (कुल्मलबर्हिषः शैलूषिः अंहोमुग्वा वामदेव्यः । विश्वे देवाः)

[२७५] ५।६७।२ (यजत आत्रेयः । मित्रावरुणौ)
आ यद्योनिं हिरण्ययं ... ... सदथः ।
(सोमः ४९७) ९।६४।२० (कश्यपो मारीचः । पवमानः सोमः)
आ यद्योनिं हिरण्ययं ... सीदति ।

[२७५] ५।६७।२ धर्तारा चर्षणीनाम् ।
(इन्द्रः ३१३५) १।१७।२ (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रावरुणौ)

[२७६] ५।६७।३ वरुणो मित्रो अर्यमा ।
(अग्निः ३१) १।२६।४ (शुनःशेप आजीगर्तिः । अग्निः)
१।४१।१ (कण्वो घौरः । वरुणमित्रार्यमणः)

[२७६] ५।६७।३ पान्ति मर्त्यं रिषः ।
१।४१।२ (शुनःशेप आजीगर्तिः । वरुणमित्रार्यमणः)

[२७७] ५।६७।४ ऋतावानो जनेजने ।
(२३६) ५।६५।२ (रातहव्य आत्रेयः । मित्रावरुणौ)
ऋतावाना ... ।

[२७७] ५।६७।४ (यजत आत्रेयः । मित्रावरुणौ)
ते हि ... ... । अंहोश्चिदुरुचक्रयः ।
(३) ८।१८।५ (इरिम्बिठिः काण्वः । आदित्याः)
ते हि ... ... । अंहोश्चिदुरुचक्रयः ।

[२८६] ५।६९।३ (उरुचक्रिरात्रेयः । मित्रावरुणौ)
प्रातर्...मध्यंदिन उदिता सूर्यस्य ।
(अश्विनौ २८९) ५।७६।३ (अत्रिर्भौमः । अश्विनौ)

[२९२] ५।७१।१ (बाहुवृक्त आत्रेयः । मित्रावरुणौ)
आ नो गन्तं रिशादसा ।... इमम् ।
(अश्विनौ ४३७) ८।८।१७ (सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)
... रिशादसेमम् ।

[२९३] ५।७१।२ (बाहुवृक्त आत्रेयः । मित्रावरुणौ)
ईशाना पिप्यतं धियः ।
(इन्द्रः ३०८०) ७।९४।२ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्राग्नी)
(सोमः १५३) ९।१९।२ (असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः)

[२९४] ५।७१।३ उप नः सुतमा गतम् ।
(इन्द्रः ८१) १।१६।४ (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः)
उप ... गहि ।

[२९४] ५।७१।३ (बाहुवृक्त आत्रेयः मित्रावरुणौ)
वरुण मित्र दाशुषः ।
(७१) ८।४७।१ (त्रित आप्त्यः । आदित्याः)
वरुण मित्र दाशुषे ।

[२९४] ५।७१।३ अस्य सोमस्य पीतये ।
(अश्विनौ ५) १।२२।१ (मेधातिथिः काण्वः । अश्विनौ)

[२९५-९७] ५।७२।१-३ नि बर्हिषि सदतं (३ सदतां) सोमपीतये ।

[२९७] ५।७२।३ (बाहुवृक्त आत्रेयः । मित्रावरुणौ)
जुषेतां यज्ञमिष्टये ।
(अश्विनौ २९९) ५।७८।३ (सप्तवध्रिरात्रेयः । अश्विनौ)
जुषेथां यज्ञमिष्टये ।
(इन्द्रः ३०९४) ८।३८।४ (श्यावाश्व आत्रेयः । इन्द्राग्नी)
जुषेथां यज्ञमिष्टये ।

ऋग्वेदस्य षष्ठं मण्डलम् ।

[३०७] ६।६७।१० (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । मित्रावरुणौ)
वि यद्वाचं कीस्तासो भरन्ते ।

(अश्विनौ ३७१) ७।७२।४ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अश्विनौ)
प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते ।

ऋग्वेदस्य सप्तमं मण्डलम् ।

[३०९] ७।५०।१ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ)
मा मां पद्येन रपसा विदत् त्सरुः ।
(अग्निः १२११) ७।५०।२ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः)
(विश्वे देवाः ५०८) ७।५०।३ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः)

[३१०] ७।६०।२ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ)
विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपाः ।
(विश्वे देवाः ३८४) ६।५०।७ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः)
विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः ।

[३१०] ७।६०।२ ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ।
(अग्निः ६४३) ४।१।१७ (वामदेवो गौतमः । अग्निः)

[३११] ७।६०।३ अयुक्त सप्त हरितः सधस्थात् ।
(५५०) १।११५।४ (कुत्स आङ्गिरसः । सूर्यः)

[३११] ७।६०।३ सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे ।
(अग्निः ६६४) ४।२।१८ (वामदेवो गौतमः । अग्निः)
आ यूथेव...जनिमान्युग्र ।

[३१२] ७।६०।४ उद्वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थुः ।
(अश्विनौ २३८) ४।४५।२ (वामदेवो गौतमः । अश्विनौ)
उद्वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते ।

[३१२] ७।६०।४ आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।
(विश्वे देवाः ३१८) ५।४५।१० (सदापृण आत्रेयाः । विश्वे देवाः)

[३१२] ७।६०।४ मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।
(विश्वे देवाः १४१) १।१८६।२ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । विश्वे देवाः)

[३१३] ७।६०।५ शन्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः ।
२।२८।३ (कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । वरुणः)
यूयं नः पुत्रा... ।

[३१४] ७।६०।६ अपि क्रतुं सुचेतसं वतन्तः ।
(अग्निः ११३३) ७।३।१० = ७।४।१० (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः)
अपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।

[३१९] ७।६०।११ वाजस्य सातौ परमस्य रायः ।
(अग्निः ७३६) ४।११।३ (वामदेवो गौतमः । अग्निः)
अग्निर्वाजस्य परमस्य रायः ।

[३१९] ७।६०।११ उरु क्षयाय चक्रिरे ।
(अग्निः ७५) १।३६।८ (कण्वो घौरः । अग्निः)

[३२०] ७।६०।१२ = (३२७) ७।६१।७ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ)
इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

[३२१] ७।६१।१ अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे ।
(इन्द्रः ३००८) १।१०८।१ (कुत्स आङ्गिरसः । इन्द्राग्नी)
वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे ।

[३२४] ७।६१।४ शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम ।
(२२५) १।१५२।४ (दीर्घतमा औचथ्यः । मित्रावरुणौ)
प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ।

[३२६] ७।६१।६ समु वां यज्ञं महयं नमोभिः ।
(विश्वे देवाः ४९७) ७।४२।३ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः)
समु वो यज्ञं महयं ... ।

[३२७] ७।६१।७ = (३२०) ७।६०।१२

[३२८] ७।६२।४ द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः ।
(विश्वे देवाः ११९) ४।५५।१ (वामदेवो गौतमः । विश्वे देवाः)

[३२९] ७।६२।५ श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ।
(विश्वे देवाः ८७) १।१२२।६ (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । विश्वे देवाः)

[३३०] ७।६१।६ = ७।६३।६ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। मित्रावरुणौ)
नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

[३३१] ७।६४।१ **मित्रो अर्यमा वरुणो जुषन्त।**
(२१) २।२७।२ (कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा। आदित्यः)

[३३५] ७।६४।५ = (३४०) ७।६५।५ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। मित्रावरुणौ)
एष स्तोमो वरुणो मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

[३३५] ७।६४।५ = (३४०) ७।६५।५
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः।
(इन्द्रः ३३२४) ४।५०।११ (वामदेवो गौतमः। इन्द्राबृहस्पती)

[३३६] ७।६५।१ **प्रति वां सूर उदिते सूक्तैः।**
(६३१) ७।६३।५ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। सूर्यमित्रावरुणाः)
प्रति वां ... विधेम।

[३३६] ७।६५।१ **मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम्।**
(१९६) १।२।७ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। मित्रावरुणौ)
...**पूतदक्षं वरुणम्।**

[३३८] ७।६५।३ **अपो न नावा दुरिता तरेम।**
(इन्द्रः ३१६८) ६।६८।८ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। इन्द्रावरुणौ)

[३३९] ७।६२।४ **आ नो मित्रावरुणा... घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्।**
(२३६) ३।६२।१६ (गाथिनो विश्वामित्रः, जमदग्निर्वा। मित्रावरुणौ)

[३३९] ७।६५।४ **प्रति वामत्र वरमा जनाय।**
(अश्विनौ ३५९) ७।७०।५ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः अश्विनौ)
प्रति प्र **यातं वरमा जनाय।**

[३४०] ७।६५।५ = (३३५) ७।६४।५
[३४०] ७।६५।५ = (३६५) ७।६४।५

[३४१] ७।६६।२ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। मित्रावरुणौ)
असुर्याय प्रमहसा।
(३४२) ८।२५।३ (विश्वमना वैयश्वः। मित्रावरुणौ)

[३४६] ७।६६।१९ (विश्वमना वैयश्वः। मित्रावरुणौ)
पातं सोममृतावृधा।
(अश्विनौ ४१) १।४७।३ (प्रस्कण्वः काण्वः। अश्विनौ)

ऋग्वेदस्याष्टमं मण्डलम्।

[३४७] ८।२५।१ (विश्वमना वैयश्वः। मित्रावरुणौ)
ऋतावाना यजसे **पूतदक्षसा।**
(अग्निः १२९९) ८।२३।३० (विश्वमना वैयश्वः। अग्निः)
ऋतावाना सम्राजा **पूतदक्षसा।**

[३४९] ८।२५।३ = (३४१) ७।६६।२

[३५०] ८।२५।४ = (२१६) १।१५१।४ (दीर्घतमा औचथ्यः। मित्रावरुणौ)

[३५३] ८।२५।७ **अभि यूथेव** पश्यतः।
(अग्निः ६६४) ४।२।१८ (वामदेवो गौतमः। अग्निः)
आ यूथेव ... पश्वो।

[३५४] ८।२५।८ **साम्राज्याय सुक्रतू।**
१।२५।१० (शुनःशेप आजीगर्तिः। वरुणः)
साम्राज्याय सुक्रतुः।

[३६१] ८।२५।१८ **उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा।**
(विश्वे देवाः १८४) ३।५४।१५ (प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा। विश्वे देवाः)

[३६७] ८।२५।२४ **विप्रा नविष्ठया मती।**
(इन्द्रः ९२६) १।८२।२ (गोतमो राहूगणः। इन्द्रः)

[३६९] ८।१०१।२ (जमदग्निर्भार्गवः। मित्रावरुणौ)
राजाना दीर्घश्रुत्तमा।
(२६३) ५।६५।२ (रातहव्य आत्रेयः। मित्रावरुणौ)

[३६९] ८।१०१।२ **साकं सूर्यस्य रश्मिभिः।**
(अश्विनौ ४५) १।४७।७ (प्रस्कण्वः काण्वः। अश्विनौ)

ऋग्वेदस्य प्रथमं मण्डलम्।

[४०६] १।२२।८ (मेधातिथिः काण्वः। सविता)
सखाय आ नि षीदत।
(सोमः ९७४) ९।१०४।१ (पर्वतनारदौ काण्वौ, काश्यपौ शिखण्डिन्यावप्सरसौ वा। पवमानः सोमः)

[४०७] १।२४।३ (आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । सविता)
ईशानं वार्याणाम् ।
(इन्द्रः १५) १।५।२ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः)
[४१०] १।३५।२ (हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । सविता)
हिरण्ययेन सविता रथेन ।
(अश्विनौ २५५) ४।४४।५ (पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ। अश्विनौ)
हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
(अश्विनौ ४१८) ८।५।३५ (ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ)
हिरण्ययेन रथेन ।
[४१६] १।३५।८ **हिरण्याक्षः सविता देव आगात् ।**
(४३३) २।३८।४ (गृत्समद [आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्] भार्गवः शौनकः । सविता)
अरमतिः सविता— ।
[४१६] १।३५।८ दधद् **रत्ना दाशुषे** वार्याणि ।
(अश्विनौ ३९) १।४७।१ (प्रस्कण्वः काण्वः । अश्विनौ)
धत्तं रत्नानि दाशुषे ।
[४१७] १।३५।९ **उभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते ।**
१।१६०।१ (दीर्घतमा औचथ्यः । द्यावापृथिवी)
द्यावापृथिवी...। धिषणे अन्तरीयते ।
[४१८] १।३५।१० (हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । सविता)
सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
(अश्विनौ १२७) १।११८।१ (कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः । अश्विनौ)

ऋग्वेदस्य द्वितीयं मण्डलम् ।

[४१०] २।३८।१ (गृत्समद [आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्] भार्गवः शौनकः । सविता)
उदु ष्य देवः सविता सवाय ।
(४६१) ६।७१।१ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । सविता)
... सविता हिरण्यया ।
(४६४) ६।७१।४ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । सविता)
... सविता दमूना हिरण्यपाणिः ।
(४६७) ७।३८।१ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सविता)
... सविता ययाम हिरण्ययीम् ।
[४१३] २।३८।४ =(४१६) १।३५।८ (हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः। सविता)
[४३०] २।३८।११ (गृत्समदः शौनकः । सविता)
शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवाति ।
(अग्निः ११५४) ७।८।६ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः)

ऋग्वेदस्य चतुर्थं मण्डलम् ।

[४४३] ४।५४।३ (वामदेवो गौतमः । सविता)
अचित्ती यत् चकृमा **दैव्ये जने ।**
७।८९।५ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वरुणः)
यत् ... ... दैव्ये जने... ।
चरामसि ... ... **अचित्ती ॥**
[४४६] ४।५४।६ **आदित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ।**
(विश्वे देवाः ६५) १।१०७।२ (कुत्स आङ्गिरसः । विश्वे देवाः)

ऋग्वेदस्य पञ्चमं मण्डलम् ।

[४५३] ५।८२।२ **अस्य हि स्वयशस्तरम् ।**
(अग्निः ८७७) ५।१७।२ (पूरुरात्रेयः । अग्निः)
[४५३] ५।८२।२ (श्यावाश्व आत्रेयः । सविता)
न मिनन्ति स्वराज्यम् ।
(इन्द्रः २४४०) ८।९३।११ (सुकक्ष आङ्गिरसः । इन्द्रः)
[४५४] ५।८२।३ (श्यावाश्व आत्रेयः सविता)
सुवाति सविता भगः ।
(४४) ७।६६।४ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आदित्याः)

[४५७] ५।८२।६ (श्यावाश्व आत्रेयः । सविता)
विश्वा वामानि धीमहि ।

(अश्विनौ ४८९) ८।२२।१८ (सोभरिः काण्वः । अश्विनौ
(अग्निः १२६१) ८।१०३।५ (सोभरिः काण्वः । अग्निः

ऋग्वेदस्य षष्ठं मण्डलम् ।

[४६१] ६।७१।१ **उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया ।**
(४२०) २।३८।१ ...**देवः सविता** सवाय ।
[४६३] ६।७१।३ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । सविता)
रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ।
६।७५।१० (पायुर्भारद्वाजः । ब्राह्मण-पितृ-सोम-द्यावा-पृथिवी-पूषाणः)

[४६४] ६।७१।४ **उदु ष्य देवः सविता** दमूना ।
(४२०) २।३८।१ (गृत्समद [आङ्गिरसः शौनहोत्र पश्चाद्] भार्गवः शौनकः । सविता
... ... **सविता** सवाय ।

ऋग्वेदस्य सप्तमं मण्डलम् ।

[४६७] ७।३८।१ = (४२०) २।३८।१
[४६७] ७।३८।१ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सविता)
हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
(इन्द्रः १३५१) ३।३८।८ (प्रजापतिर्वैश्वामित्रः प्रजापतिर्वाच्यो वा विश्वामित्रो गाथिनो वा । इन्द्रः)
[४७१] ७।३८।६ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सविता, [उत्तरार्धःभगो वा])
रत्नं देवस्य सवितुरियानः ।

(४३) ७।५२।३ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आदित्यः)
... ... **रियानाः ।**
[४७३] ७।४५।१ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सविता)
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि ।
(अग्निः १९५) १।७२।१ (पराशरः शाक्त्यः । अग्निः)
[४७५] ७।४५।३ **मर्तभोजनमध** रासते नः ।
(रुद्रः ११) १।११४।६ (कुत्स आङ्गिरसः । रुद्रः)
रास्वा च नो अमृत **मर्तभोजनम् ।**

ऋग्वेदस्य दशमं मण्डलम् ।

[४७८] १०।१३९।२ (देवगन्धर्वो विश्वावसुः । सविता)
आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
(अग्निः २१२) १।७३।८ (पराशरः शाक्त्यः । अग्निः)
[४७९] १०।१३९।३ **रायो बुध्नः संगमनो वसूनाम् ।**
(अग्निः १८८४) १।९६।६ (कुत्स आङ्गिरसः । द्रविणोदा अग्निः)

[४७९] १०।१३९।३ **देव इव सविता सत्यधर्मा ।**
१०।३४।८ (कवष ऐलूषः, अक्षो मौजवान् वा । अक्षनिन्दा
[४८१] १०।१४९।२ (अर्चन् हैरण्यस्तूपः । सविता)
अतो **द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ।**
१०।८२।१ (विश्वकर्मा भौवनः । विश्वकर्मा)
आदिद् **द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ।**

ऋग्वेदस्य प्रथमं मण्डलम् ।

[५४७] १।११५।१ (कुत्स आङ्गिरसः । सूर्यः)
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।
(अग्निः ७४६) (वामदेवो गौतमः । अग्निः)
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं ।

(आयुर्वेदः ९९०) ७।१०१।६ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठ (वृष्टिकामः) कुमार आग्नेयो वा । पर्जन्यः
तस्मिन्नात्मा **जगतस्तस्थुषश्च ।**

[५४९] १।११५।३ (कुत्स आङ्गिरसः । सूर्यः)
परि द्यावापृथिवी यन्ति **सद्यः** ।
(अश्विनौ १३३) ३।५८।८ (विश्वामित्रो गाथिनः । अश्विनौ)
परि द्यावापृथिवी याति **सद्यः** ।
[५५०] १।११५।४ यदेदयुक्त **हरितः** सधस्थात् ।

(३११) ७।६०।३ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ)
अयुक्त सप्त **हरितः** — ।
[५५६] ५।४०।५ (अत्रिर्भौमः । सूर्यः)
यत् त्वा **सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः** ।
५।४०।९ (अत्रिर्भौमः । अत्रिः)
यं वै **सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः** ।

ऋग्वेदस्य सप्तमं मण्डलम् ।

[५५८] ७।६२।१ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सूर्यः)
कृतः **सुकृतः कर्तृभिर्भूत्** ।
(इन्द्रः १८७१) ६।१९।१ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । इन्द्रः)
पृथुः **सुकृतः कर्तृभिर्भूत्** ।
[५६०] ७।६२।३ **ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः** ।
(विश्वे देवाः ४८७) ७।३९।७ = ७।४०।७ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः)
[५६४] ७।६३।४ दूरेअर्थस्**तरणिर्भ्राजमानः** ।
(६७४) १०।८८।१६ (मूर्धन्वानाङ्गिरसो, वामदेव्यो वा । सूर्य-वैश्वानरौ)
अप्रयुच्छन् **तरणिर्भ्राजमानः** ।
[६३१] ७।६३।५ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सूर्य (पूर्वार्धः)- मित्रावरुणौ [उत्तरार्धः])

प्रति वां सूर उदिते ... नमोभिर्मि**त्रावरुणा** ।
(३२६) ७।६५।१ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ)
—**उदिते सूक्तैर्मित्रं** ... ... **वरुणम्** ।
(४७) ७।६६।७ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आदित्याः)
प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे **वरुणम्** ।
[६३१] ७।६३।५ **विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यैः** ।
(अग्निः ९४८) ६।१।१० (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । अग्निः)
विधेम नमोभिरग्ने समिधोत **हव्यैः** ।
[५६७] ७।६६।१६ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सूर्यः)
जीवेम **शरदः शतम्** ।
(६५०) १०।८५।३९ (सूर्या सावित्री ऋषिका । सूर्या-सावित्री)
जीवाति **शरदः शतम्** ।

ऋग्वेदस्याष्टमं मण्डलम् ।

[५६८] ८।१०१।११ (जमदग्निर्भार्गवः । सूर्यः)
महस्ते सतो **महिमा पनस्यते** ।

(आयुर्वेदः १०४४) १०।७५।९ (सिन्धुक्षित्प्रैयमेधः । नद्यः)
महान् ह्यस्य **महिमा पनस्यते** ।

ऋग्वेदस्य दशमं मण्डलम् ।

[५७३] १०।३७।४ (सौर्योऽभितपाः । सूर्यः)
येन **सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमः** ।
(१००४) १०।१२७।२ (कुशिकः सौभरः, रात्रिर्वा भारद्वाजी । रात्रिः)
ज्योतिषा बाधते तमः ।
[५७६] १०।३७।७ जीवाः **प्रति पश्येम सूर्य** ।
(५८६) १०।१५८।५ (चक्षुः सौर्यः । सूर्यः)

प्रति पश्येम सूर्य ।
[५७९] १०।३७।१० **तत् सूर्य द्रविणं धेहि चित्रम्** ।
२।२३।१५ (गृत्समदः शौनकः । बृहस्पतिः)
तदस्मासु द्रविणं धेहि— ।
[५८०] १०।३७।११ **यद् वो देवाश्चकृम जिह्वया** ।
(आयुर्वेदः १९९०) १०।१५।४ (शङ्खो यामायनः । पितरः)
इमा **वो** हव्या **चकृमा** जुषध्वम् ।

[५८६] १०।१५८।५ (चक्षुः सौर्यः। सूर्यः)
सुसंदृशं त्वा वयं प्रति।
(इन्द्रः ९२७) १।८२।३ (गोतमो राहूगणः। इन्द्रः)
सुसंदृशं त्वा वयं मघवन्।
[५८६] १०।१५८।५ प्रति पश्येम सूर्य।
(५७६) १०।३७।७ (सौर्योऽभितपाः। सूर्यः)
[५९०] १०।१७०।४ (विभ्राट् सौर्यः। सूर्यः)
विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः।
(इन्द्रः २३६६) ८।९८।३ (नृमेध आङ्गिरसः। इन्द्रः)
[६५०] १०।८५।३९ = (५६७) ७।६६।१६
[६५३] १०।८५।४२ विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
(अग्निः २४६७) १।९३।३ (गोतमो राहूगणः। अग्नीषोमौ)
विश्वमायुर्व्यश्नवत्।
[६५४-५५] १०।८५।४३-४४ शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।
(सोमः १२२३) ६।७४।१ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। सोमारुद्रौ)
शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे।
[६६०] १०।८८।२ (आङ्गिरसो मूर्धन्वान्, वामदेव्यो वा। सूर्यवैश्वानरोऽग्निः)
आविः स्वरभवज्जाते अग्नौ।
(अग्निः ६७६) ४।३।११ (वामदेवो गौतमः। अग्निः)
[६७४] १०।८८।१६ = (५६४) ७।६३।४

ऋग्वेदस्य प्रथमं मण्डलम्।

[६०९] १।१५।३ (मेधातिथिः काण्वः। [ऋतवः] त्वष्टा)
त्वं हि रत्नधा असि।
(अग्निः ११९७) ७।१६।६ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। अग्निः)
[६९२] १०।१८।६ (संकुसुको यामायनः। त्वष्टा)
दीर्घमायुः करति जीवसे वः।
(आयुर्वेदः १९७७) १०।१४।१४ (यमो वैवस्वतः। यमः)
दीर्घमायुः प्र जीवसे।
[७१७] १।२३।१५ (मेधातिथिः काण्वः। पूषा)
गोभिर्यवं न चर्कृषत्।
(इन्द्रः १०८६) १।१७६।२ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। इन्द्रः)
यवं न चर्कृषद् वृषा।

ऋग्वेदस्य तृतीयं मण्डलम्।

[७३३] ३।६२।८ (विश्वामित्रो गाथिनः। पूषा)
वधूयुरिव योषणाम्।
(इन्द्रः १४४८) ३।५२।३ (विश्वामित्रो गाथिनः। इन्द्रः)
[७३४] ३।६२।९ (विश्वामित्रो गाथिनः। पूषा)
यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति।
(अग्निः १७१४) १०।१८७।४ (वत्स आग्नेयः। अग्निः)

ऋग्वेदस्य षष्ठं मण्डलम्।

[७३५] ६।४८।१६ (शंयुर्बार्हस्पत्यः। पूषा)
अधा अर्यो अरातयः।
(इन्द्रः ३०५३) ६।५९।८ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। इन्द्राग्नी)
अधा अर्यो अरातयः।
[७४३] ६।५३।५ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। पूषा)
पणीनामारया हृदया कवे।
(७४५) ६।५३।७ पणीनां हृदया कवे।
[७४३-४५] ६।५३।५-७ अथेमस्मभ्यं रन्धय।
[७४५-४६] ६।५३।७-८ आ रिख किकिरा कृणु।
[७४८] ६।५३।१० (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। पूषा)
गोषणिं...अश्वसां वाजसामुत। नृवत्...।
(सोमः २०) ९।२।१० (मेधातिथिः काण्वः। पवमानः सोमः)
गोषा...नृषा...अश्वसा वाजसा उत।
[७५४] ६।५४।६ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। पूषा)
यजमानस्य सुन्वतः।

(इन्द्रः २०७०) ६।६०।१५ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्राग्नी)

[७५६] ६।५४।८ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । पूषा)

ईशानं राय ईमहे ।

८।२६।१२ (विश्वमना वैयश्वः, व्यश्वो वाङ्गिरसः । वायुः)

ईशानं राय ईमहे ।

(इन्द्रः १८११) ८।४६।६ (वशोऽश्व्यः । इन्द्रः)

(इन्द्रः ५१५) ८।५३ [वाल० ५]। १ (मेध्यः काण्वः । इन्द्रः)

[७६६] ६।५६।२ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । पूषा)

इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ।

(इन्द्रः ४०१) ८।१७।८ (इरिम्बिठिः काण्वः । इन्द्रः)

[७८७] १०।२६।९ (विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । पूषा)

इमं नः शृणवद्धवम् ।

(अग्निः १३३१) ८।४३।११ (विरूप आङ्गिरसः । अग्निः)

ऋग्वेदस्य सप्तमं मण्डलम् ।

[७९६] ७।४१।५ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । भगः)

वयं भगवन्तः स्याम ।

(विश्वे देवाः १३८) १।१६४।४० (दीर्घतमा औचथ्यः । विश्वे देवाः)

ऋग्वेदस्य प्रथमं मण्डलम् ।

[८१०] १।२२।१८ (मेधातिथिः काण्वः । विष्णुः)

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुः ।

(इन्द्रः ३१४) ८।१२।२७ (पर्वतः काण्वः । इन्द्रः)

यदा ते विष्णुरोजसा **त्रीणि पदा विचक्रमे ।**

[८२३] १।२२।२१ (मेधातिथिः काण्वः । विष्णुः)

तद्विप्रासो **विपन्यवो** जागृवांसः समिन्धते ।

(अग्निः ५१७) ३।१०।९ (विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः)

तं त्वा विप्रा **विपन्यवो** — ।

[८२५] १।१५४।२ (दीर्घतमा औचथ्यः । विष्णुः)

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।

(इन्द्रः १८४०) १०।१८०।२ (जय ऐन्द्रः । इन्द्रः)

[८२८] १।१५४।५ (दीर्घतमा औचथ्यः । विष्णुः)

नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।

(इन्द्रः २२७८) ७।९७।१ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः)

[८३०] १।१५५।४ (दीर्घतमा औचथ्यः । विष्णुः)

उरु क्रमिष्टउरुगायाय **जीवसे ।**

(इन्द्रः ५८६) ८।६३।९ (प्रगाथः काण्वः । इन्द्रः)

उरु क्रमिष्ट जीवसे ।

[८४१] ७।९९।७ = ७।१००।७ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विष्णुः)

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्। वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

ऋग्वेदस्य द्वितीयं मण्डलम् ।

[९२३] २।३६।५ (गृत्समदः शौनकः । [ऋतवः] इन्द्रो नभश्च)

तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यमाभृतः—।...पिब ।

(इन्द्रः २७६१) १०।११६।७ (अग्नियुतः स्थौरोऽग्नियूपो वा स्थौरः । इन्द्रः)

तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यं पक्वो ... **पिब** ... ।

[९२४] २।३६।६ (गृत्समदः शौनकः । [ऋतवः] मित्रावरुणौ नभस्यश्च)

जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे ।

(अश्विनौ ५११) ८।३५।४ (श्यावाश्व आत्रेयः । अश्विनौ)

[९२५] २।३७।१ (गृत्समद [आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्] भार्गवः शौनकः । द्रविणोदा ऋतवश्च)

अध्वर्यवः स **पूर्णां** व**ष्ट्यासिचम् ।**

(अग्निः १२०२) ७।१६।११ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः)

द्रविणोदा **पूर्णां** विव**ष्ट्यासिचम् ।**

[९२५] २।३७।१ **तस्मा एतं भरत तद्वशो ।**

(इन्द्रः ११५१) २।१४।२ (गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः

तस्मा एतं भरत तद्वशाय ।

ऋग्वेदस्य दशमं मण्डलम् ।

[१००३] १०।१२७।१ (कुशिकः सौभरः, रात्रिर्वा भारद्वाजी । रात्रिः)
विश्वा अधि श्रियोऽधित ।
(अग्निः ४०१) २।८।५ (गृत्समदः शौनकः । अग्निः)
विश्वा अधि श्रियो दधे ।

[१००४] १०।१२७।२ ज्योतिषा बाधते तमः ।
(५७३) १०।३७।४ ज्योतिषा बाधसे तमः ।
[१०१०] १०।१२७।८ उप ते गा इवाकरम् ।
(रुद्रः १४) १।११४।९ (कुत्स आङ्गिरसः । रुद्रः)
उप ते स्तोमान् ... इवाकरम् ।

अदितेः, आदित्यानां च

वर्णानुक्रम-सूची ।

॥ इति अदितिः, आदित्याश्च समाप्ताः ॥



दैवत-संहिता ।

(१०)

विश्वे देवाः

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

साहित्यवाचस्पति, गीतालंकार

अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल

[स्व. नारायणजी पुरुषोत्तम विश्वस्तनिधिके बंबई निवासी विश्वस्तोंने संपूर्ण 'दैवत-संहिता' के मुद्रणके लिये १५०००) रु० दिये, इस धनके भागसे यह विभाग मुद्रित हुआ है ।]

स्वाध्याय-मण्डल, पारडी

संवत् २०१६, शक १८८१, सन् १९५९

प्रकाशक :
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर, बी. ए.,
स्वाध्याय-मण्डल, भारत मुद्रणालय,
पोस्ट- 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)'
पारडी (जि. सुरत)

द्वितीय वार

मूल्य ५) रु.

मुद्रक :
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर, बी. ए.,
स्वाध्याय-मण्डल, भारत मुद्रणालय,
पोस्ट- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)'
पारडी (जि. सुरत)



विश्वेदेवा देवताका परिचय

यह एक देवता नहीं है

'विश्वदेवाः' नामकी कोई एक देवता नहीं है। इसके पर्याय पद '**विश्वे देवाः, सर्वे देवाः, नानादेवताः, बहुदैवत्यं**' इस तरह अनेक हैं। इन पदोंसे ही 'सब देवों' का बोध होता है। जहां मंत्रमें या सूक्तमें एकसे अधिक देवता होते हैं, और प्रत्येक देवताका पृथक् निर्देश करनेकी संभावना नहीं होती, वहांके अनेक देवताओंका मिलकर निदर्शक नाम '**विश्वेदेवाः**' है। 'अनेक देवता' ऐसा भी इसको हम कह सकते हैं। अतः जिन मंत्रोंमें या सूक्तोंमें अनेक देवता होते हैं, उनका देवता 'विश्वेदेवाः' समझा जाता है, उदाहरण के लिये देखिए—

इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम्।
आदित्यान् मारुतं गणम्॥ (ऋ. १।१४।३)

इस एक मन्त्रमें नौ देवताएँ हैं, इसलिये नौ देवताओंका निर्देश करनेके स्थानपर '**विश्वेदेवाः**' देवता कहा है। इससे बोध होता है कि, इस मन्त्रमें अनेक देवताएं हैं।

सब देवताओंकी इकट्ठी प्रार्थना करनेके समयमें भी '**विश्वेदेवा**' देवता मानी जाती है। वहां सब देव ऐसा अर्थ समझा जाता है, जैसा—

विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम्।
(ऋ. २।४१।१३)

यहां सब देवोंकी इकट्ठी प्रार्थना है। यहां किसी एक देवताका निर्देश नहीं है। जहां गणदेवोंकी प्रार्थना होती है, वहां उन सब गण देवोंको सामूहिकरूपसे 'विश्वेदेवा' कहा जाता है। वसु, रुद्र, आदित्य, मरुत् ये सब गण देव हैं। ये संघ करके रहते हैं।

अथर्ववेदमें '**नाना दैवत्यं, मन्त्रोक्ताः देवताः, बहु दैवत्यं, नाना देवताः**' ऐसे अनेक नाम देवताओंमें आते हैं, उन सबका अर्थ '**अनेक देवता**' इतना ही है। अर्थात् अनेक देवताओंका बोधक यह पद है। यह कोई एक देवता नहीं। इस सूक्तमें जो अनेक देवता होंगे, वेही दूसरे सूक्तमें होंगे ऐसी भी बात नहीं। परन्तु सर्वत्र अनेक देवता मन्त्रमें वा सूक्तमें होंगे, यही साम्य यहाँ है।

विश्वेदेवाके विषयमें ब्राह्मण ग्रंथोंका निर्वचन

विश्वेदेवा देवताके संबन्धमें ब्राह्मण ग्रंथोंमें अनेक प्रकारके विवेचन मिलते हैं, उन्हें अब देखिये—

एते वै सर्वे देवा यद्विश्वेदेवाः।
(कौ. ब्रा. ४।१४; ५।२)

एते वै विश्वेदेवा यत्सर्वे देवाः।
(गो. ब्रा. उ. १।२०)

रश्मयो ह्यस्य (सूर्यस्य) विश्वेदेवाः।
(श. ब्रा. ३।९।२।६; १२)

तस्य (सूर्यस्य) ये रश्मयस्ते विश्वेदेवाः।
(श. ब्रा. ४।३।१।२६)

एते वै विश्वेदेवा रश्मयः। (श. ब्रा. २।३।१।७)

एते वै रश्मयो विश्वेदेवाः। (श. ब्रा. १२।४।४।६)

(प्राणा वै) विश्वेदेवाः। (वा. य. ३८।१५)
(श. ब्रा. १४।२।२।३७)

ऋतवो विश्वेदेवाः। (वा. य. १२।६१)
(श. ब्रा. ७।१।१।४३)

इन्द्राग्नी वै विश्वेदेवाः। (श. ब्रा. २।४।४।१३; ३।९।२।१४)

अथ यदेनं (अग्निं) एकं सन्तं बहुधा विहरन्ति तदस्य वैश्वदेवं रूपम्। (ऐ. ब्रा. ३।४)

श्रोत्रं विश्वेदेवाः। (श. ब्रा. ३।२।२।१३)

ता (दिशः) उ विश्वेदेवाः।
(जै. उ. ब्रा. २।७।४; २।११।५)

स (प्रजापतिः) विश्वान्देवानसृजत तान् दिक्षूपादधात्। (श. ब्रा. ६।१।२।९)

दिशो हैतद्यजुरेतद्धै विश्वेदेवाः वैश्वानराः ।
(श. ब्रा. ६।५।२।६)
तस्य (प्रजापतेः) विश्वे देवाः पुत्राः ।
(श. ब्रा. ६।३।१।१७)
वैश्वदेवो हि वैश्यः । (तै. ब्रा. २।७।२।२)
विड् विश्वेदेवाः । (श. ब्रा. १०।४।१।९)
विशो विश्वेदेवाः । (श. ब्रा. २।४।३।६; ३।९।१।१६; ५।५।१।१०)
वैश्वदेव्यो वै प्रजाः । (तै. ब्रा. १।६।२।५; १।७।१०।२)
पशवो वै वैश्वदेवम् । (कौ. ब्रा. १६।३)
वैश्वदेवो वा अश्वः । (श. ब्रा. १३।२।५।४; तै. ब्रा. ३।९।२।४; ३।९।११।१)
वैश्वदेवी वै गौः । (गो. ब्रा. उ. ३।१९)
वैश्वदेवं अन्नम् । (तै. ब्रा. १।६।१।१०)
विश्वेषां वा एतद्देवानां रूपं यत्करम्भाः ।
(तै. ब्रा. ३।८।१४।४)
सर्वमिदं विश्वेदेवाः । (श. ब्रा. ३।९।१।१४; ४।४।१।९; १८)
सर्वे वै विश्वेदेवाः । (श. ब्रा. १।७।४।२२; ३।९।१।१३; ४।२।२।३; ५।५।२।१०)
विश्वेदेवा एव सर्वम् । (गो. ब्रा. पू. ५।१५)
अनन्ता विश्वेदेवाः । (श. ब्रा. १४।६।१।११)
विश्वे वै देवा देवानां यशस्वितमाः ।
(श. ब्रा. १३।१।२।८; तै. ब्रा. ३।८।७।२)
बृहस्पतिर्विश्वैर्देवैरुदक्रामत् । (ऐ. ब्रा. १।२४)
वैश्वदेवं तृतीयसवनम् । (ऐ. ब्रा. ६।१५; श. ब्रा. १।७।३।१६; ४।४।१।११; जै. उ. १।३७।४)
अथैनं उदीच्यां दिशि विश्वेदेवा ... अभ्यषिंचन् वैराज्याय । (ऐ. ब्रा. ८।१४)
विश्वे त्वा देवा उत्तरतोऽभिषिञ्चन्त्वानुष्टुभेन छन्दसा । (तै. ब्रा. २।७।१५।५)

विश्वेदेवा देवताके संबंधमें ब्राह्मण ग्रंथोंमें इस तरहके वचन आते हैं । यहां प्रथम ही '**सर्वे देवाः**' सब देव विश्वेदेव ऐसा कहा है, अर्थात् जितने भी देव हैं वे सब विश्वेदेव हैं । देव इनमेंसे छूटा नहीं है । आगे सूर्यके किरण विश्वेदेव हैं कहा है । किरण अथवा प्रकाशके किरण जितने भी हैं वे सबके सब विश्वेदेव हैं । आगे प्राण और ऋतुको विश्वेदेवा कहा है । क्योंकि प्राण भी अनेक हैं और ऋतु भी बहुत हैं । इन और अग्नि विश्वेदेव हैं । अग्नि एक होते हुए भी उसको अनेक नामोंसे पुकारते हैं, इसलिये वे सब रूप विश्वेदेव हैं । श्रोत्र विश्वेदेव हैं, क्योंकि सब दिशाएं ही श्रोत्र हैं और दिशा अनेक होनेके कारण उसे विश्वेदेव कहा है, वह ठीक ही है । प्रजापतिने सब देव उत्पन्न किये, वे विश्वेदेव हैं । प्रजापतिके जो पुत्र देव हैं, वे विश्वेदेव हैं । वैश्य तथा प्रजाजन भी विश्वेदेव हैं सब पशु भी विश्वेदेव हैं । गौ और घोडा भी विश्वेदेव हैं विश्वेदेव अनन्त हैं और यह सब जो भी इस विश्वमें है, वह सब विश्वेदेव ही है ।

इस तरह सभी विश्व अर्थात् विश्वके अन्तर्गत पदार्थ मात्र हैं वे सब विश्वेदेव हैं । इसमें कोई वस्तु छूटी नहीं है । यह बात '**विश्वेदेवाः**' पदसे भी समझमें आ सकती है । इस विश्वमें जो भी पदार्थ हैं, ये सब '**देव**' हैं अतः वे '**विश्वे देव**' कहलाते हैं, यह ठीक ही है । अब तैंतीस देवोंके विषय में यहां प्रसंगानुसार कुछ कहना चाहिये—

तैंतीस देवताएँ

तैंतीस देवताओंका उल्लेख निम्नलिखित मंत्रोंमें है—

(मनुर्वैवस्वतः । विश्वेदेवाः । पुर उष्णिक् ।)

इति स्तुतासो असथा रिशादसो ये स्थ **त्रयश्च त्रिंशच्च** ।
मनोर्देवा यज्ञियासः ॥ (ऋ. ८।३०।२)

ये **त्रिंशति त्रयस्परो** देवासो बर्हिरासदन् ।
विदन्नह द्वितासनन् ॥ (ऋ. ८।२८।१)

(गाथिनो विश्वामित्रः । अग्निः त्रिष्टुप्)

ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतः त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ।
(ऋ. ३।६।९)

(प्रस्कण्वः काण्वः । अग्निः । अनुष्टुप्)

श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः ।
तान्रोहिदश्व **गिर्वणस्त्रयस्त्रिंशतं** आवह ॥
(ऋ. १।४५।२)

(भृग्वंगिराः । त्रिवृत् । अनुष्टुप्)

त्रयस्त्रिंशद्देवतास्त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा जुगुपुरप्स्वन्तः । अस्मिंश्चन्द्रे अधि यद्धिरण्यं तेनायं कृणवद्वीर्याणि ॥ (अथर्व. १९।२७।१०)

(गोपथः । रात्रिः । अनुष्टुप्)
द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः ।
तेभिर्नो अद्य पायुभिः नु पाहि दुहितार्दिवः ॥
(अथर्व. १९।४७।५)

त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिंशाः सुराधसः ।
बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे ।
देवा देवैरवन्तु मा ॥ (वा. य. २०।११)

इन सात मंत्रोंमें ३३ देवताओंका स्पष्ट उल्लेख है ।

त्रयः त्रिंशत् देवाः ।
त्रिंशति त्रयः परः देवासः ॥
त्रिंशतं त्रीन् च देवान् ।
गिर्वणः त्रयः त्रिंशतं ॥
त्रयस्त्रिंशत् देवताः ।
देवाः त्रयस्त्रिंशाः ॥
द्वौ + विंशतिः च + एकादश ।

ये सब उल्लेख ३३ देवोंकी गणना कर रहे हैं । 'तीन और तीस ' अथवा ' तीस और तीन ' इस तरह गणना ऊपरके मंत्रोंमें दीखती है । एक मंत्रमें २+२०+११=३३ ऐसी गणना है । तीन और तीसमें भी एक देव मुख्य और दस देव उसके साथवाले ऐसी गणना है । वही बात २+२०+११=३३ में है । तीन देव मुख्य और दस दसके तीन देवगण मिलकर तैंतीस देव होते हैं ।

तैंतीस देवोंमें ' तीन वार एकादश ' **त्रया एकादश** ' अर्थात् ११×३=३३ ऐसी देवोंकी गणना ऊपर दिये एक मंत्रमें की है । इससे ये तीन तरहके देवगण, ग्यारहकी संख्यामें प्रत्येक गण होनेसे, तैंतीस बने हैं । इससे खोज करनेवालेको पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोकमें ग्यारह ग्यारह देवगणोंका निवास है, ऐसा पता लगता है । इसके सूचक निम्नलिखित मन्त्र हैं—

तीन गुणा ग्यारह देव

(हिरण्यस्तूप आंगिरसः । अश्विनौ । जगती)
आ नासत्या **त्रिभिरेकादशैरिह देवे**भिर्यातं मधुपेयमश्विना । प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषः भवतं सचाभुवा ॥ (ऋ. १।३४।११; वा. य. ३४।४७)

(परुच्छेपो दैवोदासिः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप्)
ये **देवासो दिव्येकादश** स्थ **पृथिव्यामध्ये-कादश** स्थ । **अप्सुक्षितो महिनैकादश** स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥ (ऋ. १।१३९।११)

(भृग्वंगिराः । त्रिवृत् । अनुष्टुप्)
ये **देवा दिव्येकादश** स्थ० ये देवा **अन्तरिक्ष एकादश** स्थ० । ये **देवा पृथिव्यामेकादश** स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥ (अथर्व. १९।२७।११-१३)

(श्यावाश्व आत्रेयः । अश्विनौ । त्रिष्टुप्)
विश्वैर्देवैस्त्रिभिरेकादशैरिहाद्भिर्मरुद्भिर्भृगुभिः सचाभुवा । सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥
(ऋ. ८।३५।३)

(नाभाकः काण्वः । अग्निः । महापंक्तिः)
अग्निस्त्रीणि त्रिधातून्याक्षेति विदथा कविः ।
स **त्रीँरेकादशाँ** इह यक्षच्च पिप्रयच्च नो विप्रो दूतः परिष्कृतः । नभन्तामन्यके समे ॥ (ऋ. ८।३९।९)

(मेध्यः काण्वः । अश्विनौ । त्रिष्टुप्)
युवां देवा**स्त्रय एकादशासः** सत्याः सत्यस्य ददृशे पुरस्तात् । अस्माकं यज्ञं सवनं जुषाणा पातं सोममश्विना दीद्यग्नी ॥ (ऋ. ८।५७।२)

(कश्यपो मारीचः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप्)
तव त्ये सोम पवमान निण्ये **विश्वे देवास्त्रय एकादशासः** । दश स्वधाभिरधि सानो अव्ये मृजन्ति त्वा नद्यः सप्त यह्वीः ॥ (ऋ. ९।९२।४)

इन सात मंत्रोंमें तैंतीस देवोंकी गणना की है । ' **त्रिभिः एकादशैः देवैः । त्रीन् एकादशान् । त्रयः एकादशासः ।** ' तीन गुणे ग्यारह देव हैं यह बात इन मंत्रोंसे सिद्ध होती है ।

ये तैंतीस देव ' **दिवि एकादश, अन्तरिक्षे एकादश, पृथिव्यामेकादश** ' इस तरह आकाशमें, अन्तरिक्षमें और भूमिपर ग्यारह ग्यारह हैं, ऐसा विवरण उक्त मंत्रोंमें ही किया है । इससे तैंतीस देव कहां कैसे रहते हैं, इसका पता लगता है । इन ग्यारह देवोंमें भी एक मुख्य और दस गौण अर्थात् उस एकके साथ या अधीन कार्य करते हैं । पृथ्वीपर अग्नि, अन्तरिक्षमें वायु और द्युलोकमें सूर्य ये तीन देव संभवतः मुख्य होंगे और इनमेंसे प्रत्येकके अधीन दस दस देव रहते होंगे । पर ऐसा भी दीखता है कि अग्नि आदि देव इन तैंतीस देवोंको अपने रथपर बिठलाकर लाते हैं, इस विषयमें मन्त्रभाग देखिए—

(गोपथः । रात्रिः । अनुष्टुप्)
द्वौ च ते विंशतिश्च ते **रात्र्येकादशावमाः** ।
तेभिर्नो अद्य पायुभिः नु पाहि दुहितार्दिवः ॥
(अथर्व. १९।४७।५)

त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिंशाः सुराधसः ।
बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे ।
देवा देवैरवन्तु मा ॥ (वा. य. २०।११)

इन सात मंत्रोंमें ३३ देवताओंका स्पष्ट उल्लेख है ।

त्रयः त्रिंशत् देवाः ।
त्रिंशति त्रयः परः देवासः ॥
त्रिंशतं त्रीन् च देवान् ।
गिर्वणः त्रयः त्रिंशतं ॥
त्रयस्त्रिंशत् देवताः ।
देवाः त्रयस्त्रिंशाः ॥
द्वौ + विंशतिः च + एकादश ।

ये सब उल्लेख ३३ देवोंकी गणना कर रहे हैं । 'तीन और तीस' अथवा 'तीस और तीन' इस तरह गणना ऊपरके मंत्रोंमें दीखती है । एक मंत्रमें २+२०+११=३३ ऐसी गणना है । तीन और तीसमें भी एक देव मुख्य और दस देव उसके साथवाले ऐसी गणना है । वही बात २+२०+११=३३ में है । तीन देव मुख्य और दस दसके तीन देवगण मिलकर तैंतीस देव होते हैं ।

तैंतीस देवोंमें 'तीन वार एकादश' **त्रया एकादश**' अर्थात् ११×३=३३ ऐसी देवोंकी गणना ऊपर दिये एक मंत्रमें की है । इससे ये तीन तरहके देवगण, ग्यारहकी संख्यामें प्रत्येक गण होनेसे, तैंतीस बने हैं । इससे खोज करनेवालेको पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोकमें ग्यारह ग्यारह देवगणोंका निवास है, ऐसा पता लगता है । इसके सूचक निम्नलिखित मन्त्र हैं—

तीन गुणा ग्यारह देव

(हिरण्यस्तूप आंगिरसः । अश्विनौ । जगती)
आ नासत्या **त्रिभिरेकादशैरिह देवेभि**र्यातं मधुपेयमश्विना । प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषः भवतं सचाभुवा ॥ (ऋ. १।३४।११; वा. य. ३४।४७)

(परुच्छेपो दैवोदासिः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप्)
ये **देवासो दिव्येकादश** स्थ **पृथिव्यामध्येकादश** स्थ । **अप्सुक्षितो महिनैकादश** स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥ (ऋ. १।१३९।११)

(भृग्वंगिराः । त्रिवृत् । अनुष्टुप्)
ये **देवा दिव्येकादश** स्थ० ये देवा **अन्तरिक्ष एकादश** स्थ० । ये **देवा पृथिव्यामेकादश** स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥ (अथर्व. १९।२७।११-१३)

(श्यावाश्व आत्रेयः । अश्विनौ । त्रिष्टुप्)
विश्वैर्देवैस्त्रिभिरेकादशैरिहाद्भिर्मरुद्भिर्भृगुभिः सचाभुवा । सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमाश्विना ॥
(ऋ. ८।३५।३)

(नाभाकः काण्वः । अग्निः । महापंक्तिः)
अग्निस्त्रीणि त्रिधातून्याक्षेति विदथा कविः ।
स **त्रीँरेकादशाँ** इह यक्षच्च पिप्रयच्च नो विप्रो दूतः परिष्कृतः । नभन्तामन्यके समे ॥ (ऋ. ८।३९।९)

(मेध्यः काण्वः । अश्विनौ । त्रिष्टुप्)
युवां देवा**स्त्रय एकादशासः** सत्याः सत्यस्य ददृशे पुरस्तात् । अस्माकं यज्ञं सवनं जुषाणा पातं सोममश्विना दीद्यग्नी ॥ (ऋ. ८।५७।२)

(कश्यपो मारीचः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप्)
तव त्ये सोम पवमान निण्ये **विश्वे देवास्त्रय एकादशासः** । दश स्वधाभिरधि सानो अव्ये मृजन्ति त्वा नद्यः सप्त यह्वीः ॥ (ऋ. ९।९२।४)

इन सात मंत्रोंमें तैंतीस देवोंकी गणना की है । '**त्रिभिः एकादशैः देवैः । त्रीन् एकादशान् । त्रयः एकादशासः** ।' तीन गुणे ग्यारह देव हैं यह बात इन मंत्रोंसे सिद्ध होती है ।

ये तैंतीस देव '**दिवि एकादश, अन्तरिक्षे एकादश, पृथिव्यामेकादश**' इस तरह आकाशमें, अन्तरिक्षमें और भूमिपर ग्यारह ग्यारह हैं, ऐसा विवरण उक्त मंत्रोंमें ही किया है । इससे तैंतीस देव कहां कैसे रहते हैं, इसका पता लगता है । इन ग्यारह देवोंमें भी एक मुख्य और दस गौण अर्थात् उस एकके साथ या अधीन कार्य करते हैं । पृथ्वीपर अग्नि, अन्तरिक्षमें वायु और द्युलोकमें सूर्य ये तीन देव संभवतः मुख्य होंगे और इनमेंसे प्रत्येकके अधीन दस दस देव रहते होंगे । पर ऐसा भी दीखता है कि अग्नि आदि देव इन तैंतीस देवोंको अपने रथपर बिठलाकर लाते हैं, इस विषयमें मन्त्रभाग देखिए—

अग्ने ! पत्नीवतः त्रिंशतं त्रीँश्च देवान् आवह ॥

(ऋ. ३।६।९)

अग्ने ! गिर्वणः त्रयस्त्रिंशतं आवह ॥

(ऋ. १।४५।२)

अग्निः तीन् एकादशान् यक्षत् ॥

(ऋ. ८।३९।९)

'हे अग्ने ! तैंतीस देवोंको और उनकी पत्नियोंको साथ ले आओ।' इसी तरह अश्विदेव भी तैंतीस देवोंको लाते हैं—

हे अश्विना ! त्रिभिः एकादशैर्देवैः आयातं ॥

(ऋ. १।३४।११)

'हे अश्विदेवो ! तैंतीस देवोंके साथ यहां आओ।' यहां ये अग्नि और अश्विदेव तैंतीस देवोंको अपने साथ लाते और यज्ञमें हविर्भाग लेते हैं। अश्वी अपने रथपर तैंतीस देवोंको रखकर लाते हैं, इसी तरह अग्नि भी अपने रथपर रखकर उन सब देवोंको लाते हैं। इस विषयमें निम्न लिखित मन्त्र भाग देखने योग्य है—

एभिः अग्ने सरथं याहि अर्वाङ् नाना-रथं वा ॥

(ऋ. ३।६।९)

'हे अग्ने ! इन तैंतीस देवोंको अपने रथपर बिठलाकर अथवा नाना रथोंपर बिठलाकर यहां ले आओ।' यह मन्त्र निःसंदेह विचार करने योग्य है। तैंतीस देवोंकी खोजमें यह सहायक होनेवाला है। तीन हजार तीनसौ तीस और नौ देव हैं, ऐसा भी निम्नलिखित मन्त्रमें कहा है—

(गाथिनो विश्वामित्रः। अग्निः। त्रिष्टुप्)

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्। औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥ (ऋ. ३।९।९)

तीन हजार तीनसौ तीस और नौ देव अग्निकी पूजा करते हैं। यहाँ ३३३० + ९ = ३३३९ देव हैं ऐसा कहा है।

१ ब्रह्म = महा सूर्य
३ अग्नि-वायु-सूर्य
३३ उक्त तीन देवोंके साथ दस मिलकर तैंतीस देव
३३३ विश्वेदेवाः
३३३९ विश्वेदेवाः

बादके ३३३ और ३३३९ वे देव भी उन ३३ देवोंके साथ कार्य करनेवाले उपदेव हैं। इस तरह देवोंकी संख्याकी वृद्धि होकर तैंतीस कोटी अथवा तैंतीस करोड देवताएं मानी गयी हैं। कहते हैं कि मानव-शरीरमें तैंतीस करोड अणु जीवमात्राएँ हैं। अणुजीवमात्रा (Cells) यही जीवनका अतिसूक्ष्म पिण्ड है। ये अणुपिण्ड करोडोंकी संख्यामें शरीरमें रहते हैं, प्रत्येक अणुपिण्डमें विश्वके सब लोकलोकान्तरके अंश रहते हैं और वे (स्पेक्ट्रम्) वर्ण विभाजक यन्त्रसे देखे और पहचाने भी जाते है। इससे जो विश्वमें है वह पिण्डमें है और जो पिण्डमें है वह विश्वमें है, इस वैदिक सिद्धान्तकी पुष्टी होती है। इसलिए विश्वान्तर्गत तैंतीस देवताएं शरीरमें कहां हैं, इसकी खोज करना अनिवार्य है। विश्वान्तर्गत तैंतीस देवताएं शरीरमें हैं, इसमें संदेह नहीं है, परन्तु सबकी सब कहां रहती हैं, इसका पता वैदिक वाङ्मयसे नहीं लगता है। कुछ थोडे देवोंके विषयमें ऐतरेयोपनिषद्में कहा है—

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत्,
वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्,
आदित्यश्चक्षुर्भूत्वा अक्षिणी प्राविशत्,
दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्,
ओषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशन्,
चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशत्,
मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशत्,
आपः रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्।

(ऐ. उ. २।५)

कौनसा देव मानव शरीरमें अथवा प्राणि शरीरमें आकर कहां रहा है, इसका वर्णन यहां किया है, इस वर्णनसे निम्न लिखित तालिका बनती है—

विश्वान्तर्गत- **देवता**	शरीरान्तर्गत- **देवतांश**	शरीरमें- **स्थान**
अग्नि	वाक्	मुख
वायु	प्राण	नासिका
आदित्य	चक्षु	नेत्र
दिशा	श्रोत्र	कर्ण
औषधि	केश	त्वचा
चन्द्रमा	मन	हृदय
मृत्यु	अपान	नाभि
आप्	रेत	शिश्न

इस तरह यह तालिका बनी है। वेदके मंत्रोंमें भी यह विषय है—

संसिचो नाम ते देवा ये संभारान् समभरन् ।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १३ ॥
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १८ ॥
रेतः कृत्वाऽऽज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ २९ ॥
या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशत् शरीरेऽधि प्रजापतिः ॥ ३० ॥
सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे ।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ॥ ३१ ॥
तस्माद्वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन्देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥ ३२ ॥
(अथर्व. ११।८)

' जो देव शरीर बनानेका संभार इकट्ठा करते हैं, वे संसिच नामक देव मर्त्य देहकी सब सामग्री यथा स्थान इकट्ठी करके मानव देहमें घुस गये हैं । इस मर्त्य गृहको बना कर सब देव पुरुषमें प्रविष्ट हुए हैं । रेतका घी बनाकर ये देव पुरुषमें प्रविष्ट हुए हैं। आप्, विराट् ,अन्य देवता ब्रह्मके साथ शरीरमें प्रविष्ट हुए हैं । शरीर पर प्रजापति अधिष्ठाता हुआ है । सूर्य चक्षु हुआ, वायु प्राण हुआ, और ये मनुष्यके शरीरमें विभक्त भावसे रहे हैं । इससे भिन्न अन्य अवयव अन्य देव बने हैं । इसलिये ज्ञानी इस पुरुषको ब्रह्म कहते हैं । सब देवताएं, गौवें गोशालामें रहनेके समान, इस शरीरमें रहती हैं ।'

यहां स्पष्ट कहा है कि, गौवें गोशालामें रहनेके समान सब देवताएं इस शरीरमें रहती हैं, '**सर्वाः देवताः**' का अर्थ ये तैंतीस देवता ही हैं । देखिये—

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अंगे सर्वे समाहिताः ॥ १३ ॥
यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अंगे गात्रा विभेजिरे ॥ २७ ॥

' इसके शरीरमें तैंतीस देव शरीरके सब अवयवोंमें समाहित हुए हैं । इसके शरीरके सब गात्रोंमें ये तैंतीस देव विभक्त होकर रहे हैं ।' इस तरह शरीरमें तैंतीस देव अवयव बनकर रहे ऐसा वर्णन है । इस वर्णनमें तैंतीस देवता शरीरके गात्रोंमें रहनेका वर्णन स्पष्ट है । मन्त्रमें इस विषयका जो अधिक वर्णन मिलता है वह ऐसा है—

यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन् अध्याहिता ।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातास्तिष्ठन्त्यार्पिताः ॥ १२ ॥
यत्र अमृतं च मृत्युश्च पुरुषेऽधि समाहिते ।
समुद्रो यस्य नाड्यः पुरुषेऽधि समाहिताः ॥ १५ ॥
यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः ॥ २२ ॥
यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानम्० ॥ ३२ ॥
यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यम्० ॥ ३३ ॥
यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरंगिरसोऽभवन् ॥
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीः० ॥ ३४ ॥ (अथर्व. १०।७)

' जिसमें भूमि–अन्तरिक्ष–द्यु ये तीन लोक हैं । जिसमें अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, वायु ये देव रहते हैं, जहां अमृत और मृत्यु हैं । नदियां नाडीरूपसे जहां रहती हैं । जहां वसु, रुद्र और आदित्य रहे हैं, द्युलोक सिर है, अन्तरिक्ष पेट है और भूमि जिसके पांव हुए हैं । सूर्य चक्षु, चन्द्रमा मन और अग्नि मुख बना है । वायु प्राण और अपान, चक्षु अंगिरस और दिशायें ज्ञान साधन कर्ण यहां बने हैं । '

यह वर्णन परमात्माके विश्वशरीरका और जीवशरीरका समानतया वर्णन है । परमात्माका शरीर विश्व है और जीवका शरीर यह पिण्ड शरीर है, पर दोनों जगह ये तैंतीस देव हैं । परमात्म शरीरमें पूर्ण रूपसे और जीवशरीरमें अंश रूपसे ये देवताएँ रहती हैं । इनका मन्त्रोक्त वर्णन और देखिये—

दश साकं अजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ॥ ३ ॥
प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रं अक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ्मनस्ते वा आकूतिं आवहन् ॥ ४
इन्द्रादिन्द्रः सोमात्सोमो अग्नेरग्निरजायत ।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताऽजायत ॥ ९ ॥
ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ॥ १० ॥
(अथर्व. ११।८)

दस देवोंसे दस देव–पुत्र उत्पन्न हुए । प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र, अक्षिति, क्षिति, व्यान, उदान, वाणी, मन ऐसे वे दस देवपुत्र दस देवोंसे उत्पन्न हुए हैं । इन्द्रसे इन्द्र, सोमसे सोम, अग्निसे अग्नि, त्वष्टासे त्वष्टा, और धातासे धाता ये पुत्र हुए हैं। ये दस देवपुत्र बडे देवोंसे उत्पन्न हुए हैं । इन पुत्रोंको स्थान देकर वे देव अपने स्थानमें गये ।

अग्ने ! पत्नीवतः त्रिंशतं त्रींश्च देवान् आवह ॥

(ऋ. ३।६।९)

अग्ने ! गिर्वणः त्रयस्त्रिंशतं आवह ॥

(ऋ. १।४५।२)

अग्निः तीन् एकादशान् यक्षत् ॥

(ऋ. ८।३९।९)

'हे अग्ने ! तैंतीस देवोंको और उनकी पत्नियोंको साथ ले आओ।' इसी तरह अश्विदेव भी तैंतीस देवोंको लाते हैं—

हे अश्विना ! त्रिभिः एकादशैर्देवैः आयातं ॥

(ऋ. १।३४।११)

'हे अश्विदेवो ! तैंतीस देवोंके साथ यहां आओ।' यहां ये अग्नि और अश्विदेव तैंतीस देवोंको अपने साथ लाते और यज्ञमें हविर्भाग लेते हैं। अश्वी अपने रथपर तैंतीस देवोंको रखकर लाते हैं, इसी तरह अग्नि भी अपने रथपर रखकर उन सब देवोंको लाते हैं। इस विषयमें निम्न लिखित मन्त्र भाग देखने योग्य है—

एभिः अग्ने सरथं याहि अर्वाङ् नाना-रथं वा ॥

(ऋ. ३।६।९)

'हे अग्ने ! इन तैंतीस देवोंको अपने रथपर बिठलाकर अथवा नाना रथोंपर बिठलाकर यहां ले आओ।' यह मन्त्र निःसंदेह विचार करने योग्य है। तैंतीस देवोंकी खोजमें यह सहायक होनेवाला है। तीन हजार तीनसौ तीस और नौ देव हैं, ऐसा भी निम्नलिखित मन्त्रमें कहा है—

(गाथिनो विश्वामित्रः। अग्निः। त्रिष्टुप्)

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्। औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥ **(ऋ. ३।९।९)**

तीन हजार तीनसौ तीस और नौ देव अग्निकी पूजा करते हैं। यहाँ ३३३० + ९ = ३३३९ देव हैं ऐसा कहा है।

१ ब्रह्म = महा सूर्य

३ अग्नि-वायु-सूर्य

३३ उक्त तीन देवोंके साथ दस मिलकर तैंतीस देव

३३३ विश्वेदेवाः

३३३९ विश्वेदेवाः

बादके ३३३ और ३३३९ वे देव भी उन ३३ देवोंके साथ कार्य करनेवाले उपदेव हैं। इस तरह देवोंकी संख्याकी वृद्धि होकर तैंतीस कोटी अथवा तैंतीस करोड देवताएं मानी गयी हैं। कहते हैं कि मानव-शरीरमें तैंतीस करोड अणु जीवमात्राएँ हैं। अणुजीवमात्रा (Cells) यही जीवनका अतिसूक्ष्म पिण्ड है। ये अणुपिण्ड करोडोंकी संख्यामें शरीरमें रहते हैं, प्रत्येक अणुपिण्डमें विश्वके सब लोकलोकान्तरके अंश रहते हैं और वे (स्पेक्ट्रम्) वर्ण विभाजक यन्त्रसे देखे और पहचाने भी जाते हैं। इससे जो विश्वमें है वह पिण्डमें है और जो पिण्डमें है वह विश्वमें है, इस वैदिक सिद्धान्तकी पुष्टी होती है। इसलिए विश्वान्तर्गत तैंतीस देवताएं शरीरमें कहां हैं, इसकी खोज करना अनिवार्य है। विश्वान्तर्गत तैंतीस देवताएं शरीरमें हैं, इसमें संदेह नहीं है, परन्तु सबकी सब कहां रहती हैं, इसका पता वैदिक वाङ्मयसे नहीं लगता है। कुछ थोडे देवोंके विषयमें ऐतरेयोपनिषद्‌में कहा है—

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत्,
वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्,
आदित्यश्चक्षुर्भूत्वा अक्षिणी प्राविशत्,
दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्,
ओषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशन्,
चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशत्,
मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशत्,
आपः रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्।

(ऐ. उ. २।५)

कौनसा देव मानव शरीरमें अथवा प्राणि शरीरमें आकर कहां रहा है, इसका वर्णन यहां किया है, इस वर्णनसे निम्न लिखित तालिका बनती है—

विश्वान्तर्गत- **देवता**	शरीरान्तर्गत- **देवतांश**	शरीरमें- **स्थान**
अग्नि	वाक्	मुख
वायु	प्राण	नासिका
आदित्य	चक्षु	नेत्र
दिशा	श्रोत्र	कर्ण
औषधि	केश	त्वचा
चन्द्रमा	मन	हृदय
मृत्यु	अपान	नाभि
आप्	रेत	शिश्न

इस तरह यह तालिका बनी है। वेदके मंत्रोंमें भी यह विषय है—

संसिचो नाम ते देवा ये संभारान् समभरन् ।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १३ ॥
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १८ ॥
रेतः कृत्वाऽऽज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ २९ ॥
या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशत् शरीरेऽधि प्रजापतिः ॥ ३० ॥
सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे ।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ॥ ३१ ॥
तस्माद्वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन्देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥ ३२ ॥
(अथर्व. ११।८)

' जो देव शरीर बनानेका संभार इकट्ठा करते हैं, वे संसिच नामक देव मर्त्य देहकी सब सामग्री यथा स्थान इकट्ठी करके मानव देहमें घुस गये हैं । इस मर्त्य गृहको बना कर सब देव पुरुषमें प्रविष्ठ हुए हैं । रेतका घी बनाकर ये देव पुरुषमें प्रविष्ट हुए हैं। आप्, विराट् ,अन्य देवता ब्रह्मके साथ शरीरमें प्रविष्ट हुए हैं । शरीर पर प्रजापति अधिष्ठाता हुआ है । सूर्य चक्षु हुआ, वायु प्राण हुआ, और ये मनुष्यके शरीरमें विभक्त भावसे रहे हैं । इससे भिन्न अन्य अवयव अन्य देव बने हैं । इसलिये ज्ञानी इस पुरुषको ब्रह्म कहते हैं । सब देवताएं, गौवें गोशालामें रहनेके समान, इस शरीरमें रहती हैं ।'

यहां स्पष्ट कहा है कि, गौवें गोशालामें रहनेके समान सब देवताएं इस शरीरमें रहती हैं, ' **सर्वाः देवताः** ' का अर्थ ये तैंतीस देवता ही हैं । देखिये—

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अंगे सर्वे समाहिताः ॥ १३ ॥
यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अंगे गात्रा विभेजिरे ॥ २७ ॥

' इसके शरीरमें तैंतीस देव शरीरके सब अवयवोंमें समाहित हुए हैं । इसके शरीरके सब गात्रोंमें ये तैंतीस देव विभक्त होकर रहे हैं । ' इस तरह शरीरमें तैंतीस देव अवयव बनकर रहे ऐसा वर्णन है । इस वर्णनमें तैंतीस देवता शरीरके गात्रोंमें रहनेका वर्णन स्पष्ट है । मन्त्रमें इस विषयका जो अधिक वर्णन मिलता है वह ऐसा है—

यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन् अध्याहिता ।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातास्तिष्ठन्त्यार्पिताः ॥ १२ ॥
यत्र अमृतं च मृत्युश्च पुरुषेऽधि समाहिते ।
समुद्रो यस्य नाड्यः पुरुषेऽधि समाहिताः ॥ १५ ॥
यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः ॥ २२ ॥
यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानम्० ॥ ३२ ॥
यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यम्० ॥ ३३ ॥
यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरंगिरसोऽभवन् ॥
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीः० ॥ ३४ ॥ (अथर्व. १०।७)

' जिसमें भूमि–अन्तरिक्ष–द्यु ये तीन लोक हैं । जिसमें अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, वायु ये देव रहते हैं, जहां अमृत और मृत्यु हैं । नदियां नाडीरूपसे जहां रहती हैं । जहां वसु, रुद्र और आदित्य रहे हैं, द्युलोक सिर है, अन्तरिक्ष पेट है और भूमि जिसके पांव हुए हैं । सूर्य चक्षु, चन्द्रमा मन और अग्नि मुख बना है । वायु प्राण और अपान, चक्षु अंगिरस और दिशायें ज्ञान साधन कर्ण यहां बने हैं । '

यह वर्णन परमात्माके विश्वशरीरका और जीवशरीरका समानतया वर्णन है । परमात्माका शरीर विश्व है और जीवका शरीर यह पिण्ड शरीर है, पर दोनों जगह ये तैंतीस देव हैं । परमात्म शरीरमें पूर्ण रूपसे और जीवशरीरमें अंश रूपसे ये देवताएँ रहती हैं । इनका मन्त्रोक्त वर्णन और देखिये—

दश साकं अजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ॥ ३ ॥
प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रं अक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ्मनस्ते वा आकूतिं आवहन् ॥ ४
इन्द्रादिन्द्रः सोमात्सोमो अग्नेरग्निरजायत ।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताऽजायत ॥ ९ ॥
ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ॥ १०
(अथर्व. ११।८)

दस देवोंसे दस देव–पुत्र उत्पन्न हुए । प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र, अक्षिति, क्षिति, व्यान, उदान, वाणी, मन ऐसे वे दस देवपुत्र दस देवोंसे उत्पन्न हुए हैं । इन्द्रसे इन्द्र, सोमसे सोम, अग्निसे अग्नि, त्वष्टासे त्वष्टा, और धातासे धाता ये पुत्र हुए हैं। ये दस देवपुत्र बडे देवोंसे उत्पन्न हुए हैं । इन पुत्रोंको स्थान देकर वे देव अपने स्थानमें गये ।

पितृस्थानीय देवोंने पुत्ररूपी देवोंको शरीररूपी क्षेत्र निर्माण करके दिया और वे अपने स्थानमें गये । यही इन सभी मंत्रों का अतिस्पष्ट कथन है। तैंतीस देव शरीरमें आकर रहे हैं, ऐसा मंत्रमें कहा भी है, परन्तु गणना करनेके समय आठ देवोंके ही नाम दिये हैं । उपनिषद्में भी ६।७ देवोंके नाम हैं और अन्य

अग्ने ! पत्नीवतः त्रिंशतं त्रींश्च देवान् आवह ॥

(ऋ. ३।६।९)

अग्ने ! गिर्वणः त्रयस्त्रिंशतं आवह ॥

(ऋ. १।४५।२)

अग्निः तीन् एकादशान् यक्षत् ॥

(ऋ. ८।३९।९)

'हे अग्ने ! तैंतीस देवोंको और उनकी पत्नियोंको साथ ले आओ।' इसी तरह अश्विदेव भी तैंतीस देवोंको लाते हैं—

हे अश्विना ! त्रिभिः एकादशैर्देवैः आयातं ॥

(ऋ. १।३४।११)

'हे अश्विदेवो ! तैंतीस देवोंके साथ यहां आओ।' यहां ये अग्नि और अश्विदेव तैंतीस देवोंको अपने साथ लाते और यज्ञमें हविर्भाग लेते हैं। अश्वी अपने रथपर तैंतीस देवोंको रखकर लाते हैं, इसी तरह अग्नि भी अपने रथपर रखकर उन सब देवोंको लाते हैं। इस विषयमें निम्न लिखित मन्त्र भाग देखने योग्य है—

एभिः अग्ने सरथं याहि अर्वाङ् नाना-रथं वा ॥

(ऋ. ३।६।९)

'हे अग्ने ! इन तैंतीस देवोंको अपने रथपर बिठलाकर अथवा नाना रथोंपर बिठलाकर यहां ले आओ।' यह मन्त्र निःसंदेह विचार करने योग्य है। तैंतीस देवोंकी खोजमें यह सहायक होनेवाला है। तीन हजार तीनसौ तीस और नौ देव हैं, ऐसा भी निम्नलिखित मन्त्रमें कहा है—

(गाथिनो विश्वामित्रः। अग्निः। त्रिष्टुप्)

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्। औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥ (ऋ. ३।९।९)

तीन हजार तीनसौ तीस और नौ देव अग्निकी पूजा करते हैं। यहाँ ३३३० + ९ = ३३३९ देव हैं ऐसा कहा है।

१ ब्रह्म = महा सूर्य
३ अग्नि-वायु-सूर्य
३३ उक्त तीन देवोंके साथ दस मिलकर तैंतीस देव
३३३ विश्वेदेवाः
३३३९ विश्वेदेवाः

बादके ३३३ और ३३३९ वे देव भी उन ३३ देवोंके साथ कार्य करनेवाले उपदेव हैं। इस तरह देवोंकी संख्याकी वृद्धि होकर तैंतीस कोटी अथवा तैंतीस करोड देवताएं मानी गयी हैं। कहते हैं कि मानव-शरीरमें तैंतीस करोड अणु जीवमात्राएँ हैं। अणुजीवमात्रा (Cells) यही जीवनका अतिसूक्ष्म पिण्ड है। ये अणुपिण्ड करोडोंकी संख्यामें शरीरमें रहते हैं, प्रत्येक अणुपिण्डमें विश्वके सब लोकलोकान्तरके अंश रहते हैं और वे (स्पेक्ट्रम्) वर्ण विभाजक यन्त्रसे देखे और पहचाने भी जाते हैं। इससे जो विश्वमें है वह पिण्डमें है और जो पिण्डमें है वह विश्वमें है, इस वैदिक सिद्धान्तकी पुष्टी होती है। इसलिए विश्वान्तर्गत तैंतीस देवताएं शरीरमें कहां हैं, इसकी खोज करना अनिवार्य है। विश्वान्तर्गत तैंतीस देवताएं शरीरमें हैं, इसमें संदेह नहीं है, परन्तु सबकी सब कहां रहती हैं, इसका पता वैदिक वाङ्मयसे नहीं लगता है। कुछ थोडे देवोंके विषयमें ऐतरेयोपनिषद्में कहा है—

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत्,
वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्,
आदित्यश्चक्षुर्भूत्वा अक्षिणी प्राविशत्,
दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्,
ओषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशन्,
चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशत्,
मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशत्,
आपः रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्।

(ऐ. उ. २।५)

कौनसा देव मानव शरीरमें अथवा प्राणि शरीरमें आकर कहां रहा है, इसका वर्णन यहां किया है, इस वर्णनसे निम्न लिखित तालिका बनती है—

विश्वान्तर्गत- **देवता**	शरीरान्तर्गत- **देवतांश**	शरीरमें- **स्थान**
अग्नि	वाक्	मुख
वायु	प्राण	नासिका
आदित्य	चक्षु	नेत्र
दिशा	श्रोत्र	कर्ण
औषधि	केश	त्वचा
चन्द्रमा	मन	हृदय
मृत्यु	अपान	नाभि
आप्	रेत	शिश्न

इस तरह यह तालिका बनी है। वेदके मंत्रोंमें भी यह विषय है—

संसिचो नाम ते देवा ये संभारान् समभरन्।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन्॥ १३॥
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन्॥ १८॥
रेतः कृत्वाऽऽज्यं देवाः पुरुषमाविशन्॥ २९॥
या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह।
शरीरं ब्रह्म प्राविशत् शरीरेऽधि प्रजापतिः॥ ३०॥
सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये॥ ३१॥
तस्माद्वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते।
सर्वा ह्यस्मिन्देवता गावो गोष्ठ इवासते॥ ३२॥
(अथर्व. ११।८)

'जो देव शरीर बनानेका संभार इकट्ठा करते हैं, वे संसिच नामक देव मर्त्य देहकी सब सामग्री यथा स्थान इकट्ठी करके मानव देहमें घुस गये हैं। इस मर्त्य गृहको बना कर सब देव पुरुषमें प्रविष्ट हुए हैं। रेतका घी बनाकर ये देव पुरुषमें प्रविष्ट हुए हैं। आप्, विराट्,अन्य देवता ब्रह्मके साथ शरीरमें प्रविष्ट हुए हैं। शरीर पर प्रजापति अधिष्ठाता हुआ है। सूर्य चक्षु हुआ, वायु प्राण हुआ, और ये मनुष्यके शरीरमें विभक्त भावसे रहे हैं। इससे भिन्न अन्य अवयव अन्य देव बने हैं। इसलिये ज्ञानी इस पुरुषको ब्रह्म कहते हैं। सब देवताएं, गौवें गोशालामें रहनेके समान, इस शरीरमें रहती हैं।'

यहां स्पष्ट कहा है कि, गौवें गोशालामें रहनेके समान सब देवताएं इस शरीरमें रहती हैं, '**सर्वाः देवताः**' का अर्थ ये तैंतीस देवता ही हैं। देखिये—

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अंगे सर्वे समाहिताः॥ १३॥
यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अंगे गात्रा विभेजिरे॥ २७॥

'इसके शरीरमें तैंतीस देव शरीरके सब अवयवोंमें समाहित हुए हैं। इसके शरीरके सब गात्रोंमें ये तैंतीस देव विभक्त होकर रहे हैं।' इस तरह शरीरमें तैंतीस देव अवयव बनकर रहे ऐसा वर्णन है। इस वर्णनमे तैंतीस देवता शरीरके गात्रोंमें रहनेका वर्णन स्पष्ट है। मन्त्रमें इस विषयका जो अधिक वर्णन मिलता है वह ऐसा है—

यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन् अध्याहिता।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातास्तिष्ठन्त्यार्पिताः॥ १२॥
यत्र अमृतं च मृत्युश्च पुरुषेऽधि समाहिते।
समुद्रो यस्य नाड्यः पुरुषेऽधि समाहिताः॥ १५॥
यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः॥ २२॥
यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानम्०॥ ३२॥
यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
अग्निं यश्चक्र आस्यम्०॥ ३३॥
यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरंगिरसोऽभवन्॥
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीः०॥ ३४॥ (अथर्व. १०।७)

'जिसमें भूमि–अन्तरिक्ष–द्यु ये तीन लोक हैं। जिसमें अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, वायु ये देव रहते हैं, जहां अमृत और मृत्यु हैं। नदियां नाडीरूपसे जहां रहती हैं। जहां वसु, रुद्र और आदित्य रहे हैं, द्युलोक सिर है, अन्तरिक्ष पेट है और भूमि जिसके पांव हुए हैं। सूर्य चक्षु, चन्द्रमा मन और अग्नि मुख बना है। वायु प्राण और अपान, चक्षु अंगिरस और दिशायें ज्ञान साधन कर्ण यहां बने हैं।'

यह वर्णन परमात्माके विश्वशरीरका और जीवशरीरका समानतया वर्णन है। परमात्माका शरीर विश्व है और जीवका शरीर यह पिण्ड शरीर है, पर दोनों जगह ये तैंतीस देव हैं। परमात्म शरीरमें पूर्ण रूपसे और जीवशरीरमें अंश रूपसे ये देवताएँ रहती हैं। इनका मन्त्रोक्त वर्णन और देखिये—

दश साकं अजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा॥ ३॥
प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रं अक्षितिश्च क्षितिश्च या।
व्यानोदानौ वाङ्मनस्ते वा आकूतिं आवहन्॥ ४
इन्द्रादिन्द्रः सोमात्सोमो अग्नेरग्निरजायत।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताऽजायत॥ ९॥
ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्वा कस्मिंस्ते लोक आसते॥ १०
(अथर्व. ११।८)

दस देवोंसे दस देव–पुत्र उत्पन्न हुए। प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र, अक्षिति, क्षिति, व्यान, उदान, वाणी, मन ऐसे वे दस देवपुत्र दस देवोंसे उत्पन्न हुए हैं। इन्द्रसे इन्द्र, सोमसे सोम, अग्निसे अग्नि, त्वष्टासे त्वष्टा, और धातासे धाता ये पुत्र हुए हैं। ये दस देवपुत्र बडे देवोंसे उत्पन्न हुए हैं। इन पुत्रोंको स्थान देकर वे देव अपने स्थानमें गये।

पितृस्थानीय देवोंने पुत्ररूपी देवोंको शरीररूपी क्षेत्र निर्माण करके दिया और वे अपने स्थानमें गये। यही इन सभी मंत्रों का अतिस्पष्ट कथन है। तैंतीस देव शरीरमें आकर रहे हैं, ऐसा मंत्रमें कहा भी है, परन्तु गणना करनेके समय आठ देवोंके ही नाम दिये हैं। उपनिषद्में भी ६।७ देवोंके नाम हैं और अन्य

वेद मंत्रोंमें भी ८।१० देवोंके नाम गिनाये हैं। अन्य देवोंके नाम और स्थान नहीं लिखे, इसलिये अन्य देवोंके अंश शरीरमें नहीं आये, ऐसा नहीं माना जा सकता; क्योंकि तैंतीस देवोंका निवास शरीरमें हुआ है ऐसा स्पष्ट कथन पूर्वोक्त मंत्रोंमें है, इतना ही नहीं, परन्तु त्रिलोकी अंश रूपसे शरीरमें रहती है ऐसा भी ऊपरके मंत्रोंमें कहा है। जब पूर्ण रूपसे त्रिलोकीका अंश शरीरमें आया है, तब तो उस त्रिलोकीके सभी देव शरीरमें आगये हैं, इसमें संदेह नहीं रह सकता। परन्तु सब तैंतीस देवोंके नाम और स्थान शरीरमें कहां और कैसे हैं, यह वैदिक वाङ्मयमें किसी स्थानमें लिखा नहीं मिलता। इसकी खोज होना अत्यंत आवश्यक है। अब ऊपरके मंत्रोंके आधारसे शरीरमें जो देवोंके स्थान निश्चित हुए वे ये हैं, उनकी तालिका इस तरह बनती है—

विश्वमें देवता	शरीरमें देवता
द्युलोक	सिर
सूर्य, अंगिरस	नेत्र
आदित्य	नेत्र
अग्नि	मुख
दिशा	कान
अन्तरिक्षलोक	उदर, पेट
चन्द्रमा	मन
रुद्र, वायु	प्राण अपान
विद्युत्	जाठर अग्नि
नदियां	नाडियां
वृक्ष	केश
वसु, अग्नि	उष्णता
पृथ्वी	पांव

इस तरह यह तालिका तैंतीस देवताएं विश्वमें और उनके पुत्र रूप देव शरीरमें कैसे कहां हैं, इस संबन्धका ज्ञान देनेके लिये विशुद्ध रूपसे तैयार करनी चाहिये। बडे प्रयत्नसे यह साध्य हो सकती है, क्योंकि वैदिक साहित्यमें इसका संपूर्ण वर्णन कहीं भी नहीं है। थोडे देवताओंका वर्णन वेदमन्त्रों और उपनिषदोंमें है, वैदिक समयमें गुरु अपने शिष्यको यह देवविद्या पढाता होगा, इस लिये उस समय थोडेसे संकेत मात्र उल्लेख जो इस समय वेदमन्त्रों और उपनिषदोंमें आये हैं, उतने पर्याप्त होते होंगे। परन्तु अब यह गुप्तविद्या बतानेवाला कोई गुरु नहीं रहा है, इसलिये विशेष खोजपूर्वक यह ज्ञान तालिका बद्ध करके रखना चाहिये।

शरीरमें देवताओंका स्थान

मनुष्यके पृष्ठवंशमें हड्डियोंकी माला है। इनमें दो हड्डियोंके टुकडोंका जो संधि है, वहां मज्जाकी ग्रंथी है। सिरसे लेकर गुदातक ये मज्जा केन्द्र ३३ हैं। इनमें गुदाके पासके ६।७ अलग अलग नहीं हैं, परन्तु अन्य मज्जाग्रंथियाँ पृथक् पृथक् हैं और मानसिक ध्यान द्वारा प्रत्येक ग्रंथीको उत्तेजित किया जा सकता है।

योग साधनमें इनमेंसे आठ चक्र योगानुष्ठानके लिये लिये हैं। योगी लोग ध्यानसे देवताकी उपासना इन चक्रोंमें करते हैं और ग्रंथियोंको उत्तेजित करते हैं। ये ग्रंथियाँ उत्तेजित होनेसे उनमेंसे विशेष रस निकलता है, यह रस शरीरमें शोषित होनेसे दीर्घ जीवन, आरोग्य, बल, वीर्य, ज्ञानवर्धन आदि लाभ होते हैं। इसी तरह अन्य मज्जा केन्द्रोंमें जो देवतांश रहते हैं, उनके ज्ञानसे और ध्यानसे मनुष्यका लाभ होना संभव है। पाचन शक्तिका प्रदीप्त होना, रुधिराभिसरण ठीक होना, विचार और स्मरणकी शक्तिका विकास, ब्रह्मचर्यका साधन, ऊर्ध्वरेता बनना, जीवन दीर्घ होना, मृत्युको दूर रखना, नीरोग रहना आदि अनेक लाभ इससे होनेकी संभावना है।

पृष्ठवंशके इन केन्द्रोंके विशेष मालिश करनेसे भी लाभ होते हैं। इस विद्याका नाम ' किरोपॉक्ट्रिक चिकित्सा ' है। पर यह विद्या तब साध्य होगी जब प्रत्येक मज्जा केन्द्रकी शक्तिका अर्थात् देवताका यथावत् ज्ञान होगा। इसलिये इन ३३ देवताओंके ३३ केन्द्रोंका शरीरमें स्थान, कार्य और देवतासंबन्ध जानना अत्यंत आवश्यक है।

इस ज्ञानसे व्यक्तिका हित है और वैदिक मंत्रोंसे जो अध्यात्मका अनुभव लेना है, वह इसी अनुष्ठानसे हो सकता है। अर्थात् अध्यात्म ज्ञान केवल गप्पें मारनेसे नहीं हो सकता, परन्तु विश्वव्यापक परम पिता परमात्माके अंशसे जो यह जीव अमृतपुत्र हुआ है, उसमें पितृतुल्य सब शक्तियाँ हैं, उनको जानना, देखना और उनका उपयोग करके अपनी शक्तिका विकास करना चाहिये। यही अनुष्ठान है। योगी लोग यह करते ही हैं। वही अन्योंको पूर्णरूपसे करना चाहिये। अध्यात्मज्ञानका प्रत्यक्ष फल यही है।

शरीरमें सिरका भाग द्युलोक है, छाती और पेट अन्तरिक्षलोक है, और गुदा मूत्राशयसे नीचेका सब भाग भूलोक है। इन तीन लोकोंमेंसे प्रत्येकमें एक एक देवता मुख्य है और उसके साथ दस देवतायें सहायक हैं। इनका स्थान पृष्ठवंशके

मज्जाकेन्द्र हैं। इन केन्द्रोंके अधीन शरीरके सब व्यापार हैं। इसलिये प्रत्येक देवता, उसका अंश शरीरमें कहां रहता है, कहां कहां उसका क्या कार्य चल रहा है, उसको स्वाधीन कैसा करना चाहिये, उत्तेजित कैसा करना चाहिये, उत्तेजनासे और स्वाधीनतासे कौनसे लाभ होते हैं, इत्यादि सब ज्ञान इस देवविद्यासे जाना जाता है। योगमें जो गुप्त विद्या है वह यही विद्या है। यह विद्या गुप्त रखते रखते अब लुप्त ही हुई, उसकी खोज करना आजके खोजकर्ताओंका कार्य है।

तैंतीस देवताओंका ज्ञान और स्थान अपने शरीरमें जानना चाहिये। यही अध्यात्मविद्या है और यही योगसाधनका भाग है। योगी लोग आज भी आठ मज्जाकेन्द्रों और वहांके आठ देवताओंको जानते और उनका अनुष्ठान ध्यानद्वारा करके लाभ उठाते हैं। पर इसको वे अतिगुप्त रखते हैं। हमें उसकी शास्त्रीयतासे पूर्णरूपसे खोज करनी चाहिये।

तैंतीस देवताओंका ज्ञान वैद्योंको भी होना चाहिये। पर वह बाहरके विश्वव्यापी देवताओंका ज्ञान है। इस ज्ञानसे ही उनकी चिकित्सा होती है। आजकल मृत्तिकाचिकित्सा, जलचिकित्सा, अग्निचिकित्सा, सूर्यकिरण-चिकित्सा, विद्युच्चिकित्सा, औषधिचिकित्सा आदि अनेक चिकित्साएँ प्रचलित हैं। ये सब चिकित्साएँ देवताओंके यथार्थ ज्ञानसे और उपयोगसे होती हैं।

इससे ज्ञात हुआ कि योगी अपने अन्दर ३३ देवताओंका अनुभव करता है और उनको उत्तेजित करके अन्दरही अन्दरसे विशिष्ट ग्रंथिरसोंको प्राप्त करके नीरोग बनकर दीर्घायु होता है। इसी तरह वैद्य इनही देवताओंके गुणधर्म जानकर उनसे नाना प्रकारकी चिकित्साएँ करके अपने रोगियोंके रोग दूर करके उनको अपमृत्युसे बचाकर दीर्घायु बनाता है।

याजक लोक अग्नि सिद्ध करके उसमें विशिष्ट औषधियोंके हवन द्वारा इन ही तैंतीस देवताकी प्रसन्नता प्राप्त करके भूमि-जल-वायुकी शुद्धिके द्वारा नीरोगताका साधन करके जनताका हित करते हैं। इस तरह ये सब इन तैंतीस देवोंके साथ अपना सम्बन्ध जोड रहे हैं और लाभ भी उठा रहे है। तैंतीस देवोंकी यही वेदविद्या है। आज यह पूर्ण रूपसे हमारे हस्तगत नहीं है, पर इस ढगसे प्रयत्न करनेपर यह कभी न कभी हस्तगत हो सकती है।

इसलिए ये तैंतीस देव विश्वमें कौनसे और कहां हैं, वे मानव शरीरमें या प्राणीके शरीरमें कहां हैं और यज्ञमें उनका सम्बन्ध क्या है इसका पता लगाना चाहिये।

विश्वेदेव कितने हैं?

अब हम इस बातका विचार करते हैं कि विश्वेदेवा देवताके अन्दर जो मन्त्र समाविष्ट हुए हैं उनमें कितने देवोंका अन्तर्भाव हुआ है और जिन यजुर्वेदके अध्यायोंमें नाना देवताओंके उद्देश्यसे हविर्भाग देनेका वर्णन है, उनमें कितनी देवताएँ लिखी हैं। इनका प्रथम प्रकरणशः विचार करेंगे। प्रथम निघण्टुके पञ्चम अध्यायमें पृथ्वी स्थानीय देवताएं ५२, अन्तरिक्ष स्थानीय देवताएं ६८ और द्युस्थानीय देवताएं ३१ इस तरह १५१ देवतायें लिखी हैं, उनके स्थानानुकूल भाव ये हैं—

पृथ्वी स्थानीय ५२ देवतायें

(निघण्टु ५।१)

१ **अग्निः** = जो हवनके लिये तथा पकानेके लिये जलाया जाता है।

२ **जातवेदाः** = जिससे वेद प्रकट हुए वह यज्ञाग्नि।

३ **वैश्वानरः** = सब मानवोंको यज्ञमार्गपर चलानेवाला अग्नि।

(निघण्टु ५।२)

४ **द्रविणोदाः** = धन देनेवाला यज्ञाग्नि

५ **इध्मः** = समिधाओंसे प्रदीप्त होनेवाला

६ **तनू-न-पात्** = शरीरको न गिरानेवाला, (तनू-नपात्) सूर्यरूपी शरीरका पुत्र विद्युत्, उसका पुत्र अग्नि, सूर्यका पोता, गौका पोता घी, (गौ-दूध-घी), घी

७ **नराशंसः** = मनुष्यों द्वारा प्रशंसित यज्ञाग्नि

८ **इळः** = (इडः) स्तुत्य अग्नि

९ **बर्हिः** = दर्भ, आसन

१० **द्वारः** = द्वार, यज्ञशालाके द्वार

११ **उषासानक्ता** = उषःकाल और रात्रीका समय

१२ **दैव्याहोतारा** = अग्नि और वायु, दिव्य होता

१३ **तिस्रो देवीः** = भारती, इळा, सरस्वती ये तीन देवियाँ

१४ **त्वष्टा** = बढई, विश्वरचनाका कार्य करनेवाला

१५ **वनस्पतिः** = वनस्पति, यूप, समिधा, लकडी

१६ **स्वाहाकृतयः** = स्वाहाकारपूर्वक आहुति देना।

(निघण्टु ५।३)

१७ **अश्वः** = घोडा

१८ **शकुनिः** = पक्षी, कपिंजल

१९ मण्डूकाः = मेंढक, जलजन्तु
२० अक्षाः = पासे (खेलनेके)
२१ ग्रावाणः = सोम कूटनेके पत्थर
२२ नराशंसः = वीरोंकी, नरोंकी जिसमें प्रशंसा की जाती है वह यज्ञ
२३ रथः = रथ, गाडी, वाहन
२४ दुन्दुभिः = ढोल, चर्मवाद्य
२५ इषुधिः = तर्कस, बाणोंकी थैली
२६ हस्तघ्नः = दस्ताना
२७ अभीशवः = लगाम
२८ धनुः = धनुष्य
२९ ज्या = धनुष्यकी डोरी
३० इषुः = बाण
३१ अश्वाजनी = चाबूक
३२ उलूखलं = उखली
३३ वृषभः = बैल, (गायका भी उपलक्षण)
३४ द्रुघणः = काष्ठकी गदा, घन
३५ पितुः = अन्न
३६ नद्यः = नदियां
३७ आपः = जल
३८ ओषधयः = औषधियां
३९ रात्रिः = रात्री
४० अरण्यानी = वनश्री, अरण्य
४१ श्रद्धा = श्रद्धा
४२ पृथिवी = भूमि
४३ अप्वा = भय, रोग, दुःख
४४ अग्नायी = अग्निकी ज्वाला
४५ उलूखलमुसले = उखली और मुसली
४६ हविर्धाने = हवि और उसका पात्र, छाज
४७ द्यावापृथिवी = द्यु और पृथिवी
४८ विपाट्-शुतुद्री = इस नामकी दो नदियां
४९ आर्त्नी = धनुष्यकी दोनों कोटियां, दो नोकें
५० शुनासीरौ = हल और हलसे खींची जानेवाली नाली, रेखा
५१ देवी जोष्ट्री = सुख देनेवाली देवता
५२ देवी ऊर्जाहुती = बल देनेवाली आहुति देवता।

अन्तरिक्ष स्थानीय ६८ देवताएं

(निघण्टु ५।४)

१ वायुः = वायु
२ वरुणः = वरुण, जलदेव
३ रुद्रः = गर्जना करनेवाला विद्युद्देव
४ इन्द्रः = विद्युद्देव
५ पर्जन्यः = मेघ, वृष्टी
६ बृहस्पतिः = बडा पालक मेघ
७ ब्रह्मणस्पतिः = बडा पालक मेघ
८ क्षेत्रस्य पतिः = खेतका पालक, मेघ
९ वास्तोष्पतिः = घरका पालक, मेघ
१० वाचस्पतिः = वाणीका रक्षक, मेघ
११ अपां न पात् = जलोंको न गिरानेवाला
१२ यमः = वायु
१३ मित्रः = वायु, प्राणवायु, मेघ
१४ कः = सुखदायी, वायु, मेघ, जल
१५ सरस्वान् = बहनेवाला वायु, मेघ
१६ विश्वकर्मा = सब कर्म करने करानेवाला, वायु
१७ तार्क्ष्यः = पक्षीके समान संचार करनेवाला वायु
१८ मन्युः = क्रोध, उत्साह बढानेवाला वायु, उत्साह
१९ दधिक्रा = वायु, मेघ
२० सविता = प्रेरक वायु
२१ त्वष्टा = सुखानेवाला, वायु
२२ वातः = वायु, गन्ध लानेवाला वायु
२३ अग्निः = विद्युत्का अग्नि
२४ वेनः = प्रकाश, किरण समूह
२५ असुनीतिः = प्राणवायु
२६ ऋतः = जल, जलभरा मेघ
२७ इन्दुः = चन्द्रमा, सोम, पर्वतपर उगनेवाला सोम
२८ प्रजापतिः = पर्जन्य, वायु
२९ अहिः = मेघ, जो बढता रहता है वह मेघ
३० अहिर्बुध्न्यः = मेघ, सूक्ष्म भापवाला मेघ
३१ सुपर्णः = किरण जिसपर पडे ऐसा मेघ
३२ पुरूरवा = गर्जनेवाला मेघ

(निघण्टु ५।५)

३३ श्येनः = पक्षी
३४ सोमः = सोमवल्ली

३५ चन्द्रमाः = चन्द्र
३६ मृत्युः = मारनेवाला, काल
३७ विश्वानरः = विश्वका नेता, वायु
३८ धाता = धारक वायु
३९ विधाता = धारक वायु
४० मरुतः = मरने तक प्राणरूप से कार्य करनेवाला वायु
४१ रुद्राः = प्राणवायु
४२ ऋभवः = कारीगर, वायु
४३ अङ्गिरसः = अंगोंमें कार्य करनेवाला रस, संचालक व्यान वायु
४४ पितरः = पितर
४५ अथर्वाणः = स्थिरता रखनेवाला प्राण पितर
४६ भृगवः = भृगु, प्राण
४७ आप्त्याः = प्राप्तव्य, प्राण
४८ अदितिः = उषा
४९ सरमा = मेघगर्जना, वाणी
५० सरस्वती = स्रोत, झरना
५१ वाक् = वाणी, मेघगर्जना
५२ अनुमती = चतुर्दशी युक्त पूर्णिमा, एक कला जिसमें कम है ऐसी पूर्णिमा
५३ राका = पूर्णिमा, पूर्णचन्द्रमा युक्त
५४ सिनीवाली = चतुर्दशी युक्त अमावास्या, इस दिन थोडासा चन्द्रमा दीखता है
५५ कुहूः = जिस अमावास्यामें चन्द्रमा नहीं दीखता
५६ यमी = रात्री
५७ उर्वशी = विद्युत्, रात्री
५८ पृथिवी = विस्तृत रात्री
५९ इन्द्राणी = विद्युत्प्रभा
६० गौरी = बिजलीकी श्वेत रोशनी
६१ गौः = जल देनेवाली मेघपंक्ति
६२ धेनुः = जल देनेवाली मेघपंक्ति
६३ अघ्न्या = जल देनेवाली मेघपंक्ति
६४ पथ्या = अन्तरिक्ष, अवकाश, मार्ग देनेवाला अवकाश
६५ स्वस्ति = रहनेका उत्तम स्थान, कल्याण
६६ उषाः = उषःकाल
६७ इळा = जल वृष्टी, अन्न उत्पन्न करनेवाली वृष्टी
६८ रोदसी = गर्जना करनेवाली विद्युत्।

*

द्युस्थानीय ३१ देवताएँ

(निघण्टु ५।६)

१ अश्विनौ = आधीरात्रीके पश्चात् आकाशमें उदय होनेवाले दो नक्षत्र
२ उषाः = उषःकाल
३ सूर्यः = सूर्य, प्रभा
४ वृषाकपायी = बलवान् जलशोषक सूर्य
५ सरण्यू = त्वष्टृपत्नी, विद्युत्प्रभा
६ त्वष्टा = त्वष्टा, विद्युत्, सूक्ष्म करनेवाला
७ सविता = उदयके पूर्वका सूर्य जिसका सूक्ष्म अंश क्षितिजपर दीख रहा है
८ भगः = अर्धोदित सूर्य
९ सूर्यः = पूर्णोदित सूर्य
१० पूषा = किरणोंसे पुष्ट हुआ एक प्रकारका सूर्य
११ विष्णुः = सूर्य (पूर्ण प्रकाशित)
१२ विश्वानरः = तीसरे प्रहरका सूर्य
१३ वरुणः = चतुर्थ प्रहरका सूर्य
१४ केशी = क्षितिजपर पहुंचा हुआ किरणोंवाला सूर्य
१५ केशिनः = अस्त होनेवाला किरणमात्रावशिष्ट सूर्य
१६ वृषाकपिः = अस्त हुआ सूर्य
१७ यमः = अस्तंगत सूर्य
१८ अजएकपात् = जिसका एक ही किरण दीखता हो ऐसा सूर्य
१९ पृथिवी = बडा व्यापक द्युलोक
२० समुद्रः = नीला आकाश, जो समुद्र जैसा दीखता है
२१ दध्यङ् = मेघाच्छादित आकाश जिससे किंचित् वृष्टी होती हो
२२ अथर्वा = शान्त आकाश, अचल सूर्य
२३ मनुः = सूर्य (जिसकी ग्रहमाला एक रेषामें आगयी हो) जो मन्वंतर करता है
२४ आदित्याः = सूर्य किरण
२५ सप्त ऋषयः = सूर्यके सात किरण, सात नक्षत्र (सप्तर्षि)
२६ देवाः = नक्षत्र, ग्रह, किरण
२७ विश्वेदेवाः = सब देव, किरण
२८ साध्याः = सूर्यरश्मी, किरण

२९ वसवः = सूर्यरश्मी, किरण

३० वाजिनः = सूर्यरश्मी, किरण

३१ देवपत्न्यः = देवोंकी दीप्तियाँ, शक्तियाँ।

इस तरह पृथ्वी स्थानमें ५२ + अन्तरिक्ष स्थानमें ६८ + और द्युस्थानमें ३१ मिलकर १५१ देवताएं निघण्टुमें गिनी हैं। इनमें कुछ पुनरुक्त हैं, परन्तु उनका अर्थ स्थानभेदसे पृथक् करके बोध लेना उचित है।

द्वादश आदित्य

इस स्थानपर निघण्टु ५।६ में दिये द्युस्थानीय देवताओंके नाम ३१ दिये हैं। इनमें बारह आदित्योंके नाम हैं।

त्वष्टा, सविता, भग, सूर्य, पूषा, विष्णु, विश्वानर, वरुण, केशी (केशिनः), वृषाकपि, यम, अज-एकपात्।

ये द्वादश आदित्योंके नाम हैं। '**केशी**' और '**केशिनः**' ये दो नाम किरणोंकी न्यूनता और अधिकतासे हैं, इसलिये ये एकके ही मानना योग्य है।

द्वादश आदित्य ये सूर्य उदयसे सूर्य अस्त होने तकके सूर्यके हैं, तथा सूर्यास्तके पश्चात् भी जो प्रकाश रहता है उसका इनमें अन्तर्भाव हुआ है, ऐसा इनके अर्थोंसे प्रतीत होता है।

शतपथ ब्राह्मणमें कहा है कि, द्वादश आदित्य वर्षके १२ महिने हैं। शतपथका यह अर्थ लेनेसे ये पद प्रतिदिनके सूर्यके मानना असंभव होता है। अतः यदि इन पदोंके ये अर्थ रखते हुए इनके साथ १२ महिनोंकी संगति लगानी है, तब तो हमें उत्तरीय ध्रुवके पास ही जाकर वहां इन द्वादश आदित्योंका साक्षात्कार करना होगा। क्योंकि वहीं एक एक महिनेतक एक एक आदित्यकी स्थिति रहती है।

अर्थात् उषा एक महिना रहती है यह पाठक 'उषा देवता' की भूमिकामें देख सकते हैं, उसके पश्चात् सूर्यके कुछ किरण दीखनेकी दशा करीब एक मास तक रह सकती है। इसी तरह बारहों आदित्य प्रत्येक एक एक मास रहकर एक वर्षकी पूर्ति करते हैं। यह स्थिति भूमंडलपर किसी भी अन्य स्थानमें नहीं है। अतः यदि बारह आदित्य बारह महिनोंके दर्शक हैं, तब तो यह स्थिति उत्तरीय ध्रुवके समीपकी ही है। हमारे यहां ये बारह आदित्य एक ही दिनमें अपना साक्षात् दर्शन देते हैं। हमारे एक दिनकी आदित्यकी बारह प्रकारकी अवस्थाएं उत्तरीय ध्रुवके पास ३६५ दिनोंमें दीखती हैं और प्रत्येक स्थितिके लिये करीब करीब एक मास लगता है।

यहां सूर्य उदयसे पुनः सूर्य उदय तक ये १२ आदित्य आते हैं। पर यहां इन आदित्योंका १२ महिनोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। 'यम' नाम उस आदित्यका है जिसमें आदित्यकी अस्तके बादकी स्थिति है। 'यम' पदका अर्थ 'युगल' है। अर्थात् यह स्थिति दो मास रहनी चाहिये क्योंकि 'यम' का अर्थ ही 'दो' है।

उत्तरीय ध्रुवके पास ही पूरे दो महिनोंकी बडी गहरी रात्री होती है जहां बिलकुल सूर्य दर्शन नहीं होता। वस्तुतः वहां छः मास सूर्य दर्शन नहीं होता, परन्तु उन छः महिनोंमें ये दो महिने ऐसे होते हैं कि जिसको गहरी निशा कह सकते हैं, शेष ४ महिनोंमें कुछ न कुछ प्रकाश रहता है अर्थात् यह प्रकाश सूर्यबिंब न दीखते हुए ही आता है।

'यम' पदकी सार्थकता वर्षके उन दो महिनोंके साथ है कि जिनमें सूर्य और प्रकाश बिलकुल नहीं होता। उषाके सूक्तोंमें बडी अंधेरी रात्रीका जो वर्णन दीखता है वह भी यहीं सार्थ होना संभव है।

इस विचारसे यह सिद्ध होता है कि जो शतपथने बारह आदित्योंके साथ बारह महिनोंका सम्बन्ध जोड दिया है वह उत्तरीय ध्रुवके प्रदेशमें प्रतिवर्ष दीखनेवाली स्थिति है। समझ लीजिये कि सूर्य उदय हो रहा है, एक अंश, सूर्यका चौथा भाग क्षितिजपर आगया है तो वह चौथा भाग वैसा का वैसा ही क्षितिजपर एक मास तक दीखता रहेगा। इसका अर्थ बिलकुल उतना ही नहीं अपितु एक मासके बाद एक दो अंश ऊपर चढेगा। यह प्रतिदिन इतना थोडा ऊपर चढेगा कि प्रतिदिन उसके चढनेका पता तक नहीं लगेगा। यहां हमारे देशमें एक घण्टेका उषःकाल रहता है। एक घण्टेमें यहां उषः काल समाप्त होता है और सूर्य ऊपर आने लगता है। उत्तरीय ध्रुवके पास यह उषःकाल एक मास तक रहता है। एक मास उषःकाल होनेके बाद सूर्यका उदय होता है। आगेकी सूर्यकी अवस्थायें भी इसी तरह एक एक मासमें बढती जाती हैं।

इसीलिये सूर्यकी एक अवस्था एक मास रहनेके कारण एक एक आदित्यका नाम एक एक मासको दिया गया और बारह आदित्योंके बारह महिने माने गये।

यहां एक बात ध्यानमें रखनी चाहिये, वह यह कि जैसा हमारे देशमें मध्याहमें सूर्य आकाशके मध्यमें बिलकुल सिरपर आता है वैसा उत्तरीय ध्रुवके प्रदेशमें कभी नहीं आता। आधिकसे अधिक सूर्यका ऊपर चढना वहां उतना ही होता है

जितना हमारे इस प्रदेशमें सवेरेके नौ-दस बजे तक होता है। बस, यही सूर्यकी ऊपर चढनेकी परिसीमा है। यहां तक सूर्य चढ गया तो उसको '**विष्णु**' नाम मिलता है। यह विष्णु एक मास तक रहता है। उसके पश्चात् वह नीचे उतरने लगता है और एक एक मासतक उसको अन्यान्य नाम प्राप्त होते हैं।

इस तरह बारह महिनेके बारह सूर्य 'ठीक एक मास तक एक एक वही सूर्यकी स्थिति' रहनेसे उत्तरीय ध्रुवप्रदेशमें ही दीखते हैं। किसी अन्य स्थानमें सूर्य एक मास तक एक ही स्थितिमें रहता ही नहीं।

कई पुराणोंमें प्रतिमास सूर्यका न्यूनाधिक उष्णता मान मानकर बारह महिनोंके बारह सूर्य माने हैं। पर रात्रीमें सूर्य बिलकुल ही नहीं रहता, इस बातको वे भूल गये दीखते है। उत्तरीय ध्रुवमें रात्री और दिनका कोई भेद ही नहीं है, वहां तो पूरे एक मास तक एक प्रकारका सूर्य अपने इर्द गिर्द प्रदक्षिणा करता हुआ देखनेवालेको दीखता है। दूसरे मासमें उससे न्यून वा अधिक प्रकाशवाला, इस तरह बारह महिने दीखता रहता है। 'यम' संज्ञक युगल महिने पूर्ण अंधेरेके हैं इसीलिये वे युगल कहलाते और वह सूर्यकी ही एक स्थिति मानी गयी है।

दो महिने रात्रीके, उदयपूर्वकी उषाका एक मास और अस्तपूर्वके सायंसमयका एक मास, ऐसे चार महिने सूर्यदर्शन बिलकुल नहीं होता, शेष ८ महिने न्यून वा अधिक सूर्य दर्शन होता है इनमें भी २ मास कम शेष ६ मास सूर्य दर्शन होता है। इसीलिये अदितिके ८ पुत्र कहे हैं। जिन आठ महिनोंमें न्यूनाधिक सूर्य दर्शन या सूर्यप्रकाश होता है, वे ८ आदित्य हैं। बाकी '**मार्तण्ड**' अर्थात् (मृत-अण्ड) जिनमें सूर्य रूप अण्डा मरा पडा रहता है अर्थात् दीखता नहीं।

यह सब ठीक ही उत्तरीय ध्रुवकी प्रत्यक्ष स्थिति है। पाठक इसका अधिक विचार करें।

वाजसनेयी संहिताके ३० वें तथा काण्वसंहिताके ३४ वें अध्यायमें नरमेधके १८४ अर्पण १७३ देवताओंके उद्देश्यसे हैं- (मंत्र ५) १ ब्रह्म, २ क्षत्र, ३ मरुत् ४ तपस्, ५ तमस्, ६ नारक, ७ पाप्मा, ८ आक्रया, ९ काम, १० अतिक्रुष्ट, ११ नृत्त, १२ गीत, १३ धर्म, १४ नरिष्ठा, १५ नर्म, १६ हस, १७ आनंद, १८ प्रमद, १९ मेधा, २० धैर्य, २१ तपस्, २२ माया, २३ रूप, २४ शुभ, २५ शरव्या, २६ हेति, २७ कर्म, २८ दिष्ट, २९ मृत्यु, ३० अन्तक, ३१ नदी, ३२ ऋक्षीका, ३३ पुरुषव्याघ्र, ३४ गंधर्व-अप्सरस्, ३५ प्रयुज्, ३६ सर्प-देव-जन, ३७ अय, ३८ ईर्यता, ३९ पिशाच, ४० यातुधान, ४१ संधि, ४२ गेह, ४३ आर्ती, ४४ निर्ऋति, ४५ आराधि, ४६ निष्कृति, ४७ संज्ञान, ४८ प्रकामोद्य, ४९ वर्ण, ५० बल, ५१ उत्साद, ५२ प्रमुद्, ५३ द्वार, ५४ स्वप्न, ५५ अधर्म, ५६ पवित्र, ५७ प्रज्ञान, ५८ आशिक्षा, ५९ उपशिक्षा, ६० मर्यादा, ६१ अर्म, ६२ जव ६३ पुष्टि, ६४ वीर्य, ६५ तेजस्, ६६ इरा, ६७ कीलाल, ६८ भद्र, ६९ श्रेयस्, ७० आध्यक्ष, ७१ भा, ७२ प्रभा, ७३ ब्रध्नस्य विष्टपं, ७४ वर्षिष्ठं नाकं, ७५ देवलोक, ७६ मनुष्यलोक, ७७ सर्वलोक, ७८ अवऋतिवध, ७९ मेध, ८० प्रकाम, ८१ ऋतिव, ८२ वैरहत्य, ८३ विविक्ति, ८४ औपद्रष्ट्य, ८५ बल, ८६ भूमन्, ८७ प्रिय, ८८ अरिष्टि, ८९ स्वर्ग, ९० वर्षिष्ठ नाक, ९१ मन्यु, ९२ क्रोध, ९३ योग, ९४ शोक, ९५ क्षेम, ९६ उत्कूल-निकूल, ९७ वपु, ९८ शील, ९९ निर्ऋति, १०० यम, १०१ यम, १०२ अथर्वा, १०३ संवत्सर, १०४ परिवत्सर, १०५ इदावत्सर, १०६ इद्वत्सर, १०७ वत्सर, १०८ संवत्सर, १०९ ऋभु, ११० साध्य, १११ सरस्, ११२ उपस्थावरा, ११३ वैशन्ता, ११४ नड्वला, ११५ पार, ११६ अवार, ११७ तीर्थ, ११८ विषम, ११९ स्वन, १२० गुहा, १२१ सानु, १२२ पर्वत, १२३ बीभत्सा, १२४ वर्ण, १२५ तुला, १२६ पश्चादोष, १२७ विश्व भूत, १२८ भूति, १२९ अभूति, १३० आर्ति, १३१ ऋद्धि, १३२ संशर, १३३ अक्षराज, १३४ कृत, १३५ त्रेता, १३६ द्वापर, १३७ आस्कंद, १३८ मृत्यु, १३९ अन्तक, १४० क्षुध, १४१ दुष्कृत, १४२ पाप्मा, १४३ प्रतिश्रुत्क, १४४ घोष, १४५ अन्त, १४६ अनंत, १४७ शब्द, १४८ महस्, १४९ क्रोश, १५० अवस्वर, १५१ वन, १५२ अन्यतोऽरण्य, १५३ नर्म, १५४ हास्य, १५५ यादस्, १५६ महस्, १५७ महस् १५८ महस्, १५९-१६१ नृत्त, १६२ आक्रन्द, १६३ अग्नि, १६४ पृथिवी, १६५ वायु, १६६ अन्तरिक्ष, १६७ द्युलोक, १६८ सूर्य, १६९ नक्षत्र, १७० चन्द्रमाः, १७१ अहः, १७२ रात्री, १७३ प्रजापति।

यद्यपि ये १७३ देवताएं यहां हैं, तथापि इनमें कई पुनरुक्त हैं, अतः उनको पृथक् करनेसे १६० के करीब ये देवतायें होती है। इनमें अन्तिम कुछ थोडी अन्य अन्तरिक्ष आदि स्थानकी हैं, शेष सब पृथ्वीपरकी ही हैं। कुछ कालवाचक हैं, कुछ गुणवाचक हैं, कुछ स्थानवाचक हैं।

वा० यजुर्वेदमें अनेक अध्यायोंमें अनेक देवताओंका उल्लेख है, उनमें अध्याय १८;२२;२४;२५;२९ और ३९ में अनेक देवताएं हैं, पर इनमें बहुतसी देवताएं पूर्वस्थानमें दी हैं। इन

सब देवताओंका यहां पुनः पुनः निर्देश करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

निघण्टुमें कही देवताएं अनेक हैं, उनमें पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युस्थानमें जो ग्यारह ग्यारह देवताएं हैं, वे स्थूल अक्षरोंमें मुद्रित की हैं। तथापि उनमें मतभेदके लिये बडा स्थान है, अतः यहां तक यह ३३ देवताओंका प्रश्न अनिर्णितसा ही आजतक रहा है ऐसा हम यहां कह सकते हैं।

जो तो ८ वसु, ११ रुद्र व १२ आदित्य मिलकर ३१ और इन्द्र और प्रजापति मिलकर ३३ देव शतपथानुसार मानते हैं, वे पृथ्वीपर ११, अन्तरिक्षमें ११ और द्युलोकमें ११ बता नहीं सकते। उनके मतसे अन्तरिक्षमें ११ प्राण माने जायेंगे तो और बारहवां इन्द्र वहां आकर बैठता है और द्युलोकमें उनके मतसे १२ आदित्य मानने पडते हैं और वसु तो केवल आठ ही पृथ्वी पर रह जाते हैं, पर वे भी पृथ्वीपर नहीं हैं, जो वे ८ गिनते हैं। इस तरह इस गिनतीमें तीन स्थानोंमें ग्यारहकी व्यवस्था नहीं होती। अतः जो मन्त्र तीन स्थानोंमें ग्यारह ग्यारह देवताएं हैं, ऐसा कहते हैं, उनकी गिनती कुछ और ही होगी और शतपथकी कुछ और ही है।

हमारे मतसे पृथ्वीपर ११, अन्तरिक्षमें ११ और द्युस्थानमें ११ यह जो गणना वेद मन्त्रोंमें दीखती है वह गणना अभीतक किसी भी वैदिक ग्रंथमें स्पष्टतया नहीं बतायी है। उसकी खोज करनी चाहिये। हमने इस विषयमें बहुत ही खोज की, पर अभीतक उसकी व्यवस्था ठीक तरह समझमें नहीं आयी। अर्थात् यह खोज अधूरी ही रही है। जो सुविज्ञ पाठक वेदकी खोज करते हैं, वे इन ३३ देवताओंके ग्यारह ग्यारह विभागोंकी खोज करें और उनको तीनों विभागोंमें यथास्थान निश्चित करके बतावें। इसी तरह इन तैंतीस देवताओंमें ये सब तीन चार सौ देवताएं किस तरह अन्तर्भूत होती हैं अर्थात् किस एक मुख्य देवताके साथ कितनी देवताएं माननी चाहिये, इसका भी निश्चय होना चाहिये।

यहां एक कठिनता भी है। पूर्वोक्त निघण्टुकी देवताओंमें पृथ्वी देवता पृथ्वी-अन्तरिक्ष-द्यु इन तीनों स्थानोंमें लिखी है। अर्थात् पृथ्वीस्थानको छोडकर अन्य दोनों स्थानोंमें इसका अर्थ **'विस्तृत स्थान'** इतना ही है। इस तरह पुनरुक्त देवता नामोंका निश्चय होना संभव है। वा. यजु. अ. ३० में भी कई देवता नाम पुनरुक्त हैं। संभवतः उन का भी ऐसा ही निर्णय होगा।

यजुर्वेदके कुछ देवता

अब हम यहां यजुर्वेदके कुछ देवताओंके नाम देते हैं— (अ. ९।२०) **आपिः** (प्राप्त करनेवाला), **स्वापिः** (उत्तम रीतिसे प्राप्त करनेवाला), **अपिजः** (पुनः पुनः उत्पन्न होनेवाला), **क्रतुः** (यज्ञ), **वसुः** (निवास हेतु), **अहर्पतिः** (दिनका स्वामी), **मुग्धः** (मोह उत्पन्न करनेवाला), **मुग्धः वैनंशिनः** (मुग्ध होकर नाशको प्राप्त होनेवाला), **विनंशिन आन्त्यायनः** (अन्त्य स्थानमें रहनेवाला विनाशकर्ता), **अन्त्यः भौवनः** (अन्तिम भुवनमें रहनेवाला), **भुवनस्पतिः** (भुवनोंका पति), **अधिपतिः** (मुख्य स्वामी)। ये १२ देवताएं वा. य. अ ९ में हैं।

(अ. २२) बाईसवें अध्यायमें निम्नलिखित देवताएं हैं- (इसमें अग्न्यादि प्रसिद्ध देवताओंको छोडा है इतना पाठक स्मरण रखें)- अपां मोद, हिंकार, हिंकृत, क्रन्दत्, अवक्रन्द, प्रोथत्, प्रप्रोथ, गन्ध, घ्रात, निविष्ट, उपविष्ट, सन्दित, वल्गत्, आसीन, शयान, स्वपत, जाग्रत्, कूजत्, प्रबुद्ध, विजृम्भमाण, विचृत, संहान, उपस्थित, आयन, प्रायण। (अ. २२।७)

यहां **आसीन** (बैठनेवाला), **शयान** (सोनेवाला) इत्यादि पद प्राणियोंकी अवस्थाओंके वाचक हैं, और ये यहाँ देवता वाचक पद हैं यह ध्यानमें रखना योग्य है।

इसी तरह अगली कण्डिकामें निम्नलिखित देवताओंके नाम हैं- यत्, धावत्, उद्राव, उद्रुत, शूकार, शूकृत, निषण्ण, उत्थित, जव, बल, विवर्तमान, विवृत्त, विधून्वान, विधूत, शुश्रूषमाण, शृण्वत, ईक्षमाण, ईक्षित, वीक्षित, निमेष, (अत्ति सः) खानेवाला, (पिबति सः) पीनेवाला, (मूत्रं करोति सः) मूत्र करनेवाला, (कुर्वत्) करनेवाला, कृत। (२२।८)

ये नाम प्राणियोंकी अवस्थाओंके हैं। ये इस अध्यायमें घोडेकी अवस्थाएं करके वर्णन किया है। परन्तु सब प्राणियोंके लिये ये पद लग सकते हैं। ये सब पृथ्वीस्थानीय देवता हैं।

इस तरहकी अन्य देवतायें पाठक इस विभागमें देख सकते हैं।

निघण्टुमें गिनाये देवताओंका उपयोग मंत्रोंमें देखकर भी उनका निर्णय हो सकता है। वह कार्य जिस समय इन मंत्रोंका अर्थ हम करेंगे, उस समय होना संभव है। इस छोटीसी भूमिका में वह नहीं हो सकता।

देवतासम्बन्धी विचार

देव कितने हैं ? वे जड हैं या चेतन ? कहाँ रहते और क्या करते हैं ? इत्यादि प्रश्न वेद-स्वाध्यायीके समक्ष उपस्थित होते और समाधान न होनेपर उस विचारकको व्यग्र करते हैं।

वेदके देवता-सम्बन्धी निर्णयके लिये ही निरुक्तके दैवत-काण्डकी सृष्टि हुई है और निरुक्त-निर्माणके अन्य प्रयोजनोंके साथ देवता-विनिर्णय भी एक प्रयोजन कहा गया है। यथा—

(१) अथाऽपि याज्ञे दैवतेन बहवः प्रदेशा भवन्ति। तदेतेनोपेक्षितव्यम्॥ (निरु. १।६।१७)

और याज्ञ कर्ममें देवतासम्बन्धी बहुतसे भाग होते हैं वे इस निरुक्तशास्त्रसे ही जानने योग्य हैं।

यज्ञ-प्रकरणमें अनेक देव प्रस्तुत होते हैं उनका सम्यक्-ज्ञान निरुक्त-शास्त्रसे ही होता है।

ते चेद्ब्रूयुर्लिङ्गज्ञा अत्र स्म इति। (निरु. १।६।१७)

यदि देवता-ज्ञानके अभिमानी यह कहें कि लिङ्गसे देवताका बोध होता है और हम उन लिङ्गों (चिह्नों, संकेतों) को जानते हैं, फिर निरुक्तकी क्या आवश्यकता ? तो वे सुने—

इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्तीति वायुलिङ्गं चेन्द्रलिङ्गं चाग्नेये मन्त्रे॥ (निरु. १।६।१७)

'इन्द्रं न त्वा' इस अग्निदेवताके मंत्रमें वायु और इन्द्रका भी लिङ्ग पाया जाता है।

अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्वेति तथाऽग्निर्मान्यवे मन्त्रे॥ (निरु. १।६।१७)

'अग्निरिव मन्यो' इस मन्यु-देवताके मंत्रमें अग्निका लिङ्ग पाया जाता है। अतः केवल लिङ्ग-ज्ञान दैवत-ज्ञानका परम साधन नहीं, निरुक्त-ज्ञानकी भी आवश्यकता है।

(२) नैघण्टुकमिदं देवता-नाम, प्राधान्येनेदमिति॥ (निरु. १।६।२०)

निघण्टुमें देवता-नाम दो प्रकारके हैं, **नैघण्टुक** और **प्राधान्य**।

तद्यदन्यदैवते मन्त्रे निपतति, नैघण्टुकं तत्॥ (निरु. १।६।२०)

जो नाम अन्य देवताके मन्त्र में आ पडता है वह नैघण्टुक कहलाता है।

तद्यानि नामानि प्राधान्यस्तुतीनां देवतानां, तद् दैवतमित्याचक्षते। तदुपरिष्टाद् व्याख्यास्यामो नैघण्टुकानि नैगमानीह। (निरु. १।६।२०)

और जो नाम प्राधान्य-स्तुतिवाले देवताओंके हैं उनका नाम दैवत है। उनको हम आगे कहेंगे। यहाँ नैघण्टुक और नैगम नाम कहते हैं, उनकी व्याख्या करते हैं।

उपर्युक्त समग्र वाक्योंसे यह प्रतीत होता है कि निघण्टुशास्त्र में जितने नाम पढे गये हैं वे मुख्यतः देवता-नाम हैं। तथा निघण्टु और निरुक्त हमें देवता निर्णय सम्बन्धमें कुछ न कुछ बता सकते हैं।

देवता-ज्ञान दुरूह है। इस विषयमें निरुक्तकार यास्क कहते हैं—

शाकपूणिः संकल्पयाञ्चक्रे, सर्वा देवता जानामीति। तस्मै देवतोभयलिङ्गा प्रादुर्बभूव। तां न जज्ञे। तां पप्रच्छ, विविदिषाणि त्वेति॥ (निरु. २।२।८)

शाकपूणि आचार्यके मनमें अहंकार उत्पन्न हुआ और उन्होंने विचारा कि **'मैं सब देवताएँ जानता हूँ।'** उनके आगे एक **'उभय-लिङ्ग देवता'** आ खडी हुई। उसको वे नहीं जान सके। उन्होंने उसे पूछा **'मैं तुझे जानना चाहता हूँ।'**

हमें वेदकी देवताओंका विचार करना है क्योंकि वे ही संसारमें कार्य कर रही हैं परन्तु वे शाकपूणि-जैसे नैरुक्ताचार्य के लिये भी दुर्ज्ञेय हैं।

यास्क महर्षिने देवता-सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है, उसका सार यह है- (निरुक्त। दैवत-काण्ड)

अथातो दैवतम्। तद् यानि नामानि प्राधान्यस्तुतीनां देवतानां तद् दैवतमित्याचक्षते॥

अब यहाँसे आगे दैवत प्रकरण चलेगा। जो नाम प्राधान्य स्तुतिवाली देवताओंके हैं उन्हींका एक नाम दैवत है। ऐसा आचार्य लोग कहते हैं। मंत्रोंकी देवताएँ प्रधान और अप्रधान दो प्रकारकी हैं। और वे प्रधान और अप्रधानरूपसे एक मंत्रमें भी स्तुत होती हैं।

सैषा देवतोपपरीक्षा। यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते, तद्दैवतः स मन्त्रो भवति।

वह यह देवता-सम्बन्धी विचार किया जाता है। जिस देवताकी कामनासे प्रेरित होकर ऋषि **(स्तोता)** जिस **देवतामें अपनी अर्थ-सिद्धि चाहता हुआ स्तुतिका**

प्रयोग करता है उस देवतावाला वह मन्त्र होता है।

तात्पर्य यह कि, स्तोता जिस देवताकी स्तुति करता है, स्तुतिवाले मंत्र (वाक्य) की वही देवता होती है। मंत्रोंके विषय देवता कहलाते हैं अतः देवता-भेदसे—

तास्त्रिविधा ऋचः। परोक्षकृताः, प्रत्यक्षकृताः आध्यात्मिक्यश्च।

ये तीन प्रकारकी ऋक् हैं। **परोक्षकृता, प्रत्यक्षकृता, और आध्यात्मिकी।**

तत्र परोक्षकृताः सर्वाभिर्नामविभक्तिभिर्युज्यन्ते प्रथमपुरुषैश्चाख्यातस्य ॥ १ ॥

' इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्याः ' (ऋ. १०।८९।१०)

' इन्द्रमिद् गाथिनो बृहत् ' (ऋ. १।७।१)

परोक्ष रूपसे की हुई स्तुतियें, जिनमें आराध्य देव सम्मुख नहीं होता, नामकी समग्र विभक्तियोंसे युक्त और प्रथम पुरुषकी क्रियामें होती हैं। जैसे ' इन्द्र ही दिव् और इन्द्र ही पृथिवीका शासक है, ' ' हे गायको! इन्द्रको ही बृहत् साम गाओ ' इत्यादि।

अथ प्रत्यक्षकृता मध्यमपुरुषयोगास्त्वमिति चैतेन सर्वनाम्ना।

' त्वमिन्द्र! बलादधि ' (ऋ. १०।१५३।२)

' वि न इन्द्र! मृधो जहि ' (ऋ० १०।१५२।४)

प्रत्यक्षकृता स्तुतियें मध्यमपुरुषमें होती हैं और त्वं, यूयम् आदि सर्वनामसे युक्त। जैसे- 'हे इन्द्र! तू बलसे उत्पन्न हुआ है,' 'हे इन्द्र! तू हमारे शत्रुओंको मार दे' इत्यादि।

अथापि प्रत्यक्षकृताः स्तोतारो भवन्ति, परोक्षकृतानि स्तोतव्यानि ॥

' मा चिदन्यद् वि शंसत ' (ऋ. ८।१।१)

परन्तु कहीं कहीं प्रत्यक्षरूपमें स्तोता प्रस्तुत होते हैं और स्तोतव्य परोक्ष में आ जाते हैं। जैसे 'हे सखा लोगो! इन्द्रसे भिन्नकी प्रशंसा मत करो।'

तात्पर्य यह कि कहीं आप सर्वत्र प्रत्यक्षकृता ऋक्को देवता ही न समझ लें, वे स्तोताओंके लिये भी प्रयुक्त होती हैं।

आध्यात्मिक्यश्च उत्तमपुरुषयोगाः। अहमिति चैतेन सर्वनाम्ना। यथैतदिन्द्रो वैकुण्ठी, लबसूक्तं, वागाम्भृणीयमिति।

आध्यात्मिकी स्तुतियें उत्तमपुरुषमें और अहं (मैं) इस सर्वनामसे युक्त। इनके उदाहरण- इन्द्र, वैकुण्ठ, लब और वागाम्भृणीय सूक्त हैं।

निरुक्तकारने मन्त्रोंका वर्गीकरण करके वेद-वर्णित देवताओंका ज्ञान सरल बना दिया है।

अपि ह्यदेवता देवतावत्स्तूयन्ते, यथाश्वप्रभृतीन्योषधिपर्यन्तानि ॥ ४ ॥

और अदेवताएं भी देवता-सदृश स्तुति प्राप्त करती हैं। जैसे- घोडेसे लेकर ओषधि-पर्यन्त पदार्थ।

अतः देवताविषयक विचार करनेमें, स्तुतिके कारण, इन्हें देवता नहीं मान लेना चाहिये।

माहाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते।

कहीं कहीं ऐश्वर्याधिक्यके कारण एक ही देवता बहुत नाम और कार्यसे स्तुति प्राप्त करती है। अर्थात् एक होने पर भी अनेक नाम और अनेक कार्य उसके बताये जाते हैं वास्तवमें उसका आत्मा (शरीर) अनेक नहीं होता। ऐसे स्थलोंपर नाम और कार्य भिन्न होनेसे उन्हें अनेक देवता नहीं मान लेना चाहिये।

एकस्याऽऽत्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।

कहीं-कहीं एक शरीरवाली देवताके अनेक देव प्रत्यङ्ग बन कर आते हैं। अर्थात् भिन्न होने पर भी शरीरके अङ्ग-समान वर्णित होते हैं।

ऐसे स्थलोंपर एकत्ववादसे देवोंके अनेकत्वमें बाधा नहीं पडती।

तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। **अग्निः** पृथिवीस्थानो, **वायुर्वेन्द्रो** वा अन्तरिक्षस्थानः **सूर्यो** द्युस्थानः॥

तीन ही देवताएँ हैं ऐसा निरुक्त-मतानुयायी मानते हैं। अग्नि पृथिवी स्थानमें, वायु वा इन्द्र अन्तरिक्ष स्थानमें, सूर्य द्यु-स्थानमें।

तासां महाभाग्याद् **एकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि** भवन्ति। अपि वा **कर्म-पृथक्त्वात्**। यथा- **होताऽध्वर्युर्ब्रह्मोद्गाता**- इत्यपि एकस्य सतः।

उन तीनोंके ऐश्वर्यके कारण, एक एक देवताके बहुत नाम होते हैं। अथवा कर्मवैभिन्न्यसे अनेक नाम पडते हैं जैसे एक होने पर भी कार्यभेदसे वही मनुष्य कभी होता, कभी अध्वर्यु और कभी ब्रह्मा या उद्गाता भी कहलाता है।

अथाकारचिन्तनं देवतानाम्।

अब देवताओंके आकारका विचार करेंगे, वे मनुष्यसदृश हैं अथवा मनुष्यसे भिन्न आकारवाली?

पुरुष-विधाः स्युरित्येकम्। **चेतनावद् हि स्तुतयो भवन्ति,** तथाऽभिधानानि।

मनुष्य-सदृश शरीर और ज्ञानवाली हैं ऐसा एक मत है। क्योंकि उनकी स्तुतियाँ चेतन प्राणियोंके समान हैं और नाम भी।

अर्थात् चेतनके जैसे गुण-कर्म होते हैं वैसे इन देवताओंके भी हैं अतः ये भी मनुष्य-सदृश देहवाली हैं ।

अपुरुष-विधाः स्युरित्यपरम् । अपि तु यद् दृश्यते । **अपुरुषविधं** तत् । तद्यथा-अग्निर्वायुरादित्यः पृथिवी चन्द्रमा इति ।

'पुरुष-भिन्न आकारवाली हैं' ऐसा दूसरा मत है । क्योंकि यह जो कुछ दीखता है वह पुरुष (मनुष्य) से भिन्न आकृतिवाला है । जैसे अग्नि, वायु, आदित्य (सूर्य), पृथिवी और चन्द्रमा ।

अपि वा **उभय-विधाः** स्युः । अपि वा पुरुष विधानामेव सतां कर्मात्मान एते स्युः । यथा यज्ञो यजमानस्य ।

अथवा दोनों प्रकारकी हैं । अथवा पुरुष-सदृश मानें तो दूसरी अचेतन देवताओंको चेतन देवताओंका कर्म मान लेंगे। जैसे यज्ञ भी देवता और यजमान भी देवता हों तो यज्ञ यजमानका कर्म माना जाता है । इस प्रकार माननेमें कोई दोष उपस्थित नहीं होगा ।

तिस्र एव देवता इत्युक्तं पुरस्तात् । तासां **भक्तिसाहचर्यं** व्याख्यास्यामः ।

तीन ही देवता हैं ऐसा पहले कह चुके हैं । उनके भक्ति और साहचर्य कहेंगे ।

अथैतान्यग्निभक्तीनि । अयं लोकः, प्रातःसवनं, वसन्तो, गायत्री, त्रिवृत्-स्तोमो, रथन्तर साम । ये च **देवगणाः समाम्नाताः** प्रथमे स्थाने । अग्नायी-पृथिवी-इला इति स्त्रियः । अथाऽस्य कर्म, वहनं च हविषां, आवाहनं च देवतानां, यच्च किंचिद् दार्ष्टि विषयिकं अग्निकर्मैव तत् । अथास्य संस्तविका देवा **इन्द्रः, सोमो, वरुणः, पर्जन्यः, ऋतवः** ।

अब अग्निके भक्तिनाम कहते हैं । पृथिवी ही इसका लोक, प्रातःसवन ही सवन, वसन्त ही ऋतु, गायत्री ही छन्द, त्रिवृत् ही स्तोम, रथन्तर ही इसका साम है । पृथिवी स्थानमें पठित देवगण ही इसके साथी है । अग्नायी, पृथिवी और इडा ये ही स्त्रियां । हविःका वहन, देवताओंका आवाहन और जो कुछ दृष्टिमें आता है वह सब अग्निका कर्म। और इन्द्र, सोम, वरुण, पर्जन्य और ऋतु ये इसके साथ स्तोतव्य (स्तुति-भागी) देव हैं।

अथैतानीन्द्रभक्तीनि । अन्तरिक्षलोको, माध्यन्दिनं सवनं, ग्रीष्मस्त्रिष्टुप्, पञ्चदश स्तोमो, बृहत् साम । **ये च देवगणाः समाम्नाता मध्यमे स्थाने** । याश्च स्त्रियः । अथास्य कर्म, रसाऽनुप्रदानं, वृत्रवधः, या च का

च बलकृतिरिन्द्रकर्मैव तत् । अथाऽस्य संस्तविका देवाः । **अग्निः, सोमो, वरुणः, पूषा, बृहस्पतिर्ब्रह्मणस्पतिः-पर्वतः, कुत्सो-विष्णुर्वायुः** ।

ये इन्द्रभक्ति नाम हैं जो इन्द्रके साथ पढे जाते हैं । अन्तरिक्ष ही लोक, माध्यन्दिन ही सवन, ग्रीष्म ऋतु, त्रिष्टुप् छन्दः, पञ्चदश स्तोम, बृहत् ही साम । मध्यम स्थानमें पठित देवगण ही साथी । मध्यम स्थानमें पठित स्त्रियाँ ही इसकी स्त्रियाँ । रसका देना, वृत्रका वध और जो कुछ बलका काम है वह इन्द्रका कर्म । और अग्नि, सोम, वरुण, पूषा, बृहस्पति, ब्रह्मणस्पति, पर्वत, कुत्स, विष्णु और वायु ये देव इन्द्रके साथ स्तुति प्राप्त करनेवाले हैं ।

अथैतान्यादित्यभक्तीनि । असौ लोकः, तृतीयसवनं, वर्षा, जगती, सप्तदशः स्तोमो, वैरूपं साम । ये च **देवगणाः समाम्नाता उत्तमे स्थाने** । याश्च स्त्रियः । अथाऽस्य कर्म, रसाऽऽदानं, रश्मिभिश्च रसधारणं, यच्च किंचित् प्रवह्लितं-आदित्यकर्मैव तत् । **चन्द्रमसा, वायुना, संवत्सरेण** इति संस्तवः ।

ये आदित्यसम्बन्धी नाम हैं । द्यौ लोक, तृतीय-सवन ही सवन, वर्षा ऋतु, जगती छन्दः, सप्तदश स्तोम, वैरूप साम । द्यु-स्थानी देवगण साथी और वहाँ पढी गई स्त्रियां स्त्रियां हैं । रसका आकर्षण करना, किरणोंसे रसका धारण तथा जो कुछ गुप्त (अकथित) कर्म है वह इसका कर्म हैं । चन्द्रमा वायु और संवत्सरके साथ इसका स्तवन होता है ।

एतेष्वेव स्थान व्यूहेषु- ऋतुच्छन्दःस्तोम- पृष्ठस्य भक्तिशेषमनुकल्पयीत ।

प्रयोग करता है उस देवतावाला वह मन्त्र होता है।

तात्पर्य यह कि, स्तोता जिस देवताकी स्तुति करता है, स्तुतिवाले मंत्र (वाक्य) की वही देवता होती है। मंत्रोंके विषय देवता कहलाते हैं अतः देवता-भेदसे—

तास्त्रिविधा ऋचः । परोक्षकृताः, प्रत्यक्षकृताः आध्यात्मिक्यश्च ।

ये तीन प्रकारकी ऋक् हैं । **परोक्षकृता, प्रत्यक्षकृता, और आध्यात्मिकी ।**

तत्र परोक्षकृताः सर्वाभिर्नामविभक्तिभिर्यु ज्यन्ते प्रथमपुरुषैश्चाख्यातस्य ॥ १ ॥

' इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्याः ' (ऋ. १०।८९।१०)

' इन्द्रमिद् गाथिनो बृहत् ' (ऋ. १।७।१)

परोक्ष रूपसे की हुई स्तुतियें, जिनमें आराध्य देव सम्मुख नहीं होता, नामकी समग्र विभक्तियोंसे युक्त और प्रथम पुरुषका क्रियामें होती हैं । जैसे ' इन्द्र ही दिव् और इन्द्र ही पृथिवीका शासक है,' ' हे गायको ! इन्द्रको ही बृहत् साम गाओ ' इत्यादि ।

अथ प्रत्यक्षकृता मध्यमपुरुषयोगास्त्वमिति चैतेन सर्वनाम्ना ।

' त्वमिन्द्र ! बलादधि ' (ऋ. १०।१५३।२)

' वि न इन्द्र ! मृधो जहि ' (ऋ० १०।१५२।४)

प्रत्यक्षकृता स्तुतियें मध्यमपुरुषमें होती हैं और त्वं, यूयम् आदि सर्वनामसे युक्त । जैसे- 'हे इन्द्र ! तू बलसे उत्पन्न हुआ है,' 'हे इन्द्र ! तू हमारे शत्रुओंको मार दे ' इत्यादि ।

अथापि प्रत्यक्षकृताः स्तोतारो भवन्ति, परोक्ष-कृतानि स्तोतव्यानि ॥

' मा चिदन्यद् वि शंसत ' (ऋ. ८।१।१)

परन्तु कहीं कहीं प्रत्यक्षरूपमें स्तोता प्रस्तुत होते हैं और स्तोतव्य परोक्ष में आ जाते हैं । जैसे 'हे सखा लोगो ! इन्द्रसे भिन्नकी प्रशंसा मत करो।'

तात्पर्य यह कि कहीं आप सर्वत्र प्रत्यक्षकृता ऋक्को देवता ही न समझ लें, वे स्तोताओंके लिये भी प्रयुक्त होती हैं ।

आध्यात्मिक्यश्च उत्तमपुरुषयोगाः । अहमिति चैतेन सर्वनाम्ना । यथैतदिन्द्रो वैकुण्ठी, लवसूक्तं, वागाम्भृणीयमिति ।

आध्यात्मिकी स्तुतियें उत्तमपुरुषमें और अहं (मैं) इस सर्वनामसे युक्त । इनके उदाहरण- इन्द्र, वैकुण्ठ, लव और वागाम्भृणीय सूक्त हैं ।

निरुक्तकारने मन्त्रोंका वर्गीकरण करके वेद-वर्णित देवताओंका ज्ञान सरल बना दिया है ।

अपि ह्यदेवता देवतावत्स्तूयन्ते, यथाश्वप्रभृती-न्योषधिपर्यन्तानि ॥ ४ ॥

और अदेवताएं भी देवता-सदृश स्तुति प्राप्त करती हैं। जैसे- घोडेसे लेकर ओषधि-पर्यन्त पदार्थ ।

अतः देवताविषयक विचार करनेमें, स्तुतिके कारण, इन्हें देवता नहीं मान लेना चाहिये ।

माहाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते।

कहीं कहीं ऐश्वर्याधिक्यके कारण एक ही देवता बहुत नाम और कार्यसे स्तुति प्राप्त करती है । अर्थात् एक होने पर भी अनेक नाम और अनेक कार्य उसके बताये जाते हैं वास्तवमें उसका आत्मा (शरीर) अनेक नहीं होता । ऐसे स्थलोंपर नाम और कार्य भिन्न होनेसे उन्हें अनेक देवता नहीं मान लेना चाहिये।

एकस्याऽऽत्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति ।

कहीं-कहीं एक शरीरवाली देवताके अनेक देव प्रत्यङ्ग बन कर आते हैं । अर्थात् भिन्न होने पर भी शरीरके अङ्ग-समान वर्णित होते हैं ।

ऐसे स्थलोंपर एकत्ववादसे देवोंके अनेकत्वमें बाधा नहीं पडती ।

तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः । **अग्निः** पृथिवी-स्थानो, **वायुर्वेन्द्रो** वा अन्तरिक्षस्थानः **सूर्यो** द्युस्थानः ॥

तीन ही देवताएँ हैं ऐसा निरुक्त-मतानुयायी मानते हैं। अग्नि पृथिवी स्थानमें, वायु वा इन्द्र अन्तरिक्ष स्थानमें, सूर्य द्यु-स्थानमें ।

तासां महाभाग्याद् **एकैकस्या अपि बहूनि नाम-धेयानि** भवन्ति । अपि वा **कर्म-पृथक्त्वात्** । यथा-**होताऽध्वर्युर्ब्रह्मोद्गाता-** इत्यपि एकस्य सतः ।

उन तीनोंके ऐश्वर्यके कारण, एक एक देवताके बहुत नाम होते हैं । अथवा कर्मवैभिन्न्यसे अनेक नाम पडते हैं जैसे एक होने पर भी कार्यभेदसे वही मनुष्य कभी होता, कभी अध्वर्यु और कभी ब्रह्मा या उद्गाता भी कहलाता है ।

अथाकारचिन्तनं देवतानाम् ।

अब देवताओंके आकारका विचार करेंगे, वे मनुष्यसदृश हैं अथवा मनुष्यसे भिन्न आकारवाली ?

पुरुष-विधाः स्युरित्येकम् । **चेतनावद् हि स्तुतयो भवन्ति,** तथाऽभिधानानि ।

मनुष्य-सदृश शरीर और ज्ञानवाली हैं ऐसा एक मत है । क्योंकि उनकी स्तुतियाँ चेतन प्राणियोंके समान हैं और नाम भी।

अर्थात् चेतनके जैसे गुण–कर्म होते हैं वैसे इन देवताओंके भी हैं अतः ये भी मनुष्य–सदृश देहवाली हैं ।

अपुरुष-विधाः स्युरित्यपरम् । अपि तु यद् दृश्यते । **अपुरुषविधं** तत् । तद्यथा-अग्निर्वायुरादित्यः पृथिवी चन्द्रमा इति ।

'पुरुष–भिन्न आकारवाली हैं' ऐसा दूसरा मत है । क्योंकि यह जो कुछ दीखता है वह पुरुष (मनुष्य) से भिन्न आकृतिवाला है । जैसे अग्नि, वायु, आदित्य (सूर्य), पृथिवी और चन्द्रमा ।

अपि वा **उभय-विधाः** स्युः । अपि वा पुरुष विधाना-मेव सतां कर्मात्मान एते स्युः । यथा यज्ञो यजमानस्य ।

अथवा दोनों प्रकारकी हैं । अथवा पुरुष–सदृश मानें तो दूसरी अचेतन देवताओंको चेतन देवताओंका कर्म मान लेंगे। जैसे यज्ञ भी देवता और यजमान भी देवता हों तो यज्ञ यज-मानका कर्म माना जाता है । इस प्रकार माननेमें कोई दोष उपस्थित नहीं होगा ।

तिस्र एव देवता इत्युक्तं पुरस्तात् । तासां **भक्तिसाह-चर्यं** व्याख्यास्यामः ।

तीन ही देवता हैं ऐसा पहले कह चुके हैं । उनके भक्ति और साहचर्य कहेंगे ।

अथैतान्यग्निभक्तीनि । अयं लोकः, प्रातःसवनं, वसन्तो, गायत्री, त्रिवृत्–स्तोमो, रथन्तर साम । ये च **देवगणाः समाम्नाताः** प्रथमे स्थाने । अग्नायी–पृथिवी–इला इति स्त्रियः । अथाऽस्य कर्म, वहनं च हविषां, आवाहनं च देवतानां, यच्च किंचिद् दार्ष्टि विषयिकं अग्निकर्मैव तत् । अथास्य संस्तविका देवा **इन्द्रः, सोमो, वरुणः, पर्जन्यः, ऋतवः** ।

अब अग्निके भक्तिनाम कहते हैं । पृथिवी ही इसका लोक, प्रातःसवन ही सवन, वसन्त ही ऋतु, गायत्री ही छन्द, त्रिवृत् ही स्तोम, रथन्तर ही इसका साम है । पृथिवी स्थानमें पठित देवगण ही इसके साथी हैं । अग्नायी, पृथिवी और इडा ये ही स्त्रियां । हविःका वहन, देवताओंका आवाहन और जो कुछ दृष्टिमें आता है वह सब अग्निका कर्म। और इन्द्र, सोम, वरुण, पर्जन्य और ऋतु ये इसके साथ स्तोतव्य (स्तुति-भागी) देव हैं।

अथैतानीन्द्रभक्तीनि । अन्तरिक्षलोको, माध्यन्दिनं सवनं, ग्रीष्मस्त्रिष्टुप्, पञ्चदश स्तोमो, बृहत् साम । **ये च देवगणाः समाम्नाता मध्यमे स्थाने** । याश्च स्त्रियः । अथास्य कर्म, रसाऽनुप्रदानं, वृत्रवधः, या च का

च बलकृतिरिन्द्रकर्मैव तत् । अथाऽस्य संस्तविका देवाः । **अग्निः, सोमो, वरुणः, पूषा, बृहस्पतिर्ब्रह्मण-स्पतिः-पर्वतः, कुत्सो-विष्णुर्वायुः** ।

ये इन्द्रभक्ति नाम हैं जो इन्द्रके साथ पढे जाते हैं । अन्त-रिक्ष ही लोक, माध्यन्दिन ही सवन, ग्रीष्म ऋतु, त्रिष्टुप् छन्दः, पञ्चदश स्तोम, बृहत् ही साम । मध्यम स्थानमें पठित देवगण ही साथी । मध्यम स्थानमें पठित स्त्रियाँ ही इसकी स्त्रियाँ । रसका देना, वृत्रका वध और जो कुछ बलका काम है वह इन्द्रका कर्म । और अग्नि, सोम, वरुण, पूषा, बृहस्पति, ब्रह्मणस्पति, पर्वत, कुत्स, विष्णु और वायु ये देव इन्द्रके साथ स्तुति प्राप्त करनेवाले हैं ।

अथैतान्यादित्यभक्तीनि । असौ लोकः, तृतीयसवनं, वर्षा, जगती, सप्तदशः स्तोमो, वैरूपं साम । ये च **देव-गणाः समाम्नाता उत्तमे स्थाने** । याश्च स्त्रियः । अथाऽस्य कर्म, रसाऽऽदानं, रश्मिभिश्च रसधारणं, यच्च किंचित् प्रवह्लितं-आदित्यकर्मैव तत् । **चन्द्रमसा, वायुना, संवत्सरेण**· इति संस्तवः ।

ये आदित्यसम्बन्धी नाम हैं । द्यौ लोक, तृतीय–सवन ही सवन, वर्षा ऋतु, जगती छन्दः, सप्तदश स्तोम, वैरूप साम । द्यु-स्थानी देवगण साथी और वहाँ पढी गई स्त्रियां स्त्रियां हैं । रसका आकर्षण करना, किरणोंसे रसका धारण तथा जो कुछ गुप्त (अकथित) कर्म है वह इसका कर्म है । चन्द्रमा वायु और संवत्सरके साथ इसका स्तवन होता है ।

एतेष्वेव स्थान व्यूहेषु- ऋतुच्छन्दःस्तोम– पृष्ठस्य भक्तिशेषमनुकल्पयीत ।

इन तीन स्थानोंमें ही ऋतु, छन्दः. स्तोम और पृष्ठ (साम) की शेष कल्पनाएँ कर लेनी चाहिये ।

यास्क महर्षिने तीन स्थानोंके तीन व्यूह बनाये हैं और वे समग्र देवता, छन्द, ऋतु आदिको उन्हींमें बांट देना चाहते हैं । यह क्रम उनका अपना नहीं, वेदसे लिया हुआ है । प्रमाण के लिए दो एक मन्त्र उद्धृत करता हूँ ।

(१) **वसवस्त्वा** कृण्वन्तु **गायत्रेण** छन्दसाऽङ्गिरस्वद्० **रुद्रास्त्वा** कृण्वन्तु **त्रैष्टुभेन** छन्दसा ... **आदित्या**स्त्वा कृण्वन्तु जागतेन छन्दसा ... ॥ (यजु० ११।५८)

इस मंत्रमें वसु रुद्र और आदित्योंके साथ गायत्री, त्रिष्टुप् और जगतीका सम्बन्ध स्पष्ट है । ये देवगण क्रमसे पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ–लोकके हैं, अतः इन लोकोंके साथ भी इन छन्दोंका सम्बन्ध है ।

अग्नेर्भागोऽसि, दीक्षाया आधिपत्यं, ब्रह्म स्पृतं, **त्रिवृत् स्तोम इन्द्रस्य** भागोऽसि, विष्णोराधिपत्यं क्षत्रं स्पृतं **पञ्चदशः स्तोमो, नृचक्षसां** भागोऽसि, धातुराधिपत्यं, जनित्रं स्पृतं, **सप्तदशः** स्तोमा ००० ॥
(यजु० १४।२४)

यहां अग्नि, इन्द्र और नृचक्षस् (आदित्यों) के साथ त्रिवृत्, पञ्चदश और सप्तदश स्तोमोंका सम्बन्ध स्पष्ट है। प्रथम मंत्रमें वसुका अर्थ अग्नि, रुद्रका अर्थ इन्द्र और आदित्यका अर्थ सूर्य लें तो दोनों मंत्र निरुक्तके तीन व्यूहोंको बहुत कुछ प्रमाणित कर देते हैं। इसी प्रकार ऋतु और पृष्ठसम्बन्धी मंत्र भी बहुत हैं जो प्रयोजन न होनेसे यहां नहीं लिखे जाते।

अन्तमें दैवत-काण्डकी भूमिकाका उपसंहार करते हुए ऋषि लिखते हैं—

इतीमा देवता अनुक्रान्ताः ॥ (निरु० ७।३।१३)

इस प्रकार ये देवताएँ कह दी गईं।

निरुक्तकारने सम्पूर्ण देवताओंकी व्याख्या अपने ढंगसे की है। उन्होंने सारे देवोंको तीन स्थानोंमें बाँट दिया है यथा—

अग्निः पृथिवीस्थानः। तं प्रथमं व्याख्यास्यामः।
(निरु० ७।४)

अग्नि पृथिवी-स्थानी देव है, उसकी प्रथम व्याख्या करेंगे। परन्तु वेदमें अग्नि शब्द केवल पृथिवीस्थ अग्निका ही वाचक नहीं, अतः उन्हें कहना पडा।

स न मन्येताऽयमेवाऽग्निरिति। अप्येते **उत्तरे ज्योतिषी** अग्नी उच्येते ॥ (निरु० ७।४)

कोई ऐसा न मान ले कि यह पृथिवीस्थ अग्नि ही अग्नि है, मध्यम और उत्तम स्थानवाले देव भी अग्नि कहलाते हैं।

अन्तमें कहा—

यस्तु सूक्तं भजते, यस्मै हविर्निरुप्यतेऽ**यमेव सोऽग्निः**। निपातमेवैते उत्तरे ज्योतिषी अनेन नामधेयेन भजेते ॥
(निरु० ७।४)

जो अग्नि सूक्तका सेवन करता, जिसके निमित्त हवि दिया जाता है वह यही पृथिवीस्थ अग्नि है। अन्तरिक्ष और द्यु-लोकस्थ ज्योतियाँ गौणरूपसे अग्नि नाम धारण करती हैं।

अग्निका दूसरा नाम 'जातवेदाः' है। उसके विषयमें भी ऐसा ही कहते हैं—

स न मन्येताऽयमेवाऽग्निरिति। अप्येते उत्तरे ज्योतिषी जातवेदसी उच्येते।...यस्तु सूक्तं भजते यस्मै हविर्निरुप्यतेऽयमेव **सोऽग्निर्जातवेदाः**। निपातमेवैते उत्तरे ज्योतिषी एतेन नामधेयेन भजेते॥ (निरु० ७।५)

अर्थात् अन्तरिक्षस्थ और द्युलोकस्थ देव भी जातवेदाः हैं, परन्तु मुख्यतया जातवेदाः यह अग्नि ही है।

वैश्वानर, द्रविणोदा आदि नामोंपर भी यास्क ऋषिका ऐसा ही मत है। यास्कके मतसे जातवेदाः वैश्वानर आदि नामवाले भिन्न देव नहीं हैं, पृथिवी पर इस अग्निके ही ये नाम हैं, इनको भिन्न-भिन्न देव नहीं मानना चाहिये। अग्नि और पृथिवीसे सम्बद्ध नामोंकी व्याख्या करके मध्यम स्थानकी ओर चलते हैं—

अथ मध्यस्थाना देवताः। तासां वायुः प्रथमगामी भवति। (निरु. १०।१)

अब मध्यस्थानी देवोंकी व्याख्या करते हैं। उनमें वायु प्रथम है।

इस प्रकरणके देखनेसे पता चलता है कि इन्द्र मित्र वरुण रुद्रादि नाम वायुके ही हैं। मरुत्, रुद्र, ऋभु, पितर आदि गणनाम वायु-समूहके प्रतीत होते हैं। अदिति, सरमा, सरस्वती, इन्द्राणी आदि स्त्रियोंके नाम मध्यस्थानमें होनेवाली वाणी है। उषा आदि प्रत्यक्ष स्त्रीवाचक नामोंको छोड़कर शेष नाम उस वाणी (गर्जना) के ही हैं।

मध्यस्थानके पश्चात् महर्षि द्युस्थानकी ओर बढते हैं—

अथातो **द्युस्थाना देवताः**। तासामश्विनौ प्रथमाऽऽगामिनौ भवतः ॥ (निरु. १२।१)

अब हम द्यु-स्थानी देवताओंका वर्णन करेंगे। उनमें अश्विनौ प्रथम श्रेणीमें आनेवाले हैं।

ये अश्विनौ कौन हैं ? यह प्रश्न जगत्के सम्मुख आज भी जटिल है। यास्कके मतमें मध्यम और उत्तम दोनों स्थानोंके देव मिलकर जिनमें उत्तम स्थानके देव आदित्यकी प्रधानता रहती है, अश्विनौ कहलाते हैं।

तयोः काल ऊर्ध्वमर्धरात्रात् प्रकाशीभावस्यानुविष्टम्भम्

अनुत्तमो भागो हि मध्यमः। ज्योतिर्भाग आदित्यः। (निरु. १२।१)

उनका समय आधी रातके पश्चात् प्रकाशके प्रवेश होनेपर आरम्भ होता है। उसका अन्धकारयुक्त भाग मध्यम देव और प्रकाशमय भाग आदित्य है।

वायु और आदित्य अश्विनौ हैं। वास्तवमें आधी रातके पश्चात् सूर्य प्राची दिक्में अपनी आभा दर्शाने लगता है। सूर्य उस अवस्थामें अश्विनौ नामसे प्रसिद्ध होता है।

सविता, भग, सूर्य, विष्णु आदि नाम उस आदित्य (सूर्य) के ही हैं। ये नाम काल और कार्यके भेदसे पडे हैं। उषाः, सूर्या, वृषाकपायी, सरण्यू नाम आदित्यके प्रकाश (आभा) के हैं।

इन पदार्थोंके ये नाम कैसे पडे हैं और वेदके किन मंत्रोंके

आधार पर ऐसा अर्थ करना पडा है, यह विस्तृत व्याख्या निरुक्तमें ही देखिये।

द्युस्थानके देवगण —

अथातो **द्युस्थाना देवगणाः**। तेषामादित्याः प्रथमागामिनो भवन्ति।

अब हम द्यु-स्थानी देवगणका वर्णन करेंगे उनमें आदित्य-गण प्रथम आते हैं। आदित्य, सप्त-ऋषि, विश्वेदेव, साध्य, वसु आदि देव-गण सूर्यकी किरणोंके नाम हैं।

चाहे देवोंकी गणना तीनमें हो या अधिकमें, नैरुक्त लोग तीनसे अधिक देव माननेको उद्यत नहीं। वसु और आदित्य सूर्य-रश्मियों या अग्नि-अर्चियोंमें समाविष्ट हो जाते हैं और रुद्र-गण वायु-दलमें। इस प्रकार वसु, रुद्र और आदित्योंकी कोई भिन्न सत्ता नहीं रहती। कई लोग विश्वे देवको सर्वे देव मानकर उनकी आदित्य-गणके सदृश कोई संख्या नहीं मानते। परन्तु द्यु-स्थानी देवगणमें विश्वे देव और साध्योंकी गणना होनेसे वे आदित्यादि गणसे भिन्न गण हैं। वेदकी शैलीसे भी यही प्रतीत होता है—

वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वद्, रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्, आदित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्, **विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा** धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयतु, वरुणस्त्वा धूपयतु, विष्णुस्त्वा धूपयतु ॥
(यजु. ११।६०)

ये विश्वे देव **वसु, रुद्र** और **आदित्य**से भिन्न हैं तथा विश्वानरके पुत्र हैं। क्योंकि उन्हें अनेकत्र वैश्वानर कहा गया है। ये सूर्यके रश्मि हों तो भी वसु रुद्र और आदित्यसे पृथक् ही माने जायेंगे।

३३ की संख्या

विश्वे देव तैंतीस हैं—

(१) नहि वो अस्त्यर्भको **देवासो** न कुमारकः।
विश्वे सतोमहान्त इत् ॥ १ ॥

(२) इति स्तुतासो असथा रिशादसो,
ये स्थ **त्रयश्च त्रिंशच्च**।
मनोर्**देवा यज्ञियासः** ॥ २ ॥

(३) ये **देवास** इह स्थन **विश्वे वैश्वानरा** उत।
अस्मभ्यं शर्म सप्रथो गवेऽश्वाय यच्छत ॥ ४ ॥
(ऋ० ८।३०)

(४) ये **त्रिंशति त्रयस्परो** देवासो बर्हिरासदन्।
विदन्नह द्वितासनन् ॥ १ ॥ (ऋ० ८।२८)

(५) ये देवासो दिव्ये**कादश** स्थ,
पृथिव्यामध्ये**कादश** स्थ,
अप्सुक्षितो महिनै**कादश** स्थ,
ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥ (ऋ० १।१३९।११, यजु० ७।१९)

इन मंत्रोंकी देवता विश्वे देव हैं। ये तैंतीस हैं और दिव्, अन्तरिक्ष और पृथिवीपर ग्यारह-ग्यारहकी संख्यामें रहती हैं। अब सिद्ध हो गया कि ये विश्वे देव सम्पूर्ण देव नहीं हैं किन्तु वसु आदिसे पृथक् ३३ की संख्यामें रहते हैं।

विश्वे देवकी संख्या ३३३९ है—

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्।
औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥
(ऋ० ३।९।९; १०।५२।६; यजु० ३३।७)

ऋ० ३।९।९ में इस मंत्रकी देवता अग्नि है, अन्यत्र विश्वे देव देवता हैं। विचारणीय प्रश्न है कि ये विश्वे देव ३३ हैं या ३३३९ हैं अथवा **विश्वेदेव** ३३ हैं और सर्वे देव ३३३९ अथवा विश्वे देवका सर्वत्र सर्वे देव ही अर्थ है और वे ३३ या ३३३९ दोनोंमें हो सकते हैं। विश्वे देव ३३ हैं और वे ही ३३३९ भी, तो परस्पर विरोध आयेगा। यदि सम्पूर्ण देव ३३ की संख्यामें हैं और वे ३३३९ की संख्यामें भी, तो विरोध है। हाँ, यदि हम विश्वे देव ३३ और सम्पूर्ण देव ३३३९ माने तो कुछ संगति लग सकती है। निरुक्तकारने **विश्वे देवाः** का अर्थ '**सर्वे देवाः**' किया है, परन्तु उनके मतमें 'देवाः' यह भी गण है। यह सूर्य रश्मिका नाम है तब '**सर्वे देवाः**' विश्वे देवाः का पर्याय नाम होगा अर्थ तो आदित्य रश्मि ही लेना पडेगा। वे शाकपूणि आचार्यका मत उद्धृत करते हैं—

'यत्तु किंचिद् बहुदैवतं तद् वैश्वदेवानां स्थाने युज्यते।
यदेव विश्वलिङ्गमिति शाकपूणिः ॥' (निरुक्त १२।४)

अर्थात् बहुत देवतावाला मंत्र विश्वे देवके स्थानमें पढा जाता है जब अन्य विश्वे देवयुक्त गायत्र मंत्र न मिले।

यद्यपि यास्क इसके विरोधी हैं तथापि यह सम्भव है कि सर्वे-देवताके मंत्र विश्वे-देवताके बनाये गये हों। तब ३३३९ संख्याके मंत्र सर्वे-देवताके हैं ऐसा मानना पडेगा।

पुराणोंमें विश्वे देव अन्य देवोंसे पृथक् हैं। ब्राह्मणमें भी, '**रश्मयो ह्यस्य (सूर्यस्य) विश्वे देवाः**' (श० ३।९।२।६) इत्यादि स्थलोंमें विश्वे देव पृथक् हैं और वे सूर्यके रश्मि (किरण) हैं।

यह देवता-विषय बहुत गहन तथा और अधिक मननीय है क्योंकि यह अनुसन्धान अन्तिम नहीं है।

*

अग्नेर्भागोऽसि, दीक्षाया आधिपत्यं, ब्रह्म स्पृतं, **त्रिवृत् स्तोम इन्द्रस्य** भागोऽसि, विष्णोराधिपत्यं क्षत्रं स्पृतं **पञ्चदशः स्तोमो, नृचक्षसां** भागोऽसि, धातुराधिपत्यं, जनित्रं स्पृतं, **सप्तदशः** स्तोमा ००० ॥
(यजु० १४।२४)

यहां अग्नि, इन्द्र और नृचक्षस् (आदित्यों) के साथ त्रिवृत्, पञ्चदश और सप्तदश स्तोमोंका सम्बन्ध स्पष्ट है। प्रथम मंत्रमें वसुका अर्थ अग्नि, रुद्रका अर्थ इन्द्र और आदित्यका अर्थ सूर्य लें तो दोनों मंत्र निरुक्तके तीन व्यूहोंको बहुत कुछ प्रमाणित कर देते हैं। इसी प्रकार ऋतु और पृष्ठसम्बन्धी मंत्र भी बहुत हैं जो प्रयोजन न होनेसे यहां नहीं लिखे जाते।

अन्तमें दैवत-काण्डकी भूमिकाका उपसंहार करते हुए ऋषि लिखते हैं—

इतीमा देवता अनुक्रान्ताः ॥ (निरु० ७।३।१३)

इस प्रकार ये देवताएँ कह दी गई।

निरुक्तकारने सम्पूर्ण देवताओंकी व्याख्या अपने ढंगसे की है। उन्होंने सारे देवोंको तीन स्थानोंमें बाँट दिया है यथा—

अग्निः पृथिवीस्थानः। तं प्रथमं व्याख्यास्यामः।
(निरु० ७।४)

अग्नि पृथिवी-स्थानी देव है, उसकी प्रथम व्याख्या करेंगे। परन्तु वेदमें अग्नि शब्द केवल पृथिवीस्थ अग्निका ही वाचक नहीं, अतः उन्हें कहना पडा।

स न मन्येताऽयमेवाऽग्निरिति। अप्येते **उत्तरे ज्योतिषी** अग्नी उच्येते ॥ (निरु० ७।४)

कोई ऐसा न मान ले कि यह पृथिवीस्थ अग्नि ही अग्नि है, मध्यम और उत्तम स्थानवाले देव भी अग्नि कहलाते हैं।

अन्तमें कहा—

यस्तु सूक्तं भजते, यस्मै हविर्निरुप्यतेऽ**यमेव सोऽग्निः।**
निपातमेवैते उत्तरे ज्योतिषी अनेन नामधेयेन भजेते ॥
(निरु० ७।४)

जो अग्नि सूक्तका सेवन करता, जिसके निमित्त हवि दिया जाता है वह यही पृथिवीस्थ अग्नि है। अन्तरिक्ष और द्यु-लोकस्थ ज्योतियाँ गौणरूपसे अग्नि नाम धारण करती हैं।

अग्निका दूसरा नाम ' जातवेदाः ' है। उसके विषयमें भी ऐसा ही कहते हैं—

स न मन्येताऽयमेवाऽग्निरिति। अप्येते उत्तरे ज्योतिषी जातवेदसी उच्येते।...यस्तु सूक्तं भजते यस्मै हविर्निरुप्यतेऽयमेव **सोऽग्निर्जातवेदाः**। निपातमेवैते उत्तरे ज्योतिषी एतेन नामधेयेन भजेते॥ (निरु० ७।५)

अर्थात् अन्तरिक्षस्थ और द्युलोकस्थ देव भी जातवेदाः हैं, परन्तु मुख्यतया जातवेदाः यह अग्नि ही है।

वैश्वानर, द्रविणोदा आदि नामोंपर भी यास्क ऋषिका ऐसा ही मत है। यास्कके मतसे जातवेदाः वैश्वानर आदि नामवाले भिन्न देव नहीं हैं, पृथिवी पर इस अग्निके ही ये नाम हैं, इनको भिन्न-भिन्न देव नहीं मानना चाहिये। अग्नि और पृथिवीसे सम्बद्ध नामोंकी व्याख्या करके मध्यम स्थानकी ओर चलते हैं-

अथ मध्यस्थाना देवताः। तासां वायुः प्रथमगामी भवति। (निरु. १०।१)

अब मध्यस्थानी देवोंकी व्याख्या करते हैं। उनमें वायु प्रथम है।

इस प्रकरणके देखनेसे पता चलता है कि इन्द्र मित्र वरुण रुद्रादि नाम वायुके ही हैं। मरुत्, रुद्र, ऋभु, पितर आदि गणनाम वायु-समूहके प्रतीत होते हैं। अदिति, सरमा, सरस्वती, इन्द्राणी आदि स्त्रियोंके नाम मध्यस्थानमें होनेवाली वाणी है। उषा आदि प्रत्यक्ष स्त्रीवाचक नामोंको छोडकर शेष नाम उस वाणी (गर्जना) के ही हैं।

मध्यस्थानके पश्चात् महर्षि द्युस्थानकी ओर बढते हैं—

अथातो **द्युस्थाना देवताः**। तासामश्विनौ प्रथमाऽऽगामिनौ भवतः ॥ (निरु. १२।१)

अब हम द्यु-स्थानी देवताओंका वर्णन करेंगे। उनमें अश्विनौ प्रथम श्रेणीमें आनेवाले हैं।

ये अश्विनौ कौन हैं ? यह प्रश्न जगत्के सम्मुख आज भी जटिल है। यास्कके मतमें मध्यम और उत्तम दोनों स्थानोंके देव मिलकर जिनमें उत्तम स्थानके देव आदित्यकी प्रधानता रहती है, अश्विनौ कहलाते हैं।

तयोः काल ऊर्ध्वमर्धरात्रात् प्रकाशीभावस्यानुविष्टम्भम्

अनुत्तमो भागो हि मध्यमः। ज्योतिर्भाग आदित्यः। (निरु. १२।१)

उनका समय आधी रातके पश्चात् प्रकाशके प्रवेश होनेपर आरम्भ होता है। उसका अन्धकारयुक्त भाग मध्यम देव और प्रकाशमय भाग आदित्य है।

वायु और आदित्य अश्विनौ हैं। वास्तवमें आधी रातके पश्चात् सूर्य प्राची दिक्में अपनी आभा दर्शाने लगता है। सूर्य उस अवस्थामें अश्विनौ नामसे प्रसिद्ध होता है।

सविता, भग, सूर्य, विष्णु आदि नाम उस आदित्य (सूर्य) के ही हैं। ये नाम काल और कार्यके भेदसे पडे हैं। उषाः, सूर्या, वृषाकपायी, सरण्यू नाम आदित्यके प्रकाश (आभा) के हैं।

इन पदार्थोंके ये नाम कैसे पडे हैं और वेदके किन मंत्रोंके

आधार पर ऐसा अर्थ करना पडा है, यह विस्तृत व्याख्या निरुक्तमें ही देखिये।

द्युस्थानके देवगण —

अथातो **द्युस्थाना देवगणाः**। तेषामादित्याः प्रथमागामिनो भवन्ति।

अब हम द्यु-स्थानी देवगणका वर्णन करेंगे उनमें आदित्य-गण प्रथम आते हैं। आदित्य, सप्त-ऋषि, विश्वेदेव, साध्य, वसु आदि देव-गण सूर्यकी किरणोंके नाम हैं।

चाहे देवोंकी गणना तीनमें हो या अधिकमें, नैरुक्त लोग तीनसे अधिक देव माननेको उद्यत नहीं। वसु और आदित्य सूर्य-रश्मियों या अग्नि-अर्चियोंमें समाविष्ट हो जाते हैं और रुद्र-गण वायु-दलमें। इस प्रकार वसु, रुद्र और आदित्योंकी कोई भिन्न सत्ता नहीं रहती। कई लोग विश्वे देवको सर्वे देव मानकर उनकी आदित्य-गणके सदृश कोई संख्या नहीं मानते। परन्तु द्यु-स्थानी देवगणमें विश्वे देव और साध्योंकी गणना होनेसे वे आदित्यादि गणसे भिन्न गण हैं। वेदकी शैलीसे भी यही प्रतीत होता है—

वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वद्, रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्, आदित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्, **विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा** धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयतु, वरुणस्त्वा धूपयतु, विष्णुस्त्वा धूपयतु॥
(यजु. ११।६०)

ये विश्वे देव **वसु, रुद्र** और **आदित्य**से भिन्न हैं तथा विश्वानरके पुत्र हैं। क्योंकि उन्हें अनेकत्र वैश्वानर कहा गया है। ये सूर्यके रश्मि हों तो भी वसु रुद्र और आदित्यसे पृथक् ही माने जायेंगे।

३३ की संख्या

विश्वे देव तैंतीस हैं—

(१) नहि वो अस्त्यर्भको **देवासो** न कुमारकः।
विश्वे सतोमहान्त इत्॥ १॥

(२) इति स्तुतासो असथा रिशादसो,
ये स्थ **त्रयश्च त्रिंशच्च**।
मनो**र्देवा यज्ञियासः**॥ २॥

(३) ये **देवास** इह स्थन **विश्वे वैश्वानरा** उत।
अस्मभ्यं शर्म सप्रथो गवेऽश्वाय यच्छत॥ ४॥
(ऋ० ८।३०)

(४) ये **त्रिंशति त्रयस्परो** देवासो बर्हिरासदन्।
विदन्नह द्वितासनन्॥ १॥ (ऋ० ८।२८)

(५) ये देवासो दिव्ये**कादश** स्थ,
पृथिव्यामध्ये**कादश** स्थ,
अप्सुक्षितो महिनै**कादश** स्थ,
ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्॥ (ऋ० १।१३९।११, यजु० ७।१९)

इन मंत्रोंकी देवता विश्वे देव हैं। ये तैंतीस हैं और दिव् अन्तरिक्ष और पृथिवीपर ग्यारह-ग्यारहकी संख्यामें रहती हैं। अब सिद्ध हो गया कि ये विश्वे देव सम्पूर्ण देव नहीं हैं किन्तु वसु आदिसे पृथक् ३३ की संख्यामें रहते हैं।

विश्वे देवकी संख्या ३३३९ है—

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्।
औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त॥
(ऋ० ३।९।९; १०।५२।६; यजु० ३३।७)

ऋ० ३।९।९ में इस मंत्रकी देवता अग्नि है, अन्यत्र विश्वे देव देवता हैं। विचारणीय प्रश्न है कि ये विश्वे देव ३३ हैं या ३३३९ हैं अथवा **विश्वेदेव** ३३ हैं और सर्वे देव ३३३९ अथवा विश्वे देवका सर्वत्र सर्वे देव ही अर्थ है और वे ३३ या ३३३९ दोनोंमें हो सकते हैं। विश्वे देव ३३ हैं और वे ही ३३३९ भी, तो परस्पर विरोध आयेगा। यदि सम्पूर्ण देव ३३ की संख्यामें हैं और वे ३३३९ की संख्यामें भी, तो विरोध है। हाँ, यदि हम विश्वे देव ३३ और सम्पूर्ण देव ३३३९ माने तो कुछ संगति लग सकती है। निरुक्तकारने **विश्वे देवाः** का अर्थ '**सर्वे देवाः**' किया है, परन्तु उनके मतमें 'देवाः' यह भी गण है। यह सूर्य रश्मिका नाम है तब '**सर्वे देवाः**' विश्वे देवाः का पर्याय नाम होगा अर्थ तो आदित्य रश्मि ही लेना पडेगा। वे शाकपूणि आचार्यका मत उद्धृत करते हैं—

'यत्तु किंचिद् बहुदैवतं तद् वैश्वदेवानां स्थाने युज्यते।
यदेव विश्वलिङ्गमिति शाकपूणिः॥' (निरुक्त १२।४)

अर्थात् बहुत देवतावाला मंत्र विश्वे देवके स्थानमें पढा जाता है जब अन्य विश्वे देवयुक्त गायत्र मंत्र न मिले।

यद्यपि यास्क इसके विरोधी हैं तथापि यह सम्भव है कि सर्वे-देवताके मंत्र विश्वे-देवताके बनाये गये हों। तब ३३३९ संख्याके मंत्र सर्वे-देवताके हैं ऐसा मानना पडेगा।

पुराणोंमें विश्वे देव अन्य देवोंसे पृथक् हैं। ब्राह्मणमें भी, '**रश्मयो ह्यस्य (सूर्यस्य) विश्वे देवाः**' (श० ३।९।२।६) इत्यादि स्थलोंमें विश्वे देव पृथक् हैं और वे सूर्यके रश्मि (किरण) हैं।

यह देवता-विषय बहुत गहन तथा और अधिक मननीय है क्योंकि यह अनुसन्धान अन्तिम नहीं है।

'विश्वे देवाः' के मंत्रोंके संबंधमें विचार

वेदोंमें उपलब्ध देवताओंके वर्णनपरक विभिन्न सूक्त पढ लेनेसे स्पष्टतया प्रतीत होता है कि वे सभी देव असाधारण क्षमतासे युक्त होते हैं तथा वे अत्यन्त सफलतापूर्वक जनताकी लगातार सेवा करते हुए लोगोंकी अटल, अडिग एवं अविचल भक्ति और उपासना प्राप्त करनेमें बडी स्पृहणीय और विराट् सफलता प्राप्त कर लेते हैं। वेद मन्त्रोंमें अतीव लोकप्रिय नेता, कार्यकर्ता, स्वयंसेवक या प्रभुका बडा ही प्रभावोत्पादक एवं सजीव चित्रण देखने मिलता है। जनता एवं उपासकों, भक्तों और अनुयायियोंकी रक्षा करनेका गुरुतर कार्य भार सुचारुरूपसे प्रचलित रखकर समूची बुराइयों और सारे दुश्मनों, विरोधियों एवं स्वार्थी शत्रुओंको पराभूत कर विनष्ट करने या मार भगानेसे वैदिक सुकवि और द्रष्टा ऋषि देवोंके निकटतम संपर्कमें रहनेके लिए बडे समुत्सुक दीख पडते हैं और उन्हें आदरपूर्वक समीप बुलाकर सोम आदि वस्तुओंके प्रदानसे भलीभाँति सुस्वागत कर उनके पराक्रमों तथा गुणोंका सुन्दर ढंगसे वर्णन करते हुए उनकी सराहना करते हैं। वेदमन्त्रोंके द्रष्टा किस भाँति देवताओंको समीप आनेके लिए निमन्त्रण देते हैं या देवोंका आवाहन करते हैं यह निम्न मन्त्रोंमें देखने योग्य है।

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत।

(ऋ. १।३।७)

'हे संरक्षणकर्ता तथा मानवोंके धारण करनेहारे सभी देवो! इधर आओ।'

विश्वे देवासो ... सुतमा गन्त तूर्णयः।

(ऋ. १।३।८)

'हे समूचे देवो! हमने जो सोमरस निचोड रखा है उसके निकट शीघ्रतापूर्वक चले आओ।' क्योंकि हम—

विश्वान् देवान् हवामहे। (ऋ. १।२३।१०)

'सभी देवोंको इधर उपस्थित रहनेके लिये बुलाते हैं।'

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं ... अवसे हूमहे वयम्। (ऋ. १।८९।५)

'उस प्रभुत्व प्रस्थापित करनेवाले एवं स्थावर जंगमके अधिपति तुल्य इन्द्रको हम अपने संरक्षणार्थ बुलाते हैं।'

... विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह।

(ऋ. १।८९।७)

'सारे देव हमारे समीप संरक्षणकी आयोजना लेकर पहुँच जायँ।'

त्रितः ... देवान् हवत ऊतये। (ऋ. १।१०५।१७)

'त्रित ऋषि अपने संरक्षणार्थ देवोंको बुलाता है।'

त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शंभुवः॥ (ऋ. १।१०६।२)

'वे विख्यात अदितिके पुत्रो! सबके द्वारा विस्तारित कार्यके लिए आ पहुँचो और हे द्योतमान एवं देवतारूपी! हमारे शत्रुवधोंके कार्योंमें हितकारक बनो।'

इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं ... ऋषिरह्वदूतये।

(ऋ. १।१०६।६)

'कुत्स ऋषिने वृत्रके वध करनेहारे इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए बुलाया।'

उप नो देवा अवसा गमन्त्वङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः। (ऋ. १।१०७।२)

'अंगिरसोंके सामोंसे प्रशंसित होते हुए देव हमारे पास संरक्षण योजनासे युक्त हो पधारें।'

धृतव्रता आदित्या ... आरे मत् कर्त ... आगः। शृण्वतो वो ... देवा भद्रस्य विद्वाँ अवसे हुवे वः॥

(ऋ. २।२९।१)

'हे व्रतधारी आदित्यो! अपराध, दोषको मुझसे दूर कर दो और मैं तुम्हारी की हुई अच्छी बातको जानता हुआ सुनते हुए तुम देवतारूपी आदितिके पुत्रोंको संरक्षण कार्यको अच्छी तरह निभानेके लिए इधर बुलाता हूँ।'

विश्वे देवास आगत शृणुता म इमं हवम्। एदं बर्हिर्नि षीदत॥ (ऋ. २।४१।१३, ६।५२।७)

'सारे देवो! इधर आओ, मेरी इस पुकारको सुन लो, और इस कुशासन पर बैठ जाइए।'

... देवासः पूषरातयः। विश्वे मम श्रुता हवम्।

(ऋ. २।४१।१५)

'सभी देव जिनकी देनें पुष्टिकारक होती हैं मेरी इस पुकारको सुन लें।'

सूक्तेभिर्वो वचोभिर्देवजुष्टैरिन्द्रा न्वग्नी अवसे हुवध्यै ॥ (ऋ. ५।४५।४)

'हे इन्द्र एवं अग्नि! तुम्हें मैं देवोंसे स्वीकृत तथा भलीभाँति कहे वचनोंसे संरक्षणके लिए बुलाता हूँ।'

इन उपर्युक्त मन्त्रोंसे वैदिक ऋषियोंके अन्तस्तलमें देवोंके सान्निध्यकी लालसा किस भाँति जागृत थी सो अत्यन्त स्पष्ट होगा। तथा और भी देखिए—

सुगा वो देवाः सदना अकर्म य आजग्मेदं सवनं जुषाणाः। भरमाणा वहमाना हवींष्यस्मे धत्त वसवो वसूनि ॥ (वा. यजु. ८।१८)

हे देवतागण! आपके लिए हम सुखदायक घर बना चुके हैं जो तुम इस सवनका सेवन या स्वीकार करते हुए इधर आने लगे; सबको बसानेवाले देवो! हविर्भागोंको भरपूर देते हुए एवं उन्हें इष्ट स्थानमें पहुँचाते हुए हमारे लिए धन भाण्डारोंको यहाँपर धर दो।'

आ नो विश्वे सजोषसो देवासो गन्तनोप नः। वसवो रुद्रा अवसे न आगमञ्छृण्वन्तु मरुतो हवम् ॥ (ऋ. ८।५४) [वाल. ६] ३

'सभी देव मिलजुलकर हमारे लिए समीप आ जायँ, वसु एवं रुद्र हमारे संरक्षणके लिए आवें तथा मरुत् वीर भी हमारी पुकार सुन लें।'

वयमिद् वः सुदानवः क्षियन्तो यान्तो अध्वन्ना। देवा वृधाय हूमहे ॥ (ऋ. ८।८३।६)

'हे अच्छे दान शूर देवो! हम तो घरमें रहते हुए या मार्गपरसे आवागमन करते हुए तुम्हें ही वृद्धिका कार्य करनेके लिए बुलाते हैं।'

इस प्रकार देवोंको बुलाकर वैदिक मन्त्रोंके दर्शन करनेहारे प्रतिभाशाली कवि उनसे कैसी प्रार्थना करते हैं तथा अपनी आकांक्षाओंको किस तरह उनके सम्मुख पेश करते हैं यह निम्न मंत्रोंमें देखने योग्य है—

दिविस्पृशं यज्ञमस्माकमश्विना जीराध्वरं कृणुतं सुम्नमिष्टये। (ऋ. १०।३६।६)

'हे अश्विनौ! तुम दोनों हमारे यज्ञको द्युलोकको छूनेवाला याने अति उच्च कोटिका तथा शीघ्र हिंसारहित होनेवाला बना दो और हमारा इच्छित सिद्ध हो जाय इस हेतु सुखका निर्माण कर डालो।'

उपह्वये सुहवं मारुतं गणं पावकमृष्वं सख्याय शंभुवम्। रायस्पोषं सौश्रवसाय धीमहि... ॥ (ऋ. १०।३६।७)

'मैं पवित्रतामय वायुमंडलका सृजन करनेहारे एवं तेजस्वी वीर मरुतोंके दलको अपने निकट बुलाता हूँ ताकि मित्रताके लिए वह सुखदायक प्रतीत होवे और हम उत्कृष्ट कीर्ति पानेके लिए धनसंपदाको बढानेके ढंग सोचते हैं।'

यद् वो देवा ईमहे तद् ददातन। जैत्रं क्रतुं रयिमद् वीरवद्यशस्तद् देवानामवो अद्या वृणीमहे। (ऋ. १०।३६।१०)

'हे देवो! हम तुमसे जो मांगते हैं उसे दे डालो; वीरतायुक्त, धनसंपन्न यश एवं जयिष्णु कार्यक्रम हमें मिल जाय; अतः आज हम देवोंके उस संरक्षणके ढंगको अपने लिए चुन लेते हैं।'

ये सवितुः सत्यसवस्य विश्वे मित्रस्य व्रते वरुणस्य देवाः। ते सौभगं वीरवद् गोमदप्नो दधातन द्रविणं चित्रमस्मे ॥ (ऋ. १०।३६।१३)

'जो सारे देव सत्यके प्रेरणकर्ता सविता एवं मित्र तथा वरुणके निर्दिष्ट, व्रतके अनुकूल कार्य करते हैं वे हमें वीरतापूर्ण, गोधन संकुल अच्छे ऐश्वर्यवाले कार्य और अनूठा धन दे डालें।'

यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः। कर्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा ॥ (ऋ. ६।५१।१५)

'हे देवो! तुम तो सचमुच चतुर्दिक द्योतमान एवं अच्छे दान शूर हो तथा तुममें इन्द्र प्रमुख है; मार्गपरसे यात्रा करते समय मिलजुलकर रक्षा करनेवाले तुम देव हमारे लिए सुखका प्रबन्ध कर डालो।'

आत्मरक्षाका भाव मानवमें किस तीव्रतासे उमड पडता है यह निम्न मंत्रमें दीख पडता है—

अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः। अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥ (ऋ. ६।५२।४)

'प्रतिदिन उत्पन्न होते हुए उषःकाल मुझको बचाएँ प्रतिपल जलसे पूर्ण होती हुई नदियाँ मेरी रक्षा करें, अटल रूपसे

खडे पहाड मेरा संरक्षण करें तथा देवोंको बुलानेमें पितर अपने संरक्षणकी छत्रछायामें मुझे रख दें।'

द्यावा नो अद्य पृथिवी अनागसो मही त्रायेतां सुविताय मातरा । उषा उच्छन्त्यप बाधता-मघं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥ (ऋ. १०।३५)

'आज हमें दोष रहित, महान् एवं मातृतुल्य द्यावापृथिवी सुरक्षित रखें ताकि हमारी भलाई हो जाए; उदित होती हुई उषा पापको दूर कर दे और हम चाहते हैं कि भलीभाँति धधकनेवाला अग्नि हितकारक बने।'

नू देवासो वरिवः कर्तना नो भूत नो विश्वेऽवसे सजोषाः । समस्मे इषं वसवो ददीरन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ (ऋ. ७।४८।४)

'हे देवो! हमारे लिए तुम धनसंपदाका निर्माण करो, और तुम सभी मिलकर हमारी रक्षा करनेके लिए कटिबद्ध रहो; हे वसुओ! हमें तुम अन्नसामग्री भलीभाँति देते रहो और कल्याण कारण साधनोंसे हमेशा हमारे संरक्षणका गुरुतर कार्यभार संपन्न करो।'

विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञियाः ... । मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेषु इद् वो अन्तमा मदेम ॥ (ऋ. ६।५२।१४)

'मेरे कथनको सभी यज्ञमें बैठने योग्य देव सुनलें; मैं कभी निन्दनीय वचन तुम्हारे लिए न कहूँ और तुम्हारे किये सुखकारक प्रबंधोंमें हम तुम्हारे अत्यन्त निकटवर्ती होकर आनन्दित बनें।'

स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ सूक्तेन महा नमसा विवासे । अस्मिन् नो अद्य विदथे यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम् ॥ (ऋ. ६।५२।१७)

'दर्भमय आसनके बिछानेपर और अग्निके भलीभाँति प्रदीप्त होनेपर बडे सूक्तसे एवं नमनसे मैं उपासन करता हूँ। आज हमारे इस यज्ञमें उपस्थित होकर सारे तुम पूजनीय देव हमारे दिये हुए इस हविके परिणामस्वरूप हर्षित बनो।'

इदं देवा शृणुत ये यज्ञिया स्थ...पाशे स बद्धो दुरिते नि युज्यताम् यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥ (अथर्व. २।१२।२)

'हे देवो! जो तुम यजनीय हो तो इस मेरे वचनको सुन लो; जो कोई हमारे इस मनको हिंसित करे अर्थात् कष्ट दे वह फंदेमें बँधा जाकर बुराईमें गिर जाय।'

देवोंका निम्नलिखित वर्णन देखने योग्य है—

नहि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारकः । विश्वे सन्तो महान्त इत् ॥ (ऋ. ८।३०।१)

'हे देवो! तुममें कोई न छोटा शिशु है न बालक अपितु सारे ही निश्चयपूर्वक बडे हैं।'

यथा वशन्ति देवास्तथेदसत् तदेषां नकिरा मिनत् । अरावा चन मर्त्यः ॥ (ऋ. ८।२८।४)

'जैसा देव इच्छा करते हैं वैसे ही निश्चयपूर्वक बन जाता है। उनके इस सामर्थ्यको न कोई विनष्ट कर पाता है, कृपण मानव भी इनके सामने झुक जाते हैं।'

सदा देवा अरेपसः । (सामवेद ४४२)

'देव हमेशा निर्दोष रहते हैं।'

इसी कारण इन देवोंकी मनःपूर्वक प्रशंसा की जाती है। देवोंके संरक्षणका परिणाम निम्न मंत्रमें बताया है—

ऋते स विन्दते युधः सुगेभिर्यात्यध्वनः । अर्यमा मित्रो वरुणः सरातयो यं त्रायन्ते स जोषसः ॥ (ऋ. ८।२७।१७)

'जिसकी रक्षाका भार हाथमें दान लेकर मित्र, वरुण एवं अर्यमा मिलकर उठाते हैं वह बिना युद्ध ठाने धन पाता है और सुगम साधनोंसे मार्गका अन्त पा लेता है अर्थात् मार्गपर यातायात करनेमें उसे तनिक भी कठिनाई नहीं प्रतीत होती है।' इसी कारण उनकी सराहना की जाती है।

अस्ति हि वः सजात्यं रिशादसो देवासो अस्त्याप्यम् । प्र णः पूर्वस्मै सुविताय वोचत मक्षू सुम्नाय नव्यसे ॥ (ऋ० ८।२७।१०)

'हे शत्रुविध्वंसक देवो! तुममें सचमुच बंधुता एवं सजातीयताके भाव विद्यमान हैं इसलिए अब हमसे शीघ्र भली भाँति कहदो कि पूर्वकालीन भलाई एवं नये ढंगके सुखको पानेके लिए हम क्या करें।'

वि नो देवासो अद्रुहोऽच्छिद्रं शर्म यच्छत । न यद् दूराद्वसवो नू चिदन्तितो वरूथमादधर्षति ॥ (ऋ० ८।७।१९)

'द्रोह न करनेहारे एवं सबको बसानेवाले हे देवो! हमें वह छिद्ररहित याने त्रुटिरहित स्वीकरणीय सुख दे डालो जिसे न कोई दूरसे या समीपसे ही आक्रान्त करनेका साहस कर सके।'

देवंदेवं वोऽवसे देवंदेवमभिष्टये। देवंदेवं हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया॥ (ऋ. ८।२७।१३)

'अपनी रक्षाके लिए तुममेंसे प्रत्येक देवको हम बुलाते हैं, अपनी इच्छा पूर्ण हो इसलिए हरएक देवको निमंत्रित करते हैं और द्योतमान बुद्धिशक्तिसे निष्पादित स्तोत्रोंसे प्रशंसा करते हुए अन्नकी प्राप्ति हो इस हेतुसे प्रति देवको हम समीप आनेके लिए विनति करते रहें।'

देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकं सरातयः। ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवो विदः॥ (ऋ. ८।२७।१४)

'सारे देव तो अपने साथ देन लेकर और एक विचारवाले होकर तथा एकत्रित रूपसे मनुको दान देते हैं और हमारी इच्छा है कि वे आज हमारे लिए और हमारी सन्तानके लिए भी धनके दाता बनें।'

'विश्वे देवा' सूक्तोंके स्मरणीय वाक्य

वैदिक कवि विभिन्न देवोंकी स्तुति करते हुए उनसे क्या अपेक्षा रखते हैं तथा उनके सम्मुख किस तरह अपनी आवश्यकताओंका विवरण करते हुए अपनी महत्त्वपूर्ण एवं शाश्वतिक मांग प्रस्तुत करते हैं, इस विषयपर निम्न मंत्रांशोंसे पर्याप्त प्रकाश पडता है और साथ ही वैदिक सूक्तों एवं मंत्रोंके दर्शनकर्ताओंके जीवन विषयक दृष्टिकोणको भी अत्यधिक प्रस्फुट करनेमें बडी भारी सहायता मिल सकती है।

शत्रुओं तथा बुराइयोंको सुदूर भगाकर सुख एवं भलाईकी अक्षुण्ण प्राप्ति मानवमात्रका प्रमुख उद्देश्य है और वैदिकसूक्तोंमें इसकी एक प्रबलतम झाँकी हमें देखने मिलती है। दुश्मनों तथा बुराइयोंके मटियामेट होनेपर आर्थिक सुस्थितिका सुप्रबंध समाधानकारक ढंगसे करके सुदीर्घ जीवनका सुदीर्घ कालतक इष्टमित्रों एवं पुत्र-पौत्रों समेत उपभोग लेना भी मानवका दूसरा एक अतिप्रबल अदम्य उद्देश्य है और इसकी भी झलक वेदमंत्रोंमें यथेष्ट उपलब्ध होती हैं। अस्तु, वेदके ही शब्दोंमें वैदिक ऋषियोंकी अदम्य लालसासे परिचित होनेके लिए निम्न वचनोंकी ओर ध्यान देना चाहिए।

ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः। बाधमाना अप द्विषः॥ (ऋ. १०।९०।३)

'(ते अमृताः) वे अमरपनका उपभोग लेनेवाले देव (मर्त्येभ्यः अस्मभ्यं) मरणशील हम मानवोंको, (द्विषः अप बाधमानाः) द्वेष करनेवालोंको दूर मार भगाते हुए (शर्म यंसन्) सुखका प्रदान करें।'

...ऊतये ... हवामहे। रथं न दुर्गात् ...विश्व-स्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन॥ (ऋ. १।१०६।१)

'हम संरक्षणार्थ देवों तथा दिव्य दल बलको बुलाते हैं और जिस प्रकार बीहड स्थानमेंसे या दुर्गम जगहसे रथको खींच बाहर निकालते हैं उसी तरह, हे देवो! हमें समूचे पाप या कष्टमेंसे पूर्णतया बाहर निकाल हमारा बेडा पार कर दो।'

... यूयं द्वेषांसि सनुतर्युयोत ... अद्या च नो मृळयत अपरं च॥ (ऋ. २।२९।२)

'तुम द्वेषोंको गुप्तस्थानमें भेजकर हमसे दूर करो और आज तथा बादमें भी सुख देते रहो।'

यूयं नो स्वस्ति दधात। (ऋ. २।२९।३)

... देवा यूयमिदापयः स्थ ते मृळत नाधमानाय मह्यम् ... मा युष्मावत्स्वापिषु श्रमिष्म। (ऋ. २।२९।४)

'तुम हमारे कल्याणका प्रबंध करो; हे देवो! तुम ही सचमुच हमारे आप्त हो और ऐसे वे तुम याचना करनेवाले मुझको सुख दे दो, क्योंकि तुम्हारे जैसे आप्तोंके मौजूद होनेपर हमें थकावट न होने पाय।'

आरे पाशा आरे अघानि देवा। (ऋ. २।२९।५)

'हे देवो! फंदे और पाप हमसे दूर रहें।' अर्थात् कभी जालों तथा पापोंके चँगुलमें हम न फँस जायँ।

यच्छन्तु नो मरुतः शर्म भद्रम्। (ऋ. ३।५४।२०)

'वीर मरुत् हमें कल्याणकारक सुखका प्रदान करें।'

... अवन्तु नः। मरुतो मृळयन्तु नः। (ऋ. १।२३।१२)

'वीर मरुत् हमारी रक्षा करें और हमें सुख दे दें।'

देवा नो ⋯ सदमित् वृधे असन्⋯रक्षितारो दिवे दिवे । (ऋ. १।८९।१)

' प्रतिदिन रक्षाका कार्य सुचारुरूपसे चलाते हुए देव हमेशा हमारे संवर्धनार्थ चेष्टाशील रहें । '

मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह । (ऋ. १।८९।७)

' मननशील तथा विद्वानोंके दृष्टिकोणको साथ रखनेवाले सभी देव हमारे लिए संरक्षणकी आयोजना बनाकर इधर पधारें । '

देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे । (ऋ. १।८९।२)

' हम देवोंकी मित्रताको प्राप्त करें और हमारा जीवन अक्षुण्ण रूपसे प्रचलित रहे इसलिए देव हमारी आयुष्य रेखाको बढा देवें । '

⋯विश्वा द्वेषांसि सनुतर्युयोत⋯ (ऋ. १०।१००।९)

' सभी द्वेषभावोंको हमसे दूर करो । '

आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतन⋯ (ऋ. १०।६३।१२)

' हे देवो ! द्वेषभावको हमसे हटा दो । '

गोभिः ष्याम यशसो जनेष्वा ।
सदा देवास इळया सचेमहि ॥ (ऋ. १०।६४।११)

' हम गोधनसे युक्त होकर जनतामें यशस्वी बन जायँ और हे देवो ! हमेशा हम अन्नसे युक्त रहें । '

⋯उरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये । (ऋ. १०।६३।१२)

' हमारे हितके लिए विशाल सुख दे डालो । '

ते ⋯अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये । (ऋ. १०।६३।७)

' ऐसे वे देवो ! तुम भयरहित सुखका प्रदान करो और भलाई हो जाय इसलिए हमारे लिए सुगम एवं सुन्दर मार्ग बना दो अर्थात् हमें बीहड सडकोंपर न चलना पडे । '

मा प्र गाम पथो वयं ⋯
मान्तः स्थुर्नो अरातयः । (ऋ. १०।५७।१)

' हम मार्ग छोडकर दूर भटकते न चलें और हमारे शत्रुओंको अन्दर स्थान न मिले । अर्थात् हम मार्गभ्रष्ट न हों तथा शत्रु हमारे भीतर जगह न पा सकें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए । '

विश्वे नो देवा अवसागमन्तु ।
विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे । (ऋ. १०।३५।१३)

' सभी देव संरक्षणकी आयोजना साथ लेकर हमारे निकट पहुँच जायँ और समूचा द्रव्य एवं बल हमारे लिए रहे । '

मा दुर्विदत्रा निर्ऋतिर्न ईशत ⋯। (ऋ. १०।३६।२)

' बुरे ज्ञानवाली पीडा हमपर शासन न करे । ' ज्ञानका दुरुपयोग करनेवाली बुरी मनोवृत्तिका शासन या प्रभुत्व प्रस्थापित न होने पाय ।

अवन्तु नो अमृतासस्तुरासः (ऋ. ५।४२।५)

' अमरपनको प्राप्त हुए देव त्वरापूर्वक कार्य करनेवाले बनकर हमारी रक्षा करे । '

देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं । मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् । (ऋ. ५।४२।१६)

' मेरे लिए हरएक देव सुगमतापूर्वक बुलानेयोग्य बन जाय और हमें भूमाता दुर्बुद्धिमें न रखे । '

सदा सुगः पितुमाँ अस्तु पन्था । (ऋ. ३।५४।२१)

' मार्ग हमेशा सुखपूर्वक तथा अन्न युक्त रहे । ' यह अभिलाषा तो यात्रियों एवं विदेशोंमें जानेवाले लोगोंके अन्तस्तलमें ही जागृत हुआ करती है और वैदिक कवि यात्रा करनेके अभ्यस्त थे ऐसा स्पष्ट होता है ।

अरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः । (अथर्व. ५।३।५)
वयं सुषखायो भवेम तरन्तो विश्वा दुरिता स्याम । (ऋ. १०।३१।१)

' हम लोग अच्छे वीर एवं अक्षीण और निर्दोष शरीरवाले बनें, सभी बुराइयोंको लाँघते चलें । '



दैवत—संहिता ।

(ऋग्यजुःसामाथर्वणां संहितानां सर्वान् मन्त्रान् दैवतानुसारेण संगृह्य निर्मिता ।)

१० विश्वे देवाः ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।३।७-९)

(१-३) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री ।

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत । दाश्वांसो दाशुषः सुतम् *७
विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमा गन्त तूर्णयः । उस्रा इव स्वसराणि ८
विश्वे देवासो अस्रिध एहिमायासो अद्रुहः । मेधं जुषन्त वह्नयः ९ ३

॥ २ ॥ (ऋ० १।१४।१-१२)

(४-१८) मेधातिथिः। काण्वः। गायत्री ।

ऐभिरग्ने दुवो गिरो विश्वेभिः सोमपीतये । देवेभिर्याहि यक्षि च १
आ त्वा कण्वा अहूषत गृणन्ति विप्र ते धियः । देवेभिरग्न आ गहि २ ५
इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम् । आदित्यान् मारुतं गणम् +३
प्र वो भ्रियन्त इन्दवो मत्सरा मादयिष्णवः । द्रप्सा मध्वश्चमूषदः ४
ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः । हविष्मन्तो अरंकृतः ५
घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः । आ देवान्त्सोमपीतये ६
तान् यजत्राँ ऋतावृधो ऽग्ने पत्नीवतस्कृधि । मध्वः सुजिह्व पायय ७ १०
ये यजत्रा य ईड्या—स्ते ते पिबन्तु जिह्वया । मधोरग्ने वषट्कृति ८
आकीं सूर्यस्य रोचनाद् विश्वान् देवाँ उषर्बुधः । विप्रो होतेह वक्षति ९
विश्वेभिः सोम्यं मध्व—ग्न इन्द्रेण वायुना । पिबा मित्रस्य धामभिः १०
त्वं होता मनुर्हितो ऽग्ने यज्ञेषु सीदसि । सेमं नो अध्वरं यज ११
युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः । ताभिर्देवाँ इहा वह १२ १५

---

* ऋ. १,३,७ = वा० य० ७,३३ । + ऋ० १,१४,३ = वा० य० ३३,४५ ।

॥ ३ ॥ (ऋ० १।२३।१०-१२)

विश्वान् देवान् हवामहे मरुतः सोमपीतये । उग्रा हि पृश्निमातरः १०
जयतामिव तन्यतु— र्मरुतामेति धृष्णुया । यच्छुभं याथना नरः ११
हस्काराद् विद्युतस्पर्य— तो जाता अवन्तु नः । मरुतो मृळयन्तु नः १२ १८

॥ ४ ॥ (ऋ० १।८९।१-१०)×

(१९-२७) गोतमो राहूगणः । १-५,७ जगती; ६ विराट्-स्थाना; ८-१० त्रिष्टुप् ।

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतो ऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे अस— न्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे १
देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम् ।
देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे २ २०
तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।
अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ३
तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत् पिता द्यौः ।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुव— स्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ४
तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ५
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ※६
पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ७ २५
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभि— र्व्यशेम देवहितं यदायुः +८
शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ९
अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्ष— मदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् +१० २८

× ऋ० १।८९।१-१० = वा० य० २५,१४-२३; ※ ऋ० १।८९।१० = अथर्व. ७,६,१;
+ ऋ० १।८९।६,८ = सा० १८७४-७५ ।

॥ ५ ॥ (ऋ० १।९०।१-९)× गायत्री; ९ अनुष्टुप् ।

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः १
ते हि वस्वो वसवाना--स्ते अप्रमूरा महोभिः । व्रता रक्षन्ते विश्वाहा २ ३०
ते अस्मभ्यं शर्म यंस--न्नमृता मर्त्येभ्यः । बाधमाना अप द्विषः ३
वि नः पथः सुविताय चियन्त्विन्द्रो मरुतः । पूषा भगो वन्द्यासः ४
उत नो धियो गोअग्राः पूषन् विष्णवेवयावः । कर्ता नः स्वस्तिमतः ५
मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ६
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ७ ३५
मधुमान्नो वनस्पति--र्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ८
शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ९ ३७

॥ ६ ॥ (ऋ० १।१०५।१-१९)

(३८-५६) त्रित आप्त्यः, कुत्स आङ्गिरसो वा । पङ्क्तिः; ८ यवमध्या महाबृहती; १९ त्रिष्टुप् ।

चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी +१
अर्थमिद् वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम् ।
तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी २
मो षु देवा अदः स्व१--रव पादि दिवस्परि ।
मा सोम्यस्य शंभुवः शूने भूम कदा चन वित्तं मे अस्य रोदसी ३ ४०
यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद् दूतो वि वोचति ।
क्व ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद् बिभर्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी ४
अमी ये देवाः स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः ।
कद् व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुति--र्वित्तं मे अस्य रोदसी ५
कद् व ऋतस्य धर्णसि कद् वरुणस्य चक्षणम् ।
कदर्यम्णो महस्पथा--ऽति क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ६
अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित् ।
तं मा व्यन्त्याध्यो३ वृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ७
सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी ८ ४५

× ऋ० १,९०,६-९ = वा० य० १३,२७ = २९; ३६,९ ।　　+ वा० य० ३३,९०; अथर्व. १८,४,८९; सा० ४१७

अमी ये सप्त रश्मय—स्तत्रा मे नाभिरातता ।
त्रितस्तद् वेदाप्त्यः स जामित्वाय रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी ९
अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः ।
देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतु—र्वित्तं मे अस्य रोदसी १०
सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः ।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ११
नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी १२
अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम् ।
स नः सत्तो मनुष्वदा देवान् यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसी १३ ५०
सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं मे अस्य रोदसी १४
ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे ।
व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी १५
असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः ।
न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी १६
त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये ।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी १७
अरुणो मा सकृद् वृकः पथा यन्तं ददर्श हि ।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी वित्तं मे अस्य रोदसी १८ ५५
एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तो ऽभि ष्याम वृजने सर्ववीराः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता—मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः १९ ५६

॥ ७ ॥ (ऋ० १।१०६।१-७)

(५७-६६) कुत्स आङ्गिरसः । जगती; ७ त्रिष्टुप् ।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन १
त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शंभुवः । रथं न दुर्गाद्० २
अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना उत देवीपुत्रे ऋतावृधा । रथं न दुर्गाद्० ३ ५९

नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे । रथं न दुर्गाद्० ४ ६०
बृहस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि शं योर्यत् ते मनुर्हितं तदीमहे । रथं न दुर्गाद्० ५
इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निबाळ्ह ऋषिरह्वदूतये । रथं न दुर्गाद्० ६
देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता‒मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ७ ६३

॥ ८ ॥ (ऋ० १।१०७।१-३) त्रिष्टुप्।

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्न‒मादित्यासो भवता मृळयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्या‒दंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत्
उप नो देवा अवसा गम‒न्त्वङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः ।
इन्द्र इन्द्रियैर्मरुतो मरुद्भि‒रादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् २ ६५
तन्न इन्द्रस्तद् वरुणस्तदग्नि‒स्तदर्यमा तत् सविता चनो धात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता‒मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ३ ६६

॥ ९ ॥ (ऋ० १।१२१।१-१५)
(६७-९६) कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः। (इन्द्रो वा)। त्रिष्टुप्।

कदित्था नॄँः पात्रं देवयतां श्रवद् गिरो अङ्गिरसां तुरण्यन् ।
प्र यदानड्विश आ हर्म्यस्यो‒रु क्रंसते अध्वरे यजत्रः १
स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषाय‒दृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः ।
अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्रां मेनामश्वस्य परि मातरं गोः २
नक्षद्धवमरुणीः पूर्व्यं राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु द्यून् ।
तक्षद् वज्रं नियुतं तस्तम्भद् द्यां चतुष्पदे नर्याय द्विपादे ३
अस्य मदे स्वर्यं दा ऋतायो‒पीवृतमुस्रियाणामनीकम् ।
यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्निवर्त‒दप द्रुहो मानुषस्य दुरो वः ४
तुभ्यं पयो यत् पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणे भुरण्यू ।
शुचि यत् ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ५
अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु प्र रोच्यस्या उषसो न सूरः ।
इन्दुर्येभिराष्ट स्वेदुहव्यैः स्रुवेण सिञ्चञ्जरणाभि धाम ६
स्विध्मा यद् वनधितिरपस्यात् सूरो अध्वरे परि रोधना गोः ।
यद्ध प्रभासि कृत्व्याँ अनु द्यू‒नर्नविशे पश्विषे तुराय ७ ७३

अष्टा महो दिव आदो हरी इह द्युम्नासाहमभि योधान उत्सम् ।
हरिं यत् ते मन्दिनं दुक्षन् वृधे गोरभसमद्रिभिर्वाताप्यम् ८
त्वमायसं प्रति वर्तयो गो-र्दिवो अश्मानमुपनीतमृभ्वा ।
कुत्साय यत्र पुरुहूत वन्व-ञ्छुष्णमनन्तैः परियासि वधैः ९ ७५
पुरा यत् सूरस्तमसो अपीते-स्तमद्रिवः फलिगं हेतिमस्य ।
शुष्णस्य चित् परिहितं यदोजो दिवस्परि सुग्रथितं तदादः १०
अनु त्वा मही पाजसी अचक्रे द्यावाक्षामा मदतामिन्द्र कर्मन् ।
त्वं वृत्रमाशयानं सिरासु महो वज्रेण सिष्वपो वराहुम् ११
त्वमिन्द्र नर्यो याँ अवो नॄन् तिष्ठा वातस्य सुयुजो वहिष्ठान् ।
यं ते काव्य उशना मन्दिनं दाद् वृत्रहणं पार्यं ततक्ष वज्रम् १२
त्वं सूरो हरितो रामयो नॄन् भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र ।
प्रास्य पारं नवतिं नाव्याना-मपि कर्तमवर्तयोऽयज्यून् १३
त्वं नो अस्या इन्द्र दुर्हणायाः पाहि वज्रिवो दुरितादभीके ।
प्र नो वाजान् रथ्योऽ अश्वबुध्या-निषे यन्धि श्रवसे सूनृतायै १४ ८०
मा सा ते अस्मत् सुमतिर्वि दसद् वाजप्रमहः समिषो वरन्त ।
आ नो भज मघवन् गोष्वर्यो मंहिष्ठास्ते सधमादः स्याम १५ ८१

॥ १० ॥ (ऋ० १।१२२।१-१५) त्रिष्टुप्; ५-६ विराड्रूपा।

प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो यज्ञं रुद्राय मीळ्हुषे भरध्वम् ।
दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरै-रिषुध्येव मरुतो रोदस्योः १
पत्नीव पूर्वहूतिं वावृधध्या उषासानक्ता पुरुधा विदाने ।
स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः २
ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा ममत्तु वातो अपां वृषण्वान् ।
शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं न-स्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ३
उत त्या मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तौशिजो हुवध्यै ।
प्र वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा रास्पिनस्यायोः ४ ८५
आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नंशे ।
प्र वः पूष्णे दावन आँ अच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः ५ ८६

श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमो-त श्रुतं सदने विश्वतः सीम् ।
श्रोतु नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः ६
स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेषु पज्रे ।
श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासो अग्मन् ७
अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः सचा सनेम नहुषः सुवीराः ।
जनो यः पज्रेभ्यो वाजिनीवा-नश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः ८
जनो यो मित्रावरुणावभिध्रु-गपो न वां सुनोत्यक्ष्णयाध्रुक् ।
स्वयं स यक्ष्मं हृदये नि धत्त आप यदीं होत्राभिर्ऋतावा ९ ९०
स व्राधतो नहुषो दंसुजूतः शर्धस्तरो नरां गूर्तश्रवाः ।
विसृष्टरातिर्याति बाळ्हसृत्वा विश्वासु पृत्सु सदमिच्छूरः १०
अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः ।
नभोजुवो यन्निरवस्य राधः प्रशस्तये महिना रथवते ११
एतं शर्धं धाम यस्य सूरे-रित्यवोचन् दशतयस्य नंशे ।
द्युम्नानि येषु वसुताती रारन् विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम् १२
मन्दामहे दशतयस्य धासे-र्द्विर्यत् पञ्च बिभ्रतो यन्त्यन्ना ।
किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नॄन् १३
हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्ण-स्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ।
अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरो-स्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे १४ ९५
चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्व-स्त्रयो राज्ञ आयवसस्य जिष्णोः ।
रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः स्यूमगभस्तिः सूरो नाद्यौत् १५ ९६

॥ ११ ॥ (ऋ० १।१३९।१,११)

(९७-९८) परुच्छेपो दैवोदासिः । १ अत्यष्टिः, ११ त्रिष्टुप् ।×

अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु तच्छर्धो दिव्यं वृणीमह
इन्द्रवायू वृणीमहे ।
यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा संदायि नव्यसी ।
अध प्र सू न उप यन्तु धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः १
ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ११ ९८

× ऋ० १,१३९,११ = वा० य० ७,१९ ।

॥ १२ ॥ (ऋ० १।१६४।१-४१)

(९९-१३९ दीर्घतमा औचथ्यः । त्रिष्टुप्, १२,१५,२३,२९,३६,४१ जगती ।

अस्य वामस्य पलितस्य होतु- स्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्या- त्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् १
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्र- मेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः २ १००
इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ३
को ददर्श प्रथमं जायमान- मस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित् को विद्वांसमुप गात् प्रष्टुमेतत् ४
पाकः पृच्छामि मनसाविजानन् देवानामेना निहिता पदानि ।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून् वि तत्निरे कवय ओतवा उ ५
अचिकित्वाश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मने न विद्वान् ।
वि यस्तस्तम्भ षळिमा रजां- स्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ६
इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदा- स्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ७ १०१
माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ८
युक्ता माताऽऽसीद् धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद् गर्भो वृजनीष्वन्तः ।
अमीमेद् वत्सो अनु गामपश्यद् विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ९
तिस्रो मातॄस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् १०
द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य ।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ११
पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम् १२ ११०
पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः १३ १११

सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा १४
साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद् यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः १५
स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत् १६
अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अन्तः १७ ११५
अवः परेण पितरं यो अस्या—नुवेद पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्र वोचद् देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् १८
ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहु—र्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः ।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति १९
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्व—त्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति २०
यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भाग—मनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश २१
यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद २२ १२०
यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद् वा त्रैष्टुभं निरतक्षत ।
यद् वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत् तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशुः २३
गायत्रेण प्रति मिमीते अर्क—मर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदा ऽक्षरेण मिमते सप्त वाणीः २४
जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद् रथंतरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहु—स्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा २५
उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नो ऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम् २६
हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय २७ १२५

गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ ।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः २८ १२६
अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता ।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद् भवन्ती प्रति वव्रिमौहत २९
अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ३०
अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ३१
य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निरृतिमा विवेश ३२ १३०
द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ३३
पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ३४
इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ३५
सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ३६
न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि ।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद् वाचो अश्नुवे भागमस्याः ३७ १३५
अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ३८
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्त इमे समासते ३९
सूयवसाद् भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ४०
गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ४१ १३९

॥ १३ ॥ (ऋ० १।१८६।१-११)
(१४०-१५०) अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

आ न इळाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु ।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा १ १४०
आ नो विश्व आस्क्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।
भुवन् यथा नो विश्वे वृधासः करन्त्सुषाहा विथुरं न शवः २
प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषे ऽग्निं शस्तिभिस्तुर्वणिः सजोषाः ।
असद् यथा नो वरुणः सुकीर्ति—रिषश्च पर्षदरिगूर्तः सूरिः ३
उप व एषे नमसा जिगीषो—षासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
समाने अहन् विमिमानो अर्कं विषुरूपे पयसि सस्मिन्नूधन् ४
उत नोऽहिर्बुध्न्यो मयस्कः शिशुं न पिप्युषीव वेति सिन्धुः ।
येन नपातमपां जुनाम मनोजुवो वृषणो यं वहन्ति ५
उत न ईं त्वष्टा गन्त्वच्छा स्मत् सूरिभिरभिपित्वे सजोषाः ।
आ वृत्रहेन्द्रश्चर्षणिप्रा—स्तुविष्टमो नरां न इह गम्याः ६ १४५
उत न ईं मतयोऽश्वयोगाः शिशुं न गावस्तरुणं रिहन्ति ।
तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुरभिष्टमं नरां नसन्त ७
उत न ईं मरुतो वृद्धसेनाः स्मद् रोदसी समनसः सदन्तु ।
पृषदश्वासोऽवनयो न रथा रिशादसो मित्रयुजो न देवाः ८
प्र नु यदेषां महिना चिकित्रे प्र युञ्जते प्रयुजस्ते सुवृक्ति ।
अध यदेषां सुदिने न शरु—र्विश्वमेरिणं प्रुषायन्त सेनाः ९
प्रो अश्विनाववसे कृणुध्वं प्र पूषणं स्वतवसो हि सन्ति ।
अद्वेषो विष्णुर्वात ऋभुक्षा अच्छा सुम्नाय ववृतीय देवान् १०
इयं सा वो अस्मे दीधितिर्यजत्रा अपिप्राणी च सदनी च भूयाः ।
नि या देवेषु यतते वसूयु—र्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ११ १५०

॥ १४ ॥ (ऋ० २।२७।१-७)
(१५१-५७) कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । त्रिष्टुप् ।

धृतव्रता आदित्या इषिरा आरे मत् कर्त रहसूरिवागः ।
शृण्वतो वो वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वाँ अवसे हुवे वः
*

युयं देवाः प्रमतिर्यूयमोजो यूयं द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।
अभिक्षत्तारो अभि च क्षमध्वमद्या च नो मृळयतापरं च २
किमू नु वः कृणवामापरेण किं सनेन वसव आप्येन ।
यूयं नो मित्रावरुणादिते च स्वस्तिमिन्द्रामरुतो दधात ३
हये देवा यूयमिदापयः स्थ ते मृळत नाधमानाय मह्यम् ।
मा वो रथो मध्यमवाळृते भून्मा युष्मावत्स्वापिषु श्रमिष्म ४
प्र व एको मिमय भूर्यागो यन्मा पितेव कितवं शशास ।
आरे पाशा आरे अघानि देवा मा माधि पुत्रे विमिव ग्रभीष्ट ५ १५५
अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम् ।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्तादवपदो यजत्राः ६
माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ७ १५७

॥ १५ ॥ (ऋ० २।३१।१-७)

(१५८-६७) गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । जगती, ७ त्रिष्टुप् ।

अस्माकं मित्रावरुणावतं रथमादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
प्र यद् वयो न पप्तन्वस्मनस्परि श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः १
अध स्मा न उदवता सजोषसो रथं देवासो अभि विक्षु वाजयुम् ।
यदाशवः पद्याभिस्तित्रतो रजः पृथिव्याः सानौ जङ्घनन्त पाणिभिः २
उत स्य न इन्द्रो विश्वचर्षणिर्दिवः शर्धेन मारुतेन सुक्रतुः ।
अनु नु स्थात्यवृकाभिरूतिभी रथं महे सनये वाजसातये ३ १६०
उत स्य देवो भुवनस्य सक्षणिस्त्वष्टा ग्नाभिः सजोषा जूजुवद् रथम् ।
इळा भगो बृहद्दिवोत रोदसी पूषा पुरंधिरश्विनावधा पती ४
उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशोषासानक्ता जगतामपीजुवा ।
स्तुषे यद् वां पृथिवि नव्यसा वचः स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे ५
उत वः शंसमुशिजामिव श्मस्यहिर्बुध्न्योऽज एकपादुत ।
त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधेऽपां नपादाशुहेमा धिया शमि ६
एता वो वश्म्युद्यता यजत्रा अतक्षन्नायवो नव्यसे सम् ।
श्रवस्यवो वाजं चकानाः सप्तिर्न रथ्यो अह धीतिमश्याः ७ १६४

॥ १६ ॥ (ऋ० २।४१।१३-१५) गायत्री ।

विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् । एदं बर्हिर्नि षीदत १३ १६५
तीव्रो वो मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः । एतं पिबत काम्यम् १४
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः । विश्वे मम श्रुता हवम् १५ १६७

॥ १७ ॥ (ऋ० ३।२०।१,५)

(१६८-६९) गाथी कौशिकः । त्रिष्टुप् ।

अग्निमुषसमश्विना दधिक्रां व्युष्टिषु हवते वह्निरुक्थैः ।
सुज्योतिषो नः शृण्वन्तु देवाः सजोषसो अध्वरं वावशानाः १
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं बृहस्पतिं सवितारं च देवम् ।
अश्विना मित्रावरुणा भगं च वसून् रुद्राँ आदित्याँ इह हुवे ५ १६९

॥ १८ ॥ (ऋ० ३।५४।१-२२)

(१७०-२११) प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा । त्रिष्टुप् ।

इमं महे विदथ्याय शूषं शश्वत् कृत्व ईड्याय प्र जभ्रुः ।
शृणोतु नो दम्येभिरनीकैः शृणोत्वग्निर्दिव्यैरजस्रः १ १७०
महि महे दिवे अर्चा पृथिव्यै कामो म इच्छञ्चरति प्रजानन् ।
ययोर्ह स्तोमे विदथेषु देवाः सपर्यवो मादयन्ते सचायोः २
युवोर्ऋतं रोदसी सत्यमस्तु महे षु णः सुविताय प्र भूतम् ।
इदं दिवे नमो अग्ने पृथिव्यै सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ३
उतो हि वां पूर्व्या आविविद्र ऋतावरी रोदसी सत्यवाचः ।
नरश्चिद् वां समिथे शूरसातौ ववन्दिरे पृथिवि वेविदानाः ४
को अद्धा वेद क इह प्र वोचद् देवाँ अच्छा पथ्या३ का समेति ।
ददृश्र एषामवमा सदांसि परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ५
कविर्नृचक्षा अभि षीमचष्ट ऋतस्य योना विघृते मदन्ती ।
नाना चक्राते सदनं यथा वेः समानेन क्रतुना संविदाने ६ १७५
समान्या वियुते दूरेअन्ते ध्रुवे पदे तस्थतुर्जागरूके ।
उत स्वसारा युवती भवन्ती आदु ब्रुवाते मिथुनानि नाम ७
विश्वेदेते जनिमा सं विविक्तो महो देवान् बिभ्रती न व्यथेते ।
एजद् ध्रुवं पत्यते विश्वमेकं चरत् पतत्रि विषुणं वि जातम् ८ १७७

सना पुराणमध्येम्यारा—न्महः पितुर्जनितुर्जामि तन्नः ।
देवासो यत्र पनितार एवै—रुरौ पथि व्युते तस्थुरन्तः ९
इमं स्तोमं रोदसी प्र ब्रवी—म्यृदूदराः शृणवन्नग्निजिह्वाः ।
मित्रः सम्राजो वरुणो युवान आदित्यासः कवयः पप्रथानाः १०
हिरण्यपाणिः सविता सुजिह्व—स्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानः ।
देवेषु च सवितः श्लोकमश्रे—रादस्मभ्यमा सुव सर्वतातिम् ११ १८०
सुकृत् सुपाणिः स्ववाँ ऋतावा देवस्त्वष्टावसे तानि नो धात् ।
पूषण्वन्त ऋभवो मादयध्व—मूर्ध्वग्रावाणो अध्वरमतष्ट १२
विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्तो दिवो मर्या ऋतजाता अयासः ।
सरस्वती शृणवन् यज्ञियासो धाता रयिं सहवीरं तुरासः १३
विष्णुं स्तोमासः पुरुदस्ममर्का भगस्येव कारिणो यामनि ग्मन् ।
उरुक्रमः ककुहो यस्य पूर्वी—र्न मर्धन्ति युवतयो जनित्रीः १४
इन्द्रो विश्वैर्वीर्यैः पत्यमान उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
पुरंदरो वृत्रहा धृष्णुषेणः संगृभ्या न आ भरा भूरि पश्वः १५
नासत्या मे पितरा बन्धुपृच्छा सजात्यमश्विनोश्चारु नाम ।
युवं हि स्थो रयिदौ नो रयीणां दात्रं रक्षेथे अकवैरदब्धा १६ १८५
महत् तद् वः कवयश्चारु नाम यद्ध देवा भवथ विश्व इन्द्रे ।
सख ऋभुभिः पुरुहूत प्रियेभि—रिमां धियं सातये तक्षता नः १७
अर्यमा णो अदितिर्यज्ञियासो ऽदब्धानि वरुणस्य व्रतानि ।
युयोत नो अनपत्यानि गन्तोः प्रजावान् नः पशुमाँ अस्तु गातुः १८
देवानां दूतः पुरुध प्रसूतो ऽनागान् नो वोचतु सर्वताता ।
शृणोतु नः पृथिवी द्यौरुतापः सूर्यो नक्षत्रैरुर्व१न्तरिक्षम् १९
शृण्वन्तु नो वृषणः पर्वतासो ध्रुवक्षेमास इळया मदन्तः ।
आदित्यैर्नो अदितिः शृणोतु यच्छन्तु नो मरुतः शर्म भद्रम् २०
सदा सुगः पितुमाँ अस्तु पन्था मध्वा देवा ओषधीः सं पिपृक्त ।
भगो मे अग्ने सख्ये न मृध्या उद् रायो अश्यां सदनं पुरुक्षोः २१ १९०
स्वदस्व हव्या समिषो दिदी—ह्यस्मद्र्य१क् सं मिमीहि श्रवांसि ।
विश्वाँ अग्ने पृत्सु ताञ्जेषि शत्रू—नहा विश्वा सुमना दीदिही नः २२ १९१

॥ १९ ॥ (ऋ० ३।५५।१-२२)

उषसः पूर्वा अध यद् व्यूषुर्महद् वि जज्ञे अक्षरं पदे गोः
व्रता देवानामुप नु प्रभूषन् महद् देवानामसुरत्वमेकम् १
मो षू णो अत्र जुहुरन्त देवा मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः ।
पुराण्योः सद्मनोः केतुरन्तर्महद् देवानामसुरत्वमेकम् २
वि मे पुरुत्रा पतयन्ति कामाः शम्यच्छा दीद्ये पूर्व्याणि ।
समिद्धे अग्नावृतमिद् वदेम महद् देवानामसुरत्वमेकम् ३
समानो राजा विभृतः पुरुत्रा शये शयासु प्रयुतो वनानु ।
अन्या वत्सं भरति क्षेति माता महद् देवानामसुरत्वमेकम् ४ १९५
आक्षित् पूर्वास्वपरा अनूरुत् सद्यो जातासु तरुणीष्वन्तः ।
अन्तर्वतीः सुवते अप्रवीता महद् देवानामसुरत्वमेकम् ५
शयुः परस्तादध नु द्विमाता ऽबन्धनश्चरति वत्स एकः ।
मित्रस्य ता वरुणस्य व्रतानि महद् देवानामसुरत्वमेकम् ६
द्विमाता होता विदथेषु सम्राळन्वग्रं चरति क्षेति बुध्नः ।
प्र रण्यानि रण्यवाचो भरन्ते महद् देवानामसुरत्वमेकम् ७
शूरस्येव युध्यतो अन्तमस्य प्रतीचीनं ददृशे विश्वमायत् ।
अन्तर्मतिश्चरति निष्षिधं गोर्महद् देवानामसुरत्वमेकम् ८
नि वेवेति पलितो दूत आस्वन्तर्महांश्चरति रोचनेन ।
वपूंषि बिभ्रदभि नो वि चष्टे महद् देवानामसुरत्वमेकम् ९ २००
विष्णुर्गोपाः परमं पाति पाथः प्रिया धामान्यमृता दधानः ।
अग्निष्टा विश्वा भुवनानि वेद महद् देवानामसुरत्वमेकम् १०
नाना चक्राते यम्या३ वपूंषि तयोरन्यद् रोचते कृष्णमन्यत् ।
श्यावी च यदरुषी च स्वसारौ महद् देवानामसुरत्वमेकम् ११
माता च यत्र दुहिता च धेनू सबर्दुघे धापयेते समीची ।
ऋतस्य ते सदसीळे अन्तर्महद् देवानामसुरत्वमेकम् १२
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ।
ऋतस्य सा पयसापिन्वतेळा महद् देवानामसुरत्वमेकम् १३ २०४

प्र ये धामानि पूर्व्याण्यर्चान् वि यदुच्छान् वियोतारो अमूराः ।
विधातारो वि ते दधुरजस्रा ऋतधीतयो रुरुचन्त दस्माः २ २३०
प्र पस्त्या३मदितिं सिन्धुमर्कैः स्वस्तिमीळे सख्याय देवीम् ।
उभे यथा नो अहनी निपात उषासानक्ता करतामदब्धे ३
व्यर्यमा वरुणश्चेति पन्था मिषस्पतिः सुवितं गातुमग्निः ।
इन्द्राविष्णू नृवदु षु स्तवाना शर्म नो यन्तममवद् वरूथम् ४
आ पर्वतस्य मरुतामवांसि देवस्य त्रातुरव्रि भगस्य ।
पात् पतिर्जन्यादंहसो नो मित्रो मित्रियादुत न उरुष्येत् ५
नू रोदसी अहिना बुध्न्येन स्तुवीत देवी अप्येभिरिष्टैः ।
समुद्रं न संचरणे सनिष्यवो घर्मस्वरसो नद्यो३ अप व्रन् ६
देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
नहि मित्रस्य वरुणस्य धासि—महामसि प्रमियं सान्वग्नेः ७ २३५
अग्निरीशे वसव्यस्या—ऽग्निर्महः सौभगस्य । तान्यस्मभ्यं रासते ८
उषो मघोन्या वह सूनृते वार्या पुरु । अस्मभ्यं वाजिनीवति ९
तत् सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा । इन्द्रो नो राधसा गमत् १० २३८

॥ २४ ॥ (ऋ० ५।२६।९)

(२३९) वसूयव आत्रेयाः । गायत्री ।

एदं मरुतो अश्विना मित्रः सीदन्तु वरुणः । देवासः सर्वया विशा ९ २३९

॥ २५ ॥ (ऋ० ५।४१।१-२०)

(२४०-९३) भौमोऽत्रिः । त्रिष्टुप्, १६-१७ अतिजगती, २० एकपदा विराट् ।

को नु वां मित्रावरुणावृतायन् दिवो वा महः पार्थिवस्य वा दे ।
ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान् १ २४०
ते नो मित्रो वरुणो अर्यमायु—रिन्द्र ऋभुक्षा मरुतो जुषन्त ।
नमोभिर्वा ये दधते सुवृक्तिं स्तोमं रुद्राय मीळ्हुषे सजोषाः २
आ वां येष्ठाऽश्विना हुवध्यै वातस्य पत्मन् रथ्यस्य पुष्टौ ।
उत वा दिवो असुराय मन्म प्रान्धांसीव यज्यवे भरध्वम् ३
प्र सक्षणो दिव्यः कण्वहोता त्रितो दिवः सजोषा वातो अग्निः ।
पूषा भगः प्रभृथे विश्वभोजा आजिं न जग्मुराश्वश्वतमाः ४ २४३

प्र वो रयिं युक्ताश्वं भरध्वं राय एषेऽवसे दधीत धीः ।
सुशेव एवैरौशिजस्य होता ये व एवा मरुतस्तुराणाम् ५
प्र वो वायुं रथयुजं कृणुध्वं प्र देवं विप्रं पनितारमर्कैः ।
इषुध्यव ऋतसापः पुरंधी—र्वस्वीर्नो अत्र पत्नीरा धिये धुः ६ २४५
उप व एषे वन्द्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः ।
उषासानक्ता विदुषीव विश्व—मा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम् ७
अभि वो अर्चे पोष्यावतो नॄन् वास्तोष्पतिं त्वष्टारं रराणः ।
धन्या सजोषा धिषणा नमोभि—र्वनस्पतींरोषधी राय एषे ८
तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवो ये वसवो न वीराः ।
पनित आप्त्यो यजतः सदा नो वर्धान्नः शंसं नर्यो अभिष्टौ ९
वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य गर्भं त्रितो नपातमपां सुवृक्ति ।
गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः शोचिष्केशो नि रिणाति वना १०
कथा महे रुद्रियाय ब्रवाम कद्राये चिकितुषे भगाय ।
आप ओषधीरुत नोऽवन्तु द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः ११ २५०
शृणोतु न ऊर्जां पतिर्गिरः स नभस्तरीयाँ इषिरः परिज्मा ।
शृण्वन्त्वापः पुरो न शुभ्राः परि स्रुचो बबृहाणस्याद्रेः १२
विदा चिन्नु महान्तो ये व एवा ब्रवाम दस्मा वार्यं दधानाः ।
वयश्चन सुभ्व१ आव यन्ति क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः १३
आ दैव्यानि पार्थिवानि जन्मा—ऽपश्चाच्छा सुमखाय वोचम् ।
वर्धन्तां द्यावो गिरश्चन्द्राग्रा उदा वर्धन्तामभिषाता अर्णाः १४
पदेपदे मे जरिमा नि धायि वरूत्री वा शक्रा या पायुभिश्च ।
सिषक्तु माता मही रसा नः स्मत्सूरिभिर्ऋजुहस्त ऋजुवनिः १५
कथा दाशेम नमसा सुदानू—नेवया मरुतो अच्छोक्तौ प्रश्रवसो मरुतो अच्छोक्तौ ।
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धा—दस्माकं भूदुपमातिवनिः १६ २५५
इति चिन्नु प्रजायै पशुमत्यै देवासो वनते मर्त्यो व आ देवासो वनते मर्त्यो वः ।
अत्रा शिवां तन्वो धासिमस्या जरां चिन्मे निर्ऋतिर्जग्रसीत १७
तां वो देवाः सुमतिमूर्जयन्ती—मिषमश्याम वसवः शसा गोः ।
सा नः सुदानुर्मृळयन्ती देवी प्रति द्रवन्ती सुविताय गम्याः १८ २५७

❀

पद्या वस्ते पुरुरूपा वपूं ष्यूर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा ।
ऋतस्य सद्म वि चरामि विद्वान् महद् देवानामसुरत्वमेकम् १४ १०५
पदे इव निहिते दस्मे अन्त स्तयोरन्यद् गुह्यमाविरन्यत् ।
सध्रीचीना पथ्या सा विषूची महद् देवानामसुरत्वमेकम् १५
आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः ।
नव्यानव्या युवतयो भवन्ती र्महद् देवानामसुरत्वमेकम् १६
यदन्यासु वृषभो रोरवीति सो अन्यस्मिन् यूथे नि दधाति रेतः ।
स हि क्षपावान्त्स भगः स राजा महद् देवानामसुरत्वमेकम् १७
वीरस्य नु स्वश्व्यं जनासः प्र नु वोचाम विदुरस्य देवाः ।
षोळ्हा युक्ताः पञ्चपञ्चा वहन्ति महद् देवानामसुरत्वमेकम् १८
देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान ।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद् देवानामसुरत्वमेकम् १९ ११०
मही समैरच्चम्वा समीची उभे ते अस्य वसुना न्यृष्टे ।
शृण्वे वीरो विन्दमानो वसूनि महद् देवानामसुरत्वमेकम् २०
इमां च नः पृथिवीं विश्वधाया उप क्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा महद् देवानामसुरत्वमेकम् २१
निष्षिध्वरीस्त ओषधीरुतापो रयिं त इन्द्र पृथिवी बिभर्ति ।
सखायस्ते वामभाजः स्याम महद् देवानामसुरत्वमेकम् २२ १११

॥ २० ॥ (ऋ० ३।५६।१-८)

न ता मिनन्ति मायिनो न धीरा व्रता देवानां प्रथमा ध्रुवाणि ।
न रोदसी अद्रुहा वेद्याभि र्न पर्वता निनमे तस्थिवांसः १
षड् भाराँ एको अचरन् बिभ र्त्यृतं वर्षिष्ठमुप गाव आगुः ।
तिस्रो महीरुपरास्तस्थुरत्या गुहा द्वे निहिते दर्श्येका २ ११५
त्रिपाजस्यो वृषभो विश्वरूप उत त्र्युधा पुरुध प्रजावान् ।
त्र्यनीकः पत्यते माहिनावा न्त्स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम् ३
अभीक आसां पदवीरबो ध्यादित्यानामह्वे चारु नाम ।
आपश्चिदस्मा अरमन्त देवीः पृथग् व्रजन्तीः परि षीमवृञ्जन् ४ ११७

त्री षधस्था सिन्धवस्त्रिः कवीना--मुत त्रिमाता विदथेषु सम्राट् ।
ऋतावरीर्योषणास्तिस्रो अप्या--स्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानाः ५
त्रिरा दिवः सवितर्वार्याणि दिवेदिव आ सुव त्रिर्नो अह्नः ।
त्रिधातु राय आ सुवा वसूनि भग त्रातर्धिषणे सातये धाः ६
त्रिरा दिवः सविता सोषवीति राजाना मित्रावरुणा सुपाणी ।
आपश्चिदस्य रोदसी चिदुर्वी रत्नं भिक्षन्त सवितुः सवाय ७ २२०
त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि त्रयो राजन्त्यसुरस्य वीराः ।
ऋतावान इषिरा दूळभास--स्त्रिरा दिवो विदथे सन्तु देवाः ८ २२१

॥ २१ ॥ (ऋ० ३।८।८)

(२२२-२८) गाथिनो विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् ।

आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।
सजोषसो यज्ञमवन्तु देवा ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम् ८ २२२

॥ २२ ॥ (ऋ० ३।५७।१-६)

प्र मे विविक्वाँ अविदन्मनीषां धेनुं चरन्तीं प्रयुतामगोपाम् ।
सद्यश्चिद् या दुदुहे भूरि धासे--रिन्द्रस्तदग्निः पनितारो अस्याः १
इन्द्रः सु पूषा वृषणा सुहस्ता दिवो न प्रीताः शशयं दुदुह्रे ।
विश्वे यदस्यां रणयन्त देवाः प्र वोऽत्र वसवः सुम्नमश्याम् २
या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्तिं नमस्यन्तीर्जानते गर्भमस्मिन् ।
अच्छा पुत्रं धेनवो वावशाना महश्चरन्ति बिभ्रतं वपूंषि ३ २२५
अच्छा विवक्मि रोदसी सुमेके ग्राव्णो युजानो अध्वरे मनीषा ।
इमा उ ते मनवे भूरिवारा ऊर्ध्वा भवन्ति दर्शता यजत्राः ४
या ते जिह्वा मधुमती सुमेधा अग्ने देवेषूच्यत उरूची ।
तयेह विश्वाँ अवसे यजत्रा--ना सादय पायया चा मधूनि ५
या ते अग्ने पर्वतस्येव धारा--सश्चन्ती पीपयद् देव चित्रा ।
तामस्मभ्यं प्रमतिं जातवेदो वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्याम् ६ २२८

॥ २३ ॥ (ऋ० ४।५५।१-१०)

(२२९-३८) वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप्, ८-१० गायत्री ।

को वस्त्राता वसवः को वरूता द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः
सहीयसो वरुण मित्र मर्तात् को वोऽध्वरे वरिवो धाति देवाः १ २२९

अभि न इळा यूथस्य माता स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु ।
उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणाना ऽभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः १९
सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः २० २५९

॥ २६ ॥ (ऋ० ५।४२।१-१०,१२-१८) त्रिष्टुप्, १७ एकपदा विराट्।

प्र शंतमा वरुणं दीधिती गीर्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः ।
पृषद्योनिः पञ्चहोता शृणोत्वतूर्तपन्था असुरो मयोभुः १ २६०
प्रति मे स्तोममदितिर्जगृभ्यात् सूनुं न माता हृद्यं सुशेवम् ।
ब्रह्म प्रियं देवहितं यदस्त्यहं मित्रे वरुणे यन्मयोभु २
उदीरय कवितमं कवीनामुनत्तैनमभि मध्वा घृतेन ।
स नो वसूनि प्रयता हितानि चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ३
समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सं सूरिभिर्हरिवः सं स्वस्ति ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमत्या यज्ञियानाम् ४
देवो भगः सविता रायो अंश इन्द्रो वृत्रस्य संजितो धनानाम् ।
ऋभुक्षा वाज उत वा पुरंधिरवन्तु नो अमृतासस्तुरासः ५
मरुत्वतो अप्रतीतस्य जिष्णोरजूर्यतः प्र ब्रवामा कृतानि ।
न ते पूर्वे मघवन् नापरासो न वीर्यं१ नूतनः कश्चनाप ६ २६५
उप स्तुहि प्रथमं रत्नधेयं बृहस्पतिं सनितारं धनानाम् ।
यः शंसते स्तुवते शंभविष्ठः पुरूवसुरागमज्जोहुवानम् ७
तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवीराः ।
ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः ८
विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषां ये भुञ्जते अपृणन्तो न उक्थैः ।
अपव्रतान् प्रसवे वावृधानान् ब्रह्मद्विषः सूर्याद् यावयस्व ९
य ओहते रक्षसो देववीतावचक्रेभिस्तं मरुतो नि यात ।
यो वः शमीं शशमानस्य निन्दात् तुच्छ्यान् कामान् करते सिष्विदानः १०
दमूनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णः पत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः ।
सरस्वती बृहद्दिवोत राका दशस्यन्तीर्वरिवस्यन्तु शुभ्राः १२ २७०
प्र सू महे सुशरणाय मेधां गिरं भरे नव्यसीं जायमानाम् ।
य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः १३ २७१

प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्त—मिळस्पतिं जरितर्नूनमश्याः ।
यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः १४
एषः स्तोमो मारुतं शर्धो अच्छा रुद्रस्य सूनूँर्युवन्यूँरुदश्याः ।
कामो राये हवते मा स्वस्त्यु—प स्तुहि पृषदश्वाँ अयासः १५
प्रैषः स्तोमः पृथिवीमन्तरिक्षं वनस्पतीँरोषधी राये अश्याः ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् १६
उरौ देवा अनिबाधे स्याम १७ २७५
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीरा—ना विश्वान्यमृता सौभगानि १८ २७६

॥ २७ ॥ (ऋ० ५।४३।१-१७) त्रिष्टुप्, १६ एकपदा विराट् ।

आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा ।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति १
आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे ।
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टाम् २
अध्वर्यवश्चकृवांसो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम् ।
होतेव नः प्रथमः पाह्यस्य देव मध्वो ररिमा ते मदाय ३
दश क्षिपो युञ्जते बाहू अद्रिं सोमस्य या शमितारा सुहस्ता ।
मध्वो रसं सुगभस्तिर्गिरिष्ठां चनिश्चदद् दुदुहे शुक्रमंशुः ४ २८०
असावि ते जुजुषाणाय सोमः क्रत्वे दक्षाय बृहते मदाय ।
हरी रथे सुधुरा योगे अर्वा—गिन्द्र प्रिया कृणुहि हूयमानः ५
आ नो महीमरमतिं सजोषा ग्नां देवीं नमसा रातहव्याम् ।
मधोर्मदाय बृहतीमृतज्ञा—मग्ने वह पथिभिर्देवयानैः ६
अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्रा वपावन्तं नाग्निना तपन्तः ।
पितुर्न पुत्र उपसि प्रेष्ठ आ घर्मो अग्निमृतयन्नसादि ७
अच्छा मही बृहती शंतमा गी—र्दूतो न गन्त्वश्विना हुवध्यै ।
मयोभुवा सरथा यातमर्वा—ग्गन्तं निधिं धुरमाणिर्न नाभिम् ८
प्र तव्यसो नमउक्तिं तुरस्या—ऽहं पूष्ण उत वायोरदिक्षि ।
या राधसा चोदितारा मतीनां या वाजस्य द्रविणोदा उत त्मन् ९ २८५

आ नामभिर्मरुतो वक्षि विश्वा—ना रूपेभिर्जातवेदो हुवानः ।
यज्ञं गिरो जरितुः सुष्टुतिं च विश्वे गन्त मरुतो विश्व ऊती १०
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् ।
हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ११
आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदने सादयध्वम् ।
सादद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषं सपेम १२
आ धर्णसिर्बृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः ।
ग्ना वसान ओषधीरमृध्र—स्त्रिधातुशृङ्गो वृषभो वयोधाः १३
मातुष्पदे परमे शुक्र आयो—र्विपन्यवो रास्पिरासो अग्मन् ।
सुशेव्यं नमसा रातहव्याः शिशुं मृजन्त्यायवो न वासे १४ २९०
बृहद् वयो बृहते तुभ्यमग्ने धियाजुरो मिथुनासः सचन्त ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् १५
उरौ देवा अनिबाधे स्याम १६
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीरा—ना विश्वान्यमृता सौभगानि १७ २९३

॥ २८ ॥ (ऋ० ५।४४।१-१५)

(२९४-३०८) काश्यपोऽवत्सारः (१० क्षत्र-मनस-एवावद-यजत-सध्रि-अवत्सारा:, ११ विश्ववार-यजत-मायी-अवत्सारा:, १२ अवत्सारेण सह सदापृण-यजत-बाहुवृक्त-श्रुतवित्-तर्या:, १३ सुतंभरश्च)। जगती, १४-१५ त्रिष्टुप् ।

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम् ।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिरा ऽऽशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे १
श्रिये सुदृशीरुपरस्य याः स्व—र्विरोचमानः ककुभामचोदते ।
सुगोपा असि न दभाय सुक्रतो परो मायाभिर्ऋत आस नाम ते २ २९५
अत्यं हविः सचते सच्च धातु चा—ऽरिष्टगातुः स होता सहोभरिः ।
प्रसर्स्राणो अनु बर्हिर्वृषा शिशु—र्मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः ३
प्र व एते सुयुजो यामन्निष्टये नीचीरमुष्मै यम्य ऋतावृधः ।
सुयन्तुभिः सर्वशासैरभीशुभिः क्रिविर्नामानि प्रवणे मुषायति ४
संजर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभं वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः ।
धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे ५ २९८

याद्दगेव ददृशे तादृगुच्यते सं छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा ।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो बृहत् सुवीरमनपच्युतं सहः ६
वेत्यग्रुर्जनिवान् वा अति स्पृधः समर्यता मनसा सूर्यः कविः ।
घ्रंसं रक्षन्तं परि विश्वतो गय-मस्माकं शर्म वनवत् स्वावसुः ७ ३००
ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुन ऋषिस्वरं चरति यासु नाम ते ।
यादृश्मिन् धायि तमपस्यया विदद् य उ स्वयं वहते सो अरं करत् ८
समुद्रमासामव तस्थे अग्रिमा न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता ।
अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी ९
स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभि-रेवावदस्य यजतस्य सध्रेः ।
अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः शविष्ठं वाजं विदुषा चिदर्ध्यम् १०
श्येन आसामदितिः कक्ष्यो३ मदो विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः ।
समन्यमन्यमर्थयन्त्येतवे विदुर्विषाणं परिपानमन्ति ते ११
सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद् बाहुवृक्तः श्रुतवित् तर्यो वः सचा ।
उभा स वरा प्रत्येति भाति च यदीं गणं भजते सुप्रयावभिः १२ ३०५
सुतंभरो यजमानस्य सत्पति-र्विश्वासामूधः स धियामुदञ्चनः ।
भरद् धेनू रसवच्छिश्रिये पयो ऽनुब्रुवाणो अध्येति न स्वपन् १३
यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः १४
अग्निर्जागार तमृचः कामयन्ते ऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः १५ ३०८

॥ २९ ॥ (ऋ० ५।४५।१–११)
(३०९–१९) सदापृण आत्रेयः । त्रिष्टुप् ।

विदा दिवो विष्यन्नद्रिमुक्थै-रायत्या उषसो अर्चिनो गुः ।
अपावृत व्रजिनीरुत् स्वर्गाद् वि दुरो मानुषीर्देव आवः १
वि सूर्यो अमतिं न श्रियं सादो-र्वाद् गवां माता जानती गात् ।
धन्वर्णसो नद्य१ः खादोअर्णाः स्थूणेव सुमिता दृंहत द्यौः २ ३१०
अस्मा उक्थाय पर्वतस्य गर्भो महीनां जनुषे पूर्व्याय ।
वि पर्वतो जिहीत साधत द्यौ-राविवासन्तो दसयन्त भूम ३ ३११

सूक्तेभिर्वो वचोभिर्देवजुष्टै—रिन्द्रा न्व१ग्नी अवसे हुवध्यै ।
उक्थेभिर्हि ष्मा कवयः सुयज्ञा आविवासन्तो मरुतो यजन्ति ४
एतो न्व१द्य सुध्यो३ भवाम प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः ।
आरे द्वेषांसि सनुतर्दधामा—ऽयाम प्राञ्चो यजमानमच्छ ५
एता धियं कृणवामा सखायो ऽप या माताँ ऋणुत व्रजं गोः ।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम् ६
अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रि—रार्चन् येन दश मासो नवग्वाः ।
ऋतं यती सरमा गा अविन्दद् विश्वानि सत्याङ्गिराश्चकार ७ ३१५
विश्वे अस्या व्युषि माहिनायाः सं यद् गोभिराङ्गिरसो नवन्त ।
उत्स आसां परमे सधस्थ ऋतस्य पथा सरमा विदद् गाः ८
आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घयाथे ।
रघुः श्येनः पतयदन्धो अच्छा युवा कविर्दीदयद् गोषु गच्छन् ९
आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णो ऽयुक्त यद्धरितो वीतपृष्ठाः ।
उद्ना न नावमनयन्त धीरा आशृण्वतीरापो अर्वागतिष्ठन् १०
धियं वो अप्सु दधिषे स्वर्षां ययातरन् दश मासो नवग्वाः ।
अया धिया स्याम देवगोपा अया धिया तुतुर्यामात्यंहः ११ ३१९

॥ ३० ॥ (ऋ० ५।४६।१-८)

(३२०-२७) प्रतिक्षत्र आत्रेयः । (७-८ देवपत्न्यः) । जगती; १,८ त्रिष्टुप् ।

हयो न विद्वाँ अयुजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम् ।
नास्या वश्मि विमुचं नावृतं पुन—र्विद्वान् पथः पुरएत ऋजु नेषति १ ३२०
अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त २
इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ अपः ।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शंसं सवितारमूतये ३
उत नो विष्णुरुत वातो अस्रिधो द्रविणोदा उत सोमो मयस्करत् ।
उत ऋभव उत राये नो अश्विनो—त त्वष्टोत विभ्वानु मंसते ४
उत त्यन्नो मारुतं शर्ध आ गमद् दिविक्षयं यजतं बर्हिरासदे ।
बृहस्पतिः शर्म पूषोत नो यमद् वरूथ्यं१ वरुणो मित्रो अर्यमा ५ ३२४

उत त्ये नः पर्वतासः सुशस्तयः सुदीतयो नद्य१स्त्रामणे भुवन् ।
भगो विभक्ता शवसावसा गम दुरुव्यचा अदितिः श्रोतु मे हवम् ६ ३२५
देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत ७
उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नी रिन्द्राण्य१ग्नाय्यश्विनी राट् ।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ८ ३२७

॥ ३१ ॥ (ऋ० ५।४७।१-७)
(३२८-३४) प्रतिरथ आत्रेयः । त्रिष्टुप् ।

प्रयुञ्जती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयन्ती ।
आविवासन्ती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना १
अजिरासस्तदप ईयमाना आतस्थिवांसो अमृतस्य नाभिम् ।
अनन्तास उरवो विश्वतः सीं परि द्यावापृथिवी यन्ति पन्थाः २
उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ३ ३३०
चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तो दश गर्भं चरसे धापयन्ते ।
त्रिधातवः परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि सद्यो अन्तान् ४
इदं वपुर्निवचनं जनास श्चरन्ति यन्नद्यस्तस्थुरापः ।
द्वे यदीं बिभृतो मातुरन्ये इहेह जाते यम्या३ सबन्धू ५
वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति ।
उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ ६
तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ७ ३३४

॥ ३२ ॥ (ऋ० ५।४८।१-५)
(३३५-३९) प्रतिभानुरात्रेयः । जगती ।

कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम् ।
आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आँ अपो वृणाना वितनोति मायिनी १
ता अत्नत वयुनं वीरवक्षणं समान्या वृतया विश्वमा रजः ।
अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जनः २ ३३६

आ ग्रावभिरहन्येभिरक्तुभि—र्वरिष्ठं वज्रमा जिघर्ति मायिनि ।
शतं वा यस्य प्रचरन्त्स्वे दमे संवर्तयन्तो वि च वर्तयन्नहा ३
तामस्य रीतिं परशोरिव प्रत्य—नीकमख्यं भुजे अस्य वर्पसः ।
सचा यदि पितुमन्तमिव क्षयं रत्नं दधाति भरहूतये विशे ४
स जिह्वया चतुरनीक ऋञ्जते चारु वसानो वरुणो यतन्नरिम् ।
न तस्य विद्म पुरुषत्वता वयं यतो भगः सविता दाति वार्यम् ५ ३३९

॥ ३३ ॥ (ऋ० ५।४९।१-५)

(३४०-४४) प्रतिप्रभ आत्रेयः, (५ तृणपाणिः) । त्रिष्टुप् ।

देवं वो अद्य सवितारमेषे भगं च रत्नं विभजन्तमायोः ।
आ वां नरा पुरुभुजा ववृत्यां दिवेदिवे चिदश्विना सखीयन् १ ३४०
प्रति प्रयाणमसुरस्य विद्वा—न्त्सूक्तैर्देवं सवितारं दुवस्य ।
उप ब्रुवीत नमसा विजान—ञ्ज्येष्ठं च रत्नं विभजन्तमायोः २
अदत्रया दयते वार्याणि पूषा भगो अदितिर्वस्त उस्रः ।
इन्द्रो विष्णुर्वरुणो मित्रो अग्नि—रहानि भद्रा जनयन्त दस्माः ३
तन्नो अनर्वा सविता वरूथं तत् सिन्धव इषयन्तो अनु ग्मन् ।
उप यद् वोचे अध्वरस्य होता रायः स्याम पतयो वाजरत्नाः ४
प्र ये वसुभ्य ईवदा नमो दु—र्ये मित्रे वरुणे सूक्तवाचः ।
अवैत्वभ्वं कृणुता वरीयो दिवस्पृथिव्योरवसा मदेम ५ ३४४

॥ ३४ ॥ (ऋ० ५।५०।१-५)

(३४५-६०) स्वस्त्यात्रेयः । अनुष्टुप् , ५ पङ्क्तिः ।

विश्वो देवस्य नेतु—र्मर्तो वुरीत सख्यम् । विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे १ ३४५
ते ते देव नेत—र्ये चेमाँ अनुशसे । ते राया ते ह्याऽपृचे सचेमहि सचथ्यैः २
अतो न आ नॄनतिथी—नतः पत्नीर्दशस्यत ।
आरे विश्वं पथेष्ठां द्विषो युयोतु यूयुविः ३
यत्र वह्निरभिहितो दुद्रवद् द्रोण्यः पशुः । नृमणा वीरपस्त्यो ऽर्णा धीरेव सनिता ४
एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः ।
शं राये शं स्वस्तय इषःस्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे ५ ३४९

॥ ३५ ॥ (ऋ० ५।५१।१-३,८-१५)

१-३ गायत्री; ८-१० उष्णिक्; ११-१३ जगती त्रिष्टुब्वा; १४-१५ अनुष्टुप् ।

अग्ने सुतस्य पीतये　विश्वैरूमेभिरा गहि　। देवेभिर्हव्यदातये　१　३५०
ऋतधीतय आ गत　सत्यधर्माणो अध्वरम्　। अग्नेः पिबत जिह्वया　२
विप्रेभिर्विप्र सन्त्य　प्रातर्यावभिरा गहि　। देवेभिः सोमपीतये　३
सजूर्विश्वेभिर्देवेभि-रश्विभ्यामुषसा सजूः　। आ याह्यग्ने अत्रिवत् सुते रण　८
सजूर्मित्रावरुणाभ्यां　सजूः सोमेन विष्णुना　। आ याह्यग्ने अत्रिवत् सुते रण　९
सजूरादित्यैर्वसुभिः　सजूरिन्द्रेण वायुना　। आ याह्यग्ने अत्रिवत् सुते रण　१०　३५५
स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः　स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः　स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना　११
स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै　सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये　स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः　१२
विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये　वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये　स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः　१३
स्वस्ति मित्रावरुणा　स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च　स्वस्ति नो अदिते कृधि　१४
स्वस्ति पन्थामनु चरेम　सूर्याचन्द्रमसाविव । पुनर्ददताघ्नता　जानता सं गमेमहि १५　३६०

॥ ३६ ॥ (ऋ० ६।२१।९,११)

(३६१-६२) बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

प्रोतये वरुणं मित्रमिन्द्रं　मरुतः कृष्वावसे नो अद्य ।
प्र पूषणं विष्णुमग्निं पुरंधिं　सवितारमोषधीः पर्वतांश्च　९
नू म आ वाचमुप याहि विद्वान्　विश्वेभिः सूनो सहसो यजत्रैः ।
ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसु-र्ये मनुं चक्रुरुपरं दसाय　११　३६२

॥ ३७ ॥ (ऋ० ६।४९।१-१५)

(३६३-४२५) ऋजिश्वा भारद्वाजः । त्रिष्टुप्, १५ शाक्वरी ।

स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभि-र्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु　सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः　१
विशोविश ईड्यमध्वरे-ष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः ।
दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं　यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै　२　३६४

*

अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या ।
मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने ३ ३६५
प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम् ।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ४
स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान् मनसा युजानः ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ५
पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि ।
सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीर्भि-र्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम् ६
पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ७
पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानळर्कम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा ८ ३७०

प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम् ।
होता यक्षद् यजतं पस्त्याना-मग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा ९
भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्न-मृधग्घुवेम कविनेषितासः १०
आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम् ।
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत् ११
प्र वीराय प्र तवसे तुराया-ऽजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम् ।
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः १२
यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद् विष्णुर्मनवे बाधिताय ।
तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा३ तना च १३ ३७५

तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिरर्कै-स्तत् पर्वतस्तत् सविता चनो धात् ।
तदोषधीभिरभि रातिषाचो भगः पुरंधिर्जिन्वतु प्र राये १४
नू नो रयिं रथ्यं चर्षणिप्रां पुरुवीरं मह ऋतस्य गोपाम् ।
क्षयं दाताजरं येन जना-न्त्स्पृधो अदेवीरभि च क्रमाम
विश आदेवीरभ्य१श्नवाम १५ ३७७

॥ ३८ ॥ (ऋ० ६।५०।१-१५) त्रिष्टुप् ।

हुवे वो देवीमदितिं नमोभि– र्मृळीकाय वरुणं मित्रमग्निम् ।
अभिक्षदामर्यमणं सुशेवं त्रातॄन् देवान्त्सवितारं भगं च १
सुज्योतिषः सूर्य दक्षपितॄ– ननागास्त्वे सुमहो वीहि देवान् ।
द्विजन्मानो य ऋतसापः सत्याः स्वर्वन्तो यजता अग्निजिह्वाः २
उत द्यावापृथिवी क्षत्रमुरु बृहद् रोदसी शरणं सुषुम्ने ।
महस्करथो वरिवो यथा नो ऽस्मे क्षयाय धिषणे अनेहः ३ ३८०
आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्ता– मद्या हूतासो वसवोऽधृष्टाः ।
यदीमर्भे महति वा हितासो बाधे मरुतो अह्वाम देवान् ४
मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवी सिषक्ति पूषा अभ्यर्धयज्वा ।
श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध याथ भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते ५
अभि त्यं वीरं गिर्वणसमर्चे– न्द्रं ब्रह्मणा जरितर्नवेन ।
श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद् वाजाँ उप महो गृणानः ६
ओमानमापो मानुषीरमृक्तं धात तोकाय तनयाय शं योः ।
यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः ७
आ नो देवः सविता त्रायमाणो हिरण्यपाणिर्यजतो जगम्यात् ।
यो दत्रवाँ उषसो न प्रतीकं व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि ८ ३८५
उत त्वं सूनो सहसो नो अद्या देवाँ अस्मिन्नध्वरे ववृत्याः ।
स्यामहं ते सदमिद् रातौ तव स्यामग्नेऽवसा सुवीरः ९
उत त्या मे हवमा जग्म्यातं नासत्या धीभिर्युवमङ्ग विप्रा ।
अत्रिं न महस्तमसोऽमुमुक्तं तूर्वतं नरा दुरितादभीके १०
ते नो रायो द्युमतो वाजवतो दातारो भूत नृवतः पुरुक्षोः ।
दशस्यन्तो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता अप्या मृळता च देवाः ११
ते नो रुद्रः सरस्वती सजोषा मीळ्हुष्मन्तो विष्णुर्मृळन्तु वायुः ।
ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्यावाता पिप्यतामिषं नः १२
उत स्य देवः सविता भगो नो ऽपां नपादवतु दानु पप्रिः ।
त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः सजोषा द्यौर्देवेभिः पृथिवी समुद्रैः १३ ३९०

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणो- त्वज एकपात् पृथिवी समुद्रः ।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु १४
एवा नपातो मम तस्य धीभि- र्भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
ग्ना हुतासो वसवोऽधृष्टा विश्वे स्तुतासो भूता यजत्राः १५ ३९२

॥ ३९ ॥ (ऋ० ६।५१।१-१६) त्रिष्टुप्, १३-१५ उष्णिक्, १६ अनुष्टुप् ।

उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोराँ एति प्रियं वरुणयोरदब्धम् ।
ऋतस्य शुचि दर्शतमनीकं रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् १
वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः ।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्य- न्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान् २
स्तुष उ वो मह ऋतस्य गोपा- नदितिं मित्रं वरुणं सुजातान् ।
अर्यमणं भगमदब्धधीती- नच्छा वोचे सधन्यः पावकान् ३ ३९५
रिशादसः सत्पतीँरदब्धान् महो राज्ञः सुवसनस्य दातॄन् ।
यूनः सुक्षत्रान् क्षयतो दिवो नॄ- नादित्यान् याम्यदितिं दुवोयु ४
द्यौ३ष्पितः पृथिवि मातरध्रु- गग्ने भ्रातर्वसवो मृळता नः ।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्त ५
मा नो वृकाय वृक्ये समस्मा अघायते रीरधता यजत्राः ।
यूयं हि ष्ठा रथ्यो नस्तनूनां यूयं दक्षस्य वचसो बभूव ६
मा व एनो अन्यकृतं भुजेम मा तत् कर्म वसवो यच्चयध्वे ।
विश्वस्य हि क्षयथ विश्वदेवाः स्वयं रिपुस्तन्वं रीरिषीष्ट ७
नम इदुग्रं नम आ विवासे नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
नमो देवेभ्यो नम ईश एषां कृतं चिदेनो नमसा विवासे ८ ४००
ऋतस्य वो रथ्यः पूतदक्षा- नृतस्य पस्त्यसदो अदब्धान् ।
ताँ आ नमोभिरुरुचक्षसो नॄन् विश्वान्व आ नमे महो यजत्राः ९
ते हि श्रेष्ठवर्चसस्त उ न- स्तिरो विश्वानि दुरिता नयन्ति ।
सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्नि- र्ऋतधीतयो वक्मराजसत्याः १०
ते न इन्द्रः पृथिवी क्षाम वर्धन् पूषा भगो अदितिः पञ्च जनाः ।
सुशर्माणः स्ववसः सुनीथा भवन्तु नः सुत्रात्रासः सुगोपाः ११ ४०३

नू सद्मानं दिव्यं नंशि देवा भारद्वाजः सुमतिं याति होता ।
आसानेभिर्यजमानो मियेधै देवानां जन्म वसूयुर्ववन्द १२
अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् । दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् १३ ४०५
ग्रावाणः सोम नो हि कं सखित्वनाय वावशुः । जही न्यत्रिणं पणिं वृको हि षः १४
यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः । कर्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा १५
अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम् । येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु १६ ४०८

॥ ४० ॥ (ऋ० ६।५२।१-१७) त्रिष्टुप्, ७-१२ गायत्री, १४ जगती ।

न तद् दिवा न पृथिव्यानु मन्ये न यज्ञेन नोत शमीभिराभिः ।
उब्जन्तु तं सुभ्वः पर्वतासो नि हीयतामतियाजस्य यष्टा १
अति वा यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यः क्रियमाणं निनित्सात् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषमभि तं शोचतु द्यौः २ ४१०
किमङ्ग त्वा ब्रह्मणः सोम गोपां किमङ्ग त्वाहुरभिशस्तिपां नः ।
किमङ्ग नः पश्यसि निद्यमानान् ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ३
अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः ।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासो ऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ४
विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
तथा करद् वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः ५
इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना ।
पर्जन्यो न ओषधीभिर्मयोभुरग्निः सुशंसः सुहवः पितेव ६
विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् । एदं बर्हिर्नि षीदत ७ ४१५
यो वो देवा घृतस्नुना हव्येन प्रतिभूषति । तं विश्व उप गच्छथ ८
उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृळीका भवन्तु नः ९
विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्तां युज्यं पयः १०
स्तोत्रमिन्द्रो मरुद्गणस्त्वष्टृमान् मित्रो अर्यमा । इमा हव्या जुषन्त नः ११
इमं नो अग्ने अध्वरं होतर्वयुनशो यज । चिकित्वान् दैव्यं जनम् १२ ४२०
विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् १३ ४२१

विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञिया उभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद् वो अन्तमा मदेम १४
ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे ।
ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्रा वरिवस्यन्तु देवाः १५
अग्नीपर्जन्याववतं धियं मे ऽस्मिन् हवे सुहवा सुष्टुतिं नः ।
इळामन्यो जनयद् गर्भमन्यः प्रजावतीरिष आ धत्तमस्मे १६
स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ सूक्तेन महा नमसा विवासे ।
अस्मिन् नो अद्य विदथे यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम् १७ ४१५

॥ ४१ ॥ (ऋ० ७।३४।१-१५,१८-२५)

(४१६-५०८) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । द्विपदा विराट्, २२-२५ त्रिष्टुप् ।

प्र शुक्रैतु देवी मनीषा अस्मत् सुतष्टो रथो न वाजी १
विदुः पृथिव्या दिवो जनित्रं शृण्वन्त्यापो अध क्षरन्तीः २
आपश्चिदस्मै पिन्वन्त पृथ्वीर्वृत्रेषु शूरा मंसन्त उग्राः ३
आ धूर्ष्वस्मै दधाताश्वानिन्द्रो न वज्री हिरण्यबाहुः ४
अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन् त्मना हिनोत ५ ४२०
त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं दधात केतुं जनाय वीरम् ६
उदस्य शुष्माद् भानुर्नार्त बिभर्ति भारं पृथिवी न भूम ७
ह्वयामि देवाँ अयातुरग्ने साधन्नृतेन धियं दधामि ८
अभि वो देवीं धियं दधिध्वं प्र वो देवत्रा वाचं कृणुध्वम् ९
आ चष्ट आसां पाथो नदीनां वरुण उग्रः सहस्रचक्षाः १० ४२५
राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्वायु ११
अविष्टो अस्मान् विश्वासु विक्ष्वद्युं कृणोत शंसं निनित्सोः १२
व्येतु दिद्युद् द्विषामशेवा युयोत विष्वग्रपस्तनूनाम् १३
अवीन्नो अग्निर्हव्यान्नमोभिः प्रेष्ठो अस्मा अधायि स्तोमः १४
सजूर्देवेभिरपां नपातं सखायं कृध्वं शिवो नो अस्तु १५ ४३०
उत न एषु नृषु श्रवो धुः प्र राये यन्तु शर्धन्तो अर्यः १८
तपन्ति शत्रुं स्वर्ण भूमा महासेनासो अमेभिरेषाम् १९
आ यन्नः पत्नीर्गमन्त्यच्छा त्वष्टा सुपाणिर्दधातु वीरान् २० ४३३

प्रति नः स्तोमं त्वष्टा जुषेत स्यादस्मे अरमतिर्वसूयुः २१
ता नो रासन् रातिषाचो वसू न्या रोदसी वरुणानी शृणोतु ।
वरूत्रीभिः सुशरणो नो अस्तु त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायः २२ ४४५
तन्नो रायः पर्वतास्तन्न आप स्तद् रातिषाच ओषधीरुत द्यौः ।
वनस्पतिभिः पृथिवी सजोषा उभे रोदसी परि पासतो नः २३
अनु तदुर्वी रोदसी जिहाता मनु द्युक्षो वरुण इन्द्रसखा ।
अनु विश्वे मरुतो ये सहासो रायः स्याम धरुणं धियध्यै २४
तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्नि राप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २५ ४४८

॥ ४१ ॥ (ऋ० ७।३५।१-१५) त्रिष्टुप् ।

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ १
शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु २ ४५०
शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ३
शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ४
शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ५
शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ६
शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ७ ४४५
शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ८
शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ९ ४५७

शं नो॑ दे॒वः स॑वि॒ता त्राय॑माणः॒ शं नो॑ भवन्तू॒षसो॑ विभा॒तीः ।
शं नः॑ प॒र्जन्यो॑ भवतु प्र॒जाभ्यः॒ शं नः॒ क्षेत्र॑स्य॒ पति॑रस्तु श॒म्भुः १०
शं नो॑ दे॒वा वि॒श्वदे॑वा भवन्तु॒ शं सर॑स्वती स॒ह धी॒भिर॑स्तु ।
शम॑भि॒षाचः॒ शमु॑ राति॒षाचः॒ शं नो॑ दि॒व्याः पार्थि॑वाः॒ शं नो॒ अप्याः॑ ११
शं नः॑ स॒त्यस्य॒ पत॑यो भवन्तु॒ शं नो॒ अर्व॑न्तः॒ शमु॑ सन्तु॒ गावः॑ ।
शं न॑ ऋ॒भवः॑ सु॒कृतः॑ सु॒हस्ताः॒ शं नो॑ भवन्तु पि॒तरो॒ हवे॑षु १२ ४६०
शं नो॑ अ॒ज एक॑पाद्दे॒वो अ॑स्तु॒ शं नोऽहि॑र्बु॒ध्न्य१ः॒ शं स॑मु॒द्रः ।
शं नो॑ अ॒पां नपा॑त्पे॒रुर॑स्तु॒ शं नः॒ पृश्नि॑र्भवतु दे॒वगो॑पा १३
आ॒दि॒त्या रु॒द्रा वस॑वो जुषन्ते॒दं ब्रह्म॑ क्रि॒यमा॑णं॒ नवी॑यः ।
शृ॒ण्वन्तु॑ नो दि॒व्याः पार्थि॑वासो॒ गोजा॑ता उ॒त ये य॒ज्ञिया॑सः १४
ये दे॒वानां॑ य॒ज्ञिया॑ य॒ज्ञिया॑नां॒ मनो॒र्यज॑त्रा अ॒मृता॑ ऋत॒ज्ञाः ।
ते नो॑ रासन्तामुरुगा॒यम॒द्य यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः +१५ ४६३

॥ ४३ ॥ (ऋ० ७।३६।१-९)

प्र ब्रह्मै॑तु॒ सद॑नादृ॒तस्य॒ वि र॒श्मिभिः॑ ससृजे॒ सूर्यो॒ गाः ।
वि सानु॑ना पृथि॒वी स॑स्र उ॒र्वी पृ॒थु प्रती॑कम॒ध्येधे॑ अ॒ग्निः १
इ॒मां वां॑ मित्रावरुणा सुवृ॒क्ति॒मिषं॒ न कृ॑ण्वे असुरा॒ नवी॑यः ।
इ॒नो वा॑म॒न्यः प॑द॒वीरद॑ब्धो॒ जनं॑ च मि॒त्रो य॑तति ब्रुवा॒णः २ ४६५
आ वात॑स्य॒ ध्रज॑तो रन्त इ॒त्या अपी॑पयन्त धे॒नवो॒ न सूदाः॑ ।
म॒हो दि॒वः सद॑ने॒ जाय॑मा॒नोऽचि॑क्रदद्वृष॒भः सस्मि॒न्नूध॑न् ३
गि॒रा य ए॒ता यु॒नज॒द्धरी॑ त॒ इन्द्र॑ प्रि॒या सु॒रथा॑ शूर धा॒यू ।
प्र यो म॒न्युं रिरि॑क्षतो मि॒ना॒त्या सु॒क्रतु॑मर्य॒मणं॑ ववृत्याम् ४
यज॑न्ते अस्य स॒ख्यं वय॑श्च॒ नम॒स्विनः॒ स्व ऋ॒तस्य॒ धाम॑न् ।
वि पृक्षो॑ बाबधे॒ नृभिः॒ स्तवा॑न इ॒दं नमो॑ रु॒द्राय॒ प्रेष्ठ॑म् ५
आ यत्सा॒कं य॒शसो॑ वावशा॒नाः सर॑स्वती स॒प्तथी॒ सिन्धु॑माता ।
याः सु॒ष्वय॑न्त सु॒दुघाः॑ सुधा॒रा अ॒भि स्वेन॒ पय॑सा॒ पीप्या॑नाः ६
उ॒त त्ये नो॑ म॒रुतो॑ मन्द॒साना॒ धियं॑ तो॒कं च॑ वा॒जिनो॑ऽवन्तु ।
मा नः॒ परि॑ ख्य॒दक्ष॑रा॒ चर॒न्त्यवी॑वृध॒न्युज्यं॒ ते र॒यिं नः॑ ७ ४७०

+ ऋ० ७,३५,१-१५ = अथर्व० १९,१०,१-१०; ११,१-५ ।

प्र वो॑ म॒हीम॒रम॑तिं कृणुध्वं॒ प्र पू॒षणं॑ विद॒थ्यं१॒ न वी॒रम् ।
भग॑ धि॒योऽवि॒तारं॑ नो अ॒स्याः सा॒तौ वाजं॑ राति॒षाचं॒ पुरं॑धिम् ८
अच्छा॒यं वो॑ मरुत॒ः श्लोक॑ एत्व॒च्छा विष्णुं॑ निषिक्त॒पामवो॑भिः ।
उ॒त प्र॒जायै॑ गृण॒ते वयो॑ धु॒र्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ९ ४७२

॥ ४४ ॥ (ऋ० ७।३७।१-८)

आ वो॒ वाहि॑ष्ठो वहतु स्त॒वध्यै॒ रथो॑ वाजा ऋभुक्षणो॒ अमृ॑क्तः ।
अ॒भि त्रि॒पृ॒ष्ठैः सव॑नेषु सोमै॒र्मदे॑ सुशिप्रा म॒हभि॑ः पृणध्वम् १
यू॒यं ह॒ रत्नं॑ म॒घव॑त्सु धत्थ स्व॒र्दृश॑ ऋभुक्षणो॒ अमृ॑क्तम् ।
सं य॒ज्ञेषु॑ स्वधावन्तः पिबध्वं॒ वि नो॒ राधां॑सि म॒तिभि॑र्दयध्वम् २
उ॒वोचि॑थ॒ हि म॑घवन् दे॒ष्णं म॒हो अर्भ॑स्य॒ वसु॑नो वि॒भागे॑ ।
उ॒भा ते॑ पू॒र्णा वसु॑ना॒ गभ॑स्ती॒ न सू॒नृता॒ नि य॑मते वस॒व्या॑ ३ ४७५
त्वमि॑न्द्र॒ स्वय॑शा ऋभु॒क्षा वाजो॒ न सा॒धुरस्त॑मे॒ष्यृक्वा॑ ।
व॒यं नु ते॑ दा॒श्वांस॑ः स्याम॒ ब्रह्म॑ कृ॒ण्वन्तो॑ हरिवो॒ वसि॑ष्ठाः ४
सनि॑तासि प्र॒वतो॑ दा॒शुषे॑ चि॒द्याभि॒र्विवे॑षो हर्यश्व धी॒भिः ।
व॒वन्मा नु ते॒ युज्या॑भिरू॒ती क॒दा न॑ इन्द्र रा॒य आ द॑शस्येः ५
वा॒सय॑सीव वे॒धस॒स्त्वं न॑ः क॒दा न॑ इन्द्र॒ वच॑सो बुबोधः ।
अस्तं॑ ता॒त्या धि॒या र॒यिं सु॒वीरं॑ पृ॒क्षो नो॒ अर्वा॒ न्यु॑हीत वा॒जी ६
अ॒भि यं दे॒वी निर्ऋ॑तिश्चि॒दीशे॒ नक्ष॑न्त॒ इन्द्रं॑ श॒रद॑ः सु॒पृक्ष॑ः ।
उप॑ त्रि॒बन्धु॑र्ज॒रद॑ष्टिमे॒त्यस्व॑वेशं॒ यं कृ॒णव॑न्त॒ मर्ता॑ः ७
आ नो॒ राधां॑सि सवितः स्त॒वध्या॒ आ रायो॑ यन्तु॒ पर्व॑तस्य रा॒तौ ।
सदा॑ नो दि॒व्यः पा॒युः सि॑षक्तु यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ८ ४८०

॥ ४५ ॥ (ऋ० ७।३९।१-७)

ऊ॒र्ध्वो अ॒ग्निः सु॑म॒तिं वस्वो॑ अश्रेत् प्र॒ती॒ची जू॒र्णिर्दे॒वता॑तिमेति ।
भे॒जाते॒ अद्री॑ र॒थ्ये॑व॒ पन्था॑मृ॒तं होता॑ न इषि॒तो य॑जाति १
प्र वा॑वृजे सुप्र॒या ब॒र्हिरे॑षा॒मा वि॒श्पती॑व॒ बीरि॑ट इयाते ।
वि॒शाम॒क्तोरु॒षस॑ः पू॒र्वहू॑तौ वा॒युः पू॒षा स्व॒स्तये॑ नि॒युत्वा॑न् २
ज्म॒या अत्र॒ वस॑वो रन्त दे॒वा उ॒राव॒न्तरि॑क्षे मर्जयन्त शु॒भ्राः ।
अ॒र्वाक् प॒थ उ॑रुज्रयः कृणुध्व॒ं श्रोता॑ दू॒तस्य॑ ज॒ग्मुषो॑ नो अ॒स्य ३ ४८३

*

ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः ।
ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने श्रुष्टी भगं नासत्या पुरंधिम् ४
आग्ने गिरो दिव आ पृथिव्या मित्रं वह वरुणमिन्द्रमग्निम् ।
आर्यमणमदितिं विष्णुमेषां सरस्वती मरुतो मादयन्ताम् ५ ४८५
ररे हव्यं मतिभिर्यज्ञियानां नक्षत् कामं मर्त्यानामसिन्वन् ।
धाता रयिमविदस्यं सदासां सक्षीमहि युज्येभिर्नु देवैः ६
नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७ ४८७

॥ ४६ ॥ (७।४०।१-६) +

ओ श्रुष्टिर्विदथ्याइ समेतु प्रति स्तोमं दधीमहि तुराणाम् ।
यदद्य देवः सविता सुवाति स्यामास्य रत्निनो विभागे १
मित्रस्तन्नो वरुणो रोदसी च द्युभक्तमिन्द्रो अर्यमा ददातु ।
दिदेष्टु देव्यदिती रेक्णो वायुश्च यन्नियुवैते भगश्च २
सेदुग्रो अस्तु मरुतः स शुष्मी यं मर्त्यं पृषदश्वा अवाथ ।
उतेमग्निः सरस्वती जुनन्ति न तस्य रायः पर्येतास्ति ३ ४९०
अयं हि नेता वरुण ऋतस्य मित्रो राजानो अर्यमापो धुः ।
सुहवा देव्यदितिरनर्वा ते नो अंहो अति पर्षन्नरिष्टान् ४
अस्य देवस्य मीळ्हुषो वया विष्णोरेषस्य प्रभृथे हविर्भिः
विदे हि रुद्रो रुद्रियं महित्वं यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ५
मात्र पूषन्नाघृण इरस्यो वरूत्री यद् रातिषाचश्च रासन् ।
मयोभुवो नो अर्वन्तो नि पान्तु वृष्टिं परिज्मा वातो ददातु ६ ४९३

॥ ४७ ॥ (ऋ० ७।४१।१) जगती । ×

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम १ ४९४

॥ ४८ ॥ (ऋ० ७।४२।१-६) त्रिष्टुप् ।

प्र ब्रह्माणो आङ्गिरसो नक्षन्त प्र क्रन्दनुर्नभन्यस्य वेतु ।
प्र धेनव उदप्रुतो नवन्त युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः १ ४९५

+ ऋ० ७,४०,७ = ऋ० ७,३९,७ । × ऋ० ७।४१।१ = अथर्व० ३।१६।१

सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा युक्ष्वा सुते हरितो रोहितश्च ।
ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सत्तः २
समु वो यज्ञं महयन् नमोभिः प्र होता मन्द्रो रिरिच उपाके ।
यजस्व सु पुर्वणीक देवा ना यज्ञियामरमतिं ववृत्याः ३
यदा वीरस्य रेवतो दुरोणे स्योनशीरतिथिराचिकेतत् ।
सुप्रीतो अग्निः सुधितो दम आ स विशे दाति वार्यमियत्यै ४
इमं नो अग्ने अध्वरं जुषस्व मरुत्स्विन्द्रे यशसं कृधी नः ।
आ नक्ता बर्हिः सदतामुषासो शन्ता मित्रावरुणा यजेह ५
एवाग्निं सहस्यं वसिष्ठो रायस्कामो विश्वप्स्न्यस्य स्तौत् ।
इषं रयिं पप्रथद् वाजमस्मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६ ५००

॥ ४९ ॥ (ऋ० ७।४३।१-५)

प्र वो यज्ञेषु देवयन्तो अर्चन् द्यावा नमोभिः पृथिवी इषध्यै ।
येषां ब्रह्माण्यसमानि विप्रा विष्वग्वियन्ति वनिनो न शाखाः १
प्र यज्ञ एतु हेत्वो न सप्ति रुद्यच्छध्वं समनसो घृताचीः ।
स्तृणीत बर्हिरध्वराय साधू र्ध्वा शोचींषि देवयून्यस्थुः २
आ पुत्रासो न मातरं विभृत्राः सानौ देवासो बर्हिषः सदन्तु ।
आ विश्वाची विदथ्यामनक्त्व ग्ने मा नो देवताता मृधस्कः ३
ते सीषपन्त जोषमा यजत्रा ऋतस्य धाराः सुदुघा दुहानाः ।
ज्येष्ठं वो अद्य मह आ वसूना मा गन्तन समनसो यति ष्ठ ४
एवा नो अग्ने विक्ष्वा दशस्य त्वया वयं सहसावन्नास्क्राः ।
राया युजा सधमादो अरिष्टा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५ ५०५

॥ ५० ॥ (ऋ० ७।४४।१) जगती ।

दधिक्रां वः प्रथममश्विनोषस मग्निं समिद्धं भगमूतये हुवे ।
इन्द्रं विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पति मादित्यान् द्यावापृथिवी अपः स्वः १ ५०६

॥ ५१ ॥ (ऋ० ७।४८।४) त्रिष्टुप् ।

नू देवासो वरिवः कर्तना नो भूत नो विश्वेऽवसे सजोषाः ।
समस्मे इषं वसवो ददीरन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४ ५०७

॥ ५२ ॥ (ऋ० ७।५०।३) जगती ।

यच्छल्मलौ भवति यन्नदीषु यदोषधीभ्यः परि जायते विषम् ।
विश्वे देवा निरितस्तत् सुवन्तु मा मां पद्येन रपसा विदत् त्सरुः ३ ५०८

॥ ५३ ॥ (ऋ० ८।२५।१०-१२)
(५०९-५११) विश्वमना वैयश्वः । उष्णिक् ।

उत नो देव्यदितिरुरुष्यतां नासत्या । उरुष्यन्तु मरुतो वृद्धशवसः १०
ते नो नावमुरुष्यत दिवा नक्तं सुदानवः । अरिष्यन्तो नि पायुभिः सचेमहि ११ ५१०
अघ्नते विष्णवे वयमरिष्यन्तः सुदानवे । श्रुधि स्वयावन्त्सिन्धो पूर्वचित्तये १२ ५११

॥ ५४ ॥ (ऋ० ७।२७।१-२१)
(५१२-५२) मनुर्वैवस्वतः । प्रगाथः = (विषमा बृहती+समा सतोबृहती) ।

अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पतिं देवाँ अवो वरेण्यम् १
आ पशुं गासि पृथिवीं वनस्पतीनुषासा नक्तमोषधीः ।
विश्वे च नो वसवो विश्ववेदसो धीनां भूत प्रावितारः २
प्र सू न एत्वध्वरो३ऽग्ना देवेषु पूर्व्यः ।
आदित्येषु प्र वरुणे धृतव्रते मरुत्सु विश्वभानुषु ३
विश्वे हि ष्मा मनवे विश्ववेदसो भुवन् वृधे रिशादसः ।
अरिष्टेभिः पायुभिर्विश्ववेदसो यन्ता नोऽवृकं छर्दिः ४ ५१५
आ नो अद्य समनसो गन्ता विश्वे सजोषसः ।
ऋचा गिरा मरुतो देव्यदिते सदने पस्त्ये महि ५
अभि प्रिया मरुतो या वो अश्व्या हव्या मित्र प्रयाथन ।
आ बर्हिरिन्द्रो वरुणस्तुरा नर आदित्यासः सदन्तु नः ६
वयं वो वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आनुषक् ।
सुतसोमासो वरुण हवामहे मनुष्वदिद्धाग्नयः ७
आ प्र यात मरुतो विष्णो अश्विना पूषन् माकीनया धिया ।
इन्द्र आ यातु प्रथमः सनिष्युभिर्वृषा यो वृत्रहा गृणे ८
त्रि नो देवासो अद्रुहोऽच्छिद्रं शर्म यच्छत ।
न यद् दूराद् वसवो नू चिदन्तितो वरूथमादधर्षति ९ ५२०

अस्ति हि वः सजात्यं रिशादसो देवासो अस्त्याप्यम् ।
प्र णः पूर्वस्मै सुविताय वोचत मक्षू सुम्नाय नव्यसे १०
इदा हि व उपस्तुति-मिदा वामस्य भक्तये ।
उप वो विश्ववेदसो नमस्यु-राँ असृक्ष्यन्यामिव ११
उदु ष्य वः सविता सुप्रणीतयो ऽस्थादूर्ध्वो वरेण्यः ।
नि द्विपादश्चतुष्पादो अर्थिनो ऽविश्रन् पतयिष्णवः १२
देवंदेवं वोऽवसे देवंदेवमभिष्टये ।
देवंदेवं हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया १३
देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकं सरातयः ।
ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः १४ ५२५
प्र वः शंसाम्यद्रुहः संस्थ उपस्तुतीनाम् ।
न तं धूर्तिर्वरुण मित्र मर्त्यं यो वो धामभ्योऽविधत् १५
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्पर्य-रिष्टः सर्व एधते १६
ऋते स विन्दते युधः सुगेभिर्यात्यध्वनः ।
अर्यमा मित्रो वरुणः सरातयो यं त्रायन्ते सजोषसः १७
अज्रे चिदस्मै कृणुथा न्यञ्चनं दुर्गे चिदा सुसरणम् ।
एषा चिदस्मादशनिः परो नु सास्रेधन्ती वि नश्यतु १८
यदद्य सूर्य उद्यति प्रियक्षत्रा ऋतं दध ।
यन्निम्रुचि प्रबुधि विश्ववेदसो यद् वा मध्यंदिने दिवः १९ ५३०
यद् वाभिपित्वे असुरा ऋतं यते छर्दिर्येम वि दाशुषे ।
वयं तद् वो वसवो विश्ववेदस उप स्थेयाम मध्य आ २०
यदद्य सूर उदिते यन्मध्यंदिन आतुचि ।
वामं धत्थ मनवे विश्ववेदसो जुह्वानाय प्रचेतसे २१
वयं तद् वः सम्राज आ वृणीमहे पुत्रो न बहुपाय्यम् ।
अश्याम तदादित्या जुह्वतो हवि-र्येन वस्योऽनशामहै २२ ५३३

॥ ५१ ॥ (ऋ० ८।२८।१-५) गायत्री, ४ पुरउष्णिक् ।

ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन् । विदन्नह द्वितासनन् १ ५३६

वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा स्मद्रा॑तिषाचो अ॒ग्नयः॑ । पत्नी॑वन्तो॒ वष॑ट्कृताः २ ५३५
ते नो॑ गो॒पा अ॑पा॒च्या॒स्त उद॒क्त इ॒त्था न्य॑क् । पु॒रस्ता॒त् सर्व॑या वि॒शा ३
यथा॒ वश॑न्ति दे॒वास्तथेद॑स॒त् तदे॑षां॒ नकि॒रा मि॑नत् । अरा॑वा च॒न मर्त्यः॑ ४
स॒प्ता॒नां स॒प्त ऋ॒ष्टयः॑ स॒प्त द्यु॒म्नान्ये॑षाम् । स॒प्तो अधि॒ श्रियो॑ धिरे ५ ५३८

॥ ५६ ॥ (ऋ० ८।२९।१-१०)

(कश्यपो वा मारीचः) । द्विपदा विराट् ।

ब॒भ्रुरेको॒ विषु॑णः सू॒नरो॒ यु॒वाञ्ज्य॑ङ्क्ते हिर॒ण्यय॑म् । १
योनि॒मेक॒ आ स॑साद॒ द्योत॑नो॒ ऽन्तर्दे॒वेषु॒ मेधि॑रः १। २ ५४०
वाशी॒मेको॑ बिभर्ति॒ हस्त॒ आय॒सीम॒न्तर्दे॒वेषु॒ निध्रु॑विः । ३
वज्र॒मेको॑ बिभर्ति॒ हस्त॒ आहि॑तं॒ तेन॑ वृ॒त्राणि॑ जिघ्नते २। ४
ति॒ग्ममेको॑ बिभर्ति॒ हस्त॒ आयु॑धं॒ शुचि॑रु॒ग्रो जला॑षभेषजः ५
प॒थ एकः॑ पीपाय॒ तस्क॑रो यथाँ॒ ए॒ष वे॑द नि॒धीनाम् ३। ६
त्रीण्येक॑ उरुगा॒यो वि च॑क्रमे॒ यत्र॑ दे॒वासो॒ मद॑न्ति । ७ ५४५
विभि॒र्द्वा च॑रत॒ एक॑या स॒ह प्र प्र॑वा॒सेव॑ वसतः ४। ८
सदो॒ द्वा च॑क्राते उप॒मा दि॒वि स॒म्राजा॑ स॒र्पिरा॑सुती । ९
अर्च॑न्त॒ एके॒ महि॒ साम॑ मन्वत॒ तेन॒ सूर्य॑मरोचयन् ५। १० ५४८

॥ ५७ ॥ (ऋ० ८।३०।१-४)

१ गायत्री, २ पुरउष्णिक्, ३ बृहती, ४ अनुष्टुप् ।

न॒हि वो॒ अस्त्य॑र्भ॒को देवा॑सो॒ न कु॑मार॒कः । विश्वे॑ स॒तोम॑हान्त॒ इत् १
इति॒ स्तुता॑सो असथा रिशादसो॒ ये स्थ त्रय॑श्च त्रिं॒शच्च॑ । मनो॑र्देवा यज्ञियासः २ ५५०
ते न॑स्त्राध्वं॒ ते॑ऽवत॒ त उ॒ नो॒ अधि॑ वोचत ।
मा नः॑ प॒थः पित्र्या॑न्मानवा॒दधि॑ दू॒रं नै॑ष्ट परा॒वतः॑ ३
ये दे॑वास इ॒ह स्थन॒ विश्वे॑ वैश्वान॒रा उ॒त ।
अ॒स्मभ्यं॒ शर्म॑ स॒प्रथो॒ गवेऽश्वा॑य यच्छत ४ ५५२

॥ ५८ ॥ (ऋ० ८।५४ [वाल० ६] ३-४)

(५५३-५४) मातरिश्वा काण्वः । प्रगाथः = (विषमा बृहती+समा सतोबृहती)

आ नो॒ विश्वे॑ स॒जोष॑सो॒ देवा॑सो॒ गन्त॒नोप॑ नः ।
वस॑वो रु॒द्रा अव॑से न॒ आ ग॑म॒ञ्छृण्वन्तु॑ म॒रुतो॒ हव॑म् ३ ५५३

पूषा विष्णुर्हवनं मे सरस्वत्यवन्तु सप्त सिन्धवः ।
आपो वातः पर्वतासो वनस्पतिः शृणोतु पृथिवी हवम् ४ ५५४

॥ ५९ ॥ (ऋ० ८।५८ [वाल० १०] । १-३)
(५५५-५७) मेध्यः काण्वः । (१ ऋत्विजो वा) । त्रिष्टुप् ।

यमृत्विजो बहुधा कल्पयन्तः सचेतसो यज्ञमिमं वहन्ति ।
यो अनूचानो ब्राह्मणो युक्त आसीत् का स्वित् तत्र यजमानस्य संवित् १ ५५५
एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः ।
एकैवोषाः सर्वमिदं वि भात्येकं वा इदं वि बभूव सर्वम् २
ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं सुखं रथं सुषदं भूरिवारम् ।
चित्रामघा यस्य योगेऽधिजज्ञे तं वां हुवे अति रिक्तं पिबध्यै ३ ५५७

॥ ६० ॥ (ऋ० ८।६९।११ [पूर्वार्धः])
(५५८) प्रियमेध आङ्गिरसः । पंक्तिः ।

अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत । ११ ५५८

॥ ६१ ॥ (ऋ० ८।८३।१-९)
(५५९-६७) कुसीदी काण्वः । गायत्री ।

देवानामिदवो महत् तदा वृणीमहे वयम् । वृष्णामस्मभ्यमूतये १
ते नः सन्तु युजः सदा वरुणो मित्रो अर्यमा । वृधासश्च प्रचेतसः २ ५६०
अति नो विष्पिता पुरु नौभिरपो न पर्षथ । यूयमृतस्य रथ्यः ३
वामं नो अस्त्वर्यमन् वामं वरुण शंस्यम् । वामं ह्यावृणीमहे ४
वामस्य हि प्रचेतस ईशानासो रिशादसः । नेमादित्या अघस्य यत् ५
वयमिद् वः सुदानवः क्षियन्तो यान्तो अध्वन्ना । देवा वृधाय हूमहे ६
अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम् । इता मरुतो अश्विना ७ ५६५
प्र भ्रातृत्वं सुदानवोऽध द्विता समान्या । मातुर्गर्भे भरामहे ८
यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः । अधा चिद् व उत ब्रुवे ९ ५६७

॥ ६२ ॥ (ऋ० १०।३१।१-११)
(५६८-७९) कवष ऐलूषः । त्रिष्टुप् ।

आ नो देवानामुप वेतु शंसो विश्वेभिस्तुरैरवसे यजत्रः ।
तेभिर्वयं सुषखायो भवेम तरन्तो विश्वा दुरिता स्याम १ ५६८

परि चिन्मर्तो द्रविणं ममन्या-दृतस्य पथा नमसा विवासेत् ।
उत स्वेन क्रतुना सं वदेत-श्रेयांसं दक्षं मनसा जगृभ्यात् २
अधायि धीतिरससृग्रमंशा-स्तीर्थे न दस्ममुप यन्त्यूमाः ।
अभ्यानश्म सुवितस्य शूषं नवेदसो अमृतानामभूम ३
नित्यश्चाकन्यात् स्वपतिर्दमूना यस्मा उ देवः सविता जजान ।
भगो वा गोभिरर्यमेमनज्यात् सो अस्मै चारुश्छदयदुत स्यात् ४
इयं सा भूया उषसामिव क्षा यद्ध क्षुमन्तः शवसा समायन् ।
अस्य स्तुतिं जरितुर्भिक्षमाणा आ नः शग्मास उप यन्तु वाजाः ५
अस्येदेषा सुमतिः पप्रथाना ऽभवत् पूर्व्या भूमना गौः ।
अस्य सनीळा असुरस्य योनौ समान आ भरणे बिभ्रमाणाः ६
किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
संतस्थाने अजरे इतऊती अहानि पूर्वीरुषसो जरन्त ७
नैतावदेना परो अन्यद-स्त्युक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्ति ।
त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान् यदीं सूर्यं न हरितो वहन्ति ८
स्तेगो न क्षामत्येति पृथ्वीं मिहं न वातो वि ह वाति भूम ।
मित्रो यत्र वरुणो अज्यमानो ऽग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ९
स्तरीर्यत् सूत सद्यो अज्यमाना व्यथिरव्यथीः कृणुत स्वगोपा ।
पुत्रो यत् पूर्वः पित्रोर्जनिष्ट शम्यां गौर्जगार यद्ध पृच्छान् १०
उत कण्वं नृषदः पुत्रमाहु-रुत श्यावो धनमादत्त वाजी ।
प्र कृष्णाय रुशदपिन्वतोध-र्ऋतमत्र नकिरस्मा अपीपेत् ११

॥ ६३ ॥ (ऋ० १०।३३।१)

प्र मा युयुज्रे प्रयुजो जनानां वहामि स्म पूषणमन्तरेण ।
विश्वे देवासो अध मामरक्षन् दुःशासुरागादिति घोष आसीत् १

॥ ६४ ॥ (ऋ० १०।३५।१-१४)

(५८०-६०७) लुशो धानाकः । जगती, १३-१४ त्रिष्टुप् ।

अबुध्रमु त्य इन्द्रवन्तो अग्नयो ज्योतिर्भरन्त उषसो व्युष्टिषु ।
मही द्यावापृथिवी चेततामपो ऽद्या देवानामव आ वृणीमहे १

दिवस्पृथिव्योरव आ वृणीमहे मातृन्त्सिन्धून् पर्वताञ्छर्यणावतः ।
अनागास्त्वं सूर्यमुषासमीमहे भद्रं सोमः सुवानो अद्या कृणोतु नः
द्यावा नो अद्य पृथिवी अनागसो मही त्रायेतां सुविताय मातरा ।
उषा उच्छन्त्यप बाधतामघं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे
इयं न उस्रा प्रथमा सुदेव्यं रेवत् सनिभ्यो रेवती व्युच्छतु ।
आरे मन्युं दुर्विदत्रस्य धीमहि स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ४
प्र याः सिस्रते सूर्यस्य रश्मिभि-र्ज्योतिर्भरन्तीरुषसो व्युष्टिषु ।
भद्रा नो अद्य श्रवसे व्युच्छत स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ५
अनमीवा उषस आ चरन्तु न उदग्नयो जिहतां ज्योतिषा बृहत् ।
आयुक्षातामश्विना तूतुजिं रथं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ६ ५८५

श्रेष्ठं नो अद्य सवितर्वरेण्यं भागमा सुव स हि रत्नधा असि ।
रायो जनित्रीं धिषणामुप ब्रुवे स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ७
पिपर्तु मा तदृतस्य प्रवाचनं देवानां यन्मनुष्या३ अमन्महि ।
विश्वा इदुस्राः स्पळुदेति सूर्यः स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ८
अद्वेषो अद्य बर्हिषः स्तरीमणि ग्राव्णां योगे मन्मनः साध ईमहे ।
आदित्यानां शर्मणि स्था भुरण्यसि स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ९
आ नो बर्हिः सधमादे बृहद्दिवि देवाँ ईळे सादया सप्त होतॄन् ।
इन्द्रं मित्रं वरुणं सातये भगं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे १०
त आदित्या आ गता सर्वतातये वृधे नो यज्ञमवता सजोषसः ।
बृहस्पतिं पूषणमश्विना भगं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ११ ५९०

तन्नो देवा यच्छत सुप्रवाचनं छर्दिरादित्याः सुभरं नृपाय्यम् ।
पश्वे तोकाय तनयाय जीवसे स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे १२
विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः ।
विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे १३
यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं त्रायध्वे यं पिपृथात्यंहः ।
यो वो गोपीथे न भयस्य वेद ते स्याम देववीतये तुरासः १४ ५९३

॥ ६५ ॥ (ऋ० १०।३६।१-१४)

उषासानक्ता बृहती सुपेशसा द्यावाक्षामा वरुणो मित्रो अर्यमा ।
इन्द्रं हुवे मरुतः पर्वताँ अप आदित्यान् द्यावापृथिवी अपः स्वः १
द्यौश्च नः पृथिवी च प्रचेतस ऋतावरी रक्षतामंहसो रिषः ।
मा दुर्विदत्रा निर्ऋतिर्न ईशत तद् देवानामवो अद्या वृणीमहे २ ५९५
विश्वस्मान्नो अदितिः पात्वंहसो माता मित्रस्य वरुणस्य रेवतः ।
स्वर्वज्ज्योतिरवृकं नशीमहि तद् देवानामवो अद्या वृणीमहे ३
ग्रावा वदन्नप रक्षांसि सेधतु दुष्ष्वप्न्यं निर्ऋतिं विश्वमत्रिणम् ।
आदित्यं शर्म मरुतामशीमहि तद् देवानामवो अद्या वृणीमहे ४
एन्द्रो बर्हिः सीदतु पिन्वतामिळा बृहस्पतिः सामभिर्ऋक्वो अर्चतु ।
सुप्रकेतं जीवसे मन्म धीमहि तद् देवानामवो अद्या वृणीमहे ५
दिविस्पृशं यज्ञमस्माकमश्विना जीराध्वरं कृणुतं सुम्नमिष्टये ।
प्राचीनरश्मिमाहुतं घृतेन तद् देवानामवो अद्या वृणीमहे ६
उप ह्वये सुहवं मारुतं गणं पावकमृष्वं सख्याय शंभुवम् ।
रायस्पोषं सौश्रवसाय धीमहि तद् देवानामवो अद्या वृणीमहे ७ ६००
अपां पेरुं जीवधन्यं भरामहे देवाव्यं सुहवमध्वरश्रियम् ।
सुरश्मिं सोममिन्द्रियं यमीमहि तद् देवानामवो अद्या वृणीमहे ८
सनेम तत् सुसनिता सनित्वभि र्वयं जीवा जीवपुत्रा अनागसः ।
ब्रह्मद्विषो विष्वगेनो भरेरत तद् देवानामवो अद्या वृणीमहे ९
ये स्था मनोर्यज्ञियास्ते शृणोतन यद् वो देवा ईमहे तद् ददातन ।
जैत्रं क्रतुं रयिमद् वीरवद्यश स्तद् देवानामवो अद्या वृणीमहे १०
महदद्य महतामा वृणीमहे ऽवो देवानां बृहतामनर्वणाम् ।
यथा वसु वीरजातं नशामहै तद् देवानामवो अद्या वृणीमहे ११
महो अग्नेः समिधानस्य शर्म ण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये ।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद् देवानामवो अद्या वृणीमहे १२ ६०५
ये सवितुः सत्यसवस्य विश्वे मित्रस्य व्रते वरुणस्य देवाः ।
ते सौभगं वीरवद् गोमदप्नो दधातन द्रविणं चित्रमस्मे १३ ६०६

सविता पश्चातात् सविता पुरस्तात् सवितोत्तरात्तात् सविताधरात्तात् ।
सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः १४ ६०७

॥ ६६ ॥ (ऋ० १०।५२।१-६)

(६०८-१३) सौचीकोऽग्निः । त्रिष्टुप् ।

विश्वे देवाः शास्तन मा यथेह होता वृतो मनवै यन्निषद्य ।
प्र मे ब्रूत भागधेयं यथा वो येन पथा हव्यमा वो वहानि १
अहं होता न्यसीदं यजीयान् विश्वे देवा मरुतो मा जुनन्ति ।
अहरहरश्विनाध्वर्यवं वां ब्रह्मा समिद् भवति साहुतिर्वाम् २
अयं यो होता किरु स यमस्य कमप्यूहे यत् समञ्जन्ति देवाः ।
अहरहर्जायते मासिमास्यथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ३ ६१०
मां देवा दधिरे हव्यवाहमपम्लुक्तं बहु कृच्छ्रा चरन्तम् ।
अग्निर्विद्वान् यज्ञं नः कल्पयाति पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम् ४
आ वो यक्ष्यमृतत्वं सुवीरं यथा वो देवा वरिवः कराणि ।
आ बाह्वोर्वज्रमिन्द्रस्य धेयामथेमा विश्वाः पृतना जयाति ५
त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ६ ६१३

॥ ६७ ॥ (ऋ० १०।५६।१-७)

(६१४-२०) बृहदुक्थो वामदेव्यः । त्रिष्टुप्, ४-६ जगती ।

इदं त एकं पर ऊं त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
संवेशने तन्वश्चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे १
तनूष्टे वाजिन् तन्वं नयन्ती वाममस्मभ्यं धातु शर्म तुभ्यम् ।
अह्रुतो महो धरुणाय देवान् दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयाः २ ६१५
वाज्यसि वाजिनेना सुवेनीः सुवितः स्तोमं सुवितो दिवं गाः ।
सुवितो धर्म प्रथमानु सत्या सुवितो देवान्त्सुवितोऽनु पत्म ३
महिम्न एषां पितरश्चनेशिरे देवा देवेष्वदधुरपि क्रतुम् ।
समविव्यचुरुत यान्यत्विषुरैषां तनूषु नि विविशुः पुनः ४
सहोभिर्विश्वं परि चक्रमू रजः पूर्वा धामान्यमिता मिमानाः ।
तनूषु विश्वा भुवना नि येमिरे प्रासारयन्त पुरुध प्रजा अनु ५ ६१८

द्विधा सूनवोऽसुरं स्वर्विद—मास्थापयन्त तृतीयेन कर्मणा ।
स्वां प्रजां पितरः पित्र्यं सह आवरेष्वदधुस्तन्तुमाततम् ६
नावा न क्षोदः प्रदिशः पृथिव्याः स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
स्वां प्रजां बृहदुक्थो महित्वा ऽऽवरेष्वदधादा परेषु ७ ६२०

॥ ६८ ॥ (ऋ० १०।५७।१-६)

(६२१-२६) बन्धुः श्रुतबन्धुर्गौपायनाः । गायत्री ।

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः । मान्तः स्थुर्नो अरातयः १
यो यज्ञस्य प्रसाधन—स्तन्तुर्देवेष्वाततः । तमाहुतं नशीमहि २
मनो न्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन । पितृणां च मन्मभिः ३
आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्यं दृशे ४
पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीवं व्रातं सचेमहि ५ ६२५
वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ६ ६२६

॥ ६९ ॥ (ऋ० १०।६१।१-२७)

(६२७-६०) नाभानेदिष्ठो मानवः । त्रिष्टुप् ।

इदमित्था रौद्रं गूर्तवचा ब्रह्म क्रत्वा शच्यामन्तराजौ ।
क्राणा यदस्य पितरा मंहनेष्ठाः पर्षत् पक्थे अहन्ना सप्त होतॄन् १
स इद् दानाय दभ्याय वन्व—ञ्च्यवानः सूदैरमिमीत वेदिम् ।
तूर्वयाणो गूर्तवचस्तमः क्षोदो न रेत इतऊति सिञ्चत् २
मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता ।
आ यः शर्याभिस्तुविनृम्णो अस्या—ऽश्रीणीतादिशं गभस्तौ ३
कृष्णा यद् गोष्वरुणीषु सीदद् दिवो नपाताश्विना हुवे वाम् ।
वीतं मे यज्ञमा गतं मे अन्नं ववन्वांसा नेषमस्मृतध्रू ४ ६३०
प्रथिष्ट यस्य वीरकर्ममिष्ण—दनुष्ठितं नु नर्यो अपौहत् ।
पुनस्तदा बृहति यत् कनाया दुहितुरा अनुभृतमनर्वा ५
मध्या यत् कर्त्वमभवदभीके कामं कृण्वाने पितरि युवत्याम् ।
मनानग्रेतो जहतुर्वियन्ता सानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ ६
पिता यत् स्वां दुहितरमधिष्कन् क्ष्मया रेतः संजग्मानो नि षिञ्चत् ।
स्वाध्योऽजनयन् ब्रह्म देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् ७ ६३३

स ईं वृषा न फेनमस्यदाजौ　स्मदा परैदप दभ्रचेताः ।
सरत् पदा न दक्षिणा परावृङ्　न ता नु मे पृशन्यो जगृभ्रे　८
मक्षू न वह्निः प्रजाया उपब्दि-रग्निं न नग्न उप सीददूधः ।
सनितेध्मं सनितोत वाजं　स धर्ता जज्ञे सहसा यवीयुत्　९　६३५
मक्षू कनायाः सख्यं नवग्वा　ऋतं वदन्त ऋतयुक्तिमग्मन् ।
द्विबर्हसो य उप गोपमागु-रदक्षिणासो अच्युता दुदुक्षन्　१०
मक्षू कनायाः सख्यं नवीयो　राधो न रेत ऋतमित् तुरण्यन् ।
शुचि यत् ते रेक्ण आयजन्त　सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः　११
पश्चा यत् पश्चा वियुता बुधन्ते-ति ब्रवीति वक्तरी रराणः ।
वसोर्वसुत्वा कारवोऽनेहा　विश्वं विवेष्टि द्रविणमुप क्षु　१२
तदिन्न्वस्य परिषद्वानो अग्मन्　पुरू सदन्तो नार्षदं बिभित्सन् ।
वि शुष्णस्य संग्रथितमनर्वा　विदत् पुरुप्रजातस्य गुहा यत्　१३
भर्गो ह नामोत यस्य देवाः　स्वर्ण ये त्रिषधस्थे निषेदुः ।
अग्निर्ह नामोत जातवेदाः　श्रुधी नो होतर्ऋतस्य होताध्रुक्　१४　६४०
उत त्या मे रौद्रावर्चिमन्ता　नासत्याविन्द्र गूर्तये यजध्यै ।
मनुष्वद् वृक्तबर्हिषे रराणा　मन्दू हितप्रयसा विक्षु यज्यू　१५
अयं स्तुतो राजा वन्दि वेधा　अपश्च विप्रस्तरति स्वसेतुः ।
स कक्षीवन्तं रेजयत् सो अग्निं　नेमिं न चक्रमर्वतो रघुद्रु　१६
स द्विबन्धुर्वैतरणो यष्टा　सबर्धुं धेनुमस्वं दुहध्यै ।
सं यन्मित्रावरुणा वृञ्ज उक्थै-र्ज्येष्ठेभिरर्यमणं वरूथैः　१७
तद्बन्धुः सूरिर्दिवि ते धियंधा　नाभानेदिष्ठो रपति प्र वेनन् ।
सा नो नाभिः परमास्य वा घा-ऽहं तत् पश्चा कतिथश्चिदास　१८
इयं मे नाभिरिह मे सधस्थ-मिमे मे देवा अयमस्मि सर्वः ।
द्विजा अह प्रथमजा ऋतस्ये-दं धेनुरदुहज्जायमाना　१९　६४५
अधासु मन्द्रो अरतिर्विभावा　ऽव स्यति द्विवर्तनिर्वनेषाट् ।
ऊर्ध्वा यच्छ्रेणिर्न शिशुर्दन्　मक्षू स्थिरं शेवृधं सूत माता　२०
अधा गाव उपमातिं कनाया　अनु श्वान्तस्य कस्य चित् परेयुः ।
श्रुधि त्वं सुद्रविणो नस्त्वं या-ळाश्वघ्नस्य वावृधे सूनृताभिः　२१　६४७

अध त्वमिन्द्र विद्ध्य१स्मान् महो राये नृपते वज्रबाहुः ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरी—ननेहसस्ते हरिवो अभिष्टौ २२
अध यद् राजाना गविष्टौ सरत् सरण्युः कारवे जरण्युः ।
विप्रः प्रेष्ठः स ह्येषां बभूव परा च वक्षदुत पर्षदेनान् २३
अधा न्वस्य जेन्यस्य पुष्टौ वृथा रेभन्त ईमहे तदू नु ।
सरण्युरस्य सूनुरश्वो विप्रश्चासि श्रवसश्च सातौ २४ ६५०
युवोर्यदि सख्यायास्मे शर्धाय स्तोमं जुजुषे नमस्वान् ।
विश्वत्र यस्मिन्ना गिरः समीचीः पूर्वीव गातुर्दाशत् सूनृतायै २५
स गृणानो अद्भिर्देववानिति सुबन्धुर्नमसा सूक्तैः ।
वर्धदुक्थैर्वचोभिरा हि नूनं व्यध्वैति पयस उस्रियायाः २६
त ऊ षु णो महो यजत्रा भूत देवास ऊतये सजोषाः ।
ये वाजाँ अनयता वियन्तो ये स्था निचेतारो अमूराः २७ ६५३

॥ ८० ॥ (ऋ० १०।६२।१-७)

(१-६ अङ्गिरसो वा)। ५ अनुष्टुप्; प्रगाथः = (६ बृहती ७ सतोबृहती)।

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश ।
तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः १
य उदाजन् पितरो गोमयं वस्वृ—तेनाभिन्दन् परिवत्सरे वलम् ।
दीर्घायुत्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः २ ६५५
य ऋतेन सूर्यमारोहयन् दिव्य—प्रथयन् पृथिवीं मातरं वि ।
सुप्रजास्त्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ३
अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन ।
सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ४
विरूपास इदृषय—स्त इद् गम्भीरवेपसः ।
ते अङ्गिरसः सूनव—स्ते अग्नेः परि जज्ञिरे ५
ये अग्नेः परि जज्ञिरे विरूपासो दिवस्परि ।
नवग्वो नु दशग्वो अङ्गिरस्तमः सचा देवेषु मंहते ६
इन्द्रेण युजा निः सृजन्त वाघतो व्रजं गोमन्तमश्विनम् ।
सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः श्रवो देवेष्वक्रत ७ ६६०

॥ ७१ ॥ (ऋ० १०।६३।१-१४,१७)

(६६१-९१) गयः प्लातः। जगती, १७ त्रिष्टुप्।

परावतो ये दिधिषन्त आप्यं मनुप्रीतासो जनिमा विवस्वतः ।
ययातेर्ये नहुष्यस्य बर्हिषि देवा आसते ते अधि ब्रुवन्तु नः १
विश्वा हि वो नमस्यानि वन्द्या नामानि देवा उत यज्ञियानि वः ।
ये स्थ जाता अदितेरद्भ्यस्परि ये पृथिव्यास्ते म इह श्रुता हवम् २
येभ्यो माता मधुमत् पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः ।
उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नस—स्ताँ आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये ३
नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद् देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ४
सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययु—रपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् ।
ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभि—र्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये ५ ६६५
को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यति ष्ठन ।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद् यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ६
येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः ।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ७
य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्य—द्या देवासः पिपृता स्वस्तये ८
भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहे—ऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् ।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ९
सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागस—मस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये १० ६७०
विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः ।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ११
अपामीवामप विश्वामनाहुति—मपारातिं दुर्विदत्रामघायतः ।
आरे देवा द्वेषो अस्मद् युयोतनो—रु णः शर्म यच्छता स्वस्तये १२
अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभि—रति विश्वानि दुरिता स्वस्तये १३ ६७३

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने ।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसि–मरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये १४
एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद् वो विश्व आदित्या अदिते मनीषी ।
ईशानासो नरो अमर्त्येना–ऽस्तावि जनो दिव्यो गयेन ×१७ ६७५

॥ ७२ ॥ (ऋ०१०।६४।१-१६) जगती; १२,१६ त्रिष्टुप् ।

कथा देवानां कतमस्य यामनि सुमन्तु नाम शृण्वतां मनामहे ।
को मृळाति कतमो नो मयस्करत् कतम ऊती अभ्या ववर्तति १
क्रतूयन्ति क्रतवो हृत्सु धीतयो वेनन्ति वेनाः पतयन्त्या दिशः ।
न मर्डिता विद्यते अन्य एभ्यो देवेषु मे अधि कामा अयंसत २
नरा वा शंसं पूषणमगोह्य–मग्निं देवेद्धमभ्यर्चसे गिरा ।
सूर्यामासा चन्द्रमसा यमं दिवि त्रितं वातमुषसमक्तुमश्विना ३
कथा कविस्तुवीरवान् कया गिरा बृहस्पतिर्वावृधते सुवृक्तिभिः ।
अज एकपात् सुहवेभिर्ऋक्वभि–रहिः शृणोतु बुध्न्यो३ हवीमनि ४
दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते राजाना मित्रावरुणा विवाससि ।
अतूर्तपन्थाः पुरुरथो अर्यमा सप्तहोता विषुरूपेषु जन्मसु ५ ६८०
ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः ।
सहस्रसा मेधसाताविव त्मना महो ये धनं समिथेषु जभ्रिरे ६
प्र वो वायुं रथयुजं पुरंधिं स्तोमैः कृणुध्वं सख्याय पूषणम् ।
ते हि देवस्य सवितुः सवीमनि क्रतुं सचन्ते सचितः सचेतसः ७
त्रिः सप्त सस्रा नद्यो महीरपो वनस्पतीन् पर्वताँ अग्निमूतये ।
कृशानुमस्तॄन् तिष्यं सधस्थ आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे ८
सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभि–र्महो महीरवसा यन्तु वक्षणीः ।
देवीरापो मातरः सूदयित्न्वो घृतवत् पयो मधुमन्नो अर्चत ९
उत माता बृहद्दिवा शृणोतु न–स्त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः पिता वचः ।
ऋभुक्षा वाजो रथस्पतिर्भगो रण्वः शंसः शशमानस्य पातु नः १० ६८५
रण्वः संदृष्टौ पितुमाँ इव क्षयो भद्रा रुद्राणां मरुतामुपस्तुतिः ।
गोभिः ष्याम यशसो जनेष्वा सदा देवास इळया सचेमहि ११ ६८६

× ऋ० १०,६३,१७=ऋ० १०,६४,१७।

यां मे धियं मरुत इन्द्र देवा अददात वरुण मित्र यूयम् ।
तां पीपयत पयसेव धेनुं कुविद्गिरो अधि रथे वहाथ १२
कुविदङ्ग प्रति यथा चिदस्य नः सजात्यस्य मरुतो बुबोधथ ।
नाभा यत्र प्रथमं संनसामहे तत्र जामित्वमदितिर्दधातु नः १३
ते हि द्यावापृथिवी मातरा मही देवी देवाञ्जन्मना यज्ञिये इतः ।
उभे बिभृत उभयं भरीमभिः पुरू रेतांसि पितृभिश्च सिञ्चतः १४
वि षा होत्रा विश्वमश्नोति वार्यं बृहस्पतिररमतिः पनीयसी ।
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृह—दवीवशन्त मतिभिर्मनीषिणः १५ ६९०
एवा कविस्तुवीरवाँ ऋतज्ञा द्रविणस्युर्द्रविणसश्चकानः ।
उक्थेभिरत्र मतिभिश्च विप्रो ऽपीपयद्गयो दिव्यानि जन्म १६ ६९१

॥ ७३ ॥ (ऋ० १०।६५।१-१५)

(६९२-७२०) वसुकर्णो वासुक्रः । जगती, १५ त्रिष्टुप् ।

अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा वायुः पूषा सरस्वती सजोषसः ।
आदित्या विष्णुर्मरुतः स्वर्बृहत् सोमो रुद्रो अदितिर्ब्रह्मणस्पतिः १
इन्द्राग्नी वृत्रहत्येषु सत्पती मिथो हिन्वाना तन्वा३ समोकसा ।
अन्तरिक्षं मह्या पप्रुरोजसा सोमो घृतश्रीर्महिमानमीरयन् २
तेषां हि मह्ना महतामनर्वणां स्तोमाँ इयर्म्यृतज्ञा ऋतावृधाम् ।
ये अप्सवमर्णवं चित्रराधस—स्ते नो रासन्तां महये सुमित्र्याः ३
स्वर्णरमन्तरिक्षाणि रोचना द्यावाभूमी पृथिवीं स्कम्भुरोजसा ।
पृक्षा इव महयन्तः सुरातयो देवाः स्तवन्ते मनुषाय सूरयः ४ ६९५
मित्राय शिक्ष वरुणाय दाशुषे या सम्राजा मनसा न प्रयुच्छतः ।
ययोर्धाम धर्मणा रोचते बृहद् ययोरुभे रोदसी नाधसी वृतौ ५
या गौर्वर्तनिं पर्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीरवारतः ।
सा प्रब्रुवाणा वरुणाय दाशुषे देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वते ६
दिवक्षसो अग्निजिह्वा ऋतावृध ऋतस्य योनिं विमृशन्त आसते ।
द्यां स्कभित्व्य१प आ चक्रुरोजसा यज्ञं जनित्वी तन्वी३ नि मामृजुः ७
परिक्षिता पितरा पूर्वजावरी ऋतस्य योना क्षयतः समोकसा ।
द्यावापृथिवी वरुणाय सव्रते घृतवत् पयो महिषाय पिन्वतः ८ ६९९

*

पर्जन्यावाता वृषभा पुरीषिणे—न्द्रवायू वरुणो मित्रो अर्यमा ।
देवाँ आदित्याँ अदितिं हवामहे ये पार्थिवासो दिव्यासो अप्सु ये ९ ७००
त्वष्टारं वायुमृभवो य ओहते दैव्या होतारा उषसं स्वस्तये ।
बृहस्पतिं वृत्रखादं सुमेधस—मिन्द्रियं सोमं धनसा उ ईमहे १०
ब्रह्म गामश्वं जनयन्त ओषधी—र्वनस्पतीन् पृथिवीं पर्वताँ अपः ।
सूर्यं दिवि रोहयन्तः सुदानव आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि ११
भुज्युमंहसः पिपृथो निरश्विना श्यावं पुत्रं वध्रिमत्या अजिन्वतम् ।
कमद्युवं विमदायोहथुर्युवं विष्णाप्वं१ विश्वकायाव सृजथः १२
पावीरवी तन्यतुरेकपादजो दिवो धर्ता सिन्धुरापः समुद्रियः ।
विश्वे देवासः शृणवन् वचांसि मे सरस्वती सह धीभिः पुरंध्या १३
विश्वे देवाः सह धीभिः पुरंध्या मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
रातिषाचो अभिषाचः स्वर्विदः स्व१र्गिरो ब्रह्म सूक्तं जुषेरत १४ ७०५
देवान् वसिष्ठो अमृतान् ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः *१५ ७०६

॥ ७४ ॥ (ऋ० १०।६६।१-१४)

देवान् हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तये ज्योतिष्कृतो अध्वरस्य प्रचेतसः ।
ये वावृधुः प्रतरं विश्ववेदस इन्द्रज्येष्ठासो अमृता ऋतावृधः १
इन्द्रप्रसूता वरुणप्रशिष्टा ये सूर्यस्य ज्योतिषो भागमानशुः ।
मरुद्गणे वृजने मन्म धीमहि माघोने यज्ञं जनयन्त सूरयः २
इन्द्रो वसुभिः परि पातु नो गय—मादित्यैर्नो अदितिः शर्म यच्छतु ।
रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृळयाति न—स्त्वष्टा नो ग्नाभिः सुविताय जिन्वतु ३
अदितिर्द्यावापृथिवी ऋतं मह—दिन्द्राविष्णू मरुतः स्वर्बृहत् ।
देवाँ आदित्याँ अवसे हवामहे वसून् रुद्रान्त्सवितारं सुदंससम् ४ ७१०
सरस्वान् धीभिर्वरुणो धृतव्रतः पूषा विष्णुर्महिमा वायुरश्विना ।
ब्रह्मकृतो अमृता विश्ववेदसः शर्म नो यंसन् त्रिवरूथमंहसः ५
वृषा यज्ञो वृषणः सन्तु यज्ञिया वृषणो देवा वृषणो हविष्कृतः ।
वृषणा द्यावापृथिवी ऋतावरी वृषा पर्जन्यो वृषणो वृषस्तुभः ६ ७११

---

* ऋ० १०,६५,१५ = ऋ० १०,६६,१५ ।

अग्नीषोमा वृषणा वाजसातये पुरुप्रशस्ता वृषणा उप ब्रुवे ।
यावीजिरे वृषणो देवयज्यया ता नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसतः ७
धृतव्रताः क्षत्रिया यज्ञनिष्कृतो बृहद्दिवा अध्वराणामभिश्रियः ।
अग्निहोतार ऋतसापो अद्रुहोऽपो असृजन्ननु वृत्रतूर्ये ८
द्यावापृथिवी जनयन्नभि व्रताऽऽप ओषधीर्वनिनानि यज्ञिया ।
अन्तरिक्षं स्व१रा पप्रुरूतये वशं देवासस्तन्वी३ नि मामृजुः ९ ७१५
धर्तारो दिव ऋभवः सुहस्ता वातापर्जन्या महिषस्य तन्यतोः ।
आप ओषधीः प्र तिरन्तु नो गिरो भगो रातिर्वाजिनो यन्तु मे हवम् १०
समुद्रः सिन्धू रजो अन्तरिक्ष-मज एकपात् तनयित्नुरर्णवः ।
अहिर्बुध्न्यः शृणवद् वचांसि मे विश्वे देवास उत सूरयो मम ११
स्याम वो मनवो देववीतये प्राञ्चं नो यज्ञं प्र णयत साधुया ।
आदित्या रुद्रा वसवः सुदानव इमा ब्रह्म शस्यमानानि जिन्वत १२
दैव्या होतारा प्रथमा पुरोहित ऋतस्य पन्थामन्वेमि साधुया ।
क्षेत्रस्य पतिं प्रतिवेशमीमहे विश्वान् देवाँ अमृताँ अप्रयुच्छतः १३
वसिष्ठासः पितृवद् वाचमक्रत देवाँ ईळाना ऋषिवत् स्वस्तये ।
प्रीता इव ज्ञातयः काममेत्या-ऽस्मे देवासोऽव धूनुता वसु १४ ७२०

॥ ७१ ॥ (ऋ० १०।९२।१-१५)
(७२१-३५) शार्यातो मानवः । जगती ।

यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशां होतारमक्तोरतिथिं विभावसुम् ।
शोचञ्छुष्कासु हरिणीषु जर्भुरद् वृषा केतुर्यजतो द्यामशायत १
इममञ्जस्पामुभये अकृण्वत धर्माणमग्निं विदथस्य साधनम् ।
अक्तुं न यह्वमुषसः पुरोहितं तनूनपातमरुषस्य निंसते २
बळस्य नीथा वि पणेश्च मन्महे वया अस्य प्रहुता आसुरत्तवे ।
यदा घोरासो अमृतत्वमाशता-दिज्जनस्य दैव्यस्य चर्किरन् ३
ऋतस्य हि प्रसितिर्द्यौरुरु व्यचो नमो मह्य१रमतिः पनीयसी ।
इन्द्रो मित्रो वरुणः सं चिकित्रिरेऽथो भगः सविता पूतदक्षसः ४
प्र रुद्रेण ययिना यन्ति सिन्धव-स्तिरो महीमरमतिं दधन्विरे ।
येभिः परिज्मा परियन्नुरु ज्रयो वि रोरुवज्जठरे विश्वमुक्षते ५ ७२५

ऋाणा रुद्रा मरुतो विश्वकृष्टयो दिवः श्येनासो असुरस्य नीळयः ।
तेभिश्चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमे—न्द्रो देवेभिरर्वशेभिरर्वशः ६
इन्द्रे भुजं शशमानास आशत सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
प्र ये न्वस्याहणा ततक्षिरे युजं वज्रं नृषदनेषु कारवः ७
सूरश्चिदा हरितो अस्य रीरम—दिन्द्रादा कश्चिद् भयते तवीयसः ।
भीमस्य वृष्णो जठरादभिश्वसो दिवेदिवे सहुरिः स्तन्नबाधितः ८
स्तोमं वो अद्य रुद्राय शिक्वसे क्षयद्वीराय नमसा दिदिष्टन ।
येभिः शिवः स्ववाँ एवयावभि—र्दिवः सिषक्ति स्वयशा निकामभिः ९
ते हि प्रजाया अभरन्त वि श्रवो बृहस्पतिर्वृषभः सोमजामयः ।
यज्ञैरथर्वा प्रथमो वि धारयद् देवा दक्षैर्भृगवः सं चिकित्रिरे १० ७३०
ते हि द्यावापृथिवी भूरिरेतसा नराशंसश्चतुरङ्गो यमोऽदितिः ।
देवस्त्वष्टा द्रविणोदा ऋभुक्षणः प्र रोदसी मरुतो विष्णुरर्हिरे ११
उत स्य न उशिजामुर्विया कवि—रहिः शृणोतु बुध्न्यो३ हवीमनि ।
सूर्यामासा विचरन्ता दिविक्षिता धिया शमीनहुषी अस्य बोधतम् १२
प्र नः पूषा चरथं विश्वदेव्यो ऽपां नपादवतु वायुरिष्टये ।
आत्मानं वस्यो अभि वातमर्चत तदश्विना सुहवा यामनि श्रुतम् १३
विशामासामभयानामधिक्षितं गीर्भिरु स्वयशसं गृणीमसि ।
ग्नाभिर्विश्वाभिरदितिमनर्वण—मक्तोर्युवानं नृमणा अधा पतिम् १४
रेभदत्र जनुषा पूर्वो अङ्गिरा ग्रावाण ऊर्ध्वा अभि चक्षुरध्वरम् ।
येभिर्विहाया अभवद् विचक्षणः पाथः सुमेकं स्वधितिर्वनन्वति १५ ७३५

॥ ७६ ॥ (ऋ० १०।९२।१-१५)

(७३६-५०) तान्वः पार्थ्यः । प्रस्तारपङ्क्तिः; १-३,१३ अनुष्टुप्; ९ अक्षरैः पङ्क्तिः, ११ न्यङ्कुसारिणी, १५ पुरस्ताद्बृहती ।

महि द्यावापृथिवी भूतमुर्वी नारी यह्वी न रोदसी सदं नः ।
तेभिर्नः पातं सह्यस एभिर्नः पातं शूषणि १
यज्ञेयज्ञे स मर्त्यो देवान्त्सपर्यति । यः सुम्नैर्दीर्घश्रुत्तम आविवासात्येनान् २
विश्वेषामिरज्यवो देवानां वार्महः । विश्वे हि विश्वमहसो विश्वे यज्ञेषु यज्ञियाः ३
ते घा राजानो अमृतस्य मन्द्रा अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा ।
कद् रुद्रो नृणां स्तुतो मरुतः पूषणो भगः ४ ७३९

उत नो नक्तमपां वृषण्वसू सूर्यामासा सदनाय सधन्या ।
सचा यत् साद्येषामहिर्बुध्नेषु बुध्न्यः ५ ७४०
उत नो देवावश्विना शुभस्पती धामभिर्मित्रावरुणा उरुष्यताम् ।
महः स राय एषतेऽति धन्वेव दुरिता ६
उत नो रुद्रा चिन्मृळतामश्विना विश्वे देवासो रथस्पतिर्भगः ।
ऋभुर्वाज ऋभुक्षणः परिज्मा विश्ववेदसः ७
ऋभुर्ऋभुक्षा ऋभुर्विधतो मद आ ते हरी जूजुवानस्य वाजिना ।
दुष्टरं यस्य साम चिदृधग् यज्ञो न मानुषः ८
कृधी नो अह्रयो देव सवितः स च स्तुषे मघोनाम् ।
सहो न इन्द्रो वह्निभिर्न्येषां चर्षणीनां चक्रं रश्मिं न योयुवे ९
ऐषु द्यावापृथिवी धातं महदस्मे वीरेषु विश्वचर्षणि श्रवः ।
पृक्षं वाजस्य सातये पृक्षं रायोत तुर्वणे १० ७४५
एतं शंसमिन्द्रास्मयुष्ट्वं कूचित् सन्तं सहसावन्नभिष्टये सदा पाह्यभिष्टये ।
मेदतां वेदता वसो ११
एतं मे स्तोमं तना न सूर्ये द्युतद्यामानं वावृधन्त नृणाम् ।
संवननं नाश्व्यं तष्टेवानपच्युतम् १२
वावर्त येषां राया युक्तैषां हिरण्ययी ।
नेमधिता न पौंस्या वृथेव विष्टान्ता १३
प्र तद् दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु ।
ये युक्त्वाय पञ्च शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम् १४
अधीन्न्वत्र सप्ततिं च सप्त च । सद्यो दिदिष्ट तान्वः सद्यो दिदिष्ट पार्थ्यः
सद्यो दिदिष्ट मायवः १५ ७५०

॥ ७७ ॥ (ऋ० १०।१००।१-१२)

(७५१-६१) दुवस्युर्वान्दनः । जगती, १२ त्रिष्टुप् ।

इन्द्र दृह्य मघवन् त्वावदिद् भुज इह स्तुतः सुतपा बोधि नो वृधे ।
देवेभिर्नः सविता प्रावतु श्रुतमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे १
भराय सु भरत भागमृत्वियं प्र वायवे शुचिपे क्रन्ददिष्टये ।
गौरस्य यः पयसः पीतिमानश आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे २ ७५२

आ नो देवः सविता साविषद् वय ऋजूयते यजमानाय सुन्वते ।
यथा देवान् प्रतिभूषेम पाकव—दा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ३
इन्द्रो अस्मे सुमना अस्तु विश्वहा राजा सोमः सुवितस्याध्येतु नः ।
यथायथा मित्रधितानि संदधु—रा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ४
इन्द्र उक्थेन शवसा परुर्दधे बृहस्पते प्रतरीतास्यायुषः ।
यज्ञो मनुः प्रमतिर्नः पिता हि क—मा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ५ ७५५
इन्द्रस्य नु सुकृतं दैव्यं सहो ऽग्निर्गृहे जरिता मेधिरः कविः ।
यज्ञश्च भूद् विदथे चारुरन्तम आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ६
न वो गुहा चकृम भूरि दुष्कृतं नाविष्ट्यं वसवो देवहेळनम् ।
माकिर्नो देवा अनृतस्य वर्पस आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ७
अपामीवां सविता साविषन्न्य१ग् वरीय इदप सेधन्त्वद्रयः ।
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृह—दा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ८
ऊर्ध्वो ग्रावा वसवोऽस्तु सोतरि विश्वा द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।
स नो देवः सविता पायुरीड्य आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ९
ऊर्जं गावो यवसे पीवो अत्तन ऋतस्य याः सदने कोशे अङ्ग्ध्वे ।
तनूरेव तन्वो अस्तु भेषज—मा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे १० ७६०
क्रतुप्रावा जरिता शश्वतामव इन्द्र इद् भद्रा प्रमतिः सुतावताम् ।
पूर्णमूधर्दिव्यं यस्य सिक्तय आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ११
चित्रस्ते भानुः क्रतुप्रा अभिष्टिः सन्ति स्पृधो जरणिप्रा अधृष्टाः ।
रजिष्ठया रज्या पश्व आ गो—स्तूतूर्षति पर्यग्रं दुवस्युः १२ ७६२

॥ ७८ ॥ (ऋ० १०।१०१।१-१२)

(७६३-७४) बुधः सौम्यः । (ऋत्विजो वा) । त्रिष्टुप्; ४,६ गायत्री; ५ बृहती; ९-१२ जगती ।

उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीळाः ।
दधिक्रामग्निमुषसं च देवी—मिन्द्रावतोऽवसे नि ह्वये वः १
मन्द्रा कृणुध्वं धिय आ तनुध्वं नावमरित्रपरणीं कृणुध्वम् ।
इष्कृणुध्वमायुधारं कृणुध्वं प्राञ्चं यज्ञं प्र णयता सखायः २
युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमेयात् ३ ७६५

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नया ४
निराहावान् कृणोतन सं वरत्रा दधातन ।
सिञ्चामहा अवतमुद्रिणं वयं सुषेकमनुपक्षितम् ५
इष्कृताहावमवतं सुवरत्रं सुषेचनम् । उद्रिणं सिञ्चे अक्षितम् ६
प्रीणीताश्वान् हितं जयाथ स्वस्तिवाहं रथमित् कृणुध्वम् ।
द्रोणाहावमवतमश्मचक्र—मंसत्रकोशं सिञ्चता नृपाणम् ७
व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोचमसो दृंहता तम् ८ ७७०
आ वो धियं यज्ञियां वर्त ऊतये देवा देवीं यजतां यज्ञियामिह ।
सा नो दुहीयद् यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ९
आ तू षिञ्च हरिमीं द्रोरुपस्थे वाशीभिस्तक्षताश्मन्मयीभिः ।
परि ष्वजध्वं दश कक्ष्याभि—रुभे धुरौ प्रति वह्निं युनक्त १०
उभे धुरौ वह्निरापिब्दमानो ऽन्तर्योनेव चरति द्विजानिः ।
वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं नि षू दधिध्वमखनन्त उत्सम् ११
कपृन्नरः कपृथमुद् दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।
निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये १२ ७७४

॥ ७९ ॥ (ऋ० १०।१०१।१-७)

(७७५-८१) जुहूर्ब्रह्मजाया, ब्राह्मः ऊर्ध्वनाभा वा । त्रिष्टुप् , ६-७ अनुष्टुप् ।

तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषे ऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।
वीळुहरास्तप उग्रो मयोभू—रापो देवीः प्रथमजा ऋतेन १ ७७५
सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसी—दग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय २
हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन् ।
न दूताय प्रह्ये तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ३
देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसे ये निषेदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ४
ब्रह्मचारी चरति वेविषद् विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं१ न देवाः ५ ७७९

८ दै. (विश्वे देवाः)

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत । राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ६ ७८०
पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वी देवैर्निकिल्बिषम् । ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वायो—रुगायमुपासते ७ ७८१

॥ ८० ॥ (ऋ० १०।११४।१-१०)

(७८२-९१) सध्रिर्वैरूपो, घर्मो वा तापसः । त्रिष्टुप्, ४ जगती ।

घर्मा समन्ता त्रिवृतं व्यापतु—स्तयोर्जुष्टिं मातरिश्वा जगाम ।
दिवस्पयो दिधिषाणा अवेषन् विदुर्देवाः सहसामानमर्कम् १
तिस्रो देष्ट्राय निर्ऋतीरुपासते दीर्घश्रुतो वि हि जानन्ति वह्नयः ।
तासां नि चिक्युः कवयो निदानं परेषु या गुह्येषु व्रतेषु २
चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते ।
तस्यां सुपर्णा वृषणा नि षेदतु—र्यत्र देवा दधिरे भागधेयम् ३
एकः सुपर्णः स समुद्रमा विवेश स इदं विश्वं भुवनं वि चष्टे ।
तं पाकेन मनसापश्यमन्तित—स्तं माता रेळ्हि स उ रेळ्हि मातरम् ४ ७८५
सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभि—रेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ।
छन्दांसि च दधतो अध्वरेषु ग्रहान्त्सोमस्य मिमते द्वादश ५
षट्त्रिंशाँश्च चतुरः कल्पयन्त—श्छन्दांसि च दधत आद्वादशम् ।
यज्ञं विमाय कवयो मनीष ऋक्सामाभ्यां प्र रथं वर्तयन्ति ६
चतुर्दशान्ये महिमानो अस्य तं धीरा वाचा प्र णयन्ति सप्त ।
आप्नानं तीर्थं क इह प्र वोच—द्येन पथा प्रपिबन्ते सुतस्य ७
सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था यावद् द्यावापृथिवी तावदित् तत् ।
सहस्रधा महिमानः सहस्रं यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक् ८
कश्छन्दसां योगमा वेद धीरः को धिष्ण्यां प्रति वाचं पपाद ।
कमृत्विजामष्टमं शूरमाहु—र्हरी इन्द्रस्य नि चिकाय कः स्वित् ९ ७९०
भूम्या अन्तं पर्येके चरन्ति रथस्य धूर्षु युक्तासो अस्थुः ।
श्रमस्य दायं वि भजन्त्येभ्यो यदा यमो भवति हर्म्ये हितः १० ७९१

॥ ८१ ॥ (ऋ० १०।१२६।१-८)

(७९२-९९) शैलूषिः कुल्मलबर्हिषो, वामदेव्योंऽहोमुग्वा । उपरिष्टाद्बृहती, ८ त्रिष्टुप् ।

न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयन्ति वरुणो अति द्विषः १ ७९२

तद्धि वयं वृणीमहे वरुण मित्रार्यमन् ।
येना निरंहसो यूयं पाथ नेथा च मर्त्यमति द्विषः २
ते नूनं नोऽयमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा ।
नयिष्ठा उ नो नेषणि पर्षिष्ठा उ नः पर्षण्यति द्विषः ३
यूयं विश्वं परि पाथ वरुणो मित्रो अर्यमा ।
युष्माकं शर्मणि प्रिये स्याम सुप्रणीतयोऽति द्विषः ४ ७९५
आदित्यासो अति स्रिधो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
उग्रं मरुद्भी रुद्रं हुवेमे-न्द्रमग्निं स्वस्तयेऽति द्विषः ५
नेतार ऊ षु णस्तिरो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
अति विश्वानि दुरिता राजानश्चर्षणीनामति द्विषः ६
शुनमस्मभ्यमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा ।
शर्म यच्छन्तु सप्रथ आदित्यासो यदीमहे अति द्विषः ७
यथा ह त्यद् वसवो गौर्यं चित् पदि षिताममुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्व१स्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ८ ७९९

॥ ८२ ॥ (ऋ० १०।१२८।१-९)

(८००-८०८) विहव्य आङ्गिरसः । त्रिष्टुप्, ९ जगती ।

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्र-स्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम १ ८००
मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः ।
ममान्तरिक्षमुरुलोकमस्तु मह्यं वातः पवतां कामे अस्मिन् २
मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः ।
दैव्या होतारो वनुषन्त पूर्वे ऽरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ३
मह्यं यजन्तु मम यानि हव्या ऽऽकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु ।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवासो अधि वोचता नः ४
देवीः षळुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह वीरयध्वम् ।
मा हास्महि प्रजया मा तनूभि-र्मा रधाम द्विषते सोम राजन् ५
अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् परेषा-मदब्धो गोपाः परि पाहि नस्त्वम् ।
प्रत्यञ्चो यन्तु निगुतः पुनस्ते-ऽमैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् ६ ८०५

❀

धाता धातॄणां भुवनस्य यस्पति॒र्देवं त्रातारमभिमातिषाहम् ।
इमं यज्ञमश्विनोभा बृहस्पति॒र्देवाः पान्तु यजमानं न्यर्थात् ७
उरुव्यचा नो महिषः शर्म यंस॒दस्मिन् हवे पुरुहूतः पुरुक्षुः
स नः प्रजायै हर्यश्व मृळये॒न्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ८
ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्वि॒न्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान् ।
वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशं॒ मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन् ९ ८०८

॥ ८३ ॥ (ऋ० १०।१३७।१-७)

(८०९-१५) [सप्तर्षयः]- १ भरद्वाजः, २ कश्यपः, ३ गोतमः, ४ अत्रिः, ५ विश्वामित्रः, ६ जमदग्निः, ७ वसिष्ठः । अनुष्टुप् ।

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः । उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः १
द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः । दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद् रपः २ ८१०
आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः । त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ३
आ त्वागमं शन्तातिभि॒रथो अरिष्टतातिभिः । दक्षं ते भद्रमाभार्षं परा यक्ष्मं सुवामि ते ४
त्रायन्तामिह देवा॒स्त्रायतां मरुतां गणः । त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ५
आप इद् वा उ भेषजी॒रापो अमीवचातनीः । आपः सर्वस्य भेषजी॒स्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ६
हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां त्वा ताभ्यां त्वोप स्पृशामसि ७ ८१५

॥ ८४ ॥ (ऋ० १०।१४१।१-६)

(८१६-२१) अग्निस्तापसः । अनुष्टुप् ।

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव ।
प्र नो यच्छ विशस्पते धनदा असि नस्त्वम् १
प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः । प्र देवाः प्रोत सूनृता रायो देवी ददातु नः २
सोमं राजानमवसे ऽग्निं गीर्भिर्हवामहे । आदित्यान् विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ३
इन्द्रवायू बृहस्पतिं सुहवेह हवामहे । यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असत् ४
अर्यमणं बृहस्पति॒मिन्द्रं दानाय चोदय । वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ५ ८२०
त्वं नो अग्ने अग्निभि॒र्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय । त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ६ ८२१

॥ ८५ ॥ (ऋ० १०।१५५।५)

(८२२) शिरिम्बिठो भारद्वाजः । अनुष्टुप् ।

परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत । देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति ५ ८२२

॥ ८६ ॥ (ऋ० १०।१५७।१-५) ×

(८२३-२७) भुवन आप्त्यः, साधनो वा भौवनः । द्विपदा त्रिष्टुप् ।

इमा नु कं भुवना सीषधामे-न्द्रश्च विश्वे च देवाः १
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चा-ऽऽदित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति १। २
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भि-रस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ३ ८२५
हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः २। ४
प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभि-रादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ३। ५ ८२७

॥ ८७ ॥ (ऋ० १०।१६५।१-५)

(८२८-३२) नैर्ऋतः कपोतः । त्रिष्टुप् ।

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन् दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम ।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे १
शिवः कपोत इषितो नो अस्त्व-नागा देवाः शकुनो गृहेषु ।
अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु २
हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मा-नाष्ट्र्यां पदं कृणुते अग्निधाने ।
शं नो गोभ्यश्च पुरुषेभ्यश्चास्तु मा नो हिंसीदिह देवाः कपोतः ३ ८३०
यदुलूको वदति मोघमेतद् यत् कपोतः पदमग्नौ कृणोति ।
यस्य दूतः प्रहित एष एतत् तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ४
ऋचा कपोतं नुदत प्रणोद-मिषं मदन्तः परि गां नयध्वम् ।
संयोपयन्तो दुरितानि विश्वा हित्वा न ऊर्जं प्र पतात् पतिष्ठः ५ ८३२

॥ ८८ ॥ (ऋ० १०।१६७।३)

(८३३) विश्वामित्र-जमदग्नी । जगती ।

सोमस्य राज्ञो वरुणस्य धर्मणि बृहस्पतेरनुमत्या उ शर्मणि ।
तवाहमद्य मघवन्नुपस्तुतौ धातर्विधातः कलशाँ अभक्षयम् ३ ८३३

॥ ८९ ॥ (ऋ० १०।१८१।१-३)

(८३४-३६) १ प्रथो वासिष्ठः, २ सप्रथो भारद्वाजः, ३ घर्मः सौर्यः । त्रिष्टुप् ।

प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामा-ऽऽनुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।
धातुर्द्युतानात् सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः १ ८३४

× वा० य० २५,४६; अथर्व० २०,६३,१-३; १२४,४-६; सा० ४५२,१११०-१२ ।

अविन्दन्ते अतिहितं यदासीद् यज्ञस्य धाम परमं गुहा यत् ।
धातुर्द्युतानात् सवितुश्च विष्णो— भरद्वाजो बृहदा चक्रे अग्नेः २ ८३५
तेऽविन्दन् मनसा दीध्याना यजुः ष्कन्नं प्रथमं देवयानम् ।
धातुर्द्युतानात् सवितुश्च विष्णो— रा सूर्यादभरन् घर्ममेते ३ ८३६

॥ ९० ॥ (ऋ० १०।१८४।१-२)

(८३७-३८) त्वष्टा गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्यः । अनुष्टुप् ।

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु । आ सिञ्चतु प्रजापति— र्धाता गर्भं दधातु ते १
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति । गर्भं ते अश्विनौ देवा— वा धत्तां पुष्करस्रजा २ ८३८

॥ ९१ ॥ [८३९-७६] (वा० य० २।१२-१३,१८)

एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे । तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव १२
मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु ।
विश्वे देवास इह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ १३ ८४०
सꣳस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः ।
इमां वाचमभि विश्वे गृणन्त आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादध्वम् १८ ८४१

॥ ९२ ॥ (वा० य० ४।११)

दैवीं धियं मनामहे सुमृडीकामभिष्टये वर्चोधां यज्ञवाहसꣳ सुतीर्था नो असद्वशे ।
ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षक्रतवस्ते नोऽवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा ११ ८४२

॥ ९३ ॥ (वा० य० ५।३०,३५)

इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोऽसि । ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि ३०
ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानाꣳ समित् ३५ ८४३

॥ ९४ ॥ (वा० य० ६।१९,२४)

घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा ।
दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा १९ ८४५
विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ २४ ८४६

॥ ९५ ॥ (वा० य० ७।२१)×

विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः २१ ८४७

× वा० य० ७।११,१९,३३-३४ = दै० [विश्वे देवाः] २३४,९८,१,१६५,३१५; वा० य० ८,८ ।

॥ ९६ ॥ (वा० य० ८।१५,१९,४७,५७-५८)

समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सꣳ सूरिभिर्मघवन्त्सꣳ स्वस्त्या ।
सं ब्रह्मणा देवकृतं यदस्ति सं देवानाꣳ सुमतौ यज्ञियानाꣳ स्वाहा १५
याँ२ आवह उशतो देव देवाँस्तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे ।
जक्षिवाꣳसः पपिवाꣳसश्च विश्वेऽसुं घर्मꣳ स्वरातिष्ठतानु स्वाहा १९
विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसं गृह्णामि ४७ ८५०
विश्वे देवा अꣳशुषु न्युप्तः ५७। विश्वे देवाश्चमसेषून्नीतः ५८ ८५२

॥ ९७ ॥ (वा० य० ९।३३)

विश्वे देवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयँस्तामुज्जेषम् ३३ ८५३

॥ ९८ ॥ (वा० य० ११।५८,६०,६५)

विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वद् ५८
विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वद् ६० ८५५
विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा आच्छृन्दन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ६५ ८५६

॥ ९९ ॥ (वा० य० १२।७०)

घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान्त्सीते पयसाभ्याववृत्स्व ७० ८५७

॥ १०० ॥ (वा० य० १४।७,२०,२६)

सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्विश्वैर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानराया-
श्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ७
अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा
देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता
वरुणो देवता २०
ऋभूणां भागोऽसि विश्वेषां देवानामाधिपत्यं भूतꣳ स्पृतं त्रयस्त्रिꣳशः स्तोमः २६ ८६०

॥ १०१ ॥ (वा० य० १५।१४,५४)

अधिपत्न्यसि बृहती दिग्विश्वे ते देवा अधिपतयो बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्ता
त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्वा स्तोमौ पृथिव्याꣳ श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे
अव्यथायै स्तभ्नीताꣳ शाक्वररैवते सामनी प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा
प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिश्च
ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु १४ ८६१

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च ।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत *५४ ८६१

॥ १०२ ॥ (वा० य० १७।७३)

आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वं योनिमासीद साधुया ।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ७३ ८६३

॥ १०३ ॥ (वा० य० १८।७३)+

धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः । सचेतसो विश्वे देवा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे ७६ ८६४

॥ १०४ ॥ (वा० य० २०।११)

त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिꣳशाः सुराधसः ।
बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे । देवा देवैरवन्तु मा ११ ८६५

॥ १०५ ॥ (वा० य० २१।१७)

उषे यह्वी सुपेशसा विश्वे देवा अमर्त्याः । त्रिष्टुप् छन्द इहेन्द्रियं पष्ठवाड् गौर्वयो दधुः १७ ८६६

॥ १०६ ॥ (वा० य० २२।५,२८)

विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि ५
विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ×२८ ८६८

॥ १०७ ॥ (वा० य० २४।१७,४०)

विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतान् २७। खड्गो वैश्वदेवः विश्वेषां देवानां पृषतः ४० ८७०

॥ १०८ ॥ (वा० य० २५।५-६)*

पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम् ५। विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा ६ ८७१

॥ १०९ ॥ (वा० य० २७.२२)

अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय हव्यम् । विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् २२ ८७३

॥ ११० ॥ (वा० य० २९।६०)

विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो द्वादशकपालः ६० ८७४

---

* वा० य० १८,६१ ।

+ वा० य० १८,३१; ३३,४४,५१-५३,७७,९१,९४; ३४,५३ = दै० [विश्वे देवाः] ४८१,५९४,४११,४१७, ५२६-२७,३९१ ।

× वा० य० ३९,१३ । ⊛ वा० य० २५।१४-२३,४३ = दै० [विश्वे देवाः] १९-२८,८२७ ।

॥ १११ ॥ (वा० य० ३६।१७) +

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव
शान्तिः सा मा शान्तिरेधि १७ ८७५

॥ ११२ ॥ (वा० य० ३९।६)

विश्वे देवा द्वादशे ६ ८७६

॥ ११३ ॥ (अथर्व० १।९।१-२)※

(८७७-१०४३) अथर्वा । १ वसवः, इन्द्रः, पूषा, वरुणः, मित्रः, अग्निः, आदित्याः, विश्वे देवाः;
२ देवाः, सूर्यः, अग्निः, हिरण्यं । त्रिष्टुप् ।

अस्मिन् वसु वसवो धारयन्त्विन्द्रः पूषा वरुणो मित्रो अग्निः ।
इममादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरस्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु १
अस्य देवाः प्रदिशि ज्योतिरस्तु सूर्यो अग्निरुत वा हिरण्यम् ।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् २ ८७८

॥ ११४ ॥ (अथर्व० १।१५।१-४)

सिन्धवः, (वाताः, पतत्रिणः) । अनुष्टुप्, २ भुरिक्पथ्या पङ्क्तिः ।

सं सं स्रवन्तु सिन्धवः सं वाताः सं पतत्रिणः ।
इमं यज्ञं प्रदिवो मे जुषन्तां संस्राव्येण हविषा जुहोमि १
इहैव हवमा यात म इह संस्रावणा उतेमं वर्धयता गिरः ।
इहैतु सर्वो यः पशुरस्मिन् तिष्ठतु या रयिः २ ८८०
ये नदीनां संस्रवन्त्युत्सासः सदमक्षिताः । तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ३
ये सर्पिषः संस्रवन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च । तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ४ ८८२

॥ ११५ ॥ (अथर्व० १।२७।१-४)

(स्वस्त्ययनकामः) । चन्द्रमाः, इन्द्राणी च । अनुष्टुप्, १ पथ्यापङ्क्तिः ।

अमूः पारे पृदाक्वस्त्रिषप्ता निर्जरायवः ।
तासां जरायुभिर्वयमक्ष्यावपि व्ययामस्यघायोः परिपन्थिनः १
विषूच्येतु कृन्तती पिनाकमिव बिभ्रती ।
विष्वक् पुनर्भुवा मनोऽसमृद्धा अघायवः २ ८८४

+ अथर्व १९।९।१,१४; = दै० [विश्वे देवाः] १०६९,१०८२। ※ अथर्व १,९,३-४ = दै० [अग्निः] ११४२-४३।
९ [दै० विश्वे देवाः]

न बहवः समशकन् नार्भका अभि दाधृषुः । वेणोरद्गा इवाभितोऽसंमृद्धा अघायवः ३ ८८५
प्रेतं पादौ प्र स्फुरतं वहतं पृणतो गृहान् । इन्द्राण्येतु प्रथमाजीतामुषिता पुरः ४ ८८६

॥ ११६ ॥ (अथर्व० २।३४।१-५)

१ पशुपतिः, २ देवाः, ३ अग्निः विश्वकर्मा, ४ वायुः प्रजापतिः, ५ आशीः । त्रिष्टुप् ।

य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम् ।
निष्क्रीतः स यज्ञियं भागमेतु रायस्पोषा यजमानं सचन्ताम् १
प्रमुञ्चन्तो भुवनस्य रेतो गातुं धत्त यजमानाय देवाः ।
उपाकृतं शशमानं यदस्थात् प्रियं देवानामप्येतु पाथः २
ये बध्यमानमनु दीध्याना अन्वैक्षन्त मनसा चक्षुषा च ।
अग्निष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवो विश्वकर्मा प्रजया संरराणः ३
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपा विरूपाः सन्तो बहुधैकरूपाः ।
वायुष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवः प्रजापतिः प्रजया संरराणः ४ ८९०
प्रजानन्तः प्रति गृह्णन्तु पूर्वे प्राणमङ्गेभ्यः पर्याचरन्तम् ।
दिवं गच्छ प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वर्गं याहि पथिभिर्देवयानैः ५ ८९१

॥ ११७ ॥ (अथर्व० ३।३।२-३,५-६)+

२ इन्द्रः, ३ वरुणः सोमः इन्द्रः, ५ इन्द्राग्नी, विश्वे देवाः, ६ इन्द्रः । त्रिष्टुप्, ३ चतुष्पदा भुरिक्पङ्क्तिः, ५-६ अनुष्टुप् ।

दूरे चित् सन्तमरुषास इन्द्रमा च्यावयन्तु सख्याय विप्रम् ।
यद् गायत्रीं बृहतीमर्कमस्मै सौत्रामण्या दधृषन्त देवाः २
अद्भ्यस्त्वा राजा वरुणो ह्वयतु सोमस्त्वा ह्वयतु पर्वतेभ्यः ।
इन्द्रस्त्वा ह्वयतु विड्भ्य आभ्यः श्येनो भूत्वा विश आ पतेमाः ३
ह्वयन्तु त्वा प्रतिजनाः प्रति मित्रा अवृषत । इन्द्राग्नी विश्वे देवास्ते विशि क्षेममदीधरन् ५
यस्ते हवं विवदत् सजातो यश्च निष्ट्यः । अपाञ्चमिन्द्र तं कृत्वाथेममिहाव गमय ६ ८९

॥ ११८ ॥ (अथर्व० ३।४।१-२, ४-७) *

इन्द्रः, २ पञ्च प्रदिशः, ४ अश्विनौ, मित्रावरुणौ, विश्वे देवाः, मरुतः, ५ द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप्, १ जगती ४-५ भुरिक् ।

आ त्वा गन् राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि प्राङ् विशां पतिरेकराट् त्वं वि राज ।
सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तूपसद्यो नमस्यो भवेह १ ८९

+ अथर्व० ३,३,१,४ = दै० [अग्निः] ११५९ । दै० [अश्विनौ] ६७२ । * अथर्व० ३,४,३ = दै० [अग्निः] ११६०

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः ।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि २
अश्विना त्वाग्रे मित्रावरुणोभा विश्वे देवा मरुतस्त्वा ह्वयन्तु ।
अधा मनो वसुदेयाय कृणुष्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ४
आ प्र द्रव परमस्याः परावतः शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ।
तदयं राजा वरुणस्तथाह स त्वायमह्वत् स उपेदमेहि ५
इन्द्रेन्द्र मनुष्याः३ः परेहि सं ह्यज्ञास्था वरुणैः संविदानः ।
स त्वायमह्वत् स्वे सधस्थे स देवान् यक्षत् स उ कल्पयाद् विशः ६ ९००
पथ्या रेवतीर्बहुधा विरूपाः सर्वाः संगत्य वरीयस्ते अक्रन् ।
तास्त्वा सर्वाः संविदाना ह्वयन्तु दशमीमुग्रः सुमना वशेह ७ ९०१

॥ ११९ ॥ (अथर्व० ३।८।१-६)

१ मित्रः, पृथिवी, वरुणः, वायुः, अग्निः; २ धाता, सविता, इन्द्रः, त्वष्टा, अदितिः; ३ सोमः, सविता, आदित्यः, अग्निः; ४ विश्वे देवाः, ५-६ सांमनस्यम् । त्रिष्टुप्; २,६ जगती; ४ चतुष्पदा विराड् बृहतीगर्भा, ५ अनुष्टुप् ।

आ यातु मित्र ऋतुभिः कल्पमानः संवेशयन् पृथिवीमुस्रियाभिः ।
अथास्मभ्यं वरुणो वायुरग्निर्बृहद् राष्ट्रं संवेश्यं दधातु १
धाता रातिः सवितेदं जुषन्तामिन्द्रस्त्वष्टा प्रति हर्यन्तु मे वचः ।
हुवे देवीमदितिं शूरपुत्रां सजातानां मध्यमेष्ठा यथासानि ×२
हुवे सोमं सवितारं नमोभिर्विश्वानादित्याँ अहमुत्तरत्वे ।
अयमग्निर्दीदायद् दीर्घमेव सजातैरिद्धोऽप्रतिब्रुवद्भिः ३
इहेदसाथ न परो गमाथेर्यो गोपाः पुष्टपतिर्व आजत् ।
अस्मै कामायोप कामिनीर्विश्वे वो देवा उपसंयन्तु ४ ९०५
सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि । अमी ये विव्रता स्थन तान् वः सं नमयामसि ५
अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत ।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत ६ ९०७

॥ १२० ॥ (अथर्व० ३।१०।१,५-७,११-१३) *

अष्टका, १ धेनुः, ५ एकाष्टका, ६ जातवेदाः, पशवः, ७ रात्रिः, यज्ञाः, ११ देवाः, १२ इन्द्रः, देवाः, १३ प्रजापतिः । अनुष्टुप्; ५-६, १२ त्रिष्टुप्; ७ त्र्यवसाना षट्पदा विराड्गर्भातिजगती ।

प्रथमा ह व्युवास सा धेनुरभवद् यमे । सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् १ ९०८

×अथर्व० ३,८,२ = दै० [अदितिः०] ७०८। *अथर्व० ३।१०,२-४,८-१० = दै० [अदितिः] ७०९,८८७,९४९,१०७५-७७।

❀

वानस्पत्या ग्रावाणो घोषमक्रत हविष्कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
एकाष्टके सुप्रजसः सुवीरा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ५ १०९
इडायास्पदं घृतवत् सरीसृपं जातवेदः प्रति हव्या गृभाय ।
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपास्तेषां सप्तानां मयि रन्तिरस्तु ६ ११०
आ मा पुष्टे च पोषे च रात्रि देवानां सुमतौ स्याम ।
पूर्णा दर्वे परा पत सुपूर्णा पुनरा पत । सर्वान् यज्ञान्त्संभुञ्जतीषमूर्जं न आ भर ७
इडया जुह्वतो वयं देवान् घृतवता यजे । गृहानलुभ्यतो वयं सं विशेमोप गोमतः ११
एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम् ।
तेन देवा व्यसहन्त शत्रून् हन्ता दस्यूनामभवच्छचीपतिः १२
इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे दुहितासि प्रजापतेः । कामानस्माकं पूरय प्रति गृह्णाहि नो हविः १३ ११४

॥ १२१ ॥ (अथर्व० ३।१५।१-८)

(पण्यकामः)। विश्वे देवाः, इन्द्राग्नी । त्रिष्टुप्, १ भुरिक्, ४ त्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भा विराडत्यष्टिः ५ विराड्जगती, ७ अनुष्टुप्, ८ निचृत् ।

इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न ऐतु पुरएता नो अस्तु ।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम् १ ११५
ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति ।
ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि २
इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ३
इमामग्ने शरणिं मीमृषो नो यमध्वानमगाम दूरम् ।
शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु ।
इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च ४
येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः ।
तन्मे भूयो भवतु मा कनीयोऽग्ने सातघ्नो देवान् हविषा नि षेध ५
येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः ।
तस्मिन् म इन्द्रो रुचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः ६ ११०
उप त्वा नमसा वयं होतर्वैश्वानर स्तुमः । स नः प्रजास्वात्मसु गोषु प्राणेषु जागृहि ७
विश्वाहा ते सदमिद् भरेमाश्वायेव तिष्ठते जातवेदः ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ८ १११

॥ १९२ ॥ (अथर्व० ५।८।१-९)×

नानादैवत्यं; १-२ अग्निः, ३ विश्वे देवाः, ४-९ इन्द्रः । अनुष्टुप्, २ त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ३-४ भुरिक्पथ्यापङ्क्तिः, ६ आस्तारपङ्क्तिः, ७ द्व्युष्णिग्गर्भा पथ्यापङ्क्तिः, ९ त्र्यवसाना षट्पदा द्व्युष्णिग्गर्भा जगती।

वैकङ्कतेनेध्मेन देवेभ्य आज्यं वह । अग्ने ताँ इह मादय सर्व आ यन्तु मे हवम् १

इन्द्रा याहि मे हवमिदं करिष्यामि तच्छृणु ।

इम ऐन्द्रा अतिसरा आकूतिं सं नमन्तु मे । तेभिः शकेम वीर्यं१ जातवेदस्तनूवशिन् २

यदसावमुतो देवा अदेवः संश्चिकीर्षति ।

मा तस्याग्निर्हव्यं वाक्षीद्धवं देवा अस्य मोप गुर्ममैव हवमेतन ३ ९२५

अति धावतातिसरा इन्द्रस्य वचसा हत ।

अविं वृक इव मथ्नीत स वो जीवन्मा मोचि प्राणमस्यापि नह्यत ४

यममी पुरोदधिरे ब्रह्माणमपभूतये । इन्द्र स ते अधस्पदं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ५

यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।

तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ६

यानसावतिसरांश्चकार कृणवच्च यान् ।

त्वं तानिन्द्र वृत्रहन् प्रतीचः पुनरा कृधि यथामुं तृणहां जनम् ७

यथेन्द्र उद्वाचनं लब्ध्वा चक्रे अधस्पदम् । कृण्वेऽहमधरांस्तथामूंछश्वतीभ्यः समाभ्यः ८ ९३०

अत्रैनानिन्द्र वृत्रहन्नुग्रो मर्मणि विध्य । अत्रैवैनानभि तिष्ठेन्द्र मेद्य१हं तव ।

अनु त्वेन्द्रा रभामहे स्याम सुमतौ तव ९ ९३१

॥ १९३ ॥ (अथर्व० ६।३।१-३)

१ इन्द्रापूषणौ, अदितिः, मरुतः, अपां नपात्, सिन्धवः, विष्णुः, द्यौः; २ द्यावापृथिवी, ग्रावा, सोमः, सरस्वती, अग्निः; ३ अश्विनौ, उषासानक्ता, अपां नपात्, त्वष्टा । जगती, १ पथ्याबृहती ।

पातं न इन्द्रापूषणादितिः पान्तु मरुतः ।

अपां नपात् सिन्धवः सप्त पातन पातु नो विष्णुरुत द्यौः १

पातां नो द्यावापृथिवी अभिष्टये पातु ग्रावा पातु सोमो नो अंहसः ।

पातु नो देवी सुभगा सरस्वती पात्वग्निः शिवा ये अस्य पायवः २

पातां नो देवाश्विना शुभस्पती उषासानक्तोत न उरुष्यताम् ।

अपां नपादभिह्रुती गयस्य चिद् देव त्वष्टर्वर्धय सर्वतातये ३ ९३४

× अथर्व० ५,८,१-३ = दै० [अग्निः] २१६३-६५ ।

॥ १२४ ॥ (अथर्व० ६।४।१-३)+

१ त्वष्टा, पर्जन्यः, ब्रह्मणस्पतिः, अदितिः; २ अंशः, भगः, वरुणः, मित्रः, अर्यमा, अदितिः, मरुतः; ३ अश्विनौ, द्यौष्पिता। पथ्याबृहती, १ संस्तारपङ्क्तिः, ३ त्रिपदा विराड्गायत्री।

त्वष्टा मे दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः। पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहः १ ९३५
अंशो भगो वरुणो मित्रो अर्यमादितिः पान्तु मरुतः।
अप तस्य द्वेषो गमेदभिह्रुतो यावयच्छत्रुमन्तितम् २
धिये समश्विना प्रावतं न उरुष्या ण उरुज्मन्नप्रयुच्छन्। द्यौ३ष्पितर्यावय दुच्छुना या ३

॥ १२५ ॥ (अथर्व० ६।५।३)

अग्निः, सोमः, ब्रह्मणस्पतिः। अनुष्टुप्।

यस्य कृण्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्धया त्वम्। तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ३ ९३८

॥ १२६ ॥ (अथर्व० ६।४०।१-३)

१ द्यावापृथिवी, सोमः, सविता, अन्तरिक्षं, सप्तऋषयः; २ सविता, इन्द्रः; ३ इन्द्रः।
१-२ जगती, ३ अनुष्टुप्।

अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु नोऽभयं सोमः सविता नः कृणोतु।
अभयं नोऽस्तूर्वन्तरिक्षं सप्तऋषीणां च हविषाऽभयं नो अस्तु १
अस्मै ग्रामाय प्रदिशश्चतस्र ऊर्जं सुभूतं स्वस्ति सविता नः कृणोतु।
अशत्र्विन्द्रो अभयं नः कृणोत्वन्यत्र राज्ञामभि यातु मन्युः २ ९४०
अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात्। इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि ३ ९४१

॥ १२७ ॥ (अथर्व० ६।६२।१-३)

रुद्रः, वैश्वानरः, वातः, द्यावापृथिवी। त्रिष्टुप्।

वैश्वानरो रश्मिभिर्नः पुनातु वातः प्राणेनेषिरो नभोभिः।
द्यावापृथिवी पयसा पयस्वती ऋतावरी यज्ञिये नः पुनीताम् १
वैश्वानरीं सूनृतामा रभध्वं यस्या आशास्तन्वो वीतपृष्ठाः।
तया गृणन्तः सधमादेषु वयं स्याम पतयो रयीणाम् २
वैश्वानरीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः।
इहेडया सधमादं मदन्तो ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम् ३ ९४४

॥ १२८ ॥ (अथर्व० ६।६४।१-३)

सांमनस्यम्, १ विश्वे देवाः। अनुष्टुप्, (त्रिष्टुप्)।

सं जानीध्वं सं पृच्यध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते १ ९४५

+ अथर्व० ६,४,१-२,३ = दै० [अदितिः] ७०४,८०८। दै० [अश्विनौ] ६७३।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं व्रतं सह चित्तमेषाम् ।
समानेन वो हविषा जुहोमि समानं चेतो अभिसंविशध्वम् २
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः । समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ३ ९४७

॥ १२९ ॥ (अथर्व० ६।६८।१-३)

१ सविता, आदित्याः, रुद्राः; २ अदितिः, आपः, प्रजापतिः, ३ सविता, सोमः, वरुणः ।
१ पुरोविराडतिशाक्वरगर्भा चतुष्पदा जगती; २ अनुष्टुप्; ३ अतिजगतीगर्भा त्रिष्टुप् ।

आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि ।
आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः १
अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा । चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे २
येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ।
तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान् ३ ९५०

॥ १३० ॥ (अथर्व० ६।७३।१-३)

सांमनस्यम्, वरुणसोमाग्निबृहस्पतिवसवः ३ वास्तोष्पतिः। १,३ भुरिक्; २ त्रिष्टुप् ।

एह यातु वरुणः सोमो अग्निर्बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु ।
अस्य श्रियमुपसंयात सर्व उग्रस्य चेत्तुः संमनसः सजाताः १
यो वः शुष्मो हृदयेष्वन्तराकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा ।
तान्त्सीवयामि हविषा घृतेन मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु २
इहैव स्त माप याताध्यस्मत् पूषा परस्तादपथं वः कृणोतु ।
वास्तोष्पतिरनु वो जोहवीतु मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ३ ९५३

॥ १३१ ॥ (अथर्व० ६।७४।१-३)

सांमनस्यम्, नाना देवताः, त्रिणामा। अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप् ।

सं वः पृच्यन्तां तन्वः सं मनांसि समु व्रता । सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत् १
संज्ञपनं वो मनसोऽथो संज्ञपनं हृदः । अथो भगस्य यच्छ्रान्तं तेन संज्ञपयामि वः २ ९५५
यथादित्या वसुभिः संबभूवुर्मरुद्भिरुग्रा अहृणीयमानाः ।
एवा त्रिणामन्नहृणीयमान इमान् जनान्त्संमनसस्कृधीह ३ ९५६

॥ १३२ ॥ (अथर्व ६।९७।१,३)

देवाः १ त्रिष्टुप्; ३ भुरिक् ।

अभिभूर्यज्ञो अभिभूरग्निरभिभूः सोमो अभिभूरिन्द्रः ।
अभ्यहं विश्वाः पृतना यथासान्येवा विधेमाग्निहोत्रा इदं हविः १ ९५७

इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ×३ ९५८

॥ १३३ ॥ (अथर्व० ६।९९।१-३)
इन्द्रः, सोमः, सविता च । अनुष्टुप्, ३ भुरिग्बृहती (सौम्या सावित्री) ।

अभि त्वेन्द्र वरिमतः पुरा त्वांहूरणाद्धुवे । ह्वयाम्युग्रं चेत्तारं पुरुणामानमेकजम् १
यो अद्य सेन्यो वधो जिघांसन् न उदीरते । इन्द्रस्य तत्र बाहू समन्तं परि दद्मः २ ९६०
परि दद्म इन्द्रस्य बाहू समन्तं त्रातुस्त्रायतां नः। देव सवितः सोम राजन्त्सुमनसं मा कृणु स्वस्तये ३ ९६१

॥ १३४ ॥ (अथर्व ७।७०।१-५)
श्येनः, देवाः १ त्रिष्टुप्, २ अतिजगतीगर्भा जगती, ३-५ अनुष्टुप्
(३ पुरःककुम्मती) ।

यत् किं चासौ मनसा यच्च वाचा यज्ञैर्जुहोति हविषा यजुषा ।
तन्मृत्युना निर्ऋतिः संविदाना पुरा सत्यादाहुतिं हन्त्वस्य १
यातुधाना निर्ऋतिरादु रक्षस्ते अस्य घ्नन्त्वनृतेन सत्यम् ।
इन्द्रेषिता देवा आज्यमस्य मथ्नन्तु मा तत् सं पादि यदसौ जुहोति २
अजिराधिराजौ श्येनौ संपातिनाविव । आज्यं पृतन्यतो हतां यो नः कश्चाभ्यघायति ३
अपाञ्चौ त उभौ बाहू अपि नह्याम्यास्यम् । अग्नेर्देवस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः ४ ९६५
अपि नह्यामि ते बाहू अपि नह्याम्यास्यम् । अग्नेर्घोरस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः ५ ९६६

॥ १३५ ॥ (अथर्व० ७।९८।१)
इन्द्रः, विश्वे देवाः । विराट् ।

सं बर्हिरक्तं हविषा घृतेन समिन्द्रेण वसुना सं मरुद्भिः ।
सं देवैर्विश्वदेवेभिरक्तमिन्द्रं गच्छतु हविः स्वाहा १ ९६७

॥ १३५ ॥ (अथर्व० १९।१५।५-६)+
मन्त्रोक्ताः । ५ जगती; ६ त्रिष्टुप् ।

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ५
अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ६ ९६९

× अथर्व० ६,९७,२ = दै० [अदितिः०] ३०,४ । + अथर्व० १९,१५,१ = दै० [इन्द्रः] ५६० ।

॥ १३७ ॥ (अथर्व० १९।१६।१-२)

मन्त्रोक्ताः । १ अनुष्टुप्; २ त्र्यवसाना सप्तपदा बृहतीगर्भातिशक्वरी ।

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम् । सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः १ ९७०
दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः ।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म २ ९७१

॥ १३८ ॥ (अथर्व० १९।१७।१-१०)

मन्त्रोक्ताः । १-४ जगती; ५,७,१० अतिजगती; ६ भुरिक्; ९ पञ्चपदाऽतिशक्वरी ।

अग्निर्मा पातु वसुभिः पुरस्तात् तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा १
वायुर्मान्तरिक्षेणैतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे० । स मा रक्षतु० २
सोमो मा रुद्रैर्दक्षिणाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे० । स मा रक्षतु० ३
वरुणो मादित्यैरेतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे० । स मा रक्षतु० ४ ९७५
सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिशः पातु० । स मा रक्षतु० ५
आपो मौषधीमतीरेतस्या दिशः पातु तासु क्रमे तासु श्रये तां पुरं प्रैमि ।
ता मा रक्षन्तु ता मा गोपायन्तु ताभ्य आत्मानं परि ददे स्वाहा ६
विश्वकर्मा मा सप्तऋषिभिरुदीच्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे० । स मा रक्षतु० ७
इन्द्रो मा मरुत्वानेतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे० । स मा रक्षतु० ८
प्रजापतिर्मा प्रजननवान्त्सह प्रतिष्ठाया ध्रुवाया दिशः पातु० । स मा रक्षतु० ९ ९८०
बृहस्पतिर्मा विश्वैर्देवैरूर्ध्वाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे० । स मा रक्षतु० १० ९८१

॥ १३९ ॥ (अथर्व० १९।१८।१-१०)

मन्त्रोक्ताः । १,८ साम्नी त्रिष्टुप्; २-६ आर्च्यनुष्टुप्, (५ सम्राडार्च्यनुष्टुप्); ७,९-१० (द्विपदा) प्राजापत्या त्रिष्टुप् ।

अग्निं ते वसुवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवः प्राच्या दिशोऽभिदासात् १
वायुं तेऽन्तरिक्षवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् २
सोमं ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवो दक्षिणाया दिशोऽभिदासात् ३
वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ४ ९८५
सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवः प्रतीच्या दिशोऽभिदासात् ५
अपस्त ओषधीमतीर्ऋच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ६ ९८७

विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव उदीच्या दिशोऽभिदासात् ७
इन्द्रं ते मरुत्वन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ८
प्रजापतिं ते प्रजननवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवो ध्रुवाया दिशोऽभिदासात् ९ ९९८
बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमृच्छन्तु । ये माघायव ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासात् १० ९९

॥ १४० ॥ (अथर्व० १९।१९।१-११)

चन्द्रमाः, मन्त्रोक्ताश्च । पङ्क्तिः, १,३,९ भुरिग्बृहती; १० स्वराट्; २,४-८,११ अनुष्टुब्गर्भा ।

मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु १
वायुरन्तरिक्षेणोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत० २
सूर्यो दिवोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत० ३
चन्द्रमा नक्षत्रैरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत० ४ ९९
सोम ओषधीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत० ५
यज्ञो दक्षिणाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत० ६
समुद्रो नदीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत० ७
ब्रह्म ब्रह्मचारिभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत० ८
इन्द्रो वीर्येणोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत० ९ १००
देवा अमृतेनोदक्रामंस्तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत० १०
प्रजापतिः प्रजाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत० ११ १००

॥ १४१ ॥ (अथर्व० १९।२०।१-४)

बहुदैवत्यम् । १ त्रिष्टुप्; २ जगती; ३ पुरस्ताद्बृहती; ४ अनुष्टुब्गर्भा ।

अप न्यधुः पौरुषेयं वधं यमिन्द्राग्नी धाता सविता बृहस्पतिः ।
सोमो राजा वरुणो अश्विना यमः पूषाऽस्मान् परि पातु मृत्योः १
यानि चकार भुवनस्य यस्पतिः प्रजापतिर्मातरिश्वा प्रजाभ्यः ।
प्रदिशो यानि वसते दिशश्च तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु २
यत् ते तनूष्वनह्यन्त देवा द्युराजयो देहिनः । इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान् पातु विश्वतः ३ १००
वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः । वर्म मे विश्वे देवाः क्रन् मा मा प्रापत् प्रतीचिका ४ १००

॥ १४२ ॥ (अथर्व० १९।२३।१-२९)

मन्त्रोक्ताः चन्द्रमाश्च । १ आसुरी गायत्री; २-७; २०,२३,२७ दैवी त्रिष्टुप्; ८,१०-११,१४-१६ प्राजापत्या गायत्री, १७,१९,२४-२५,२९ दैवी पंक्तिः; ९,१२,१८,२१,२६,२८ दैवी जगती; (१-२९ एकावसानाः)।

आथर्वणानां चतुर्ऋचेभ्यः स्वाहा १। पञ्चर्चेभ्यः स्वाहा २। षळृचेभ्यः स्वाहा ३
सप्तर्चेभ्यः स्वाहा ४। अष्टर्चेभ्यः स्वाहा ५। नवर्चेभ्यः स्वाहा ६
दशर्चेभ्यः स्वाहा ७। एकादशर्चेभ्यः स्वाहा ८
द्वादशर्चेभ्यः स्वाहा ९। त्रयोदशर्चेभ्यः स्वाहा १०। चतुर्दशर्चेभ्यः स्वाहा ११
पञ्चदशर्चेभ्यः स्वाहा १२। षोडशर्चेभ्यः स्वाहा १३। सप्तदशर्चेभ्यः स्वाहा १४ १०२०
अष्टादशर्चेभ्यः स्वाहा १५। एकोनविंशतिः स्वाहा १६। विंशतिः स्वाहा १७
महत्काण्डाय स्वाहा १८। तृचेभ्यः स्वाहा १९। एकर्चेभ्यः स्वाहा २०
क्षुद्रेभ्यः स्वाहा २१। एकानृचेभ्यः स्वाहा २२। रोहितेभ्यः स्वाहा २३
सूर्याभ्यां स्वाहा २४। व्रात्याभ्यां स्वाहा २५। प्राजापत्याभ्यां स्वाहा २६
विषासह्यै स्वाहा २७। मङ्गलिकेभ्यः स्वाहा २८। ब्रह्मणे स्वाहा २९ १०३५

॥ १४३ ॥ (अथर्व० १९।२४।१-८)

ब्रह्मणस्पतिः, बहुदेवत्यम् । अनुष्टुप्; ४-६,८ त्रिष्टुप्; ७ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री ।

येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन् । तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन १
परीममिन्द्रमायुषे महे क्षत्राय धत्तन । यथैनं जरसे नयां ज्योक् क्षत्रेऽधि जागरत् २
परीमं सोममायुषे महे श्रोत्राय धत्तन । यथैनं जरसे नयां ज्योक् श्रोत्रेऽधि जागरत् ३
परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ४
जरां सु गच्छ परि धत्स्व वासो भवा गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ५ १०४०
परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्वापीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूचीर्वसूनि चारुर्वि भजासि जीवन् ६
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ७
हिरण्यवर्णो अजरः सुवीरो जरामृत्युः प्रजया सं विशस्व ।
तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ८ १०४३

॥ १४४ ॥ (अथर्व० ५।३।३-६)×

(१०४४-४७) बृहद्दिवोऽथर्वा । ३-४ देवाः, ५ द्रविणोदाः, ६ देवीः । त्रिष्टुप् ।

मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः ।
ममान्तरिक्षमुरुलोकमस्तु मह्यं वातः पवतां कामायास्मै ३
मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु ।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवा अभि रक्षन्तु मेह ४ १०४
मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः ।
दैवा होतारः सनिषन्न एतदरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ५
देवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह मादयध्वम् ।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ६ १०४

॥ १४५ ॥ (अथर्व० १।१६।१-४)

(१०४८-५१) चातनः । अग्निः, इन्द्रः, वरुणः, (१-४ दधत्यं सीसम्) । अनुष्टुप्, ४ ककुम्मती अनुष्टुप्

येऽमावास्यां३ रात्रिमुदस्थुर्व्राजमत्त्रिणः । अग्निस्तुरीयो यातुहा सो अस्मभ्यमधि ब्रवत् १
सीसायाध्याह वरुणः सीसायाग्निरुपावति । सीसं म इन्द्रः प्रायच्छत् तदङ्ग यातुचातनम् २
इदं विष्कन्धं सहत इदं बाधते अत्त्रिणः । अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः ३ १०५
यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम् । तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ४ १०५

॥ १४६ ॥ (अथर्व० १।१९।१-४)

(१०५२-९०) ब्रह्मा । ईश्वरः, (१ इन्द्रः, २ देवीः मनुष्येषवः, ३ रुद्रः, ४ देवाः) । अनुष्टुप्,
२ पुरस्ताद्बृहती, ३ पथ्यापङ्क्तिः ।

मा नो विदन् विव्याधिनो मो अभिव्याधिनो विदन् ।
आराच्छरव्या अस्मद् विषूचीरिन्द्र पातय १
विष्वञ्चो अस्मच्छरवः पतन्तु ये अस्ता ये चास्याः ।
दैवीर्मनुष्येषवो ममामित्रान् वि विध्यत २
यो नः स्वो यो अरणः सजात उत निष्ट्यो यो अस्माँ अभिदासति ।
रुद्रः शरव्ययैतान् ममामित्रान् वि विध्यतु +३
यः सपत्नो योऽसपत्नो यश्च द्विषञ्छपाति नः ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ४ १०५

× अथर्व० ५,३,७,९-१० = दै० [सोमः] ११८७; दै० [अदितिः०] ७१०; दै० [रुद्रः] १५५ ।
+ अथर्व० १,१९,३ = दै० [रुद्रः] १११ ।

॥ १४७ ॥ (अथर्व० १।२६।१-४)*
१ देवाः; २ इन्द्रः, भगः, सविता गायत्री; ३ त्रिपदा एकावसाना साम्नी त्रिष्टुप्,
४ एकावसाना पादनिचृत् ।

आरे॒३॑ऽसाव॒स्मद॑स्तु हे॒तिर्दे॑वासो असत् । आ॒रे अश्मा॒ यमस्य॑थ १
सखा॒साव॒स्मभ्य॑मस्तु रा॒तिः सखेन्द्रो॒ भगः॑ स॒विता चि॒त्ररा॑धाः २ १०५७

॥ १४८ ॥ (अथर्व० ३।२३।१-६)
चन्द्रमाः, योनिः, द्यावापृथिवी । अनुष्टुप्, ५ उपरिष्टाद् भुरिग्बृहती, ६ स्कंधोग्रीवी बृहती ।

येन॑ वे॒हद् ब॒भूवि॑थ ना॒शया॑म॒सि तत् त्वत् । इ॒दं तद॒न्यत्र॒ त्वदप॒ दू॒रे नि द॑ध्मसि १
आ ते॒ योनिं॒ गर्भ॑ ए॒तु पु॒मान् बाण॑ इवेषु॒धिम् ।
आ वी॒रोऽत्र॑ जायतां पु॒त्रस्ते॒ दश॑मास्यः २
पुमां॑सं पु॒त्रं ज॑नय॒ तं पु॒मान॑नु जायताम् ।
भवा॑सि पु॒त्राणां॑ मा॒ता जा॒तानां॑ ज॒नया॑श्च॒ यान् ३ १०६०
यानि॑ भ॒द्राणि॒ बीजा॑न्यृष॒भा ज॒नय॑न्ति च । तैस्त्वं पु॒त्रं वि॑न्दस्व॒ सा प्र॒सूर्धेनु॑का भव ४
कृ॒णोमि॑ ते प्राजाप॒त्यमा योनिं॒ गर्भ॑ ए॒तु ते ।
वि॒न्दस्व॒ त्वं पु॒त्रं ना॑रि॒ यस्तुभ्यं॒ शम॒सच्छमु॒ तस्मै॒ त्वं भव॑ ५
यासां॒ द्यौः पि॒ता पृ॑थि॒वी मा॒ता स॑मु॒द्रो मूलं॑ वी॒रुधां॑ ब॒भूव॑ ।
तास्त्वा॑ पु॒त्रवि॑द्याय॒ दैवीः॒ प्राव॒न्त्वोष॑धयः ६ १०६३

॥ १४९ ॥ (अथर्व० ६।५५।१) जगती ।

ये पन्था॑नो ब॒हवो॑ देव॒याना॑ अन्त॒रा द्यावा॑पृथि॒वी सं॒चर॑न्ति ।
ते॒षाम॑ज्या॑निं॒ यत॒मो वहा॑ति॒ तस्मै॑ मा देवा॒ः परि॑ धत्ते॒ह सर्वे॑ १ १०६४

॥ १५० ॥ (अथर्व० ६।११४।१-३) अनुष्टुप् ।

यद् दे॑वा देव॒हेड॑नं॒ देवा॑सश्चकृ॒मा व॒यम् । आदि॑त्या॒स्तस्मा॑न्नो यू॒यमृ॒तस्य॒र्तेन॑ मुञ्चत १ १०६५
ऋ॒तस्य॒र्तेना॑दित्या॒ यज॑त्रा मु॒ञ्चते॒ह नः । य॒ज्ञं यद् य॑ज्ञवाहसः॒ शिक्ष॑न्तो॒ नोप॑शेकि॒म २
मेद॑स्वता॒ यज॑मानाः स्रु॒चाज्या॑नि॒ जुह्व॑तः । अ॒कामा॒ विश्वे॑ वो देवा॒ः शिक्ष॑न्तो॒ नोप॑ शेकि॒म ३ १०६७

॥ १५१ ॥ (अथर्व० ७।१४।१)
इन्द्रः, अग्निः, विश्वे देवाः, मरुतः, सविता, प्रजापतिः, अनुमतिः । त्रिष्टुप् ।

यन्न॒ इन्द्रो॒ अख॑नद् यद॒ग्निर्विश्वे॑ दे॒वा म॒रुतो॒ यत् स्व॒र्काः ।
तद॒स्मभ्यं॑ स॒विता स॒त्यध॑र्मा प्र॒जाप॑तिर॒नुम॑ति॒र्नि य॑च्छात् १ १०६८

* अथर्व० १,२६,३-४ = दै० [मरुतः] ४३०-३१ ।

॥ १५२ ॥ (अथर्व० १९।९।१-१४)

(शन्तातिः ?)। शान्तिः, बहुदेवत्यम्। अनुष्टुप्; १ विराडुरोबृहती; ५ पञ्चपदा पथ्यापंक्तिः, ९ पञ्चपदा ककुम्मती; ११ त्र्यवसाना सप्तपदाष्टिः, १४ चतुष्पदा संकृतिः।

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्व१न्तरिक्षम्।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः १
शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम्।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः २ १०७०
इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता। ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ३
इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम्। येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ४
इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ५
शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ६
शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वांछमन्तकः।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ७ १०७५
शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत्। शं गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरव तीर्यतीः ८
नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः।
शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ९
शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा। शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः १०
शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः। शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ११
ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्तऋषयोऽग्नयः।
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु।
विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु १२ १०८०
यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः।
सर्वाणि शं भवन्तु मे शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु १३
पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः
शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः।
ताभिः शान्तिभिः सर्वशान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं
यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः १४ १०८१

॥ १५३ ॥ (अथर्व० १९।४३।१-८)

ब्रह्म, बहुदैवत्यम्। ऽयवसाना शंकुमती पथ्यापङ्क्तिः।

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे । अग्नये स्वाहा १
यत्र ब्रह्मविदो०। वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान् दधातु मे । वायवे स्वाहा २
यत्र ब्रह्मविदो०। सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुः सूर्यो दधातु मे । सूर्याय स्वाहा ३ १०८५
यत्र ब्रह्मविदो०। चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे । चन्द्राय स्वाहा ४
यत्र ब्रह्मविदो०। सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे । सोमाय स्वाहा ५
यत्र ब्रह्मविदो०। इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे । इन्द्राय स्वाहा ६
यत्र ब्रह्मविदो०। आपो मा तत्र नयन्त्वमृतं मोप तिष्ठतु । अद्भ्यः स्वाहा ७
यत्र ब्रह्मविदो०। ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे । ब्रह्मणे स्वाहा ८ १०९०

॥ १५४ ॥ (अथर्व० २।१२।१-८)

(१०९१-९८) भरद्वाजः। १ द्यावापृथिवी, अन्तरिक्षम्, २ देवाः, ३ इन्द्रः, आदित्या-
वसवोऽङ्गिरसः पितरः, ५ सोम्यासः पितरः, ६ मरुतः, ७ यमसादनम्,
ब्रह्म, ८ अग्निः। त्रिष्टुप्, २ जगती, ७-८ अनुष्टुप्।

द्यावापृथिवी उर्व१न्तरिक्षं क्षेत्रस्य पत्न्युरुगायोऽद्भुतः ।
उतान्तरिक्षमुरु वातगोपं त इह तप्यन्तां मयि तप्यमाने १
इदं देवाः शृणुत ये यज्ञिया स्थ भरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति ।
पाशे स बद्धो दुरिते नि युज्यतां यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति २
इदमिन्द्र शृणुहि सोमप यत् त्वा हृदा शोचता जोहवीमि ।
वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ३
अशीतिभिस्तिसृभिः सामगेभिरादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ।
इष्टापूर्तमवतु नः पितॄणामामुं ददे हरसा दैव्येन ×४
द्यावापृथिवी अनु मा दीधीथां विश्वे देवासो अनु मा रभध्वम् ।
अङ्गिरसः पितरः सोम्यासः पापमार्छत्वपकामस्य कर्ता ५ १०९५
अतीव यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यो निन्दिषत् क्रियमाणम् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषं द्यौरभिसंतपाति ६ १०९६

× अथर्व० २,१२,४ = दै० [अदितिः०] १६७।

सप्त प्राणानष्टौ मन्यस्तांस्ते वृश्चामि ब्रह्मणा । अया यमस्य सादनमग्निदूतो अरंकृतः ७
आ दधामि ते पदं समिद्धे जातवेदसि । अग्निः शरीरं वेवेष्ट्वसुं वागपि गच्छतु ८ १०९८

॥ १५५ ॥ (अथर्व० २।१८।३-५)

(१०९९-११०१) शम्भुः । द्यावापृथिव्यादयो देवाः । त्रिष्टुप्, ५ भुरिक् ।

त्वमीशिषे पशूनां पार्थिवानां ये जाता उत वा ये जनित्राः ।
मेमं प्राणो हासीन्मो अपानो मेमं मित्रा वधिषुर्मो अमित्राः ३
द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृणुतां संविदाने ।
यथा जीवा अदितेरुपस्थे प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः ४ ११००
इममग्न आयुषे वर्चसे नय प्रियं रेतो वरुण मित्रराजन् ।
मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासत् ५ ११०१

॥ १५६ ॥ (अथर्व० २।३६।४,६,८)+

(११०२-४) पतिवेदनः । ४ इन्द्रः, ६ धनपतिः, ८ ओषधिः । ४ त्रिष्टुप्, ६ अनुष्टुप्, ८ निचृत्पुरउष्णिक् ।

यथाखरो मघवंश्चारुरेष प्रियो मृगाणां सुषदा बभूव ।
एवा भगस्य जुष्टेयमस्तु नारी संप्रिया पत्याविराधयन्ती ४
आ क्रन्दय धनपते वरमामनसं कृणु । सर्वं प्रदक्षिणं कृणु यो वरः प्रतिकाम्यः ६
आ ते नयतु सविता नयतु पतिर्यः प्रतिकाम्यः । त्वमस्यै धेह्योषधे ८ ११०४

॥ १५७ ॥ (अथर्व० ३।१९।१-८)

(११०५-२०) वसिष्ठः । विश्वे देवाः, चन्द्रमाः, इन्द्रः । अनुष्टुप्, १ पथ्याबृहती, ३ भुरिग्बृहती,
५ त्रिष्टुप्, ६ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुप्ककुम्मतीगर्भातिजगती,
७ विराडास्तारपङ्क्तिः, ८ पथ्यापङ्क्तिः ।

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं१ बलम् ।
संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्येषामस्मि पुरोहितः १ ११०५
समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं१ बलम् ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् २
नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान् ।
क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम् ३
तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत ।
इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः ४ ११०८

+ अथर्व० २,३६,१;३ = दै० [अग्निः] १३३९-४० । अथर्व० २,३६,२ = दै० [सोमः०] १२४३ ।
अथर्व० २,३६,५;७ = दै० [अदितिः०] ६२३,७९९ ।

एषामहमायुधा सं स्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि ।
एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्ण्वे३षां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः ५
उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनान्युद् वीराणां जयतामेतु घोषः ।
पृथग् घोषा उलुलयः केतुमन्त उदीरताम् । देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया ६ १११०
प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः ।
तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः ७
अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
जयामित्रान् प्र पद्यस्व जह्येषां वरंवरं मामीषां मोचि कश्चन ८ १११२

॥ १५८ ॥ (अथर्व० ३।२२।१-६)

वर्चः, बृहस्पतिः, विश्वे देवाः । अनुष्टुप्, १ विराट् त्रिष्टुप्, पञ्चपदा परानुष्टुप् विराडतिजगती, ४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।

हस्तिवर्चसं प्रथतां बृहद् यशो अदित्या यत् तन्व१ः संबभूव ।
तत् सर्वे समदुर्मह्यमेतद् विश्वे देवा अदितिः सजोषाः १
मित्रश्च वरुणश्चेन्द्रो रुद्रश्च चेततु । देवासो विश्वधायसस्ते माञ्जन्तु वर्चसा २
येन हस्ती वर्चसा संबभूव येन राजा मनुष्ये३ष्वप्स्व१न्तः ।
येन देवा देवतामग्र आयन् तेन मामद्य वर्चसाग्ने वर्चस्विनं कृणु ३ १११५
यत् ते वर्चो जातवेदो बृहद् भवत्याहुतेः ।
यावत् सूर्यस्य वर्च आसुरस्य च हस्तिनः ।
तावन्मे अश्विना वर्च आ धत्तां पुष्करस्रजा ४
यावच्चतस्रः प्रदिशश्चक्षुर्यावत् समश्नुते ।
तावत् समैत्विन्द्रियं मयि तद्धस्तिवर्चसम् ५
हस्ती मृगाणां सुषदामतिष्ठावान् बभूव हि ।
तस्य भगेन वर्चसाभि षिञ्चामि मामहम् ६ १११८

॥ १५९ ॥ (अथर्व० १९।११।५-६)×

बहुदैवत्यम् । त्रिष्टुप् ।

ये देवानामृत्विजो यज्ञियासो मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५ १११९

अथर्व० १९,११,१-४ = दै० [विश्वे देवाः] ४५९-६२ ।

---

१ दै. (विश्वे देवाः)

तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ६ १११

॥ १६० ॥ (अथर्व० १९।११।१-११)

(११११-४१) अङ्गिराः । मन्त्रोक्ताः । १ साम्न्युष्णिक्, ३,११ प्राजापत्या गायत्री; ४,७,११,१७ दैवी जगती; ५,१२-१३ दैवी त्रिष्टुप्; २,६,१४-१६,२० दैवी पङ्क्तिः, ८-१० आसुरी जगती; १८ आसुर्यनुष्टुप्; २१ चतुष्पदा त्रिष्टुप् (१-२० एकावसानाः) ।

आङ्गिरसानामाद्यैः पञ्चानुवाकैः स्वाहा १ षष्ठाय स्वाहा २
सप्तमाष्टमाभ्यां स्वाहा ३ नीलनखेभ्यः स्वाहा ४
हरितेभ्यः स्वाहा ५ क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ६
पर्यायिकेभ्यः स्वाहा ७ प्रथमेभ्यः स्वाहा ८
द्वितीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ९ तृतीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा १० ११२
उपोत्तमेभ्यः स्वाहा ११ उत्तमेभ्यः स्वाहा १२
उत्तरेभ्यः स्वाहा १३ ऋषिभ्यः स्वाहा १४
शिखिभ्यः स्वाहा १५ गणेभ्यः स्वाहा १६
महागणेभ्यः स्वाहा १७ सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्यः स्वाहा १८
पृथक्सहस्राभ्यां स्वाहा १९ ब्रह्मणे स्वाहा २० ११४
ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ×२१ ११४

॥ १६१ ॥ (अथर्व० ४।८।१-७)

(११४१-४९) अथर्वाङ्गिराः । चन्द्रमाः, आपः, राज्याभिषेकः, १ राजा, २ देवाः, ३ विश्वरूपः, ४-५ आपः । अनुष्टुप्; १,७ भुरिक्, त्रिष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्, ५ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः ।

भूतो भूतेषु पय आ दधाति स भूतानामधिपतिर्बभूव ।
तस्य मृत्युश्चरति राजसूयं स राजा राज्यमनु मन्यतामिदम् १
अभि प्रेहि मापं वेन उग्रश्चेत्ता सपत्नहा ।
आ तिष्ठ मित्रवर्धन तुभ्यं देवा अधि ब्रवन् २
आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियं वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत् तद् वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ३ ११४

× अथर्व० १९।२१।२१ = अथर्व० १९,२३,३०

व्याघ्रो अधि वैयाघ्रे वि क्रमस्व दिशो महीः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ४ ११४५
या आपो दिव्याः पयसा मदन्त्यन्तरिक्ष उत वा पृथिव्याम् ।
तासां त्वा सर्वासामपामभि षिञ्चामि वर्चसा ५
अभि त्वा वर्चसासिचन्नापो दिव्याः पयस्वतीः ।
यथासो मित्रवर्धनस्तथा त्वा सविता करत् ६
एना व्याघ्रं परिषस्वजानाः सिंहं हिन्वन्ति महते सौभगाय ।
समुद्रं न सुभुवस्तस्थिवांसं मर्मृज्यन्ते द्वीपिनमप्स्वन्तः ७ ११४८

॥ १६२ ॥ (अथर्व० ७।११८।१)

चन्द्रमाः, वरुणः, देवः । त्रिष्टुप् ।

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु १ ११४९

॥ १६३ ॥ (अथर्व० ६।१२३।१-५)

(११५०-५४) भृगुः । त्रिष्टुप्, ३ द्विपदा साम्न्यनुष्टुप्, ४ एकावसाना द्विपदा प्राजापत्या भुरिगनुष्टुप् ।

एतं सधस्थाः परि वो ददामि यं शेवधिमावहाज्जातवेदाः ।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ति तं स्म जानीत परमे व्योमन् १ ११५०
जानीत स्मैनं परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद लोकमत्र ।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्तीष्टापूर्तं स्म कृणुताविरस्मै २
देवाः पितरः पितरो देवाः । यो अस्मि सो अस्मि ३
स पचामि स ददामि स यजे स दत्तान्मा यूषम् ४
नाके राजन् प्रति तिष्ठ तत्रैतत् प्रति तिष्ठतु । विद्धि पूर्तस्य नो राजन्त्स देव सुमना भव ५ ११५४

॥ १६४ ॥ (अथर्व० १९।२७।१-१५)

(११५५-६९) भृग्वङ्गिराः । त्रिवृत्, चन्द्रमाश्च । अनुष्टुप्; ३,९ त्रिष्टुप्, १० जगती (?); ११ आर्च्युष्णिक्; १२ आर्च्यनुष्टुप्; १३ साम्नी त्रिष्टुप् (११-१३ एकावसानाः)

गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः। वायुष्ट्वा ब्रह्मणा पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः १
सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः । माद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु २
तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान् ।
त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आप आहुस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ३ ११५७

त्रीन्नाकांस्त्रीन्त्समुद्रांस्त्रीन् ब्रध्नांस्त्रीन् वैष्टपान् । त्रीन् मातरिश्वनस्त्रीन्त्सूर्यान् गोप्तॄन् कल्पयामि ते ४
घृतेन त्वा समुक्षाम्यग्न आज्येन वर्धयन् । अग्नेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं मायिनो दभन् ५
मा वः प्राणं मा वोऽपानं मा हरो मायिनो दभन् । भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन धावत ६ ११६०
प्राणेनाग्निं सं सृजति वातः प्राणेन संहितः । प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन् ७
आयुषाऽऽयुःकृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः । प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ८
देवानां निहितं निधिं यमिन्द्रोऽन्वविन्दत् पथिभिर्देवयानैः ।
आपो हिरण्यं जुगुपुस्त्रिवृद्भिस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ९
त्रयस्त्रिंशद् देवतास्त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा जुगुपुरप्स्वन्तः ।
अस्मिंश्चन्द्रे अधि यद्धिरण्यं तेनायं कृणवद् वीर्याणि १०
ये देवा दिव्येकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ११ ११६५
ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् १२
ये देवाः पृथिव्यामेकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् १३
असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम् । सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः १४
दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः ।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म १५ ११६९

॥ १६५ ॥ (अथर्व० ६।१०।१-३)

(११७०-७८) शन्तातिः । १ पृथिवी, श्रोत्रं, वनस्पतिः, अग्निः, २ प्राणः, अन्तरिक्षं, वयः, वायुः, ३ द्यौः, चक्षुः, नक्षत्राणि, सूर्यः । द्वैपदम्, १ साम्नी त्रिष्टुप्, २ प्राजापत्या बृहती, ३ साम्नी बृहती ।

पृथिव्यै श्रोत्राय वनस्पतिभ्योऽग्नयेऽधिपतये स्वाहा १ ११७०
प्राणायान्तरिक्षाय वयोभ्यो वायवेऽधिपतये स्वाहा २
दिवे चक्षुषे नक्षत्रेभ्यः सूर्यायाधिपतये स्वाहा ३ ११७२

॥ १६६ ॥ (अथर्व० ६।१९।१-३)

चन्द्रमाः, १ देवजनाः, मनवः, विश्वा भूतानि, पवमानः, २ पवमानः, ३ सविता ।
गायत्री, १ अनुष्टुप् ।

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया । पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा १
पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे । अथो अरिष्टतातये २
उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । अस्मान् पुनीहि चक्षसे ३ ११७५

॥ १६७ ॥ (अथर्व० ६।९३।१-३)

रुद्रः, १ यमो मृत्युः शर्वः, २ भवः शर्वः, ३ विश्वे देवाः मरुतः अग्नीषोमौ वरुणः वातपर्जन्यौ । त्रिष्टुप् ।

यमो मृत्युरघमारो निर्ऋथो बभ्रुः शर्वोऽस्ता नीलशिखण्डः ।
देवजनाः सेनयोत्तस्थिवांसस्ते अस्माकं परि वृञ्जन्तु वीरान् १
मनसा होमैर्हरसा घृतेन शर्वायास्त्र उत राज्ञे भवाय ।
नमस्येभ्यो नम एभ्यः कृणोम्यन्यत्रास्मदघविषा नयन्तु २
त्रायध्वं नो अघविषाभ्यो वधाद् विश्वे देवा मरुतो विश्ववेदसः ।
अग्नीषोमा वरुणः पूतदक्षा वातापर्जन्ययोः सुमतौ स्याम ३ ११७८

॥ १६८ ॥ (अथर्व० ६।५३।१-२)×

(११७९-८०) बृहच्छुक्रः । १ द्यौः, पृथिवी, शुक्रः, सोमः, अग्निः, वायुः, सविता, भगः, २ वैश्वानरः, १ जगती, २ त्रिष्टुप् ।

द्यौश्च म इदं पृथिवी च प्रचेतसौ शुक्रो बृहन् दक्षिणया पिपर्तु ।
अनु स्वधा चिकितां सोमो अग्निर्वायुर्नः पातु सविता भगश्च १
पुनः प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न ऐतु ।
वैश्वानरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दुरितानि विश्वा २ ११८०

॥ १६९ ॥ (अथर्व० ६।६३।१-३)*

(११८१-८३) द्रुह्वणः । १ निर्ऋतिः, २ यमः, ३ मृत्युः । जगती, २ अतिजगतीगर्भा ।

यत् ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध दाम ग्रीवास्वविमोक्यं यत् ।
तत् ते वि ष्याम्यायुषे वर्चसे बलायादोमदमन्नमद्धि प्रसूतः १
नमोऽस्तु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे २
अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ३ ११८३

॥ १७० ॥ (अथर्व० ६।१०३।१-३)

(११८४-८६) उच्छोचनः । इन्द्राग्नी; १ बृहस्पतिः सविता मित्रो अर्यमा भगो अश्विनौ; २-३ इन्द्रोऽग्निः; अनुष्टुप् ।

संदानं वो बृहस्पतिः संदानं सविता करत् । संदानं मित्रो अर्यमा संदानं भगो अश्विना १
सं परमान्त्समवमानथो सं द्यामि मध्यमान् । इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम् २ ११८५
अमी ये युधमायन्ति केतून् कृत्वानीकशः । इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम् ३ ११८६

× अथर्व० ६,५३,३ = दै० [आदितिः०] ७००। * अथर्व० ६,६३,४ = दै० [अग्निः] १७१६।

॥ १७१ ॥ (अथर्व० ६।१२०।१-३)

(११८७-८९) कौशिकः । अन्तरिक्षं, पृथिवी, द्यौः, अग्निः । १ जगती, २ पङ्क्तिः, ३ त्रिष्टुप् ।

यदुन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिंसिम ।
अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् १
भूमिर्मातादितिर्नो जनित्रं भ्रातान्तरिक्षमभिशस्त्या नः ।
द्यौर्नः पिता पित्र्याच्छं भवाति जामिमृत्वा माव पत्सि लोकात् २
यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः ।
अश्लोणा अङ्गैरह्रुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ३ ११८

॥ १७२ ॥ (अथर्व० १४।२।५३-५८)

(११९०-९५) सूर्या सावित्री । अनुष्टुप् ।

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । वर्चो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ५३ ११९
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ५४
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ५५
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । यशो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ५६
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ५७
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ५८ ११९

॥ १७३ ॥ [११९६-९८] (अथर्व० २०।११८।५)

ये च देवा अयजन्ताथो ये च पराददिः । सूर्यो दिवमिव गत्वाय मघवा नो वि रप्शते ५ ११९

॥ १७४ ॥ (अथर्व० २०।१३५।४,१०)

वीमे देवा अक्रंसताध्वर्यो क्षिप्रं प्रचर । सुसत्यमिद् गवामस्यसि प्रखुदसि ४
देवा ददुत्वासुरं तद् वो अस्तु सुचेतनम् । युष्मां अस्तु दिवेदिवे प्रत्येव गृभायत १० ११९

देवाः ।

॥ १७५ ॥ (ऋ० १।२७।१३)

(११९९) आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । त्रिष्टुप् ।

नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः ।
यजाम देवान् यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः १३ ११९

॥ १७६ ॥ (ऋ० १।४५।१० [उत्तरार्धः] ।
(१२००) प्रस्कण्वः काण्वः । (सुदानवः देवाः) । अनुष्टुप् ।

अयं सोमः सुदानव—स्तं पात तिरोअह्न्यम् १० १२००

॥ १७७ ॥ (ऋ० १।९४।८ [त्रयः पादाः])
(१२०१) कुत्स आङ्गिरसः । जगती ।

पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथो ऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः ।
तदा जानीतोत पुष्यता वचः ८ १२०१

॥ १७८ ॥ (ऋ० १।१६४।५०)
(१२०२) दीर्घतमा औचथ्यः । त्रिष्टुप् ।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा—स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ५० १२०२

॥ १७९ ॥ (ऋ० ७।१०४।११)
(१२०३) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

परः सो अस्तु तन्वा३ तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः ।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो नो दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ११ १२०३

॥ १८० ॥ (ऋ० ८।६३।१२)*
(१२०४) प्रगाथः काण्वः । त्रिष्टुप् ।

अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः ।
यः शंसते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ अवन्तु देवाः १२ १२०४

॥ १८१ ॥ (ऋ० ८।८०।१०)
(१२०५) एकद्यूर्नौधसः । त्रिष्टुप् ।

अवीवृधद् वो अमृता अमन्दी—देकद्यूर्देवा उत याश्च देवीः ।
तस्मा उ राधः कृणुत प्रशस्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् १० १२०५

॥ १८२ ॥ (ऋ० १०।५१।२,४,६,८)
(१२०६-११) सौचीकोऽग्निः । त्रिष्टुप् ।

को मा ददर्श कतमः स देवो यो मे तन्वो बहुधा पर्यपश्यत् ।
क्वाह मित्रावरुणा क्षियन्त्य—ग्नेर्विश्वाः समिधो देवयानीः २
होत्रादहं वरुण बिभ्यदायं नेदेव मा युनजन्नत्र देवाः ।
तस्य मे तन्वो बहुधा निविष्टा एतमर्थं न चिकेताहमग्निः ४ १२०७

* वा० य० ३३,५० ।

अग्नेः पूर्वे भ्रातरो अर्थमेतं रथीवाध्वानमन्वावरीनुः ।
तस्माद्भिया वरुण दूरमायं गौरो न क्षेप्नोरविजे ज्यायाः ६
प्रयाजान् मे अनुयाजाँश्च केवला नूर्जस्वन्तं हविषो दत्त भागम् ।
घृतं चापां पुरुषं चौषधीना मग्नेश्च दीर्घमायुरस्तु देवाः ८ १२

॥ १८३ ॥ (ऋ० १०।५३।४-५)

तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनासुराँ अभि देवा असाम ।
ऊर्जाद उत यज्ञियासः पञ्च जना मम होत्रं जुषध्वम् ४ १२
पञ्च जना मम होत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः ।
पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वंहसो ऽन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान् ५ १२

॥ १८४ ॥ (ऋ० १०।७२।१-९)

(१२१२-२०) बृहस्पतिर्लौक्यः, बृहस्पतिराङ्गिरसो वा, अदितिर्दाक्षायणी वा । अनुष्टुप् ।

देवानां नु वयं जाना प्र वोचाम विपन्यया । उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे १
ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत् । देवानां पूर्व्ये युगे ऽसतः सदजायत २
देवानां युगे प्रथमे ऽसतः सदजायत । तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि ३
भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त । अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि ४ १२
अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव । तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ५
यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत । अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत ६
यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत । अत्रा समुद्र आ गूळ्ह मा सूर्यमजभर्तन ७
अष्टौ पुत्रासो अदिते र्ये जातास्तन्व१स्परि । देवाँ उप प्रैत् सप्तभिः परा मार्ताण्डमास्यत् ८
सप्तभिः पुत्रैरदिति रुप प्रैत् पूर्व्यं युगम् । प्रजायै मृत्यवे त्वत् पुनर्मार्ताण्डमाभरत् ९ १२

॥ १८५ ॥ (ऋ० १०।८५।१७)

(१२२१) सूर्या सावित्री ऋषिका । अनुष्टुप् ।

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च । ये भूतस्य प्रचेतस इदं तेभ्योऽकरं नमः १७ १२

॥ १८६ ॥ (ऋ० १०।९८।१-१२)

(१२२२-३३) देवापिरार्ष्टिषेणः (वृष्टिकामः) । त्रिष्टुप् ।

बृहस्पते प्रति मे देवतामिहि मित्रो वा यद्वरुणो वासि पूषा ।
आदित्यैर्वा यद्वसुभिर्मरुत्वा न्त्स पर्जन्यं शंतनवे वृषाय १ १२

आ देवो दूतो अजिरश्चिकित्वान् त्वद्देवापे अभि मामगच्छत् ।
प्रतीचीनः प्रति मामा ववृत्स्व दधामि ते द्युमतीं वाचमासन् २
अस्मे धेहि द्युमतीं वाचमासन् बृहस्पते अनमीवामिषिराम् ।
यया वृष्टिं शंतनवे वनाव दिवो द्रप्सो मधुमाँ आ विवेश ३
आ नो द्रप्सा मधुमन्तो विशन्त्वि—न्द्र देह्यधिरथं सहस्रम् ।
नि षीद होत्रमृतुथा यजस्व देवान् देवापे हविषा सपर्य ४ १२२५
आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन् देवापिर्देवसुमतिं चिकित्वान् ।
स उत्तरस्मादधरं समुद्र—मपो दिव्या असृजद्वर्ष्या अभि ५
अस्मिन्त्समुद्रे अध्युत्तरस्मि—न्नापो देवेभिर्निवृता अतिष्ठन् ।
ता अद्रवन्नार्ष्टिषेणेन सृष्टा देवापिना प्रेषिता मृक्षिणीषु ६
यद्देवापिः शंतनवे पुरोहितो होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत्
देवश्रुतं वृष्टिवनिं रराणो बृहस्पतिर्वाचमस्मा अयच्छत् ७
यं त्वा देवापिः शुशुचानो अग्न आर्ष्टिषेणो मनुष्यः समीधे ।
विश्वेभिर्देवैरनुमद्यमानः प्र पर्जन्यमीरया वृष्टिमन्तम् ८
त्वां पूर्व ऋषयो गीर्भिरायन् त्वामध्वरेषु पुरुहूत विश्वे ।
सहस्राण्यधिरथान्यस्मे आ नो यज्ञं रोहिदश्वोप याहि ९ १२३०
एतान्यग्ने नवतिर्नव त्वे आहुतान्यधिरथा सहस्रा ।
तेभिर्वर्धस्व तन्वः शूर पूर्वी—र्दिवो नो वृष्टिमिषितो रिरीहि १०
एतान्यग्ने नवतिं सहस्रा सं प्र यच्छ वृष्ण इन्द्राय भागम् ।
विद्वान् पथ ऋतुशो देवयाना—नप्यौलानं दिवि देवेषु धेहि ११
अग्ने बाधस्व वि मृधो वि दुर्गहा ऽपामीवामप रक्षांसि सेध ।
अस्मात् समुद्राद् बृहतो दिवो नो ऽपां भूमानमुप नः सृजेह १२ १२३३

॥ १८७ ॥ [१२३४-६३] (वा० य० १.८)

देवानामसि वह्नितमं सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ८ १२३४

॥ १८८ ॥ (वा० य० १७,११)

नमो देवेभ्यः ७ १२३५
देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मनसस्पत इमं देव यज्ञं स्वाहा वाते धाः×२१ १२३६

× वा० य० ८,२१ = अथर्व० ७,९७,७-८।

॥ १८९ ॥ (वा० य० ६।११)

स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहाः ११ १२३९

॥ १९० ॥ (वा० य० ७।३,१२,१७,२१,२६)

देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यः ×३। देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्तु १२

देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्तु १७ १२४०

देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं यज्ञस्याऽऽयुषे गृह्णामि २१। देवानामुत्क्रमणमसि २६ १२४१

॥ १९१ ॥ (वा० य० ८।१८,२७,४३,६०)

सुगा वो देवाः सदना अकर्म य आजग्मेद॒ सवनं जुषाणाः ।

भरमाणा वहमाना हवी॒ष्यस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वाहा *१८

देवाना॒ समिदसि २७

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति ।

एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ४३ १२४५

देवान् दिवमगन् यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु मनुष्यानन्तरिक्षमगन् यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु पितॄन् पृथिवीमगन् यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु यं कं च लोकमगन् यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत् ६० १२४६

॥ १९२ ॥ (वा० य० ९।३५-३६)

विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात् सद्भ्यः स्वाहा ३५

ये देवा विश्वदेवनेत्राः पश्चात् सदस्तेभ्यः स्वाहा ३६ १२४८

॥ १९३ ॥ (वा० य० १५।५०)

तं पत्नीभिरनुगच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः ।

नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ५० १२४९

॥ १९४ ॥ (वा० य० १७।५६)

दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रे देवश्रीः श्रीमनाः शतपयाः ।

परिगृह्य देवा यज्ञमायन् देवा देवेभ्यो अध्वर्यन्तो अस्थुः ५६ १२५०

॥ १९५ ॥ (वा० य० १८।६०)

एतं जानाथ परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद रूपमस्य ।

यदागच्छात् पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्ते कृणवाथाविरस्मै ६० १२५१

× वा० य० ७,६। * दै० [इन्द्रः] ३११३।

॥ १९६ ॥ (वा० य० १९।१२)

देवा यज्ञमतन्वत भेषजं भिषजाश्विना । वाचा सरस्वती भिषगिन्द्रायेन्द्रियाणि दधतः १२ १२

॥ १९७ ॥ (वा० य० २०।१४)

यद् देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम् ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः १४ १२

॥ १९८ ॥ (वा० य० २१।५३)

देवा देवानां भिषजा होताराविन्द्रमश्विना ।
वषट्कारैः सरस्वती त्विषिं न हृदये मतिꣳ होतृभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने
वसुधेयस्य व्यन्तु यज ५३ १२

॥ १९९ ॥ (वा० य० २६।१९)

अनु वीरैरनु पुष्यास्म गोभिरन्वश्वैरनु सर्वेण पुष्टैः ।
अनु द्विपदानु चतुष्पदा वयं देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु १९ १२

॥ २०० ॥ (वा० य० २८।११)

देवा आज्यपा जुषाणा इन्द्र आज्यस्य व्यन्तु ११ १२

॥ २०१ ॥ (वा० य० २९।२०)

देवा इदस्य हविरद्यमायन् यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् २० १२

॥ २०२ ॥ (वा० य० ३१।१४-१५,२१)

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत । वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः १४
सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् १५
रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात् तस्य देवा असन् वशे २१ १२

॥ २०३ ॥ (वा० य० ३३।७,४८,८९)

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिꣳशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ७
अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ४८
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ८९ १२

लिङ्गोक्ताः ।

॥ २०४ ॥ (ऋ० १।१३६।६-७)

(१२६४-६५) परुच्छेपो दैवोदासिः । ६ अत्यष्टिः, ७ त्रिष्टुप् ।

नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुषे सुमृळीकाय मीळ्हुषे ।
इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम् ।
ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ६
ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो मरुद्भिः ।
अग्निर्मित्रो वरुणः शर्म यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च ७ १२६५

॥ २०५ ॥ (ऋ० २।३२।८)

(१२६६) गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः । अनुष्टुप् ।

या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती ।
इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ८ १२६६

॥ २०६ ॥ (ऋ० १०।१४।७-९)

(१२६७-६९) वैवस्वतो यमः । (पितरो वा) । त्रिष्टुप् ।

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभि-र्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ७
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेने-ष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ८
अपेत वीत वि च सर्पतातो ऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ९ १२६९

॥ २०७ ॥ [१२७०-१३९३] (वा० य० १।१२,१४)

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।
देवीरापो अग्रेगुवो अग्रेपुवोऽग्र इममद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपतिꣳ सुधातुं यज्ञपतिं
देवयुवम् १२ १२७०
शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूता अरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु ।
अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु १४ १२७१

॥ २०८ ॥ (वा० य० २।१,५,१५,२०,२२,३१)

कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टां प्रोक्षामि
बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि १ १२७२

समिदसि सूर्यस्त्वा पुरस्तात् पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै ।
सवितुर्बाहू स्थ ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्य आ त्वा वसवो रुद्रा आदित्याः सदन्तु ५
अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि ।
अग्नीषोमौ तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि ।
इन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि । इन्द्राग्नी तमपनुदतां० १५
अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि
दुरद्मन्या अविषं नः पितुं कृणु ।
सुषदा योनौ स्वाहा वाडग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा २० १२७५
सं बर्हिरङ्क्ताᳫं हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सं मरुद्भिः ।
समिन्द्रो विश्वदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत् स्वाहा २२
नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः पितरो वास आधत्त ३२ १२७७

॥ २०९ ॥ (वा० य० २।५,९-१०)

भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा ।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ५
अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ।
अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।
ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ९
सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या । जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥
सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा १० १२८०

॥ २१० ॥ (वा० य० ३।७,२६)

आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहा ।
आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुवो द्यावापृथिवी उरो अन्तरिक्ष ।
बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा ७ १२८१

शुक्रं त्वा शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन ।
सग्मे ते गोरस्मे ते चन्द्राणि तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः परमेण पशुना क्रीयसे
सहस्रपोषं पुषेयम् २६ १२८१

॥ २११ ॥ (वा० य० ५।१,७,९)

अग्नेर्जनित्रमसि वृषणौ स्थ उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवा असि ।
गायत्रेण त्वा छन्दसा मन्थामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा मन्थामि जागतेन त्वा
छन्दसा मन्थामि २
अꣳशुरꣳशुष्टे देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदे ।
आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्व ।
आप्याययास्मान्त्सखीन्त्सन्न्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीय ।
एष्टा रायः प्रेषे भगाय ऋतमृतवादिभ्यो नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ७
तप्तायनी मेऽसि वित्तायनी मेऽस्यवतान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात् ।
विदेदग्निर्नभो नामाग्ने अङ्गिर आयुना नाम्नेहि योऽस्यां पृथिव्यामसि
यत् तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्ने अङ्गिर आयुना
नाम्नेहि यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत् तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा
दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्ने अङ्गिर आयुना नाम्नेहि यस्तृतीयस्यां
पृथिव्यामसि यत् तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे ।
अनु त्वा देववीतये ९ १२८५

॥ २१२ ॥ (वा० य० ६।७,९,१५-१६,१८,२०-२१,२३,२६)

उपावीरस्युप देवान् दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्नितमान् ।
देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम् ७
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं नियुनज्मि ।
अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योऽनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः ।
अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ९
मनस्त आप्यायतां वाक्त आप्यायतां प्राणस्त आप्यायतां चक्षुस्त आप्यायताꣳ
श्रोत्रं त आप्यायताम् ।
यत् ते क्रूरं यदास्थितं तत् त आप्यायतां निष्ट्यायतां तत् ते शुध्यतु शमहोभ्यः ।
ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः १५ १२८८

रक्षसां भागोऽसि निरस्तꣳ रक्ष इदमहꣳ रक्षोऽभितिष्ठामीदमहꣳ रक्षोऽवबाध
इदमहꣳ रक्षोऽधमं तमो नयामि ।
घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथां वायो वे स्तोकानामग्निराज्यस्य वेतु स्वाहा
स्वाहाकृते ऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम् १६
सं ते मनो मनसा सं प्राणः प्राणेन गच्छताम् ।
रेडस्यग्निष्ट्वा श्रीणात्वापस्त्वा समरिणन् वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णो रꣳह्या
ऊष्मणो व्यथिषत् प्रयुतं द्वेषः १८ ११९०
ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे निदीध्यदैन्द्र उदानो अङ्गे अङ्गे निधीतः १
देव त्वष्टर्भूरि ते सꣳ समेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपं भवाति ।
देवत्रा यन्तमवसे सखायोऽनु त्वा माता पितरो मदन्तु २०
समुद्रं गच्छ स्वाहाऽन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा देवꣳ सवितारं गच्छ स्वाहा
मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहाऽहोरात्रे गच्छ स्वाहा छन्दाꣳसि गच्छ स्वाहा
द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञं गच्छ स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहा दिव्यं
नभो गच्छ स्वाहाऽग्निं वैश्वानरं गच्छ स्वाहा मनो मे हार्दि यच्छ दिवं
ते धूमो गच्छतु स्वर्ज्योतिः पृथिवीं भस्मनापृण स्वाहा २१
हविष्मतीरिमा आपो हविष्माँ२ आविवासति ।
हविष्मान् देवो अध्वरो हविष्माँ२ अस्तु सूर्यः २३
सोम राजन् विश्वास्त्वं प्रजा उपावरोह विश्वास्त्वां प्रजा उपावरोहन्तु ।
शृणोत्वग्निः समिधा हवं मे शृण्वन्त्वापो धिषणाश्च देवीः ।
श्रोता ग्रावाणो विदुषो न यज्ञꣳ शृणोतु देवः सविता हवं मे स्वाहा २६ ११९४

॥ २१३ ॥ (वा० य० ७।२-३,१५,१८,२०,२१,२३,२७-२८,४५-४७)+

मधुमतीर्न इषस्कृधि यत् ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै ते सोम
सोमाय स्वाहा स्वाहोर्वन्तरिक्षमन्वेमि २ ११९५
स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा
त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो देवाꣳशो यस्मै त्वेडे तत्
सत्यमुपरिप्रुता भङ्गेन हतोऽसौ फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा ३ ११९६

+ वा० य० ७,३९-४० = दै० [इन्द्रः] १८७१,१४३ ।

स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वाँस्तस्मा इन्द्राय सुतमाजुहोत स्वाहा ।
तृम्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा याः सुप्रीताः सुहुता यत् स्वाहायाडग्नीत् १५ ११९७
सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् ।
सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को मन्थिनोऽधिष्ठानमसि १८
उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वाग्रयणः ।
पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु त्वं पाह्यभि सवनानि पाहि २०
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वत उक्थाव्यं गृह्णामि
यत् त इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वैष ते योनिरुक्थेभ्यस्त्वा देवेभ्यस्त्वा
देवाव्यं यज्ञस्याऽऽयुषे गृह्णामि २२ १३०८
मित्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्याऽऽयुषे गृह्णामीन्द्राय त्वा देवाव्यं यज्ञस्याऽऽयुषे
गृह्णामीन्द्राग्निभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्याऽऽयुषे गृह्णामीन्द्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं
यज्ञस्याऽऽयुषे गृह्णामीन्द्राबृहस्पतिभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्याऽऽयुषे गृह्णामीन्द्रा-
विष्णुभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्याऽऽयुषे गृह्णामि २३
प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वोदानाय मे
वर्चोदा वर्चसे पवस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व क्रतूदक्षाभ्यां मे वर्चोदा
वर्चसे पवस्व श्रोत्राय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व चक्षुर्भ्यां मे वर्चोदसौ
वर्चसे पवेथाम् २७
आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वाऽऽयुषे मे वर्चोदा
वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् २८
रूपेण वो रूपमभ्यागां तुथो वो विश्ववेदा विभजतु ।
ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा वि स्वः पश्य व्युन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः ४५
ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयꣳ सुधातुदक्षिणम् ।
अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमाविशत ४६ १३०
अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीयाऽऽयुर्दात्र एधि मयो मह्यं प्रतिग्र-
हीत्रे रुद्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय प्राणो दात्र एधि
वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे बृहस्पतये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय
त्वग्दात्र एधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे यमाय त्वा मह्यं वरुणो ददातु
सोऽमृतत्वमशीय हयो दात्र एधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ४७ १३०

॥ २१४ ॥ (वा० य० ८।९,५४–५९)

उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतिसुतस्य देव सोम त इन्दोरिन्द्रियावतः पत्नीवतो
ग्रहाँ२ ऋध्यासम् ।
अहं परस्तादहमवस्ताद्यदन्तरिक्षं तदु मे पिताभूत् ।
अहꣳ सूर्यमुभयतो ददर्शाहं देवानां परमं गुहा यत् ९
परमेष्ठ्यभिधीतः प्रजापतिर्वाचि व्याहृतायामन्धो अच्छेतः ।
सविता सन्यां विश्वकर्मा दीक्षायां पूषा सोमक्रयण्याम् ५४
इन्द्रश्च मरुतश्च क्रयायोपोत्थितोऽसुरः पण्यमानो मित्रः क्रीतो विष्णुः शिपिविष्ट
ऊरावासन्नो विष्णुर्नरन्धिषः ५५
प्रोह्यमाणः सोम आगतो वरुण आसन्द्यामासन्नोऽग्निराग्नीध्र इन्द्रो हविर्धानेऽथर्-
वोपावह्रियमाणः ५६ १३१०
विश्वे देवा अꣳशुषु न्युप्तो विष्णुराप्रीतपा आप्याय्यमानो यमः सूयमानो
विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः शुक्रः पूतः शुक्रः क्षीरश्रीर्मन्थी
सक्तुश्रीः ५७
विश्वे देवाश्चमसेषून्नीतोऽसुर्होमायोद्यतो रुद्रो हूयमानो वातोऽभ्यावृत्तो नृचक्षाः
प्रतिख्यातो भक्षो भक्ष्यमाणः पितरो नाराशꣳसाः ५८
* सन्नः सिन्धुरवभृथायोद्यतः समुद्रोऽभ्यवह्रियमाणः सलिलः प्रप्लुतो ययोरोजसा
स्कभिता रजाꣳसि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठा । या पत्येते अप्रतीता सहोभि-
र्विष्णू अगन् वरुणा पूर्वहूतौ +५९ १३१३

॥ २१५ ॥ (वा० य० ९।९–१२,२४,३१–३६)

जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीत्तो अचरच्च वाते ।
तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णुः ।
वाजिनो वाजजितो वाजꣳ सरिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत ९
देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकꣳ रुहेयम् ।
देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यसवस इन्द्रस्योत्तमं नाकꣳ रुहेयम् ।
देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकमरुहम् ।
देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यप्रसवस इन्द्रस्योत्तमं नाकमरुहम् १० १३१५

+ वा० य० ८।६० = दै० [विश्वे देवाः] १२४६ । * अथर्व० ६,९२,२ पाठभेदेन ।
१३ [दै० विश्वे देवाः]

बृहस्पते वाजं जय बृहस्पतये वाचं वदत बृहस्पतिं वाजं जापयत ।
इन्द्र वाजं जयेन्द्राय वाचं वदतेन्द्रं वाजं जापयत ११
एषा वः सा सत्या संवाग्भूद्यया बृहस्पतिं वाजमजीजपताजीजपत बृहस्पतिं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम् ।
एषा वः सा सत्या संवाग्भूद्ययेन्द्रं वाजमजीजपताजीजपतेन्द्रं वाजं० १२
वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवमिमा च विश्वा भुवनानि सम्राट् ।
अदित्सन्तं दापयति प्रजानन्त्स नो रयिꣳ सर्ववीरं नियच्छतु स्वाहा २४
अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत् तमुज्जेषमश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतां तानुज्जेषं विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रीँल्लोकानुदजयत् तानुज्जेषꣳ सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत् तानुज्जेषम् ३१
पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिश उदजयत् ता उज्जेषꣳ सविता षडक्षरेण षडृतूनुद-जयत् तानुज्जेषं मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशूनुदजयँस्तानुज्जेषं बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजयत् तामुज्जेषम् ३२ १३१०
मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतꣳ स्तोममुदजयत् तमुज्जेषं वरुणो दशाक्षरेण विराजमुद-जयत् तामुज्जेषमिन्द्र एकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत् तामुज्जेषं विश्वे देवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयँस्तामुज्जेषम् ३३
वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशꣳ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषꣳ रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशꣳ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषमादित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदशꣳ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषमदितिः षोडशाक्षरेण षोडशꣳ स्तोममुदजयत् तमुज्जेषं प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशꣳ स्तोममुदजयत् तमुज्जेषम् ३४
एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहाऽग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भ्यः स्वाहा यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चा-त्सद्भ्यः स्वाहा मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्य उत्तरासद्भ्यः स्वाहा सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्य उपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा ३५
ये देवा अग्निनेत्राः पुरःसदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा यमनेत्रा दक्षिणासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा मित्रा-वरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा वोत्तरासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवाः सोमनेत्रा [उप]रिसदो दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा ३६ १३१४

॥ २१६ ॥ (वा० य० २०।५,९,२१,२३,२८,३१)

सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात् ।
अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा
बृहस्पतये स्वाहेन्द्राय स्वाहा घोषाय स्वाहा श्लोकाय स्वाहाऽꣳशाय स्वाहा
भगाय स्वाहाऽर्यम्णे स्वाहा ५ १३२५
आविर्मर्या आवित्तो अग्निर्गृहपतिरावित्त इन्द्रो वृद्धश्रवा आवित्तौ मित्रावरुणौ
धृतव्रतावावित्तः पूषा विश्ववेदा आवित्ते द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवावा-
वित्तादितिरुरुशर्मा ९
इन्द्रस्य वज्रोऽसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि ।
अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वाऽरिष्टो अर्जुनो मरुतां प्रसवेन जयापाम मनसा
समिन्द्रियेण २१
अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहेन्द्रस्ये-
न्द्रियाय स्वाहा ।
पृथिवि मातर्मा मा हिꣳसीर्मो अहं त्वाम् २३
अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तां ब्रह्मँस्त्वं ब्रह्माऽसि सविताऽसि सत्यप्रसवो
वरुणोऽसि सत्यौजा इन्द्रोऽसि विशौजा रुद्रोऽसि सुशेवः ।
बहुकार श्रेयस्कर भूयस्करेन्द्रस्य वज्रोऽसि तेन मे रध्य २८
अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ।
वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क्सोमो अतिस्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ३१ १३३०

॥ २१७ ॥ (वा० य० ११।५८,६६)

वसवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद् ध्रुवासि पृथिव्यसि धारया मयि
प्रजाꣳ रायस्पोषं गौपत्यꣳ सुवीर्यꣳ सजातान् यजमानाय रुद्रास्त्वा
कृण्वन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वद् ध्रुवास्यन्तरिक्षमसि धारया मयि प्रजाꣳ
रायस्पोषं गौपत्यꣳ सुवीर्यꣳ सजातान् यजमानायादित्यास्त्वा कृण्वन्तु
जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद् ध्रुवासि द्यौरसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषं
गौपत्यꣳ सुवीर्यꣳ सजातान् यजमानाय विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः
कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वद् ध्रुवासि दिशोऽसि धारया मयि प्रजाꣳ
रायस्पोषं गौपत्यꣳ सुवीर्यꣳ सजातान् यजमानाय ५८ १३३१

आकूतिमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा मनो मेधामग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा चित्तं विज्ञातमग्निं
प्रयुजꣳ स्वाहा वाचो विधृतिमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा प्रजापतये मनवे
स्वाहाऽग्नये वैश्वानराय स्वाहा ६६ १३३२

॥ ११८ ॥ (वा० य० १२।४५,५४,७४)

अपेत वीत वि च सर्पतातो येऽत्र स्थ पुराणा ये च नूतनाः ।
अदाद्यमोऽवसानं पृथिव्या अक्रन्निमं पितरो लोकमस्मै ४५
लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् ।
इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ५४
सजूरब्दो अयवोभिः सजूरुषा अरुणीभिः ।
सजोषसावश्विना दꣳसोभिः सजूः सूर एतशेन सजूर्वैश्वानर इडया घृतेन स्वाहा ७४ १३३५

॥ ११९ ॥ (वा० य० १३।२,३८)

अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम् ।
वर्धमानो महाँ२ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व २
सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
घृतस्य धारा अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्ये अग्नेः ३८ १३३७

॥ १२० ॥ (वा० य० १४।९-१०,१७-१९,२३-२६)

मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विष्टम्भो वयोऽधि-
पतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो बस्तो वयो विबलं छन्दो
वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयोऽनाधृष्टं
छन्दः सिꣳहो वयश्छदिश्छन्दः पष्ठवाड् वयो बृहती छन्द उक्षा वयः
ककुप् छन्द ऋषभो वयः सतोबृहती छन्दः ९
अनड्वान् वयः पङ्क्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दस्त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो
दित्यवाड् वयो विराट् छन्दः पञ्चाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिवत्सो वय उष्णिक्
छन्दस्तुर्यवाड् वयोऽनुष्टुप् छन्दो लोकं ता इन्द्रम् १०
आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे
पाहि वाचं मे पिन्व मनो मे जिन्वाऽऽत्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ १७ १३४०
मा छन्दः प्रमा छन्दः प्रतिमा छन्दो अस्रीवयश्छन्दः पङ्क्तिश्छन्द उष्णिक्
छन्दो बृहती छन्दोऽनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप्
छन्दो जगती छन्दः १८ १३४१

पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक्
छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजाश्छन्दोऽश्वश्छन्दः १९
आशुस्त्रिवृद्भ्रान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुण एकविंशः प्रतूर्तिरष्टादश-
स्तपो नवदशोऽभीवर्त्तः सविंशो वर्चो द्वाविंशः सम्भरणस्त्रयोविंशो
योनिश्चतुर्विंशो गर्भाः पञ्चविंश ओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिंशः प्रतिष्ठा
त्रयस्त्रिंशो ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशो नाकः षट्त्रिंशो विवर्त्तोऽष्टाच-
त्वारिंशो धर्त्रं चतुष्टोमः २३
अग्नेर्भागोऽसि दीक्षाया आधिपत्यं ब्रह्म स्पृतं त्रिवृत्स्तोम इन्द्रस्य भागोऽसि
विष्णोराधिपत्यं क्षत्रं स्पृतं पञ्चदश स्तोमो नृचक्षसां भागोऽसि धातुराधि-
पत्यं जनित्रं स्पृतं सप्तदश स्तोमो मित्रस्य भागोऽसि वरुणस्याधिपत्यं
दिवो वृष्टिर्वात स्पृत एकविंश स्तोमः २४
वसूनां भागोऽसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात् स्पृतं चतुर्विंश स्तोम आदित्यानां
भागोऽसि मरुतामाधिपत्यं गर्भा स्पृताः पञ्चविंश स्तोमोऽदित्यै भागोऽसि
पूष्ण आधिपत्यमोज स्पृतं त्रिणव स्तोमो देवस्य सवितुर्भागोऽसि
बृहस्पतेराधिपत्यं समीचीर्दिश स्पृताश्चतुष्टोम स्तोमः २५ १३४५
यवानां भागोऽस्ययवानामाधिपत्यं प्रजा स्पृताश्चतुश्चत्वारिंश स्तोम ऋभूणां
भागोऽसि विश्वेषां देवानामाधिपत्यं भूतं स्पृतं त्रयस्त्रिंश स्तोमः २६ १३४६
॥ २२१ ॥ (वा० य० १५।३-१९)
षोडशी स्तोम ओजो द्रविणं चतुश्चत्वारिंश स्तोमो वर्चो द्रविणम् ।
अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभिगृणन्तु देवाः ।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणायजस्व ३
एवश्छन्दो वरिवश्छन्दः शम्भूश्छन्दः परिभूश्छन्द आच्छच्छन्दो मनश्छन्दो
व्यचश्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सरिरं छन्दः ककुप्छन्दस्त्रिककुप्छन्दः
काव्यं छन्दो अङ्कुपं छन्दोऽक्षरपङ्क्तिश्छन्दः पदपङ्क्तिश्छन्दो विष्टारप-
ङ्क्तिश्छन्दः क्षुरोभ्रजश्छन्दः ४
आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः संयच्छन्दो वियच्छन्दो बृहच्छन्दो रथन्तरञ्छन्दो
निकायश्छन्दो विवधश्छन्दो गिरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः संस्तुप्छन्दोऽनुष्टु-
प्छन्द एवश्छन्दो वरिवश्छन्दो वयश्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विष्पर्धाश्छन्दो
विशालं छन्दश्छदिश्छन्दो दूरोहणं छन्दस्तन्द्रं छन्दो अङ्काङ्कं छन्दः

रश्मिना सत्याय सत्यं जिन्व प्रेतिना धर्मणा धर्मं जिन्वान्वित्या दिवा दिवं
जिन्व सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व प्रतिधिना पृथिव्या पृथिवीं जिन्व
विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व प्रवयाह्नाहर्जिन्वानुया रात्र्या रात्रीं जिन्वोशिजा
वसुभ्यो वसूञ्जिन्व प्रकेतेनादित्येभ्य आदित्याञ्जिन्व ६ १३५०

तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्व सꣳसर्पेण श्रुताय श्रुतं जिन्वैडेनौषधी-
भिरोषधीर्जिन्वोत्तमेन तनूभिस्तनूर्जिन्व वयोधसाधीतेनाधीतं जिन्वाभिजिता
तेजसा तेजो जिन्व ७

प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा सम्पदसि सम्पदे त्वा तेजोऽसि
तेजसे त्वा ८

त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वा विवृदसि विवृते त्वा सवृदसि सवृते
त्वाक्रमोऽस्याक्रमाय त्वा संक्रमोऽसि संक्रमाय त्वोत्क्रमोऽस्युत्क्रमाय
त्वोत्क्रान्तिरस्युत्क्रान्त्यै त्वाधिपतिनोर्जोर्जं जिन्व ९

राज्ञ्यसि प्राची दिग् वसवस्ते देवा अधिपतयोऽग्निर्हेतीनां प्रतिधर्ता त्रिवृत्
त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयत्वाज्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु रथन्तरꣳ
साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया
वरिम्णा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य
पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु १०

विराडसि दक्षिणा दिग् रुद्रास्ते देवा अधिपतय इन्द्रो हेतीनां प्रतिधर्ता
पञ्चदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयतु प्र उगमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु
बृहत्साम प्रतिष्ठित्या० ११ १३५१

सम्राडसि प्रतीची दिगादित्यास्ते देवा अधिपतयो वरुणो हेतीनां प्रतिधर्ता
सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयतु मरुत्वतीयमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु
वैरूपꣳ साम प्रतिष्ठित्या० १२

स्वराडस्युदीची दिङ्मरुतस्ते देवा अधिपतयः सोमो हेतीनां प्रतिधर्तैकविꣳ-
शस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयतु निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु
वैराजꣳ साम प्रतिष्ठित्या० १३ १३५७

अधिपत्न्यसि बृहती दिग् विश्वे ते देवा अधिपतयो बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्ता
त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्वा स्तोमौ पृथिव्याꣳ श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे
अव्यथायै स्तभ्नीताꣳ शाक्वररैवते सामनी प्रतिष्ठित्या० १४
अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ ।
पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः पौरुषेयो वधः
प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च
नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः १५
अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ ।
मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ यातुधाना हेती रक्षाꣳसि प्रहेतिस्तेभ्यो० १६ १३६०
अयं पश्चाद्विश्वव्यचास्तस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानीग्रामण्यौ ।
प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ व्याघ्रा हेतिः सर्पाः प्रहेतिस्तेभ्यो० १७
अयमुत्तरात् संयद्वसुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामण्यौ ।
विश्वाची च घृताची चाप्सरसावापो हेतिर्वातः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु० १८
अयमुपर्यर्वाग्वसुस्तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ ।
उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसाववस्फूर्जन् हेतिर्विद्युत् प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु० १९ १३६३

॥ २२२ ॥ (वा० य० १७।४८,५२)+

यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तन्न इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ४८
यस्य कुर्मो गृहे हविस्तमग्ने वर्धया त्वम् । तस्मै देवा अधिब्रुवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः ५२ १३६५

॥ २२३ ॥ (वा० य० १८।३७)

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ३७ १३६६

॥ २२४ ॥ (वा० य० २०।३,१३,१७-१८)

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभि षिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्याया-
न्नाद्यायाभि षिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभि षिञ्चामि ३ १३६७

+ वा० य० १७,४९ = ऋ० ६,७५,१८; दै० [विश्वे देवाः] ११४९, सा० १८७० ।

लोमा॑नि॒ प्रय॑ति॒र्मम॒ त्वङ् म॒ आन॑ति॒राग॑तिः ।
मा॒ꣳसं म॒ उप॑नति॒र्वस्व॒स्थि म॒ज्जा म॒ आन॑तिः १३
यद् ग्रामे॒ यदर॑ण्ये॒ यत् स॒भायां॒ यदि॑न्द्रि॒ये ।
यच्छू॒द्रे यद॒र्ये यदेन॑श्चकृ॒मा व॒यं यदेक॒स्याधि॒ धर्म॑णि॒ तस्याव॒यज॑नमसि १७
यदापो॑ अ॒घ्न्या इति॒ वरु॒णेति॒ शपा॑महे॒ ततो॑ वरुण नो मुञ्च ।
अव॑भृथ निचुम्पुण निचे॒रुर॑सि निचुम्पु॒णः ।
अव॑ दे॒वैर्दे॒वकृ॑त॒मेनो॑ऽयक्ष्य॒व॒ मर्त्यै॒र्मर्त्य॑कृतं पुरु॒राव्णो॑ देव रि॒षस्पा॑हि १८ १३७०

॥ २२५ ॥ (वा० य० २१।४१-४३,६०-६१) ×

होता॑ यक्षद॒श्विनौ॒ छाग॑स्य व॒पाया॒ मेद॑सो जु॒षता॑ꣳ ह॒विर्हो॑त॒र्यज॑ ।
होता॑ यक्ष॒त् सर॑स्वतीं मे॒षस्य॑ व॒पाया॒ मेद॑सो जु॒षता॑ꣳ ह॒विर्हो॑त॒र्यज॑ ।
होता॑ यक्ष॒दिन्द्र॑मृष॒भस्य॑ व॒पाया॒ मेद॑सो जु॒षता॑ꣳ ह॒विर्हो॑त॒र्यज॑ ४१
होता॑ यक्षद॒श्विनौ॒ सर॑स्वती॒मिन्द्र॑ꣳ सु॒त्रामा॑णमि॒मे सोमाः॑ सु॒रामा॑ण॒श्छागै॒र्न
मे॒षैर्ऋ॑ष॒भैः सु॒ताः शष्पै॒र्न तोक्म॑भिर्ला॒जैर्मह॑स्वन्तो॒ मदा॒ मास॑रेण॒ परि॑ष्कृताः
शु॒क्राः पय॑स्वन्तो॒ऽमृताः॒ प्रस्थि॑ता वो मधु॒श्चुत॒स्तान॒श्विना॒ सर॑स्वतीन्द्रः॑
सु॒त्रामा॑ वृत्र॒हा जु॒षन्ता॑ꣳ सो॒म्यं मधु॒ पिब॑न्तु॒ मद॑न्तु॒ व्यन्तु॒ होत॒र्यज॑ ४२
होता॑ यक्षद॒श्विनौ॒ छाग॑स्य ह॒विष॒ आत्ता॑म॒द्य म॑ध्य॒तो मेद॒ उद्भृ॑तं पु॒रा द्वेषो॑भ्यः
पु॒रा पौरु॑षेय्या गृ॒भो घस्तां॑ नू॒नं घा॒से अ॑ज्रा॒णां॒ यव॑सप्रथमाना॒ꣳ सु॒मत्क्ष॑राणा॒ꣳ
शतरु॒द्रिया॑णामग्निष्वा॒त्ताना॒ं पीवो॑पवसनानां पार्श्व॒तः श्रो॑णि॒तः शि॑ताम॒त
उ॑त्सा॒द॒तोऽङ्गा॑दङ्गा॒दव॑त्ताना॒ं कर॑त ए॒वाश्विना॑ जु॒षेता॑ꣳ ह॒विर्हो॑त॒र्यज॑ ४३
सू॒प॒स्था अ॒द्य दे॒वो वन॒स्पति॑रभवद॒श्विभ्यां॒ छागे॑न॒ सर॑स्वत्यै मे॒षेणेन्द्रा॑य
ऋष॒भेणाक्ष॒ꣳस्तान् मेद॒स्तः प्रति॑ पच॒ताग्र॑भीषता॒वीवृ॑धन्त पुरो॒डाशै॒रपु॑र॒श्विना॑
सर॑स्वतीन्द्रः॑ सु॒त्रामा॑ सुरासो॒मान् ६०
त्वाम॒द्य ऋ॑ष आर्षेय ऋषीणां नपादवृणीता॒यं यज॑मानो ब॒हुभ्य॒ आ सङ्ग॑तेभ्य
ए॒ष मे॑ दे॒वेषु॒ वसु॒ वार्याय॑क्ष्यत॒ इति॒ ता या दे॒वा दे॑व॒ दाना॒न्यदु॒स्तान्य॑स्मा
आ च॒ शास्स्वा च॑ गुरस्वेषि॒तश्च॑ होत॒रसि॑ भद्र॒वाच्या॑य॒ प्रेषि॑तो॒ मानु॑षः
सूक्त॒वाकाय॑ सू॒क्ता ब्रू॑हि ६१ १३७५

× वा० य० २१,२३-२८ = दै० [अदितिः०] ९४०-९४५ ।

॥ २२६ ॥ (वा० य० २३।८,१३,१८-२०,२६-२७,६३)

वसवस्त्वाञ्जन्तु गायत्रेण छन्दसा रुद्रास्त्वाञ्जन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽऽदित्यास्त्वाञ्जन्तु
जागतेन छन्दसा ।
भूर्भुवःस्वर्लाजी३ञ्छाची३न्यव्ये गव्य एतदन्नमत्त देवा एतदन्नमद्धि प्रजापते　८
वायुष्ट्वा पचतैरवत्वसितग्रीवश्छागैर्न्यग्रोधश्चमसैः शल्मलिर्वृद्ध्या ।
एष स्य राथ्यो वृषा पड्भिश्चतुर्भिरेदगन् ब्रह्माऽकृष्णश्च नोऽवतु नमोऽग्नये　१३
प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा ।
अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन ।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्　१८
गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां
त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम ।
आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्　१९
ता उभौ चतुरः पदः संप्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा
रेतो दधातु　२०　१३८०
ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय गिरौ भारꣳ हरन्निव । अथास्यै मध्यमेधताꣳ शीते वाते पुनन्निव २६
ऊर्ध्वमेनमुच्छ्रयताद्गिरौ भारꣳ हरन्निव । अथास्य मध्यमेजतु शीते वाते पुनन्निव २७
सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे ।
दधे ह गर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः　६३　१३८३

॥ २२७ ॥ (वा० य० २६।१-२)

अग्निश्च पृथिवी च सन्नते ते मे सं नमतामदो वायुश्चाऽन्तरिक्षं च सन्नते ते
मे सं नमतामद आदित्यश्च द्यौश्च सन्नते ते मे सं नमतामद आपश्च वरुणश्च
सन्नते ते मे सं नमतामदः ।
सप्त सꣳसदो अष्टमी भूतसाधनी सकामाँ२ अध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मेऽमुना　१
यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।
ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च ।
प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु २　१३८५

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय
छागम् ।
सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय छागेन ।
अघत्तं मेदुस्तः प्रति पचताग्रभीदवीवृधत् पुरोडाशेन । त्वामद्य ऋषे २३
देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत् ।
द्विपदा छन्दसेन्द्रियं भगमिन्द्रे वयो दधद् वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ४३ १३८७

॥ २२९ ॥ (वा० य० २९।४७)

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ४७ १३८८

॥ २३० ॥ (वा० य० ३२।१५) ×

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः ।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा १५ १३८९

॥ २३१ ॥ (वा० य० ३५।३,११) *

वायुः पुनातु सविता पुनात्वग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसा ।
वि मुच्यन्तामुस्रियाः ३ १३९०
अपाघमप किल्बिषमप कृत्यामपो रपः । अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्यꣳ सुव ११ १३९१

॥ २३२ ॥ (वा० य० ३६।१)

ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये साम प्राणं प्र पद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्र पद्ये ।
वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ १ १३९२

॥ २३३ ॥ (वा० य० ३८।४,१५)

अश्विभ्यां पिन्वस्व सरस्वत्यै पिन्वस्वेन्द्राय पिन्वस्व ।
स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् ४
स्वाहा पूष्णे शरसे स्वाहा ग्रावभ्यः स्वाहा प्रतिरवेभ्यः ।
स्वाहा पितृभ्य ऊर्ध्वबर्हिर्भ्यो घर्मपावभ्यः स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याꣳ
स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः १५ १३९४

× वा० य० ३३,५७-५८ = दै० [अदितिः०] १९६; सा० ८४७; दै० [अश्विनौ] ३ । वा० य० ३४,४६ = दै० [विश्वे देवाः] ८०८ ।
* वा० य० ३५,४ = दै० [आयुर्वेद०] ३०५ ।

॥ २३४ ॥ (सा० २९९)

(१३९५-९७) वामदेवो गौतमः । बहुः । बृहती ।

त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः　२९९ १३९५

॥ २३५ ॥ (सा० ५९१) एकपाज्जगती ।

इमं वृषणं कृणुतैकमिन्माम्　५९१ १३९६

॥ २३६ ॥ (सा० ६११) महापङ्क्तिः ।

यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती ।
यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रतिमुच्यताम् ।
यशसा३ऽस्याः संसदोऽहं प्रवदिता स्याम्　६११ १३९७

॥ २३७ ॥ (सा० ३६८)

(१३९८) त्रित आप्त्यः । अनुष्टुप् ।

अमी ये देवा स्थन मध्य आ रोचने दिवः ।
कद्व ऋतं कदमृतं का प्रत्ना व आहुतिः　३६८ १३९८

॥ २३८ ॥ (सा० ४४२)

(१३९९) त्रसदस्युः । द्विपदा विराट् ।

सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरेपसः　४४२ १३९९

॥ २३९ ॥ (सा० ४५३)

(१४००) कवष ऐलूषः । द्विपदा विराट् ।

वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः　४५३ १४००

॥ २४० ॥ (सा० ४५५)

(१४०१) आत्रेयः । द्विपदा विराट् ।

ऊर्जा मित्रो वरुणः पिन्वतेडाः पीवरीमिषं कृणुही न इन्द्र　४५५ १४०१

॥ २४१ ॥ (सा० १५०३-४) *

(१४०२-३) अग्निस्तापसः । अनुष्टुप् ।

अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्जोषि ब्रह्म सहस्कृत ।
ये देवत्रा य आयुषु तेभिर्नो महया गिरः　१५०३ १४०२

---

* सा १५०५ = दै० [विश्वेदेवाः] ८११ ।

प्र स विश्वेभिरग्निभिरग्निः स यस्य वाजिनः ।
तनये तोके अस्मदा सम्यङ्वाजैः परीवृतः १५०४ १४०३

॥ २४२ ॥ (सा० १८७२)

(१४०४) पायुर्भारद्वाजः । अनुष्टुप् ।

यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरं शर्म वर्म ममान्तरम् १८७२ १४०४

नानादेवताः ।

॥ २४३ ॥ (वा० य० ९।२०)

आपये स्वाहा स्वापये स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहा
ऽहर्पतये स्वाहाऽह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनंशिनाय स्वाहा
विनंशिन आन्त्यायनाय स्वाहाऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहा
ऽधिपतये स्वाहा ॥ २० ॥ १४०५-१६

॥ २४४ ॥ (वा० य० १०।५)

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा
बृहस्पतये स्वाहेन्द्राय स्वाहा घोषाय स्वाहा श्लोकाय स्वाहाऽंशाय स्वाहा
भगाय स्वाहाऽर्यम्णे स्वाहा ॥ ५ ॥ १४१७-२८

॥ २४५ ॥ (वा० य० ११।६०,६५)

वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्व-
दादित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन
छन्दसाङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयतु वरुणस्त्वा धूपयतु विष्णुस्त्वा धूपयतु ॥ ६० ॥
१४१९-३५

वसवस्त्वाऽऽच्छृन्दन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वाऽऽच्छृन्दन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्व-
दादित्यास्त्वाऽऽच्छृन्दन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा
आच्छृन्दन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ ६५ ॥ १४३६-३९

॥ २४६ ॥ (वा० य० १४।२८–३१)

एकयास्तुवत प्रजा अधीयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत् तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्पति-
रधिपतिरासीत् पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत् सप्तभिरस्तुवत सप्त
ऋषयोऽसृज्यन्त धाताऽधिपतिरासीत् ॥२८॥ १४४०–४३

नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपत्न्यासी॒देकादशभिरस्तुवत ऋतवोऽसृज्यन्तार्तवा अधि-
पतय आसँ॒स्त्रयोदशभिरस्तुवत मासा असृज्यन्त संवत्सरोऽधिपतिरासीत् पञ्चदशभिरस्तुवत
क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरासीत् सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त बृहस्पतिरधिपति-
रासीत् ॥२९॥ १४४४–४८

नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्यावसृज्येतामहोरात्रे अधिपत्नी आस्ता॒मेकविꣳशत्यास्तुवतैकशफाः पशवो
ऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत् त्रयोविꣳशत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोऽसृज्यन्त पूषाऽधिपतिरासीत्
पञ्चविꣳशत्यास्तुवतारण्याः पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत् सप्तविꣳशत्यास्तुवत द्यावापृथिवी
व्यैतां वसवो रुद्रा आदित्या अनुव्यायँस्त एवाधिपतय आसन् ॥ ३० ॥ १४४९–५३

नवविꣳशत्यास्तुवत वनस्पतयोऽसृज्यन्त सोमोऽधिपतिरासी॒देकत्रिꣳशतास्तुवत प्रजा असृज्यन्त
यवाश्चायवाश्चाधिपतय आसँ॒स्त्रयस्त्रिꣳशतास्तुवत भूतान्यशाम्यन् प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरा-
सीत् ॥३१॥ १४५४–५६

॥ २४७ ॥ (वा० य० १८।१६–१८,२२)

अग्निश्च म इन्द्रश्च मे सोमश्च म इन्द्रश्च मे सविता च म इन्द्रश्च मे सरस्वती च म इन्द्रश्च मे
पूषा च म इन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च म इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१६॥

मित्रश्च म इन्द्रश्च मे वरुणश्च म इन्द्रश्च मे धाता च म इन्द्रश्च मे त्वष्टा च म इन्द्रश्च मे
मरुतश्च म इन्द्रश्च मे विश्वे च मे देवा इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १७ ॥

पृथिवी च म इन्द्रश्च मे ऽन्तरिक्षं च म इन्द्रश्च मे द्यौश्च म इन्द्रश्च मे समाश्च म इन्द्रश्च मे
नक्षत्राणि च म इन्द्रश्च मे दिशश्च म इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१८॥

अग्निश्च मे घर्मश्च मे ऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मे ऽश्वमेधश्च मे पृथिवी च मे
ऽदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च मे ऽङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२२॥
१४५७–८५

॥ १४८ ॥ (वा० य० २२।५-८,१०,११-३४)

प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि
विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि ।
यो अर्वन्तं जिघांसति तमभ्यमीति वरुणः ॥५॥ १४८६-९१

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहाऽपां मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा
विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा
॥६॥ १४९२-१५०१

हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा
प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा
सन्दिताय स्वाहा वल्गते स्वाहाऽऽसीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा
जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृताय स्वाहा
संहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहाऽऽयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥७॥ १५०२-२५

यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा
निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्तमानाय स्वाहा
विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा
शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा
यदत्ति तस्मै स्वाहा यत् पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा
कृताय स्वाहा ॥८॥ १५२६-५०

काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहाऽऽधिमाधीताय स्वाहा मनः
प्रजापतये स्वाहा चित्तं विज्ञातायाऽदित्यै स्वाहाऽदित्यै मह्यै स्वाहाऽदित्यै
सुमृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा
पूष्णे स्वाहा पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा
त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा विष्णवे स्वाहा विष्णवे निभूयपाय स्वाहा
विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा ॥२०॥ १५५१-७१

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो
जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य
यजमानस्य वीरो जायतां निकामेनिकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां
योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥२२॥ १५७२

प्राणाय स्वाहा ऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा
वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥२३॥ १५७३-७९

प्राच्यै दिशे स्वाहा ऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहा ऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा
प्रतीच्यै दिशे स्वाहा ऽर्वाच्यै दिशे स्वाहो—दीच्यै दिशे स्वाहा ऽर्वाच्यै दिशे स्वाहो—
र्ध्वायै दिशे स्वाहा ऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा ऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा ऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा
॥२४॥ १५८०-९१

अद्भ्यः स्वाहा वार्भ्यः स्वाहो—दकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा स्रवन्तीभ्यः स्वाहा
स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहा सूद्याभ्यः स्वाहा धार्याभ्यः स्वाहा
ऽर्णवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरिराय स्वाहा ॥२५॥ १५९२-१६०३

वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहा ऽभ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा
स्तनयते स्वाहा ऽवस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहा ऽववर्षते स्वाहो—ग्रं वर्षते स्वाहा
शीघ्रं वर्षते स्वाहो—द्गृह्णते स्वाहो—द्गृहीताय स्वाहा प्रुष्णते स्वाहा शीकायते स्वाहा
प्रुष्वाभ्यः स्वाहा ह्रादुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा ॥२६॥ १६०४-२१

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहे—न्द्राय स्वाहा पृथिव्यै स्वाहा ऽन्तरिक्षाय स्वाहा
दिवे स्वाहा दिग्भ्यः स्वाहा ऽऽशाभ्यः स्वाहो—र्व्यै दिशे स्वाहा ऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा
॥२७॥ १६२२-३१

नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा ऽहोरात्रेभ्यः स्वाहा ऽर्धमासेभ्यः स्वाहा
मासेभ्यः स्वाहा ऋतुभ्यः स्वाहा ऽऽर्तवेभ्यः स्वाहा संवत्सराय स्वाहा
द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा
वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहा ऽऽदित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा
विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा
पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौ—षधीभ्यः स्वाहा ॥२८॥ १६३२-५४

पृथिव्यै स्वाहा ऽन्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा
नक्षत्रेभ्यः स्वाहा ऽद्भ्यः स्वाहौ—षधीभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा
परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा ॥२९॥ १६५५-६६

असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा
गणपतये स्वाहा ऽभिभुवे स्वाहा ऽधिपतये स्वाहा शूषाय स्वाहा
सꣳसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा
दिवा पतयते स्वाहा ॥३०॥ १६६७-८०
मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा
नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा
तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहा ऽꣳहसस्पतये स्वाहा ॥३१॥ १६८१-९३
वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहा ऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा स्वः स्वाहा
मूर्ध्ने स्वाहा व्यश्नुविने स्वाहा ऽन्त्याय स्वाहा ऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा
भुवनस्य पतये स्वाहा ऽधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ॥३२॥ १६९४-१७०५
आयुर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा प्राणो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा ऽपानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा
व्यानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहोदानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा समानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा
चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा वाग्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा
मनो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा ऽऽत्मा यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा
ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा स्वर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा पृष्ठं यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा
यज्ञो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा ॥३३॥ १७०६-२१
एकस्मै स्वाहा द्वाभ्याꣳ स्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा
स्वर्गाय स्वाहा ॥३४॥ १७२२-२७

॥ २४९ ॥ (वा० य० २४।१-४०)

अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः कृष्णग्रीव आग्नेयो रराटे पुरस्तात्
सारस्वती मेष्यधस्ताद्धन्वोराश्विनावधोरामौ बाह्वोः सौमापौष्णः श्यामो नाभ्याꣳ
सौर्ययामौ श्वेतश्च कृष्णश्च पार्श्वयोस्त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ सक्थ्योर्वायव्यः श्वेतः पुच्छ
इन्द्राय स्वपस्याय वेहद्वैष्णवो वामनः ॥१॥ १७२८-३७
रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते सौम्या बभ्रुररुणबभ्रुः शुकबभ्रुस्ते वारुणाः
शितिरन्ध्रोऽन्यतःशितिरन्ध्रः समन्तशितिरन्ध्रस्ते सावित्राः शितिबाहुरन्यतःशितिबाहुः
समन्तशितिबाहुस्ते बार्हस्पत्याः पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्यः ॥२॥ १७३८-४२
शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त आश्विनाः श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये
कर्णा यामा अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः ॥३॥ १७४३-४७

पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षी ताः सारस्वत्यः
प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णस्ते त्वाष्ट्राः कृष्णग्रीवः शितिकक्षोऽञ्जिसक्थस्त ऐन्द्राग्नाः
कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्त उषस्याः ॥ ४ ॥ १७४८-५२

शिल्पा वैश्वदेव्यो रोहिण्यस्त्र्यवयो वाचे ऽविज्ञाता आदित्यै सरूपा धात्रे
वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥ ५ ॥ १७५३-५७

कृष्णग्रीवा आग्नेयाः शितिभ्रवो वसूनां रोहिता रुद्राणां
श्वेता अवरोकिण आदित्यानां नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ ६ ॥ १७५८-६२

उन्नत ऋषभो वामनस्त ऐन्द्रावैष्णवा उन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठस्त ऐन्द्राबार्हस्पत्याः
शुकरूपा वाजिनाः कल्माषा आग्निमारुताः श्यामाः पौष्णाः ॥ ७ ॥ १७६३-६७

एता ऐन्द्राग्ना द्विरूपा अग्नीषोमीया वामना अनड्वाह आग्नावैष्णवा वशा मैत्रावरुण्यो
ऽन्यत एन्यो मैत्र्यः ॥ ८ ॥ १७६८-७२

कृष्णग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्याः श्वेता वायव्याः अविज्ञाता अदित्यै
सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥ ९ ॥ १७७३-७८

कृष्णा भौमा धूम्रा आन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्याः शबला वैद्युताः सिध्मास्तारकाः ॥१०॥
१७७९-८३

धूम्रान् वसन्तायालभते श्वेतान् ग्रीष्माय कृष्णान् वर्षाभ्यो ऽरुणाञ्छरदे
पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिशिराय ॥ ११ ॥ १७८४-८९

त्र्यवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्सा अनुष्टुभे
तुर्यवाह उष्णिहे ॥ १२ ॥ १७९०-९४

पष्ठवाहो विराज उक्षाणो बृहत्या ऋषभाः ककुभे ऽनड्वाहः पङ्क्त्यै
धेनवोऽतिच्छन्दसे ॥ १३ ॥ १७९५-९९

कृष्णग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्या उपध्वस्ताः सावित्रा वत्सतर्यः सारस्वत्यः
श्यामाः पौष्णाः पृश्नयो मारुता बहुरूपा वैश्वदेवा वशा द्यावापृथिवीयाः ॥ १४ ॥
१८००-१८०७

१५ दै० [विश्वे देवाः]

उक्ताः सञ्चरा एताः ऐन्द्राग्नाः कृष्णा वारुणाः पृश्नयो मारुताः कायास्तूपराः ॥ १५ ॥ १८०८-१८११

अग्नयेऽनीकवते प्रथमजानालभते मरुद्भ्यः सान्तपनेभ्यः सवात्यान् मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यो बष्किहान् मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः सꣳसृष्टान् मरुद्भ्यः स्वतवद्भ्यो ऽनुसृष्टान् ॥ १६ ॥ १८१२-१७

उक्ताः सञ्चरा एता ऐन्द्राग्नाः प्राशृङ्गा माहेन्द्रा बहुरूपा वैश्वकर्मणाः ॥ १७ ॥ १८१८-२१

धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितृणाꣳ सोमवतां बभ्रवो धूम्रनीकाशाः पितृणां बर्हिषदां कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितृणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः ॥ १८ ॥ १८२२-२५

उक्ताः सञ्चरा एताः शुनासीरीयाः श्वेता वायव्याः श्वेताः सौर्याः ॥ १९ ॥ १८२६-२९

वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान् वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्तिका हेमन्ताय ककरा ञ्छिशिराय विककरान् ॥ २० ॥ १८३०-३५

समुद्राय शिशुमारानालभते पर्जन्याय मण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान् मित्राय कुलीपयान् वरुणाय नाक्रान् ॥ २१ ॥ १८३६-४०

सोमाय हꣳसानालभते वायवे बलाका इन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान् मित्राय मद्गून् वरुणाय चक्रवाकान् ॥ २२ ॥ १८४१-४५

अग्नये कुटरूनालभते वनस्पतिभ्य उलूकानग्नीषोमाभ्यां चाषानश्विभ्यां मयूरान् मित्रावरुणाभ्यां कपोतान् ॥ २३ ॥ १८४६-५०

सोमाय लबानालभते त्वष्ट्रे कौलीकान् गोषादीर्देवानां पत्नीभ्यः कुलीका देवजामिभ्यो ऽग्नये गृहपतये पारुष्णान् ॥ २४ ॥ १८५१-५५

अह्ने पारावतानालभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः सन्धिभ्यो जतूर्मासेभ्यो दात्यौहान्त्संवत्सराय महतः सुपर्णान् ॥ २५ ॥ १८५६-६१

भूम्या आखूनालभते ऽन्तरिक्षाय पाङ्क्त्रान् दिवे कशान् दिग्भ्यो नकुलान्
बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः ॥ २६ ॥ १८६१-६६

वसुभ्य ऋश्यानालभते रुद्रेभ्यो रुरू—नादित्येभ्यो न्यङ्कून् विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषता—
—न्त्साध्येभ्यः कुलुङ्गान् ॥ २७ ॥ १८६७-७१

ईशानाय परस्वत आलभते मित्राय गौरान् वरुणाय महिषान्
बृहस्पतये गवयाँ—स्त्वष्ट्र उष्ट्रान् ॥ २८ ॥ १८७२-७६

प्रजापतये पुरुषान् हस्तिन आलभते वाचे प्लुषीँ—श्चक्षुषे मशका—
—ञ्छ्रोत्राय भृङ्गाः ॥ २९ ॥ १८७७-८०

प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो
यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहि—दृषभाय गवयी
क्षिप्रश्येनाय वर्तिका नीलङ्गोः कृमिः समुद्राय शिशुमारो
हिमवते हस्ती ॥ ३० ॥ १८८१-९०

मयुः प्राजापत्य उलो हलिक्ष्णो वृषदꣳ शस्ते धात्रे दिशां कङ्को
धुङ्क्षाऽऽग्नेयी कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा वाचे क्रुञ्चः ॥ ३१ ॥
१८९१-९८

सोमाय कुलुङ्ग आरण्योऽजो नकुलः शका ते पौष्णाः क्रोष्टा मायो—रिन्द्रस्य गौरमृगः
पिद्वो न्यङ्कुः कक्कटस्तेऽनुमत्यै प्रतिश्रुत्कायै चक्रवाकः ॥ ३२ ॥ १८९९-१९०४

सौरी बलाका शार्गः सृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक्
श्वाविद् भौमी शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे
सरस्वते शुकः पुरुषवाक् ॥ ३३ ॥ १९०५-१९१०

सुपर्णः पार्जन्य आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये पैङ्गराजो
ऽलज आन्तरिक्षः प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये
द्यावापृथिवीयः कूर्मः ॥ ३४ ॥ १९११-१९१६

पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां
कृकवाकुः सावित्रो हꣳसो वातस्य नाक्रो मकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्य
ह्रियै शल्यकः ॥ ३५ ॥ १९१७-२२

❀

एण्यह्नो मण्डूको मूषिका तित्तिरिस्ते सर्पाणां लोपाश आश्विनः कृष्णो रात्र्या
ऋक्षो जतूः सुषिलीका त इतरजनानां जहका वैष्णवी ॥ ३६ ॥ १९२३-२८

अन्यवापोऽर्धमासाना मृश्यो मयूरः सुपर्णस्ते गन्धर्वाणा मपामुद्रो मासां कश्यपो
रोहित् कुण्डृणाची गोलत्तिका तेऽप्सरसां मृत्यवेऽसितः ॥ ३७ ॥ १९२९-३४

वर्षाहूर्ऋतूना माखुः कशो मान्थालस्ते पितृणां बलायाजगरो वसूनां कपिञ्जलः
कपोत उलूकः शशस्ते निर्ऋत्यै वरुणायारण्यो मेषः ॥ ३८ ॥ १९३५-४०

श्वित्र आदित्याना मुष्ट्रो घृणीवान् वार्ध्रीनसस्ते मत्या अरण्याय सृमरो रुरू रौद्रः
क्वयिः कुटरुर्दात्यौहस्ते वाजिनां कामाय पिकः ॥ ३९ ॥ १९४१-४६

खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसा मिन्द्राय सूकरः
सिꣳहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतः ॥ ४० ॥
१९४७-५२

॥ १५० ॥ (वा० य० २५।१-९)

शादं दद्भि रवकां दन्तमूलै मृदं बर्स्वै स्तेगान् दꣳष्ट्राभ्याꣳ सरस्वत्या अग्रजिह्वं
जिह्वाया उत्साद मवक्रन्देन तालु वाजꣳ हनुभ्या मप आस्येन वृषणमाण्डाभ्या
मादित्याँ श्मश्रुभिः पन्थानं भ्रूभ्यां द्यावापृथिवी वर्त्तोभ्यां विद्युतं कनीनकाभ्याꣳ
शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा पार्याणि पक्ष्माण्य वार्या इक्षवो ऽवार्याणि पक्ष्माणि
पार्या इक्षवः ॥१॥ १९५३-७२

वातं प्राणेना ऽपानेन नासिके उपयाममधरेणौष्ठेन सदुत्तरेण प्रकाशेनान्तर
मनूकाशेन बाह्यं निवेष्यं मूर्ध्ना स्तनयित्नुं निर्बाधेना ऽशनिं मस्तिष्केण
विद्युतं कनीनकाभ्यां कर्णाभ्याꣳ श्रोत्रꣳ श्रोत्राभ्यां कर्णौ तेदनीमधरकण्ठेना
ऽपः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभि रदितिꣳ शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जर्जल्येन शीर्ष्णा
सꣳक्रोशैः प्राणान् रेष्माणꣳ स्तुपेन ॥२॥ १९७३-९०

मशकान् केशै रिन्द्रꣳ स्वपसा वहेन बृहस्पतिꣳ शकुनिसादेन कूर्माञ्छफै
राक्रमणꣳ स्थूराभ्या मृक्षलाभिः कपिञ्जला ञ्जवं जङ्घाभ्या मध्वानं बाहुभ्यां
जाम्बीलेनारण्य मग्निमतिरुग्भ्यां पूषणं दोर्भ्या मश्विनावꣳसाभ्याꣳ रुद्रꣳ रोराभ्याम् ॥३॥
१९९१-२००३

अग्नेः पक्षति—र्वायोर्निपक्षति—रिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थ्य—दित्यै पञ्चमी—
—न्द्राण्यै षष्ठी मरुताᳬं सप्तमी बृहस्पतेरष्टम्य—र्यम्णो नवमी धातुर्दशमी—
—न्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी ॥ ४ ॥ २००४-२०१६

इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षति—मित्रस्य तृतीया
ऽपां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्य—ग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणाᳬं सप्तमी
विष्णोरष्टमी पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमी—न्द्रस्यैकादशी
वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं
विश्वेषां देवानामुत्तरम् ॥ ५ ॥ २०१७-३१

मरुताᳬं स्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीया
ऽऽदित्यानां तृतीया वायोः पुच्छ—मग्नीषोमयोर्भासदौ
कुञ्चौ श्रोणिभ्या—मिन्द्राबृहस्पती ऊरुभ्यां
मित्रावरुणावल्गाभ्या—माक्रमणᳬं स्थूराभ्यां बलं कुष्ठाभ्याम् ॥६॥ २०३२-४२

पूषणं वनिष्ठुना ऽन्धाहीन्त्स्थूलगुदया सर्पान् गुदाभि—र्विह्रुत आन्त्रै—रपो बस्तिना
वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनᳬं शेपेन प्रजाᳬं रेतसा चाषान् पित्तेन प्रदरान् पायुना
कूश्माञ्छकपिण्डैः ॥७॥ २०४३-५३

इन्द्रस्य-क्रोडो ऽदित्यै पाजस्यं दिशां जत्रवो ऽदित्यै भस—
—ज्जीमूतान् हृदयौपशेना—ऽन्तरिक्षं पुरीतता नभ उदर्येण चक्रवाकौ मतस्नाभ्यां
दिवं वृक्काभ्यां गिरीन् प्लाशिभि—रुपलान् प्लीह्ना
वल्मीकान् क्लोमभि—र्ग्लौभिर्गुल्मान् हिराभिः स्रवन्ती—र्ह्रदान् कुक्षिभ्याᳬं
समुद्रमुदरेण वैश्वानरं भस्मना ॥८॥ २०५४-७०

विधृतिं नाभ्या घृतᳬं रसेना—ऽपो यूष्णा मरीचिर्विप्रुड्भि—र्नीहारमूष्मणा
शीनं वसया प्रुष्वा अश्रुभि—र्ह्रादुनीर्दूषीकाभि—रस्ना रक्षाᳬंसि चित्राण्यङ्गै—
—र्नक्षत्राणि रूपेण पृथिवीं त्वचा जुम्बकाय स्वाहा ॥९॥ २०७१-८३

॥ २५१ ॥ (वा० य० २९।५८-६०)

आग्नेयः कृष्णग्रीवः सारस्वती मेषी बभ्रुः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः
शिल्पो वैश्वदेव ऐन्द्रोऽरुणो मारुतः कल्माष ऐन्द्राग्नः सᳬंहितो
ऽधोरामः सावित्रो वारुणः कृष्ण एकशितिपात् पेत्वः ॥५८॥ २०८४-९४

अग्नयेऽनीकवते रोहिताञ्जिरनड्वा नधोरामौ सावित्रौ पौष्णौ रजतनाभी
वैश्वदेवौ पिशङ्गौ तूपरौ मारुतः कल्माष आग्नेयः कृष्णोऽजः सारस्वती मेषी
वारुणः पेत्वः ॥५९॥ १०९५-११०२

अग्नये गायत्राय त्रिवृते राथन्तरायाष्टाकपाल इन्द्राय त्रैष्टुभाय पञ्चदशाय
बार्हतायैकादशकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो द्वादशकपालो
मित्रावरुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविꣳशाभ्यां वैराजाभ्यां पयस्या बृहस्पतये पाङ्क्ताय
त्रिणवाय शाक्वराय चरुः सवित्र औष्णिहाय त्रयस्त्रिꣳशाय रैवताय द्वादशकपालः
प्राजापत्यश्चरु रदित्यै विष्णुपत्न्यै चरु रग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालो ऽनुमत्या
अष्टाकपालः ॥६०॥ ११०३-१११२

॥ १५२ ॥ (वा० य० ३०।५-२२)

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे तस्करं
नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीब माक्रयाया अयोगूं कामाय पुंश्चलू
मतिक्रुष्टाय मागधम् ॥५॥ १११३-२२

नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं नरिष्ठायै भीमलं नर्माय रेभꣳ
हसाय कारि मानन्दाय स्त्रीषखं प्रमदे कुमारीपुत्रं मेधायै रथकारं
धैर्याय तक्षाणम् ॥६॥ ११२३-३२

तपसे कौलालं मायायै कर्मारꣳ रूपाय मणिकारꣳ शुभे वपꣳ शरव्याया इषुकारꣳ
हेत्यै धनुष्कारं कर्मणे ज्याकारं दिष्टाय रज्जुसर्जं मृत्यवे मृगयु
मन्तकाय श्वनिनम् ॥७॥ ११३३-४२

नदीभ्यः पौञ्जिष्ठ मृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं
गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यं प्रयुग्भ्य उन्मत्तꣳ सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपद
मयेभ्यः कितव मीर्यताया अकितवं पिशाचेभ्यो बिदलकारीं
यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम् ॥८॥ ११४३-५२

सन्धये जारं गेहायोपपति मार्त्यै परिवित्तं निर्ऋत्यै परिविविदान मराध्या एदिधिषुःपतिं
निष्कृत्यै पेशस्कारीꣳ संज्ञानाय स्मरकारीं प्रकामोद्यायोपसदं
वर्णायानुरुधं बलायोपदाम् ॥९॥ ११५३-६२

उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्रामꣳ स्वप्नायान्ध—मधर्माय बधिरं
पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्श—माशिक्षायै प्रश्निन—मुपशिक्षाया अभिप्रश्निनं
मर्यादायै प्रश्नविवाकम् ॥१०॥ २१६३-७१

अर्मेभ्यो हस्तिपं जवायाश्वपं पुष्ट्यै गोपालं वीर्यायाविपालं तेजसेऽजपाल—
—मिरायै कीनाशं कीलालाय सुराकारं भद्राय गृहपꣳ श्रेयसे वित्तध—
—माध्यक्ष्यायानुक्षत्तारम् ॥११॥ २१७३-८१

भायै दार्वाहारं प्रभाया अग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं
देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारꣳ सर्वेभ्यो लोकेभ्य उपसेक्तार—
—मवऋत्यै वधायोपमन्थितारं मेधाय वासःपल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥१२॥
२१८३-९२

ऋतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं विविक्त्यै क्षत्तार—मौपद्रष्ट्र्यायानुक्षत्तारं
बलायानुचरं भूम्ने परिष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिन—मरिष्ट्या अश्वसादꣳ
स्वर्गाय लोकाय भागदुघं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् ॥१३॥ २१९३-२२०२

मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं योगाय योक्तारꣳ शोकायाभिसर्तारं क्षेमाय विमोक्तार—
—मुत्कूलनिकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनं वपुषे मानस्कृतꣳ शीलायाञ्जनीकारीं निर्ऋत्यै कोशकारीं
यमायासूम् ॥१४॥ २२०३-१२

यमाय यमसू—मथर्वभ्योऽवतोकाꣳ संवत्सराय पर्यायिणीं परिवत्सरायाविजाता—
—मिदावत्सरायातीत्वरी—मिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जराꣳ संवत्सराय पलिक्नी—
—मृभुभ्योऽजिनसन्धꣳ साध्येभ्यश्चर्मम्नम् ॥१५॥ २२१३-२२२२

सरोभ्यो धैवर—मुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो बैन्दं नड्वलाभ्यः शौष्कलं
पाराय मार्गार—मवाराय केवर्तं तीर्थेभ्य आन्दं विषमेभ्यो मैनालꣳ स्वनेभ्यः पर्णकं
गुहाभ्यः किरातꣳ सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पूरुषम् २२२३-३४

बीभत्सायै पौल्कसं वर्णाय हिरण्यकारं तुलायै वाणिजं पश्चादोषाय ग्लाविनं
विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलं भूत्यै जागरण—मभूत्यै स्वपन—मार्त्यै जनवादिनं
व्यृद्ध्या अपगल्भꣳ संꣳशराय प्रच्छिदम् ॥१७॥ २२३५-४४

अक्षराजाय॑ कित॒वं कृ॒ताया॑ऽऽदिनवद॒र्शं त्रेता॑यै क॒ल्पिनं॑ द्वाप॒राया॑धिक॒ल्पिन॑—
—मास्क॒न्दाय॑ सभास्था॒णुं मृ॒त्यवे॑ गोव्य॒च्छ—मन्त॑काय गोघा॒तं क्षु॒धे यो गां
वि॑कृ॒न्तन्तं॒ भिक्ष॑माण उप॒तिष्ठ॑ति दु॒ष्कृ॒ताय॒ चर॑काचार्यं॒ पा॒प्मने॑ सैल॒गम् ॥१८॥ २२४५-५४
प्र॒तिश्रुत्का॑या अर्त॒नं घोषा॑य भ॒ष—मन्ता॑य बहुवा॒दिन॑—मन॒न्ताय॒ मूक॑ शब्दा॑याडम्बराघा॒तं
मह॑से वीणावा॒दं क्रोशा॑य तूणव॒ध्म—मवरस्प॒राय॑ शङ्ख॒ध्मं वना॑य वन॒प—
—म॒न्यतो॑रण्याय दाव॒पम् ॥१९॥ २२५५-६४
न॒र्माय॑ पुँश्च॒लूँ हसा॑य॒ कारिं॒ याद॑से शाब॒ल्यां ग्रा॑म॒ण्यं॑ गण॑कमभि॒क्रोश॑कं तान् मह॑से
वीणावा॒दं पा॑णि॒घ्नं तू॑णव॒ध्मं तान् नृ॒त्ताया॑—ऽऽन॒न्दाय॑ तल॒वम् ॥२०॥ २२६५-७०
अ॒ग्नये॑ पीवा॑नं पृथि॒व्यै पी॑ठस॒र्पिणं॑ वा॒यवे॑ चाण्डा॒ल—मन्तरि॑क्षाय वंश॒न॒र्तिनं॑
दि॒वे ख॑ल॒तिं सूर्या॑य हर्य॒क्षं नक्ष॑त्रेभ्यः कि॒र्मिरं॑ च॒न्द्रम॑से कि॒लास॒—मह्ने॑ शु॒क्लं पि॑ङ्गा॒क्षं
रात्र्यै॑ कृ॒ष्णं पि॑ङ्गा॒क्षम् ॥२१॥ २२७१-८०
अथै॒तान॒ष्टौ विरू॑पा॒ना लभ॒तेऽति॑दीर्घं॒ चाति॑ह्रस्वं॒ चाति॑स्थू॒लं चाति॑कृ॒शं चाति॑शु॒क्लं
चाति॑कृ॒ष्णं चाति॑कु॒ल्वं चाति॑लोमशं॒ च । अशू॑द्रा अब्रा॑ह्मणा॒स्ते प्रा॑जाप॒त्याः ।
मा॒ग॒धः पुँ॒श्च॒ली कि॑त॒वः क्ली॒बोऽशू॑द्रा अब्रा॑ह्मणा॒स्ते प्रा॑जाप॒त्याः ॥२२॥ २२८१-८२

॥ १५३ ॥ (वा० य० ३९।१-७,११-१३)

स्वाहा॑ प्रा॒णेभ्यः॒ साधि॑पतिकेभ्यः । पृ॒थि॒व्यै स्वाहा॒ ऽग्नये॒ स्वाहा॒ ऽन्तरि॑क्षाय॒ स्वाहा॑
वा॒यवे॒ स्वाहा॑ । दि॒वे स्वाहा॒ सूर्या॑य॒ स्वाहा॑ ॥१॥ २२८३-८९
दि॒ग्भ्यः स्वाहा॑ च॒न्द्राय॒ स्वाहा॒ नक्ष॑त्रेभ्यः स्वाहा॒ ऽद्भ्यः स्वाहा॒ वरु॑णाय॒ स्वाहा॑ ।
नाभ्यै॒ स्वाहा॑ पू॒ताय॒ स्वाहा॑ ॥२॥ २२९०-९६
आ॒या॒साय॒ स्वाहा॑ प्राया॒साय॒ स्वाहा॑ सं॒या॒साय॒ स्वाहा॑ विया॒साय॒ स्वाहो॑—द्या॒साय॒ स्वाहा॑ ।
शु॒चे स्वाहा॒ शोच॑ते॒ स्वाहा॒ शोच॑मानाय॒ स्वाहा॒ शोका॑य॒ स्वाहा॑ ॥११॥ २२९७-२३०५
तप॑से॒ स्वाहा॒ तप्य॑ते॒ स्वाहा॒ तप्य॑मानाय॒ स्वाहा॑ त॒प्ताय॒ स्वाहा॑ घ॒र्माय॒ स्वाहा॑ ।
निष्कृ॑त्यै॒ स्वाहा॒ प्राय॑श्चित्त्यै॒ स्वाहा॑ भेष॒जाय॒ स्वाहा॑ ॥१२॥ २३०६-१३
य॒माय॒ स्वाहा॒ ऽन्त॑काय॒ स्वाहा॑ मृ॒त्यवे॒ स्वाहा॑ । ब्रह्म॑णे॒ स्वाहा॑ ब्रह्मह॒त्यायै॒ स्वाहा॒
विश्वे॑भ्यो दे॒वेभ्यः॒ स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॒ँ स्वाहा॑ ॥१३॥ २३१४-२०

विश्वे देवाः - पुनरुक्त - मन्त्रभागाः ।

ऋग्वेदस्य प्रथमं मण्डलम् ।

[१] १।३।७ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । विश्वे देवाः)

विश्वे देवास आ गत ।

(१६५) २।४१।१३ (गृत्समदः शौनकः । विश्वे देवाः)

(४१५) ६।५२।७ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः)

[४] १।१४।१ (मेधातिथिः काण्वः । विश्वे देवाः)

विश्वेभिः सोमपीतये ।

(इन्द्रः ४११) ८।२१।४ (सोभरिः काण्वः । इन्द्रः)

[६] १।१४।३ (मेधातिथिः काण्वः । विश्वे देवाः)

इन्द्रवायू बृहस्पतिं । आदित्यान् मारुतं गणम् ।

(८१९) १०।१४१।४ (अग्निस्तापसः । विश्वे देवाः)

इन्द्रवायू बृहस्पतिं ।

(अग्निः १०६५) ६।१६।२४ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः)

आदित्यान् मारुतं गणम् ।

[८] १।१४।५ (मेधातिथिः काण्वः । विश्वे देवाः)

वृक्तबर्हिषः ।

हविष्मन्तो अरंकृतः ।

(अश्विनौ ४००) ८।५।१७ (ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ)

वृक्तबर्हिषो हविष्मन्तो— ।

[९] १।१४।६ (मेधातिथिः काण्वः । विश्वे देवाः)

वहन्ति प्रयांसि वीतये ।

आ देवान्त्सोमपीतये ।

(अग्निः १०८५) ६।१६।४४ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः)

वहाभि प्रयांसि वीतये ।

आ देवान्त्सोमपीतये ।

[१४] १।१४।११ (मेधातिथिः काण्वः । विश्वे देवाः)

त्वं होता मनुर्हितो ।

सेमं नो अध्वरं यज ।

(अग्निः १०५०) ६।१६।९ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः)

त्वं ... ... ।

(अग्निः १८) १।२६।१ (शुनःशेप आजीगर्तिः । अग्निः)

सेमं ... ... ।

[१५] १।१४।१२ (मेधातिथिः काण्वः । विश्वे देवाः)

युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः ।

(मरुतः २८०) ५।५६।६ (श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः)

युङ्ग्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः ।

[१६] १।२३।१० (मेधातिथिः काण्वः । विश्वे देवाः)

मरुतः सोमपीतये ।

(मरुतः ३९७) ८।९४।३ = (मरुतः ४०३) ८।९४।९

(बिन्दुः पूतदक्षो वा आङ्गिरसः । मरुतः)

[२५] १।८९।७ (गोतमो राहूगणः । विश्वे देवाः)

विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ।

(५२२) १०।३५।१३ (लुशो धानाकः । विश्वे देवाः)

विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु ।

[३८-५५] १।१०५।१-१८ **वित्तं मे अस्य रोदसी ।**

[४१] १।१०५।५ (त्रित आप्त्यः, कुत्स आङ्गिरसो वा विश्वे देवाः)

त्रिष्वा रोचने दिवः ।

(इन्द्रः २३०६) ८।६९।३ (प्रियमेध आङ्गिरसः । इन्द्रः)

[४५] १।१०५।८ (त्रित आप्त्यः, कुत्स आङ्गिरसो वा । विश्वे देवाः)

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो ॥

(इन्द्रः २५३९) १०।३३।२ (कवष ऐलूषः । इन्द्रः)

सं मा ... ... ।

(इन्द्रः २५४०) १०।३३।३ (कवष ऐलूषः । इन्द्रः)

मूषो न ... ... ।

[५०]१।१०५।१३(त्रित आप्त्यः, कुत्स आङ्गिरसो वा। विश्वे देवाः)
देवेष्वस्त्याप्यम् ।
(अश्विनौ ४६७)८।१०।३ (प्रगाथो घौरः काण्वः। अश्विनौ)
देवेष्वध्याप्यम् ।

[५१] १।१०५।१४ (त्रित आप्त्यः, कुत्स आङ्गिरसो वा ।
विश्वे देवाः)
देवाँ ... ... ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः ।
(अग्निः १९२८) १।१४२।११ (दीर्घतमा औचथ्यः ।
[आप्रीसूक्तं] = वनस्पतिः)
अन्वसृजन्नुप त्मना देवान् यक्षि वनस्पते ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः ।
(अग्निः १९४०) १।१८८।१० (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः ।
[आप्रीसूक्तं] = वनस्पतिः)
उप त्मन्या वनस्पते । अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ।

[५३] १।१०५।१६ (त्रित आप्त्यः, कुत्स आङ्गिरसो वा ।
विश्वे देवाः)
दिवि प्रवाच्यं कृतः ।
(इन्द्रः १२२६) २।२२।४ (गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः)
दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।

[५७-६१] १।१०६।१-६ (कुत्स आङ्गिरसः । विश्वे देवाः)
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ।

[५८] १।१०६।२ (कुत्स आङ्गिरसः । विश्वे देवाः)
त आदित्या आ गता सर्वतातये ।
(५१०) १०।३५।११ (लुशो धानाकः । विश्वे देवाः)

[६३] १।१०६।७ (कुत्स आङ्गिरसः । विश्वे देवाः)
देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
(२३५) ४।५५।७ (वामदेवो गौतमः । विश्वे देवाः)

[६४] १।१०७।२ उप नो देवा अवसा गमन्तु ।
(५९१) १०।३५।१३ विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु ।

[६५] १।१०७।२ (कुत्स आङ्गिरसः । विश्वे देवाः)
आदित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ।
(अदितिः० ४९६) ४।५४।६ (वामदेवो गौतमः। सविता)
(७०९) १०।६६।३ (वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वे देवाः)
... ... शर्म यच्छतु ।

[६६] १।१०७।३ (कुत्स आङ्गिरसः । विश्वे देवाः)
तन्न ... ... तदर्यमा तत् सविता चनो धात् ।
(३७६) ६।४९।१४ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः)
तन्नो......तत् पर्वतस्तत् सविता चनो धात् ।

[७१] १।१२१।५ (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । विश्वे देवाः
इन्द्रो वा)
राधः सुरेतस्तुरणे ।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः।
(६३७) १०।६१।११ (नाभानेदिष्ठो मानवः । विश्वे देवाः)
राधो न रेत ऋतामित् तुरण्यन् ।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त ... ।

[७९] १।१२१।१३ (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । विश्वे देवाः
इन्द्रो वा)
भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र ।
(इन्द्रः १७०९) ५।३१।११ (अवस्युरात्रेयः । इन्द्रः)
भरच्चक्रमेतशः सं रिणाति ।

[८४, ९५] १।१२२।३,१४ तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ।

[८७] १।१२२।६ (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः ।
विश्वे देवाः)
श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ।
(आदितिः० ३०९) ७।६२।५ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः ।
मित्रावरुणौ)

[९१] १।१२२।११ श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः ।
(७३९) १०।९३।४ (तान्वः पार्थ्यः । विश्वे देवाः)
ते घा राजानो ... ।

[९७] १।१३९।१ धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ।
(इन्द्रः १०३१) १।१३९।५ (परुच्छेपो दैवोदासिः । इन्द्रः)

[१०१] १।१६४।३ (दीर्घतमा औचथ्यः । विश्वे देवाः)
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते ।
१०।७१।३ (बृहस्पतिराङ्गिरसः । ज्ञानम्)
तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते ।

[११९] १।१६४।२१ इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः ।
(अदितिः० ५४) २।२७।४ (कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो
वा । आदित्यः)
देवा विश्वस्य ... ।

[१२८,१३६] १।१६४।३०,३८ अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।

[१२९] १।१६४।३१ (दीर्घतमा औचथ्यः । विश्वे देवाः)
= १०।१७७।३ (पतङ्गः प्राजापत्यः । मायाभेदः)
अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥
[१३८] १।१६४।४० अथो वयं भगवन्तः स्याम ।
(अदितिः० ७९६) ७।४१।५ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । भगः)
तेन वयं ... ... ।
[१४१] १।१८६।२ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । विश्वे देवाः)
मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।
(अदितिः० ३१२) ७।६०।४ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः ।
मित्रावरुणौ)
[१४२] १।१८६।३ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । विश्वे देवाः)
प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषेऽग्निं ।
(अग्निः १४५४) ८।८४।१ (उशना काव्यः । अग्निः)
... ... **अतिथिं स्तुषे । अग्निं** ... ।
[१४३] १।१८६।४ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । विश्वे देवाः)
उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
(अग्निः १९७९) ७।२।६ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः ।
[आप्रीसूक्तं] = उषासानक्ता)

ऋग्वेदस्य द्वितीयं मण्डलम् ।

[१५२] २।२९।२ (कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा । विश्वे देवाः)
यूयं द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।
(७५९) १०।१००।९ (दुवस्युर्वान्दनः । विश्वे देवाः)
विश्वा द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।
[१५७] २।२९।७ = (अदितिः० ३७) २।२७।१७ (कूर्मो
गार्त्समदो गृत्समदो वा । आदित्यः)
माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥
[१५८] २।३१।१ (गृत्समदः शौनकः । विश्वे देवाः)
आदित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
(अश्विनौ ५०९) ८।३५।१ (श्यावाश्व आत्रेयः । अश्विनौ)
[१६५] २।४१।१३ (गृत्समदः [आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्]
भार्गवः शौनकः । विश्वे देवाः)
विश्वे देवास आ गत ।
(१) १।३।७ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । विश्वे देवाः)
(४१५) ६।५२।७ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः)
[१६५] २।४१।१३ (गृत्समदः शौनकः । विश्वे देवाः)
(४५२) ६।५२।७ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः)
विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् ।
एदं बर्हिर्नि षीदत ॥
(अश्विनौ ५४९) ८।७३।१० (गोपवन आत्रेयः सप्तव-
ध्रिर्वा । अश्विनौ)
शृणुतं म इमं हवम् ।
[१६७] २।४१।१५ **इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः ।**
विश्वे मम श्रुता हवम् ॥
(इन्द्रः ३२४८) १।२३।८ (मेधातिथिः काण्वः ।
मरुत्वानिन्द्रः)

ऋग्वेदस्य तृतीयं मण्डलम् ।

[१६९] ३।२०।५ (गाथी कौशिकः । विश्वे देवाः)
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं ...।... हुवे ॥
(७६३) १०।१०१।१ (बुधः सौम्यः । विश्वे देवा
ऋत्विग् वा)
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं···ह्वये ।
[१७०] ३।५४।१ (प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा ।
विश्वे देवाः)
शृणोतु **नो दम्येभिरनीकैः ।**
(अग्निः ४६१) ३।१।१५ (विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः)
रक्षा च नो दम्येभिरनीकैः ।
[१७२] ३।५४।३ **सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ।**
(अग्निः ११६) १।५८।७ (नोधा गौतमः । अग्निः)
[१७४] ३।५४।५ (प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा ।
विश्वे देवाः)
को अद्धा वेद क इह प्र वोचद् ।
परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥

१०।१२९।६ (प्रजापतिः परमेष्ठी । भाववृत्तम्)
को अद्धा ... ... ।
(७८३) १०।११४।२ (सध्रिर्वैरूपो घर्मो वा तापसः । विश्वे देवाः)
परेषु या — ।
[१८०] ३।५४।११ (प्रजापतिर्वैश्वामित्रः प्रजापतिर्वाच्यो वा । विश्वे देवाः)
त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानः ।
(२१८) ३।५६।५ त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानाः ।
[१८४] ३।५४।१५ (प्रजापतिर्वैश्वामित्रः प्रजापतिर्वाच्यो वा । विश्वे देवाः)
उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
(इन्द्रः १४७१) ४।१६।५ (वामदेवो गौतमः । इन्द्रः)
(अदितिः० ३६१) ८।२५।१८ (विश्वमना वैयश्वः । मित्रावरुणौ)
[१८७] ३।५४।१८ अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि ।
१।२४।१० (शुनःशेप आजीगर्तिः कृत्रिमो देवरातो वैश्वामित्रो वा । वरुणः)
[१८९] ३।५४।२० ध्रुवक्षेमास इळया मदन्तः ।
(अदितिः० १८७) ३।५९।३ (गाथिनो विश्वामित्रः । मित्रः)
अनमीवास इळया ... ।
[१९१] ३।५४।२२ (प्रजापतिर्वैश्वामित्रः प्रजापतिर्वाच्यो वा । विश्वे देवाः)
समिधो दिदीह्यस्मध्र्यक् सं मिमीहि श्रवांसि ।
(अग्निः ७९१) ५।४।२ (वसुश्रुत आत्रेयः । अग्निः)
(इन्द्रः १८७३) ६।१९।३ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
अस्मध्र्यक् सं मिमीहि श्रवांसि ।
[१९२-२१३] ३।५५।१-२२ महद्देवानामसुरत्वमेकम् ।
(इन्द्रः २६१७) १०।५५।४ (बृहदुक्थो वामदेव्यः । इन्द्रः)
महन्महत्या असुरत्वमेकम् ।
[२००] ३।५५।९ (प्रजापतिर्वैश्वामित्रः प्रजापतिर्वाच्यो वा । विश्वे देवाः)

अन्तर्महाँश्चरति रोचनेन ।
(अग्निः १५०७) १०।८।२ (त्रित आप्त्यः । अग्निः)
अन्तर्महाँश्चरसि रोचनेन ।
[२०४] ३।५५।१३ (प्रजापतिर्वैश्वामित्रः प्रजापतिर्वाच्यो वा । विश्वे देवाः)
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ।
(इन्द्रः २१०४) १०।२७।१४ (ऐन्द्रो वसुक्रः । इन्द्रः)
[२१०] ३।५५।१९ (प्रजापतिर्वैश्वामित्रः प्रजापतिर्वाच्यो वा । विश्वे देवाः)
देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
(आयुर्वेदः १९५८) १०।१०।५ (यमी वैवस्वती ऋषिका । यमः)
[२१२] ३।५५।२१ इमा च नः पृथिवीं विश्वधाया उप क्षेति हितमित्रो ।
न राजा । पुरःसदः शर्मसदो न वीरा ...।
(अग्निः २०७) १।७३।३ (पराशरः शाक्त्यः । अग्निः)
देवो न यः पृथिवीं... राजा । पुरःसदः...वीरा... ।
[२१६] ३।५६।३ (प्रजापतिर्वैश्वामित्रः प्रजापतिर्वाच्यो वा । विश्वे देवाः)
स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम् ।
(आयुर्वेदः ९९०) ७।१०१।६ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः (वृष्टिकामः), कुमार आग्नेयो वा । पर्जन्यः)
[२१८] ३।५६।५ = (१८०) ३।५४।११ त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानाः (११ पत्यमानः) ।
[२२०] ३।५६।७ राजाना मित्रावरुणा सुपाणी ।
(अग्निः १९३) १।७१।९ (पराशरः शाक्त्यः । अग्निः)
[२२२] ३।८।८ (गाथिनो विश्वामित्रः । विश्वे देवाः)
आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा ।
(४६१) ७।३५।१४ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः)
आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्त (इदं ब्रह्म) ।
(७१८) १०।६६।१२ (वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वे देवाः)
— रुद्रा वसवः सुदानवः (इमा ब्रह्म) ।

ऋग्वेदस्य चतुर्थं मण्डलम् ।

[२२९] ४।५५।१ (वामदेवो गौतमः । विश्वे देवाः)
द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः ।
(अदितिः० ३१८) ७।६२।४ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ)

[२३३] ४।५५।३ (वामदेवो गौतमः । विश्वे देवाः)
उभे यथा नो अहनी निपाते ।
(आयुर्वेदः २२८५) १० ७६.१ (जरत्कर्णः सर्प ऐरावतः । ग्रावाणः)
— अहनी सचाभुवा ।
[२३४] ४।५५।६ समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः ।
(इन्द्रः ८०६) १।५६।२ (सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः)
[२३५] ४।५५।७ = (६३) १।१०६।७
[२३५] ४।५५।७ नहि मित्रस्य वरुणस्य धासिम् ।
(आयुर्वेदः ९०१) १०।३०।१ (कवष ऐलूषः । आपः, अपां नपात् वा)
महीं मित्रस्य ... ।

[२३७] ४।५५।९ (वामदेवो गौतमः । विश्वे देवाः)
उषो मघोन्या वह ।
(उषाः ११६) ५।७९।७ (सत्यश्रवा आत्रेयः । उषाः)
[२३७] ४।५५।९ अस्मभ्यं वाजिनीवति ।
(उषा ३६) १।९२।१३ (गोतमो राहूगणः । उषा)
[२३८] ४।५५।१० (वामदेवो गौतमः । विश्वे देवाः)
तत् सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
(अदितिः० ५६) ८।१८।३ (इरिम्बिठिः काण्वः । आदित्याः ।
(अग्निः ३१) १।२६।४ (शुनःशेप आजीगर्तिः । अग्निः)
वरुणो मित्रो अर्यमा ।

ऋग्वेदस्य पञ्चमं मण्डलम् ।

[२३९] (वसूयव आत्रेयः । विश्वे देवाः)
देवासः सर्वया विशा ।
(मरुतः ४०) १।३९।५ (कण्वो घौरः । मरुतः)
[२४१] ५।४१।२ (भौमोऽत्रिः । विश्वे देवाः)
ते नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतो जुषन्त ।
१।१६२।१ (दीर्घतमा औचथ्यः । अश्वः)
मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि ख्यन् ।
[२४५] ५।४१।६ (अत्रिर्भौमः । विश्वे देवाः)
प्र वो वायुं रथयुजं कृणुध्वं ... अर्कैः ।
... पुरंधीः ॥
(६८१) १०।६४।७ (गयः प्लातः विश्वे देवाः)
प्र वो वायुं रथयुजं पुरंधिं स्तोमैः कृणुध्वम् ।
[२४७] ५।४१।८ (अत्रिर्भौमः । विश्वे देवाः)
वनस्पतीँरोषधी राय एषे ।
(२७४) ५।४२।१६ वनस्पतीँरोषधी राये अश्याः ।
[२४९] ५।४१।१० गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः ।
(अग्निः १००९) ६।१२।४ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । अग्निः)
सास्माकेभिरेतरी न शूषैरग्निः ।
[२५१] ५।४१।१६ (अत्रिर्भौमः । विश्वे देवाः)
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धाद् ।
७।३४।१७ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अहिर्बुध्न्यः)

[२६१] ५।४२।३ चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ।
(४८८) ७।४०।१ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः)
यदद्य देवः सविता सुवाति ।
[२७४] ५।४२।१६ = (२४७) ५।४१।८ (भौमोऽत्रिः । विश्वे देवाः)
[२७४] ५।४२।१६ (अत्रिर्भौमः । विश्वे देवाः)
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ।
(२९१) ५।४३।१५ (भौमोऽत्रिः । विश्वे देवाः)
[२७५] ५।४२।१७ = (२९२) ५।४३।१६ (भौमोऽत्रिः । विश्वे देवाः)
उरौ देवा अनिबाधे स्याम ।
[२७६] ५।४२।१८ (अत्रिर्भौमः । विश्वे देवाः)
= (२९३) ५।४३।१७ (भौमोऽत्रिः । विश्वे देवाः)
= (अश्विनौ २९१) ५।७६।५ (अत्रिर्भौमः । अश्विनौ)
= (अश्विनौ २९६) ५।७७।५ (अत्रिर्भौमः । अश्विनौ)
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥
[२८६] ५।४३।१० (अत्रिर्भौमः । विश्वे देवाः)
विश्वे गन्त मरुतो विश्व ऊती ।
(५९१) १०।३५।१३ (लुशो धानाकः । विश्वे देवाः)
विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती ।

[१८७] ५।४३।११ (अत्रिर्भौमः । विश्वे देवाः)
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा ।
(अश्विनौ २९०) ५।७६।४ (अत्रिर्भौमः । अश्विनौ)
[२९१] ५।४३।१५ = (२७४) ५।४२।१६
[२९२] ५।४३।१६ = (२७५) ५।४२।१७
[२९३] ५।४३।१७ = (२७६) ५।४२।१८ =
(अश्विनौ २९१) ५।७६।५ = (अश्विनौ २९६) ५।७७।५
[३०७] ५।४४।१४ यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति । यो जागार तमयं सोम आह ॥ (३०८) अग्निर्जागार तमृचः ... अग्निर्जागार ... । अग्निर्जागार तमयं ... ॥
[३०७-८] ५।४४।१४-१५ (काश्यपोऽवत्सारः । विश्वे देवाः)
तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ।
[३११] ५।४५।४ (सदापृण आत्रेयः । विश्वे देवाः)
इन्द्रा न्वग्नी अवसे हुवध्यै ।
(इन्द्रः ३०४८) ६।५९।२ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्राग्नी)
... ... अवसेह वज्रिणा ।
[३१८] ५।४५।१० (सदापृण आत्रेयः । विश्वे देवाः)
आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।
(अदितिः० ३१२) ७।६०।४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मित्रावरुणौ)
[३२२] ५।४६।३ (प्रतिक्षत्र आत्रेयः । विश्वे देवाः)
स्वः पृथिवीं द्यां ... ... अपः ।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं ।
(५०६) ७।४४।१ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । दधिक्राश्व्युषोऽग्निभगेन्द्रविष्णुपूषब्रह्मणस्पत्यादित्यद्यावापृथिव्याप्स्वः)
भगमूतये हुवे । इन्द्रं विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं ... द्यावापृथिवी अपः स्वः ।
[३२७] ५।४६।८ (प्रतिक्षत्र आत्रेयः । देवपत्न्यः)
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु ।
(४४५) ७।३४।२२ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विश्वे देवाः)
[३५०] ५।५१।१ (स्वस्त्यात्रेयः । विश्वे देवाः)
देवेभिर्हव्यदातये ।
(अग्निः ९२३) ५।२६।४ (वसूयव आत्रेयः । अग्निः)
[३५१] ५।५१।२ सत्यधर्माणो अध्वरम् ।
(अग्निः १६) १।१२।७ (मेधातिथिः काण्वः । अग्निः)
सत्यधर्माणमध्वरे ।
[३५२] ५।५१।३ (स्वस्त्यात्रेयः । विश्वे देवाः)
प्रातर्यावभिरा गहि । देवेभिः सोमपीतये ।
(इन्द्रः ३०९७) ८।३८।७ (श्यावाश्व आत्रेयः । इन्द्राग्नी)
प्रातर्यावभिरा गतं देवेभिः ...... सोमपीतये ।
[३५३] ५।५१।८ अश्विभ्यामुषसा सजूः ।
(अग्निः ९९) १।४४।१४ (प्रस्कण्वः काण्वः । अग्निः)
[३५३-५५] ५।५१।८-१० आ याह्यग्ने अत्रिवत् सुते रण ।

ऋग्वेदस्य षष्ठं मण्डलम् ।

[३६३] ६।४९।१ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः)
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः ।
(आयुर्वेदः १९९१) १०।१५।५ (शङ्खो यामायनः । पितरः)
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु ।
(४०१) ६।५१।१० (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः)
सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः ।
[३६६] ६।४९।४ प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा ।
(आयुर्वेदः १०२६) ३।३३।५ (विश्वामित्रो गाथिनः । नद्यः)
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषा ।
[३६७] ६।४९।५ येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ।
(अश्विनौ २०४) १।१८३।२ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ)
[३७२] ६।४९।१० बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नम् ।
(इन्द्रः ११८८) ३।३२।७ (विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः)
बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
[३७४] ६।४९।१२ प्र वीराय प्र तवसे तुराय ।
(इन्द्रः २०११) ६।३२।१ (सुहोत्रो भारद्वाजः इन्द्रः)
महे वीराय ... ... ।
[३७५] ६।४९।१३ यो रजांसि विममे पार्थिवानि ।
१।१६०।४ (दीर्घतमा औचथ्यः । द्यावापृथिवी)
वि यो ममे रजसी सुक्रतू ।
[३७६] ६।४९।१४ तन् पर्वतस्तत् सविता चनो धात् ।
(६६) १।१०७।३ तदर्यमा तत् सविता ... ।
[३८१] ६।५०।४ अधा हुवानो वसवोऽग्नाः ।
(३९१) ६।५०।१५ आ हुवानो वसवोऽग्नाः ।

[३८४] ६।५०।७ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः)
विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः ।
(अदितिः० ३१०) ७।६०।२ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मित्रावरुणौ)
विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपाः ।
(६६८) १०।६३।८ (गयः प्लातः । विश्वे देवाः)
... ... जगतश्च मन्तवः ।

[३८५, ६।५०।८ आ नो देवः सविता त्रायमाणः ।
(४५८) ७।३५।१० (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः)
शं नो देवः ... ... ।

[३८५। ६।५०।८ व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि ।
(उषा १२५) ५।८०।६ (सत्यश्रवा आत्रेयः । उषाः)
व्यूर्ण्वती दाशुषे ... ।

[३८६] ६।५०।९ उत त्वं सूनो सहसो नो अद्य ।
(अग्निः ११७) १।५८।८ (नोधा गौतमः । अग्निः)
अच्छिद्रा सूनो ... ।

[३९०] ६।५०।१३ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः)
भगो ... । त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः सजोषाः ।
(६८५) १०।६४।१० (गयः प्लातः । विश्वे देवाः)
त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः पिता वचः । ... भगो ।

[३९२] ६।५०।१५ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः)
* एवा ... ... भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
(इन्द्रः २२८५) ७।२३।६ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः)
एवा ... वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।

[३९४] ६।५१।२ ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ।
(अग्निः ६४३) ४।१।१७ (वामदेवो गौतमः । अग्निः)

[३९७] ६।५१।५ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः)
विश्व आदित्या अदिते सजोषाः ।
(६७५) १०।६३।१७ = १०।६४।१७ (गयः प्लातः । विश्वे देवाः)
... ... अदिते मनीषी ।

[३९७] ६।५१।५ अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्त ।
(मरुतः २७३) ५।५५।९ (श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः)
... वि यन्तन ।

[३९९] ६।५१।७ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः)
मा व एनो अन्यकृतं भुजेम मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ।
(आदितिः ४२) ७।५२।२ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । आदित्याः)
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ।

[४००] ६।५१।८ नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
(अदितिः० १८५) ३।५९।१ (विश्वामित्रो गाथिनः । मित्रः)
मित्रो दाधार ... ।

[४०२] ६।५१।१० = (३६३) ६।४९।१ सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः ।

[४०७] ६।५१।१५ यूयं हि ष्ठा सुदानवः ।
(अदितिः० ९०८) १।१५।२ (मेधातिथिः काण्वः । [ऋतवः] = मरुतः)
(५६७) ८।८३।९ (कुसीदी काण्वः । विश्वे देवाः)

[४०७] ६।५१।१५ (ऋजिश्वा भारद्वाज । विश्वे देवाः)
इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः ।
(५६७) ८।८३।९ (कुसीदी काण्वः । विश्वे देवाः)

[४०८] ६।५१।१६ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः)
स्वस्तिगामनेहसम् ।
(इन्द्रः २३१८) ८।६९।१६ (प्रियमेध आङ्गिरसः । इन्द्रः)

[४११] ६।५२।३ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ।
(इन्द्रः ११५४) ३।३०।१७ (विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः)

[४१३] ५।५२।५ पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
(इन्द्रः १५९१) ४।२५।४ (वामदेवो गौतमः । इन्द्रः)
पश्यात् सूर्यं ... ।

[४१५] ६।५२।७ = (१६५) २।४१।१३

[४१०] ६।५२।१२ इमं नो अग्ने अध्वरम् ।
(अग्निः ७३७) ५।४।८ (वसुश्रुत आत्रेयः । अग्निः)
अस्माकमग्ने अध्वरम् ।

[४२०] ६।५२।१२ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः)
चिकित्वान् दैव्यं जनम् ।
(अग्निः १३५१) ८।४३।९ (विरूप आङ्गिरसः । अग्निः)

[४२१] ६।५२।१३ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः)
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ।
(इन्द्रः ३१७१) ६।६८।११ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रावरुणौ)
... ... मादयेथाम् ।
(आयुर्वेदः १०८४) १०।१७।८ (देवश्रवा यामायनः। सरस्वती)
... ... मादयस्व ।

[४२४] ६।५२।१६ अग्नीपर्जन्यावषतं धियं मे ।
(सोमः १२२१) २।४०।५ (गृत्समदः शौनकः । सोमापूषणौ)
सोमापूषणावषतं धियं मे ।

[४२५] ६।५२।१७ स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ ।
(अग्निः ६८५) ४।६।४ (वामदेवो गौतमः । अग्निः)

ऋग्वेदस्य सप्तमं मण्डलम् ।

[४४५] ७।३४।२२ = (३२७) ५।४६।८
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु ।
[४४८] ७।३४।२५ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः) =
(मरुतः ३६९) ७।५६।२५ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मरुतः)
तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
(७१५) १०।६६।९ (वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वे देवाः)
आप ओषधीर्वनिनानि यज्ञिया ।
[४५८] ७।३५।१० = (३८१) ६।५०।८
देवः सविता त्रायमाणः ।
[४६१] ७।३५।१४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विश्वे देवाः)
आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्त ।
(आयुर्वेदः २१६६) ३।८।८ (गाथिनो विश्वामित्रः ।
यूपाः, विश्वे देवा वा)
... रुद्रा वसवः सुनीथाः ।
(७१८) १०।६६।१२ (वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वे देवाः)
—वसवः सुदानवः ।
दिव्याः पार्थिवासो गोजाता अप्या ये यज्ञियासः ।
(१२११) १०।५३।५ (अग्निः सौचीकः । देवाः)
गोजाता ... ... ।
पार्थिवात् पार्थिवात ... ... दिव्यात् ... ।
[४६३] ७।३५।१५ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः)
देवानां ... मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य ।
(७०५) १०।६५।१४ (वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वे देवाः)
देवाः ... मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
(७०६) १०।६५।१५ = १०।६६।१५
(वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वे देवाः)
देवान् ... । ते नो रासन्तामुरुगायमद्य ।
[४६५] ७।३६।२ जनं च मित्रो यतति ब्रुवाणः ।

(अदितिः० १८५) ३।५९।१ (गाथिनो विश्वामित्रः । मित्रः)
मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणः ।
[४७७] ७।३७।५ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विश्वे देवाः)
कदा न इन्द्र राय आ दशस्येः ।
(इन्द्रः ९९०) ८।९७।१५ (रेभः काश्यपः । इन्द्रः)
[४८४] ७।३९।५ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विश्वे देवाः)
ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः ।
(मरुतः ४१४) १०।७७।८ (स्यूमरश्मिर्भार्गवः । मरुतः)
[४८७] ७।३९।७ = ७।४०।७ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः)
नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
(अदितिः० ५६०) ७।६२।३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । सूर्यः)
ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं ॥
[४८८] ७।४०।१ यदद्य देवः सविता सुवाति ।
(२६२) ५।४२।३ चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ॥
[४९१] ७।४०।४ सुहवा देव्यदितिरनर्वा ।
(सोमः १२१२) २।४०।६ (गृत्समदः शौनकः । अदितिः)
अवतु देव्य ... ।
[४९२] ७।४०।५ विष्णोरेषस्य प्रभृथे हविर्भिः ।
(मरुतः २०९) २।३४।११ विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे ।
[४९५] ७।४२।१ प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त ।
(अदितिः० ४३) ७।५२।३ तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त ।
[४९७] ७।४२।३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विश्वे देवाः)
समु वो यज्ञं महयन् नमोभिः ।
(अदितिः० ३०६) ७।६१।६ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ)
समु वां यज्ञं महयं ... ।
[४९९] ७।४२।५ इमं नो अग्ने अध्वरं जुषस्व ।
(अग्निः ७९७) ५।४।८ (वसुश्रुत आत्रेयः । अग्निः)
अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व ।

ऋग्वेदस्याष्टमं मण्डलम् ।

[५१०] ८।२५।११ (विश्वमना वैयश्वः । विश्वे देवाः)
अरिष्यन्तो नि पायुभिः सचेमहि ।

(अग्निः ४०१) २।८।६ (गृत्समदः शौनकः । अग्निः)
अरिष्यन्तः सचेमह्यभि ष्याम ।

[५१४] ८।२७।३ (मनुर्वैवस्वतः । विश्वे देवाः)
मरुत्सु विश्वभानुषु ।
(अग्निः २४५०) ४।१।३ (वामदेवो गौतमः । अग्नि-वरुणश्च)

[५१५] ८।२७।४ यन्ता **वोऽवृकं छर्दिः ।**
(उषाः १८) १।४८।१५ (प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः)
प्र **नो** यच्छतादवृकं पृथु **च्छर्दिः ।**

[५२१] ८।२७।१० देवासो **अस्त्याप्यम् ।**
(५०) १।१०५।१३ देवेष्वस्त्याप्यम् ।

[५२४] ८।२७।१३ **देवंदेवं वोऽवसे देवंदेवं...। देवंदेवं हुवेम ।**
(इन्द्रः ३०६) ८।१२।१९ (पर्वतः काण्वः । इन्द्रः)
देवंदेवं वोऽवस इन्द्रम् ।

[५२४] ८।२७।१३ देवंदेवं हुवेम **वाजसातये ।**
(इन्द्रः १७४१) ५।३५।६ (प्रभूवसुराङ्गिरसः । इन्द्रः)
पूर्व्यं हवन्ते **वाजसातये ।**

[५२७] ८।२७।१६ **प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ।**
(मरुतः ३८४) ७।५९।२ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मरुतः)

[५२७] ८।२७।१६ **प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।**
६।७०।३ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । द्यावापृथिवी)

[५२७] ८।२७।१६ **अरिष्टः सर्व एधते ।**
१।४१।२ (कण्वो घौरः । वरुणमित्रार्यमणः)

[५२८] ८।२७।१७ **अर्यमा मित्रो वरुणः** सरातयो ।
(अग्निः २४६) १।७९।३ (गोतमो राहूगणः । अग्निः)
अर्यमा ... ... परिज्मा ।

[५३०] ८।२७।१९ **यदद्य सूर्य** उद्यति ।
(अदितिः० ४४) ७।६६।४ **यदद्य सूर उदिते ।**

[५३१] ८।२७।२१ **यदद्य सूर उदिते ।**
(आदितिः० ४४) ७।६६।४ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आदित्याः)

[५३५] ८।२८।२ **वरुणो मित्रो अर्यमा ।**
(अग्निः ३१) १।२६।४ (शुनःशेप आजीगर्तिः । अग्निः)

[५३८] ८।२८।५ सप्तो **अधि श्रियो धिरे ।**
(अग्निः ४०१) २।८।५ (गृत्समदः शौनकः । अग्निः)
विश्वा **अधि श्रियो** दधे ।

[५४०] ८।२९।२ अन्तर्देवेषु **मेधिरः ।**
(५१) १।१०५।१४ देवो **देवेषु मेधिरः ।**

[५४७] ८।२९।९ **सम्राजा सर्पिरासुती ।**
(अदितिः० १०३) १।१३६।१ (परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ)
— **घृतासुती ।**

[५४९] ८।३०।१ **अर्भको** देवासो **न कुमारकः ।**
(इन्द्रः २३१७) ८।६३।१५ (प्रियमेध आङ्गिरसः । इन्द्रः)
अर्भको न कुमारकः ।

[५५१] ८।३०।३ त उ **नो अधि वोचत ।**
(मरुतः १०७) ८।२०।२६ (सोभरिः काण्वः । मरुतः)
तेना **नो अधि वोचत ।**

[५८८] ८।६९।११ (प्रियमेध आङ्गिरसः । [अर्धर्चे] विश्वे देवाः, [उत्तरार्धः] वरुणः)
विश्वे देवा अमत्सत । वत्सं संशिश्वरीरिव ।
(सोमः ११५) ९।१४।३ (असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः)
विश्वे ... ... ।
(सोमः ४०१) ९।६१।१४ (अमहीयुराङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
वत्सं ... ... ।

[५६०] ८।८३।२ (कुसीदी काण्वः । विश्वे देवाः)
वरुणो मित्रो अर्यमा ।
(अग्निः ३१) १।२६।४ (शुनःशेप आजीगर्तिः । अग्निः)

[५६१] ८।८३।३ **यूयमृतस्य रथ्यः ।**
(अदितिः० ५१) ७।६६।१२ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आदित्याः)

[५६२] ८।८३।४ वामं नो अस्त्वर्यमन् वामं **वरुण शंस्यम् ।**
(अदितिः० ६८) ८।१८।२१ (इरिम्बिठिः काण्वः । आदित्याः)
अनेहो मित्रार्यमन् नृवद् **वरुण शंस्यम् ।**

[५६७] ८।८३।९ **यूयं हि ष्ठा सुदानवः ।**
(अदितिः० ९०८) १।१५।२ (मेधातिथिः काण्वः । [ऋतवः] मरुतः)
(४०७) ६।५१।१५ (ऋजिष्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः)

ऋग्वेदस्य दशमं मण्डलम् ।

[५६९] १०।३१।२ (कवष ऐलूषः । विश्वे देवाः)
ऋतस्य पथा नमसा विवासेत् ।
(अग्निः १८४) १।१२८।२ (परुच्छेपो दैवोदासिः । अग्निः)
... नमसा हविष्मता ।
[५७४] १०।३१।७ (कवष ऐलूषः । विश्वे देवाः)
किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
१०।८१।४ (विश्वकर्मा भौवनः । विश्वकर्मा)
[५७५] १०।३१।८ नैतावदेना परो अन्यदस्ति ।
(इन्द्रः २५११) १०।२७।२१ (ऐन्द्रो वसुक्रः । इन्द्रः)
श्रव इदेना परो — ।
[५८१] १०।३५।१ (लुशो धानाकः । विश्वे देवाः)
दिवस्पृथिव्योरव आ वृणीमहे ।
... भद्रं सोमः ... ।
२।२६।२ (गृत्समदः शौनकः । ब्रह्मणस्पतिः)
... भद्रं मनः ... । ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे ।
[५८२-९१] १०।३५।२-१२ स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ।
[५८५] १०।३५।६ आयुक्षातामश्विना तूतुजिं रथम् ।
(अश्विनौ १६३) १।१५७।१ (दीर्घतमा औचथ्यः । अश्विनौ)
... यातवे रथम् ।
[५८९] १०।३५।१० इन्द्रं मित्रं वरुणं सातये भगम् ।
(६६९) १०।६३।९ (गयः प्लातः । विश्वे देवाः)
अग्निं मित्रं ... ।
[५९०] १०।३५।११ त आदित्या आ गता सर्वतातये ।
(५८) १।१०६।२ (कुत्स आङ्गिरसः । विश्वे देवाः)
[५९१] १०।३५।१२ पश्चे तोकाय तनयाय जीवसे ।
३।५३।१८ (गाथिनो विश्वामित्रः । रथाङ्गानि)
बलं तोकाय ... ।
[५९२] १०।३५।१३ विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती ।
(१८६) ५।४३।१० (भौमोऽत्रिः । विश्वे देवाः)
विश्वे गन्त मरुतो ... ।
[५९२] १०।३५।१३ विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु ।
(२५) १।८९।५ (गोतमो राहूगणः । विश्वे देवाः)
... अवसा गमन्निह ।
[५९३] १०।३५।१४ (लुशो धानाकः । विश्वे देवाः)
यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं ।
(६७४) १०।६३।१४ (गयः प्लातः । विश्वे देवाः)
[५९४] १०।३६।१ द्यावाक्षामा वरुणो मित्रो अर्यमा ।
(अग्निः ७१) १।३६।४ (कण्वो घौरः । अग्निः)
देवासस्त्वा वरुणो ... ।
[५९४] १०।३६।१ = (५०६) ७।४४।१
इन्द्रं ... आदित्यान् द्यावापृथिवी अपः स्वः ।
[५९५-६०५] १०।३६।२-१२ तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे।
अहं होता न्यसीदं यजीयान् ।
[६०९] १०।५२।२ (सौचीकोऽग्निः । विश्वे देवाः)
(अग्निः ७६०) ५।१।६ (बुधगविष्ठिरावात्रेयौ । अग्निः)
[६१०-११] १०।५२।३-४ अयां (अयं) देवा दधिरे हव्यवाहम् ।
(अग्निः ११२९) ७।११।४ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः)
[६११] १०।५२।५ अथेमा विश्वाः पृतना जयाति ।
(इन्द्रः २३५१) ८।९६।७ (तिरश्चीराङ्गिरसः, द्युतानो वा मारुतः । इन्द्रः)
... जयासि ।
[६१३] १०।५२।६ (सौचीकोऽग्निः । विश्वे देवाः)
त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्।
औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥
(अग्निः ५०८) ३।९।९ (गाथिनो विश्वामित्रः । अग्निः)
[६१८] १०।५६।५ (बृहदुक्थो वामदेव्यः । विश्वे देवाः)
तनूषु विश्वा भुवना नि येमिरे ।
(इन्द्रः १६१) ८।३।६ (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः)
इन्द्रे ह विश्वा— ।
[६२०] १०।५६।७ स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
(अग्निः ३६२) १।१८९।२ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अग्निः)
[६२३] १०।५७।३ पितॄणां च मन्मभिः ।
८।४१।२ (नाभाकः काण्वः । वरुणः)

[६२४] १०।५७।४ ज्योक् च सूर्यं दृशे ।
(आयुर्वेदः ८६८) १।२३।२१ (मेधातिथिः काण्वः । आपः)
(आयुर्वेदः ८८५) १०।९।७ (त्रीशिरास्त्व ष्ट्रः, सिन्धुद्वीप आम्बरीषो वा । आपः)
[६३७-३८]१०।६१।१०-११(नाभानेदिष्ठो मानवः। विश्वे देवाः)
मक्षू कनायाः सख्यं नवग्वाः (११ नवीयः) ।
[६३८] १०।६१।११ शुचि यत् ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ।
(७१) १।१२१।५ (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । विश्वे देवा इन्द्रो वा)
[६४८] १०।६१।२२ रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन् ।
(इन्द्रः ७९६) १।५४।११ (सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः)
[६६०] १०।६२।७ व्रजं गोमन्तमश्विनम् ।
(सोमः ११६४) १०।२५।५ (ऐन्द्रो विमदः, प्राजापत्यो वा, वासुको वसुकृद्वा । सोमः)
[६६०] १०।६२।७ श्रवो देवेष्वक्रत ।
(इन्द्रः ६१२) ८।६५।१२ (प्रगाथः काण्वः । इन्द्रः)
[६६४] १०।६३।४ (गयः प्लातः । विश्वे देवाः)
देवासो अमृतत्वमानशुः ।
(अग्निः १६२३) १०।५३।१० (देवाः । अग्निः)
येन देवासो — ।
[६६८] १०।६३।८ विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
(३८४) ६।५०।७ विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः ।
[६६९] १०।६३।९ = (५८९) १०।३५।१०
अग्निं (१० इन्द्रं) मित्रं वरुणं सातये भगं ।
[६७३] १०।६३।१३ अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते ।
१।४१।२ (कण्वो घौरः। वरुणमित्रार्यमणः)
अरिष्टः सर्व एधते ।
[६७३] १०।६३।१३ प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।
६।७०।३ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । द्यावापृथिवी)
[६७४] १०।६३।१४ =(५९३) १०।३५।१४ यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं ।
[६७५] १०।६३।१७ = १०।६४।१७ (गयः प्लातः । विश्वे देवाः)
एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्वो विश्व आदित्या अदिते मनीषी।
ईशानासो नरो अमर्त्येनास्तावि जनो दिव्यो गयेन ।
[६७५] १०।६३।१७ विश्व आदित्या अदिते मनीषी ।
(३९७) ६।५१।५ विश्व आदित्या अदिते सजोषाः ।
[६७९] १०।६४।४ (गयः प्लातः । विश्वे देवाः)
कविः ... । अहिः शृणोतु बुध्न्यो हवीमनि ।
(७३१) १०।९२।१२ (शार्यातो मानवः । विश्वे देवाः)
कविरहिः ... ।
[६८१] १०।६४।७ प्र वो वायुं रथयुजं पुरंधिं ।
(२४५) ५।४१।६ (भौमोऽत्रिः । विश्वे देवाः)
... रथयुजं कृणुध्वं । ... पुरंधीः ।
[६८५] १०।६४।१० त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः पिता वचः ।
(३९०) ६।५०।१३ त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः सजोषाः ।
[६८६] १०।६४।११ रण्वः संदृष्टौ पितुमाँ इव क्षयः ।
(अग्निः ३३१) १।१४४।७ (दीर्घतमा औचथ्यः । अग्निः)
[६९०] १०।६४।१५ (गयः प्लातः । विश्वे देवाः)
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहद् ।
(७५८) १०।१००।८ (दुवस्युर्वान्दनः । विश्वे देवाः)
[६९१] १०।६५।१ (वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वे देवाः)
अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
(अग्निः ७१) १।३६।४ (कण्वो घौरः । अग्निः)
देवासस्त्वा वरुणो ...।
[६९१] १०।६५।१ आदित्या विष्णुर्मरुतः स्वर्बृहत् ।
(७१०) १०।६६।४ इन्द्राविष्णू मरुतः ... ।
[६९८] १०।६५।७ दिवक्षसो अग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
(अग्निः ९९) १।४४।१४ (प्रस्कण्वः काण्वः । अग्निः)
सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
[७००] १०।६५।९ (वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वे देवाः)
देवाँ आदित्याँ अदितिं हवामहे ।
(७१०) १०।६६।४ देवाँ आदित्याँ अवसे हवामहे ।
[७०५] १०।६५।१४ = (४६३) ७।३५।१५
मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
[७०६] १०।६५।१५ = १०।६६।१५ (वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वे देवाः)
देवान् वसिष्ठो अमृतान् ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
[७०६] १०।६५।१५ = (४६३) ७।३५।१५
ते नो रासन्ता० ... सदा नः ।

[७०९] १०।६६।३ = (६५) १।१०७।२
आदित्यैर्नो अदितिः शर्म यच्छतु (१ यंसत)।

[७१०] १०।६६।४ = (६९२) १०।६५।१ (वसुकर्णो वासुक्रः। विश्वे देवाः)

[७१०] १०।६६।४ = (७००) १०।६५।२

[७१५] १०।६६।९ आप ओषधीर्वनिनानि यज्ञिया।
(४४८) ७।३४।२५ आप ओषधीर्वनिनो जुषन्त।
(मरुतः ३६९) ७।५६।२५ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। मरुतः)

[७१८] १०।६६।१२ आदित्या रुद्रा वसवः सुदानवः।
(२२२) ३।८।८ आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा।

[७१९] १०।६६।१३ दैव्या होतारा प्रथमा पुरोहित।
(अग्निः ११४८) २।३।७ (गृत्समदः शौनकः। [आप्री-सूक्तं] दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ)
... प्रथमा विदुष्टरः।

[७१९] १०।६६।१३ ऋतस्य पन्थामन्वेमि साधुया।
(उषा ७४) १।१२४।३ (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः। उषाः)

[७२६] १०।९२।६ (शार्यातो मानवः। विश्वे देवाः)
तेभिश्चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमा।
(अग्निः ७१) १।३६।४ (कण्वो घोरः। अग्निः)
देवासस्त्वा वरुणो ...।

[७२७] १०।९२।७ सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये।
(इन्द्रः ३१५१) ४।४१।६ (वामदेवो गौतमः। इन्द्रावरुणौ)

[७३२] १०।९२।१२ = (६७९) १०।६४।४

[७३६] १०।९३।१ (तान्वः पार्थ्यः। विश्वे देवाः)
महि द्यावापृथिवी भूतमुर्वी।
(इन्द्रः ३१६४) ६।६८।४ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। इन्द्रावरुणौ)
महित्वा द्यौश्च पृथिवी भूतमुर्वी।

[७३९] १०।९३।४ ते घा राजानो अमृतस्य मन्द्राः।
(९२) १।१२२।१२ श्रोता राजानो अमृतस्य...।

[७३९] १०।९३।४ अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा।
(अग्निः २४३) १।७९।३ (गोतमो राहूगणः। अग्निः)

[७४१] १०.९३।६ महः स राय एषते।
(अग्निः ३५३) १।१४९।१ (दीर्घतमा औचथ्यः। अग्निः)

[७४६] १०।९३।११ सदा पाह्यभिष्टये।
(इन्द्रः १००८) १।१२९।९ (परुच्छेपो दैवोदासिः। इन्द्रः)
सदा पाह्यभिष्टिभिः।

[७५०-६१] १०।१००।१-११ (दुवस्युर्वान्दनः। विश्वे देवाः)
आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे।

[७५८] १०।१००।८ = (६९०) १०।६४।१५
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहद्।

[७५९] १०।१००।९ विश्वा द्वेषांसि सनुतर्युयोत।
(१५१) २।२९।२ यूयं द्वेषांसि ...।

[७६३] १०।१०१।१ (बुधः सौम्यः। विश्वे देवाः, ऋत्विजो वा)
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीम्।
(१६९) ३।२०।५ (गाथी कौशिकः। विश्वे देवाः)

[७७१] १०।१०२।९ सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः।
(इन्द्रः ३१५०) ४।४२।५ (वामदेवो गौतमः। इन्द्रावरुणौ)

[७८३] १०।११४।२ = (१७४) ३।५४।५
परेषु या गुह्येषु व्रतेषु।

[७९१] १०।१२६।१ (ऐन्द्रूलिः कुल्मलबर्हिषो, वामदेव्योऽंहोमुग्वा। विश्वे देवाः)
न तमंहो न दुरितं।
२।२३।५ (गृत्समदः शौनकः। ब्रह्मणस्पतिः)

[७९३] १०।१२६।२ वरुणमित्रार्यमन्।
(अदितिः० २७४) ५।६७।१ (यजत आत्रेयः। मित्रावरुणौ)

[७९४-९८] १०।१२६।३-७ वरुणो मित्रो अर्यमा।
(अग्निः ३१) १।२६।४ (शुनःशेप आजीगर्तिः। अग्निः)
(अदितिः० ५६) ८।१८।३ (इरिम्बिठिः काण्वः। आदित्याः)

[७९८] १०।१२६।७ शर्म यच्छन्तु सप्रथ आदित्यासो यदीमहे।
(अदितिः० ५६) ८।१८।३ (इरिम्बिठिः काण्वः। आदित्याः)
... ... यदीमहे।

[७९९] १०।१२६।८ यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षिताममुञ्चता यजत्राः।
एवो ष्वस्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः॥
(अग्निः ७३९) ४।१२।६ (वामदेवो गौतमः। अग्निः)

[८०७] १०।१२८।८ इन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः।
(इन्द्रः ८५४) १।१०४।८ (कुत्स आङ्गिरसः। इन्द्रः)
मा नो वधीरिन्द्र मा परा दाः।

[८१८] १०।१४१।३ (अग्निस्तापसः । विश्वे देवाः)
अग्निं गीर्भिर्हवामहे ।
(अग्निः १२१९) ८।११।६ (वत्सः काण्वः । अग्निः)

[८१९] १०।१४१।४ इन्द्रवायू बृहस्पतिं सुहवेह ।
(६) १।१४।३ (मेधातिथिः काण्वः । विश्वे देवाः)
... ... मित्राग्निं ।

[८२१] १०।१४१।६ ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
(इन्द्रः ६१) १।१०।४ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः)
ब्रह्म .. यज्ञं च वर्धय ।

[८२७] १०।१५७।५ (भुवन आप्त्यः, साधनो वा भौमः । विश्वे देवाः)
आदित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ।
(मरुतः १९१) १।१६८।९ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । मरुतः)

[८२८] १०।१६५।१ (नैर्ऋतः कपोतः । विश्वे देवाः)
शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ।
(सोमः ११११) ६।७४।१ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । सौमारुद्रौ)
शं नो भूतं द्विपदे— ।

[८३४-३६] १०।१८१।१-३ (१ प्रथो वासिष्ठः, २ सप्रथो भारद्वाजः, ३ घर्मः सौर्यः । विश्वे देवाः)
*धातुर्द्युतानात् सवितुश्च विष्णोः ।

[१२०२] १।१६४।५० (दीर्घतमा औचथ्यः । साध्याः)=
१०।९०।१६ (नारायणः । पुरुषः)
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

[११११] १०।५३।५ (सौचीकोऽग्निः । देवाः)
गोजाता उत ये यज्ञियासः ।
(४६२) ७।३५।१४ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः)

[११११] १०।५३।५ (सौचीकोऽग्निः । देवाः)
पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान् ।
(इन्द्रः ३३००) ७।१०४।२३ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । पृथिव्यन्तरिक्षे [उत्तरार्धः])

[१११३-१४] १०।७२।२-३ असतः सदजायत ।

[१२२१] १०।८५।१७ (सूर्यासावित्री ऋषिका । देवाः)
मित्राय वरुणाय च ।
(सोमः ९३३) ९।१००।५ (रेभसूनू काश्यपौ । पवमानः सोमः)

[११६४] १।१३६।६ (परुच्छेपो दैवोदासिः । लिङ्गोक्ताः)
मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुषे सुमृळीकाय मीळ्हुषे ।
(इन्द्रः १००२) १।१२९।३ (परुच्छेपो दैवोदासिः । इन्द्रः)
मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृळीकाय सप्रथः ।

विश्वे-देवाऽन्तर्गता देवताः

(१) ऋग्वेदमन्त्राणाम् ।

अंशः
अक्तुः
अक्षरम्
अग्निः
अग्नि-जिह्वा
अग्नि-दीप्तयः
अग्नी-पर्जन्यौ
अग्निवायुआदित्यपदाधानवेत्तारः
अग्निवायुसूर्याः
अग्नी-षोमौ
अग्न्यादित्ययोः अनुवेत्ता व्यतिहारेण वा
उपासकः
अङ्गिराः-रसः
अज एकपात्
अतिथिः
अत्रयः
अथर्वा
अदितिः
अद्रिः
अद्री (पत्नी-यजमानौ)
अध्वरः
अनात्मज्ञः (तत्परिदेवनम्)
अनुमतिः
अन्तरिक्षम्
अपां नपात्
अप्याः
अभिषाचः
अर्णवः
अर्यमा
अर्वन्तः
अश्वः-श्वाः
अश्विना
असुरः
अ (स्तृ)-स्तारः
अहः
अहिर्बुध्न्यः
अहोरात्रे
आत्मज्ञान- अज्ञाने
आत्रेयः प्रतिक्षत्रः
आदित्यः
आदित्य सत्यं दुर्ज्ञेयम्
आदित्याः
आपः
इन्दवः
इन्द्रः
इन्द्राग्नी
इन्द्रापर्वतौ
इन्द्रापूषणौ
इन्द्रामरुतौ
इन्द्रावरुणौ
इन्द्रावायू
इन्द्राविष्णू
इन्द्रा-सोमौ
इन्द्राणी
इळा
इळाः (भूमिस्थाना देवताः)
उक्षणः पञ्च
उर्वशी
उल्का
उषाः
उषासानक्ता
ऋतवः
ऋत्विजः
ऋभवः
ऋभुक्षाः-क्षणः
ऋषयः (पञ्च)
ऋषयः (सप्त)
ओषधयः- धीः
ककुदः
कण्वः
कपोतः
कृशानुः
क्षत्रस्य पतिः
गयः
गायत्रम् (साम)
गिरयः
गुङ्गुः
गौः
गोआशाः
गोधा (तान्वदिदिक्षा)
गोरूपेण आदित्यरश्मिसमूहः गोरूपिणी
आहुतिः वा
गो- सवितारौ (मेघवायू वा)
ग्नाः (देवपत्न्यः, पत्नीः)
ग्रावाणः
घर्मः
घर्मा
चक्रम्
चन्द्रमाः
जगत (साम)
जनाः पञ्च
ज (निः)-नयः
जिह्वा
जीवात्म-परमात्मानौ

तत्त्वविद्
तनयित्नुः
तन्यतुः
तार्क्ष्यः
तिष्यः
त्वष्टा
दक्षः
दधिक्राः
दिव्याः
दिशः (मेघाः वा)
दीधितिः
देवः
देवगणः-संघः वा
देवाः
देवानां देवाः
देवो देवः
देवपत्नीः [पत्नीः, ग्नाः]
देवी
देवीः तिस्रः
देवीः षट्
देहात्मानौ(देहात्मजीवात्मानौ-सायनाः)
द्यौः
द्यावापृथिवी [रोदसी]
द्युपृथिवी-अन्तरिक्षम् [तिस्रः निर्ऋतिः]
धर्ता
धर्मः
धाता
धिषणा
धीः
धियः
धेनुः
धेनवः
नक्तम्
नक्षत्राणि
नद्यः
नमः
नरः
नराशंसः
नाभानेदिष्ठः
निर्ऋतिः
निशाः
नौः (दैवी)
पतयः, सत्यस्य
पत्नीः [ग्नाः, देवपत्नीः]
पन्थाः
परमात्मा (आदित्यः वा)
परमेश्वरस्य अविषयत्वम्
पर्जन्यवाता
पर्वतः-तासः
पशुः
पार्थिवाः
पितरः
पुरन्धिः
पूषा
पृथिवी
पृश्निः
प्रजापतिः
प्रदिशः
प्रमतिः (अग्नेः)
प्रवाचनम् (देवानाम्)
प्रश्नाः
प्रश्नप्रतिवचनानि
बर्हिः
बृहत्
बृहदुक्थः
बृहस्पतिः
ब्रह्म
ब्रह्मा
ब्रह्मजाया
ब्रह्मणस्पतिः
भगः
भवित्रम्
भूतानि
भूमिः
भृगवः
मदः
मनः (मन आवर्तनम्)
मनीषा
मनीषिणः
मनुष्याः
मन्म
मरुतः
मही
माता
मित्रः
मित्रावरुणा
मेघः
यजमानब्रह्माणौ
यजुः
यज्ञः
यमः
रथः
रथन्तरं साम
रश्मयः (सूर्यस्य, आदित्यस्य वा)
राका
राजानः
रातिषाचः
रायः
रुद्रः-द्राः
रुद्रियः
रोदसी (एकवचनम्) (रुद्रस्य पत्नी)
रोदसी (द्विवचनम्) (द्यावापृथिवी)
वत्सः
वनस्पतिः
वना
वनिनः
वरुणः
वसवः
वाक्
वाजः-जाः
वाजी [बृहदुक्थपुत्रः]
वाजिनः [अग्नि-वायु-सूर्याः]
वातः
वातापर्जन्या
वायुः
वास्तोष्पतिः
विद्युत्
विद्वान् पथः
विधाता

विट् (श्) सर्वा
विश्वे देवाः
विष्णुः
वृकः (अरुणः)
वृषस्तुभः
वृष्टिः
वेदिः
व्रजिनीः
व्रतानि
शंसः
शमी (गोत्वेन निरूपिता)
शम्भुः
शरीरम्
शर्यणावन्तः
संवत्सरः
संसारः
सत्यस्य पतयः (पतयः सत्यस्य)
समुद्रः
सरमा
सरयुः
सरस्वती (नदी)
सरस्वती (वाक्)
सविता
साम
सिनीवाली
सिन्धुः-न्धवः
सुकृतानि, सुकृताम् (सुकृतां सुकृतानि)
सुतम्भरः (ऋषिः)
सुपर्णः
सुमतिः, आदित्यानाम्
सुहवानि देवानाम्
सूनृता
सूर्यः
सूर्यामासा
सोमः
सोमजामयः
सोमगर्यचक्रभ्रमणानि
स्तोता
स्तोमः (देवस्तुतिः)
स्वः
स्वधावान् (प्रश्नोत्तराणि)
स्वरूणां मितयः
स्वस्तिः
हविष्कृतः
हस्तौ
होता
होतारा दैव्या

विश्वे-देवाऽन्तर्गतानां देवतानां गुणबोधकपदानि ।

अंशः ५,४२,५; २६४
अक्तुः १०,६४,३; ६७८ । १०,१४,९; १२६९
अक्षरम् १,१६४,२४; १११ । ३,५५,१; १९१

अर्कम्	१११
गायत्रम्	१११
त्रैष्टुभम्	१११
महत्	१९१
वाकम्	१११

अग्निः १,१४,१-१२; ४-१५ । १०५,४,१३-१४; ४१,५०-५१ । १०६,१; ५७ । १०७,३; ६६ । १११,३,५; ८४,८६ । १३९,१; ९७ । १६४,१,११; ९९,१०९ । १८६,२; १४२ । ३,२०,१,५; १६८-६९ । ५४,१,३,१९,२१-२२; १७०,१७२,१८८,१९०-९१ । ५५,१-१०; १९३-२०१ । ८,८; २२२ । ५७,१,४-६; २२३,२२६-२८ । ४,५५,४,७-८; २३१,२३५-३६ । ५,४१,४,१०; २४३,२४९ । ४२,३; २६२ । ५,४३,६,१०,१३-१५; २८२,२८६,२८९-९१ । ४४,३-५,८,१४-१५; २९६-९८,३०१,३०७-८ । ४५,४; ३१२ । ४६,२,४; ३२१,३२३ । ४७,७; ३४४ । ४८,१,४-५; ३३५,३३८-३९ । ४९,३; ३४२ । ५०,४; ३४८ । ५१,१-३,८-१०, १३-१४; ३५०,३५३-५५,३५८-५९ । ६,२१,९; ३६१ । ६,४९,१-२,९; ३६३-६४,३७१ । ५०,१,९;३७८,३८६ । ५१,५,१०,१३; ३९५,४०२,४०५ । ५२,५-६,११,१७; ४१३-१४,४२०,४२५ । ७,३४,८,१४,२५;४३३,४३९, ४४८ । ३५,४; ४५२ । ३६,१; ४६४ । ३९,१,४-७; ४८१,४८४-८७ । ४०,३;४९० । ४१,१;४९४ । ४२,२-६; ४९६-५०० । ४३,२-३,५,५०२-३, ५०५ । ४४,१; ५०६ । ८,२७,१-३, ५१२-१४ । २८,२-३; ५३५-३६ । २९,२; ५४० । ८,५८,२; ५५६ । ६९, ११; ५५८ । १०, ३१,१०; ५७७ । ३५,१,३-१२; ५८०,५८२-९१ । ३६,६,१२; ५९९,६०५ । ५२,३-४,६; ६१०-११, ६१३ । ५६,१; ६१४ । ५७,२; ६२२ । ६१,९,१४, १७,२०-२१; ६३५,६४०,६४३,६४६-४७ । ६३,९; ६६९ । ६४,३-४,८; ६७८ ७९,६८३ । ६५,१; ६९२ । ६६,४,१३; ७१०,७१९ । १०,९२,१-४,११,१४; ७२१-२४,७३१,७३४ । १००,६,७४६ । १०१,१;७६३ । १०९,१-२; ७७५-७६ । ११४,४; ७८५ । १२६,५,८; ७९६,७९९ । १२८,१-२,६; ८००-१,८०५ । १४१,१, ३,६; ८१६,८१८,८२१ । १६५,२; ८२९ । १८१,२; ८३५ । १०,९८,८-१२; १२२९-१२३३ । १,१३६,६-७; १२६४-६५ ।

अग्निदेवताया गुणबोधकपदानि ।

❀

अग्निदेवताया उपमासूची ।

अर्यमा देवताया गुणबोधकपदानि ।

(मित्रावरुणाभ्यां सहितत्वेन बहुवचनम् ।)

उपमासूची ।

अश्विनौ देवताया गुणबोधकपदानि ।

नासत्या ३११,३६७,३८७; ४८४; ५०९, ६४१
पती १६१
पान्ता ८५
पितरा १८५
पुरुभुजा ३४०
पुष्करस्रजा ८३८
बन्धुपृच्छा १८५
मन्द्रू ६४१
मयोभुवा २८४
येष्ठा २४२
रथः अश्विनोः—
  तूतुजिः ५८५
  मनसा युजानः ३६७
  विरुक्मान् ३६७
रयिदौ रयीणाम् १८५
रयीणां रयिदौ १८५
रराणा वृक्तबर्हिषे ६४१
रुद्रा ७४२
रौद्रौ ६४१
विप्रा ३८७
वृक्तबर्हिषे रराणा ६४१
वृषणा २२४
वृषण्वसू अपाम् ७४०
व्यन्ता ८५
शुभस्पती ७४१
सरथा २८४
सुहवा ७३३
सुहस्ता २२४
हवनेषु द्रवन्ता ६२९
हितप्रयसा ६४१

अश्विनौ देवताया उपमासूची ।

धुरं आणिः न नाभिम् २८४ यातं अर्वाग् गन्तं निधिम् ।
दूतः न २८४ शन्तमा गीः गन्तु हुवध्यै ।
प्रवासा इव ५४६ प्र वसतः ।
मनः न ६२९ येषु हवनेषु तिग्मम् ।
ववन्वांसा न ६३० इषं अस्मृतध्रू ।

असुरः ५,४१,३; २४२ । १०,५६,६; ६१९
  दिवः २४२
  स्वर्विद् ६१९

उपमासूची ।

अन्धांसि इव २४२ असुराय मन्म प्र भरध्वम् ।
अस्तारः (अस्तृ) १०,६४,८; ६८३
अहः १०,१४,९; १२६९
अहिर्बुध्न्यः १,१८६,५; १४४ । २,६१,६; १६३ । ४,५५,६; २३४ । ५,४१,१६; २५५ । ६,४९,१४; ३७६ । ५०,१४; ३९१ । ७,३५,१३; ४६१ । १०,६४,४; ६७९ । ६९,११; ७१७ । ९२,१२; ७३२ । ९३,५; ७४० ।
  उपमातिवनिः २५५
  कविः ७३२
अहोरात्रे १,१२२,४; ८५ । ३,५५,११,१५; २०१,२०६ । ४,५१,३; २३१ । ६,४९,३; ३६५
  अदब्धे २३१
  अन्यत् गुह्यं अन्यत् आविः २०६
  अन्यत् रोचते अन्यत् कृष्णम् २०१
  अन्या स्तृभिः पिपिशे सूरः अन्या ३६५
  अरुषस्य दुहितरा ३६५
  अरुषी २०१
  अह्नी २३१
  ऋच्यमाने ३६५
  नाना वपूंषि चक्राते २०१
  पथ्या २०६
  पदे दस्मे अन्तः निहिते इव २०६
  पावके ३६५
  मातरा ८५
  मिथस्तुरा ३६५
  विचरन्ती ३६५
  विरूपे ३६५
  विषूची २०६
  श्यावी २०१
  सध्रीचीना २०६
  स्वसारौ २०२

उपमासूची ।

पदे इव निहिते २०६ दस्मे अन्तः ।

उपमासूची ।

आदित्यदेवताया गुणबोधकपदानि ।

आदित्यानां गुणबोधकपदानि—

आदित्यानां उपमासूची ।

आपो देवताया गुणबोधकपदानि ।

उपमासूची ।

इन्द्रदेवताया गुणबोधकपदानि ।

इन्द्रदेवताया उपमासूची ।

इन्द्रदेवताया उपमासूची ।

✻

उपमासूची ।

गुणबोधकपदानि ।

जनः ८९
जनः दैव्यः ६९५
जनिमा देवानाम् ४९६
जन्म देवानाम् ४०४
देवानां जनिमा ४९६
देवानां जन्म ४०४
दैव्यः जनः ६९५
पज्रेभ्यः वाजिनीवान् ८९
महिमघः ८९
महां सूरिः ८९
वाजिनीवान् पज्रेभ्यः ८९
सूरिः अश्वावतः रथिनः मह्यम् ८९
देवाः ['विश्वे देवाः' द्रष्टव्यम्]
देवानां देवाः ७,३१,१५; ४६३
अमृताः ४६३
ऋतज्ञाः ४६३
मनोः यजत्राः ४६३
यज्ञियानां देवानां यज्ञियाः ४६३
देवो देवः ५,४१,१६; २७४। ४३,१५; २९१। ८,२७,१३; ५२४
सुहवः २७४, २९१
देवपत्नीः ['ग्नाः' द्रष्टव्यम्]
देवी ५,४१,१८; २५७। १०,१४१,२; ८१७
द्रवन्ती २५७
मृळयन्ती २५७
सुदानुः २५७
देवीः (तिस्रः) ३,५६,५, २१८
अप्याः २१८
ऋतावरीः २१८
योषणाः २१८
विदथे दिवः त्रिःआ पत्यमानाः २१८
देवीः (षट्) १०,१२८,५, ८०४
देहात्मानौ (देहात्म-जीवात्मानौ-सायनाचार्याः।) १,१६४,३८; १३६
देहः- आत्मा-
अन्यं नि चिक्युः अन्यं न नि चिक्युः
मर्त्यः अमर्त्यः, मर्त्येन सयोनिः
स्वधा स्वधया गृभीतः
देहात्मानौ-वियन्ता, विषूचीना, शश्वन्ता, १३६
द्यौः १,८९,४; ९२ । ९०,७; ३५ । १०५,१९; ५६ । १०६,७; ६३ । १०७,३; ६६। १६४,९,३३; १०७, १३१ । ३,५४,२ ३ ९,१९; १७१-१७२,१७८, १८८। ५५,१२-१३; २०३-२०४ । ५,४१,११; २५०। ४३,२; २७८। ४५,२-३; ३१०-११। ४६,३; ३२२ । ६,५०,१३; ३९०। ५१,५; ३९७। ५२,२; ४१०। ७,३४,२३; ४४६। ४३,१; ५०१ । १०,३६,२; ५९५। ५६,३; ६१६। ६३,१०; ६७० ।

द्यौर्देवताया गुणबोधकपदानि ।

अनेहाः ६७०
अन्यस्याः वत्सं रिहती २०४
उरु १७८
ऋतावरी ५९५
जनिता १३१, १७८
दक्षिणायाः धुरि युक्ता १०७
दुहिता १८८
धेनुः २०४
पन्थाः व्युतः १७८
पिता ९२,३५,१३१,१७८,२७८,३९७
प्रचेतसः ५९५
बन्धुः १३१
महः १७१, १७८
माता १०७
युक्ता दक्षिणायाः धुरि १०७
रिहती अन्यस्याः वत्सम् २०४
व्युतः पन्थाः १७८
सुमिता ३१०

उपमासूची ।

स्थूणा इव ३१० द्यौः सुमिता दृंहत ।
द्यावापृथिवी (रोदसी) १,१०५,१-१८; ३८-५५ । १०६,३; ५९ । १,३१,८; १६१ । ३,५४,३-४,६-१०; १७१-१७३, १७५-७९। ५५,१२,२०; २०३, २११ । ५६, १,७; २१४,२२० । ३,८,८; २२२ । ५७,४; २२६ । ४, ५५,१,३,६; २२९,२३१,२३४। ५, ४३,२; २७८। ४९,५; ३४४। ५१, ११; ३५६ । ६,५०,३; ३८०। ५२, १४; ४२२ । ७,३४,२३-२४; ४४६-४४७ । ७,३५,३,५; ४५१,४५३ । ३९,७; ४८७ । ४०,२; ४८९ । ४४,१; ५०६। १०,३५,१-३; ५८०-५८२। ३६,१; ५९४। ६३,९; ६६९। ६४,१४; ६८९ । ६५,८; ६९९ । ६६, ४, ६; ७१०, ७१२ । ९२, ११-१२; ७३१-७३२ । ९३,१,१०; ७३६,७४५ । १,१३६,६; ११६४ ।

द्यावापृथिवी (रोदसी) देवताया गुणबोधकपदानि ।

अदितिः २२९
अद्रुहा २१४
अमृध्रे २७८
उभे १११,२३१,४२२,४४६,६८९
उर्वी २२०,४४७,७३६
ऋतस्य योना १७५, ६९९
ऋतावरी १७३, ७१२
ऋतावृधा ५९
क्षयतः समोकसा ६९९
चम्वा १११
जागरूके १७६
दूरेअन्ते १७६
देवपुत्रे ५९
देवान् बिभ्रती १७७
देवी ५९
द्यावाक्षामा २२२, ५९४
द्यावाभूमी २२९
धिषणे ३८०
धेनू २०३
परिक्षिता ६९९
पितरा ६९९
पिता माता १७८

पूषादेवताया उपमासूची ।

यथा वेदसां असत् वृधे रक्षिता २३ पूषा [illegible] पायुः ।

गुणबोधकपदानि ।

उपमासूची ।

पर्वतस्य इव धारा २२८ असश्चन्ती ।
पवाबनम् (देवानाम्)१०,३५,८;५८७
ऋतस्य पवाबनम् ५८७
प्रथाः १०,११४,१; ७९—
प्रत-प्रतिमबनानि १,१६४,३४-३५; १३०-१३२ ।
बर्हिः ७,३९,२; ४८१
बृहत् १०,१८१,२; ८३५
बृहद्बुक्थः १०,५६,७; ६९०

उपमासूची ।

नावा न क्षोदः ६१० प्रदिशः पृथिव्याः स्वस्तिभिः अति दुर्गाणि विश्वा ।

९१,१०; ७३० । १००,५; ७५५ । १०९,५; ७७९ । १२८,७; ८०६ । १४१,२-५; ८१७ ८२० । १६७,३, ८३३ । ९८,१-३, ७; १२२२-१२२४,१२२८ ।

गुणबोधकपदानि ।

अरमतिः ६९०
अरुषः २८८
दीदिवान् २८८
धनानां सनिता २६६
नीलपृष्ठः २८८
पुरूवसुः २६६
प्रथमः २६६
बृहन् २८८
रत्नधेयः २६६
वेधाः २८८
शम् ३७
शम्भविष्ठः २६६
सनिता धनानाम् २६६
सर्वगणः ३५७
सादयोनिः २८८
हिरण्यवर्णः २८८

उपमासूची ।

जुह्वं न देवा ७७९ जाया अन्वविन्दत् बृहस्पतिः ।
दूतः आ १२२३ देवः अजरः ।
ब्रह्म ७,३५,७; ४५५ । ३६,१; ४६४ । ८,५८,२; ५५६ । १०,६१,७; ६३३ । १०,११४,८; ७८९ ।
एकं वा इदं सर्वं वि बभूव ५५६
ब्रह्मा ८,५८,३; ५५७ । १०,५१,२; ६०९ । १४७,३; ८१८
अतिरिक्तः ५५७
केतुमान् ५५७
ज्योतिष्मान् ५५७
त्रिचक्रः ५५७
भूरिवारः ५५७
रथः ५५७
समिद् ६०९
सुखः ५५७
सुषद् ५५७
ब्रह्मजाया १०,१०९,३-४; ७७७-७८
उपनीता ब्राह्मणस्य ७७७-७८
जाया ७७७-७८
भीमा ७७७-७८
ब्रह्मणस्पतिः ५,४२,९, २६८ । ४६,३; ३२१ । ७,४१,१; ४९४ । ४६,१; ५०६ । ८,२७,१; ५१२ । १०,६५, १; ६९२ ।
भगः १, १४, ३-४; ६-७ । ८९,३; ९१ । ९०,४, ३२ । २, ३१,४; १६१ । ३,२०,५; १६९ । ५४,११; १९० । ५६,६; २१९ । ४,५५,५, १०; २३३,२३८ । ५,४१,४,११; २४३, २५० । ४२,१,५; २६०, २६४ । ४६,२-३,६; ३२१-३२२, ३२५ । ४८,५; ३३९ । ४९,१,३, ३४०, ३४१ । ५१, ११; ३५६ । ६,४९,१४; ३७६ । ५०, १, १३; ३७८,३९० । ५१, ३, ११; ३९५, ४०३ । ७,३५,२; ४५० । ३६,८; ४७१ । ३९,४; ४८४ । ४०,२; ४८९ । ४१,१; ४९४ । ४४,१; ५०६ । १०,११,४; ५७१ । ३५, १०-११; ५८९-५९० । ६३, ९; ६६९ । ६४,१०; ६८५ । ६६,१०; ७१६ । ९२,४,७; ७३९,७४२ । १४१, २; ८१७ । १, १३६, ६; १२६४ ।

भगो देवताया गुणबोधकपदानि ।

अविता धियः ४७१
आश्वश्वतमः २४३
कण्वहोता २४३
चिकित्वान् २५०
त्राता २१९, २३८
त्रितः २४३
दिवः २४३
दिव्यः २४३
देवः २३३, ३४०
धियः अविता ४७१
पुरन्धिः ३७६
बृहद्दिवा १६१
रण्वः ६८५
रत्नं विभजन् आयोः ३४०
रथस्पतिः ६८५, ७४२
रातिः ७१६
वन्द्यः ३२
विभक्ता ३२५
विभजन् रत्नं आयोः ३४०
विश्वभोजाः २४३
शंसः ६८५
सक्षणः २४३
सजोषाः २४३
भवित्रम् ७,३५,९; ४५७
भूतानि १०,१३७,५; ८१३
विश्वा ८१३
भूमिः ७,३६,८; ४७१
अरमतिः ४७१
मही ४७१
भृगवः १०,९२,१०; ७३०
मदः ५,४४,११; ३०४
अदितिः ३०४
कक्ष्यः ३०४
श्येनः ३०४
मनः (मन आवर्तनम् ।) १०,५७,३-५; ६२३-६२५
मनीषा ७,३४,१; ४२६
देवी ४२६
शुक्रा ४२६
मनीषिणः १०,६४,१५; ६९०
मनुष्याः १०,१०९,६; ७८०
मन्म १०,३६,५; ५९८
सुप्रकेतम् ५९८
मरुतः १,१४,३-४; ६-७ । ९३,१०-११; १६-१८ । ८६, ३,७; २१,२५ ।

'मरुतः' देवताया गुणबोधकपदानि ।

उपमासूची ।

मित्रावरुणौ देवताया गुणबोधकपदानि ।

' मरुतः ' देवताया गुणबोधकपदानि ।

उपमासूची ।

मित्रावरुणौ देवताया गुणबोधकपदानि ।

उपमासूची।

देवतारहितमन्त्र गुणबोधकपदानि।

उपमासूची।

गुणबोधकपदानि।

'रुद्रः' देवताया गुणबोधकपदानि।

× अत्र 'रुद्रा' इतिपदं वर्तते। द्विवचनत्वात् अश्विनोः विशेषणम्।

उपमासूची ।

वरुणदेवताया गुणबोधकपदानि ।

उपमासूची।

गुणबोधकपदानि।

उपमासूची।

उपमासूची।

गुणबोधकपदानि।

वायुः-गुणबोधकपदानि ।

उपमासूची ।

विश्वेदेवाः ।

['विश्वे' इति उपपदसहितनिर्देशः ।]

'देवाः' 'विश्वे देवाः' च उभयोः मिलित्वा गुणबोधकपदानि ।

'देवाः, विश्वे देवाः' च देवतानां उपमासूची ।

उपमासूची ।

अमति न ३३० श्रियं वि सात् ।
भद्रा न नावम् ३१८ धीराः तं अनयन्त ।
रुक्मः न दिवः ३९३ उदिता व्यद्यौत् ।
सूर्यामाला १०,६४,३; ६७८ । ९१,
१२; ७३१ । ९३,५; ७४०
दिविक्षिता ७३१
विचरन्ता ७३१
सदनाय सधन्या ७३१
सोमः १,१४,४(इन्दवः), ७,१०,११।
८९,३; २१ । १,४१,१४; १६६ ।
५,४३,४; १८० । ४६,४; ३२३ ।
५१,९,१२; ३५४,३५७ । ६,५१,
१४; ४०६ । ५२,३, ४११ । ७,३५,
७, ४५५ । ११,१; ४९४ । ८,९९,१;
५३९ । १०,३५,२; ५८१ । ३६,८;
६०१ । ५४,२; ६०९ । ५७,६;
६१४ । ६१,१६; ६४२ । ६५,१-२,
१०; ६९२,६९३,७०१ । १००,४;
७५४ । १०९,१-२; ७७५-७७६ ।
११८,५; ८०४ । १४१,३; ८१८ ।
१६७,३; ८३३ । १,४५,१०; ११००।
१३६,६; ११९४

सोमदेवताया

गुणबोधकपदानि ।

उपमासूची ।

नेमिं न चक्रं अर्वतो
रघुद्रु ६४२ नक्षीवन्तं रेजयत् ।
सोमजामयः १०,९१,१०; ७१०
सोमसूर्यचक्रभ्रमणानि १,१६४,११;
११७

उपमासूची ।

धुरा न युक्ताः ११७ तानि रजसः वहन्ति ।
स्तोता १०,१३७,४; ८११
स्तोमः (देवस्तुतिः) १०,९३,११-१४;
७४७-७४९

उपमासूची ।

तना न सूर्ये ७४७ मे स्तोमं वावृधन्त ।
तष्टा इव अनपच्युतम् ७४७ मे स्तोमं ।
वावृधन्त ।
नेमधिता न पौंस्या ७४८ राया युक्ता
हिरण्ययी वावर्त ।
वृथा इव विष्टान्ता७४८ हिरण्ययी वावर्त ।

विश्वे-देवाऽन्तर्गता देवताः

(२) यजुर्वेद-मन्त्राणाम् ।

*

गुणबोधकपदानि ।

× शतपथ-ब्राह्मणतः एतेषां मन्त्राणां देवता ' ईश्वरः ' ।

उपमासूची ।

उपमासूची ।

+ अतोऽनन्तरं ' इष्टका ' आरोपित देवतानां नामानि स्वतन्त्रतया संगृहीतानि वर्तन्ते ।

× ' उवट–महीधर–भाष्यकारमते एतयोः मन्त्रयोः ' अश्वः ' देवता । शतपथब्राह्मणतः ' ईश्वरः ' देवता ।

* शतपथब्राह्मणमते अत्र देवता ' राष्ट्रश्रीः ' ।

उपमासूची ।

विद्रुषः न गज्ञाम् ६,२६; १२९४ ग्रावाणो मे द्रुमम् ।

उपमासूची ।

नव इव १०,५; १३१५ मे त्विषिः स्यात् ।

गुणबोधकपदानि ।

उपमासूची ।

उपमासूची ।

उपमासूची।

× शतपथब्राह्मणमते अत्र देवता ' श्रीः '

उपमासूची ।

तिष्ठते अश्वाय इव ९२१ विश्वाहा ते इत् सदं भरेम ।

गुणबोधकपदानि ।

उपमासूची ।

माता इव ११०१ अस्मै शर्म यच्छ ।

गुणबोधकपदानि ।

गुणबोधकपदानि ।

उपमासूची ।

यथा आदित्याः अहृणीयमानाः वसुभिः मरुद्भिः संबभूवुः ९५६ एवा इह इमान् जनान् संमनसः कृधि ।

गुणबोधकपदानि ।

उपमासूची ।

गुग्गुलः समुद्रं न ११४८ अप्सु अन्तः नदिवांसं द्विपिनं मर्मृज्यन्ते ।

गुणबोधकपदानि ।

अभिभूः ९५७
अरातिं नुदन् ९१५
ईशानः ९१५
उग्रः ९११,९५८-९५९
उपसद्यः ८९६
एकजः ९५९
एकराट् ८९६
ओजसा प्रमृणम् ९५८
गोजितः ९५८
ग्रामजितः ९५८
चेत्ता ९५९
जयन् ९५८
तवस्तरः १०४१
दस्यूनां हन्ता ९१३
दूरे चित् सन् ८९२
धनदाः ९१५
नमस्यः ८९६
नुदन् अरातिम् ९१५
पुरएता ९१५
पुरुनामा ९५९
प्रमृणन् ओजसा ९५८
मघवान् •११०१,१११०,११९६
मरुत्वान् ९७९,९८९
महिमा ९१३
राजा ८९६
वज्रबाहुः ९५८
वणिक् ९१५
विप्रः ८९१
विशाम्पतिः ८९६
वीरः ९५८
वृत्रहा ९१९,९३१
शचीपतिः ९१३,९७०
सखा १०५७
हन्ता दस्यूनाम् ९१३

उपमासूची ।

अविं वृकः इव ९१६ (शत्रुं) मथ्नीत ।
यथा आखरः मृगाणां सुषदा बभूव११०१
एवा नारी सं श्रिया अविराधयन्ती अस्तु।
यथा इन्द्रः अधस्पदं चक्रे ९३०तथा अहं
अमून् अधरान् कण्वे ।
कुलिशेन इव वृक्षम् १०९२ तं वृश्चामि ।

इन्द्राग्नी ३,३,५; ८९४ । १९,१६,२; ९७१ । २०,१; १००३ । २७,१५; ११६९ । ६,१०३,१-३; ११८४-८६
इन्द्राणी १,२७,१-४; ८८३-८८६

उपमासूची ।

वेणोः अद्रा इव ८८५ अभितः अद्यायवः असमृद्धाः ।

इन्द्रापूषणा ६,३,१; ९३१
इन्द्रियाणि १९,९,५; १०७३
पञ्च १०७३
ब्रह्मणा संशितानि १०७३
मनः षष्ठानि १०७३
संशितानि ब्रह्मणा १०७३
ईश्वरः १,१९,१-४; १०५१-१०५५
उत्तमाः १९,२२,१२; ११३२
उत्तराः १९,२२,१३; ११३३
उत्पाताः १९,९,७; १०७५
पार्थिवान्तरिक्षाः १०७५
उपोत्तमाः १९,२२,११; ११३१
उरुगायः २,१२,१; १०९१
अद्भुतः १०९१
उल्का १९,९,८-९; १०७६-७७
उषासानक्ता ६,३,३; ९३४
ऋषभः १९,२७,१; ११५५
ऋषयः १९,२२,१४; ११३४
एकर्चाः १९,२३,२०; १०२६
एकादशार्चाः १९,२३,८; १०१४
एकानृचाः १९,२३,१२; १०१८
एकाष्टका ३,१०,५; ९०९ । १०,१२-१३; ९१३-९१४

गुणबोधकपदानि ।

इन्द्रपुत्रा ९१४
दुहिता प्रजापतेः ९१४
प्रजापतेर्दुहिता ९१४
सोमपुत्रा ९१४

एकोनविंशतिः १९,२३,१६; १०२२
ओषधयः १९,१९,५; ९९६ । ३,२३,६; १०६३। १९,९,१,१४; १०६९, १०८१। २,३६,८; ११०४ [एक व.]

गुणबोधकपदानि ।

दैवीः १०६३
यासां द्यौः पिता १०६३
यासां पृथिवी माता १०६३
यासां समुद्रः मूलम् १०६३
वीरुधः १०६३
कृताकृतम् १९,९,२; १०७०
कृत्याः १९,९,९; १०७७
क्षुद्राः १९,२३,२१; १०२७। २१,६; ११२६
क्षेत्रस्य पानी २,१२,१; १०९१
गणाः १९,२२,१६; ११३६
गावः १९,९,८; १०७६ । १४,२,५३-५८, ११९०-११९५
लोहित क्षीराः १०७६
ग्रहाः १९,९,७,१०; १०७५,१०७८
चान्द्रमसाः १०७८
दिविचराः १०७५
ग्रावा ६,३,२; ९३३
चक्षुः ६,१०,३; १०७२
चन्द्रमाः चन्द्रः वा १,२७,१-४;८८३-८६। १९,१९,४;९९५।३,२३,१-६; १०५८-६३ । १९,४३,४; १०८६ (चन्द्रः)। ३,१९,१-८; ११०५-१२। ४,८,१-७; ११४१-४८ । ७, ११८,१;११४९।१९,२७,२;११५६ (चन्द्रः)।५,२७,१-१५;११५५-६९। ६,१९,१-३; ११७३-७५

गुणबोधकपदानि ।

राजा ११४९
वृत्रहा ११५६
सोमः ११४९
चतुर्ऋचः १९,२३,१; १००७
चतुर्दशार्चाः १९,२३,११; १०१७

गुणबोधकपदानि ।

पतिः भुवनस्य १००४
प्रजननवान् ९८०,९९०
भुवनस्य पतिः १००४
सत्यधर्मा १०६८
प्रजापतेः दुहिता ३,१०,१३; ९१४
इन्द्रपुत्रा ९१४
सोमपुत्रा ९१४
प्रथमः (शंखाः) १९,२२,८; ११२८
प्रदिशः ३,४,२; ८९७ । १९,२०,२; १००४
देवीः ८९७
पञ्च ८९७
प्राजापत्यौ १९,२३,२६; १०३२
प्राणः १९,२७,७; ११६१ । ६,१०,२; ११७१
बृहस्पतिः ६,७३,१-२; ९५१-९५२ । १९,१७,१०;९८१।१८,१०; ९९१। २०,१; १००३ । २४,४,८; १०३९, १०४३ । १९,९,६,११; १०७४, १०७९ । ३,२२,१-६; १११३-१८ । ६,१०३,१; ११८४ । १४,२,५३-५८; ११९०-९५
विश्वदेववान् ९९१
ब्रध्नाः १९,२७,४; ११५८
त्रयः ११५८
ब्रह्म+ह्मा १९,१९,८; ९९९ । २३, १९; १०३५ । ९,१२; १०८० (ब्रह्मा) । ४३,८; १०९० (ब्रह्मा) । २, २२,६-७; १०९६-९७ । १९-२२, २०-२१; ११४०-११४१ (ब्रह्मा)
ब्रह्मचारिणः १९,१९,८; ९९९
ब्रह्मणस्पतिः ६,४,१; ९३५ । ५,३; ९३८ । ७४,१; ९५४ । १९,२४,१; १०३६
भगः ६,४,२; ९३६ । ७४,१-२; ९५४-९५५ । १,२६,२; १०५७ । ६,५३,१; ११७९ । १०३,१; ११८४
भवः ६,९३,१; ११७७
भव्यम् १९,९,१; १०७०
भूतम् १९,९,२; १०७०
भूतानि विश्वा ६,११९,१; ११७३
भूतकृतः १९,१६,२; ९७१ । १७,१५; ११६९
भूमिः १९,९,८; १०७६ । ६,१२०, २; ११८०
तीर्यतीः १०७६
माता ११८०
वेप्यमाना १०७६
मङ्गलिकाः १९,२३,२८; १०३४
मनः १९,९,४; १०७२
परमेष्ठिन् १०७२
ब्रह्मसंशितम् १०७२
मनवः ६,११९,१; ११७३
मनुष्येषवः १,१९,२; १०५३
अस्त्राः १०५३
अस्याः १०५३
दैवीः १०५३
विष्वञ्चः १०५३
शरवः १०५३
मरुतः ३,४,४; ८९८ । ६,३,१; ९३१ । ६,४,२; ९३६ । ६,७४,३; ९५६ । ७,९८,१; ९६७ । ५,३,३; १०४४ । ७,२४,१; १०६८ । २,१२,६; १०९६ । ३,१९,६; १११० । ६,९३, ३; ११७८
इन्द्रवन्तः १०४४
विश्ववेदसः ११७८
स्वर्काः १०६८
महर्षयः १९,९,११; १०७९
देवाः १०७९
महाकाण्डः १९,२३,१८; १०१४
महागणाः १९,२२,१७; ११३७
मातरिश्वा ११,२०,२; १००४ । १९, २७,४; ११५८ [बहुवचनम्]।
त्रयः ११५८
मित्रः १,९,१; ८७७ । ३,८,१; ९०१ । ६,४,२; ९३६ । १९,१९,१; ९९९ । १९,९,६-७; १०७४-७५ । २,२८,५; ११०१ । ३,२२,२; १११४ । ६, १०३,१; ११८४
मित्रराजा ११०१
मित्रावरुणा ३,४,४; ८९८ । १९,११, ६; ११२०
उभा ८९८
मृत्युः १९,९,१०; १०७८ । ६,९३,१; ११७६ । ६,६३,२-३; ११८२-८३
अघमारः ११७६
निर्ऋथः ११७६
बभ्रुः ११७६
यज्ञः ३,१०,७; ९११ (बहुवचनम्)। ६,९७,१; ९५७ । १९,१९,६; ९९७
अभिभूः ९५७
यमः १९,२०,१; १००३ । ६,९३,१; ११७६ । ६,६३,२-३; ११८२-८३
मृत्युः ११८२
यमस्य सादनम् २,१२,७; १०९७
योनिः ३,२३,२-६; १०५८-६३

उपमासूची ।

बाणः इव इषुधिम् १०५९ पुमान् गर्भः ते योनिं आ एतु ।
राजा ३,४,६-७; ९००-९०१ । ४,८, १; ११४२ । ६,९३,२; ११७७
राज्याभिषेकः ४,८,१-७; ११४२-४८

उपमासूची ।

सुभुवः समुद्रं न ११४८ अप्सु अन्तः तस्थिवांसं द्वीपिनं मर्मृज्यन्ते ।
रात्रिः ३,१०,७; ९११
राहुः १९,९,१०; १०७८
रुद्राः ६,६८,१; ९४८ । १९,१७,३; ९७४ । १९,१९,३; १०५४ (रुद्रः)। १९,९,१०,११; १०७८-७९ । ३, २२,२; १११४ (रुद्रः)। ६,९३,१-३; ११७६-७८
तिग्मतेजसः १०७८
रोहिताः १९,२३,२३; १०१९
लोकाः १९,९,१२; १०८०

उपमासूची ।

अजिराधिराजौ सम्पातिनौ श्येनौ इव ९६४

यः कश्च नः अभि अघायति ।

उपमासूची ।

यथा अहृणीयमानाः उग्राः आदित्या वसुभिः मरुद्भिः संबभूवुः ९५६ एवा इमान् जनान् इह संमनसः कृधि ।

यथा पूर्वे संजानानाः देवाः भागं उपासते ९४५ तथा सं वः मनांसि जानताम्।

उपमासूची ।

यथा नः अवीरहा असः १०५१ (तथा) त्वा सीसेन विध्यामः ।

गुणबोधकपदानि ।

गुणबोधकपदानि ।

विश्वे-देवाऽन्तर्गता देवताः

(४) सामवेद-मन्त्राणाम् ।

(५) विश्वे-देवाऽन्तर्गता यजुर्वेदीय

नाना-देवताः ।

विश्वे-देवादेवता-मन्त्राणां

वर्णानुक्रमसूची ।

❀